शेषांस्तीर्थंकृतो नौमि सादरं ज्ञानभास्करान् । कर्मारातीन् समुन्मूल्य शिवसाम्राज्यभूमिपान् ॥ २ ॥ विमलं विमलं स्तौमि विमलज्ञानशालिनं । दुर्बोधरजसाकीर्णभूतले वारिदायितं ॥ ३ ॥ परमेष्ठिगुणांस्तौमि पंचपंकनिरासकान् । सज्ज्ञानादिगुण व्रातशुक्तिजाभरणायितान् ॥ ४ ॥ भारती भामरां भूत्यै स्वर्णाभां विश्वमातरं । मरालवाहनं चाये वृषभेशास्यनिर्गतां ॥ ५ ॥ द्वादशां-

जो आदीश्वर भगवान सर्वेश—संसारवर्ती समस्त जीवोंके स्वामी हैं। शंकर--समस्त संसारका कल्याण करनेवाले हैं। सिद्ध—ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंसे रहित सिद्ध परमात्मा हैं। प्रजापति युगकी आदिमें असि मषि कृषि आदिकी सृष्टिका विधान बतलानेके कारण ब्रह्मा स्वरूप हैं एवं जिनकी स्तुति बड़े बड़े देवोंके इंद्र भी करते हैं उन जिनेंद्र भगवान आदिनाथको मैं (ग्रंथकार) इस ग्रंथकी आदिमें मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ भगवान आदिनाथके सिवाय अजितनाथ आदि अन्य तीर्थंकरोंको भी मैं सादर नमस्कार करता हूं जो कि ज्ञानके सूर्यस्वरूप हैं एवं कर्मरूपी वैरियोंका सर्वथा नाशकर मोक्षरूपी साम्राज्यके स्वामी हैं ॥ २ ॥ तेरहवें तीर्थंकर भगवान विमलनाथको भी मैं नमस्कार करता हूं जो विमलनाथ भगवान समस्त कर्मरूपी मलोंसे रहित होनेके कारण विमल हैं। विमलज्ञान--केवलज्ञानसे शोभायमान हैं एवं जिसप्रकार धूलिसे व्याप्त पृथ्वीतलको मेघ शांत कर देता है उसीप्रकार मिथ्याज्ञानसे परिपूर्ण समस्त जगतको शांति प्रदान करते हैं-समस्त जगतके मिथ्याज्ञानको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ अर्हंत सिद्ध आचार्य आदि पांचों परमेष्ठियोंके गुणोंकी भी मैं स्तुति करता हूं क्योंकि ये पांचों परमेष्ठियोंके गुण अहिंसा आदि पांचों पापोंके नाश करनेवाले हैं एवं सम्यग्ज्ञान आदि गुण स्वरूप मुक्तामयी भूषण हैं अर्थात् जिसप्रकार सुंदर मोतियोंके बने भूषण शरीरकी शोभा बढ़ानेवाले होते हैं उसीप्रकार परमेष्ठियोंके गुण भी आत्माको आदर्श बनानेवाले भूषण हैं ॥ ४ ॥ मैं उस सरस्वती देवीको भी अपने कल्याण की इच्छासे नमस्कार करता हूं जो कि महा मनोज्ञ शोभासे परिपूर्ण है। सुवर्णके समान कांतिकी धारक है। समस्त जगतकी माता है। हंसकी जिसकी सवारी है और भगवान ऋषभ देवके मुखसे

प्रस्तावना ।

स्वभाव पर्याय और विभाव पर्यायके भेदसे आत्माकी दो प्रकारकी पर्यायें मानी हैं। जो पर्यायें निज स्वरूप—आत्म स्वरूप, होती हैं वे स्वभाव पर्याय मानी जाती हैं और जो पर्यायें पर स्वरूप हैं और पर पदार्थोंके संबंधसे होनेवाली हैं वे विभाव पर्याय मानी जाती हैं। सुख और दुःख भी आत्माकी पर्यायें हैं और उनमें सुख पर्याय स्वभाव और दुःख पर्याय विभाव मानी गई है। यद्यपि सुख पदार्थ प्रायः सभी आत्मवादी सिद्धांतकार आत्माका स्वरूप समझते हैं किन्तु अपनी कल्पनाओंके अनुसार जो उन्होंने सुखका स्वरूप समझ रक्खा है वास्तवमें वह सुखका स्वरूप हो ही नहीं सकता। असली सुखका स्वरूप निराकुलता है और वह मोक्ष दशामें ही व्यक्त होता है।

न्याय शास्त्रके अनुसार कारणोंमें भी कार्यकी कल्पना कर ली जाती है। यद्यपि कर्मजटिल आत्माको निराकुलतामय सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती परन्तु आत्माके कल्याणकारी धार्मिक तत्त्वोंके सुनने और विचार करनेसे जो आत्मामें शांतिकी आभा झलकने लगती है वह आभा वास्तविक सुखका पूर्वरूप होनेमें कारण है और उसका अनुभव हरएक आत्माको हो सकनेके कारण आज हम उस शांतिमय आभाको भी सुख कह सकते हैं।

जिसे हमने संसारी आत्माकी अपेक्षा सुख बतलाया है उस शांतिमय आभाकी झलक हमारे सरीखे आत्माओंमें वस्तुके यथार्थ ज्ञानसे ही प्राप्त हो सकती है एवं वर्तमान कालमें यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय सर्वज्ञ केवली प्रतिपादित शास्त्रोंका पर्यालोचन और मनन है अतएव यदि हमें उस शांतिमय सुख स्वरूपकी प्राप्तिकी अभिलाषा है तो हमारा यह कर्तव्य होना चाहिये कि हम पूर्ण रूपसे जैन शास्त्रोंका पर्यालोचन करें और अपनी आत्माको सुखमय बनानेकी चेष्टा करें।

बाह्य पदार्थोंसे उपेक्षित हो स्वस्वरूपमें लीन होना ही ज्ञानका फल बतलाया है। कुछ महानुभावोंका यह ध्यान है कि पुराणोंके मननसे लोगोंकी प्रवृत्तियां सरागरूप होती हैं वैराग्यकी ओर प्रवृत्ति नहीं जाती जैसा कि अन्यमतोंके पुराणोंसे होता है परन्तु यह भावना उनकी मिथ्या है। अन्यमतके पुराणोंमें खासकर कथाओंका ही उल्लेख रहता है धार्मिक उपदेश नहीं रहता इस लिये अन्य मतके पुराणोंमें शृंगार रसका ही विशेष उल्लेख होनेसे उनके पढ़नेवालोंकी प्रवृत्ति वैराग्यमय नहीं हो सकती परन्तु जैन पुराणोंमें इस बातकी खास खूबी है कि संसारी आत्माओंको लोक चतुर बनानेके लिये उनमें शृङ्गार आदि रसोंकी भी छटा दिखाई जाती है परन्तु परिपूर्ण धार्मिक उपदेश रहता है एवं ग्रंथकारकी सारी शक्ति इसीमें व्यय होती है कि संसारी जीव कर्म जालसे छूटनेका प्रयत्न करें इसलिये जैन पुराण अध्यातम ज्ञानकी प्राप्तिमें कारण हैं और इसीलिये ज्ञानमय शांतिरसके पिपासुओंको अवश्य पुराणोंका पठन पाठन और मनन करना चाहिये।

प्रिय महानुभाव! श्रीमल्लिनाथ पुराणकी प्रशस्तिमें जो मैं यह प्रतिज्ञा कर चुका था कि अब मल्लिनाथ पुराणके बाद हिन्दी अनुवाद सहित श्रीवृहद्विमलनाथ पुराण पाठकोंकी सेवामें समर्पण करूंगा उसी प्रतिज्ञानुसार यह श्री वृहद् विमलनाथ पुराण पाठकोंके

करकमलोंमें अर्पण कर रहा हूं। इस वृहद् विमलनाथ पुराणके रचयिता प्रातःस्मरणीय ग्रन्थकार श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास हैं। इस वृहद्विमलनाथ पुराणमें सबसे पहिले ग्रन्थकारने महाराजा श्रेणिकके विस्तृत चरित्रका वर्णन किया है उसके बाद बड़े विस्तारसे भगवान विमलनाथके पांचों कल्याणोंका वर्णन किया है। भगवान विमलनाथके समयमें अर्धचक्री नारायण स्वयंभू और धर्म-नामके वलभद्र हुए हैं ग्रन्थकारने बड़ी मनोहर कवितामें नारायण और वलभद्रका शिक्षाप्रद वर्णन किया है। मुनिराज जयंत और संजयंतकी कथा बड़ी ही मनोहारिणी है ग्रन्थकारने बड़ी सुन्दरतासे मुनिराज जयंत और संजयंतकी कथाका वर्णन किया है तथा मुनिराज जयंत और संजयंतकी कथासे संबंध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका वैरके आधारपर पूर्वभवका वर्णन कर इस वातका खास उपदेश दिया है कि किसीके साथ किसीको विरोध नहीं रखना चाहिये। इसके सिवाय ग्रन्थकारने किस कर्मके उदयसे क्या फल प्राप्त होता है इसका बड़ी ही सरलतासे वर्णन किया है जिसको कि पढ़कर अज्ञानी और निंदित पुरुषोंकी प्रवृत्ति भी निंदित कार्योंसे विमुख हो जाती हैं तथा मौनव्रतका आचार्यने बड़ी खूबीसे वर्णन किया है एवं मौनव्रतका खुलासा रूपसे फल और स्वरूप बतला कर सर्वसाधारणको मौनव्रत पालन करनेके लिये आदेश किया है।

पुराण वा काव्यकी रुचिरता व्याकरण और कोषके आधीन विशेष रूपसे है। ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदासजीका व्याकरण कितनी उच्चता रखता था यह इसी ग्रन्थमें प्रयुक्त 'निर्दिव' 'अहं प्रमाणं' आदि शब्दोंसे प्रगट है तथा (सारंग, गामठ) आदि जिन उच्च शब्दोंसे इस ग्रन्थके पद्योंकी रचना की गई है उससे ग्रन्थकारका कोष शास्त्रका उच्चतम ज्ञान स्पष्टरूपसे प्रगट हो जाता है। इस विशाल ग्रन्थके विषयमें विशेष न लिखकर हम इतना ही लिखना पर्याप्त समझते हैं कि जिस प्रकार मिश्रीके खानेवालेसे जब यह पूछा जाता है कि कहो भाई! मिश्री कैसी मीठी है! तो वह उसके मिठास जनित आनंदका ही अनुभव करता है कुछ कह नहीं सकता, उसी प्रकार इस ग्रन्थके पर्यालोचन करनेवाला ही इसके आनन्दका अनुभव कर सकता है। उस आनन्दकी व्यक्ति वचनोंके द्वारा होना अतिशय कष्टसाध्य है। विद्वान लोग ही इस ग्रन्थकी उच्चता समझ सकते हैं।

ब्रह्म—कृष्णदासजी

ग्रन्थके अन्तमें ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदासजीने कृपा पूर्वक अपना कुछ परिचय इस प्रकार दिया है—काष्ठा संघमें एक रामसेन नामके प्रसिद्ध आचार्य हुए उनके शिष्य सोमकीर्ति उनके शिष्य विजयसेन उनके शिष्य यशःकीर्ति उनके शिष्य उदयसेन उनके शिष्य भुवनकीर्ति और उनके शिष्य रत्नभूषण थे उनका शिष्य मैं कृष्णदास हूं। गुर्जर देशमें एक लोहाकर नामका ग्राम है उसमें एक हर्ष नामके महानुभाव रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम वीरिका था उनका मैं पुत्र हूं एवं कल्पवल्ली नामके नगरमें सं० १६७४ में मैंने इस ग्रन्थका निर्माण किया है।

टालसे यह जान पड़ता है कि ये ब्राह्मण थे एवं जिसप्रकार भगवान विद्यानन्दने अपने जैनी होते ही समय आप्त परीक्षा लिखी थी उसीप्रकार इन्होंने भी जैनी होते ही समय श्री वृहद्विमलनाथ पुराण बनाया है इसलिये सम्यग्दर्शनके स्वरूपकी जगह सत्तालोचन रूप दर्शनका स्वरूप लिखा गया है

जो टिप्पणीमें सुधार दिया गया है। इन्हीं ग्रन्थकारका निर्माण किया मुनिसुव्रत पुराण बड़ा ही महत्व पूर्ण है जिस तरह श्री वृहद्विमलनाथ पुराणमें ग्रन्थकारने कथाओंका ही विशेषरूपसे उल्लेख किया है उसीप्रकार मुनिसुव्रत पुराणमें जैन सिद्धांत प्रदर्शन किया है। मुनिसुव्रतपुराणके लिखने समय इन महानुभावका सिद्धांत विषयक ज्ञान बहुत उच्चतापर पहुंच गया था।

यह ग्रन्थ अबतक अश्रुत था किसीको भी इस ग्रन्थका पता न था। हमारे परम मित्र श्रीयुक बा० छोटेलालजीको इसका पता लग चुका था और जब मैं संस्थामें कार्य करता था उसी समय बा० छोटेलालजीने यह अनुरोध किया था कि यह ग्रंथ अवश्य प्रकाशित होना चाहिये क्योंकि बा० छोटेलालजी भा० दि० जै० सि० प्रकाशिनी संस्थाकी कार्यकारिणी समितिके सदस्य थे इसलिये सदा उनका आना जाना संस्थामें बना रहता था। मैंने भी इसके अनुवादका बा० छोटेलालजीको वचन दे दिया था। कुछ दिन बाद मुझे संस्थाका कार्य छोड़ देना पड़ा इसलिये मुझे अपने वचनका कुछ भी स्मरण न रहा। सुना है जिन वाणी प्रचारक कार्यालयके मालिक भाई दुलीचंदजीको जै० ध० भू० ब्रह्मचारी श्रीशीतलप्रसादजीने आदेश किया था कि यह ग्रन्थ दुर्लभ और विद्वत्ता पूर्ण है अतएव शीघ्र प्रकाशनीय है। इससे उनकी इच्छा हुई कि यह ग्रन्थ हमारे कार्यालयसे प्रकाशित होना चाहिये अतएव उन्होंने बा० छोटेलालजीसे अनुरोधकर यह ग्रन्थ लेलिया एवं अनुवाद सहित प्रकाशित कर देनेकी बहुत शीघ्र चेष्टा की परन्तु उनकी चेष्टाका कुछ भी फल न निकला। एक दिन बा० छोटेलालजीकी बैठकमें मैं और दुलीचंदजी आदि बैठे थे। यह ग्रन्थ भी बा० छोटेलालजीके सामने मेजपर विराजमान था। मैंने पूछा कि यह क्या है! उत्तर मिला यह वृहद्विमलनाथपुराणजी हैं तीन मास बाद किसी विद्वानके यहांसे वापिस आया है कारण यह प्रमाणकोटिमें नहीं आ सकता। मैंने कहा मैंने इस ग्रन्थका नाम ही सुना है मुझे दीजिये मैं इसे पढ़ू। ग्रन्थ मुझे मिल गया और मैंने पढ़ा। इसकी ललित कविता देख मुझे बड़ा आनन्द हुआ और मेरे मुखसे उस समय उसकी बड़ी प्रशंसा निकली। भाई दुलीचंदजीको वह प्रशंसा सह्य न हुई उन्होंने कहा—कुछ विद्वान यह कहते हैं कि यह ग्रंथ महत्वपूर्ण नहीं नवीन होनेसे प्रमाणकोटिमें नहीं आ सकता इसीलिये इसका अनुवाद नहीं हुआ नहीं अबतक यह कभका छप जाता। मैंने कहा—आपने जो वचन कहे हैं कोई विद्वान उन वचनोंको नहीं कह सकता, क्योंकि इस ग्रन्थकी महत्ता इसकी मनोहारिणी कविता प्रगट कर रही है अस्तु मैं अवश्य इसका अनुवाद करूंगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कठिनता परिपूर्ण इस ग्रन्थके अनुवादमें मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ा तथापि इस महान ग्रन्थकी भक्तिके प्रसादमें एव परममित्र बा० छोटेलालजीके बार बार अनुरोधसे बड़ी कठिनतासे एक वर्षमें मैं इसे पूरा कर पाया हूं। इस विशाल ग्रन्थमें बहुतसी त्रुटियोंका रहजाना संभव है परन्तु अब उनका सुधार मेरी शक्तिके बाहिर है विद्वान लोग ही उनका परिमार्जन कर सकते हैं आशा है विद्वान लोग मेरी अज्ञतापर हंसी न प्रगट कर अपनी वास्तविक विद्वत्तापर दृढ़ रहेंगे।

स्थानीय दिगम्बर जैन पाठशालाके मन्त्री, बङ्गाल बिहार उड़ीसा दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटीके मन्त्री, लदनस्थ एसियाटिक सोसायटीके सदस्य आदि अनेक पदवियोंसे शोभित धनसमृद्ध मनीषी सतत उद्योगी दयालु प्रसन्नमुख कलकत्ता निवासी हम बा० छोटेलालजीके अत्यंत कृतज्ञ हैं कि जिन्होंने अनेक कष्ट सहकर इस ग्रंथको हस्तगत किया। हमें तथा जिनवाणी प्रचारक

कार्यालयके मालिक भाई दुलीचंदजीको उत्साहितकर इस ग्रन्थका सर्वसाधारणको रसास्वाद करनेका यह अवसर दिया एवं हमें हरएक प्रकारसे सहायता पहुंचाई अतएव हमारी आत्मा आपको यह आशीर्वाद देनेके लिये प्रस्तुत है कि दिनों दिन आपका धर्मप्रेम बढ़ता चला जाय और आप सुसंपन्न रूपसे चिरायु हों।

यह साधारण रूपसे देखनेमें आता है कि जब सरलसे सरल कार्योंमें भी अनेक त्रुटियां रह जाती हैं तब इस वृहद्विमलनाथ पुराण सरीखे कठिनतम और विशाल ग्रन्थमें तो हम सरीखे अज्ञोंद्वारा बहुत सी त्रुटियोंका रह जाना संभव है और अवश्य रहीं होगी अतः विद्वान महानुभावोंसे यह सविनय प्रार्थना है कि वे उन त्रुटियोंको परिमार्जन कर इस ग्रन्थका अध्ययन अध्यापन करें और हमें उनके लिये क्षमा प्रदान करें।

विनीत—गजाधरलाल जैन

प्रकाशकीय निवेदन।

पाठको। आज आपके सामने अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार श्री वृहद् विमलनाथ पुराण पूज्य ब्रह्म० कृष्णदासजी कृत रखता हूं ग्रन्थकी महत्त्वताके सम्बन्धमें अनुवादक महाशयने अपने विचार संक्षेपमें प्रकट कर दिये हैं अतएव पुनः दुहराना अनावश्यक प्रतीत होता है.

यह ग्रन्थ मुझे श्रद्धेय मित्रवर बा० छोटेलालजी जैन जो कि इतिहासके बड़े भारी प्रेमी हैं उनसे प्राप्त हुआ था। कापी मिलान करनेकी गरजसे कईएक भण्डारोंमें इसकी प्रति खोजी गयी परन्तु अभाव ही रहा अतएव ऐसे अप्राप्त प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रंथको प्रकाशित करनेका निश्चय किया। उक्त बा० सा०से इस कार्यालयको ऐसे २ महत्वपूर्ण ग्रंथ पूर्वमें भी मिले हैं तथा भविष्यमें भी मिलेंगे ऐसी हमें पूर्ण आशा है। इस महिती कृपाकेलिये हम आपके चिर कृतज्ञ हैं।

प्रकाशन शीघ्र ही हो जाय इसके लिये हमने पूर्ण चेष्टा की परन्तु ग्रंथका मूल इतना क्लिष्ट था कि पं०गजाधरलालजी न्यायतीर्थ जैसे प्रौढ़ विद्वान्को भी पूरे १२ महिना लग गये। पाठक ग्रंथको आद्योपान्त पढ़कर यह बात अनुभवसे जान सकेंगे कि ग्रन्थका मूल भाग कितना कठिन तथा भावपूर्ण है। अनुवादक महाशयने खूब ही सरलतापूर्ण भाषामें ग्रन्थका सम्पादन किया है पण्डितजी पहिलेसे ही इस कार्यालयपर अपना प्रेम रखते आये हैं इसलिये हमें भी पूर्ण विश्वास है कि आपके द्वारा इससे भी महत्वपूर्ण अप्राप्त ग्रन्थ हम शीघ्र ही ग्राहकोंको भेंट करगे।

ऐसा महत्वपूर्ण उपयोगी ग्रन्थ लागतमात्रमें दिया जाय तो इसका प्रचार बहुत हो सका है अतएव हमने पूज्य पिता श्रीमान् सिवई मूलचन्दजी, देवरी (सागर) निवासीको लिखा, हर्ष है कि उन्होंने लागतकी रकम स्वीकृत करते हुए वगैर व्याजके बिक जानेपर मूल रकम लौटानेकी आज्ञा प्रदान की। इसी कारण सिर्फ तीन रुपयामें ४०० पृष्टका महान ग्रन्थ दिया गया है। सहायता देनेवाले पूज्य पिताका चित्र भी ग्रन्थके साथ वितरण किया है।

मित्रवर छोटेलालजी का प्रारम्भसे ही यह मत था कि यह बहुमूल्य ग्रन्थ केवल लागत मात्रसे ही दिया जाय तथा स्थानीय समाजके निश्चयानुसार स्वर्गीय ब्रह्मचारी श्रीज्ञानानन्दजी (भूतपूर्व पं० उमरावसिंहजी न्यायतीर्थ) की स्मृति स्वरूप यह "ज्ञानानन्द माला" का प्रथम पुष्प स्वरूप प्रस्फुटित हो। जिस प्रकार पज्य ब्रह्मचारीजी सस्कृतके एक असामान्य विद्वान थे उसी प्रकार यह ग्रन्थराज भी असामान्य कोटिका है।

प्रकाशक।

त्यागी क्रोधजिद्दाननायकः ॥६३॥ गुरुत्वं किं मतं नृणामयाञ्चा परमोत्सवा। किं दारिद्र्यं महालोभो जीवितं किं यशस्विता ॥ ६४॥ को जागर्ति पुरुध्यानी का निद्रा जड़ता मता। नलिनीस्थजलैस्तुल्यं किं चलं यौवनं धनं ॥ ६५ ॥ शशलक्ष्मकराभाः के निंदारिक्तास्तु सज्जनाः। किं शुभ्रं ध्वन्यते मातः पारवश्यं सुपातिगं ॥ ६६ ॥ किं सुखं विद्यते चात्र सर्वसंगविवर्जितं। कोऽलंकारः शुभं शील' मंडनं

है। प्रश्न—संसारमें जीवन क्या है? उत्तर-यशस्वीपना-मनुष्य अपने आयुके अन्तमें नियमसे मर जाता है परन्तु उसका यश सदा काल ज्योंका त्यों बना रहता है। प्रश्न—संसारमें जागनेवाला कौन कहा जाता है? उत्तर जो महानुभाव परमध्यानी और संयमी हैं वही संसारमें जागनेवाला है। प्रश्न-संसारमें निद्रा क्या चीज है? उत्तर-मूर्खता--मूर्ख सदा सोता ही रहता है। प्रश्न-कमल के पत्र पर रक्खी हुई जलकी बूंदके समान चंचल पदार्थ संसारमें क्या है? उत्तर-यौवन और धन प्रश्न-शशाके समान लक्षणोंके धारक और उसके समान छिपे हुए हाथोंसे युक्त संसारमें कौन है? उत्तर—निन्दा रहित सज्जन अर्थात सज्जन पुरुष किसीकी भी निंदा नहीं करते और चुप रूपसे दूसरेका उपकार करते हैं-हल्लाकर किसीका उपकार नहीं करते। प्रश्न-माता! संसारमें साक्षात् नरक क्या माना जाता है? उत्तर--परतन्त्रता जो कि स्वतंत्रता रूप सुखसे सर्वथा रहित है। प्रश्न-संसारमें सुख क्या चीज है। उत्तर-समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे रहित रहना ही सुख है। प्रश्न-संसारमें भूषण क्या है? उत्तर-शुभ शील और सत्यता ही निश्चल और अद्वितीय भूषण है। कड़ा कुण्डल आदि भूषण भूषण नहीं माना जा सकता। प्रश्न—संसारमें मित्र कौन है? उत्तर-जो हितका शासन करनेवाला है। प्रश्न-कानोंसे रहितपना क्या है? उत्तर-शास्त्र के सुननेका अभाव-अर्थात् जो पुरुष आत्म हितकारी शास्त्र नहीं सुनता वह कानोंके रहते भी बधिर है। प्रश्न-संसारमें मरण क्या है? उत्तर---नाना प्रकारसे चित्तको संताप देनेवाली मूर्खता ही संसारमें मरण है। प्रश्न-संसारमें ध्यान करने योग्य पदार्थ क्या है? उत्तर—समस्त जीवोंको आनन्द प्रदान करने वाले

तत्त्वज्ञाः सर्वजंतुहितामताः । किं कर्तव्यं जवान्मातः संसृतेश्छेदनं ध्रुवं ॥ ५८ ॥ मोक्षभूरुहवीजं किं सम्यग्ज्ञानं च दर्शनं । किं पथ्यं विदुषा मत्र धर्मत्वं स्वर्गमोक्षदं ॥ ५९ ॥ कः शुचिर्मनसा शुद्धः पंडितः को विवेकवान् । किं विषं गुर्वसत्कारः किं सारं सुकुलं मतं ॥ ६० ॥ मदिरेव किमस्त्यत्र स्नेहः के शत्रवोऽशुभाः । विषया दुर्जया लोके प्राणिनां घातिनो भृशं ॥ ६१ ॥ किं निंद्यं याचनं लोके का मता विषवल्लरी । तृष्णा कस्माद्भयं मातर्मृत्युतः को विलोचनः ॥६२॥ रागी किं गहनं मातः! स्त्रीचरित्रं सुदुस्तरं । कः शूरो ललना-

होता है । प्रश्न—संसारमें सार पदार्थ क्या है ? उत्तर-उत्तम कुलका पाना । प्रश्न-संसारमें मदिरा किसे कहनी चाहिये ? उत्तर-स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बके साथ मोह रखना ही मदिरा है । प्रश्न-संसारमें बैरी कौन है ? उत्तर—अशुभ कर्म । प्रश्न—दुर्जय पदार्थ अर्थात् जिसका जीतना कठिन है ऐसा पदार्थ संसारमें कौन है ? उत्तर—इन्द्रियोंके विषय क्योंकि ये प्राणियोंके घात करनेवाले हैं इनके फंदमें पड़कर प्राणी अपना हित नहीं पहिचान सकता ॥ ५१--६० ॥

प्रश्न—संसारमें निंदित चीज क्या है ? उत्तर—किसी चीजका मागना—मांगनेके बराबर कोई भी निंदनीय चीज नहीं । प्रश्न—संसारमें विषकी वेल क्या है ? उत्तर—तृष्णा । प्रश्न—संसारमें डर किसका है ? उत्तर—मृत्युका । सारा संसार मृत्युसे घबड़ाता है । प्रश्न—संसारमें विलोचन—नेत्र रहित कौन है ? उत्तर—जो पुरुष रागी है । प्रश्न—जिसका जल्दी पता नहीं पाया जा सकता ऐसा संसारमें गहन पदार्थ क्या है ? उत्तर—स्त्रियोंका चरित्र अत्यन्त गहन है—विद्वानसे विद्वान भी उसका जल्दी पता नहीं पा सकता । प्रश्न—संसारमें सबसे शूरवीर कौन है ! उत्तर—जो पुरुष स्त्रियोंका त्यागी है वही शूरवीर है तथा जो क्रोधका त्यागी है और दानियोंमें प्रधान है वह भी शूरवीर है । प्रश्न—संसारमें सबसे गौरवकी बात क्या है ? उत्तर—आनन्द प्रदान करनेवाली आयाञ्चा अर्थात् किसीसे कुछ न मांगना यही अत्यन्त आनन्दकी बात है । प्रश्न—संसारमें दरिद्रता क्या कहलाती है । उत्तर—महा लोभपना जो पुरुष अत्यन्त लोभी है वही नितान्त दरिद्री

सत्यता ध्रुवं ॥ ६७ ॥ को मित्रं यो हितं शास्ति कोऽकर्णो मरणं च किं। सारंगश्रवणाभावो मूर्खता जन्मतापिनी ॥ ६८ ॥ को ध्येयो जगदानन्दी चिद्रूपो वृषभः प्रभुः। किं प्रधानं दयादानं यथाशक्तितपस्विता ॥ ६९ ॥ एवमादिमहाप्रश्नमालां कृत्वा पुनर्जगौ। निगूढार्थं वद त्वं भो जिनांब ! जिनगर्भतः ॥ ७० ॥ कायस्य त्वं फलं मातः किं कायस्याज्ञतां खलु। मामकीनं लसद्ध्यानं केवलज्ञानसूद्गमं ॥ ७१ ॥ (क्रियागुप्तमदः प्रश्नोत्तरजातिश्च) सर्वारातिसदोद्गारसहनैकसमप्रभः। उग्रो भाति दुराचारा च तिमिरैकतमोरिभः ॥ ७२ ॥

एवं चैतन्य स्वरूप भगवान ऋषभदेव। प्रश्न—संसारमें मुख्य चीज क्या है ? उत्तर—दया दान और यथा शक्ति तपस्विता ॥ ६१-६८ ॥ इत्यादि अनेक महागूढ़ प्रश्नोंत्तर हो चुकते थे तब कोई कोई देवांगना मातासे यह कहती थीं कि हे माता ! तुम भगवान जिनेन्द्रकी माता हो और इस समय भगवान जिनेन्द्र आपके गर्भमें विद्यमान हैं इसलिये आप हमारी पहेलीका अर्थ बतलाइये। एकने कहा :—

हे माता ! शरीरका फल क्या है ? और शरीरकी अज्ञानता बतलाने वाला कौन है ? आप कहें। उत्तर—केवल ज्ञानको उत्पन्न करानेवाला मेरा सुंदर ध्यान। अर्थात् उत्तम ध्यान करना ही शरीर धारण करने का फल है और उसीसे शरीरकी जड़ता जानी जाती है। (इस श्लोकमें 'कथय कहें' यह क्रिया गुप्त है और यह प्रश्न और उत्तर गर्भित है) हे माता इस दुस्तर संसारसे रक्षा करने वाला कौन है ? उत्तर—समस्त वैरियोंका सेनाके सहनेमें जो चक्रवर्तीके समान शोभायमान हैं। बलवान हैं। निंदित आचार रूपी अंधकारके नाश करनेके लिये जो सूर्यके समान हैं (यह चौकौण बंध श्लोक है) जो सम चक्रवर्त्ती और असम-दरिद्री दोनोंमें समान भावके रखनेवाले हैं चन्द्रमाके समान मुख वाले हैं। जिनका ज्ञान चैयन्य रूपकी प्रशंसा करनेवाला है एवं न जो अनादरको मानने वाले हैं और न आदरकी पर्वा करने वाले हैं वे ही इस संसारसे प्राणियोंका उद्धार कर सकते हैं अन्य नहीं। यह एक पाद कम यमकालङ्कार हैं। अर्थात् तीन पादोंमें यमक

(चतुरस्रबंधोऽयं श्लोकः) समासमसमः सौम्यसोमास्योऽसाम्यशंसिमः । अमानज्ञः सुमानज्ञः कोऽवति दुस्तराद्भवात् ॥ ७३ ॥ (एकपादोनयमकालंकारः) जिनगर्भप्रभावेन सर्वप्रश्नोत्तरं ददौ । सुज्ञानमुनिवन्माता देवीभिर्वादिता सती ॥ ७४ ॥ अपत्नीरूपसर्वापि पवनाधिकवेगवत् । लयि शिवकरं किं भो अलयि शुभ्रदं नृणां ॥ ७५ ॥ (अंतर्लापिका) गर्भभारवलीभङ्गो न जातो मातुरेव हि । गूढ गर्भत्वतो बाधा नाजायत कदाचन ॥ ७६ ॥ सुखशय्यासनं पानं रूपं गतिमती ततः । सुखनिद्राऽभवद्राज्ञ्याः पुण्यगर्भप्रसादनः ॥

है रक्त पादमें यमक नहीं ॥ ६६-७२ ॥ माता जयश्यामाके गर्भमें भगवान जिनेन्द्र थे इसलिये उनके प्रभावसे देवियोंने जो भी प्रश्न किये थे माताने उत्तम ज्ञानके धारक मुनिके समान समस्त प्रश्नोंका खुलासा रूपसे उत्तर दिया था ॥ ७३ ॥

गर्भ जैसा जैसा बढ़ता जाता है स्त्रियोंका उदर भी बढ़ता चला जाता है और उदर पर जो त्रिवली रहती है वह भी नष्ट हो जाती है परन्तु माता जयश्यामाका गर्भ यद्यपि दिनों दिन बढ़ता जाता था तथापि उनके उदरकी त्रिवली नष्ट नहीं हुई थी। उदर वैसाका वैसा ही विद्यमान था तथा माता जयश्यामाका गर्भ गुप्त था किसीको जान नहीं पड़ता था इसलिये गर्भके समय जिस प्रकार अन्य स्त्रियोंको अनेक प्रकार की वाधायें होतीं है उस प्रकार माता जयश्यामाको किसी समय कैसी भी वाधा न थी ॥७४-७५॥ स्वयं भगवान जिनेन्द्रके अवतरणके कारण माता जयश्यामा का गर्भ अत्यंत पवित्र था इसलिये उस पवित्र गर्भके प्रसादसे माता जयश्यामाको सोनेमें सुख मिलता था। रुचि पूर्वक वह भोजन और जल ग्रहण करती थीं उसकी मनोहर चाल थी। बुद्धि सदा निर्मल रहा करती थी एवं वह सुखनींद सोती थीं ॥ ७६ ॥ क्रमसे जब गर्भके मास पूरे हो गये उस समय माता जयश्यामाने माघ सुदि चौथके दिन जब कि उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र था सुख पूर्वक भगवान जिनेंद्रको जना। वालक रूप भगवान जिनेंद्र तेजके पुंज स्वरूप एवं आकाशमें वे भगवान सूर्य थे। मति ज्ञान श्रुत ज्ञान और अवधिज्ञान रूप तीन ज्ञानके धारक थे। तीनों

७७ ॥ क्रमेण पूर्णमासांतेऽजीजनन्नन्दनं सुखं । तेजः पुंजं नभोरत्नं कुलाकाश इवापरं ॥ ७८ ॥ माघमासे सिते पक्षे चतुर्थ्यां गर्भभेजिनं । त्रिबोधं त्रिजगन्नाथं जयश्यामा सुलक्षणं ॥ ७९ ॥ (युग्मं) स्वर्गे घंटारवो जातः सिंहनादश्च ज्योतिषि । व्यंतरेष्वारवो भेर्या शंखशब्दो हि भावने ॥ ८० ॥ लक्षणैर्लेक्षितं जन्म विमलस्य सुरेश्वरैः । यदा तदा सुराः सर्वेऽभिषेकार्थं समुत्सुकाः ॥ ८१ ॥ शक्राज्ञया धनाधीशो गजं चैरावताभिधं लक्षैक योजनप्रायं शतास्यं निर्ममे मुदा ॥ ८२ ॥ प्रत्यास्यं रदना अष्टौ प्रतिदंतं सरोवरं । सरोवरं प्रति प्रोक्ता नलिन्यः पंचविंशतिः ॥ ८३ ॥ प्रत्येकनलिनीबाढं पंकजद्विशती मता । पंचविंशतिसंमिश्रा तत्प्रत्यष्टशतं दलं ॥ ८४ ॥

लोकके स्वामी थे और सुंदर लक्षणोंसे शोभायमान थे ॥ ७७।७८ ॥ जिस समय भगवान जिनेंद्र उत्पन्न हुए उस समय स्वर्गमें घटानाद होने लगा । ज्योतिषियोंके घरोंमें सिंहनाद होने लगा । व्यन्तरोंके घरोंमें भेरी बजने लगी और भवनवासियोंके घरोंमें शंखनाद होने लगा ॥ ७९ ॥ जिस समय घंटानाद आदि चिह्नोंसे देवोंके ईंद्रोंको भगवान विमलनाथके जन्मका पता लगा उन्हें बड़ा आनन्द हुआ एवं सबके सब उनके अभिषेकके लिये उत्सुक होगये ॥ ८० ॥ उस समय कुबेरने अपने स्वामी इन्द्रकी आज्ञासे ऐरावत नामके हाथीका निर्माण किया जो हाथी एक लाख योजनका चौड़ा और सौ मुखोंसे शोभायमान रहता है ॥ ८१ ॥ हाथीके प्रत्येक मुखसे आठ आठ दांत रचे गये प्रत्येक दांत पर एक एक सरोवर रचा गया । हर एक सरोवरमें पच्चीस पच्चीस कमलिनी (कमलोंको बेलें) प्रत्येक कमलिनीमें दो सौ पच्चीस पच्चीस कमल और प्रत्येक कमलके सौ सौ दल (पत्ते) रचे गये एवं प्रत्येक फूलपर एक एक देवांगना सानंद नृत्य करती चली जाती थीं ऐसी रचना की गई । तथा ऐरावत हाथीके कुक्षिभागमें तेतीस सभाओंकी रचना की गई । जो कि महा मनोहर थी और हर एकमें तेतीस तेतीस करोड़ देव निवास करते थे । इस प्रकार अद्भुत रचनाके धारक ऐरावत हाथीपर प्रथम स्वर्ग सौधर्म इंद्र बड़े समारोहसे सवार हो लिया ॥८२।८४॥ वह धर्मात्मा सौधर्म स्वर्गका इन्द्र अपनी प्यारी इंद्राणी और देवोंके साथ भक्ति भावसे स्वर्गसे कं-

कूलं प्रत्येकरंभा च नर्नृत्यति लयैर्मुदा । गजकुक्षिं प्रतिप्रोक्तास्त्रयस्त्रिंशत्सभाः शुभाः ॥ ८५ ॥ सभां प्रति समाख्याता स्तावंतोऽमर कोटयः । इत्यादिरचनोपेतमारुरोह गजं सुरेट् ॥ ८६ ॥ सौधर्मेंद्रः शचीयुक्तो देव व्रातपुरस्सरः । निर्ययौ स्वर्गतो भावाद्भावो हि सज्ज न प्रियः ॥ ८७ ॥ अतरिक्षे व्यवस्थाप्य सिंधुरं तारकप्रभं । अब्रवीद्भामिनीमिंद्रश्चानय त्वं गृहाज्जिनं ॥ ८८ ॥ अरिष्टांतर मागत्य तदा देवेशसुन्दरी । शंवरीममुचद्राज्ञाः, नीत्वा बालं करेऽनमत् ॥ ८९ ॥ इन्द्रहस्ते शचीबालं गत्वा दत्तवती यदा । सूर्यं नु तेजसां पुंजं

पिलाकी ओर चल दिया । ठीक ही हैं जो सज्जन हैं-आत्माका वास्तविक स्वरूप समझते हैं उन्हे अपने उत्तम परिणाम ही प्यारे हैं वे धार्मिक कार्यको दिखावटी रूपसे नहीं करना चाहते ॥ ८५ ॥ तारा गणकी कांतिके समान सफेद उस ऐरावत हाथीको कंपिला नगरीके ऊपरके आकाशमें ठहरा दिया और भगवान जिनेंद्रको राजमहलसे लानेके लिये अपनी प्यारी इंद्राणीको आज्ञा दी ॥८६॥ धर्मात्मा उस इंद्राणीने बड़े आनंदसे भगवान जिनेंद्रके गर्भ गृहमें प्रवेश किया । माया मयी निद्रासे माता जयश्यामाको निंद्रित कर दिया । बालक भगवान जिनेंद्रको उठाकर अपने हाथमें ले लिया । भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं अपने प्राणनाथ इंद्रके हाथमें लाकर समर्पण कर दिया जिस समय इंद्राणीने भगवान जिनेंद्रको इंद्रके हाथमें समर्पण किया उनकी सर्वोच्च और अद्वितीय कांति निहार कर वह विचारने लगा कि :—

यह साक्षात् सूर्यही मेरे हाथपर आकर रख गया है किंवा अनेक तेजोंका यह एक अद्वितीय पुंज है । बड़े आनंदसे उसने उसी समय भगवान जिनेंद्रको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं जिनकी असंख्याते देव बड़े प्रेमसे सेवा करने वाले थे ऐसे उन बालक भगवान जिनेंद्रको गोदी में विराजमान कर वह बड़े समारोहके साथ मेरु पर्वतकी ओर चल दिया ।

मेरुपर्वत पर सौमनस आदि चार वनोंमेंसे एक पांडुक नामका वन है जो कि नाना प्रकारकी चित्र विचित्र शोभाओंसे व्याप्त है । उसी पांडुक वनके अन्दर एक पाण्डुक नामकी शिला है जो

चिंतयित्वा ननाम सः ॥ ६० ॥ नीत्वा जिनं गतो मेरावसंख्यसुरसेवितं । पाण्डुकाख्यं वनं तत्र नानाशोभाभराचितं ॥६१॥ पांडुकाख्या शिला तत्र भाति मुक्तिरिवापरा । अर्धचंद्राकृतीरम्या दीर्घा सा शतयोजनैः ॥ ६२ ॥ पंचाशद्योजनैर्दैर्वविस्तराच तथाष्टभिः । स्थूलयो जनकैस्तत्र सिंहासनत्रय व्यभात ॥ ६३ ॥ संस्थाप्य प्राङ्मुखं देवं सौधर्मेंद्रःस्थितस्ततः । क्षीरवार्धिजलं नेतुं देवान् प्रेरयतिस्म सः ॥ ६४ ॥ अष्ट योजन गंभीरान् सहस्रप्रमितान् घटान् । अष्टाधिकान् महारत्नविन्यासान् कनकात्मकान् ॥ ६५ ॥ संयोज्य गगने देवा मुद

कि दूसरी मोक्ष सरीखी शोभायमान जान पड़ती है । आधे चन्द्रमाके आकारको धारण करनेवाली है । अत्यंत मनोहर है । सौ योजन प्रमाण लंबी पचास योजन प्रमाण चौड़ी और आठ योजन प्रमाण मोटी है और उसके ठीक मध्यभागमें महामनोहर तीन सिंहासन विराजमान हैं । सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने पूर्व दिशाकी ओर मुखकर भगवान जिनेंद्रको उस मनोहर सिंहासनपर विराजमान कर दिया और चीर समुद्रसे जल लानेके लिये देवोंको आज्ञा दी ॥ ८७ । ९२ ॥ अपने स्वामीकी आज्ञानुसार देवोंने कलशे उठाये जो कि आठ योजन प्रमाण गहरे थे । संख्यामें एक हजार आठ थे । नाना प्रकारके देदीप्यमान रत्नोंसे खचित थे और सुवर्णमयी थे ॥ ९३ ॥ हे भगवान जिनेंद्र ! आप चिरकाल जीओ इत्यादि जय जयकार करने वाले देव पंक्तिरूपसे आकाशमें खड़े हो गये । एवं जिनेंद्रकी भक्तिसे प्रेरित हो चीर समुद्रके जलसे भरे हुये घड़े आने लगे ॥ ९४ ॥ भगवान जिनेंद्रकी भक्तिसे हर्षायमान गुणरूप सौधर्मस्वर्गके इन्द्रने शीघ्र ही मायामयी हजार भुजाओं की रचना कर ली और उन भुजाओंसे सुवर्णमयी कुम्भोंको ले लेकर बड़े आदरसे भगवान जिनेंद्रका अभिषेक करने लगा ॥ ९५ ॥ जिससमय भगवान जिनेंद्रका अभिषेक होने लगा उस समय तरंगोंसे शोभायमान जल मेरुके चारों ओर पड़ने लगा । जलकी वैसी दशा देख कर देवोंको यह संदेह उत्पन्न होता था कि करोड़ों नदियां मेरु पर्वतसे निकल पड़ीं हैं । नानाप्रकार के देदीप्यमान रत्नोंसे व्याप्त मेरु पर्वतपर फैला हुआ वह हरा नीला आदि पांचों वर्णोंको धारण

जंयरवाकुलाः । आजग्मुः संघशास्तत्र जिनभक्तिप्रणोदिताः ॥ ९६ ॥ शक्रो बाहुसहस्रं कं चकार गुणगौरवः । धृत्वा कुम्भान् विभुं शक्रः स्नपयामास सादरं ॥ ९७ ॥ अभितो मेरुशैलेशं जलकल्लोलराजयः । बभानश्च देवानां सरितः कोटिशः किमु ॥ ९८ ॥ पंचवर्ण पर्यस्तत्र दृश्यते मेरुसत्तटे । कुत्रचित्त्रुटिता धारा लक्ष्यते रत्नदीप्तिभिः ॥ ९९॥ मयूरा युगपत्तत्र (चु) कूजुर्घनसमागमं । जलरावमिति जात्वा हंससारसमिश्रिताः ॥ १०० ॥ इतरेऽष्टघटैः कृत्वा मावर्यंनिस्म भावनां । ततः शक्रप्रिया चक्रे प्रसाधनविधिं मुदा ॥ १०१ ॥ सच्छिद्रौ श्रवणौ यस्य स्यातां वज्रशरीरतः । कर्णवेधोपचारं च चकारेंद्रस्तथापि च ॥ १०२ ॥ किरीटकुण्डलैस्त्वैर्मेखला कटकांगदैः

करता था एवं कहीं कहींपर रत्नोंकी कांतिसे उसकी धारायें टूटी हुईं नजर पड़ती थीं ॥ ९७ ॥

भगवान जिनेंद्रके मस्तक पर कुम्भ ढारते समय जो जलका घघकार शब्द होता था उसे मोर हंस और स्याल नामके पत्ती मेघका शब्द मानकर एवं उस समयको वर्षा ऋतु समझकर अपने अपने मनोहर शब्दोंसे आकाशको व्याप्त करते थे ॥ ९८ ॥ एक हजार आठ कलसोंमें से हजार कलसोंसे तो स्वयं इंद्र भगवान जिनेंद्रका अभिषेक करता था तथा शेष देवगण बाकी बचे आठ घड़ोंसे उस अभिषेक को करते और मनमें उनकी भावना भाते थे। जिस समय भगवान जिनेन्द्रका अभिषेक समाप्त हो गया सौधर्म इंद्रकी इंद्राणीने उबटन आदि कर भगवान जिनेंद्रको सजाना प्रारम्भ कर दिया ॥ ९९ ॥ भगवानके वज्रमयी शरीरमें पहिलेसे ही दोनों कान छिदे थे तथापि अन्य बालकों का कर्ण वेध [कानोंका छिदना] संस्कार होता है इस लिये इंद्रने उपचारसे भगवान जिनेंद्र का बड़े ठाट बाटसे कर्णवेध उत्सव मनाया ॥ १०० ॥ महा मनोहर मुकुट] कुण्डल करधनी कड़े और बाजूबंध भगवानको पहिनाये एवं स्वर्गीय होनेवाले नाना प्रकारके मनोज्ञ वस्त्र पहिनाकर भगवान जिनेन्द्रको शोभायमान कर दिया ॥ १०१ ॥ इन्द्रने भगवान जिनेन्द्र का विमलवाहन नाम रक्खा एवं उष्ट्रासन (ऊट जिस प्रकार बैठता है उस आसनसे बैठकर) भक्तिसे गद्गद हो भगवान जिनेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

नानाल्नर्गलमुद्भूतैः पट्टकूलैरभूपयत् ॥ १०३ ॥ नाम्ना वज्री चकारैनं जिनं विमलवाहनं । उच्चासन समासीनः स्तुतिं कर्तुं समुद्यतः ॥ १०४ ॥ त्वं देव जगतां नाथ स्त्वं ज्ञानी गुणसागरः । धर्ममूर्तिर्जितारिस्त्वं त्वं दाता शिवशर्मणः ॥१०५॥ ज्योतीरूपः सदानंदी सनातन महानिधिः । अज्ञानध्वांतमित्राभो मुक्तिस्त्रीवल्लभस्त्वकं ॥ १०६ ॥ योगिनामप्यचिंत्यस्त्व मव्ययो भय वर्जितः । एकानेकत्वमापन्नः स्याद्वादी सर्ववंदितः ॥ १०७ । त्रिज्ञानी गर्भमात्रस्थः सुरासुर नमस्कृतः । भव्यौषधिकलापस्त्वं ध्यानी दानी दयामयः ॥ १०८ ॥ क्रियते

भगवन् ! आप तीनों लोकके स्वामी है। निर्मल ज्ञानके धारक हैं। उत्तमोत्तम गुणोंके समुद्र हैं। धर्मकी साक्षात् मूर्ति हैं। राग द्वेष आदि समस्त वेरियोंके जीतने वाले हें मोक्ष रूपी सर्वोच्च कल्याणके दाता हैं परम कांतिके धारक हैं। सदाकाल आनन्दित रहने वाले हैं। सर्वदा रहनेवाली ज्ञान आदि महानिधिके स्वामी हैं। अज्ञान रूपी अंधकारके नाश करनेके लिये सूर्यके समान हैं। मोक्ष रूपी लोकोत्तर सुन्दरीके प्यारे हैं ॥ १०६ ॥ प्रभो ! आप इतने इतने अपरिमित और अगम्य गुणोंके भण्डार हैं कि निरन्तर आत्माके स्वरूपके चिंतवन करने वाले योगी भी आपके स्वरूपका विचार नहीं कर सकते। आप विनाश रहित अविनाशी हैं। किसीका भी आपको भय नहीं इसलिये आप भय रहित हैं। आप एक स्वरूप भी हैं और अनेक स्वरूप भी हैं। अर्थात् आत्म स्वरूपकी अपेक्षा एक रहने पर भी अनेक गुणोंकी अपेक्षा आप अनेक स्वरुप है। स्याद्वाद विद्या (अनेकांतवाद) के आप पारगामी हें। समस्त जगत आपको पूजता है। मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तीनों ज्ञानोंके धारक हैं। जिस समय आप गर्भके अन्दर विराजते थे उस समय भी सुर असुर आपको नमस्कार करते थे। भव्योंके लिये आप संसाररूपी रोगके नाश करनेके लिये पवित्र औषध स्वरूप हैं। ध्यानी हैं। दानी हें और दया स्वरूप हैं। प्रभो ! समस्त आकाश तो कागज बनाया जाय। जलसे व्याप्त जितने भर समुद्र हैं उन सबके जलको स्याही बनाया जाय। मेरु पर्वतको कलम बनाया जाय और उच्च विद्याके विधान देवोंके इंद्र

कागरं नाथ नभः सर्वेऽपि सागराः। मषीभूता जलाकीर्णा लेखिनी मेरुपर्वतः॥ १०६॥ भारती कविदेवेंद्रा लिखंति त्वद्गुणान् सदा।
न पारयंति ते नूनं प्रांतपर्यंत तत्पराः॥ ११०॥ अभिष्टुत्येव सानंदो देवेंद्रो जयमुच्चरन्। गजारूढं जिनं कृत्वा पफाण पत्तनं प्रति॥
१११॥ जयध्वानैः सुरैः सद्मप्रांगणं व्यापितं भृशं। गर्जद्दुंदुभिनाकाशो प्रोच्यते किं यशोऽर्हतः॥ ११२॥ विष्टरेऽथ समारोप्य जिन-
तातं च मातरं। अभिषिच्य ददातिस्म बालं विमलवाहनं॥ ११३॥ शक्रेण कुण्डलीभूताः कृता देवाप्सरोगणाः। सर्वतो ननृतंत्येव लये

हर एक जगह बैठकर आपके गुणोंको लिखनेवाले बनाये जाय तो भी वे आपके गुणोंके लिखनेमें समर्थ नहीं हो सकते बस इस प्रकार सौधर्म स्वर्गके इंद्रने भगवान विमलनाथकी स्तुतिको एवं जय जयकार शब्दके साथ उन्हें ऐरावत हाथीपर सवार कर बड़े समारोहसे कंपिला नगरीकी ओर चल दिया॥ १०७—१११॥ कंपिला नगरीमें आकर राजा कृतवर्माका आंगन देवोंके जय जयकार शब्द और बजते हुए नगाड़ोंके शब्दोंसे व्याप्त हो गया ठीक है त्रिलोकी भगवानकी प्रचण्ड कीर्तिके विषयमें क्या कहा जा सकता है॥ ११२॥ सौधर्म स्वर्गके इंद्रने आंगनके मध्य भागमें भगवानके माता और पिताको एक मनोज्ञ सिंहासन पर विराजमान किया। सुगंधित जलसे उनका अभिषेक किया और भगवान विमलनाथको उन्हे सौंप दिया॥ ११३॥ इंद्रने अनेक देवांगनाओंको कुण्ड-लाकार खड़ा किया एवं वे विशेष भाव और लयोंके साथ अनेक प्रकारके नृत्य करने लगीं उस समय भगवानके जन्मोत्सवके उपलक्षमें ताल और स्वरोंके साथ विशेष विशेष गाने होने लगे आनन्द मयी बाजे बजने लगे। जिसमें अनेक प्रकारकी ढारें दीख पड़ती हैं। मिलना बिछुड़ना रूप हाव भाव दीख पड़ते थे। अनेक प्रकारके नाटकोंके कार्य नजर पड़ते हैं। फिरना आदि दीख नहीं पड़ता रत्न जड़ित बांसरियोंके रस भरे राग युक्त होते हैं एवं मनको प्यारे महा रागोंकी जहां पर उत्पत्ति है ऐसे उस आनन्द नाटकको देवोंने किया॥ ११४—११६॥ भगवान विमलनाथके माता पिताको देवोंने नाना प्रकारके भूषण और वस्त्रोंसे शोभायमान किया। आप पवित्र हैं बड़े

भांवे विशेषतः ॥ ११४॥ जन्मोत्सव महागानैस्तालैरानकवादनैः । ढालैर्मिलनकैर्हावै र्नानानाटक जातिभिः ॥ ११५ ॥ अद्दृष्टभ्रमणैर्भू यो-रत्नवंशरसैः रसैः । अनुकूलैर्महारागैश्चक्रुरानंदनाटकं ॥ ११६ ॥ ततौ भूपणसद्वस्त्रै भूंषयित्वा प्रपूज्य च । धन्यौ पुण्याविति स्तुत्य पितरौ देवचर्चितौ ॥ ११७ ॥ वयो योग्यान्सुरांस्तत्र नियोज्यामरसेवितः । यथायथं सुराः स्थानं पुरुहूतोऽगमत्तदा ॥ ११८ ॥ अथ राजा चकारोच्चैर्जन्मजात महोत्सवं । पुरं शृंगारयामास पताका तोरणालिभिः ॥ ११९ ॥ ददौ राजा परं दान हेमरत्न सुमिश्रितं । स्वीयं जन्म शुभं मन्ये मुत्प्रदो हि सुतोत्सवः ॥ १२० ॥ दुंदुभीरारटीतिस्म घेनुः स्वानकराशयः । वंदिनोऽविरदायंत बभूवुः शंखसद्रवा ॥ १२१ ॥ झणझलरिकारावा रेजुः पटहराजयः । ननृतंतिस्म नर्तक्यो भूम्ना किं वर्ण्यते मया ॥ १२२ ॥ एधतेस्म सुखं बालो द्वितीया

बड़े देव आपकी पूजा करने वाले हैं इसलिये आप धन्य हैं इस प्रकार उनकी बड़े प्रेमसे स्तुतिकी ॥११७॥ इंद्रने भगवानकी ही उम्रके देवोंकी उनके साथ खेलनेके लिये योजना करदी। अनेक देवोंसे वेष्ठित वह अपने स्थान पर लौट गया एवं अन्य देव भी अपने अपने स्थानों पर चले गये॥ ११८

इस प्रकार देवोंके द्वारा जिनेन्द्र भगवानके जन्मोत्सवके किये जानेके बाद राजा कृतवर्माने भ[illegible] उनका जन्ममहोत्सव मनाया। पताका और तोरणोंकी पक्तियोंसे उसने सारा नगर सजवा दिय ॥ ११९ ॥ बहुतसे स्वर्ण और रत्न दानमें दिये और भगवान जिनेन्द्रकी उत्पत्तिसे अपने जन्मको धन्य समझा। ठीक ही है पुत्रकी उत्पत्ति विशेष हर्षको करने वाली होती है ॥ १२० ॥ उस समय भगवान जिनेन्द्रके जन्मोत्सवके उपलक्षमें दुन्दुभी बाजे बजने लगे। नगाड़ोंके शब्द होने लगे। वंदीगण विरद बखानने लगे। शंखोंके मनोहर शब्द होने लगे। झालरी और पटह जातिके बाजोंके मनोहर शब्द सुने जाने लगे एवं नाचनेवाली आनन्द नाच नाचने लगीं विशेष क्या उस समयकी विभूतिका वर्णन करना शक्तिके बाहिर है ॥ १२१ । १२२ ॥

जिस प्रकार द्वितीया का चन्द्रमा दिनों दिन बढ़ता चला जाता है। उसी प्रकार बालक रूप भगवान विमलनाथ दिनों दिन सुख पूर्वक बढ़ने लगे एवं महा मनोहर भांति भांतिके रूप धारण कर देवगण उन्हें हंसाने खिलाने लगे ॥ १२३ ॥ भगवान वासुपूज्यका तीस सागर प्रमाण तीर्थकाल

सोमवरारां । रमयंतिस्म देवौघा नानारूपैर्मनोहरैः ॥ १२३ ॥ वासुपूज्येशसंताने त्रिंशत्सागर संमिते । प्रांतपल्योपमे धर्मध्वंसे तद्गत जीवितः ॥ १२४ ॥ तस्यायुः षष्टिलक्षणां वर्षाणां संवभूव च (६००००००) षष्टिचापतनूत्सेधस्ततजांबूनद प्रभः ॥ १२५ ॥ खपंचकें द्वियैकाब्दकौमार विरतो महान् । प्राप्तराज्याभिषेकोऽभूत्प्रतापाक्रांतविष्टपः ॥ १२६ ॥ पद्मा सहचरी जाता सहोत्पन्ना सरस्वती । प्रतापधीरवीरत्वं तस्याभूत्पुण्यतोऽखिलं ॥ १२७॥ सत्यादयो गुणा यस्य चैधंतांभोधिरंगवत् । योगिनामपि संश्लाघ्या कीर्तिकाष्टांत गता ॥ १२८ ॥ ये नमंति सुराः सर्वे नरेंद्राः खेचरास्तथा । धरेशा हरय स्तस्य भुवं का वर्णना परा ॥ १२९ ॥ त्रिंशल्लक्षप्रमाणानां समाना राज्यकालता । तस्याभूत् काश्यपीनाथैः पूज्यपादस्य सद्धियः ॥ १३० ॥ नानाभोगान् भुनक्तिस्म षड्ऋतुसंभवान् परान् ।

जब बीत चुका था एवं एक पल्योपम काल पर्यन्त धर्मका ध्वंस हो चुका था । उस समय भगवान विमलनाथका जन्म हुआ था । इन भगवान विमलनाथकी आयु साठलाख वर्ष प्रमाण थी । साठि धनुष प्रमाण शरीरकी उंचाई थी एवं उस शरीरकी प्रभा सोनेकी प्रभा जैसी थी ॥ १२४ । १२५ ॥ भगवान विमलनाथके कुमार कालके १५०००००० पन्द्रह लाख वर्ष जब बीत गये उस समय उनका राज्याभिषेक हुआ एवं अपने अद्वितीय प्रतापसे उन्होंने समस्त जगतको वश कर डाला ॥ १२६ ॥ भगवान विमलनाथकी पटरानीका नाम पद्मा था एवं वह साथ उत्पन्न होने वाली सरस्वती देवी सरीखी जान पड़ती थी । भगवान विमलनाथको तीव्र पुण्यके उदयसे प्रतापसे एवं धीरवीरता सभी बातें प्राप्त थीं ॥ १२७ ॥ जिस प्रकार समुद्रकी तरंगे प्रति क्षण बढ़ती चलीं जातीं हैं उसी प्रकार भगवान जिनेंद्रके अन्दर सत्य आदि गुण निरन्तर बढ़ते चले जाते थे । संसारकी समस्त वासनाओं से सर्वथा वहिर्भूत बड़े बड़े योगी भी उनकी कीर्तिकी सराहना और प्रशंसा करते थे एवं समस्त दिशाओंमें वह व्याप्त थी ॥ १२८ ॥ विशेष क्या जिस भगवान विमलनाथको बड़े बड़े देव राजा विद्याधर चक्रवर्ती और अर्ध चक्री भी मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं उनके विषयमें जो भी वर्णन किया जाय थोड़ा है ॥ १२९ । १३० ॥ अनेक बड़े बड़े राजा जिनके चरण कमलोंकी सानन्द पूजा

माणां हावभावैश्च सार्थकान् चुम्बनादिभिः ॥१३१॥ भोगक्षीराब्धिनिर्मग्नो गतं कालं न वेत्यमौ। भूमिन सौख्ये हि मर्त्यानां युगां तोऽपि लवायते ॥ १३२ ॥ हरिकरि भरशालिप्राज्यराज्यं नृपेज्य—मयगनवदरामाभोग संदोहदक्षं। मफल सुख समुद्रं पञ्चयालिंगितं ॥ हांरविव सुरलोके लोकनाथो बुभोज ॥ १३३ ॥ कीर्ति भूरिकमलासुतभामा—स्वकवर्तिहरिरामपदत्व। भोगभूमिसुरलोकसुखं मत्र दौलभं भवति किं वृषतो न ॥ १३४ ॥

इत्यार्षश्रीविमलनाथ पुराणे भट्टारकश्रीरत्नभूषणाम्नायालंकारब्रह्मकृष्णदास विरचिते ब्रह्मश्रीमंगलदाससाहाय्यसापेक्षे श्रीविमलनाथोत्पत्तिशक्र विहिताभिषेकानंदनाटकवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३.॥

करते हैं और जो उत्तम ज्ञानके धारक हैं ऐसे भगवान विमलनाथका राज्य काल तीस लाख वर्ष प्रमाण था ॥ १३१ ॥ वे भगवान विमलनाथ स्त्रियोंके हाव भाव और चुम्बन आदिसे सार्थक छहो ऋतुओंमें होनेवाले नाना प्रकारके भोगोंका आनन्द भोगते थे। भोग रूपी क्षीर समुद्रमें मग्न वे भगवान विमलनाथ अपनी आयुके गए हुए विशाल भी कालको नहीं जानते थे ठीक ही है जब मनुष्य विशेष सुखमें मग्न होजाते हैं उस समय उन्हे विशाल भी युगांतकाल लव—छोटेसे कालके टुकड़ेके समान जान पड़ता है ॥ १३२—१३३॥ जिस प्रकार सदा लक्ष्मीसे आलिङ्गित कृष्ण स्वर्ग लोकका सुख भोगते रहते हैं उसी प्रकार जो अनेक हाथी और घोड़ोंसे शोभायमान हैं। राजाओंके अभीष्ट हैं। पुण्यसे प्राप्त उत्तमोत्तम स्त्रियोंके भोगोंको प्रदान करने वाला है एवं समस्त सुखका समुद्र है। ऐसे उस उत्तम राज्यको भगवान विमलनाथने सानन्द भोगा संसारमें धर्म एक उत्तम पदार्थ है क्योंकि उसीकी कृपासे यश विशेष लक्ष्मी पुत्र सुन्दर स्त्रियां चक्रवर्तीपना अर्ध चक्रीपना बलभद्र पदवी भोग भूमि का सुख और स्वर्गोंका सुख सुलभ रूपसे प्राप्त हो जाता है। धर्मकी कृपासे कोई भी बात दुर्लभ नहीं ॥ १३४ ॥

इस प्रकार भट्टारक श्रीरत्नभूषणकी आम्नायमें ब्रह्म मंगलदासकी सहायता पूर्वक ब्रह्मकृष्णदास द्वारा विरचित विमलनाथ पुराणमें भगवान विमलनाथकी उत्पत्ति इंद्र द्वारा उनका जन्म कल्याण और आनन्द नाटकको वर्णन करने वाला तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग ।

युगादिभवमादीशं शर्मणे शिवदं शिवं ।। वंदेहं कोटिराजामं सौम्यत्वाज्जगतां पतिं ॥ १॥ अथैकदा नराधीशो सैन्ययुको वन गत. हिमंते रममाणः सन् कौतुकं दृष्टवानिति ॥ २ ॥ हिमानीं च महाशुभ्रां चंद्रकुंदसमप्रभां । जलाशये ददर्शासौ चित्त सौख्याकर प्रदां ॥

जो भगवान आदिनाथ युगको आदिमें होनेवाले हैं । मोक्ष कल्याणको प्रदान करनेवाले हैं । स्वयं कल्याण स्वरूप हैं । अत्यंत सौम्य होनेसे करोड़ों चन्द्रमाको कांतिको धारण करने वाले हैं और समस्त जगतके स्वामो हैं उन भगवान आदिनाथको मैं अपने कल्याणके निमित्त भक्ति-पूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ एक दिनकी बात है कि शरद ऋतुके अन्दर वे नरनाथ भगवान विमलनाथ अपनी सेनासे वेष्टित हो एक विशाल वनमें प्रवेश कर गये और वहां अनेक प्रकारकी क्रीड़ायें करने लगे । सामने एक तालावमें उन्हें हिमानी—बरफका समूह दीख पडा जो कि देखते ही अत्यंत कौतूहलका करने वाला था सफेद था चंद्रमा और कुन्दपुष्पकी प्रभाका धारक था और चित्तको अत्यंत आनंद प्रदान करने वाला था ॥ २ । ३ ॥ वे उसे बड़ी आनन्दमयी दृष्टिसे देख रहे थे कि वह देखते देखते पिघल गया बस उधर तो वह पिघला और इधर भगवान विमलनाथ-के चित्तमें एकदम संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया वे अपने मनमें इसप्रकार वैराग्य भावना भाने लगे कि—

जिसप्रकार यह बरफका समूह देखते देखते पिघल कर नष्ट हो गया है उसी प्रकार संसारकी जितनी भी चीजें है अपना अपना काल पाकर सभी नष्ट होने वाली हैं यह जो मेरे साथ विशाल सेना है इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं । अनेक शुभलक्षणोंका धारक यह शरीर भी मेरा हितकारी

३ ॥ तदैव तां गतां भंगं दृष्ट्वा राजा स्वमानसे । चिंतयामास वैराग्यं सर्वं कालेन नश्यति ॥ ४ ॥ किं बलेनामुना भूम्ना किं लक्ष्म्या नृपुषापि च । किं कुटुम्ब सुतस्त्रीभिः कृत्यं मम हि संप्रति ॥ ५ ॥ विद्युदुन्मेषसंकाश यौवनं च धनं वपुः । विद्यते क्षणिकं सर्वं हिमानीव न संशयः ॥ ६ ॥ पितृपापं भुनक्त्येव सुपुत्रोऽपि न जातु चित् । पुत्रकृतैनसो भागी सवित्री जनकश्च न ॥ ७ ॥ स्वं स्वं कर्म कृतं प्राणी भुनक्ति श्वभ्रसागरे । संसारे दुःख सौख्यस्य विभागी को न विद्यते ॥ ८ ॥ भागत्रयात्मकं चायुर्गतं मम निरर्थकं । चतुःशाद्विनद्धर्माद्विनाहो जीवितेन किं ॥ ९ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाश्च नासाधिपत यैरलं । ख्याति ख्याति प्रशंसाश्च नाश्वंसि ते वृथाजनाः ॥ १० ॥

नहीं कुटुम्ब पुत्र स्त्री पदार्थ भी जो कि अत्यंत प्यारे माने जाते हैं उनसे भी मेरा कोई प्रयोजन नहीं सर सकता क्योंकि काल पाकर ये सब नष्ट होने वाले हैं सदा काल मेरे साथ रहने वाला कोई नहीं ॥ ४ । ५ ॥ ये यौवन धन और शरीर बिजलीकी चमकके समान चञ्चल हैं एवं जिस प्रकार यह कठिन भी बरफका समूह देखते देखते पिघलकर नष्ट हो गया है उसीप्रकार ये भी क्षणभरमें विनश जाने वाले हैं, यह बिलकुल निश्चित बात है ॥६॥ पिता संसारके अन्दर जो पाप करता है पुत्र उसका फल नहीं भोगता तथा पुत्र जो पाप उपार्जन करता है माता और पिता भी उसके फलका भोग नहीं करते किन्तु दुःखके सागर रूप इस संसारमें अपने द्वारा किये गये कर्मका फल आप ही भोगना पड़ता है। शुभ अशुभ कर्मसे जायमान दुःख और सुखका बटानेवाला कोई भी नहीं है ॥ ७ । ८ ॥ पशुकी आयु जिस प्रकार निरर्थक बीतती है उस प्रकार मेरी आयुके चार भागोंमें तीन भाग तो निरर्थक चले गये रंचमात्र भी मैं धर्मका आराधन नहीं कर सका क्योंकि धर्मके बिना जीना विफल है ॥ ९ ॥ संसारमें जिन महानुभावोंने धर्म अर्थ काम और मोक्षका साधन नहीं किया और नाम एवं प्रसिद्धिकी अभिलाषा नहीं रोकी वे पुरुष अधम हैं उन्होंने अपने जीवनका कुछ भी मूल्य नहीं समझा ॥ १० ॥ जिस मनुष्यका यह विचार है कि वृद्धावस्था आने पर हम विषयोंको जीत लेंगे और उत्तम तपको तप लेंगे वह मनुष्य भले ही चाहे समर्थ हो

वृद्धत्वे विषयान् जेतुं विधातुं सत्तपो नरः। मेरोरारोहणे पंगुरायून इवं यो विभुः ॥ ११ ॥ नरकस्य मतं द्वारं कामः क्रोधश्च लोभता।
इति त्रयं परित्यज्य शमिनो यांति चिन्मयं ॥ १२ ॥ गार्हस्थ्ये धर्ममिच्छंति रामामा ममता हताः। खपुष्पैस्ते दुराचारा वा वंध्यासुत
शेखरं ॥ १३ ॥ अणोयस्येव संगेऽपि रागे विह्वल मानसे। संभावनं शिवस्यैव प्राहुः खर विषाण वत् ॥ १४ ॥ तदा प्रादुर्वभूवास्य
विशिष्टं ज्ञानमंजसा। सारस्वताद्यो देवा आगमन् प्रतिबोधने ॥ १५ ॥ विंशत्यष्टशतान्येव सहस्राणां च सप्तकं। चतुर्लक्षप्रमा नूनं

तथापि जिस प्रकार तुन्दिल—बड़े पेटवाला मेरु पर्वत पर नहीं चढ़ सकता उसी प्रकार वह पुरुष भी वृद्धावस्थामें विषयोंपर विजय और उत्तम तपका आचरण नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ काम क्रोध और लोभ ये तीनों नरकके द्वार माने जाते हैं-इन्हींको अपनानेसे नरकमें जाना पड़ता है इसलिये मुनिगण इन तीनोंका सर्वथा त्यागकर चिन्मय-मोक्षरूपी परम सुखका रसास्वादन करते हैं ॥ १२ ॥ जो महानुभाव स्त्री और लक्ष्मीकी ममतामें फंसकर गृहस्थ अवस्थामें भी धर्मकी अभिलाषा रखते हैं वे महानुभाव बन्ध्या स्त्रीके पुत्रके शिरपर आकाशके फूलोंसे बने मुकुटको देखना चाहते हैं इसलिये वे दुराचारी हैं-सम्यक् चारित्रके पालन करने वाले नहीं हो सकते सार यह है कि आकाशके पुष्पोंसे गुथे हुए मुकुटसे युक्त बांझके पुत्रका होना जिस प्रकार असंभव है उसी प्रकार स्त्री धन आदिके मोहमें मूढ़ होकर धर्मका पालन करना भी असंभव है। स्त्री आदिके मोहमें ग्रस्त पुरुष कभी वास्तविक धर्म पालन नहीं कर सकता ॥ १३ ॥ यदि चित्तमें कणमात्र भी परिग्रहके अन्दर राग बना रहे तो जिस प्रकार गधेके सींगोंका होना संसारमें असम्भव है उसी प्रकार मोक्षकी प्राप्ति असंभव है—रागकी विद्यमानतामें कभी मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकती ॥ १४ ॥ इस प्रकार विचार करते करते भगवान विमलनाथके संसार, शरीर आदिसे उदासीनता रूप विशिष्ट ज्ञान हो गया एवं उसी समय सारस्वत आदि लोकांतिक देव भगवानके प्रतिबोधनेके लिये यहां आकर उपस्थित होगये ॥१५॥ ये देव चार लाख सात हजार आठसौ बीस४०७८२० थे और ये सब एकभवावतारी बाल ब्रह्मचारी होते हैं॥१६॥ वे भगवान विमलनाथके सामने खड़े होकर इस प्रकार कहने लगे-

तेऽमरा ब्रह्मचारिणः ॥ १६ ॥ (४०७८२०) एवमाहुर्जिनं देवा दोषैर्मुक्तं गुणान्वितं । वैराग्यरससम्पूर्णं क्षतमायाविवर्जितं ॥ १७ ॥ सद्भिरङ्गीकृतं यच्च पालनीयं प्रयत्नतः । अन्यथैव मनुष्याणां हास्यता भवति ध्रुवं ॥ १८ ॥ शूरा विवेकिनः शक्ताः दातारो गुणिनो विदः । प्रारब्धं ये प्रकुर्वन्ति त एव भुवनोत्तमाः ॥ १९ ॥ जीवेनानेकशो भुक्तं रामाराज्यधनोद्भवं । सुखं तृप्यति नो जीवो भोगादीनां तथापि च ॥ २० ॥ भवद्वंशेऽभवन् भूरिचक्रमाविक्रमाः क्रमात् । त एव निधनं याता निश्चलं किं हि गण्यते ॥ २१ ॥ इन्द्रियाणि प्रणश्यंति पापमायाति पुष्टनः । तत्कृत तेन बंधः स्यात् श्वभ्रभाजी ततो भवेत् ॥ २२ ॥ सांनिध्याज्जायते सिद्धिश्चन्दनानां मत्रा

भगवन् ! जो मार्ग दोषोंसे रहित है । अनेक गुणोंका भंडार है । वैराग्य रससे परिपूर्ण है । छल छिद्र कपटसे रहित है और सर्वोत्तम कल्याणके अभिलाषी सज्जन जिसे अपनाते हैं उसी मार्गको इस समय आपने स्वीकार किया है इसलिये आपको वह अवश्य प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिये । यदि आप उसे धारण कर छोड़ देंगे तो आप निश्चय समझिये सारा संसार आपकी हंसी करेगा ॥ १७ । १८ ॥ जो महानुभाव किसी भी कार्यका आरम्भ कर उसे पूरा करते हैं वे ही मनुष्य संसारमें शूरवीर समझे जाते हैं तथा वे ही विवेकी, समर्थ, दाता, गुणवान और विद्वान माने जाते हैं एवं वे ही संसारके भूषण गिने जाते हैं ॥ १९ ॥ इस जीवने संसारमें रहकर स्त्री राज्य और धनसे जायमान सुख अनेक बार भोगा है तथापि भोग आदिसे इसकी तृप्ति नहीं होती ॥ २० ॥ भगवन् ! आपके इस पवित्र वंशमें अतुल संपत्तिके स्वामी बड़े बड़े चक्रवर्ती और प्रतापी राजा होगये हैं और क्रम क्रमसे काल उन्हें अपना कवल बनाता चला गया है इसलिये संसारमें अविनाशी पदार्थ कोई जान नहीं पड़ता ॥ २१ ॥ इन विषय भोगोंमें लीन रहने पर इंद्रियां नष्ट होती हैं । पापका आस्रव होता है । पापके आस्रवसे बन्ध होता है एवं उस बन्धकी कृपासे नियमसे इस जीवको नरकमें जाना पड़ता है ॥ २२ ॥ प्रभो ! जिस प्रकार चंदन वृक्षके सम्बन्धसे आक धतूरे आदिके वृक्ष भी चन्दन स्वरूप होजाते हैं उसी प्रकार जब आप सरीखे महानुभावके संबंधसे

दृशां परेषां भूरुहां चेदत्स्वस्मात्स्वस्य कथं न सा ॥ २३ ॥ एवमादि वचो दैवं निशम्य नितरां हृदि । अस्तृणमिव त्यक्तमात्रि पत्यं तदाऽमुना ॥ २४ ॥ अभिषिच्य ततो लेखाः पुरस्तात्ससिना यदा । देवदत्तां समारुह्य शिबिकाममरावृतः ॥ २५ ॥ राजन्यैरुद्वृतः सप्त पदानि परमादरात् । षण्णवतिप्रमैः शक्रैरुद्धृतो नृपसंगुनः ॥ २६ ॥ सहेतुकमलोद्याने स्थित्वा मणिशिलातले । तत्याज द्विविधं संगं सहस्रनृपसेवितः ॥ २७ ॥ पर्यंकासनमारूढो ध्यानस्तिमितलोचनः , नमः सिद्धमिति प्रोक्त्वा प्रवव्राज जगद्यशाः । शुक्ले माघे चतुर्थ्यां च दिनांते जन्मभे जिनः ॥ २८ ॥ दीक्षाभ्युदयमाचक्रुर्सुरनाथाः सुरान्विताः । स्तुत्वा नत्वा जिनं भक्त्या जग्मुरानन्दतो

अन्य मनुष्योंको मोक्ष प्राप्त हो जाती हैं तब स्वयं आप तो उसे प्राप्त करेंगे ही मोक्ष लक्ष्मीको हस्त गत करनेका पूरा अधिकार आपको है इसलिये अब आप शीघ्र दिगम्बर दीक्षा धारण कर संसारका उद्धार कीजिये ॥ २३ ॥ बस लौकांतिक देवोंके इसप्रकार सार गर्भित वचन सुन भगवान विमलनाथने जीर्ण तृणके समान समस्त राज्यका परित्याग कर दिया ॥ २४ ॥ दीक्षा कल्याणके उपलक्षमें देवोंने उनका अभिषेक किया । समस्त देव पालकी तयारकर भगवानके सामने खड़े होगये अनेक देवोंसे व्याप्त वे भगवान शीघ्र ही पालकीमें सवार होगये । सात पैड़-तक राजा लोग बड़े आदरसे उनकी पालकी ले चले । उसके बाद इंद्रोंने उनक पालकी लेली। छियानवे पैड़ प्रमाण इंद्रगण उसे जमीन पर ले चले, पीछे आकाश मार्गसे ले जाकर सहे-तुक नामके विशाल उद्यानमें इंद्रोंने उस पालकीको ले जाकर रख दिया। उ उद्यानकी मणिमयी शिलापर वे भगवान जिनेंद्र विराजमान होगये । बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका उन्होंने परित्याग कर दिया । हजार राजाओंके साथ दिगंबर दीक्षा धारण करली । पर्यंक आसन मांड़ लिया । ध्यान मुद्रासे नेत्रोंको निश्चल कर लिया तथा समस्त जगतमें जिनकी कीर्ति व्याप्त है ऐसे उन भगवान विमलनाथने माघ सुदी चौथके दिन जब कि जन्म नक्षत्र विद्यमान था 'सिद्धोंको नमस्कार हो' ऐसा कह कर दिगंबरी दीक्षा धारण कर ली ॥ —२८ ॥ अनेक देवोंसे व्याप्त इंद्रों

ऽखिलाः ॥ २९ ॥ षष्ठोपवासमादाय स्वात्मध्यानपरायणः। चतुर्थज्ञानसंयुक्तो बभूवाशु हि तत्क्षणे ॥ ३० ॥ वर्तते नन्दनामिख्यं पुरं परमपावनं। तत्राथ नृपतिर्धीमान् विजयाख्यो महर्द्धिक ॥ ३१ ॥ पारणार्थं द्वितीयेऽह्नि समाट तद्गृहे जिनः। स्वर्णाभस्तेजसां संघः कल्पद्रुम इवापरः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वा जिनं समुत्तस्थे परीत्य प्रणनाम सः। इति स्तौतिस्म सद्भावात्प्रांजलिः कर्महानये ॥ ३३ ॥ अद्याहं सुकृतीभूतो जातस्तव समागमात्। मादृशां क्षुद्रलोकानां कुतो लोकेश्वरागमः ॥ ३४ ॥ जन्ममृत्युजराबह्नितापातुरितचक्षुषः।

ने बड़े ठाट बाटसे भगवान विमलनाथके दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया। भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति की। नमस्कार किया एवं सबके सब बड़े आनन्दसे अपने अपने स्थान चले गये ॥ २९ ॥ दीक्षा ग्रहण करते समय भगवानने षष्ठोपवास--बेला धारण किया और वे अपनी आत्माके स्वरूपके चिन्तवनमें लीन होगये जिससे उनके उसी क्षणमें मनःपर्यय नामका चौथा ज्ञान प्रगट होगया ॥३०॥

इसी पृथ्वीपर एक नन्दन नामका महा मनोज्ञ पुर विद्यमान है उस समय उसका पालन करने वाला राजा विजय था जो कि अत्यन्त बुद्धिमान था और विपुल सम्पत्तिका स्वामी था ॥३१॥ बेला उपवासके समाप्त हो जाने पर दूसरे दिन वे भगवान विमलनाथ राजा विजयके घर पारणाके निमित्त आये। भगवान विमलनाथका शरीर सुवर्णमयी था और देहकी अद्वितीय प्रभासे व्याप्त था इस लिये वे चलते फिरते अनुपम कल्पवृक्ष सरीखे जान पड़ते थे ॥३२॥ भगवान जिनेंन्द्रको आहारके लिये अपने घर आता देख राजा विजयको परमानन्द हुआ। भगवानको देखते ही वह शीघ्र खड़ा हो गया। तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया एवं हाथ जोड़कर भावोंकी पवित्रतासे अपने कर्मोंके नाश करनेके लिए वह इस प्रकार स्तुति करने लगा—

भगवन्! आपके शुभ आगमनसे आज मैं पवित्र होगया क्योंकि आप तीन लोकके नाथ हैं इस प्रकारके महान् पुरुषका मुझ सरीखे क्षुद्र पुरुषके घरमें आना बड़ी कठिनताका कार्य है ॥३३--३४॥ जन्म मरण और जरा रूपी तीनों प्रकारकी अग्नियोंके संतापसे संतप्त मेरे लिये हे भगवन्!

आगमश्चन्दनं मे ते सुधा वा च रसायनं ॥ ३५ ॥ अद्य कामदुघायाता कल्पागः परमं पदं । वा काले वृष्टिराकाशाद् व्यपेताभ्रान्मम गृहे ॥ ३६ ॥ हृदोदलासि मे देव ! दृष्ट्वा त्वा वारिराशिना । एवं ग्लावं महाभव्यचकोराह्लाददायिनं ॥ ३७ ॥ स्तुत्वेति चरणौ क्षाल्य नवधा पुण्यमर्जयत् । सप्त सद्गुणितं दानमयच्छत्क्षीरमस्मकै ॥ ३८ ॥ नृपागारे तदा पंचाश्चार्यं जातमिति स्फुटं । दुन्दुभिरत्नसौगन्धिवा ताम्भोवृष्टिसोत्सवाः ॥ ३९ ॥ पात्रदानात्परं पुण्यं नाभून्नास्ति भविष्यति । यतो देवागमस्तस्मात्किं दुराप्यं जगत्त्रये ॥ ४० ॥ अपि

आपका आना शीतल चन्दन अमृत वा रसायन सरीखा हुआ है क्योंकि चंदन आदिके संसर्गसे जिस प्रकार ताप मिट जाता है उसी प्रकार आपके समागमसे मेरा भी जन्म आदिका ताप मिट जायगा ॥ ३५ ॥ प्रभो ! आपके आनेसे आज मैं यह समझता हूं कि मेरे घरमें कामधेनु आ गई वा कल्प वृक्ष आगया किंवा आज मुझे परम पदकी प्राप्ति होगई अथवा वर्षाका समय न रहने पर भी मेरे घरमें आकाशसे वर्षा हो निकली ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र लह लहा उठता है उसी प्रकार हे देव ! आपको देखकर मेरा हृदयरूपी विशाल समुद्र मारे आनन्दके उमड़ रहा है तथा चन्द्रमाको देखकर जिस प्रकार चकोर पक्षीको परम आनन्द होता है उसी प्रकार भगवन् ! आप भी महाभव्य रूपी चकोर पक्षियोंको आनन्द प्रदान करने वाले हैं ॥३७॥ बस इस प्रकार भगवान विमलनाथकी स्तुतिकर राजा विजयने उनके चरणोंका प्रक्षाल किया । नवधा † भक्तिसे जायमान पुण्यका उपार्जन किया एवं दाताके सात * गुणोंसे शोभायमान क्षीरका आहार उन्हें दिया ॥ ३८ ॥ राजा विजयके घरमें भगवानके आहारसे जायमान पुण्यसे

† प्रतिग्रह–तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ, ऐसे तीन बार कह कर खड़ा राखे । २ मुनिको उच्चस्थान देवे । ३ मुनिके चरणोंको प्रमाणीक प्रासुक जलसे धोवे । ४ मुनिकी पूजा करें । ५ मुनिको नमस्कार करें । ६ दाता अपना मन शुद्ध राखें । ७ दाता अपना वचन शुद्ध राखें । ८ दाता अपना शरीर शुद्ध राखें । ९ दाता मुनिराजको शुद्ध भोजन दे । यह नौ प्रकारकी नवधा भक्ति कही जाती है ।
* दाताके दान देनेमें धर्मका श्रद्धान हो । २ साधुके रत्नत्रय आदि गुणोंमें अनुराग और भक्ति हो । ३ दाता दयावान हो । ४ दाताको दानकी शुद्धता अशुद्धताका ज्ञान हो । ५ दाता इसलोक परलोक संबन्धी भोगोंकी अभिलाषासे रहित हो । ६ दाता क्षमावान हो । ७ दाता दानदेनेकी सामर्थ्य रखता हो ।

स्तोकं सुपात्रेभ्यो दत्तं मेरुसमं भवेत् । न्यग्रोधतरुबीजं हि विस्तारं कुरुते लघु ॥ ४१ ॥ सुपात्रं प्राप्य वेगेन रसो यात्यत्र सांगतां
वर्जितान्यपदः प्रायः सुतेजाः स्वपदाश्रितः ॥ ४२ ॥ एवं चेद्धर्मनाशः स्यात् यथा कामीननाशतः । कौतस्कुतं सदा तस्मात्यतो
दानं न वार्यते ॥ ४३ ॥ दयाहेतोः प्रदातव्यमंगिनां वर्जितत्विषां । सुपात्रं प्राप्य भावेन विशेषात्सन्मतेरपि ॥ ४४ ॥
तमो लक्षतमो रत्या दत्तः पात्राय निश्चितं । व्यापोहति परं पापं भोगभूशं ददात्यलं ॥ ४५ ॥ नीत्वा वारं समैहन्ये
पदे श्री जिननायकः । गोर्वाणावलिसंसेव्य इव मेरुरकम्पधीः ॥ ४६ ॥ सामायिकं समादाय संयमं शुद्धचेतसा । वर्षत्रयं चकारो-

दुन्दुभिका बजना रत्नोंका पड़ना सुगंधित पवनका वहना सुगंधित जलका वरसना और पुष्पोंका वरसना ये पांच प्रकारके आश्चर्य हुये ॥ ३९ ॥ पात्रदानके विषयमें ग्रन्थकार अपनी सम्मति देते हैं कि—पात्रदानसे वढ़कर पुण्यका कार्य संसारमें न तो है और न होगा क्योंकि पात्रदानकी कृपासे देव सरीखे भी खिचे चले आते हैं फिर तीनों लोकमें दुर्लभ चीज रह ही क्या जाती है ? ॥ ४० ॥ जिसप्रकार वटवृक्षके बहुत छोटे भी बीजसे विशाल वृक्ष उत्पन्न हो जाता है उसीप्रकार सुपात्रकेलिये सरसोंके बरावर थोड़ा दिया हुआ भी दान मेरुके सम[illegible] फलता है ॥ ४१ ॥ उत्तम पात्रके मिलने पर जो उसे भक्तिपूर्वक आहार दिया जाता है वह सफल होता है तथा दान देनेवाला अन्य मामूली स्थानोंको न प्राप्त होकर मोक्षपदको प्राप्त करता है और परमतेजस्वी माना जाता है ॥ ४२ ॥ यदि दान देना ही बन्द कर दिया जाय तो गृहस्थ वा मुनि धर्मका ही नाश हो जाय तथा धर्मके नष्ट हो जाने पर मोक्षपद भी नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि मोक्षपदकी प्राप्तिमें धर्म ही कारण है इसलिये दानका कभी भी निषेध नहीं किया जासकता ॥ ४३ ॥ जो पात्र लूले लंगड़े अपाज हैं कांति रहित हैं उन्हें करुणा बुद्धिसे दान देना चाहिये और उत्तम आदि पात्र मिल जांय तो उन्हें उत्तम बुद्धिसे भाव पूर्वक विशिष्ट दान देना चाहिये ॥ ४४ ॥ यह सर्वथा सुनिश्चित बात है कि पात्रकेलिये भक्तिपूर्वक दिया हुआ एक रोटीका टुकड़ा भी लाख टुकड़ारूप फलता है तथा वह दिया हुआ टुकड़ा वलवान भी पापको नष्ट करता है और अनेक प्रकारके उत्त

घैस्तपोऽरण्यांतरेषु च ॥ ४७॥ निजदीक्षावने तस्य घातिकर्मक्षयात्परं । षष्ठोपवासिनो माघे षष्ठ्यां पक्षे शिते भृशं ॥ ४८ ॥ मपराह्णे स्वदीक्षाया नक्षत्रे च शुभोदयात् । मूले जम्बुद्रुमस्यैव प्रादुरासीच्च केवलं ॥ ४९ ॥ (युग्मं) ज्ञानकल्याणकं चक्रु: सुनासीरादयोऽमराः । समवसृतिसच्छायां पुनर्वाचामगोचरां ॥ ५१ ॥ बोधयामास भव्यौघाम्भोजमालां तमोरिवत् । नानाजनपदे देवो लेखे· शार्चितपत्कजः ॥ ५१ ॥ पुरस्ताद्धर्मचक्रं वै दधान जयघोषणं । यक्षमूर्धस्थितं नानाघर्कविंबो बभौ यथा ॥ ५२ ॥ गणानां मुनि-

मोत्तम भोगोंका प्रदान करने वाला माना जाता है ॥ ४५ ॥ जिनोंमें श्रेष्ठ वे भगवान विमलनाथ राजा विजयके घरमें आहार लेकर वनको लौट गये। उनके शरीरकी कांति सुवर्णमयी थी और अनेक देव उनकी सेवा करते थे इसलिये वे अनेक देवोंसे वेष्टित सुवर्णमयी मेरुपर्वत सरीखे जान पड़ते थे ॥ ४६ ॥ भगवान विमलनाथने अपने निर्मल चित्तसे सामायिक रूप संयमको धारण कर वनके मध्यमें तीन वर्ष तक घोर तप तपा बाद उन्होंने उसी सहेतुक नामक अपने दीक्षावनमें बेलाकी प्रतिज्ञा कर तीव्र तपसे ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मोंको नष्ट किया जिससे माघ सुदी छठके दिन जब कि दुपहरका समय था और दीक्षा नक्षत्र वा जन्म नक्षत्र विद्यमान था जंबू वृक्षके नीचे शुभके उदयसे उनके केवल ज्ञान प्रगट हो गया ॥ ४७—४९ ॥ भगवान विमलनाथको केवल ज्ञान होते ही उनके ज्ञान कल्याणका उत्सव मनानेके लिये शीघ्र ही इंद्र आदि देवगण उस सहेतुक वनमें आ गये। एवं जिसकी महिमा वर्णन नहीं की जा सकती ऐसा अत्यंत देदीप्यमान समवसरण रच दिया गया ॥ ५० ॥ जिनके चरण कमलोंको बड़े बड़े इन्द्र आदि देव सेवा करते हैं ऐसे वे भगवान विमलनाथ अनेक देशोंमें विहार करने लगे एवं जिस प्रकार सूर्य कमलोंको खिलाता है उसीप्रकार सूर्यस्वरूप वे भगवान भव्यरूपी कमलोंको बोधने लगे—वास्तविक उपदेश देने लगे ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार पहाड़की शिखरपर विद्यमान सूर्य शोभित होता है उसीप्रकार यक्षों के मस्तकोंपर विराजमान और "हे भगवान विमलनाथ आपकी जय हो" इत्यादि रूपसे जय २ घोषणा करता हुआ धर्मचक्र उनके आगे आगे चलने लगा ॥ ५२ ॥ जिसप्रकार सप्तर्षि आदि

मुख्यानां नभोराजेव वैमल। चित्रान्वीतोऽतरीक्षस्थस्तारकाणां सभांतरे ॥ ५३ ॥ अथ जम्बूमति द्वीपे भारतं भव्यसंभृतं । षट्खंडि विद्यते तत्र सौराष्ट्रो विषयः स्मृत ॥ ५४ ॥ पुरी द्वारवती तत्र शोभाढ्या परमोत्सवा । स्वर्णरत्नमहाबिंबयुतप्रासादमंडिता । ॥ ५५ ॥ कामरूपनराकीर्णदुर्गवैषम्यदुर्जया । उन्नितंवकलापास्यपीनवक्षोजभामिनी ॥ ५६ ॥ सत्यधर्मदयादानसरोवापीगृहा-न्विता । वर्ततेऽमरपूर्वा सा दीर्घा हि नवयोजनौः ॥ ५७ ॥ त्रयोदशभिरेवेयं विस्तरा योजनैर्ध्रुवं । द्विसहस्रलघुद्वारमंडिता मगधा धिप ! ॥ ५८ ॥ (चतुर्भिः कलापकं) धर्माख्यवलिसंयुक्तः स्वयंभूर्भरतार्धवाक् । भूखेचरनराधीशसेव्यस्तां पाति शक्रवत् ॥ ५९ ॥

तारा गणोंके मध्यमें आकाशके अंदर रहने वाला चंद्रमा चित्रा नक्षत्रके साथ शोभा धारण करता है उसीप्रकार मुनि आदि गणोंके मध्यभागमें विराजमान आकाशमें अधर रहनेवाले वे भगवान विमलनाथ अत्यंत शोभित होते थे ॥ ५३ ॥

इसी जंबूद्वीपके अंदर अनेक भव्योंसे व्याप्त और छह खण्डोंका धारक एक भरतक्षेत्र नामका प्रसिद्ध क्षेत्र है। उस भरत क्षेत्रके अंदर एक सौराष्ट्र (सोरठ) नामका देश विद्यमान है ॥ ५४ ॥ सौराष्ट्र देशके अंदर द्वारिका नामकी नगरी है जो कि नाना प्रकारकी शोभाओंसे शोभायमान है भांति भांतिके सदा उसमें अनेक उत्सव हुआ करते हैं एवं सुवर्ण और रत्नमयी अनेक उत्तमो-त्तम प्रतिमाओंसे मंडित जिन मंदिरोंसे व्याप्त है ॥५५॥ वह द्वारिकापुरी उत्सवमय विशाल नितम्ब लंबी चोटी मुख और स्थूल स्तनोंसे शोभायमान स्त्री सरीखी जान पड़ती थी क्योंकि जिसप्रकार सुंदर स्त्री अनेक सुंदर पुरुषोंसे व्याप्त रहती है उसीप्रकार वह नगरी भी महामनोहर पुरुषोंसे भरी हुई थी तथा सुंदर भी स्त्री जिसप्रकार विषम-कुटिलाईको लिये होती है उसीप्रकार वह पुरी भी अनेक विशाल विशाल किलोंसे विषम थी—शत्रुओंके अगम्य थी ॥ ५६ ॥ वह द्वारिकापुरी सत्य अहिंसा धर्म दया दान सरोवर बावड़ियें और घरोंसे व्याप्त थीं इसलिये वह स्वर्गपुरी सरीखी जान पड़ती थी और नौ योजन प्रमाण लम्बी थी। तेरह योजन प्रमाण चौड़ी एवं दो हजार छोटे २ दरवाजों से शोभायमान थी ॥५७। ५८॥ उस पुरीका रक्षक स्वयंभू नामका नारायण था जिसका बड़ा भाई

ड्रिड्ग्य रेऽनिक. सोमो गूड़ नस्त्रा द्र तोरनः । प्रतापाक्रांतभूर्भानुः संतत्यंभोजिनीपु यः ॥ ६० ॥ (युग्मं) षत्रयत्वं रूसाहस्र्यसंख्या मुकुटवद्धकाः । सेवन्ते प्रत्यहं तस्य पादाब्जं चञ्चरीकवत् ॥ ६१ ॥ तावत्संख्या मृगाक्ष्योऽस्य सुखयन्तीव रंभिकाः । नवकोटितुरङ्गाणां माला भाति मनोहरा ॥ ६२ ॥ खपंचद्वि चतुःसंख्याः सिन्धुरा दानवर्षिणः । मद्रोद्धराः सिता भांति नभोलिह इवोन्नताः ॥ ६३ ॥ शंखदंडगदाचापखड्गचक्रसुशक्तिकाः । इत्येवं सप्त रत्नानि तस्य सन्ति च नागाग्र ! ॥ ६४ ॥ ग्रामास्तस्याष्ठचत्वारिंशत्कोटि प्रमिता मताः । गोकुलं सार्धकोट्येकं वर्तते भूनयोऽपराः ॥ ६५ ॥ भुंजन् राज्यं स्थितो धर्मवलिना मूशलं गदां । मालां

धर्म नामका बलभद्र था । स्वयं वो तीन खण्डका स्वामी—अर्ध चक्री था । भूमिगोचरी विद्याधर राजाओंसे सेवित था एवं इन्द्र जिसप्रकार स्वर्गपुरीकी रक्षा करता है उसप्रकार वह द्वारवतीपुरी की रक्षा करता था ॥५६॥ तथा वह नारायण स्वयंभू शत्रुरूपी वनकेलिये दावानल था । छिपे हुए पराक्रम का धारक और क्रोध रहित शांत होनेके कारण चंद्रमा सरीखा था । अपने पराक्रमसे समस्त पृथ्वी तलको वश करने वाला था और प्रजारूपी कमलिनियोंको प्रसन्न करनेवाला सूर्य था—उसके राज्यमें सारी प्रजा प्रसन्न और सुखी थी ॥ ६० ॥ जिसप्रकार भ्रमर कमलकी सेवा करते हैं उसी प्रकार सोलह हजार मुकुट बद्ध राजा उस नारायण स्वयंभूके चरण कमलोंके सेवक थे ॥ ६१ ॥ जिसप्रकार देवांगना देवोंको सुखी बनाती हैं उसीप्रकार सोलह हजार मृग लोचनी रानियां नारायण स्वयंभूकी सेवा करतीं और उसे सुखी बनातीं थीं । उसके नौ करोड़ घोड़े थे जो कि तेज पानीके महामनोहर थे । ब्यालीस लाख हाथी थे जिनके कि गंडस्थलोंसे मद चूता था । मदसे उत्कट थे और इतने ऊंचे थे मानो आकाशको स्पर्श करते थे ॥ ६२ । ६३ ॥

उस राजा स्वयंभूके शंख, दण्ड, गदा, धनुष, खड्ग, चक्र और शक्ति ये सात रत्न थे । अड़तालीस करोड़ संख्याप्रमाण उसके ग्राम थे । डेढ़ करोड़ गायें थीं और अनेक प्रकारकी विपुल विभूति थीं ॥६४-६५॥ मूसल, गदा, माला और शीर नामक शस्त्रोंके धारक, अत्यंत सामर्थ्यवान अपने बड़े भाई बलभद्रके साथ वह स्वयंभू नामका नारायण अपने राज्यका सुखपूर्वक भोग करता था ॥६६॥

शीरं विधात्वा च भ्राता वलविशालिना ॥६६॥ मदोद्धुरान्नृपान् जित्वा प्रजाः पालयति नृपे। तावन्नानामहादेशान् विहृत्यागतवान् जिनः
॥ ६७ ॥निर्लोभो निर्मलः शांतो रागद्वेषच्युतोऽच्युतः। तर्हि गत्यागती तस्य प्रकाश्येते कथं परैः ॥६८॥ उदयाद्रावुदेत्येव प्रत्यहं मास्त
मोहितः। नियोगोऽयं तथा तस्य याथातथ्यप्रबोधकः ॥ ६९ ॥ तत्पुरोमदनोद्याने शक्राज्ञाधारिणा मुदा। धनदेन विचित्राभं विष्टरं
निर्ममे महत् ॥ ७० ॥ दुर्गभित्तिमहापीठसोपानानां विचित्रतां। मानस्तंभतड़ागानां सुवर्ण्या कस्य सत्कवेः ॥ ७१ ॥ प्रादुर्भवति हेरसे-
शमःयया समवसृतिः। स्थानांगीकारकाहेस्य क्षणेन केवलक्षणे ॥७२ ॥ तन्मध्यस्थो जिनो—रेजे ज्ञानदृष्टजगत्त्रयः । सुरेशैः स्वर्गवा

अनेक मदोन्मत्त राजाओंको जीतकर वह नारायण स्वयंभू सानन्द प्रजाका पालन करता था कि उसी समय अनेक देशोंमें विहार कर भगवान विमलनाथ वहां पर आये। वे भगवान परम निर्लोभ थे। समस्त दोषोंसे रहित निर्मल थे। शांत थे। राग और द्वेषसे रहित एवं अविनाशी थे इस लिये यह बात हरेक मनुष्य जान ही नहीं सकता था कि कहां उनका जाना होता था और कहां आना होता था। जिस तरह चंद्रमा प्रतिदिन उदयाचलपर उदित होकर अस्ता चल पर अस्त होता है यह उसका नियोग ही है उसीप्रकार गमन आगमन भी भगवानका नियोग स्वरूप ही था क्योंकि वह गमन आगमन यथार्थ रूपसे पदार्थोंका प्रबोध करनेवाला था। जो पुरी नारायण स्वयंभू की राजधानी थी उसी पुरीके मदन नामक उद्यानमें भगवान विमलनाथके आजाने पर आनंदित हो कुबेरने इन्द्रकी आज्ञासे शीघ्र ही समवसरण रचना प्रारम्भ कर दिया जो कि विचित्र शोभाका धारक था, विशाल था। समवसरणके अंदर चित्र विचित्र प्राकार उनकी भीतियां, विशाल सिंहा-सन, सीढ़ियां,मानस्तंभ और तालावोंकी जो रचना की गई थी उसका वर्णन धुरन्धर कवि भी नहीं कर सकते थे। वस केवल ज्ञानसे विराजमान भगवान् विमलनाथके ठहरते ही इंद्रकी सायारु शीघ्र ही समवसरण तैयार हो गया और वे भगवान् विमलनाथ जो कि अपने दिव्य ज्ञानसे तीनों लोकोंके जाननेवाले थे एवं जिनके चरण कमलोंको जय जय शब्दोंके करनेवाले व्यंतर आदि देवेंद्र

सेश्च पूजितांघ्रिर्जयारवैः ॥ ७३ ॥ तत्प्रभावाद्वनं रम्यं वाटिकां कुसुमान्वितां । दुन्दुभिध्वानमाशय्य मालाकारोऽगमत्पुरं ॥ ७४ ॥
नानापुष्पफलाकीर्णं करंडं संविधाय च । नृपाज्ञया पुरो गत्वा तत्करंडं मुमोच सः ॥ ७५ ॥ अकालजनिता दृष्ट्वा स्वयंभूरितिमा-
नव्रः । चिरं स्वांते महाचिंताग्रस्तचेता व्यचिंतयत् ॥ ७६ ॥ अकालीनं यदा पुष्पप्रसूतोः सद्भावबाधकं । द्वन्द्विवमहायुद्ध
दृश्यते श्रूयते च वा ॥ ७७ ॥ तदा राजाशुभं ज्ञेयं दुर्भिक्षं वा प्रजापतेः । देशभङ्गः समादिष्टः प्रथमैः पूर्वसूरिभिः ॥ ७८ ॥

और स्वर्गोंके देव भक्ति पूर्वक पूजते थे, उस समवशरणके मध्य भागमें विराज गये ॥ ६७--७३ ॥ जिस वनमें भगवान विमलनाथ विराजे थे वह वन महा मनोहर दीख पड़ता था उसमें रहनेवाले वृक्ष, फल फूलोंसे व्याप्त थे और नौबत घुरती रहती थी । उस वनके रक्षक मालीने जब वनकी यह विचित्र शोभा देखी और नौबतका शब्द सुना तो उसे बड़ा आनन्द हुआ । अनेक प्रकारके पुष्प और फलोंसे उसने अपनी टोकनी भर ली । वह द्वारापतीकी ओर चल दिया, एवं राजाकी आज्ञासे राजसभामें प्रवेश कर उसने उस डालीको महाराज स्वयंभूकी भेंट कर दी ॥ ७४-७५ ॥ राजा स्वयंभूने ज्योंही असमयमें होनेवाले फल पुष्प देखे त्योंही मालीसे तो उसने कुछ पूछा नहीं किंतु अपने आप मारे चिंताके उसका मुख म्लान हो गया और मन ही मन वह इस प्रकार चिंता करने लगा—

असमयमें उत्पन्न होनेवाले ये फल फूल ऋतु कालके बाधक हैं, जो वस्तु जिस समयमें होनेवाली है उस समयमें न होकर यदि अन्य समयमें होगी तो उससे कभी भी ऋतुका निश्चय नहीं किया जा सकता। असमयमें होनेवाले जो ये फल फूल दीख पड़ते हैं उनका फल यही जान पड़ता है कि या तो किसीके साथ महा भयंकर युद्ध करना होगा या कहींसे विशाल युद्धके समाचार सुननेमें आवेंगे। प्राचीन आचार्योंने असमयमें जायमान पदार्थोंको देखनेका यह फल बतलाया है कि या तो राजाका अशुभ होगा या अकाल पड़ेगा अथवा देशका भङ्ग होगा ॥ ७६-७८ ॥ अपने भाइ नारायण स्वयंभूको इस प्रकार चिन्ता और क्लेशसे क्लेशित देख उसके बड़े भाइ बलभद्र धमने कहा—

इति चिन्ताव्यथापन्नं दृष्ट्वा श्रीनिजबांधवं । अब्रवीद्योलगासक्तः किं त्वं चिंतयसि प्रभो ! ॥ ७९ ॥ इति पृष्टो जगादेति स्वयंभूरक्तलोचनः । श्रूयतां वचनं भ्रातर्यथा दृष्टं प्रचक्ष्यते ॥ ८० ॥ किष्किंधापत्तने राजा महार्घः सुन्दराभिधः । स्वप्रतापजिताशेषशातवोऽभूद्गुणाकरः ॥ ८१ ॥ कमला सुंदरी तस्य सुता परमसुंदरी । नाम्ना विज्ञानलावण्यरूपाभरणभूषिता ॥ ८२ ॥ ईदृक्षा विद्यते नैव भामिनी काश्यपीतले । पृथुस्थूलनितंबाढ्या हंसगहंससरा भृशं ॥ ८३ ॥ तयेति विहिता भ्रातः ! प्रतिज्ञा दुष्करा नृणाम् । मंदारमाला यस्य कंठे प्रवर्त्तते ॥ ८४ ॥ वृणेऽहं परप्रमण्णा सादरं नापरं वरम् । इति श्रुत्वा पिता तस्याश्चिंतयामास मानसे ॥ ८५ ॥

भाई तुम इस डालीको देखकर क्या विचारने लग गये ? उस समय स्वयंभू चिंतासे अत्यन्त व्यथित थे । सारे क्लेशसे उनके नेत्र म्लान हो रहे थे इसलिये दुःखित हो उन्होंने उत्तरमें अपने भाईसे यह कहा—असमयमें होनेवाले इन फल फूलोंको देखकर मैंने जो कल्पना की है मैं आपसे कहता हूं आप ध्यान पूर्वक सुनें ।

किष्किंधा नगरमें एक सुन्दर नामका राजा था जो कि विशाल सम्पत्तिका स्वामी था । अपने प्रचण्ड प्रतापसे समस्त शत्रुओंका जीतनेवाला था एवं अनेक उत्तमोत्तम गुणोंका स्थान था ॥७९-८१ ॥ राजा सुन्दरकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि एक अलौकिक सुन्दरी थी और उससे उत्पन्न परमसुन्दरी नामकी कन्या थी जो कि विज्ञान कला कौशल, लावण्य मनोज्ञ रूप रूपी भूषणोंसे भूषित थी ॥८२॥ विशेष क्या विशाल और स्थूल नितम्बोंसे शोभायमान हंसके समान मीठे वचन बोलनेवाली रमणी परम सुन्दरीके समान कोई कन्या न थी ॥ ८३ ॥ अत्यन्त मानिनी उस कन्याने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जिस मनुष्यके गलेमें मन्दार जातिके कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला होगी उसी मनुष्यको प्रेमपूर्वक बड़े आदरसे मैं वरूंगी । दूसरे कामदेवके समान भी वरको मैं न वरूंगी । परम सुन्दरीके पिताने जब परम सुन्दरीकी यह प्रतिज्ञा सुनी तो उसे बड़ी घबड़ाहट हुई एवं वह उसकी कठिन प्रतिज्ञासे मन ही मन विचारने लगा—

अहो ! अत्यंतमूढत्वं सुताया दुर्वचः किल । स्वर्गियोग्या कुतो लभ्या शुभ्रा मंदारमालिका ॥ ८६ ॥ आ एवं मन्यते चेत्ते स्वयंवर-विधिं विना। मनोगतो वरो नैव सौलभो भुवनत्रये ॥ ८७ ॥ चिंतयित्वेति राजा स चकाराशु स्वयंवरम् । रत्नविन्यासप्राकारं-हैमस्तंभं सुतोरणम् ॥८८॥ ततो दलं दलद्वर्णं प्राहिणोद्विषयेष्वसौ। राजागत्यर्थमेत्राशु मंजुलं प्राजलं परम् ॥ ८६ ॥ तद्धि श्रुत्वाथ राजानस्तत्राजग्मुः शुभेच्छया । यथायथं स्थिताः सर्वे कन्यारोपितमानसाः ॥ ६० ॥ तमिस्त्रां लंघयन् भानुरुदियायोदयाचले। राजन्यान् वीक्षितुं किंवा रक्तमूर्तिर्हसन्निव ॥ ६१ ॥ कन्याप्रतारणार्थं वा मंदारकुसमाकृतिं । वृत्तरक्तत्वतो नूनं दर्शयन् ध्वंसथं-

कन्या परमसुन्दरीने जो वैसी प्रतिज्ञा की है वह उसकी बड़ी भारी मूढ़ता है। मंदार वृक्षके सफेद पुष्पोंकी माला तो देव पहिनते हैं मनुष्योंको वह कैसे प्राप्त हो सकती है? खैर, यदि इस कन्याका ऐसा ही बलवान आग्रह है तो विना स्वयंवरके किये तीनों लोकमें इसके लिये वैसा वर नहीं मिल सकता। स्वयंवर करनेसे ही कदाचित् प्राप्त हो सकता है इसलिये इसके वरके लिये स्वयंवरकी ही रचना करनी होगी,बस ऐसा विचार कर राजा सुन्दरने शीघ्र ही स्वयंवर मंडपके तैयार होनेकी आज्ञा देदो तथा वह मंडप भी रत्नोंके वने परकोटोंसे व्याप्त सुवर्णमयी स्तम्भोंसे शोभायमान एवं लटकते हुए तोरणोंसे देदीप्यमान शीघ्र ही तैयार हो गया ॥ ८४--८८ ॥ स्वयंवर मंडपके तैयार हो जाने पर राजा सुन्दरने समस्त देशोंके राजाओंके बुलानेके लिये पत्र भेजा जिसमें कि स्पष्ट रूपसे स्वयंवरके समाचारको सूचित करनेवाले अक्षर अङ्कित थे एवं वह शुभ मनोहर और प्रशस्त था ॥ ८९ ॥ पत्रके पाते ही शुभ कन्याको प्राप्तिकी अभिलाषासे समस्त राजा किष्किंधापुरमें आये, एवं कन्याकी प्राप्तिमें जिनका चित्त लीन है सबके सब यथायोग्य स्थानोंपर ठहर गये ॥ ९० ॥ रात्रिके वीत जानेपर पूर्व दिशामें उदयाचल पर सूर्यका उदय हुआ। वह सूर्य उदयकालमें रक्त वर्णका था इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानो प्रसन्न हो वह राजाओंके देखनेके लिये आया है किंवा राजाओंकी विषय जनित लालसा पर हंसी प्रगट कर रहा है। अथवा अपने गोल

स्तमः ॥ ६२ ॥ (युग्मं) उद्दिते श्रीदिवानाथे नानाशृंगारकारिणः । आजग्मुर्मण्डपं सर्वे राजपुत्राः इवामराः ॥६३॥ केचिद्धंसकराः केचिच्छुकहस्ता मदोद्धुराः । भ्रमयंतः करं केचित्केचित्त्र स्मितकारिणः । ॥ ६४ ॥ धात्रीस्कंधकरा नानाकौतुका राजपुत्रिका । द्रष्टुं समागता तत्र राजन्यान् मंडपे त्वरा ॥ ६५ ॥ कंचुकी तां जगादेति पुत्रि ! शृणु वचो मम । एतेषां शुभतमं भूपं वृणीश्व त्वं समादरात् ॥ ६६ ॥ विलोक्य भूपतीन् सर्वान् सुंदरानप्यभावत । मंदारमालिकाभावान्नावृणीतागमत्पुरं ॥ ६७ ॥ आपणमासात्रयेरित्थं स्थिता

आकार और ललाईसे कन्या परम सुन्दरीके ठगनेके लिये मन्दार वृक्षके पुष्पोंकी आकृति बतलाता हुआ अन्धकारको जड़से भगा रहा है ॥ ६१-६२ ॥ इस प्रकार सूर्यदेवके उदय हो जाने पर समस्त राजकुमार अपनी अपनी शय्याओंसे उठ गये । प्रातः कालीन नित्य क्रियायें कीं । नाना प्रकारके शृंगार कर अपना शरीर सजाया एवं जिसप्रकार देव आते हैं उसप्रकार वे स्वयम्वर मंडपमें आकर अपने अपने स्थानोंपर बैठ गये ॥६३॥ उन राजकुमारोंमें कई एक राजकुमार हंसके समान हाथोंके धारक थे । कई एक शुक-तोतोंके समान लालिमाको लिये हुए हाथोंसे शोभायमान थे । अनेक मदोन्मत्त फूल हाथोंमें लेकर उसे घुमा रहे थे और बहुतसे मन्द मन्द मुसका रहे थे ॥ ६४ ॥ जिसका एक हाथ धायके कंधेपर रक्खा हुआ है और जो नानाप्रकारके कौतूहलोंसे शोभायमान है ऐसी वह कन्या समस्त राजाओंके देखनेके लिये शीघ्र ही उस स्वयम्वर मंडपमें आई एवं जिस समय वह वहां पर आकर खड़ी हुई तो कंचुकी उससे इस प्रकार कहने लगा—

प्रिय पुत्री ! मेरी बात सुनो । इस समय समस्त देशोंके राजा इस स्वयम्वर मंडपके अंदर विराजमान हैं इनमेंसे जो तुम्हें पसंद हो-अच्छा लगता हो उसे ही आदर पूर्वक वर लो॥६५-६६॥ कन्या परम सुन्दरीने समस्त राजाओंकी ओर दृष्टि डाली परन्तु मन्दार पुष्पोंकी माला एक केभी गलेमें उसने नहीं देखी इसलिए अत्यन्त सुन्दर भी उन राजकुमारोंमेंसे एकको भी उसने नहीं वरा और वह सीधी अपने राजमहल लौट गई ॥६७॥ अनेक मानसिक कौतूहलोंसे परिपूर्ण वे समस्त

भूपाः सकौतुकाः । तन्मोहेनैव संत्यक्तखाद्याश्चित्रार्पिता इव ॥ ९८ ॥ अन्यदा सर्वभूपालसभे कन्याविराजिते । समागमन्महारौद्रः कापाली भस्मभूषितः ॥ ९९ ॥ पाणीकृतकपालः सन्नग्नरूपी जटाधरः । अस्थिसंघातमालालंकृतग्रीव कृपातिगः ॥ १०० ॥ नानाकौटिल्यविद्याभिर्मर्त्स्ययन् कोपतो नरान् । शंखचक्रग्रहः कालः स्थितः पद्मासनेऽतरे ॥ १०१ ॥ अत्रांतरे नभोमार्गे गच्छन् देवः स्वकांतया । नंदीश्वरमहाद्वीपयात्रां कृत्वा सभोपरि ॥ १०२ ॥ आगतस्तर्हि रमा तं मणिचूलसुराधिपं । रराण मधुरालापैरदः किं वर्तते विभो ! ॥ १०३ ॥ चकाणेति चकोराक्षि ! प्रारब्धेऽस्मिन् स्वयंवरे । मंदारमालिकाभावाद्वरं किंचिन्न मन्यते ॥ १०४ ॥ श्रुत्वैतत्कौ-

राजकुमार कन्या परम सुन्दरीके मोहसे लालायित हो बराबर छह मासतक वहीं पड़े रहे । वे कन्या परम सुन्दरी पर इतने व्यामुग्ध थे कि अपने खाने पीनेकी भी उन्होंने पर्वाह न की थी इसलिये वे ऐसे जान पड़ते थे मानों किसी चतुर चित्रकारने उन्हें चित्रपटमें अंकित कर दिया है ॥ ९८ ॥

एक दिनकी बात है कि समस्त राजा और कन्यासे मंडित सभा मडपमें एक कापाली आया जो कि महा भयङ्कर था । अंगमें भवूति रमाये था । हाथमें कपाल था । नग्न दिगम्बर था । जटाधारी था । गलेमें हड्डियोंकी माला पहिने था । दया रहित था । अपनी कुटिल विद्याओंसे समस्त सभाके मनुष्योंको डरानेवाला था । शङ्ख और चक्रोंको धारण किये था, इसलिये साक्षात् कालसरीखा जान पडता था तथा सभामण्डपमें आकर वह पालती मार कर बैठ गया ॥ ९९—१०१ ॥ उसी समय मणिचूल नामका देवोंका स्वामी नन्दीश्वर महा द्वीपकी यात्रा कर आकाशमें अपनी स्त्रीके साथ जा रहा था जिस समय वह स्वयम्बर मंडपकी भूमिपर आया उसकी स्त्रीने मधुर वचनोंमें यह पूछा, प्राणनाथ ! नीचे यह क्या दृश्य दीख रहा है ? उत्तरमें मणिचूलने कहा—

प्रिये ! कन्या परम सुन्दरीके निमित्त यह स्वयम्बर रचा गया है उसकी यह प्रतिज्ञा है कि जिस महानुभावके गलेमें मंदार पुष्पोंकी माला होगी उसे ही मैं वरूंगी अन्यको नहीं परन्तु पुष्पोंकी माला किसीके गलेमें है नहीं इसलिये वह कन्या किसीको वर स्वीकार करना नहीं चाहती ।

तुकं रंभा हास्यहेतोः पतेर्गलात् । नीत्वा मंदारसन्मालामक्षिपद्योगिनः पुरः ॥ १०५ ॥ यदा योगी गृहीत्वाथ मालां मौनाश्रितोऽभवत् तदा कन्या वरं मत्वा गूढवेषं समाहिता ॥ १०६ ॥ पिता धात्र्या नृपैर्बाला निषेध्य स्थापिता यदा । कापाली क्रोध-संपूर्णः प्रेतारण्यं ययौ ध्रुवं ॥ १०७ ॥ चित्तेऽसौ चिंतयामास चिरं चेति विचक्षणा । मामागतवती कन्या वारिता ते नृपैर्हठात् ॥ १०८ ॥ किं करोमि महापापधारिणां दुस्सहं त्वरा । पतेर्या दुर्धियां राज्ञां ध्यात्वेति निशि तस्थिवान् ॥ १०९ ॥ स्मशाने सर्पदुर्यक्षयूथवल्गनभीकरे । रुधिरोद्गारसंसिक्तभूतले कातराशिनि ॥ ११० ॥ (युग्मं) तत्र संसाधयामास विद्यां

अपने पति मणिचूलकी यह बात सुन रम्भाको बडी हंसी आई एवं हंसी करनेके लिये पतिके गले-से उसने मंदार पुष्पोंकी माला निकाल कर कापाली योगीके सामने पटक दी ॥ १०२-१०५ ॥ योगीने शीघ्र ही माला उठाकर अपनें गलेमें डाल ली और वह मौन धारण कर चुप चाप बैठ गया। कन्याको भी वह पता लग गया कि गूढ़ वेषका धारक वर प्राप्त हो चुका है इसलिये वह शीघ्र ही योगीके पास आने लगी ॥ १०६ ॥ कन्या परमसुन्दरीकी यह दशा देख उनके पिता धाय और राजाओंने उसे रोक दिया, कपालीके पास नहीं आने दिया यह देख कपाली एकदम क्रुद्ध हो गया और वह शीघ्र ही प्रेतारण्य वनकी श्मशान भूमिके अन्दर चला गया ॥ १०७ ॥ वहां पहुंचकर वह योगी अपने मनमें यह विचार करने लगा कि—

देखो वह दिव्य मूर्ति चतुर कन्या अपनी प्रतिज्ञानुसार मुझ पर आसक्त हो मेरी ओर आती थी सो इन राजाओंने जबरन उसे आनेसे रोक दिया। ये राजा लोग महा पापी और दुर्बुद्धि हैं। मुझे इनके लिये कोई ऐसा दुःखजनक कार्य करना चाहिये जिससे ये कष्ट भोगें, बस ऐसा दृढ़ विचार कर वह योगी स्मशानभूमिके ऐसे प्रदेशमें बैठ गया जो कि भयङ्कर सर्प और राक्षसोंके फुत्कार और धुत्कारोंसे भयङ्कर था। जिसका पृथ्वीतल रुधिरके फव्वारोंसे सदा तल बतल रहता था और कातर डरपोकोंको निगलनेवाला था ॥१०८-११०॥ वह योगी उस भयङ्कर स्मशानभूमिमें किसी मृत मनुष्यके मस्तक पर आसन जमाकर बैठ गया और वज्रशृंखलिका नामकी भयङ्कर

योगी महामनाः । वज्रश्रृंखलिकां नाम्ना स्थित्वा मानुषमस्तके ॥ १११ ॥ निशीथे दारयंती सा पद्मिन शब्दाहुरुन्नता । शैल न् किलकिलारावलंपूरितनमस्तला ॥ ११२ ॥ वक्त्रविंशतिसंयुक्ता तत्रागत्याब्रवीदिति । कोऽसि त्वं च कथंकारं स्थितोऽस्यत्र महावने ॥ ११३ ॥ इत्युक्त्वा भर्त्सयंती तं चालयंती तदापि सः । न चचालासनाद्योगी प्रत्यक्षीभूयमागता ॥ ११४ ॥ वरं वृणीश्व हे वत्स ! वांछितं ते दुरासदं । तदा श्रुत्वा महादेव्या वचनं कौलिको जगौ ॥ ११५ ॥ दद्याश्चेत्वं वरं मह्यं तर्हि भाग्योदयो मम । सर्वा विद्या प्रसन्नाश्च दुर्जयश्च परैरपि ॥ ११६ ॥ वर प्रामाण्यतो मातर्यक्षयोर्यो

विद्या सिद्ध करने लगा ॥ १११ ॥ वह वज्रश्रृंखलिका नामकी विद्या छत्तीस भुजाओंकी धारक थी अपने किल किल शब्दसे समस्त आकाश मराडलको गुजानेवाली थी एवं चौबीस उसके मुख थे वस अपनी प्रचंडतासे अनेक दुधर पर्वतोंको ढहाती हुई वह विद्या शीघ्र ही कापालीके पास आई और रूच शब्दोंमें इस प्रकार उसे धमकाने लगी—

अरे तू कौन है और किस आशासे इस भयङ्कर महा वनके अंदर आकर बैठा है ? इतना ही नहीं अनेक उपायोंसे उस योगीको ताड़ने लगी और आसनसे डिगाने लगी परन्तु वह योगी अपने अटल सिद्धांत पर दृढ़ था इसलिये उस विद्या द्वारा अनेक प्रकारसे डराने पर भी वह रंचमात्र भी अपने ध्यानसे न डिगा अचलरूपसे अपने आसन पर स्थिर रहा आया अंतमें वह विद्या प्रत्यच होकर सामने आकर खड़ी हो गई एवं उस कपालीसे प्रसन्न हो इसप्रकार कहने लगी—

वत्स ! मैं तुमसे राजी हुई, कठिनसे कठिन अपनी इच्छानुसार वर मागो मैं देनेको तयार हूं। वस महा देवीके ऐसे प्रसन्न वचन सुन कापालीने कहा—मां ! यदि तुम मुझे वर देना चाहती हो तो मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूं आपके वर प्रदानसे मैं यह समझता हूं कि समस्त विद्यायें मुझसे प्रसन्न हो चुकी और मैं अत्यन्त वलवान भी शत्रुओंके लिये दुर्जय हो गया। मातेश्वरी! मैं आपसे यह वर चाहता हूं कि आप रणके मैदानमें युद्ध करनेके लिये दो यचोंको दें

भयेति भो !। रंगे कालाक्षयोः सर्वराजहन्तांद्रुपक्षनोः ॥ ११७ ॥ देवी तथास्त्विति प्रोक्त्वा जगाम स्वीयमंदिरम् । प्रातर्गीत महारंगे राजपुत्राः समाहिताः ॥ ११८ ॥ नानावादितनिर्घोषं तंत्रीकंठसमुद्भवं । रागं गीतं तदा श्रुत्वा कन्या धात्रिकयागना ॥ ११६ ॥ यावत्पश्यति भूपालान् किरीटस्तबकावलीन् ।, कृतुचेष्टासशृंगारान् तावद्योगी समाययौ ॥ १२० ॥ अंगभस्म-जटाजूटदुर्निरीक्ष्योऽस्थिमालधृत । करकंबुर्हसन्नीषद्रक्तनेतोऽय दंतुरः ॥ १२१ ॥ आगत्य परिषन्मध्ये स्थितो वज्रासनालये । रुद्राक्षमहामालः स्थिरः कीनाशसंभवः ॥ १२२ ॥ अयो दृष्ट्वान्तकं कन्या हसंत्या याति योगिनं । स्वीकर्तुं राजभिः

जो यम कालके समान हो। समस्त राजाओंको नष्ट करनेवाले हो और पाषाण सरीखे दृढ़ हो। ॥ ११२-११७ ॥ देवीने 'तथास्तु, कहकर अपने निवासस्थानकी ओर प्रयाण किया। योगीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रातः काल होते ही समस्त राजकुमार स्वयंवर मंडपमें आकर अपने अपने स्थानोंपर बैठ गये। अनेक प्रकारके वाजे वजने लगे। तंत्रियोंके कंठोंसे जायमान भांति भांतिके राग और गीत छिड़ने लगे। कन्या परम सुन्दरीने भी वाजोंकी आवाज और गाने सुने और वह धायको लेकर स्वयंवर मण्डपमें आगई ॥ ११८—११६ ॥ जिनके मस्तकोंपर भांति भांतिके मुकुट शोभायमान हैं। जिनकी चेष्टा कामदेव सरीखी है और जो नाना प्रकारके शृंगारोंको किये हैं ऐसे उन राज कुमारोंको वह कन्या देख ही रही थी कि उसी समय वह योगी आया ॥ १२० ॥ वह साधु अङ्गमें भभूति रमाये था। उसके जटाके वाल बिखरे थे इसलिये वह बड़ा भयंकर जान पड़ता था। तथा. हाडोंकी माला लिये था उसके हाथमें शंख था। हंस रहा था। उसके नेत्र कुछ रक्त थे और बड़े २ दांत बाहर निकले हुए थे। स्वयंवर मण्डपके मध्यभागमें आकर वह वज्रके समान दृढ़ आसनसे बैठ गया। हाथमें रुद्राक्षकी माला धारण करली एवं साक्षात् यमराज सरीखा जान पड़ता था ॥ १२०—१२२ ॥ मन्दार पुष्पोंकी मालासे विराजमान योगीको देखकर कन्या परम सुन्दरी बड़ी खुशी हुई और उस योगीको वर बनानेके लिये उसकी ओर बढ़ने लगे

सर्वं भ्रमद्भ्रमरमंडितं। पुष्पितं फलितं चेति विना कालं नराधिपः ॥ १३५ ॥ श्रुत्वा चेत्युत्थितश्चक्री परोक्षविनयान्वितः । ददौ-तस्मै महादानं संतुष्टो रत्नहाटकं ॥ १३६ ॥ दापयित्वा महानंददुंदुभिः पत्तने निजे । जनान् जनान् ज्ञायपतिस्माशु स्वयंभूर्ह-र्षितोतरे ॥ १३७ ॥ सभ्रातृकः सपर्यायश्चचाल नागरैः सर्म । वंदितुं जगतां नाथं नागमारुह्य मागधः ॥ १३८ ॥ घटद्घोटक सघाताः प्रचेलुर्विविधत्विषः । सूर्यससिसमाकारः सुरैर्भिन्नाद्रिभूरुहाः ॥ १३९ ॥ नागा नेदुः समुत्तुंगाः पर्वता जंगमा नु वा । वाद-

प्रभावसे असमयमें भी वनके समस्त वृक्ष फल फूलोंसे लदवदा गये हैं और जहां तहां घूमते हुए भ्रमर गण उनपर गुंजार शब्द कर रहे हैं। १३०—१३५। मालीके मुखसे ये आनन्द प्रदान करनेवाले बचन सुन नारायण स्वंयभू एकदम सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। परोक्ष विनय की। एवं शुभ समाचार सुननेके कारण संतुष्ट हो उसे रत्न सुवर्णका वहुतसा दान दिया ॥ १३६ ॥ चित्तमें अत्यंत हर्षायमान राजा स्वयंभू से शीघ्र ही समस्त नगरमें आनंद भेरी बजवा दी और भगवान विमलनाथके समवशरणका आना समस्त पुर वासियोंको जना दिया। वह पुण्यवान स्वं-यंभू तीन लोकके नाथ भगवान विमलनाथकी वंदना करनेके लिये शीघ्र ही हाथीपर सवार हो गया तथा भाई परिवार और पुरवासियोंके साथ शीघ्र ही वनकी ओर चल दिया ॥ १३७—१३८ ॥ रंग त्रिरंगी कांतिसे शोभायमान हींस लगाते हुए अनेक घोड़े चलने लगे जो कि सूर्यके घोड़ोंके समान जान पड़ते थे और अपने खुरोंसे वृक्ष और पर्वतोंको ढाह देनेवाले थे। बड़े बड़े ऊंचे हाथी चलने लगे जो कि जंगम चलते फिरते पर्वत सरीखे जान पड़ते थे। तथा उनके गंडस्थलोंपर सिंदूर लगा हुआ था और मद भी झरता था इसलिये वे हाथी ऐसे जान पड़ते थे मानो चमकती हुई बिजलीसे शोभायमान ये मेघ ही हैं ॥ १३९—१४० ॥ उस समय हक्का, छक्का, हांको, हटाओ इत्यादि शब्दोंसे समस्त आकाश मंडल व्याप्त था। अनेक प्रकारके बाजोंके शब्द हास्योंके शब्द और आनंद पूर्वक वजाये गये तालोंके शब्द हो रहे थे इसलिये आपसमें एकको दूसरेका शब्द नहीं

अपल्या युक्ता दानवारिसान्विताः॥१४०॥ढक्का छक्का रवैर्नूनं कर्णाभ्यां श्रूयते नहि। नाना तूर्यरवै र्भूयो हास्यैरानन्दतालकैः॥१४१॥ गजाश्वक्षुररू भूतरजोभिरछादितो रविः॥ लक्ष्यतेस्म यतो नैव घस्रे रात्रीयते भृशं ॥ १४२ ॥ एवं महा विभूत्या स गत्वा- ऽर्द्धचक्रभृत्परः। दृष्ट्वैव दूरतो वेगान्मानस्तंभं हिरण्मयं ॥ १४३ ॥ उत्ततार गजाद्भव्यो विछत्रो हर्षरोमधुः। पश्यन् पश्यन् महाशोभां मध्ये गत्वा जिनाधिप॥१४४॥ त्रिः परीत्य त्रिधा भक्त्या स्तुत्वा गद्यादिभिः परैः। ननाम शीरिणा युक्तो महयामास केशवः॥

सुनाई पड़ता था ॥ १४१ ॥ हाथी और घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलिसे सूर्य एक दम ढक गया था दीख नहीं पड़ता था इसलिये दिनके अंदर भी रात जान पड़ती थी ॥ १४२ ॥ इसप्रकार विशाल विभूतिसे मंडित वह अर्धचक्री स्वयंभू भगवान विमलनाथकी वंदनाके लिये चल दिया वनमें पहुंचते ही दूरसे ही उसे सुवर्णमयी मानस्तंभ दीख पड़ा भव्य जीव वह स्वयंभू शीघ्र ही हाथीसे उतर पड़ा। छत्र चमर आदि विभूतिसे वहींपर छोड़ दी। मारे आनंदके उसका शरीर पुलकित हो गया। समवशरणकी जहां तहांकी शोभा निरखता हुआ उसने भीतर प्रवेश किया। भगवान जिनेन्द्रकी तीन प्रदक्षिणा कीं महामनोहर गद्योंमें स्तुति की एवं अपने भाई धर्मनाथ बलभद्रके साथ भक्तिपूर्वक जल आदि अष्ट द्रव्योंसे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १४२—१४३॥ सबसे पहिले चक्रवर्ती स्वयंभूने भौरोंके समूहसे व्याप्त जो कमल उनकी प्रभासे जाज्वल्यमान सुवर्णमयी झाड़ियोंमें रक्खे हुये जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा की। अन्य सिद्धांतकारों की शंका—

जब जलकी एक बूंदके अन्दर भी असंख्याते जीव हैं ऐसा भगवान अर्हंतके मुखसे निकले शास्त्रोंमें कथन है तब धर्मके लिये जलकी स्थूल धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा पुण्य कार्य कैसे समझा जा सकता है? उत्तर, जिसप्रकार अग्निकी छोटीसी कणीसे भी बड़े २ काष्ठ भस्म हो जाते हैं उसीप्रकार भगवान अर्हंतकी पूजासे जायमान पुण्यसे बलवान भी पापोंकी लड़ियां देखते

॥ १४५ ॥ भृंगराजिसमाश्वासपीताम्भोजोद्भवा प्रभा । पूरितस्वर्णभृंगारप्रणालजलधारया ॥१४६॥ (युग्मं) अहो एकस्मिन् पयोबिंदावसंख्याता जंतवः प्रण्यगद्दिषतागमैरर्हद्वक्त्रसंभूतैश्चेत् तर्हि धर्मार्थं स्थूलजलधारया समर्हणं कथं संजाघटीत्याशङ्क्याहुर्निगमाः ॥१४७॥गणास्तानित्याहुः—अर्हणोद्भूतपुण्येन क्षीयंते पापराशयः । अंशेनैकेन वह्नेश्च काष्ठनीव महागमाः ॥१४८॥ अहो प्राचीनांहसि भूयस्यपि सति पुनरसंख्यजंतुमयपयोधारोद्भूताहोराशिनिरयाद्विनास्यदं न विदध्यादित्याहुराशंक्य निगमाः ॥४६॥ गणास्तानित्याहुः—

देखते नष्ट हो जातीं हैं ऐसा शास्त्रका वचन है इसलिये जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करना अनुचित नहीं । शंका—

आत्माके साथ प्रथमसे ही अगणित पापोंका संबन्ध विद्यमान है यदि असंख्यात जीव स्वरूप जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा की जायगी तो उससे जायमान पापोंका समूह नियमसे नरक ले जायगा इसलिये जलकी धारासे पूजा करना ठीक नहीं है ? उत्तर, जिसप्रकार संपूर्ण चन्द्रमामें थोड़ीसी कलंककी रेखा कुछ भी हानि नहीं करती—चंद्रमा स्वरूप ही मानी जाती हैं उसीप्रकार जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करनेपर अनंते पुण्य परमाणुओंका वन्ध होता है उनके सामने जलकी धारासे पूजन करनेपर जो पाप होता है वह नहीं सरीखा होता है । विशेष पुण्य परमाणुओंके सामने थोडीसी पाप परमाणु अपना बल नहीं दिखा सकती अर्थात् वे पुण्य स्वरूप ही परिणत हो जाती हैं ऐसा शास्त्रका उपदेश है इसलिये जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करना किसी प्रकारका अनर्थ नहीं कर सकता । फिर भी शंका—

अग्निकी बहुत चिनगारी भी जिनकी डालियोंपर भांति २ के पुष्प खिल रहे हैं ऐसे महामनोहर हरे वृक्षोंसे मंडित वनको देखते देखते खाख कर डालती है उसीप्रकार जलकी धारासे पूजन करनेपर उससे जायमान थोड़ासा पाप भयंकर अनर्थ कर सकता है इसलिये पापको उत्पन्न

अर्दणात्पुण्यराशीनामानं स्यात्पापलेशतः । कियती ग्लानि संपूर्णे लक्ष्मलेश इवागमाः ॥ १५० ॥ अहो चिनभानुनेशाऽपि निश्चलया- ग्रुद्गीर्णविकस्वरकुसुमचयहरिततरुखंडमंडितं वनं किं न प्रप्लोषत इत्याशंषयाहुर्निगमाः ॥ १५१ ॥ गणास्त निरयाहुः— वड्वावह्निना नूनं प्रौढजालेन वारिधिः । लोलत्कल्लोलगंभीरोऽपायीति न कदा श्रुतं ॥ १५२ ॥ तथा स्वल्पांहसा पुण्यवारिधिर्नैव लंघ्यते । अंतरंगविधिः प्रायो वहिरंगाद्बली मतः ॥ १५३ ॥ अहो गार्हस्था क्रियोत्पन्नाहः प्रणाशो भगवत्पदाम्भोजाश्रयनः स्यात् । धर्मास्थदेयकार्थेस्तजलु वत्र वज्राग्ने नद्‌ग्गारोहनं दुष्करमित्याशंषयाहुर्निगमाः

करनेवाली जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करना अनुचित है ? उत्तर, वड़वानल जातिकी अग्नि वड़ी प्रौढ़ और तीव्र होती है और वह समुद्रमें उत्पन्न होती है ऐसी कवि समय प्रख्याति है वह तीव्र अग्नि भी समुद्रकी रंचमात्र भी हानि नहीं करती उसके विद्यमान रहते भी झकझकाती हुई तरंगोंसे सदा गम्भीर वना रहता है उसीप्रकार जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा किये जाने पर पुण्यका तो संचय होता है और और पापका उपार्जन वहुत थोड़ा होता है इसलिये वह थोड़ासा पाप विशाल पुण्यरूपी समुद्रको लांघ नहीं सकता यह न्याय भी है कि अन्तरङ्गविधिसे वहिरङ्ग विधि वलवान होती है । पुण्य अन्तरङ्ग विधि है और पाप वहिरंग विधि है वहिरंग विधि स्वरूप पाप अन्तरङ्ग विधि स्वरूप पुण्यको वाधा नहीं पहुंचा सकता इसलिये जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजाका निषेध नहीं किया जा सकता । फिर भी शंका—

गृहस्थाश्रमके कार्योंके करनेसे जो पाप उत्पन्न होगा उसका विनाश भगवान जिनेंद्रके चरण कमलोंकी सेवासे हो सकता है परन्तु धर्मके स्थानमें जो पातक किया जायगा वह वज्रसे भी अधिक कठिन होगा उसका नाश न हो सकेगा इसलिये जल धारासे पूजन करनेपर जो भी पाप उत्पन्न होगा वह भी मिट नहीं सकता इसलिये जलकी धारासे पूजा नहीं करनी चाहिये ? उत्तर,

॥१५४॥ तानित्याहुर्गणाः—ऋषीणां च मुनीनां च यतीनां च समर्हणं। स्मृतिदर्शनमथो भावैर्नतंभगवतो मतं॥ १५५॥ गार्हस्थोत्पन्न पापस्य प्रणाशः पूजनादिभिः। अन्यथा वज्रलेपः स्यादतो मार्गो न लुप्यते॥ १५६॥ अहो साम्प्रतमगर्घाखिलं भवद्भिर्भगवदनुचरैर्यच्च तदच्छमनुसृत्य वय भगवत्तुजः सानन्दाःस्मोऽतोऽनुवादेन भूयसा वृतमिति गृहिणामर्हण

भगवान जिनेंद्रका सिद्धांत है कि ऋषी मुनि और मुनियोंकी भलेप्रकार पूजन उनके गुणोंका स्मरण ध्यान और उत्तम परिणामोंसे उन्हें नमस्कार करना चाहिये। इसी कारण जल धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करना अनुचित नहीं॥ १४४—१५६॥ पुनः शंका—

बड़े ऋषि जो कि रात दिन घोर तपोंको तप पुण्य संचय किया करते हैं यदि वे जलसे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करें तब तो यह मान लिया जा सकता है कि जलसे पूजन करने पर जो पाप होगा उसे मुनिगण नष्ट कर सकते हैं परन्तु गृहस्थ जो कि रात दिन पापोंका संचय करते रहते हैं यदि वे जलसे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करेगे तो और भी पापका बोझा उनपर लदेगा उनका पापोंका भार हलका नहीं हो सकता इसलिये हिंसा जन्म पातकके भयसे जब मुनिगण जलसे पूजा नहीं करते तब गृहस्थोंको तो जलसे पूजा करनी ही नहीं चाहिये इसलिये जलसे पूजाकी जो पुष्टि की गई है वह मिथ्या है? उत्तर, मुनिगण समस्त प्रकारके आरम्भके त्यागी हैं इसलिये शास्त्रमें भगवानकी पूजा लिये उन्हें आज्ञा नहीं किंतु गृहस्थ घरमें फसा रहनेके कारण अनेक प्रकारके आरंभोंको करता रहता है और उन आरंभोंसे अनंते पापोंकी उत्पत्ति होती रहती है। उन पापोंका नाश भगवान जिनेंद्रकी पूजा आदिसे ही होता है इसलिये गृहस्थ अवस्थामें उत्पन्न होने वाले पापोंकी शांतिके लिये भगवान जिनेंद्रकी पजा करना आवश्यक है। यदि पूजन आदिसे उन पापोंकी शांति न की जायगी तो वह पाप बज्र पाप हो जायगा उसका नाश जल्दी नहीं हो

१। वहिरंगतोऽतरंग विधि बलवान।

नोपपनीपद्यते ॥ १५७ ॥ इति दुर्वचं । १५८ । स्वच्छया धारया राज्ञे कस्य शान्तिः प्रजायते । इहैव वांछितार्थाप्तिरतः स्वीक्रियतेऽर्थनः ॥ १५९ ॥ (संबंधगुसमदः) अमुत्रेह शसिद्ध्यर्थं वपुषः केशवः शिवः । चंदनैश्चंदनैर्हमर्हंशमास नाः पतिः ॥ १६० ॥ (समासगुसमदः) अष्टमी चन्द्रसंकाशै स्तंदुलैः सुदृढैर्दलन् । अमीमर्हज्जिनं चक्री भूरिभूत्यै च भक्तिनः ॥ १६१ ॥ मन्दारकुसुमव्रातैरिया ॥

सकेगा इसलिये पूजा आदिका मार्ग जो शास्त्रके अंदर पुष्ट किया गया है उसको न लोपना चाहिये इसलिये जल आदिसे जो भगवान् जिनेंद्रको पूजा की जाती है वह पापोंको उत्पन्न नहीं करती किन्तु पुण्योत्पादक होती है । पुनः शंका—

भगवान् जिनेन्द्रके भक्तोंका यह कहना है कि हमें भगवान् जिनेंद्रका स्वरूप वा उनके गुणोंका स्मरण करनेसे ही आनन्द प्राप्त हो जाता है इसलिये इस विषयमें हमारा (शंकाकारका) यही खास लक्ष्य है कि जब गुणोंके स्मरण करनेसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है तब जल आदिसे पूजाका करना व्यर्थ है इसलिये भगवान जिनेन्द्रकी जो जलकी धारासे पूजा की जाती है वह हिंसाकी कारण होनेसे उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकती ? उत्तर—जलकी स्वच्छ धारासे भगवान जिनेन्द्रका पूजन करने पर राज्यमें विघ्नोंकी शांति होती है तथा इसी लोकमें अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है इसलिये जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा की जाती है । इसप्रकार अर्धचक्री स्वयंभूने जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा की ॥ १५६—१५९ ॥ कल्याण स्वरूप अर्धचक्री उस स्वयंभूने इस लोक और परलोकमें शरीरके कल्याणकी सिद्धिके लिये शीतलता प्रदान करनेवाले चन्दन द्रव्यसे भगवान जिनेंद्रकी पूजा की ॥१६०॥ जो तंदुल अखण्ड थे और उज्ज्वलतामें अष्टमीके चंद्रमाकी तुलना करते थे उन तंदुलोंसे स्वयंभू नारायणने विशाल विभूतिकी प्राप्ति की अभिलाषासे भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्रकी पूजा की ॥१६१॥ समस्त प्रजाकी रक्षा करनेवाले उस चक्रवर्तीने जिनका रस झन्कार करते हुए भौंरोंसे पीया गया है और जो अत्यन्त मनोहर हैं ऐसे मन्दार जातिके

जोनप जिनं। गुंजदल्यालिसंपीतमकरंदैर्मनोरमैः ॥ १६२ ॥ चर्वभिश्चारुघीर्घोरं घृतपूरादिजातिभिः । अपीपूजदसौ सर्वसाम्राज्यस्य विभूतये ॥ १६३ ॥ ज्वलंतं मेरुप्रस्थं वा पतंगं वा पुरोर्हतः । चर्करीतिस्म लोकात्रः केवलावगमाप्तये ॥ १६४ ॥ चन्दनागुरुकर्पूरपूरधूपमचोक्षिपत् । कर्मणां हानये राजा गन्धपूरितदिक्चयं ॥ १६५ ॥ त्रिःकृत्वोऽसौ समुत्तार्य लोकेशस्य पुरः पतिः । फलानि श्रीफलादीन्यमूमुचत्सत्फलाप्तये ॥ १६६ ॥ जन्ममृत्युजरादीनां दुःखानां हानिहेतवे । स भावो भवनाशाय महार्घं प्राजलिर्ददौ ॥ १६७ ॥ संपूज्य नरसत्कोष्ठे भ्रातरौ तस्थतुः शुभौ । श्रुत्वा तत्त्वामृत सीरी पप्रच्छेति जिनं नमन् ॥१६८॥ हे नाथ ! जगतां वन्धो ! कर्मांद्रि

कल्प वृक्षोंके पुष्पोंसे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा की।१६२। उत्तम बुद्धिका धारक वह नारायण स्वयंभू समस्त साम्राज्य विभूतिकी प्राप्तिकी अभिलाषासे उत्तमोत्तम नैवेद्योंसे पूजा करने लगा जो नैवेद्य चीर और घृत आदि अतिशय उत्तम पदार्थोंसे तैयार किये गये थे ॥ १६३ ॥ अर्धचक्री स्वयंभूने केवल ज्ञानकी प्राप्तिकी अभिलाषासे दीपकसे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा की, जो दीपक ऐसा जान पड़ता था मानो सुवर्णमयी मेरु पर्वतका यह पत्थरका खण्ड है अथवा यह देदीप्यमान सूरज है ॥ १६४॥ जो धूप चन्दन अगुरु और कपूरसे तैयार की गई थी ऐसी धूपसे समस्त कर्मोंके नाशकी अभिलाषासे राजा स्वयंभूने भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की उस धूपकी इतनी उत्कट सुगन्धि थी कि उससे समस्त दिशाओंका मंडल महक उठा था ॥ १६५ ॥ अर्धचक्री स्वयंभूने उत्तम फल मोक्ष फलकी प्राप्तिकी अभिलाषासे श्रीफल आदि फलोंसे भरी रकेबीको तीन वार भगवान् जिनेन्द्रके सम्मुख उतारी और उन उत्तम फलोंसे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १६६ ॥ अन्तमें जन्म मरण आदि और वृद्धावस्था आदि दुःखोंकी शांतिकी अभिलाषासे संसारके विनाशार्थ चक्रवर्ती स्वयंभूने हाथ जोड़ भगवान् जिनेन्द्रको महार्घ दिया अर्थात् महार्घसे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १६७ ॥ बस इस प्रकार आठो द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्रकी पूजा कर वे दोनों भाई धर्म और स्वयंभू समवसरणके नरकोठेके अन्दर बैठ गये । भगवान जिनेन्द्र जिस धर्मामृतका उपदेश दे रहे थे उसे

वज्र ! काममुद् ! , रुङ्विनाशिन् कथं जीवो याति स्वर्गे सुखप्रदे ॥ १६९ ॥ छेदनादिमहादुःखसंकुले श्वभ्रसागरे । पतत्येव कथंकारं वद त्वं शिवनायक ! ॥ १७० ॥ कुनरतिर्यग्भवे जीवो मानुषत्वं श्रयेत्कथं । पुरुषत्वं च नारीत्वं जायते केन कर्मणा ? ॥ १७१ ॥ अल्पायुर्नाथ ! बह्वायुः कथं जीवः प्रजायते । भोगहीनः कथं देव ! तत्संयुक्तः कथ वद ॥१७२॥ सौभाग्यं चाथ दौर्भाग्यं कथं संपद्यते नृणा बुद्धिमान् विबुद्धिः केन कर्मणा जायते नरः ॥ १७३ ॥ पंडितश्च महामूर्खो धीरधीः कातरस्तथा । लक्ष्मीयुक्तो विलक्ष्मीकः कथं

भक्ति पूर्वक सुना एवं अन्तमें भगवान जिनेन्द्रको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वलभद्र-धर्मने इसप्रकार भगवान् जिनेन्द्रसे पूछा—

भगवन् ! आप तीनों लोकके वंधु हैं । कर्मरूपी पर्वतको छिन्न भिन्न करनेवाले वज्र हैं । कामदेवको नष्ट करनेवाले हैं । समस्त प्रकारके रोगोंके विनाशक हैं कृपाकर वताइये यह जीव कैसे तो अनेक सुखोंको प्रदान करनेवाले स्वर्गके अन्दर जन्म लेता है और कैसे छेदन भेदन आदि अनेक प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त नरक रूपी समुद्रमें गिरता है ? प्रभो ! आप मोक्ष लक्ष्मीके स्वामी है इसलिये कृपाकर कहें ॥ १६८—१७० ॥ कृपानाथ ! कैसे तो यह जीव तियञ्च योनिके अन्दर जन्म लेता है ? कैसे यह मनुष्य योनिके अन्दर जन्म लेता है ? मनुष्य योनिके अन्दर भी किन कर्मके उदयसे इसे मनुष्य होना पड़ता है और कैसे स्त्री हो जाता है । बहुत जीव थोड़ी आयुके धारक दीख पड़ते हैं और बहुतसे अधिक आयुवाले दीख पड़ते हैं इसलिये कृपया कहिये कि— कैसे तो थोडी आयुवाले जीव होते हैं और कैसे बहुत आयुवाले जीव होते हैं । संसारमें बहुतसे जीव ऐसे हैं जिन्हें कुछ भी भोग सामग्री प्राप्त नहीं और बहुतसे ऐसे हैं जिन्हें नानाप्रकारके भोग प्राप्त हैं कृपाकर बतलाइये कि कैसे तो मनुष्य भोग रहित उत्पन्न होते हैं और कैसे भोग सहित उत्पन्न होते हैं ? संसारमें किस कारणसे मनुष्योंका सौभाग्य होता है और किस कारणसे दुर्भाग होता है ? कैसे मनुष्य बुद्धिमान होते हैं और कैसे निर्बुद्धि होते हैं ? कैसे पण्डित और

जायेत मानुषः ॥ १७४ ॥ जंजन्यंते शुभाः पुत्रा मेम्रियंते कथं विभो ! जेजीव्यन्ते गणाधीश ! कर्मणा केन सत्सुताः ॥ १७५ ॥ रात्र्यंधा वधिराः केन कर्मणा काय सर्ववित् । सुकठोरादिभीरोगै पीड़िताश्च कुतो वद ॥ १७६ ॥ परकृत्यकरा जीवा दरिद्राःकेन कर्मणा । नीरोगाः अतिरोगाश्च मूकास्तु पंगवः कथं ॥ १७७ ॥ भूरिरूपा विरूपाश्च वेदनासहिताः कथं । निर्वेदाश्चापि भो ईश ! जायते मानुषा वद ॥ १७८ ॥ संबोभवीति पञ्चाक्ष एकाक्षः केन कर्मणा । कोष्ठयुक्ता नरा नाथ ! संपद्यंते कथं भवे ॥१७९॥ अल्पसंसारका जीवा भूरिसंसारकास्तथा । शिवभाजो भवंत्येव वद त्वं केन हेतुना ॥ १८० ॥ वल्गुल्योलूकमार्जारा श्वानो ध्वांक्षाश्च गर्दभाः । चाण्डालाः केन जायंते कर्मणा वद संप्रति ॥ १८१ ॥ अज्ञानतमसो भानो ! ज्ञानमूर्ते !! शिवप्रद ! भव्यौघकुमुदव्रात-चन्द्रमः ! कमलापते ॥ १८२ ॥ कथय त्वं मयोक्तं यद्‌विलंबं दयानिधे ! भव्याः शुश्रूषवः संति विपाक कर्मणां घनं ॥१८३॥ व्याजहार

मूर्ख, कैसे धीर वीर और डरपोंक एवं कैसे धनी और निर्धनी होते हैं ? । प्रभो ! किस कारणसे तो संसारमें शुभ पुत्रोंकी प्राप्ति होती है किस कारणसे वे मर जाते हैं तथा जो श्रेष्ठ पुत्र जीते हैं वे किस कारणसे जीते हैं ? । भगवन ! आप यह भी कहें कि किस किस कर्मके उदयसे मनुष्य रतोंदवाले वधिर कंठ और उदर आदिके अनेक रोगोंसे पीड़ित परोपकारी और दरिद्री, अत्यन्त रोगवाले और निरोग मूक (गूंगे) लंगड़े, अत्यन्त रूपवान और कुरूप, वेदनाओंके भोगनेवाले और वेदना रहित पंचेन्द्रिय और एकेंद्री कोढ़ी थोड़े दिन संसारमें रहनेवाले और वहुत दिन पर्यन्त संसारमें रहनेवाले एवं मोक्ष प्राप्त करनेवाले होते हैं ? तथा बगुली, उल्लू, विल्ली, कुत्ता, काक, गधे चांडाल आदि जीव किस कर्मके उदयसे होते हैं ? । हे नाथ ! आप अज्ञानरूप अन्धकारके नाश करनेके लिये साक्षात् सूर्य समान हैं । ज्ञानकी मूर्ति स्वरूप हैं । मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । भव्य रूपी रात्रिविकासी कमलोंके प्रकाश करनेके लिये चन्द्रमा स्वरूप है । लक्ष्मीके स्वामी हैं । हे दया निधि ! मैंने जो कुछ पूछा है कृपाकर शीघ्र उसका उत्तर दीजिये उपस्थित ये समस्त भव्य जीव कर्मोंके विचित्र विपाक फलके जाननेके लिये लालायित हो रहे हैं ॥ १७१-१८३ ॥ वलभद्र धर्मका

तदा देवो वाण्या गंभीरया यकं । गर्जद्घनरवाशंकां दधत्या केकिमुद्दया ॥ १८४ ॥ साधु पृष्टं त्वया वत्स ! भव्यानां सुहितं मतं । शृणु दत्तावधानः सन् निगदामि समासतः ॥ १८५ ॥ हिंसाकरा असत्या ये परस्त्रीधनतस्कराः । मायाहङ्कारसंयुक्ता सदा छिद्रप्रकाशकाः ॥ १८६ ॥ कृतघ्नाः पापिनः श्वभ्रं याति दुःखार्णवं प्रति । दानिनो देवपूजार्हास्तापसाश्च जितेंद्रियाः ॥ १८७ ॥ निर्मला मनसा , वत्स ! मृदवो माधुरोस्साः । गुरुभक्ता नरा ये वै स्वर्गं यांति शिवास्पदे ॥ १८८ ॥ स्वकृत्यार्थं च कुर्वंति स्नेहं ये क्रूरदर्शनाः । अंतर्दुष्टाशयाः सेर्ष्या बहुमायाविडंबिताः ॥ १८९ ॥ बह्वाशिनो हि मूढाश्च बहुस्वप्ना-

ऐसा प्रश्न होनेपर भगवान जिनेंद्र गंभीर वाणीसे उसका उत्तर देने लगे ।.भगवान जिनेंद्रकी वाणी उस समय इतनी गंभीर थी कि वह गर्जते हुए मेघकी ध्वनिकी शंका उत्पन्न करती थी और उसके सुनने मात्रसे मयूर गण अतिशय आनंदका अनुभव करते थे । भगवान जिनेंद्र कहने लगे प्रिय वत्स ! तुमने वहुत ठीक पूछा । इसप्रकारके उपदेशको सुनकर भव्य लोग अपना वास्तविक हित संपादन कर सकते हैं, ध्यान लगाकर सुनो किस कर्मका क्या फल है मैं संक्षेपसे कहता हूं—

जो मनुष्य हिंसा करने वाले हैं । असत्य बोलने वाले हैं । पराई स्त्री और पराये धनके चुराने वाले हैं । छल छिद्र कपट और अहंकारके पुञ्ज हैं । सदा पराये छिद्र प्रकाशने वाले हैं, कृतघ्न और पापी हैं वे दुःखोंके समुद्र स्वरूप नरकमें जाते हैं किन्तु जो मनुष्य दानी हैं । सदा भगवान जिनेंद्रकी पूजा करनेवाले हैं । तपस्वी हैं इन्द्रियोंके जीतनेवाले हैं । निर्मल चित्तके धारक हैं । कोमल परिणामी और मधुर बोलने वाले हैं और निर्ग्रन्थ गुरुओंके भक्त हैं वे मनुष्य अनेक कल्याणोंके स्थान स्वर्गमें जाकर जन्म धारण करते हैं ॥ १८४—१८८ ॥ जो मिथ्यादृष्टि जीव अपने प्रयोजनके लिये दूसरेके साथ स्नेह जनाते हैं । अन्तरंगका अभिप्राय जिनका दुष्ट रहता है । सदा ईर्षा करते रहते हैं । छल छिद्र कपटमें सदा रंगे रहते हैं । बहुत खानेवाले होते हैं तथा बहुत सोनेवाले और आलसी होते हैं वे मूढ़ पुरुष तिर्यंच गतिमें जाकर जन्म धारण करते हैं जहांपर कि उन्हे

लब्ता भृशं । तिर्यञ्चस्ते भवंत्येव नानादुःखसमन्विताः ॥ १९० ॥ नातिलोभा विवेकाढ्या दयादानरता ध्रुवं । अन्यनिंदां न कुर्वंति मानवास्ते भवंत्यहो ॥ १९१ ॥ सत्यशौचवती नारी कामसंतोषिणी शुभा । स्थिरांतःकरणा धर्मबुद्धिः सा नरतां व्रजेत् ॥ १९२ ॥ प्रायो रामासु संसक्तश्चपलः कामचेष्टया । धूर्तश्च स्त्रीसमन्वेषी स्त्रीत्वं स पुरुषो व्रजेत् ॥ १९३ ॥ पशूनां नासिकाकर्णच्छेदको दुष्टमानसः । संस्कारी याति षण्ढत्वं विभोगत्वं नराधमः ॥ १९४ ॥ जीवन् वै त्रासयत्येव नीडान् वंभज्यते च यः । विषघाती महासेनाः स नरोऽल्पायुषी भवेत् ॥ १९५ ॥ जन्तुरक्षणसंलीनः सर्वोपकृतिकारकः । यः परेषां शुभाकांक्षी वह्वायुर्वो भवीति सः ॥ १९६ ॥

अनेक प्रकारके दुःखोंका सामना करना पड़ता है ॥ १८६—१९० ॥ जो महानुभाव विशेष लोभी नहीं होते विवेकी दयावान और दानी होते हैं तथा किसीकी भी निन्दा नहीं करते वे महानुभाव मनुष्य योनिके अन्दर जन्म धारण करते हैं ॥ १९१ ॥ जो स्त्री सत्य बोलने वाली और शौच धर्मका पालन करने वाली होती है। विशेष कामिनी न होकर संतोष रखनेवाली होती है। शुभ होती है जिसका अन्तःकरण चल विचल न होकर स्थिर रहता है तथा सदा जिसकी बुद्धि धर्ममें दृढ़ रहती है वह स्त्री अपने स्त्रीलिंगको छेदकर पुरुषलिंग धारण करती है ॥ १९२ ॥ जो पुरुष स्त्रियोंमें विशेष आसक्ति रखता है। चंचल होता है सदा कामचेष्टाओंके करनेमें ही परम आनन्द मानता है। धूर्त होता है और स्त्रियोंकी सुध लगानेमें रहता है वह पुरुष नियमसे दूसरे भवमें स्त्री होता है ॥ १९३ ॥ जो नीच पुरुष पशुओंके नाक कान आदि अङ्गोंको छेदता है। सदा मनमें दुष्टभाव रखता है और निरन्तर अपने शरीरका संस्कार करता रहता है वह नीच पुरुष संसारमें नपुंसक होता है एवं नपुंसक होनेसे वह किसी भी प्रकारके भोगोंको नहीं भोग पाता ॥१९४॥ जो मनुष्य जीवोंको अनेक प्रकारके त्रास देता है। पक्षियोंके रहनेके घोसलोंको तोड़ता फोड़ता है एवं विष खाकर प्राण तजता है वह अत्यंत पापी मनुष्य थोड़ी आयुका धारक होता है ॥ १९५ ॥ जो महापुरुष सदा जीवोंकी रक्षामें तत्पर रहता है। दूसरोंका सदा उपकार करता रहता है और दूसरे जीवोंका शुभ ही विचारता रहता है वह मनुष्य विशेष आयुका धारक होता है ॥ १९६ ॥ धनके

सति द्रव्ये ददाति नो चेद्दाति विचिंतयेत् । किं कृतं हि मया चेत्थं जानता बालबुद्धिना ॥ १६७ ॥ ददतो वारयत्येव परेषां रतिनाशकृत् । निर्भोगः स दरिद्री च हर्षारोगेण पीड़ितः ॥ १६८ ॥ विनयाढ्यः सदा शांतो जिनाज्ञाप्रतिपालकः । कस्याप्यदुःखदो यस्तु स यशस्वी भवेदिव ॥ १६६ ॥ पाठयंति पठंति ये वांङ्मयं द्वेषवर्जिताः । उत्कोचादि न गृह्णंति तेषां स्याद्द विमला मतिः ॥ २०० ॥ गुणिनं च तपोयुक्तं विद्यावंतं यशस्विनं । क्रुधावगणयत्येव स निर्बु द्धिः प्रजायते ॥ २०१ ॥ भाक्तिको देवगुर्वोश्च पापपुण्यविदः स्फुटं । जिनध्यानाशयो यस्तु भवेत्सोऽपि विदांवरः ॥ २०२ ॥ यस्य चित्तेऽस्ति नास्तिक्यं जीवधर्मादिभावनां । मन्यते नैव गोधः स

विद्यमान रहते भी जो पुरुष कौड़ी बराबर भी किसीको नहीं देता यदि किसीको कुछ देता भी है तो "हाय सब कुछ जानकर मूढ़ बन मैंने क्या कर डाला जो अपना धन देदिया" ऐसा पश्चाताप करता है। जो महानुभाव धन देना चाहते हैं उन्हें भी दान देनेसे रोकता है वह मनुष्य संसारमें भोगरहित दरिद्रो एवं हर्षा नामके विशेष रोग (मृगी) से पीड़ित होता है॥ १६७—१६८ ॥ जो महानुभाव विनय शील होता है। सदा शांत रहता है। भगवान जिनेंद्रकी आज्ञाका पालन करने वाला होता है और किसीको भी दुःख देना नहीं चाहता वह संसारमें यशस्वी पुरुष माना जाता है। सारा संसार उसके यशका गान करता है ॥ १६६ ॥ जो महानुभाव द्वेष रहित होकर जैन शास्त्रोंको पढ़ाते हैं और स्वयं भी पढ़ते है तथा पढ़ने पढ़ानेमें किसी प्रकारकी द्रव्यकी अभिलाषा नहीं रखते वे मनुष्य निर्मल बुद्धिके धारक माने जाते हैं ॥ २०० ॥ जो पुरुष क्रोध कषायके आवेशमें आकर गुणी तपस्वी विद्यावान और यशस्वी मनुष्योंका अनादर करते हैं वे मनुष्य निर्बुद्धि पागल होते हैं ॥ २०१ ॥ जो महापुरुष देव और गुरुओंके भक्त रहते हैं। पाप और पुण्यका स्वरूप जानते हैं एवं भगवान जिनेंद्रके गुणोंके चिंतवनमें ही चित लगाते हैं वे मनुष्य संसारके अंदर विद्वान् होते हैं ॥ २०२ ॥ जो मनुष्य नास्तिक होता है जीव धर्म अधर्म आदि किसीको भी नहीं मानता वह पुरुष निन्दित हृदयका धारक मूर्ख माना जाता है ॥ २०३ ॥ जो निर्दयी

स्यान्मूढः कुत्सिताशयः ॥ २०३ ॥ मृगहंसशुकादीनां ग्रहणं कृत्वा सुपंजरे। रक्षति यस्तु पापीयान् कातरः स्याद्भवे भवे ॥ २०४ ॥ जीवानां पालने शक्तः परपीडाविनाशकः । बुभुक्षितक्षुधाध्वंसी भवेद्वीरः स पुण्यभाक् ॥ २०५ ॥ असद्द्रव्ये मनो भावो दाने संवो भवीति वै । ईषद्दानप्रभावेण लक्ष्मीवांश्च स जायते ॥ २०६ ॥ पूर्वं दत्वा मनस्तापं विन्नोति यतस्ततः । लब्धलक्ष्मा च वृद्धत्वे निर्धनोऽभिभवेन्नरः ॥ २०७ ॥ पशूनां पक्षिणां चैव शावकांस्त्रासयंति ये । गृह्णंति परवित्तं वा स्युः सुतास्तस्य नैव च ॥ २०८ ॥ भवंत्यथ विनश्यंति ऋणशत्रुप्रभावतः । तदभावाद्भवंत्येव पुत्राः परमसुन्दराः ॥ २०९ ॥ अश्रुतं कथयत्येव वधिरः स प्रजायते ।

मनुष्य मृग हंस तोता आदि दीन पक्षियोंको पकड़कर पींजरेमें बंद रखते हैं उनको पालते पोषते हैं वे पापी भव भवमें डरपोंक होते हैं ॥ २०४ ॥ जो पुण्यात्मा जीवोंकी रक्षा करनेमें दत्त चित्त रहता है। दूसरेका दुःख दूर करना अपना कर्तव्य समझता है। जो प्राणी क्षुधासे व्याकुल होते हैं उनकी क्षुधाको दूर करता है वह पुण्यवान पुरुष संसारमें वीर होता है ॥ २०५ ॥ धनको अपवित्र पदार्थ मानकर जिस महानुभावका हृदय उसके दान करनेकेलिये लालायित रहता है वह महापुरुष थोड़े दानके प्रभावसे ही पूर्ण लक्ष्मीका पात्र बन जाता है ॥ २०६ ॥ जो मनुष्य पहिले तो किसी कारणसे दान दे देता है किन्तु पीछेसे बड़ा दुःखी होता है पछितावा करता है। उस मनुष्यकी वृद्धावस्थामें पासमें रहनेवाली लक्ष्मी चली जाती है। वह निर्धन हो जाता है। और अनेक प्रकारके उसे तिरस्कार सहने पड़ते हैं ॥ २०७ ॥ जो दुष्ट पुरुष पशु और पक्षियोंके बच्चोंको त्रास देते हैं और दूसरेके धनको हरण करते हैं उनके पुत्रोंकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २०८ ॥ अथवा दूसरेका धन अपहरण कर जिन्होंने नहीं दिया वे मनुष्य ऋणी कहे जाते हैं उस ऋणरूपी शत्रुके प्रभावसे कदाचित पुत्र हों भी तो वे मर जाते हैं किंतु जो मनुष्य दूसरोंके ऋणी नहीं होते और न पशु पक्षियोंके बच्चोंको त्रास देते हैं उन मनुष्योंके अत्यन्त रूपवान पुत्र होते हैं ॥ २०९ ॥ जो मनुष्य बिना ही सुने कुछका कुछ दूसरेका दोष बोल देता है वह वधिर—वहिरा होता है तथा जो विना ही देखे यह कहता है कि मैंने अमुकको अमुक दोष देखा है तथा रोकनेपर भी वह उस

अदृष्टं हि मया दृष्टं परछिद्रं सुभाषते ॥ २१०॥ वार्यमाणोऽपि मूढः स आत्यंधो नियतं भवेत् । उत्तमोऽपि सुरामांसभक्षण कुरुते यकः ॥ २११ ॥ अजीर्णोदररोगी स नीचानां का गतिः परा । मुनिं दृष्ट्वा मदेनांधो निष्ठीवं कुरुते यकः ॥ २१२ ॥ रक्तपित्ती च कुष्ठी स जायते कर्मपाकतः । जात्यहंकारसंशक्ताः कृतघ्नाः स्वामिद्रोहिणः ॥ २१३ ॥ परकार्यकरा निःस्वास्ते भवंति भवे भवे । विश्वासघातिनो जीवा रोगाक्रांताश्च कुत्सिताः ॥ २१४ ॥ कृपालीना मनःशुद्धाः परदाराधनादिषु । भैषज्यदायिनो जीवा नीरोगा वोभवंति ते ॥ २१५ ॥ सूक्ष्मभेदादिसिद्धांतं श्रुत्वा निंदति मूढधीः । स स्यान्मूकोऽत्र संसारे विचित्रा कर्मणां गतिः । व्रतशीलं यम नीत्वा मुंचंति विषयार्दिताः । तेषां कंपादयो देहे सम्पद्यन्ते न संशयः ॥ २१६ ॥ पक्षिपक्षं हि यो

दोषको प्रगट करता है वह मूढ मनुष्य नियमसे जन्मसे ही अन्धा होता है । जो मनुष्य उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी शराब मांस आदिका भक्षण करते हैं वे अजीर्ण रोगसे ग्रस्त उत्पन्न होते हैं फिर जो नीच कुलमें उत्पन्न होनेवाले हैं और शराब मांस आदिका भक्षण करते हैं उनकी तो बात ही क्या है उन्हें तो और भी अनेक रोग सताते हैं। जो पुरुष मुनिराजको देखकर मदोन्मत्त हो उन पर थूकते हैं वे उस निंद्य कर्मकी कृपासे खून फिसाद पीलिया और कोढसे ग्रस्त होते हैं। जो मनुष्य वृथा अपनी जातिका अहङ्कार करनेवाले हैं कृतघ्नी और स्वामीद्रोही हैं वे दास होते हैं और भवभव में उन्हें दरिद्रताका दुःख भोगना पड़ता है । जो मनुष्य विश्वास घाती हैं वे मनुष्य अनेक रोगोंसे व्याप्त और निन्दित होते हैं ॥ २१०—२१४ ॥ किंतु जो मनुष्य दयालु होते हैं परस्त्री और पर धनके अन्दर चित्त शुद्ध रखते हैं एवं दूसरे रोगी जीवोंको औषध प्रदान करते हैं वे जीव संसारमें नीरोग होते हैं कोई भी रोग उन्हें नहीं सताता ॥ २१५ ॥ जो दुष्ट पुरुष अत्यंत गहन जैन सिद्धांतको श्रवण कर उसकी निन्दा करता है वह मूक-गूगा होता है क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र है हर एक मनुष्य कर्मोंकी गतिका ज्ञान नहीं कर सकता॥२१६॥(क)जो पुरुष व्रत शील यम आदिका नियम आदि लेकर विषयोंके लोलुपी हो उन्हें छोड़ देते हैं यह निश्चय है उनके शरीरमें कम्प आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २१६ ॥ (ख) जो दुष्ट पुरुष पक्षियोंके पंखोंको काटते हैं वे अज्ञानी

मूढः छिनस्त्यज्ञानलोचनः । पंगुः स्यादुष्टचेतस्कः पशुपादविनाशकः ॥ २१७ ॥ तपांसि दुष्कराणि ये वितन्वंति सदा मुदा । तपः कृतां च शंसंते सुरूपाः कामवत्तके ॥ २१८ ॥ तपः कर्तुं न शक्ता ये तत्कृतां निंदयति वा । कुरूपा विकलांगाश्च कृशांगास्ते भवंति च ॥ २१९ ॥ अकामनिर्जरां कृत्वा म्रियंते ये च क्रोधतः । वेदनासहिता जीवास्ते भवंति भवे भवे ॥ २२० ॥ मुनीनां धर्मलीनानां शुश्रूषां कुरुते हि य. । निर्वेदो बलवान् प्रांशुर्भवेद्बाहुवलिप्रभः ॥ २२१ ॥ कंदमूलाशिनो जीवा कर्षिणः शून्यवादिनः । एकाक्षाः स्थावरा भूत्वा भवंति पंकपाकतः ॥ २२२ ॥ पञ्चाक्षे बहवो भेदाः संति दुःखसुखत्वतः । अर्हन्नामलया पुण्यपापलक्षणलक्षिणः ॥ २२३ ॥ धर्मभक्ताः सदाचाराः गुरो विनयिनश्च ये । अल्पसंसारिणः स्युस्ते तांद्वयुक्ता विलक्षणाः ॥

दुष्टचित्तके धारक एवं पशुओंके पैरोंको नष्ट करनेवाले संसारमें पंगु होते हैं ॥ २१७ ॥ जो महानुभाव आनन्दित हो घोर तपोंके तपनेवाले हैं और जो तप करनेवाले हैं उनकी प्रशंसा करते हैं वे कामदेवके समान रूपवान उत्पन्न होते हैं ॥ २१८ ॥ जो दुष्ट पुरुष तपोंके आचरण करनेमें असमर्थ हैं और जो तपोंको आचरण करनेवाले हैं उनकी निन्दा करते हैं वे मनुष्य संसारमें महाकुरूप एवं विकल और कृश अङ्गके धारक उत्पन्न होते हैं ॥ २१९ ॥ जो जीव अकाम निर्जरापूर्वक क्रोधसे प्राणोंको छोड़ते हैं वे भव भवमें अनेक प्रकारकी वेदनाओंके धारक उत्पन्न होते हैं ॥ २२० ॥ जो महानुभाव सदा धर्ममें लीन मुनिराजोंकी सेवा सुश्रूषा करते हैं वे संसारमें किसी भी वेदनाका सामना नहीं करते तथा वे भगवान वाहुवलीके समान महा वलवान और उच्च अवगाहनाके धारक होते हैं ॥ २२१ ॥ जो जीव कन्द मूलके भक्षण करनेवाले हैं। जमीन आदिको वृथा कुचेरनेवाले हैं। शून्यवादी हैं वे अपने कर्मके अनुसार मरकर एकेंद्री स्थावर होते हैं ॥ २२२ ॥ पचेन्द्री जीवोंके बहुतसे भेद हैं बहुतसे उनमें दुःखी और सुखी हैं। भगवान अर्हंतके गुणोंमें मग्न हैं एवं पुण्य और पापोंसे युक्त हैं ॥ २२३ ॥ जो महानुभाव समीचीन धर्मके भक्त हैं। उत्तम आचारोंके आचरनेवाले हैं एवं सदा निर्ग्रंथ गुरुओंमें विनय भाव रखनेवाले हैं वे महानुभाव अल्प संसारी होते हैं थोड़े ही

२२४ ॥ दर्शनज्ञानचारित्रभृतस्ते शिवभाजिन. । भवंति भावनान्वीताः शुक्लध्यानपरायणाः ॥ २२५ ॥ लज्जाकाकर्मकारिण्यश्चैत्य-निंदकरा ध्रुवं । परेषां गुणलोपिन्य उपवादेषु तत्पराः ॥ २२६ ॥ भुंजंतं द्रष्टिदायिन्यो मार्जार्यो वक्रविष्टिकाः । शाकिन्यः स्युध्रुवं रामा मध्यभावो हि सौख्यदः ॥ २२७ ॥ अन्तःकापट्यसंपन्ना दृष्ट्वान्येषां शुभं धनं । क्रुध्यन्ति दण्डयंति वा तेलूक

दोनोंमें उन्हें मोक्ष सुखकी प्राप्ति हो जाती है किन्तु जो इन क्रियायोंसे रहित हैं अर्थात् न तो धर्मके भक्त हैं। न उत्तम आचरणोंके आचरने वाले हैं और न गुरुओंमें विनयही रखते हैं वे दीर्घ संसारी होते हैं बहुत काल तक उन्हें संसारमें रुलना पड़ता है ॥ २२४ ॥ जो महानुभाव सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके धारण करनेवाले हैं। निरन्तर अनित्य आदि भावनाओंको भाते हैं। और शुक्ल ध्यानमें तत्पर होते हैं वे महानुभाव अनुपम सुख मोक्ष सुखके भागी होते हैं ॥२२५॥ जो स्त्रियां लज्जाके कारण निन्दित कार्य करनेवाली हैं। भगवान जिनेन्द्रकी प्रतिमाओंकी निन्दा करनेवाली हैं। दूसरोंके गुणोंका लोप करनेवालीं हैं। रात दिन उत्पात लड़ना झगड़ना ही जिनका काम है तथा जो मनुष्य भोजन कर रहा हो उसकी ओर बिल्लीके समान टकटकी लगाकर देखनेवालीं हैं एवं जिनकी दृष्टि वक्र है वे स्त्रियें मर कर नियमसे शाकिनी भूतिनी होती है किंतु जिनका मध्यम भाव रहता है,लज्जाके कारण निंद्य कार्य आदि नहीं करतीं उन्हें कोई दुःख नहीं उठाना पड़ता क्योंकि मध्यम भाव सदा सुख देनेवाला होता है ॥२२६—२२७॥ जिन मनुष्योंके हृदयों में छल छिद्र कपट भरा रहता है। दूसरोंका धन देख कर जो रोष करते है और अपनेको दुःखित बनाते हैं वे पुरुष मर कर उल्लू गधा और कुत्तेका जन्म धारण करते हैं। जो दुष्ट पुरुष गुरुओंकी निन्दा करनेवाले हैं। व्यर्थ ही धर्मकी निन्दा करते हैं। हरएक की निन्दा करना ही जिनका मुख्य कर्तव्य रहता है और जो देव द्रव्यसे जीनेवाले हैं अर्थात् निर्मल धन हजम कर लेते है वे पुरुष

गर्दभाः शुनाः ॥ २२८ ॥ (क) गुरुनिन्दया वृथा धर्मनिंदकाः मर्मनिन्दकाः । रोगव्याप्तशरीरा ये [illegible] भवंति ते ॥ २२९ ॥ (ग) स्वजातिगुणगर्वं स्वं ख्याति यः क्रुधान्वितः । बिभेति मृत्युतो लज्जाकर्मकारी [illegible] ॥ २२६ ॥ [illegible] कष्टतो म्रियते नरः । अन्यथा मध्यमाया ये सुखतस्त्वरया नराः ॥ २३० ॥ ये तु दुष्टकुले जाता मृदवः सरलो नराः । दुष— घास्ते भवन्त्यत्र भव्याः कुटिलवर्जिताः ॥ २३१ ॥ नरा ये सुकुलोत्पन्नाः कुटिला भ्रान्तिपूरिताः । [illegible] ॥ २३२ ॥ [illegible] ये यान्ति कौतुकं । ते [illegible] ॥ २३३ ॥ [illegible] धर्मदानकरा नराः । कुलाचार [illegible] ॥ २३४ ॥ इत्यादि [illegible]

मर कर महा नीच काक होते हैं ॥ २२८ ॥ जो मूढ पुरुष अपनी जाति और अपने गुणका सदा घमण्ड करता है। सदा क्रोधसे जलता रहता है। मृत्युसे भयभीत रहता है जो कार्य लज्जाजनक हैं उन्हें करता है। अपनी प्रशंसा करता रहता है। मीठे वचन बोलनेवाला होकर भी अन्तरङ्गमें दुष्ट रहता है वह मनुष्य बहुत दिनोंमें अनेक प्रकारके रोगोंके दुःख भोगकर मरता है किन्तु जो मनुष्य मध्यम भाव रखते हैं उपर्युक्त कोई भी दुर्गुण जिनमें नहीं रहता उनकी मृत्यु बड़े सुखसे बहुत जल्दी हो जाती ॥ २२९-२३० ॥ जो मनुष्य दुष्ट कुलमें तो उत्पन्न हुए हैं परन्तु कोमल परिणामोंके धारक हैं। उत्तम बुद्धिके स्थान हैं और धर्मके- उत्तम धर्मके जानकार हैं वे भव्य मनुष्य कुटिलतासे रहित सीधे साधे होते हैं ॥ २३१ ॥ जो मनुष्य उत्तम कुलमें तो उत्पन्न हुए हैं परन्तु परिणामोंमें किसी प्रकारकी सरलता न कर कुटिलता रखनेवाले हैं भ्रांतिसे परिपूरित हैं— जिनेन्द्र भगवानके वचनोंके अन्दर सदा भ्रम करनेवाले हैं और चुगल खोर हैं वे धर्मसे विपरीत श्रद्धान करनेवाले अभव्य होते हैं ॥२३२॥ इस कलिकालमें तपस्वी बन जो मनुष्य धर्म और दान- को विपरीत रूपसे करनेवाले हैं और कुवाचारके विरोधी हैं वे मनुष्य मरकर चुगल होते हैं ॥२३३॥ धर्म नामके वलभद्र द्वारा जितने भी प्रश्न किये थे उनका इस प्रकार उत्तर देकर राजरूपी कमलों

जिनेंद्रः संस्थितो भव्यपंकजालिदिवाकरः ॥ २३५ ॥ भव्याः श्रुत्वा जिनेंद्रोक्तं केचित्सम्यक्त्वधारिणः । केचित्संसारनिर्वेदां व्रतिनो जज्ञिरे नराः ॥ २३६ ॥ भ्रातरौ तौ जिनं नत्वा जग्मतुर्निजपत्तनं । भोजयामासतुः सौख्यं कविवाचामगोचरं ॥ २३७ ॥ अथासौ श्रेणिको धीमानन्वयुंक्त गणाधिपं । बलत्वं केशवत्वं च ताभ्यां प्राप्तं कुतो यतः ॥ २३८ ॥ सन्मतिः प्राह भो भूप ! भव्यं पृष्टं त्वयाधुना । तीर्थंकृच्चक्ररामादिकथा पुण्यप्रदा भवेत् ॥ २३९ ॥ अत्र जंबूमति द्वीपे विदेहे पश्चिमे पुरं । नाम्ना गंधसमृद्धाख्यं समस्ति संपदा भृतं ॥ २४० ॥ तत्राभून्महाराजो मित्रनंदीति निर्मलः । प्रतापाक्रांतविद्विट्पुंगः सर्वसामंतसेवितः ॥ २४१ ॥ कृतकांक्षा द्विषो

को सूर्यके समान वे भगवान जिनेन्द्र शांत हो गये ॥ २३४ ॥ धर्म और स्वयंभू दोनों भाइयोंने भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्रको नमस्कार किया। अपनी राजधानी लौट गये और कवि भी जिस सुखका अपनी वाणीसे वर्णन नहीं कर सकते ऐसा अनुपम सुख भोगने लगे। २३४—२३७।

राजा श्रेणिकने भगवान गौतम गणधरसे प्रश्न किया कि भगवन्! धर्म और स्वयंभूने जो नारायण पदको प्राप्त किया वह किस कर्मके उदयसे कृपया कहिये? उत्तरमें गणधर गौतमने कहा कि राजन्! इससमय तुमने बहुत ही उचित प्रश्न किया है क्योंकि तीर्थंकर चक्रवर्ती बलभद्र आदिकी कथायें पुण्य प्रदान करनेवाली हैं मैं संक्षेपमें कहता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

इसी जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें एक गन्धसमृद्ध नामका नगर है जो कि संपदासे परिपूर्ण है ॥२३८—२४०॥ उसका पालन करने वाला एक मित्रनंदी नामका राजा था जो कि सूर्यके समान देदीप्यमान था। अपने प्रतापसे समस्त शत्रुओंका वश करनेवाला था। समस्त सामंतोंसे सेवित था। तथा वह राजा दुरक्षरसदादस्य दुरक्ष-अतींद्रिय सिद्धोंके रसमें मग्न जो कोई भी भव्यजीव थे उनका ग्रहण करनेवाला था अर्थात् जो भव्य जीव मोक्षमार्गपर स्थित थे वह राजा मित्रनंदी उनका पूर्ण आदर करनेवाला था। सदादस्य—समीचीन मार्गका ग्रहण करने वाला था और दुरक्षर—दुष्ट लोग रंचमात्र भी उसका विगाड़ नहीं कर सकते थे इसलिये "कृतकांक्षाः तीक्ष्ण शस्त्रोंके धारक

यस्य पतंति भूतले भिया । दुरक्षरसदादस्य सदादस्य दुरक्षरः ॥ २५२ ॥ युग्मं (अथप्रतिलोमानुलोमः) स्वचक्रमिव तस्यासीत्पर चक्रं च धीमतः ॥ इदं चक्रं मदीयं हि परकोयमदः स्फुटं ॥ २५३ ॥ इति बुद्धिविनाशेन गतं चक्रं स्वकीयकं ॥ भिन्नभावाद्धि भिन्नत्वं जायते भरतेशवत् ॥ २५४ ॥ भोगवस्त्रांगराज्यादिसुखानां नृपतिस्तदा । अतृप्यद्धीरधीः सर्वशात्रवाश्लिष्टपत्कजः ॥ २५५ ॥ एकदा विष्टरासीनः पुष्पलाविमुखाज्जिने । सुव्रताख्यं समायातं श्रुत्वासौ वन्दितुं ययौ ॥ २५६ ॥ त्रिःपरीत्यार्च्यं सद्भक्त्या नत्वा स्तुत्वा

भी उसके शत्रु पृथ्वीतलपर मारे भयके लड़ते पुड़ते थे—रंचमात्र भी अपना बल नहीं दिखा सकते थे ॥ २४१—२४२ ॥ महानुभाव उस राजा मित्रनन्दीका पर चक्र भी स्वचक्रके समान था अर्थात् शत्रु और मित्र दोनों हो उससे प्रसन्न थे क्योंकि यह चक्र—राज्य मेरा है और यह चक्र दूसरोंका है जहांपर यह विभाग रहता है वहांपर तो स्वपरका भेद रहता है परन्तु उस राजाकी वैसी भेद बुद्धि थी नहीं इसलिये अपना और पराया दोनों प्रकारका राज्य उसका स्वराज्य ही था किन्तु जिससमय भरतचक्रवर्तीके समान अपने भी राज्यमें भेदबुद्धि हो जाती है—वह भी अपने निज-स्वरूपसे भिन्न मान लिया जाता है, उसमय वह भी भिन्न ही रहता है और उसे छोड़ देना पड़ता है । भरत चक्रवर्तीको जिससमय छह खण्डकी विभूतिसे वैराग्य हो गया था उस समय समस्त राज्यका उन्होंने त्याग कर दिया था ॥२४३—२४४॥ वह धीर वीर राजा भोग वस्त्र शरीर और राज्य आदिसे जायमान सुखसे सदा तृप्त रहता था और समस्त शत्रु उसके चरणोंको नमस्कार करते थे ॥ २४५ ॥

एक दिनकी बात है कि वह राजा मित्रनन्दी सानन्द राज सिंहासनपर विराजमान था उसी समय एक माली राज सभामें आया नमस्कार कर 'भगवान मुनिसुव्रतनाथका समवसरण आया है' यह उसने समाचार कहा । मालीके मुखसे वह उत्तम समाचार सुन राजा मित्रनन्दीको बड़ा आनन्द हुआ और वह भगवान मुनिसुव्रतनाथकी वंदना करने चल दिया ॥ २४६ ॥ समवसरणमें

स्थितोऽग्रतः ।'संसारानित्यभावादिधर्मं' प्रोवाच तं जिनः ॥ २४७ ॥ वपुर्द्रव्यं सुखं धान्यं यौवनं जीवितं वल ॥ क्षणिकं विद्धि राजेंद्र ! नीहारपटलोपमं ॥ २४८॥ स्वार्थाधाराः स्त्रियः सर्वा रंजयत्यनिशं धवं । निमित्ताभावतो राजन्नभावस्तद्भवस्य च ॥ २४६ ॥ मामकं मामकं सर्वं ये वदंति नराधमाः । तेषां दुर्गतिरेव स्याद्विपदश्च पदे पदे ॥ २५० ॥ स्थैर्याभावात्किमीवा भो रैरामादेहदारकाः मीलने चक्षुषोर्नैव दृश्यते किं च किं पुरः ॥ २५१ ॥ स्वदेहे वर्तते ब्रह्म दर्शनादियुतं शिवं । अद्वैतं परमानंदं काष्ठदग्धाग्निवज्जवत्

जाकर भगवानकी उसने तीन प्रदक्षिणा दीं पूजा की एवं भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनके सामने बैठ गया। भगवान जिनेंद्र संसारकी अनित्यता आदि बतलाते हुये इसप्रकार कहने लगे—

हे राजेंद्र ! जिसप्रकार वरफका ढेला देखते देखते पिघल कर पानी हो जाता है उसी प्रकार शरीर द्रव्य सुख धान्य जोवन और जीवन ये सारे क्षण विनाशीक हैं--नित्य न रहकर ये नियमसे नष्ट हो जाने वाले हैं ॥२४७—२४८॥ ये समस्त स्त्रियां जो रात दिन अपने पतियोंको रंजायमान करती रहतीं हैं महामतलबिन हैं क्योंकि कारणके विना ससारमें नियमसे कार्यका अभाव रहता है। विना मतलबके स्त्री आदि कोई भी अपने नहीं होते ॥ २४६ ॥ जो मनुष्य 'यह मेरा है यह मेरा है' ऐसा रात दिन रटते रहते हैं वे मनुष्य महानीच हैं। संसारमें मेरा मेरा कहनेसे उन्हें नरक आदि गतियोंमें घूमना पड़ता है और पद पद पर उन्हें अनेक प्रकारकी विपत्तियां उठानी पड़ती है। क्योंकि जिन धन स्त्री शरीर और वालकोंके अन्दर "ये मेरे हैं ये मेरे हैं" ऐसा कहा जाता है वे अस्थिर हैं क्षणविनाशीक हैं इसलिये वे किसीके नहीं हो सकते जहां आँखें बंद हुईं—मृत्यु शय्यापर सोये वहांपर ये कोई भी अपने आगे नहीं दीख पड़ते सब यहांके यहीं रह जाते हैं ॥ २५०—२५१ ॥ हे राजन् ! जिसप्रकार काष्ठके अन्दर अग्नि विद्यमान रहती है उसी प्रकार इस अपने शरीरमें ब्रह्म—परमात्मा है जो कि सम्यग्दर्शन आदिका स्थान है मोक्षस्वरूप है

॥ २५२ ॥ तन्मत्वा शाश्वतं राजन्नलिन्या जलविंदुवत् । निर्वेदिनो न तिष्ठन्ति ते पतन्ति भवार्णवे ॥ २५३ ॥ सौम् योगावाससंलीनो लीनोऽघेऽघारिसंस्थितः । असौवासशिवंवार्तविलासरसलीनवत्(?)॥२५४॥ (अर्थत्रयवाची) अन्तरङ्गमलो याति मन्त्रजापेन तत्त्वतः । अन्यवाह्यक्रियारम्भैर्धर्ममार्गः प्रतिष्ठितः ॥ २५५ ॥ असद्वाह्यक्रियाभिस्च योगिनो यांत्यधोगतिं । ततः शमतया स्थेयं मुक्तिसाधन

अद्वैत है—अखंड स्वरूप है एवं परमानन्द मयी है। उस ब्रह्मको शाश्वत—नित्य मान कर भी जो निर्वेदी तपस्वी पुरुष कमलके पत्तेपरकी जलकी बूंदके समान चञ्चल बने रहते हैं। परब्रह्मके स्वरूपके अन्दर मनको स्थिर नहीं करते वे मनुष्य इस संसाररूपी समुद्रमें गिरते हैं और उसीमें डूबते उछलते रहते है ॥ २५३ ॥ जो महानुभाव उत्तम ध्यानरूपी महलके अन्दर निवास करनेवाले हैं 'अलोनोऽघे' पाप वासनाओंसे बहिर्भूत हैं। "अघारिसंस्थितः" पापोंके वैरि-उत्तम, मार्गपर स्थिर रहनेवाले हैं वे पुरुष जिसप्रकार विलास रसमें लीन पुरुष कुछ सुखका अनुभव करता है उसीप्रकार वे मोक्ष स्थानके सुखका आस्वादन करते हैं ॥ २५४ ॥ जो मनुष्य धर्मामार्गपर आरूढ़ हैं वास्तवमें तो उनके अन्तरंग मैलका नाश मन्त्र जाप—आत्मस्वरूपके चिंतवनसे होता है किन्तु मन्त्र जापसे भिन्न वाह्य क्रियायें भी उस मलके नाश करनेमें कारण पड़ती हैं उनको विना आचरण किये भी वह अन्तरंग मल नष्ट नहीं हो सकता अर्थात् आत्मस्वरूपका चिंतवन तो अंतरङ्ग मलके विनाश में अन्तरङ्ग कारण है और मुनिलिंगके योग्य वाह्य क्रियामें वाह्य कारण है इसलिये अन्तरङ्ग वाह्य दोनों प्रकारके कारणोंसे अन्तरङ्ग मलका नाश होता है। २५५। जो महानुभाव अपनेको योगी मानकर भी निंदित वाह्य क्रियाओंके आचरण करनेवाले हैं वे नियमसे अधोगति-नरकगतिके पात्र हैं किन्तु जो शास्त्रानुसार वाह्य क्रियाओंका आचरण करनेवाले हैं उन्हें ही उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है इसलिये जो महानुभाव मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें किसी प्रकारका घमंड आदि न कर

हेतवे ॥ २५६ ॥ श्रुत्वेति सुव्रताद्धर्मं विरागं प्राप भूपतिः । संसारदुःस्थितिं मत्वा प्रवव्राज स मागध ! ॥ २५७ ॥ तपस्यन् वसुधानंदी नन्दी नाम्ना मुनीश्वरः । द्वित्रिमासोपवासः सन् विविक्तांगनिवासकृत् ॥ २५८ ॥ तपःप्रतापसत्तेजाः स्वरूपाक्रांतभूधरः । रेजे सहस्रधात्मेव स ऋषिकृतसंस्तुतिः ॥ २५९ ॥ (अर्थद्वयवाचो) राजेव राजते राजा राजराजेतराजवत् । राजेव राजते राजाराज

चित्तमें शांति रखकर ही शास्त्रानुसार वाह्य क्रियाओंका आचरण करना चाहिये ॥ २५६ ॥ इस-प्रकार भगवान मुनिसुव्रतके मुखसे धर्मका उपदेश सुन राजा मित्रनन्दीको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया एवं संसारको अत्यन्त दुःखदायी जानकर वह उन्हीं भगवान मुनिसुव्रतके चरण कमलोंमें दिगम्बर दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥ २५७ ॥

वे आनन्द स्वरूप मित्रनन्दी नामके मुनीश्वर बहुत प्रकार तप करने लगे। दो दो मास और तीन तीन मासोंके उपवासोंका नियम ग्रहण करने लगे एवं पर्वतकी गुफा आदि एकांत स्थान पर उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया ॥ २५८ ॥ जिसप्रकार सहस्रधात्मा—सूर्य, तपःप्रतापसत्तेजाः-संताप प्रताप और उत्तम तेजका धारक होता है उसी प्रकार वे मुनिराज मित्रनन्दी भी तपके प्रताप से प्राप्त जो उत्तम कांति थी उससे शोभायमान थे। जिसप्रकार सूर्य "स्वरूपाक्रांतभूधरः" अपने तेजसे पर्वतोंकी शिखर जगमगा देता है उसी प्रकार वे मुनिराज भी अपनी कीर्तिसे समस्त पृथ्वी तलको व्याप्त करनेवाले थे। जिसप्रकार सूर्य 'ऋषिकृतसंस्तुतिः' ऋषि नामके नक्षत्रोंसे स्तुति किया गया माना जाता है उसीप्रकार वे मुनिराज मित्रनन्दी भी अनेक ऋषियोंसे स्तुत थे—बड़े २ ऋषिगण उनकी स्तुति करते थे ॥२५९॥ राजा वे मुनिराज मित्रनन्दी "राजेवराजते" राजा लक्ष्मीवान, इव कामदेव और राजत चांदी सोने आदि पदार्थोंके अन्दर राजराजेतराजवत् राज-राज कुवेर और उससे भिन्न अज-स्वयंभूके समान थे अर्थात् जो मनुष्य उनके भक्त थे और जो

राजनराजवत् ॥ २६०॥ क्षामकायो वितंद्रात्मा ध्यानी मौनी समाधिना । प्रांतेऽगमत्सुसन्यस्य शुभ्रवर्णमनुत्तरं ॥ २६१ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सहस्रैश्च वर्षैराहरतिस्म सः । तावत्पक्षैः समुच्छ्वासं कुर्वन् कर्पूरसन्निभं ॥ २६२ ॥ ईषदून सुखं तस्य मुक्ततोऽभूत्मशोज्झितं ततो हि योजनान्येव द्वादशैव शिवस्थलं ॥ २६३ ॥ अथ द्वारवतीपुर्यां शोभितायां धनादिभिः । भद्रनामा महीपालो बभूवारिभयप्रदः

उनके भक्त नहीं थे उनमें वे समान बुद्धिके धारक थे-कुवेरके समान सबको अच्छा समझते थे अथवा स्वयंभू भगवानके समान किसोमें भी राग और द्वेष नहीं रखते थे तथा 'राजाराजनराजवत्' जो मनुष्य राजा थे और जो अराज अर्थात् जिनके राजाकी विभूति न थी ऐसे राजासे भिन्न थे उनके आज समूहमें वे मुनिराज अपनी दृष्टि नराज तिरस्कार रूप रखते थे अर्थात् राजा और रंक दोनों हीको वे समान मानते थे—कर्मजनित होनेसे दोनोंको ही कल्याण कारी नहीं समझते थे ॥१६०॥ वे मुनिराज कृश शरीरके धारक थे । आलस्यसे रहित थे। ध्यानी थे और मौनी थे, अन्त समय उन्होंने समाधि पूर्वक सन्यासके द्वारा अपने प्राणोंका त्याग किया और वे सर्वार्थसिद्धि नामके उत्तम विमानमें जाकर उत्पन्न हो गये । १६१ । वह मित्रनन्दी मुनिराजका जीव अहमिन्द्र तेतीस हजार वर्षोंके वीतजानेपर अत्यन्त सुगंधित बहुत थोड़ा आहार करता था एवं तेतीस हजार पखवाड़ोंके वीत जानेपर उसास लेता था जो उसास कपूरके समान सुगन्धित होता था । १६१ । उस सर्वार्थसिद्धि विमानके अन्दर उस अहमिन्द्रको मोक्षके निराकुलता और निरहंकाररूप सुखसे कुछ ही कम सुख था क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानसे मोक्षस्थान केवल बारह योजनोंको ही दूरी पर था॥

इसी पृथ्वीपर एक द्वारवती नामकी प्रसिद्ध नगरी है जो कि धन आदिसे अत्यंत शोभायमान है । उसका पालन करनेवाला भद्रनामका राजा था जो कि शत्रुओंको भय प्रदान करनेवाला था उसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था जो कि उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी । उसे देखकर लोगोंको

॥ २६४ ॥ सुभद्रा वल्लभा तस्य ब्राह्मी वा सुरसुन्दरी । कनत्कनकवर्णाभा बहुरूपा रतिप्रभा ॥ २६५ ॥ एकदा सा सुखं सुप्ता रम्यगर्भगृहे सती । आलुलोक शुभान् स्वप्नानिति कल्याणसूचकान् ॥ २६६ ॥ उच्चकैः सिंधुरं दानवर्षिणं चन्द्रिकाप्रभं । रत्नाकरं समुद्वेलं व्यक्तरत्नचयं चलं ॥ २६७ ॥ पूर्णं णांकं गतांकं च सिंहं वक्त्रप्रवेशिनं । दृष्ट्वा तूर्यमहाध्वानैर्जजागार तदा सती ॥ २६८ ॥ प्रातरुत्थाय भर्तारं तत्फलं पृच्छतिस्म सा । निमित्तज्ञानतो ज्ञात्वा तां प्राहेति नराधिपः ! ॥२६९॥ जांबूनदप्रभे ! कांते विकचाम्भोजलोचने !

वर्णकी धारक थी अत्यन्त रूपवतीथी एव शोभामें कामदेवकी स्त्री रतिकी उपमा धारण करती थी । २६४—२६५ । एक दिन वह अपने मनोहर महलमें सानन्द सो रही थी कि रात्रिके पश्चिम प्रहरमें उसे कल्याणकी सूचना देनेवाले कुछ शुभ स्वप्न दीख पड़े । २६६ । सबसे पहिला स्वप्न उसने हाथीका देखा जो कि अत्यन्त उन्नत था । उसके गडस्थलोंसे मद झरता था और चांदनीकी प्रभाके समान शुभ्र था । दूसरे स्वप्नमें उसने समुद्र देखा जिसकी चंचल तरंगे ऊपरको उठ रही थो । जिसके अंदर रहनेवाले रत्न स्पष्ट रूपसे दीख पड़ते थे एवं जो मनोहर था । तीसरे स्वप्नमें अपने चिह्नसे शोभित पूर्ण चंद्रमा देखा एवं चौथे स्वप्नमें मुखमें प्रवेश करता सिंह देखा । जिस समय रानी शुभद्रा इन चारो स्वप्नोंको देख चुकी प्रातः कालमें वजनेवाले वाजोंके मनोहर शब्दोंसे उसकी नींद खुल गई । प्रातः कालकी नित्य क्रियाओंके समाप्त हो जानेके बाद अपने पति राजा भद्रके पास आई और अपने स्वप्न कहकर उनका फल जाननेके लिये अपनी इच्छा प्रगट करने लगी । राजा भद्र निमित्त ज्ञानी थे इसलिये निमित्त ज्ञानके बलसे वह इसप्रकार उन प्रश्नोंका उत्तर देने लगे—

तपे सुवर्णके समान कांतिके धारक प्रफुल्लित नेत्रवाली हे प्रिये ! तुम्हें जो स्वप्न दीख पडे हैं उन स्वप्नोंका फल यह है कि तुम्हारे शत्रुओंके मानका मर्दन करनेवाला और अत्यन्त बुद्धिमना

दिति । हारितं तेन सर्वस्वं वस्त्राद्यपि च पापतः ॥ २८२ ॥ वपुःशेषस्थितो भूत्वा म्लानास्यो गतविक्रमः । तदोवाचारिभूपालः सुकेतुमिति सच्छलः ॥ २८३ ॥ भो भो वै मानिनो योधा गुणिनो वंशधारिणः । अन्यभूमौ न तिष्ठन्ति श्रुतशास्त्रविचक्षणाः ॥ २८४ ॥ त्वं तु मानी धनी छत्री दानी क्षत्रादिभूषणः । भूमौ हारितायां च कथं तिष्ठसि मूकवत् ॥२८५॥ शत्रुवाक्यशरव्रातभिन्नांगो निर्ययौ वनं । सर्वहान्या महाशोकविह्वलीभूतमानसः ॥ २८६ ॥ प्राप्य तत्रैव पुण्येन नाम्ना सूरिं सुदर्शनं । वन्दित्वा श्रुततत्त्वः स प्रा-

परन्तु वह मूर्ख न माना ठीक ही है जब विनाश काल आकर उपस्थित हो जाता है तब बुद्धि भी उसके अनुकूल विपरीत हो जाती है पाप कर्मके प्रवल उदयसे राजा सुकेतुने क्रम क्रम कर धन देश सेना पटरानी सब हार दिया विशेष क्या जो उसके तन पर वस्त्र था जूआमें वह उसे भी हार चुका बस उसके पास केवल उसका शरीर रह गया उससे राजा सुकेतुका मुख फीका पड़ गया और वह सर्वथा पराक्रम रहित हो गया। जिस समय राजा सुकेतुकी यह हीन दशा हो गई उस समय उसके वैरी राजाने सुकेतुसे इसप्रकार कहा—

जो पुरुष अपने मानकी रक्षा करनेवाले होते हैं। गुणी और उत्तम वंशके होते हैं तथा आगम और शास्त्रोंके ज्ञाता होते हैं वे अपनी ही भूमिमें निवास करते हैं अन्यकी भूमिमें निवास नहीं करते। राजा सुकेतु! तुम मानी धनी छत्रशाली और क्षत्रियोंके भूषण पुरुष रत्न माने जाते हो जब जूआमें तुम पृथ्वीको हार चुके और वह दूसरेकी हो चुकी तब गूंगेके समान तुम इस पृथ्वी पर क्यों रह रहे हो? तुम्हें अब इस पृथ्वी पर कदापि नहीं रहना चाहिये ॥ २८१-२८५ ॥ अपने शत्रु राजाके ऐसे वचन राजा सुकेतुको बाणके समान चुभ गये। हाथसे सब चीजोंके चले जानेसे वह विक्षिप्त चित्त हो गया और शीघ्र ही वनकी ओर चल दिया ॥ २८६ ॥ वनके अन्दर उस समय सुदर्शन नामके मुनिराज विराजमान थे। पुण्यके उदयसे राजा सुकेतुको उनका दर्शन हो

पद्वैराग्य मंजसा ॥२८७॥ प्रव्रज्य दुष्करैर्भूरितपोभिः कृशतां गतः । देशद्रव्य महाशोकान्नात्यंतमशुभाशयः ॥२८८॥ दीर्घकालमलं तप्त्वा निदानमकरोदिति । आयुःक्षये महामूढो विद्वानपि महाधनः ॥२८९॥ ममैव तपसैतेन कलागुणनिधिः भता । भूयाद्भूरिबलं चैव शत्रुपक्षा सहाजयं ॥ २९० ॥ प्रांते संन्यस्य योगी स लांतवं कल्पमास्थितः । चतुर्दशाब्धिमानायुस्तताऽलंत सत्सुखं ॥२९१ ॥ वनेच चास्य भद्रस्य भूपस्य पृथिवीमती । आलुलोकैकदा स्वप्नान् सुप्ता गर्भगृहे सती ॥ २९२ ॥ सूर्यं चंद्रमसं पद्मां विमानाब्धिसुरध्वजं । सिंहं चैतान्

गया । उनके मुखसे उसने शास्त्रका रहस्य समझा । उसके चित्तमें एकदम संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया । शीघ्र ही उसने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली । अनेक प्रकारके घोर तपोंके तपनेके कारण उसका सारा शरीर कृश हो गया । देश और द्रव्य आदिके चले जानेसे उस समय यद्यपि उसका चित्त सर्वथा मलिन न था बहुतसी मलिनता मिट चुकी थी तथापि विद्वान भी यह पापके तीव्र उदयसे आयुके अंत समयमें नितांत मूर्ख हो गया और बहुत काल पर्यंत तपके तपे जाने पर भी उसने यह निन्दित निदान बांधा—

मैं जो यह तप कर रहा हूं उसका फल मुझे यह मिलना चाहिये कि मैं पर जन्ममें अनेक कला और गुणोंका भण्डार हों । मेरे बहुतसे सैन्यकी प्राप्ति हो और शत्रुओंका समुदाय मुझे जीत न सके । बस अन्त समयमें उस सुकेतु नामके मुनिने सन्यास पूर्वक अपने शरीरका त्याग किया लांतव नामके स्वर्गमें जाकर देव हो गया । चौदह सागर प्रमाण उसने आयु पाई और नानाप्रकारके सुख वहां पर भोगने लगा । द्वारावतीके स्वामी राजा भद्रकी एक दूसरी रानी पृथिवीमती थी वह अपने गर्भ गृहमें सो रही थी कि एक दिन रात्रिके पिछले प्रहरमें उसे स्वप्न दीख पडे । पहिले स्वप्नमें उसे सूर्य दीख पड़ा । दूसरेमें चन्द्रमा तीसरेमें लक्ष्मी चौथेमें विमान पांचवेमें समुद्र छठेमें इन्द्रधनु और सातवेमें सिंह दीख पड़ा । सातो स्वप्नोंके देखनेके बाद उसकी नींद खुल गई । प्रातः

अन्यदा केन चिद्राज्ञो प्रहितं प्राभृतं मधोः । सतिरत्नादिसंमिश्रं बहुलं भूरिसंचयं ॥ ३०२ ॥ तदा दृष्ट्वाध्वनि गच्छज्जनान् प्राहेति भूपतिः । स्वयंभूर्भूरिभो मानी कस्येदं वदत त्वरा ॥ ३०३ ॥ तत्प्रश्नकास्तदा भेणुः श्रूयतां परमादरात् । देवसेन नृपेणैव प्राभृतं प्रहितं बहु ॥ ३०४ ॥ मधोर्महानरेंद्रस्य शत्रुराजिविदारिणः । अस्माभिर्नीयते प्राज्यं द्रव्यं तं मधुभूपतिं ॥ ३०५ ॥ श्रुत्वा तन्नाम-स क्रोधः पूर्ववैरानुबंधनः । तद्धनं हर्तुमाशक्तो बभूवारिमदप्रदः ॥ ३०६ ॥ क्रुधा स्वयंभुवा मुक्तो गतपर्वा तु सायकः । महामृग विदार्यांशु सप्ततालानवीभिदत् ॥ ३०७ ॥ इष्वासस्वायकोद्भूतरवेण राविता जनाः । कोलाहलो महान् जज्ञे प्रलयाब्धिरिवागतः ॥ ३०८ ॥

कहो भाई ! तुम जो भेंट लेजा रहे हो वह किसकी है ! एवं किसके लिये और कहां लेजा रहे हो ? उत्तरमें उन भेंटकी रक्षा करनेवालोंने कहा—

कृपा नाथ ! सुनिये हम वतलाते हैं। हमारे स्वामी राजा देवसेन हैं। शत्रुओंको विदारण करनेवाले महाराजा मधुके वे सेवक हैं उन्होंने राजा मधुके लिये यह उत्तम भेंट भेजी है। इसे हम राजा मधुकी सेवामें ले जा रहे हैं। वस, राजा मधूका नाम सुनते ही पूर्व वैरके संबन्धसे राजा स्वयंभूकी आत्मा क्रोधसे व्याकुल हो गई। वैरिओंके मानको मर्दन करनेवाले नारायण स्वयंभू-ने उस धनके हरण करनेके लिये पक्का विचार कर लिया। शीघ्र ही उसने वाण तूणीरसे बाहिर निकाल लिया और इस रूपसे चलाया कि हाथीको छेदकर सात ताल उसने भेद डाले। जिस समय धनुषसे वाण जुदा हुआ था उस समय उसका इतना घोर शब्द हुआ था कि समस्त लोग कंपित हो गये थे एवं ऐसा भयंकर कोलाहल हुआ था कि मनुष्योंको यह जान पड़ने लगा था कि प्रलय कालका समुद्र आकर प्राप्त हो गया है उसीका यह कोलाहल है ॥ ३०२—३०८ ॥ नारायण स्वयंभूको यह क्रोध परिपूर्ण चेष्टा देख यद्यपि वलभद्र धर्मने वैसा न करनेके लिये बहुत प्रकारसे रोका था परंतु जिस प्रकार सर्पको छेड़नेसे वह और भी भयंकर हो जाता है उसी प्रकार महा

नदा धर्मेण हलिना निषिद्धो बहुशोऽपि सः । निषिद्धो व्याल एवाभीत् पन्नगात्यंतभीषणः ॥३०९॥ अवीभणत्तदा शीरी भ्रातारं भ्रातरं
प्रियः । लोलाढ्यं चंचलं चेत्यं शृणु त्वं मन्मथाकृते ॥ ३१० ॥ यो दुष्टो दुर्धरोऽज्ञानो हीनजातिर्नराधमः । भवेत्सोऽपि कदाचिच्च
नं हत्वा हरेन्न गां ॥ ३११ ॥ विपद्यपि गताः संतः पापकर्म न कुर्वते । हंसः कुक्कुटवत्कीटानत्ति किं क्षुधितोऽप्यलं ॥ ३१२ ॥ त्वामज
कमला प्रीत्या सेवते चैकभर्तृका । नान्यत्र पदमाधत्ते त्वद्गुणेष्वनुरागिणी॥३१३॥ते शूरास्ते विचारज्ञा दानिनो धनिनश्च ते । मानिन
रूपिणो धीरा उल्लंघंते न ये क्रम ॥३१४॥ अञ्जनाभगजश्रेणिकुंभस्थलपलप्रियः । गोमायुमपि मत्तं किं रटंतं संहरेद्धरिः ॥ ३१५ ॥

भयंकर सर्पके समान नारायण स्वयंभूका क्रोध और भी उवल गया और उस भेंटकी रक्षा करने वाले मनुष्योंको मारने के लिये वह उद्यत हो गया अपने छोटे भाई स्वयंभूको इस प्रकार चंचल और निंदित कार्य करते देख वलभद्र धर्मने कहा—

कामदेवके समान रूपवान् भाई ! तुम मेरी बात सुनो—संसारमें यह बात सर्व जन प्रसिद्ध है कि जो पुरुष दुष्ट होता है क्रूर अज्ञानी हीनजाति और नीच होता है वह भी दूतको मारकर लक्ष्मीका हरण नहीं करता । तुम निश्चय समझो कि जिसप्रकार भूंखसे अत्यंत व्याकुल भी हंस कुक्कुट-मुर्गेके समान कीड़ोंको नहीं खाता किंतु मोतियोंको ही खाता है उसीप्रकार जो पुरुष सज्जन हैं उनपर कितनी भी विपत्ति क्यों न आकर पड जाय वे कभी भी पापजनक कार्य नहीं कर सकते ॥ ३०९—३१२ ॥ लक्ष्मीकी तुम्हारे ऊपर इतनी भारी कृपा है कि वह अकेले तुम्हींको अपना स्वामी मानकर प्रेमपूर्वक तुम्हारी सेवा करती है तथा तुम्हारे गुणोंमें वह इतनी अनुरक्त है कि तुम्हें छोड़कर वह दूसरी जगह नहीं जाना चाहती । भाई ! संसारमें वे ही तो शूर वीर और वे ही विचार शील दानी धनी मानी रूपवान और धीर वीर हैं जो कि किसी भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते ॥ ३१३—३१४ ॥ जो सिंह अंजन पर्वतके समान हाथियोंके मांसको प्रेम पूर्वक खानेवाला है अर्थात् मत्त हाथियोंका विदारण करनेवाला है क्या वह मत्त भी शृगालको

महावीरविणामात्रीमावामारीरघच्छिदैः । मगावीरविगामात्रीमावामादीरघच्छिदैः ! ॥ ३१६ ॥ अद्यप्रभृति हे भ्रातर्धर्मोनमहोद्धुरैः हतो न श्रूयते दूतः कथं त्वं हंतुमिच्छसि ॥ ३१७ ॥ जातुधानोऽपि मांसाशी वरं हंत्येव जातु न । श्रूयतां तत्कथा भ्रातस्तत्र वित प्रसाधिनी ॥ ३१८ ॥ (क) अत्र जम्बू मति द्वीपे राजते रत्नखानिभिः । भारते चास्ति चंपाख्या पुरी शारदसेविता ॥ ३१६ ॥ तत्र राजा महासेनः कामाभः कमलेक्षणः । वनीत ां महादेव्या नाम्ना मदनवेगया ॥ ३१६ ॥ विशालायां नटस्त्यातो नाम्नाभूच्चित्रकर्मकः । दाता- रं तं नृपं मत्वा समाटैकदिनेऽथ सः॥३२०॥नानानाट्यरसैर्भावैर्लयैस्तानैर्मनोरमैः । रञ्जयामास तं भूपं चित्रकर्मा स सूत्रधृत्॥३२१॥

मारनेका प्रयत्न करता है ? कभी नहीं ॥ ३१५ ॥ भाई जो राजा उत्कट मानी है-उत्तम मर्यादाके पक्षपाती है उनके द्वारा आजतक कभी भी दूतको मारा हुआ नहीं सुना। तुम भी उत्तम मर्यादाके पक्षपाती पुरुष हो तुम इस भेदके रक्षक दूतके मारनेके इच्छुक क्यों हो ! तुम्हें भी कभी भी इस दूतको नहीं मारना चाहिये। विशेष क्या जातुधान—राक्षस जो कि सदा मांसको खानेवाला है वह भी कभी दूतको नहीं मारता। मैं इसी संबंधकी तुम्हें एक कथा सुनाता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

भांति भांतिके रत्नोंकी खानियोंसे शोभायमान इसी जंबू द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक चंपा नामकी विख्यात पुरी है जो कि दानियोंसे शोभायमान है । किसी समय उसका रक्षण करनेवाला राजा महासेन था जो कि सुंदरतामें कामदेवकी तुलना करता था। कमलके समान विशाल नेत्रोंका धारक था उसकी पटरानीका नाम मदनवेगा था जो कि एक अद्वितीय सुंदरी थी और उसके संबंधसे राजा महासेनकी भी अत्यंत शोभा थी ॥ ३१६—३१६ ॥ उसी समय विशाला पुरीमें एक चित्रकर्मा नामका नट रहता था उसने सुन रक्खा था कि राजा महासेन बड़ा दानी है इसलिये एक दिन चंपापुरीमें वह राजा महासेनके पास आया और नाट्य कलाके अत्यंत विद्वान उस चित्रकर्मा नामके नटने भांति भांतिके नाट्य रसोंसे उत्तमोत्तम भाव लय और तानोंसे राजा महासेनको

आषण्मासान्निजं द्रव्यं भुक्तं तस्मै तथापि न । ददौ राजा धनं किंचित्कार्पण्यात्कृपयातिगः ॥३२२॥ निःस्वीभूयं धनं प्राप्तो नटोमानी तदा नयं । शिक्षां च यांचयामास तु तोषस्मै तदा नृपः ॥ ३२३ ॥ पारोयं हि यत्किंचित् हीयतां हीयतां हठात् । हन्यतां हन्यतां चेगा दुराचेति जनान्नृप. ॥ ३२४ । नारोयता स वेतन निराकारि पुराद्रिव । मुनिना मानसं दुःखं जनं त्करतयागया ॥ ३२० ॥ पक्षा ल्या म्लानं या स्वं स्त्रां तनुधरा अपि । सर्व्विरत्यमानोमाहन.स्लं मानिना नरः ॥ ३२६ ॥ ना नालसति मानेन न्यूनो नैपथ्यआ-

प्रसन्न कर दिया ॥ ३२०—३२१ ॥ राजा महासेन अत्यंत कृपण और निर्दयी था । वह चित्रकर्मा नामका नट बराबर छह मासतक चंपापुरीमें ठहरा रहा और अपनी ही ओरसे भोजन आदिका खर्च उठाता रहा । राजाने कंजूसीके कारण एक पाई भर भी धन नहीं दिया ॥ ३२२ ॥ जब उस चित्रकर्मा नटके पास खाने पानेको कुछ भी न बचा तब उसने राजा महासेनको दानकी शिक्षा देनी प्रारंभ कर दी और कुछ धन प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना भी की । नटकी बात राजाको अच्छी नहीं लगी इसलिये वह एकदम उसपर कुपित हो गया । बस रोषमें आकर शीघ्र ही उसने अपने सेवकोंको यह आज्ञा देदी इस नटके पास जो इसीका कुछ माल मसाला हो सब जबरन छीन लो और दुष्टको मार भगाओ ॥ ३२३—३२४ ॥ राजाकी यह कठोर आज्ञा सुन यद्यपि सारी प्रजाको बहुत मानसिक दुःख हुआ था तथापि उस शांत परिणामी नटको शीघ्र ही नगरसे बाहिर निकाल दिया ॥ ३२५ ॥ संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि जो पुरुष मानी हैं उनको लक्ष्मी कुटुंब धन स्त्री शरीर और पृथ्वी सब कुछ चला जाय-उनके चले जानेसे मानियोंको विशेष कष्ट नहीं होता परंतु उनका अपमान नहीं होना चाहिये । जिस प्रकार प्राणोंके विना शरीर किसी कामका नहीं और भूषणोंके बिना बहुमूल्य वस्त्रोंकी शोभा नहीं उसी प्रकार चाहे पुरुष कितना भी भूषण वस्त्रोंका धारक हो एक मान बिना उसकी शोभा नहीं-मानी पुरुषका मान ही भूषण है

गति । देहोऽमुना त्रिना वामो भूषादिभिरिवान्वितः ॥ ३२७ ॥ मानभंगममुञ्च नटुःखव्याकुलचेतसा । चकार रैवते भंपा श्रु नमंतो मुनेर्नदः॥३२८॥अत्र पुर्यां धनेशाख्यो व्यवहारी तस्य वा रतिः । भामा भूरिसमानांगो कमला पंकज क्षणा ॥३२६॥ तयोःपुत्रोऽजनि मृत्वा नटोऽसौ मृगकेतुकः । रम्यांगो गर्वितोरूपी शास्त्रज्ञः प्राक्तनायतः ॥ ३३० ॥ अथान्योऽत्रास्ति मेघाख्यः श्रेष्ठी रायालयः प्रिया । कायां की नामतस्तस्य किन्नरी वाहिराट्प्रिया ॥ ३३१ ॥ विशालहृदयां फल्गुपेशलां रोजमंडलीं । ललद्गतिं चकोराक्षीं दिक्करिकां त्वभूषणां ॥ ३३२ ॥ एकदा तां समालोक्य स्मरेणाहतमानसः । दध्यौ चित्ते निजे चेति :दुष्टभावोविधीर्यतः ॥ ३३३ ॥ सयोगमनया स.कं

॥३२६-३२७॥वस मानभंगसे जायमान दु खसे व्याकुल चित्तका धारक वह नट चंपापुरीसे निकलकर रैवतिक पर्वतपर पहुंच गया । किसी मुनिराजसे भेट हो गई । नटने उपदेश प्राप्त किया और वहीं अपने प्राणोंका विसर्जन कर दिया ॥ ३२८ ॥

चम्पापुरीमें ही एक धनेश नामका व्यापारी रहता था उसकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि रतिके समान परम सुन्दरी थी । सुगठित शरीरके अवयवोंकी धारक थी और कमलके समान विशाल नेत्रोंसे शोभायमान थी । वह नट मरकर इन्हींके मृगकेतु नामका पुत्र हुआ जो कि पूर्वपुण्य के उदयसे मनोहर अङ्गका धारक था । बड़ा अभिमानो अत्यन्त रूपवान और परम विद्वान था । ॥३२६-३३० ॥ उसी नगरोमें एक मेघ नामका भी अत्यन्त धनवान पुत्र रहता था उसकी स्त्रीका नाम कायांकी था जो कि अपनी अनुपम सुन्दरतासे ऐसी जान पड़तो थी मानो यह किन्नरी है वा नागकुमारो है । वह सेठानी कायांकी विशाल वक्षस्थलसे शोभायमान थी । महा मनोज्ञ स्तनोंकी धारक थी । सुन्दरता पूर्वक गमन करनेवाली थी । चकोरके समान नेत्रोंकी धारक थी और परम युवावस्थासे शोभायमान थी ॥ ३३१-३३२ ॥ व्यापारीपुत्र मृगकेतुको एक दिन कायांकी पर दृष्टि पड़ गई उसे देखतेही मृगकेतुका चित्त कामसे पीड़ित होगया । निर्बुद्धि के चित्तमें सदा दुष्ट ही विचार हुआ करते हैं इसलिये वह अपने मनमें यह विचार करने लगा कि-यदि इस सुन्दरीके साथ

येन्न वै जीवितं धनं । वैयर्थ्यं सदनं सौख्यं किं दुश्चित्ते हि शाम्यते ॥३३४॥ इत्युक्त्वा सैकदा तेन भोः भोः पीनपयोधरे ! । एहि माराग्निदग्धं मां भुजयोरंतरे कुरु ॥ ३३५ ॥ तद्वचः कटुकं श्रुत्वा गता सद्म प्रतीच्छया । उपाया विहितास्तेन भूरयोऽफलतान्विताः । ३३६ । प्रागनुबंधादृते येऽपि समीहंतेऽनुबन्धकं । तेषां हि फलमेवाहुर्निधनं वै विचक्षणाः ॥ ३३७ ॥ असौ राजानमासाद्य रगणेनि वचः प्रियं । हे देव ! सिंहलद्वीपे गंधिलो विद्यते वयः ॥३३८॥ श्रुत्वा परिवृढः प्राह किमर्थं तत्प्रयोजनं । अब्रवीत्तं मदांधश्च शृणु त्वं

संयोग नहीं हुआ तो मेरा जीवन धन महल मकान और सुख सारे व्यर्थ हैं ठीक ही दुष्ट चित्तमें प्रशंसाजनक विचार हो ही क्या सकते हैं ! वस एक दिन वह सेठानी कायांकोके पास पहुंचा और उससे इसप्रकार कहने लगा—

सुन्दरी ! तुम विशाल स्तनोंसे शोभायमान परम सुन्दरी हो मेरा हृदय कामाग्निसे प्रज्वलित हो रहा हैं तुम्हें मेरे ऊपर प्रसन्न होना चाहिये ॥ ३३३—३३५ ॥ सेठानी कायांकोकी मृगकेतुके साथ बिलकुल रमण करनेकी इच्छा न थी इसलिये मृगकेतुके वचन उसे कड़वे जान पड़े वह चुपचाप अपने घरमें घुस गई-मृगकेतुकी वातका उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । यद्यपि मृगकेतुने उसके राजी करनेके लिये वहुतसे उपाय किये परन्तु वे सव निष्फल ही हुए ॥ ३३६ ॥ ठीक ही है जो मूर्ख मनुष्य पूर्वभवके सम्बन्धके बिना ही जवरन किसीसे प्रेम करते हैं उन्हें उस प्रेमका फल मृत्यु ही मिलता है ऐसा बड़े २ विद्वानोंका मत है ॥ ३३७ ॥ जव मृगकेतुकी कुछ भी तीन पांच न चली तो वह सीधा राजाके पास गया और उससे इसप्रकार प्रिय वचनोंमें कहने लगा—

महाराज ! सिंहल द्वीपमें एक महा मनोज्ञ गंधिल नामका पक्षी रहता है वह यदि इस देशमें आ जाय तो बहुत ही अच्छा हो। उत्तरमें राजाने कहा वह पक्षी यदि यहां आ जाय तो उससे क्या प्रयोजन सटेगा ? इसके उत्तरमें मदांध मृगकेतुने कहा— प्रभो ! जिस राष्ट्र घर और राज्यमें वह

सादरं प्रभो ! ॥ ३३६॥ यत्र राष्ट्रे गृहे राज्ये चेद्भवेत् खेचरश्च सः । तदा सुभिक्षिता राज्येऽहितभङ्गो भवेदिति ॥ ३४० ॥ मृगकेतो ! कथंकार प्राप्यते विरचथोदितः । मत्वा तदिंगितं प्राह तं स कामी मदातुरः ॥३४१॥ हे विभो ! विद्यतेऽत्रापि मेघाख्यः स कलान्वितः स गंतुं तत्र शक्नोति नापरे भूतले ऽखले ॥ ३४२ ॥ तमाकार्य जवाद्राजा प्राहिणोदाग्रहाद्दृश । तस्मिन् गते मृगो गेहं गतस्तस्य स्मरातुरः॥३४३॥ अ याति तामिति ज्ञाय स्वागतं प्रायशः कृतं । तया स्वामिन् ! कृपाकारि यदत्र त्वं समागतः॥३४४॥इति कृत्वा तया साध्व्या

उत्तम पक्षी रहता है वहां कभी भी दुर्भिक्ष न होकर सदा सुभिक्ष रहता है और अहितका नाश होता है। मृगकेतुकी यह कौतुक भरी बात सुन राजाने कहा—भाई मृगकेतु ! उस पक्षीकी प्राप्ति होगी कैसे ? वस कामी और काम पीड़ित मृगकेतुने जब राजाकी यह लालसा देखी तो उसे बड़ा आनंद हुआ और वह इसप्रकार कहने लगा—

राजन् ! आपकी राजधानीमें एक मेघ नामका सेठ रहता है जो कि एक उत्तम वंशका है। समस्त पृथ्वीके मनुष्योंमें वही सिंहल द्वीप जानेकी सामर्थ्य रखता है अन्य कोई नहीं आप उसे अवश्य भेज दीजिये ॥ ३३८—३४२ ॥ राजाकी आज्ञा अनिवार्य होती है। मृगकेतुकी बातपर विश्वास कर राजाने शीघ्रही मेघको राजसभामें बुलाया और आग्रह कर सिंहल द्वीप भेज दिया। जब श्रेष्ठी मेघ नगरसे प्रयाण कर गया तब काम पीड़ित मृगकेतु शीघ्र ही उसके घरकी ओर चल दिया और निर्भय हो घरमें प्रवेश कर गया ॥३४३॥ सेठानी कायांकी पूर्ण पतिव्रता थी इसलिये मृगकेतुको देखकर अन्तरङ्ग तो उसका क्रोधसे भवल गया परन्तु उस समय क्रोध करनेमें चतुरता न समझ ढंग बदल कर मृगकेतुका उसने स्वागत किया और ठंडे वचनोंसे इसप्रकार कहा—

स्वामिन् ! आइये आपने बड़ी कृपाकी जो मुझ अभागिनीके घर आप पधारे तथा ऐसा कह कर उसने शीघ्रही एक गढ़ा विष्टासे भरवा दिया। रस्सीसे विना वुना एक पलङ्ग उस पर विछवा दिया

कृतोऽयं विधिरद्भुतः। गर्तोपरि पुरीषस्य विरज्जु मंचकं ततः ॥ ३४५ ॥ कृत्वा रुगेण वस्त्रेण विधाय स्थापितो यदा। तदाऽपतत्पुरीपाढ्ये गर्तके श्वभ्रसन्निभे ॥ ३४६ ॥ विधिज्ञा यं प्रकुर्वंति स विधिर्नो प्रतीयते। गुरुणा रविणा जम्भारातिनापि महीयसा ॥ ३४७ ॥ अंतर्गतगभीराणामीहितं चावगम्यते। इति वक्तुं न शक्येत तिमेर्नो पानमर्णसि ॥ ३४८ ॥ स्फुरन्त्योप्युल्लसंत्योऽपि चपला एव चलात्मिकाः। चर्कर्ति किमनर्थं नाबलनृणां पि सुन्दराः ॥ ३४९ ॥ अभिरूपाः सुराः सर्वे ऋषयोऽपि वनाश्रिताः। योषितां नैव जानंति चरित्रं स्वमनोगतं ॥ ३५० ॥ आतद्वासरतो दुःखं तत्रावतिष्ठते सकः। दीयमानं तया धान्यं भुंजानो ध्वांक्षवच्छठः ॥३५१॥

मनोहर वस्त्रसे उसे ढकवा दिया और बड़े आदरसे सेठानी कायांकीने उस पर बैठनेके लिये मृगकेतुसे कहा। कामान्ध मृगकेतुको इस रहस्यके समझनेकी बुद्धि कहां थी वह शीघ्रही उस पलंग पर जा बैठा और नरकके समान दुःखदायी उस विष्टासे परिपूर्ण गढेमें जाकर पड़ गया।३४४-३४६। ठीक ही है चतुर लोग जिस चतुरताको करते हैं उस चतुरताका हर एकको जल्दी पता नहीं लग सकता विशेष क्या जिनके अन्तरङ्ग गम्भीर हैं वे जिस बातको करना चाहते हैं उसे और की तो क्या बात, महान भी विद्वान बृहस्पति सूर्यदेव और इन्द्र भी नहीं जान सकते। ठीक ही है जलमें रहनेवाली मछली कब और कैसे जल पीती है यह हर एक नहीं जान सकता। चञ्चल चमकीली और देखनेमें सुन्दर भी बिजली जिस प्रकार घोर अनर्थ कर डालती है उसी प्रकार ये स्त्रियां भी भड़कीली हंसी हंसनेवाली चञ्चल और परम सुन्दरी दीख पड़ती हैं परन्तु चञ्चल चित्त पुरुषोंका ये घोर अनर्थ कर डालती हैं। इन स्त्रियोंके चित्तोंमें क्या क्या चरित्र विद्यमान रहते हैं उन्हें औरकी तो क्या बात विद्वान देव और वनमें रहनेवाले ऋषि मुनि भी नहीं जान सकते। कामी मृगकेतु जिस दिनसे उस गढेमें पड़ा अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता हुआ वह वहीं पर पड़ा रहा एवं जिस प्रकार काकको टुकडा डाल देते हैं उसी प्रकार कायांकी जो उस मूर्खको खानेको देती थी उसे ही वह खाता रहा और अपनी मृत्युके दिन व्यतीत करने लगा ॥ ३४७—३५१ ॥

अथैकदा समायातो मेघाख्यः सिंहलाद्द्रुतं । अलब्ध्वा पक्षिणं मासे षष्ठे मानधनो घनी ॥ ३५२ ॥ तद्वृत्तमुदितं तस्य पुरस्तात्कान्तया खिलं । श्रुत्वोत्थाय व्यधाच्चित्रमिति श्रेष्ठी विचारवित् ॥ ३५३ ॥ निष्कास्य सैनसं वाह्ये कृपीभूर्यासितं खलं । नानाहारीतपक्षैश्च सिंदूरै रचितांगकं ॥ ३५४ ॥ नानावर्णं विधायाशु मुमोचेशानसन्निधौ । जगाविति ततोराजन्नानीतोऽयं विचित्रविः ॥ ३५५ ॥ तं दृष्ट्वा नागराः सभ्या योषितश्च विनोदृतः । जहासुस्तोलयंतिस्म राजामात्यादयोऽपि च ॥ ३५६ ॥ धनेशस्य कुपुत्रं तं मत्वा राज्ञा निर्भर्त्सितः । निःसारितः पुराद्देशाच्चादेवे कृतपोविधिः ॥ ३५७ ॥ पूर्ववैरानुषंगत्वान्निदाननिधनं गतः । यातुधानो महादंष्ट्रो

राजाकी आज्ञासे श्रेष्ठी मेघको सिंहलद्वीप तो जाना पड़ा था परन्तु जब उसे वहां पर वह गंधिल पक्षी नहीं मिला तो वह छठे महिने शीघ्र ही वहांसे वापिस आ गया। जिस समय वह अपने घर आया तो सेठानी कायांकीने मृगकेतुका सारा वृत्तान्त अपने पति मेघसे कह सुनाया। वह सेठ एक विद्वान और विचार शील व्यक्ति था इसलिये उसने मृगकेतुको अपने कियेका फल चखाने केलिये यह आश्चर्यकारी उपाय रचा— गढ में पड़ा पड़ा पापी मृगकेतु चिंता और दुःखसे एकदम कृश और काला पड़ गया था। मेघने उसे वाहिर निकाला। हरे वर्णके पंखोंसे और सिन्दूरसे उसके शरीरको सजाकर उसे चितकवरा वना दिया। नगरके ईशान कोंनमें उसे छोड़ दिया एवं राजाके समीप जाकर यह कहा—हे राजन्! मुझे जो गन्धिल पक्षीके लानेके लिये आज्ञा दी गई थी वह गंधिल नामका विचित्र पक्षी मैंने ला दिया है और वह यह है ॥ ३५२—३५५ ॥ श्रेष्ठी मेघकी बात सुनकर और मृगकेतुको देखकर नगरवासी समस्त सभ्य लोग स्त्रियां राजा और मंत्री आदि समस्त जन ताली पीट पीट कर हंसने लगे और खिल्ली उडाने लगे। व्यापारी धनेशके पुत्र मृगकेतु को कुपुत्र समझ कर राजाने उसे वहुत दण्डित किया और राजधानी एवं देशसे वाहिर निकाल दिया। ठीक ही है जिसका भाग्य अच्छा नहीं होता वह निन्दित कार्यका ही आचरण करता है। पूर्व वैरके सम्वन्धसे मृगकेतुने नगरके विनाशका निदान बांध लिया जिससे मरकर वह राक्षस हो

जज्ञेऽस्थ्युत्करहारभृत् ॥ ३५८ ॥ क्रोधारुणमुखो भीकृज्जंतूनां कृपयोतिगः । दुर्गवाह्यवने स्थित्वा भक्षयामास मानवान् ॥ ३५९ ॥ तद्भिया व्याकुला लोका नादन्ति शेरते न च । नो निःस्सरंति कुत्रापि मृत्युभीः केन सह्यते ॥ ३६० ॥ यदा सर्वजनांतोऽभूत्तदा राज्ञेति तर्कितं । प्रत्यहं दीयते चैको मानवोस्मै पलादिने ॥ ३६१ ॥ यदा नो भक्षयेल्लोकान् तिष्ठेद्भूतवने तदा । एवं संचित्य दूतं स प्रजिघायाशु तं प्रति ॥ ३६२ ॥ दृष्ट्वा दूतं समुत्तस्थौ चण्डोऽरुणनिरीक्षणः । वचोभिस्ताडयन्नत्तुं तदाहेति चरोभिया

गया जो कि तीव्र डाढोंका धारक था। हड्डियोंका हार धारण करता था। सदा उसका मुख क्रोध से लाल रहता था। जीवोंको भयभीत करनेवाला था और निर्दयी था। वह दुष्ट राक्षस चम्पापुरी-के वाह्य वनमें रहने लगा और नगरके समस्त लोगोंको खाने लगा। राक्षसकी यह निर्दयता परि-पूर्ण चेष्टा देखकर नगर निवासी लोगोंको बड़ी आकुलता हो गई। राक्षसके भयसे न वे खाही सके न पीही सके और न कहीं वाहिर जाही सके। ठीक ही मृत्युका भय सहा नहीं जाता। मृत्यु का नाम सुनते ही हृदय थर थरा निकलता हैं ॥ ३५९—३६० ॥ राक्षसके द्वारा जब नगर निवा-सियोंका क्षय होने लगा तब राजाको बड़ी चिन्ता हुई और अनेक तर्कवितर्कोंके साथ उसने यह निश्चित कर दिया कि यदि वह राक्षस यह वात स्वीकार कर ले कि अपनी इच्छानुसार वह किसी भी मनुष्यको न मारे और नगरमें आकर श्मसान भूमिमें ही पड़ा रहे तो हम उसको प्रति दिन एक२ मनुष्य भेज सकते हैं। वस ऐसा विचार कर राजाने शीघ्रही दूत बुलाया और उसे राक्षसके पास भेज दिया ॥३६१-३६२॥ दूतको अपने पास आता देख राक्षस मारे क्रोधके भवक गया उसके दोनों नेत्र लाल हो गये। अनेक प्रकारके दुर्वाक्य कहने लगा और उठकर दूतको खानेके लिये तयार हो गया। राक्षसकी यह क्रूर चेष्टा देखकर दूतने कहा—

॥ ३६३ ॥ श्रूयतो भो महादैत्य ! मां मा भक्षय दुःखिनं । राज्ञो दूतोऽस्म्यहं ते ते विज्ञप्त्यै चागतो प्रभुः ॥ ३६४ ॥ क्रव्यादोऽसौ तदास्वांते तर्कयामास सभ्यवत् । हन्यते चेच्चरो नूनं गुरुहत्या भवेदिति ॥ ३६५ ॥ निश्चित्येत्थं जगौ दूतं याहि याहि ममाग्रतः वैरादन्यदा तेन तत्पुरं निर्जनाकृतं ॥ ३६६ ॥ अतो दूतो न हंतव्यस्त्वादृक्षेण यशस्वता । मानिना विक्रमाढ्येन गुणगांभीर्यशालिना ॥ ३६७ ॥ निसर्गाध्वप्रयाता किं हरिणा ध्वस्तदन्तिना । क्रोष्टा प्रहियते क्वापि श्रुतं दृष्टं त्वया श्रुते ॥ ३६८ ॥ भ्रातृवाक्यं

दैत्यराज ! मैं महा दुःखी हू मुझे मत खाइये मेरी वात सुन लीजिये। मैं चम्पापुरीके राजाका दूत हूं। राजाकी वात:निवेदन करनेके लिये आपके पास आया हूं। दूतकी यह वात सुन जिस प्रकार सभ्य किसी वातका सरलतासे विचार करता है उसी प्रकार वह राक्षस अपने मनमें यह विचार करने लगा। दूतको मारना न्याय विरुद्ध है यदि मैं इस दूतको मार डालूंगा तो मुझे गुरु-हत्याका दोष लगेगा ॥ ३६३—३६५ ॥ वस ऐसा पूर्ण विचार कर राक्षसने दूतसे कहा—भाई दूत ! तुम मेरे सामनेसे जा सकते हो मैं तुम्हें नहीं मार सकता। इस प्रकार वलभद्र धर्मने दृष्टान्त देकर स्वयंभूको समझाया और यह कहा भाई ! पूर्व वैरके संवन्धसे राक्षसने उस पुरको जन शून्य बना दियो था इसलिये तुम्हारे प्रति मेरा यही कहना है कि तुम संसारमें एक यशस्वी मानी पराक्रमी गुणी और गंभीर माने जाते हो तुम सरीखे महा पुरुषको राजा मधुके दूतोंको न मारना चाहिये। भाई ! विचारा दीन श्रृगाल जो कि अपने मार्ग पर चल रहा है उसे बड़े २ हाथियोंके मदको चूर करनेवाले केहरीने मारा हो यह वात आजतक कही भी देखी सुनी नहीं गई है। तुम बड़े२राजाओंके मानको मर्दन करनेवाले हो तुम्हें इन दीन दूतोंको कभी नहीं मारना चाहिये। क्रोधी स्वयंभू कव किसीकी वात सुननेवाला था। अपने बड़े भाई धर्मकी वातका स्वयंभूने कुछ भी आदर नहीं किया। देखते देखते दोनों दूतोंको मार डाला और दोनोंसे जो कुछ भी उनके पास मधुके

तिरस्कृत्य हतौ दूतौ स्वयंभुवा । उभयोः प्राभृतं नीत्वा किं न कुर्वंति दुर्धराः ॥ ३६६ ॥ श्रुतज्ञा ये नरा लोके सत्त्वाढ्याः सज्जना अपि । विमृश्यकारिणोधीरा वन्दनीया ततस्तके ॥ ३७० ॥ ततो गत्वा निजागारं तस्थतूरामकेशवौ । भुंजानौ प्रीतितः सौख्यं निमग्नौ रतिवारिधौ ॥ ३७१ ॥ अथैकदा महाराजा मधुः परिषदावृतः । नृपोदारसमे भान् राजते वा नु रात्रिपः॥ ३७२ ॥ अत्रांतरेऽवरे व्योमयानं विद्युत्प्रभं मधुः । ददर्श सुन्दराकारं नानारत्नचयाचितं ॥ ३७३ ॥ ऊहामास स्वचित्तेऽसौ चपलामण्डलो नु वा । कलायो मिहिरो मेरोः प्रस्थं वैडूर्यरंजितं ॥३७४॥ तन्मध्यस्थं महाकायं लेखर्षिं श्यामसुन्दरं । स्वर्णवल्लीजटामालं दृष्ट्वोत्तस्थौ सुवं-

लिये भेंट थी सब छीन ली। ठीक ही है मदोन्मत्त क्या क्या अनर्थ नहीं कर डालते ॥३६६-३६९॥ संसारमें जो मनुष्य शास्त्रज्ञ हैं। वलशाली हैं। सज्जन हैं। विचार पूर्वक कार्य करनेवाले हैं और धीर वीर हैं वे समस्त लोकके आदरके पात्र होते हैं॥ ३७० ॥ दूतोंके मारे जानेके वाद नारायण स्वयंभूका क्रोध शांत हो गया। वे दोनों भाई वलभद्र और नारायण सानन्द अपने राज महलोंमें रहने लगे। प्रीति पूर्वक राज्य सुख भोगने लगे एवं भोग विलास रूपी समुद्रमें एकदम मग्न हो गये ॥ ३७१ ॥

एक दिनकी बात है कि अर्धचक्री राजा मधु अनेक राजाओंसे परिपूर्ण राजसभामें वैठे थे उस समयकी उनको लोकोत्तर शोभा थी। उन्हें देख लोगोंको यह जान पड़ता था कि यह साक्षात् सूर्य हैं वा चन्द्रमा हैं॥ ३७२ ॥ राजा मधुको उस समय एक विमान दीख पड़ा जो कि विजलीके समान सुन्दर प्रभाका धारक था। मनोज्ञ आकारसे शोभायमान और नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त था। इसप्रकार अद्वितीय शोभासे शोभित विमानको देखकर राजा मधुके चित्तमें सहसा यह विचार उदित हो गया कि यह विजलीका प्रतिबिंब है वा चन्द्रमा वा सूर्य है अथवा वैडूर्य मणिसे शोभायमान यह मेरु पर्वतका पाषाण है। उस विमानके मध्य भागमें नारद ऋषि-

दितुं ॥ ३७५ ॥ प्रायशः स्वागतं साध्यं संविधाय प्रमोदनः । त्रिष्टरे स्थापयामास सतां हीति कुलक्रमः ॥ ३७६ ॥ अन्वयुक्तं मुनिस्तस्य राज्ये च क्षेमतां तनौ । मुहुर्मुहुः क्षणं स्थित्वा व्याजहारेति कौतुकात् ॥ ३७७ ॥ भो मधो ! यः कृतस्तेन तव दुःखसमुत्करः । स्वयंभुवातिदुष्टेन प्रसह्य सादरं शृणु ॥ ३७८ ॥ वार्यमाणोऽपि धर्मेण भ्राता दूतद्वयं तव । हत्वा द्रव्यं जघानाशु स्वयंभूर्भीषणोऽहिवत् ॥ ३७९ ॥ लीलावानिंद्रवद्विद्वान् गुरुवन्मेरुभोऽचलः । प्रतापाक्रांतभूकः सन् तृणवत्त्वां न मन्यते ॥ ३८० ॥ न मन्यते

दीख पड़े जो कि विशाल शरीरके धारक थे । देवताओंके ऋषि थे श्याम सुन्दर थे और सुवर्णमयी जटाओंसे शोभायमान थे नारद मुनिको देखकर राजा मधु शीघ्रही सिंहासनसे उठ खडा हुआ । भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । बड़े आनन्दसे उनका स्वागत किया और भक्तिपूर्वक सिंहासन पर विठाया ठीक ही है जो सज्जन पुरुष हैं उनके कुलक्रमकी यही रीति है ॥ ३७३—३७६ ॥ उचित शुश्रूषा जब समाप्त हो गई उस समय ऋषि नारदने राजा मधुके राज्यकी और शरीरकी कुशल पूछी । कुछ देर तक शांत होकर वे बैठे रहे पीछे कौतूहलसे इस प्रकार कहने लगे—

प्रिय मधु ! अति दुष्ट स्वयंभूने सुनते ही दुःख उत्पन्न करनेवाला जो तुम्हारे साथ घमण्ड-पूर्वक कौतिक किया है उसे मैं सुनाता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो । तुम्हारे लिये भेंट लेकर दो दूत आ रहे थे। दैवयोगसे स्वयंभूसे उनकी भेंट हो गई । उन्हें तुम्हारे दूत जान स्वयंभूके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा । बलभद्र धर्मने उसे बहुत रोका परन्तु उसने एक न सुनी तुम्हारे दोनों दूतोंको मार डाला एवं सर्पके समान महा भयङ्कर स्वयंभूने उनका सारा धन छीन लिया । वह राजा स्वयंभू इन्द्रके समान क्रीडा प्रेमी है। बृहस्पतिके समान विद्वान है । मेरु पर्वतके समान अचल है । समस्त पृथिवीको अपने प्रतापसे उसने वश कर रक्खा है तुम्हें तो वह तृणकी बरावर भी नहीं मानता ॥३७७—३८०॥ क्रियाहीन भी नहीं मानता है अक्रियाहीन भी नहीं मानता है । अप्रा-

क्रियांहीनोऽक्रियाहीनो न मन्यते । अप्राग्धनो न मन्येत प्राग्धनोनो न मन्यते ॥ ३८१ ॥ पुरा नो जीयते ते स यदा विक्रमसत्पदं । ने
ष्यति त्वां तदावस्थां दुःखगोचरतामितां ॥ ३८२ ॥ ब्रह्मात्मभूवचः श्रुत्वा जगर्ज गर्जनान्वितः । खेजगर्जं समाकर्ण्य कंठीरव इवा
परः ॥ ३८३ ॥ इयाय गगनं सोऽपि ब्रह्मचारी कलिप्रियः । अन्योन्यं द्वेषमुत्पाद्य नारदो नारदोरदः ॥ ३८४ ॥ दूतनाशं समाकर्ण्य
सद्धत्कंपितविग्रहः । हन्म्यहं साहसं तूर्णं ब्याहृत्येति समुत्थितः ॥ ३८५ ॥ बलेन महता साकं साकं तं कर्तुमुद्यतः । चचाल दाप-

ग्धन भी नहीं मानता है प्राग्धन भी नहीं मानता है ऐसा कहनेसे विरोध सरीखा जान पड़ता है इसलिये इसका तात्पर्य यह है कि जो पुरुष क्रिया हीन है अर्थात् निष्क्रिय है—कृत कृत्य है उसे किसीके माननेकी आवश्यकता न होनेसे वह भी किसीको नहीं मानता तथा जो अक्रियाहीन है अर्थात् निन्दित क्रियाओंको प्राप्त है वह उद्दण्ड है वह भी किसीको नहीं मानता है। जो महानुभाव अप्राग्धन है अपूर्व संपत्तिका स्वामी है वह भी किसीको नहीं मानता क्योंकि कृतकृत्य होनेसे उसे किसीके आदरको आवश्यकता नहीं रहती तथा जो प्राग्धन है जिसको कुछ धन प्राप्त हो चुका है वह भी घमण्डमें आकर किसीको कुछ नहीं पूछता इसलिये वह भी किसीको मानना नहीं चाहता। यह तुम निश्चय समझो वह तुम्हारे सामने टिक नहीं सकता क्योंकि तुम संसारमें एक प्रबल पराक्रमी हो जिस समय वह तुम्हारा सामना करेगा उस समय वह दुःखदायी अवस्थाको ही प्राप्त होगा ॥ ३८१—३८२ ॥ नारद मुनिसे ये अपने अपमान सूचक वचन सुनकर राजा मधु का हृदय क्रोधसे पजल गया एवं जिसप्रकार आकाशकी गर्जना सुन केहरी गर्ज निकलता है उसी प्रकार राजा मधु भी वेहद गर्जने लगा। इस प्रकार जिसको कलह ही प्यारी है और आपसमें द्वेष कराकर जो मनुष्योंका संहार करानेवाले हैं ऐसे नारद मुनि स्वयंभू और मधु दोनोंमें द्वेषका अंकर बोकर आकाशमार्गसे प्रयाण कर गये। अपने दूतोंका इसप्रकार आश्चर्य कारी मरण

यित्वा स दुन्दुभिं मृत्युभीप्रदं ॥ ३८६ ॥ तदामात्याः समेत्याशु ऐपू राजानमंजसा । कपाटोरस्समुद्बाहु प्रक्षुब्धाम्भोधिभीषणं ॥३८७॥ सजाघटीति नो क्षिप्रं दुर्जयं जयकांक्षिणं । उपक्रमो धराधीश ! निर्वाच्यतास्पदं यतः ॥३८८॥ अर्णोराशिगभीरा ये नीतिविक्रमभूषिताः । विमृश्यकारिणः क्षुद्रान् वा फणंति न दुर्जयान् ॥ ३८९ ॥ स्वमानेऽपि गोमायौ प्रमत्ते वेगवत्यहो । न प्रहारं समाधत्ते पञ्चा-

सुन पहिले तो राजा मधुका शरीर कम्पायमान हो निकला पीछे हृदयको दृढ़कर वह मन ही मन यह कहने लगा कि वह स्वयंभू दुष्ट है मैं उसे अवश्य मारूंगा इसलिये शीघ्र हो उसके मारनेके लिये सिंहासनसे उठ बैठा। राजा स्वयंभूको दुःखित बनानेके लिये उसने विशाल सेना तयार करा ली एवं नगरमें भेरी दिवाकर राजा स्वयंभूके ऊपर चढ़ाई कर दी ॥३८३—३८६॥ राजा मधुकी यह चेष्टा देख अनेक मंत्री उसके सामने आये और कपाटके समान विशाल वक्षस्थलके धारक विशाल भुजाओंसे शोभायमान एवं खलबलाते हुए समुद्र समान भयङ्कर राजा मधुसे विनय पूर्वक यह कहने लगे—

महाराज ! जो महानुभाव दुर्जय मनुष्योंके जयकी आकांक्षा रखनेवाले हैं उनका कोई भी जल्दी किया हुआ कार्य अच्छा नहीं होता क्योंकि जल्दी किये हुए कार्यसे संसारमें निन्दा ही होती है। प्रभो ! जो महानुभाव समुद्रके समान गंभीर हैं। नीति और पराक्रमसे शोभायमान है एवं हरएक कार्यको विचार पूर्वक करनेवाले हैं वे क्षुद्र पुरुषों पर इसप्रकार कमर नहीं कसते और दुर्जयोंको क्षमा भी नहीं करते ॥ ३८७—३८९ ॥ स्वामिन् ! शृगाल चाहें कितना भी मदोन्मत्त चंचल और वड़वड़ करनेवाला हो परन्तु जो केहरी मदोन्मत्त हाथियोंका घमण्ड चूरनेवाला है वह दीन शृगाल पर प्रहार नहीं करता। जिस प्रकार शरद ऋतुमें होनेवाली फल प्राप्ति शरद ऋतुके शुभ कालकी आकांक्षा रखनेवालोंके ही होती है यदि बीचमें ही जल्दी कर दो जाय तो वह फल प्राप्ति

मन इमेशमित् ॥ ३६० ॥ शनकैः शनकैः कार्यसिद्धिः पुंसां प्रजायते । शारदी च फलप्राप्तिः शुभकालानुरागिणः ॥ ३६१ ॥ निरा म्येति मदोत्तुङ्गधराधरतटस्थितः । उवाच पर्वतस्फोटकठिनं कठिनं मधुः ॥ ३६२ ॥ दुर्जया व्याधयो दुष्टा हंतव्या अविलम्बनः अन्यथायतिविध्वंसासुप्रणाशकरा बलात् ॥ ३६३ ॥ स्फुरदंशौ तमोभानौ चक्रे संयोजयत्यपि । कौशिकाश्च प्रणश्यन्ति रणे रणविदि मयि ॥ ३६४ ॥ सामादित्रयमुल्लंघ्य विद्वत्सु बलिभिर्नरैः । योज्यते निग्रहोपायो नान्या शत्रुप्रतिक्रिया ॥ ३६५ ॥ निमित्तै र्वार्यमाणो

नहीं हो सकती उसी प्रकार समय देखकर धीरे धीरे ही पुरुषोंको कार्य सिद्धि होती है जल्दी करनेसे कोई भी कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। राजन्! आप जो शत्रु के साथ युद्ध करनेका प्रयत्न कर रहे हैं वह विचार कर ही आपको करना चाहिये ॥ ३६०—३६१ ॥ राजा मधु तो उस समय अहंकार रूपी उत्तुङ्ग पर्वतकी चोटी पर चढा हुआ था वह मन्त्रियोंकी उचित भी बात कब माननेवाला था उसके चित्त पर मन्त्रियोंके वचनोंका रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा प्रत्युत पर्वतको टूक २ करने वाले वज्रके समान इस प्रकार वह वचन कहने लगा—

जो व्याधियां दुष्ट और दुर्जय हैं जल्दी जीतीं नहीं जा सकतीं उन्हें जहां तक वने वहुत शीघ्र नष्ट कर देना चाहिये यदि इनके नाशका शीघ्र उपाय नहीं किया जायगा तो आगामी कालमें ये अनेक प्रकारकी हानियां करनेवालीं होंगीं और प्राणोंकी नाशक वनेंगीं। जिसका प्रकाश चारो ओर फैल रहा है ऐसा सूर्य जिस समय उदित हो जाता है उस समय जिस प्रकार उलूक पक्षी छिप जाते हैं—सूर्यका सामना नहीं करते उसी प्रकार संग्रामके अन्दर रणकला वेत्ता जिस समय मैं चक्र लेकर खड़ा हो जाता हूं उस समय शत्रुओंका पता तक नहीं चलता। जो पुरुष वलवान हैं वे शत्रुओंके लिये साम दण्ड और भेद इन तीन प्रकारकी नीतियोंका उल्लंघन कर केवल दाम नीति का आश्रय करते हैं— शत्रुओंके निग्रहका ही उपाय सोचते हैं क्योंकि विना निग्रहके उपायके

ऽपि पफोण फणिराडिव । त्यक्त्वा भुवं नभः श्रित्य भानुमांस्तं मधुर्द्विषं ॥ ३९६ ॥ केणुः पीलुकदंबानि दानवर्पाणि सर्वतः गर्जन्ति चपला मेघाः सिंदूराभरणानि वा ॥ ३९७ ॥ हेषानीता विचित्रांगा आश्वीयाः क्षुण्णभूधराः । प्रचेलुश्चरणन्यासविवरीकृतसिंधवः ॥ ३९८ ॥ आयुधीया भटा भूमविक्रमा विक्रमक्रमाः । स्थपुटोन्नतभुवं चेलुः कृतांतहरयो नु वा ॥ ३९९ ॥ स राजाजिरमध्यस्थो मधुर्मधुरिवापरः । किन्नरोद्गीतकीर्तिश्च प्रलयांभोधिभीषणः ॥ ४०० ॥ अभिवेष्ट्य पुरं तस्य स्थितः शृंखलसद्भुजः ।

और शत्रुओंके लिये कोई प्रतीकार नहीं ॥ ३९२—३९५ ॥ जिस समय राजा मधु स्वयंभूसे युद्ध करनेके लिये गया था उस समय उसे बहुतसे अपशकुन हुए थे उन अपशकुनोंसे उसे रुक जाना था परन्तु वह बिलकुल नहीं रुका किन्तु सर्पके समान उसका और भी रोष बढता ही चला गया एवं जिस प्रकार सूर्य आकाशमें चलता है उसी प्रकार राजा मधु भी वैरी स्वयंभूकी ओर पृथ्वीको छोड़कर आकाश मार्गसे चल दिया ॥ ३९६ ॥ उस समय जिनके गण्डस्थलोंसे मद चूता था ऐसे हाथियोंके समूहके समूह चीत्कार करते थे और सिंदूरके आभरणोंसे शोभायमान थे सो ऐसे जान पड़ते थे मानों बिजली युक्त मेघ ही गरज रहे हैं ॥३९७॥ घोड़ोंका समूह चलने लगा जो कि पद पद पर हींसता जाता था। चित्र विचित्र अङ्गका धारक था। अपनी टापोंसे पर्वतोंको चूरनेवाला था और अपने खुरोंके न्याससे समुद्र सरीखे गढ़े करनेवाला था। बहुतसे पैदल योधा चलने लगे जो कि अनेक प्रकारके आयुधोंके धारक थे। अत्यन्त पराक्रमी थे। विक्रमक्रमा-पक्षियोंके गमनके समान शीघ्र गमन करनेवाले थे। चलते समय वे नीची ऊंची जमीनका कुछ भी विचार नहीं करते थे इस लिये वे साक्षात् यमराजके घोड़ोंके सरीखे जान पडते थे। जिसकी कीर्तिका गान बड़े २ किन्नर करते थे एवं जो प्रलय कालके समुद्रके समान अत्यन्त भयङ्कर था ऐसा वह राजा मधु, राक्षस मधुके समान सेनाके मध्यभागमें स्थित हो गया तथा सांकलोंसे जिसकी भुजायें शोभायमान हैं एवं

खेचरै र्भूचरैर्भूरिदानवैर्नतपत्कजः ॥ ४०१ ॥ अदितं तं समाकर्ण्य स्वयम्भूर्निर्ययौ पुरः । आभिमुख्यमितस्तस्य बलिनोमा महामनाः ॥ ४०२ ॥ ध्वनयन् जन्यवादित्रं त्रासयन् विद्विषां व्रजं । तर्कयन्नथ गंधर्वान् तं प्राहेति बलानुजः ॥४०३ ॥ युद्धार्थमागता ये तु ते किं तिष्ठन्ति भूतले । अयुध्य स्थीयते स्वैरं कथंकारं त्वयाधम ! ॥ ४०४ ॥ निशम्य वचनं तस्य मधुराशोत्थितोऽग्निवत् । तमोवद्व्या नश क्षिप्रं वाणपूरं क्षिपन्नलं ॥ ४०५ ॥ चापाटिनीसमुद्भूतध्वानेन ध्वनिता नगाः । कूजुश्च केकिनो भ्रांत्या जीमूतस्य प्रवर्षिण ॥

विद्याधर भूमिगोचरी और राक्षस सभी जिसके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं ऐसे राजा मधुने नारायण स्वयंभूका सारा नगर घेर लिया ॥३६८—४०१॥ जिस समय राजा स्वयम्भूने अपने ऊपर चढकर मधुको आता सना वह शीघ्रही नगरसे बाहिर निकल पडा एवं अपने भाई बलभद्रके साथ शीघ्रही मधुका सामना कर डाला। ॥ ४०२ ॥ संग्रामके बाजोंको बजाता हुआ शत्रुओंको भयभीत करता हुआ और गन्धर्वोंको अनेक प्रकारके तर्क वितर्कोंमें उलझाता हुआ नारायण स्वयम्भू जिससमय प्रति नारायण मधुके सामने आकर खड़ा हुआ उस समय उसने मधुसे इस प्रकार कठिन वचन कहे—

जो पुरुष यहां पर युद्धके लिये आये हैं वे पृथ्वीतल पर विद्यमान है वा नहीं हैं ? रे अधम मधु! यदि तू यहां युद्ध करनेके लिये आया है तो तू युद्ध कर। विना युद्धके वृथा तू क्यों यहां पर पड़ा हुआ है!। राजा मधु तो पहिलेसे ही आग बबूला था जिस समय उसने स्वयम्भूके इस प्रकार कठिन वचन सुनें वह और भी क्रोधसे पजल गया वह अग्निके समान जाज्वल्यमान होकर शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ एवं बाणोंसे अच्छादित कर समस्त जगतको अन्धकार मय बना दिया ॥ ४०४ ॥ ४०५॥ उस समय तोपोंके शब्दोंसे समस्त पर्वत शब्दायमान हो गये थे एवं उस शब्दको वर्षने वाले मेघोंके शब्द समझकर मयूरगण शोर मचाते थे ॥ ४०६ ॥ उस समय संग्राम भूमिमें हाथी

४०६ ॥ सिंधुरैः सिंधुरा लग्नाः स्यंदनैः स्यन्दना समं। सप्तिभिः सप्तयो गाढं सादिनः सादिभिः सह ॥ ४०७ ॥ कुन्ताकुन्ति महाजन्यं खड्गाखड्गि गदागदि । कशाकशि तदा जज्ञे वाणावाणि कराकरि ॥४०८॥ शांडाशांडि तयोर्वाढं सीरासीरि पदापदि । उपलोपलि भीरूणां प्राणहृत् सुभटोत्सवं ॥ ४०६ ॥ (युग्मं) स्वायंभुवं तदा सैन्यं भेजे काष्ठास्त्वरा भिया । माधवीयास्त्रभिन्नं सत् का भीर्मरणतो भुवि ॥ ४१० ॥ निजं बलं गतच्छायं दृष्ट्वा नारायणोऽभितः । प्रलम्बघ्नेन सार्धं वा समुत्तस्थौ हरिर्गिरेः ॥ ४११ ॥ करेणून् पातयामास भूधरानिव गोत्रभित् । इषूत्करैर्दिवानाथः कज्जलाभांस्तमांसि वा ॥ ४१२ ॥ उकारच्युतकोपमा । मुख्यांगे भग्नतां याते

हाथियोंसे भिड़ गये थे,रथ रथोंसे घोड़े घोड़ोंसे घुड़सवार घुड़सवारोंसे भालेवाले भालेवालोंसे खड्ग वाले खड्गवालोंसे गदावाले गदावालोंसे कोडावाले कोडावालोंसे वाणवाले वाणवालोंसे लड़ने लगे। बहुतसे सुभट हाथों हाथ युद्ध करने लगे तथा सड़ासीवाले सडासीवालोंसे और हलमूसल वाले हलमूसलवालोंसे युद्ध करने लगे। वहुतसे सुभट आपसमें पैरोंसे युद्ध करने लगे एवं बहुतसे आपस में पत्थर लेकर युद्ध करने लगे इस प्रकार डरपोकोंको प्राणोंका नाश करनेवाला घोर संग्राम होने लगा ॥ ४०७—४०६ ॥ राजा मधुके तीक्ष्ण अस्त्रोंसे छिन्न भिन्न हो नारायण स्वयम्भूकी सेना मारे भयके जहां तहां दिशाओंमें भाग गई ठीक ही है मरणसे अधिक संसारमें कोई भय नहीं। ॥ ४१० ॥ जिस समय नारायण स्वयम्भूने अपनी सेनाको हतप्रभ और जहां तहां भागता देखा उस समय उसकी आत्मा क्रोधसे भवल गई एवं जिस प्रकार पर्वतसे केहरी उठता है उसी प्रकार वह भी वलभद्रके साथ शीघ्र ही युद्धके लिये उठकर तयार हो गया ॥४११॥ जिस प्रकार इन्द्र बड़े वडे पर्वतोंको ढाह देता है और सूर्य कज्जलके समान काले अन्धकारको तितर वितर कर देता है उसीप्रकार नारायण स्वयंभूने वाणोंके समूहसे मदोन्मत्त हाथियोंको धराशायी बना दिया ॥४१२॥ सेनाके मुख्य अङ्ग हाथियोंको इस प्रकार भग्न होता देख राजा मधुका चित्त हिलने लगा एवं वह मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगा कि यह स्वयंभू वड़ा दुर्धर शत्रु है सामान्य नहीं। किस

चक्रंपेति स कंपधुत ॥ दुरा ढ्योऽयं न सामान्यो जीयते केन हेतुना ॥ ४१३ ॥ विचिंत्य बहुशः स्वांते शल्यवाणं मुमोच तं ॥ सैनिका येन शल्तोश्च कीलिता अभवन्निव ॥ ४१४ ॥ संमोहनं द्वितीयं च तामसास्त्रं तृतीयकं। युगपद्व्यानशे मुक्तं स्वयंभूसंगराजिरं ॥ ४१५ ॥ मूर्छिता अपतन्वीरा रावीरा रुधिरारुणाः। गजोपांतस्थिताः सायंरागा इव तमोन्विताः ॥ ४१६ ॥ तमोभिरखिलं सैन्यं व्याप्तं गतमिवाभवत्। प्रलम्बघ्नं तदा प्राह स्वयंभूर्भूरिविक्रमः ॥ ४१७ ॥ आवाभ्यां किं विधातव्यं भ्रातरद्य वद त्वरा। दुर्जयो

कारणसे इसे जीतना चाहिये ? इस प्रकार बहुत समय तक मन ही मन विचार कर राजा मधुने नारायण स्वयंभूकी सेनामें शल्यवाण छोड़ा जिससे उसकी सेनाके समस्त सुभट कीलित हो ज्योंके त्यों रह गये ॥ ४१३—४१४ ॥ मधुने दूसरा संमोहन नामका वाण छोड़ा जिससे समस्त सुभट मूर्छित हो गये। तीसरा तामसास्त्र छोड़ा जिससे सर्वत्र अन्धकार हो गया इस प्रकार राजा मधुके द्वारा एक साथ छोड़े हुए इन तीन वाणोंसे नारायण स्वयंभूका सेना चेत्र एक साथ व्याप्त हो गया। उस समय नारायण स्वयंभूके सुभट हा २ शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरगये उनका समस्त अङ्ग लोहू लुहान था और काले हाथियोंके समीप वे पडे थे इसलिये वे अन्धकारसे परिपूर्ण सायं कालकी लालामीके समान जान पड़ते थे ॥ ४१५—४१६ ॥ अन्धकारसे व्याप्त समस्त सैन्य ऐसा जान पडता था मानों यह नष्ट ही हो गया है अपने सैन्य मंडलकी यह शोचनीय दशा देख कर पराक्रमशाली स्वयम्भूने अपने भाई वलभद्रसे कहा—

प्रिय भाई ! शीघ्र कहो अब हम दोनोंको क्या कार्य करना चाहिये क्योंकि यह राजा मधु दुर्जय और वलवान शत्रु है एवं मेरु पर्वतके समान निश्चल है यह नियमसे हमें जीत लेगा। देखो तो इस दुष्ट शत्रुने हमारा समस्त सैन्य व्यामुग्ध कर दिया है और जवरन अपने तीक्ष्ण वाणोंसे नष्ट भ्रष्ट कर डाला है। नीति यह सूचित करती है कि जिसप्रकार विष वृक्षकी लता प्राणोंको

ऽयं महाशत्रु मेंरुसंस्थोऽनुजेष्यति ॥ ४१८॥ आत्मीयं संगरं सर्वं पीतं पातलप्रेरितं । ध्वंसितं वानु बाणेन प्रसह्यानेन विद्विषा॥४१६॥ व्याधिः शत्रुश्च हंतव्यो विषवल्लीव वेगतः । अतो ब्रूहि महोपायं येनाविर्भायते शर्म ॥ ४२० ॥ लांगलीत्यवददंत श्रूयतां रणराजिहत् । विद्याधराचलादर्वाक् वर्ततेऽलकपत्तनं ॥ ४२१ ॥ तदधीशो महाचूलो मित्रमस्त्यावयोः परः । तमानयाविलंबमो शत्रु विद्या निराकृतौ ॥४२२॥ अवीवदन्निशम्यादो वचो भ्रात्रा समीरितं । गतव्यं ते त्वरा देव नास्त्यत्रैव विचारणा ॥ ४२३ ॥ सीरी विद्याभरेणामा व्योमयानमधिष्ठितः । यात्यंबरे यदा सायो विद्विषा किंकृतं तदा ॥ ४२४॥ नारदोक्त्या क्रुधा रक्ष्यंस्त्वबराद्दिकशंदया !

हरण करनेवाली होती है इसलिये लोग उसे शीघ्र ही छेद डालते हैं उसी प्रकार व्याधि वा शत्रु भी प्राणोंका नाशक होता है इसलिये जहां तक बने उसे बहुत जल्दी नष्ट कर डालना चाहिये। भाई! तुम अब शीघ्र इस शत्रुके नाशका कोई पुष्ट उपाय बताओ जिससे यह शत्रु शीघ्र शांत हो जाय ॥ ४१७—४२० ॥ नारायण स्वयम्भूकी यह पीडा-जनक बात सुन कर उत्तरमें वलभद्रने कहा—रण विजयी भाई स्वयम्भू! मैं तुम्हें एक उपाय बतलाता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

विद्याधर पर्वत विजयार्धकी उत्तर श्रेणीमें एक अलक पत्तन नामका नगर है उसका स्वामी विद्याधर राजा महाचूल है जो कि हम दोनोंका परम मित्र है। वह मधुकी समस्त विद्याओंके न श करनेमें समर्थ है इसलिये उसे किसी उपायसे यहां बुलाना चाहिये। वलभद्र धर्मके इस प्रकारके वचन सुनकर नारायण स्वयम्भूको कुछ सन्तोष हुआ और यह कहा भाई! आप शीघ्र वहां पर चले जाइये अब इस विषयमें विशेष विचार करनेके लिये समय नहीं है। बस वलभद्र धर्म किसी विद्याधरके साथ शीघ्र ही विमान पर सवार हो लिये। इस प्रकार वलभद्र धर्म तो आकाशमार्गसे विद्याधर लोककी ओर जा रहे थे इधर राजा मधुने क्या काम किया कि नारदसे यह सुनकर कि वलभद्र, विद्याधर लोकको जा रहा है शीघ्र ही विद्यावलसे समस्त आकाश सुरक्षित कर दिया एवं विशाल शत्रुरूपी नागके लिये गरुड़ स्वरूप उस मधुने

मधुनारिविताना हिवितानगरुड़ेन हि ॥ ४२५ ॥ पृष्ठतो भ्रामरी विद्या मुक्ता तन्नाशहेतवे । तयागात्य समादाय क्षितोऽब्धौ लांगलो महान् ॥ ४२६ ॥ पतन्नपांशुलोजापमक्षरद्वितयात्मकं । सस्मार वेगतो गाढ़मन्त्रराजमनादिकं ॥ ४२७ ॥ तोयराशिस्थदेवस्य मणिचूलस्य कम्पनात् । विष्टरस्य समेत्याशु तद्देव्यंबा दधार तं ॥४२८॥ अचर्चयित्वा मणिं दत्वा तटे मुक्तो गुणात्मकः । तथा पुण्य वशात्तत्र यावदास्ते खगं स्मरन् ॥ ४२९ ॥ तावत्पश्यन् समायातः खेवरः खेवरन् द्रुतं । विमाने स्थापयित्वा तं जगामाशु यथारुचि

वलभद्रके नाशके लिये पीछेसे भ्रामरी नामकी विद्या छुटका दी। उसने वलभद्रको जिकड़कर पकड़ लिया और विशाल समुद्रके अंदर धर फेंका ॥ ४२१—४२६ ॥ वलभद्र धर्म जिस समय समुद्रमें पड़ गये वहांपर वे निस्सहाय हो गये एवं अनादि सिद्ध और दो अक्षरस्वरूप 'अर्हं' इस मंत्र राजको वे जपने लगे। उस समुद्रका स्वामी एक मणिचूल नामका देव था। मंत्रके प्रभावसे उसका आसन कपा और उसकी अंबा नामकी देवीने ऊपर निकाल लिया। महापुरुष जान प्रेमपूर्वक बलभद्रकी पूजा की। भेंटमें मणि प्रदान की । एवं अनेक गुणोंके भंडार स्वरूप उसे तटपर आकर छोड दिया ॥ ४२७—४२९ ॥ वलभद्र धर्म तटपर आकर देखते क्या हैं कि जिसके विमानमें चढकर आये थे वह विद्याधर जहां तहां आकाशमें घूमता हुआ वहां पर आगया है उसे देख वलभद्रको बड़ा हर्ष हुआ विद्याधरने उन्हे विमानमें चढ़ा लिया और जहां उन्हें पहुंचना था बहां वे दोनोंके दोनों चल दिये ॥ ४३० ॥ मधुद्वारा छुटकाई हुई भ्रामरी विद्याने फिर भी वलभद्र का पीछा न छोड़ा। उसने भेरुण्ड पक्षीका रूप धारण कर लिया और वलभद्रको निगल गई। वलशाली वलभद्रने नख और दांतोंसे उसे विदार डाला। मुष्टियोंके तीव्र घातोंसे उसका पेट फाड़कर बाहर निकल गये और पर्वतके ऊपर गिरने लगे, इतनेही में लाघवी नामकी महा विद्यासे उस विद्याधरने वलभद्रको डाट लिया। विमानमें सवार कर लिया और दोनोंके दोनो गङ्गा सरोवर पर

॥ ४३० ॥ मेरुडरूपमादाय भूयो धृत्वागलद्बलं । विदार्य भ्रामरीं दुष्टां नखरैश्च रदैः खरैः ॥ ४३१ ॥ बलभद्रो बलोद्वाहुर्मुष्ट्या घातैर्घनैर्भृशं । स्फोटयित्वोदरं तस्या निःसृत्यासौ पतन् गिरौ ॥ ४३२ ॥ लाघव्या विद्यया तेन दध्रे गगनगामिना । व्योमयानमधिष्ठाप्य तं गङ्गाहृदमाप सः ॥ ४३३ ॥ पायं पायं जलं तत्र कारं कारं प्रवृत्तिकां । स्थायं स्थायं स्थिरो गन्तुमिच्छतः स्म तदा तयो ॥ ४३४ ॥ तत्रागत्य बलं नीत्वा गत्वा श्रीखेचराचले । सिंहीभूत्वारुणाक्षी सा खादितुं तं समागता ॥ ४३५ ॥ तदा शीरी महामन्त्रं स्मृत्वा तां दृढमुष्टिभिः । जघान चरणन्यासकंपितांगोऽशनिदृढः । ४३६ । दुर्जयं तं समावेद्य व्यालवद्दुर्धरं तु सा । गृहीत्वां द्रुपदो

जाकर पहुंच गये ॥ ४३१—४३३ ॥ गङ्गा सरोवर पर पहुचकर उसका जलपान किया। अनेक प्रकारकी चेष्टा कीं एवं कुछ देर विश्राम कर जिस समय आगेको चलनेके लिये उद्यत हुए कि इतनेही में वह भ्रामरी विद्या बलभद्रको विजयार्घ पर्वत पर उठाकर ले गई एवं सिंहका रूप रखकर उसे खानेके लिये तयार हो गई। वलभद्रसे उस समय और कोई उपाय नहीं वना। णमोकार मंत्र का स्मरण कर वे वज्रके समान कठोर होकर कठोर मुष्टियोंसे उसे मारने लगे। वलभद्र जिस समय उसे मार रहे थे पैरोंके जहां तहां पड़नेसे उसका शरीर चल विचल होता था। जब भ्रामरी विद्याने यह सोचा कि यह जल्दी जीता नहीं जाता और सर्पके समान महा भयङ्कर है तो प्रवल पराक्रमी उस बलभद्रको मजवूतीसे पकड़ लिया और एक विशाल शिलाके नीचे जाकर दवा दिया वस देवी तो वलभद्रको दवाकर किनारे हो गई इतनेही में अपनी स्त्रीके साथ उस पर्वत पर क्रीड़ा करनेके लिये विद्याधर महाचूल भी आ गया। जिस शिलाके नीचे वलभद्र धर्म दवे पडे थे उस शिला पर महा चूलकी दृष्टि पड़ गई। वलभद्रके हलन चलनसे वह शिला हलती चलती थी शिलाको देखते ही विद्याधर महा चूलने समझ लिया कि इसके नीचे कोई व्यक्ति है और यह मंत्र से कीली हुई है वस चकोर पक्षीके समान चञ्चल नेत्रोंसे शोभायमान और विशाल भुजाओं के धारक विद्याधर महाचूलने शीघ्र ही शिलाको उखाड़ डाला। शिलाके नीचेसे वलभद्र धर्म वाहिर

मध्ये चिक्षेपायामशालिनः ॥ ४३७ ॥ क्षिप्त्वाटिता यदा देवी तदैवागतवान् खगः । महाचूलाभिधः प्राज्ञः क्रीडितुं रामया सह ॥४३८॥ उच्छृसंतीं शिलां दृष्ट्वा विद्यया कीलितां च सः । उत्पपाट महाबाहुश्चारुचञ्चत्करोदक् ४३९ ॥ ततो निःसृत्य वेगेन मुसली खगमीक्ष्य तं । आलिलिंग गुणाम्भोधिं कृतवान् भाषणं मुहुः ॥ ४४० ॥ संगरोद्भूतवृत्तांतमुक्त्वा नीत्वा खगं वली । सौहृद्यलीलया याति तावदन्यकथाऽभवत् ॥ ४४१॥ मधुमुक्ता भ्रामरी सापि दृष्ट्वा तं खगपुंगवं । तन्मूर्ध्नि क्षेपयामास शैलं गोवर्धनाभिधं ॥४४२॥ खगेनावगता विद्या भ्रामरी भीप्रदा नृणा । वज्रशृंखलया वाढं तां ववंध तदा खगः ॥४४३॥ भन्वयुक्तेति कासि त्वं रण्डे ! दुष्कर्म-

निकल आये । अनेक गुणोंके भण्डार विद्याधर महाचूलको देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ । एकदम मिलनेके लिये उससे लिपट गये और वार वार बात चीत करने लगे ॥ ४३४—४४० ॥ संग्राममें जो कुछ भी बात हुई थी सारी वलभद्रने कह सुनाई । विद्याधर महाचूलको अपने साथ ले लिया एवं वे दोनों आपसमें मैत्रीभाव रख लीलापूर्वक द्वारावतीकी ओर चले ही आ रहे थे कि यह घटना उपस्थित हो गई—

राजा मधु द्वारा भेजी हुई भ्रामरी विद्याने जिस समय विद्याधरोंमें श्रेष्ट राजा महाचूलको देखा शीघ्र ही उसने मारनेके लिये उस पर गोवधन नामका पर्वत गिरा दिया ॥ ४४१—४४२ ॥ भ्रामरी विद्याकी यह क्रूर चेष्टा देखकर विद्याधर महाचूलने समझ लिया कि मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाली यह भ्रामरी नामकी विद्याकी करतूत है । मारे क्रोधसे उसका हृदय प्रज्वलित हो गया । हाथमें वज्र शृङ्खला लेली और उसे जिकड कर वांध कर इस प्रकार कहने लगी—अरी दुष्ट कार्यको करनेवाली राड़ तू कौन है ? जल्दी बता नहीं तो अभी मैं तेरा नाश किये देता हूं । विद्याधर महाचूलकी यह बात सुनकर विद्या भ्रामरी एकदम कप गई एवं भयभीत हो वह इसप्रकार कहने लगी—

कारिणि ! । वदान्यथा करिष्यामि विग्रहं निग्रहं तव ॥४४४॥ तदोवाचेत्यहं राज्ञा मधुना प्रेषिता सती । हंतुमिच्छामि शौरास्त्रं किलाहिमन् विक्रमो न मे ॥४४५॥ मुंच मुञ्च महाबाहो ! बंधनान्मां प्रयाम्यहं । रवींदुपातने शक्तिः सापकतुं न मे तव ॥४४६॥ तां मुक्त्वाऽऽकाशगामी स शीरिणा सहितोऽगमत् । यत्रास्ते माधवो धीरः संगरोरंगसंगरे ॥ ४४७ ॥ नत्वा कुशलमापृच्छ्य बलदेवानुजं विभुं जगाद जनितानंदो रीतियुक्तमिति स्फुटं ॥ ४४८ ॥ शत्रुमुक्तं महाविद्यात्रयं केनापि लंघ्यते । नैवातो यामि वेगेन विद्यासाधनहेतवे ॥ ४४९ ॥ हे मित्रागम्यतां तूर्णं स्वयंभूस्तदीदिति । वरं चेति गतः शैले ह्रीमन्ते खेचरो महान् ॥ ४५० ॥ नग्नीभूत्वा गलेधृत्वा फणि

राजा मधुने बलभद्र धर्मके मारनेके लिये मुझे यहां भेजा था परन्तु इसकी अलौकिक शक्ति देख कर मुझे यह विश्वास हो गया है कि मुझमें इसके मारनेकी सामर्थ्य नहीं। प्रिय विद्याधरोंके इंद्र! कृपाकर तुम मुझे छोड़ दो मैं चली जाती हूं। यद्यपि मैं सूर्य चन्द्रमाके गिरानेकी सामर्थ्य रखती हुं परन्तु मैं तुम्हारा किसी प्रकारका अपकार नहीं कर सकती ॥ ४४३—४४८ ॥ भ्रामरी विद्याकी यह प्रार्थना सुनकर विद्याधर महाचूलने उसे छोड़ दिया एवं जहां पर संग्राम भूमिके अन्दर राजा मधुकी सेना पडी थी वहां शीघ्र ही बलभद्र धर्मके साथ जाकर पहुंच गया ॥ ४४६ ॥ विद्याधर महाचूलने बलभद्रके छोटे भाई नारायण स्वयम्भूको प्रणाम किया। नारायणसे मिलकर उसे बड़ा आनन्द हुआ एवं नीति परिपूर्ण स्पष्टरूपसे उसने यह कहा—

राजा मधुने जो शल्यवाण आदि तीनों महा विद्याओंका प्रयोग किया है। उन तीनोंका हटाना महा कठिन है इसलिये मैं इन तीनों विद्याओंको नाश करनेवाली विद्या सिद्ध करने जा रहा हूं। आप लोग धैर्य रक्खें। विद्याधर महाचूलकी यह बात सुन नारायण स्वयम्भूने कहा—

मित्र ! तुम्हें बहुत जल्दी लौट आना चाहिये ऐसा न हो कि तुम वहां किसी प्रकारसे विलंब कर लो। उत्तरमें विद्याधर महाचूल यह कह कर कि मैं शीघ्र आऊंगा तत्काल ह्रीमन्त पर्वत पर चला गया। वहां पर उसने समस्त वस्त्र छोड़कर नग्न अवस्था धारण कर ली। गलेमें लाल २ नेत्रों

नं रक्तलोचनं । मस्तकेऽस्थिकिरीटं च भूतारण्ये स्थितो निशि ॥ ४५१ ॥ रुण्डमालां समादाय षट्त्रिंशद्बाहुखेचरीं । मानसीमाशु ध्यानेन ससाधासौ खगाधिपः ॥ ४५२ ॥ साधयित्वा महाविद्यां शैलोन्नतपयोधरां । दुःसाध्यामागतस्तत्र किं न स्यात्सुकृतोदयात् ॥४५३॥ तत्त्रयी ध्वंसिता तेन विद्यया रविणा यथा । प्रभया तामसं नैश्यं हरिणा सिंधुरोत्करः ॥ ४५४॥ स्पष्टं सैन्यं तदा दृष्ट्वा स्वयंभूः शेषविक्रमः । जघान घनघातैश्च माधवीयं बलं बलात् ॥ ४५५ ॥ दुर्जयं तं समालोक्य मधुः क्रोधाग्निदीपितः । तस्याभिमुखमासाद्य

का धारक सर्प डाल लिया । मस्तक पर हड्डियोंका मुकुट बांध लिया और रात्रिके समय उस पर्वतके भूतारण्य नामक वनमें स्थिर होकर बैठ गया । विद्याधरोंके स्वामी राजा महाचूलने हाथमें रुण्डोंकी माला लेकर छत्तीस भुजाओंकी धारक मानसी नामकी विद्याको साधा ॥ ४५०—४५३ ॥ जिसके स्तन पर्वतके समान विशाल हैं और जिसका साधना हर एकके लिये दुःसाध्य है ऐसी उस महा विद्याको विद्याधर महा चूलने शीघ्र ही साध लिया । ठीक ही है पुण्यके वलसे क्या बात दुर्लभ रह जाती है ॥ ४५६ ॥ उस महा विद्याको सिद्धकर विद्याधर महाचूल शीघ्र ही लौट आया जिस प्रकार सूर्यकी प्रभासे रात्रिका अन्धकार नष्ट हो जाता है। केहरी हाथियोंके झुण्डके झुण्डको अस्त व्यस्त कर डालता है उसी प्रकार उस विद्याके द्वारा विद्याधर महाचूलने शीघ्र ही राजा मधुकी तीनों विद्याओंको नष्ट कर डाला । शेष नागके समान पराक्रमी नारायण स्वयम्भूने जिस समय अपनी सेनाको मूर्छा रहित देखा तो उसे वड़ा आनन्द हुआ एवं अनेक प्रकारके तीव्र घातों से उसने राजा मधुके सारे सैन्यको अस्त व्यस्त कर डाला ॥४५४—४५५॥ स्वयम्भूकी यह लोकोत्तर वीरता जिस समय राजा मधुने देखी तो मारे क्रोधसे उसका हृदय प्रज्वलित हो गया एवं अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे सुसज्जित हो वह शीघ्र ही नारायण स्वयम्भूके सामने आकर डट गया । नारायण स्वयम्भूके ऊपर उसने अग्नि वाण जलवाण पर्वत वाण और नाग वाण आदि

नानाशास्त्रविशारदः ॥४५६॥ वह्निनोयागनागादिवाणान् चिक्षेप तं प्रति । हरिस्तोयेन वातेन वज्रतार्क्ष्याभ्यामशीशमत् ॥ ४५७ ॥ (क) विलक्षोऽभून्मधूराजा दृष्ट्वा बाणप्रखण्डनां । निवर्त्याशु तदा चक्रं मुमोच मगधाधिप ! ॥ ४५७ ॥ (ख) गत्वा त्वाशो समेत्याशु परीत्य दक्षिणे भुजे । स्थितं स्वयंभुवो नूनं पुण्यात्किं न समाप्यते ॥ ४५८ ॥ चक्रे गते जगन्नाथ मधुः परुषया गिरा । मेरोः क्रोः खस्य चास्फोटो जगद्गगनस्य वा ॥ ४५९ ॥ स्वयंभूः क्षत्रकारं रे चेदास्ते शक्तिरद्भुता । मुंच शारं परिभ्रम्य त्वत्प्राणाशकं च मां ।

बहुतसे वाण छोड़े परन्तु नारायण स्वयम्भू भी कम न था । उसने अग्निवाणको जल वाणसे नष्ट किया । जल वाणको पवन वाणसे हटाया । पर्वत वाणको वज्रवाणसे छेदा एवं नाग वाणका नाश गरुड वाणसे किया । नारायण स्वयंभूका यह विचित्र रण कौशल देख एवं अपने वाणोंको छिन्न भिन्न देख महा अभिमानी राजा मधु लज्जित हो गया और तो उससे कुछ न वन सका क्रोधसे अन्धा हो शीघ्र ही उसने नारायण स्वयंभू के ऊपर चक्र चला दिया । राजा मधु द्वारा छोड़ा हुआ वह चक्र पहिले तो आकाशमें गया पीछे नारायण स्वयम्भू के पास आकर उसकी तीन प्रदक्षिणा दी और दाहिने हाथ पर आकर विराज गया ठीक ही है पुण्यके बलसे ऐसी कौनसी दुर्लभ चीजें हैं जिनकी प्राप्ति जीवोंको नहीं हो जाती ॥ ४५६—४५८ ॥ चक्र जाकर जब स्वयंभुके दाहिने हाथ पर जा धरा तो प्रतिनारायण राजा मधुको नितान्त दुःख हुआ एवं वह इस प्रकार अत्यन्त कठिन वाणी बोलने लगा । राजा मधुकी उस समयकी ध्वनि इतने जोरसे थी कि लोगोंको यह मालूम पड़ा था कि यह मेरु पर्वतके गिरानेका वा पृथ्वीके फटनेका वा आकाशकी गर्जनाका शब्द है अथवा प्रलयकालमें समस्त जगतको भङ्ग करनेवाले मेघकी गर्जना है ॥ ४५६ ॥

रे अधम क्षत्री स्वयम्भू ! चक्रको पाकर शांत क्यों खडा हैं ? यदि तेरे अन्दर अद्भुत शक्ति है तो तू चक्रको घुमाकर मेरी ओर छोड़ । तू निश्चय समझ यह चक्र नियमसे तेरे प्राणोंका नाशक होगा । उत्तरमें स्वयम्भू ने कहा—

४६० ॥ स्वयंभूरुवाच—महीयासं प्रवृद्धं च पृथुकं कातरं स्त्रियं । निरागसं च शूराणामसिर्न प्रसरेत्कदा ॥ ४६१ ॥ मधुरुवाच—विभवोऽसिं समुद्धर्तुं ये ऽरितामसमिभभाः । भूभारं महति शेषः कूपशायी न दर्दुरः ॥ ४६२ ॥ स्वयंभूरुवाच—जगद्दोपि तमःसंघं नयंतं समतां जगत् ।।चक्रे ऽभियोगमुष्णांशुः छेत्तुं नो विवरस्थितं ॥ ४६३॥ मधुरुवाच—पयोर्जि गिमिषोर्मेरुं गतिर्न स्यात्प्रसारिणी ।

जो बड़े हैं। वृद्ध हैं। बालक और भयभीत हैं। स्त्रियां हैं और निरपराध हैं उनपर वीर लोग अपनी तलवार नहीं छोड़ते। मधुने उत्तर दिया—

जो महानुभाव शत्रुरूपी अन्धकारके लिये सूर्य समान हैं वे ही खड्गको धारण कर सकते हैं डरपोक नहीं। लोकमें यह किंवदन्ती है कि पृथ्वीके भारको शेष नाग ही धारण कर सकता है कूपमें रहकर टर टर करनेवाला मैंढक नहीं। उत्तरमें नारायण स्वयम्भूने कहा—

जो सूर्य समस्त जगतके अन्धकारका नाश करनेवाला है वह विलमें रहनेवाले अन्धकारके नाश करनेके लिये किसी प्रकारका उद्योग नहीं करता क्योंकि उस अन्धकारके नाश न करनेसे उसकी महत्तामें किसी प्रकारकी कमी नहीं मानी जाती। नारायण स्वयम्भूकी यह बात सुनकर मधुने कहा

पंगु पुरुष यदि यह चाहें कि मैं मेरु पर्वत पर चढ जाऊं तो वह चढ़ नहीं सकता तथा क्षुद्र पुरुष यदि यह चाहें कि मैं छोटीसी नावसे विशाल समुद्रको तर जाऊं तो वह तर नहीं सकता। रे स्वयंभू! तुझ सरीखा क्षुद्र पुरुष मेरा क्या कर सकता है। उत्तरमें स्वयंभूने कहा—

केहरी अञ्जन पर्वतके समान विशाल हाथियोंका ही मांस खाता है यदि वह उसे न मिले और उसके प्राण भी चले जाय तो वह शृगालका मांस नहीं खा सकता और न तृण ही भक्षण कर सकता है। मधुने उत्तर दिया—

उडुपेन महाम्भोधिं तर्तुं क्षुद्रो न शक्नुयात् ॥ ४६४ ॥ स्वयंभूरुवाच--अंजनोत्तुंगनागानां पलमत्ति मृगाहितः । गोमायुर्न प्राणांते तृणं वा रक्तकेसरः ॥ ४६५ ॥ मधुरुवाच--जन्तवोऽपि बलाक्रांतभूतला भूतलातलाः । क्षिपंति नो तथा नूनं कीनाशस्य मुखे करं ॥ ४६६ ॥ लज्जिकापुत्र ! रे नीचोत्सहसे किमु सांप्रतं । लब्ध्वा चक्रं न शक्तिश्चेदन्यथा क्षिपताञ्जवात् ॥ ४६७ ॥ स्वयंभुवा तदा मुक्तं चक्रं मधुनराधिपं । द्विधा चक्रेऽथ कालस्य नियोगः केन लंघ्यते ॥ ४६८ ॥ रुद्रध्यानस्ततो मृत्वा गतः श्वभ्रं तमस्तमः । मधुर्मानी कृतं पापं भोक्तुं वा वैरबन्धतः ॥ ४६९ ॥ अथाज्ञा व्यानशे तस्य केशवस्य गुणाम्बुधेः । वर्षार्धं साधयित्वा स बलेनामा

जो पुरुष अपने दिव्य बलसे समस्त पृथ्वीतलको व्याप्त करने वाले हैं और भूतलातलाः—समस्त पृथ्वीतलको पीडित करनेकी सामर्थ्य रखते हैं वे भी यमराजके मुखमें हाथ नहीं डालना चाहते—यमराजसे वे भी डरते हैं। रे दासी पुत्र ! यदि तेरे अन्दर किसी प्रकारका सामर्थ्य नहीं है तो तू चक्रको पाकर अब क्या विचार कर रहा है। यदि कुछ भा सामर्थ्य रखता है तो शीघ्र उसे मेरे ऊपर चला ॥ ४६०—४६७॥ प्रति नारायण मधुकी इतनी कड़ी वात नारायण स्वयंभूको कब सहन होने वाली थी बस उसनें शीघ्र ही राजा मधुके ऊपर चक्र चला दिया जिससे तत्काल उसके शरीरके दो खंड हो गये,ठीक ही है जिस मनुष्यका जिसरूपसे मरण होना होता है नियमसे उसका उसी रूपसे होता हैं-कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। महा अभिमानी राजा मधुके परिणाम मरते समय रौद्र ध्यान रूप थे इसलिये वह मरकर सातवे नरक गया वैरसे जो पाप किया जाता है वह नियमसे भोगना होता है ॥ ४६८—४६९ ॥ प्रति नारायण मधुके मरजाने पर अनेक गुणोंके समुद्र नारायण स्वयम्भूकी आज्ञा सर्वत्र फैल गई। भरत क्षेत्रके तीन खण्डोंको उसने सिद्ध कर लिया और वलभद्र धर्मके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। वह पुण्यात्मा स्वयम्भू इन्द्रके समान निर्विघ्न रूपसे नाना प्रकारके भोग भोगने लगा अपने तीव्र प्रतापसे उसने समस्त शत्रुओंको जीतकर उनकी स्त्रियोंको दुःखी वना डाला। वह राजा स्वयम्भू शिष्ट पुरुषोंका अच्छी तरह पालन

सुखं स्थितः ॥ ४७० ॥ भुंजानो विविधान् भोगान् निर्विघ्नं देवनाथवत् । प्रतापेन जितारीणां नारीणां लोचनांबुकृत ॥ ४७१ ॥ सुशिष्टान् पालयामास दुष्टनाशं चकार सः । अप्सरोरूपरामाणां वक्षोजाम्भोजषट्पदः ॥ ४७२ ॥ राज्ञामार्योद्भवानां स सहस्राष्टकसेवितः । मंडलीकेतराणां च तावन्म्लेच्छाधिपैः पुनः ॥ ४७३ ॥ कियत्यथ गते काले स्वयंभूराप नैधनं । वैरबन्धोत्थपापेन पातालं सप्तमं गतः ॥ ४७४ ॥ श्वभ्रोद्भूतं तयोर्दुःखं कविवाचामगोचरं । तीर्थकृद्विर्धिना तद्धि वर्ण्यते नापरैर्जडैः ॥ ४७५ ॥ स्वयंभूशोकसंततो हली गर्गत्वमाहवान् । आषण्मासावधेः काललब्ध्या वैराग्यमाप सः ॥४७६॥ गत्वा नत्वा तथा स्तुत्वा जिनं विमलवाहनं । दीक्षां जग्राह भावेन भावो हि सर्वतोऽधिकः ॥ ४७७ ॥ दुष्करं तपसां सधं विधाय ध्यानतत्परः । केवलोत्पादनं कृत्वा जगाम शिवमन्दिरं ॥

करता था और दुष्टोंका निग्रह करता था एवं देवांगनाओंके समान महा मनोहरांगी स्त्रियोंके साथ भोग विलास करनेवाला था ॥ ४७०—४७२ ॥ राजा स्वयम्भूके आठ हजार तो आर्य्य राजा सेवक थे और आठ ही हजार म्लेच्छ राजा उसकी सेवा करते थे । इस प्रकार बहुत काल राज्य सुख भोगते २ राजा स्वयम्भूका अन्तकाल हो गया एवं तीव्र वैरके कारण वे भी सातवे नरकमें जाकर उत्पन्न हो गये । नरककी वेदना इतनी भयङ्कर है कि विद्वान भी कवि उसका वर्णन नहीं कर सकते। नारायण स्वयम्भूके मर जाने पर वलभद्र धर्मको सीमान्त दुःख हुआ था । शोक संतप्त वलभद्र छह महीना तक स्वयम्भूका शरीर धारण करते फिरे अन्तमें काल लब्धिकी कृपासे उन्हें यथार्थ मार्गका ज्ञान हुआ इसलिये तत्काल उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया । वे वलभद्र धर्म शीघ्र ही भगवान विमलनाथके समवसरणमें गये । नमस्कार कर भगवान विमलनाथकी स्तुति की एवं भावपूर्वक दिगंबरी दीक्षा धारण कर ली । ठीक ही है सब कार्योंमें भावोंकी ही प्रधानता मानी जाती है ॥ ४७३—४७७ ॥ वलभद्र धर्मने तीव्र तप तपा । शुभ ध्यानका आचरण किया जिससे उन्हें केवल ज्ञानकी प्राप्ति हो गई और वे मोक्ष मन्दिरमें जाकर विराज गये । ग्रन्थकार तपकी महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं कि घरके आंगनमें ही स्वर्ग, राज्य धन सुन्दर रूप यशस्वीपना

॥४७९॥कर्मणां निर्जरा यस्मान्नीरो
४७८॥नाकः सद्मांगणे राज्यं धनं रूपं यशस्विता । चक्रित्वं वासवत्वं च तपसा किं न साध्यते
गित्वं भवे भवे । लेखाः किंकरतो याति तत्तपः शस्यते न किं ॥ ४८० ॥ सौभाग्यादिगुणा ये तु तेन कामसुतोत्कराः । भवंति रतिभा
रामाः किं न स्यात्सगरादिवत् ॥ ४८१ ॥ अतो द्यूतादिकं कर्म कुत्सितं निंदितं सतां । परित्यज्य विधातव्यं धर्मपुण्यादिसाधनं ॥
धर्मात्पुत्राः पवित्राः परमनिधिपतिः किन्तु रूपं दुराप्यं सौभाग्यं तीर्थकृत्वं गजहयगणतान्वीतधात्रीश्वरत्व ।

चक्रवर्ती और इन्द्रपना ये सारी बातें तपके द्वारा प्राप्त हो जाती हैं ऐसी तीन लोककी कोई चीज नहीं जो तपसे न प्राप्त हो जाती हो। जिसकी कृपासे कर्मोंकी निर्जरा होती है। भव भवमें निरोगताका लाभ होता है और देवगण आज्ञाकारी सेवक बन जाते हैं वही तप संसारमें प्रशंसनीय माना जाता है। इस तपकी कृपासे संसारमें सौभाग्य आदि गुणोंकी प्राप्ति होती है। उसीसे कामदेवके समान सुन्दर पुत्र उत्पन्न होते हैं। तथा रतिके समान परम सुन्दरी स्त्रियोंकी भी प्राप्ति होती है विशेष क्या सगर चक्रवर्ती आदिकी विभूतिके समान विभूतियां इस तपके द्वारा प्राप्त होती हैं इसलिये जो महानुभाव मोक्ष आदि विभूतियोंके इच्छुक हैं उन्हें चाहिये कि जूआ आदि निन्दित, परिणाममें दुःखदायी समस्त कार्योंका सर्वथा परित्याग कर धर्म और पुण्य आदि के साधन करनेवाले ही कार्योंको करें निन्दित कार्योंकी ओर रंचमात्र भी दृष्टि न डालें॥४७८-४८३॥

अन्तमें आचार्य धर्मकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि धर्मके द्वारा ही पवित्र पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। उत्तम निधिका स्वामीपना प्राप्त होता है। महा मनोज्ञ रूप सौभाग्य तीर्थंकरपना हाथी घोडाओंसे शोभायमान पृथ्वीका ईश्वरपना अप्सराओंके समान स्त्रियोंका मिलना। प्रबल शक्ति जिससे कि शत्रुओंका विध्वन्स किया जाता है प्राप्त होते हैं विशेष क्या स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति भी धर्मसे होती है इसलिये हे विद्वान पुरुषो यदि तुम्हें पुत्र आदि विभूतियोंकी अभिलाषा है तो

रामा स्वर्गोपमाद्य प्रवरबलकलत्रस्तयाम् रकरत्वं । यस्मात्स्वर्गेन्द्र मुक्तिः सकलबुधजनाम्स भजध्वं भजध्वं ॥ ४८४ ।
कृष्णदासमुखदं वृषमेशं देवनायनरनाथनताङ्घ्रिं
ध्यायताशु सुजना नितरां तं कैलभूधरतटे शिवमेयः ॥ ४८५ ॥
इत्यार्षे श्रीबृहद्विमलनाथपुराणे भट्टारक श्रीरत्नभूषणाम्नायालङ्कारविद्वज्जनचातुरीसमुद्रचंद्रावतारोभयभाषा
चक्रवर्तिवीरिकातनूभवब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे श्रीविमलवाहन
दीक्षाज्ञानमधुस्वयंभूवलभद्रसमृद्धिवर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

तुम्हें पवित्र धर्मका अवश्य आराधन करना चाहिये—क्षण भरके लिये भी धर्मसे मुख मोड़ना न चाहिये ॥ ४८४ ॥ हे सज्जनो ! तुम भगवान ऋषभ देवका ध्यान करो जो ऋषभदेव भगवान, ग्रन्थकर्त्ता कृष्णदासके सुखके देनेवाले हैं। जिनके चरण कमलोंकी बड़े २ देवेंद्र और नरेंद्र सेवा करते हैं और जिन्होंने कैलास पर्वतसे मोक्षको पाया है ॥ ४८५ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलङ्कार स्वरूप विद्वानोंकी विद्वत्तारूपी समुद्रके लिये चन्द्रमा स्वरूप उभय भाषा के चक्रवर्ती हर्षवीरिकाके पुत्र अपसे छोटे भाई ब्रह्ममंगलदासकी सहायतासे ब्रह्मकृष्णदास विरचित बृहद विमलनाथ पुराणमें भगवान विमलनाथका दीक्षा विधान और मधु स्वयंभू और बलभद्र धर्मका समृद्धिका वर्णन करनेवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

पांचवां सर्ग ।

प्रजापतिं जिनं नौमि सादरं शर्मसिद्धये । स्याद्वादनायकं कंठप्रोद्गीतं सुरयोषितां ॥१॥ विहरन्ते कदा देवो विमलो भ्रांतिवर्जितः ।

जो भगवान जिनेन्द्र प्रजापति—आदि ब्रह्मा हैं। कर्मोंके नाश करनेवाले हैं। स्याद्वाद विद्या के नायक हैं एवं देवांगना अपने कण्ठसे जिनके यशका गान करतीं हैं उन भगवान जिनेन्द्रको

भारतेऽत्र महाद्वीपे मथुरामुत्तरां ययौ ॥ तत्राकार्षीन्महाशभो विष्टरस्य धनाधिपः । गव्यूतिद्वादशानां च विशालस्य महात्विषः ॥ ३ ॥ मानस्तम्भा विराजंते चत्वारो रत्नरंजिताः । कासाराणि ततो हंसचक्रक्रीडान्वितानि च ॥ ४ ॥ पंचवर्णमहारत्नचूर्णसंदर्भितो व्यभात् धूलीसाराभिधः शालो लवणोदधिरिवापरः ॥ ५ ॥ सजलाः सजलास्तत्र खातिकाः पङ्कजांचिताः । विराजंतेऽप्सरोव्रातैः क्रीडालोलतरीकृताः ॥ ६ ॥ पुष्पाणां वाटिका नानापुष्पराजिविराजिताः । भांति शृंगारसंयुक्ताः स्त्रियो वा हासहर्षिताः ॥ ७ ॥ हैमः प्राकार आकाशद्विधाकारीव सुन्दरः । नाट्यशाला विराजंते किन्नरीनर्तनोत्सवैः ॥ ८ ॥ वल्लीनां भूमयो भांति चान्यद्वुद्यानसद्वनं । नानाशाखिस

अपने कल्याणकी सिद्धिके लिये मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ समस्त प्रकारकी भ्रांतिसे रहित वे भगवान विमलनाथ समस्त पृथ्वीपर विहार करते २ एक दिन भरत क्षेत्रके जम्बूद्वीपकी मथुरा पुरीमें जा पहुचे। कुवेरने अत्यन्त शोभायमान समवसरण रच दिया जो कि वारह गव्यूति प्रमाण था विशाल था और महा कांतिसे देदीप्यमान था ॥ २—३ ॥ समवसरणके अन्दर चार मानस्तम्भ विद्यमान थे जो कि नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त थे। उनसे आगे तलाव शोभायमान थे जो कि हंस और चकवा पक्षियोंकी क्रीड़ाओंसे व्याप्त थे ॥ ४ ॥ धूलीशाल नामका शाल वहांपर अत्यन्त शोभायमान था जो कि पांच वर्णके रत्नोंके चूर्णसे व्याप्त था और मनुष्योंको यह जान पड़ता था मानो यह लवणोदधि समुद्र है ॥ ५ ॥ धूलीशालके चारो ओर विशाल खाइयां शोभायमान थीं जो कि जलसे परिपूर्ण थीं। उनका जल सुगन्धित और उत्तम था। कमलोंसे व्याप्त था और सरोवरोंके सम्बन्धसे उनका जल हिलता डोलता था इसलिये वे ऐसी जान पड़ती थी मानो ये अपनी चञ्चल क्रीड़ाओंमें मस्त हैं। खिले हुए भांति भांतिके वहां पर पुष्पोंसे व्याप्त वाटिकायें अत्यन्त शोभायमान थीं जो कि भांति भांतिके पुष्पोंके श्रृङ्गारसे शोभायमान और हंसती हुई स्त्रियां सरीखी जान पड़तीं थीं ॥ ६—७ ॥ भीतर एक सुवर्णमयी प्राकार शोभायमान था जो कि अत्यन्त सुन्दर था और ऊंचाईसे ऐसा जान पड़ता था मानो यह आकाशके दो खण्ड कर रहा है। उसके

मंकीर्णं भ्रमद्भ्रमरमंडितं ॥ ६ ॥ वेदिका रत्नसंदर्भगर्भिताः स्वर्गिणां मताः । ध्वजदण्डा विराजंते त्रिंशत्सहस्रसंख्यकाः ॥ १० ॥ प्राकारो राजते भूयरतारकालिलसद्द्युतिः । कल्पागानां वनं सम्यग्भूरिदानां च सर्वतः ॥ ११ ॥ नानामणिसमुद्बद्धभित्तिका हर्म्यसंचया । दुर्गोऽथ स्फाटिकः प्रोच्चैः पुरस्तात्संति सत्सभाः ॥ १२ ॥ निर्ग्रन्थानां सभा मुख्या कल्पस्त्रीपित्सभापरा । आर्यिकानां ततः प्रोक्ता ज्योतिःस्त्रीणां सभा पुनः ॥ १३ ॥ व्यन्तरस्त्रीसभा नागरामाणां परिपत्ततः । भावनव्यन्तरर्क्षाणां क्रमाद्गणत्रयीरिताः ॥ १४ ॥

ऊपर नाट्यशाला विराजमान थीं जो कि किन्नरी जातिकी देवियोंके नृत्योंसे अत्यन्त शोभायमान थीं वहां पर लताओंकी क्यारियां अत्यन्त शोभायमान थी तथा बगीचे और विशाल वन भी अत्यन्त शोभा बढा रहे थे जो कि भांति भांतिके वृक्षोंसे व्याप्त थे और चलते फिरते भ्रमरोंसे शोभायमान थे ॥ ६ ॥ जिनके अन्दर अनेक प्रकारके रत्नोंकी रचना थी और जो अपनी शोभासे देवोंके भी चित्त चुरानेवालीं थीं ऐसी वहां पर विशाल वेदियां शोभायमान थीं । तीस हजार संख्या प्रमाण ध्वजाओंके दण्ड शोभायमान थे ॥८--१०॥ दूसरा प्रकार चादीका शोभायमान था जिसकी कान्ति तारागणोंसे और भी अधिक शोभायमान थी तथा उसके चारो ओर कल्पवृक्षोंका वन था जो कि लोगोंको इच्छाओंका बहुत प्रकारसे पूरण करनेवाला था । जिनकी भीतें नाना प्रकारकी मणियोंसे रचीं थीं ऐसे उत्तमोत्तम महल वहां पर शोभायमान थे । एक स्फटिक पाषाणका बना हुआ किला शोभायमान था और उसके सामने सुन्दर सभायें विद्यमान थीं ॥ ११ ॥ पहिली सभामें निर्ग्रन्थ विद्यमान थे । दूसरी सभामें कल्पवासी देवोंकी स्त्रियां थीं । तीसरी सभामें आर्यिकाये थीं चौथी सभामें ज्योतिषी देवोंकी स्त्रियां थीं । पांचवी सभामें व्यन्तरोंकी स्त्रियां थीं । छठी सभामें भवनवासी देवोंके स्त्रियां थी । सातवी सभामें भवनवासी देव थे । आठवीं सभामें व्यन्तर देव थे । नवमी सभामें ज्योतिषी देव थे । दशवीं सभामें कल्पवासी देव थे । ग्यारहवीं सभामें मनुष्य थे और बार-

मानुषणां पशूनां च सभा शोभापरावहा । तन्मध्यस्थमहापीठं सिंहकूर्मो दयाभिधं ॥ १५ ॥ तन्मध्ये पङ्कजं हैममष्टायुतदलं दलत् श्रीमद्विमलनाथोऽसौ व्यभात्तदुपरि स्थितः ॥ १६ ॥ विंशतीनां सहस्राणां सोपानानां व्यभाद्वरः । चतुःप्राकारका भूयो भित्तयः पञ्च-राजिता ॥ १७ ॥ षट्त्रिंशत्प्रतोल्यश्च जयध्वानाः सुरैः कृताः । अप्सरोरिक्तकण्ठैश्च कृतरागा मनोहराः ॥ १८ ॥ जिनांगोत्सेधतः प्रोच्चैः प्राकारभित्तयः । द्वादशप्रगुणा भाति मानस्तंभाश्च चित्त्विषः ॥ १९ ॥ चतुर्गुणा विशालाश्च चेदयो राजिरेऽलकं । पद्मराग परागादिनानारत्नचयांशवः ॥ २० ॥ भूमेः पञ्चसहस्राणि धनुषां वार्द्धवर्त्मनि । गत्वा विलोकनीयाऽथ शोभा श्रीविष्टरस्य च ॥ २१ ॥

हवीं सभामें पशु विद्यमान थे इस प्रकार ये बारह सभायें थीं । सभाओंके मध्यभागमें एक सिंहकूर्म नामका सिंहासन था और उसके मध्यभागमें सुवर्णमयी कमल था जो कि एक हजार आठ पत्तोंसे शोभायमान था उसके ऊपर भगवान विमलनाथ विराजमान थे । वह समवसरण बीस हजार सीढियोंसे शोभायमान था । उसमें चार प्राकार थे और महा मनोज्ञ पांच भीतियें थीं । उनके भीतर छत्तीस गलियां थीं जिनमें कि देव गण जय जय शब्द करते थे । अप्सराओंके सुरीले कंठोसे रागोंकी छठा छटक रही थी जिससे वे अत्यंत मनोहर जान पड़ते थे । भगवान जिनेंद्रके शरीरकी अवगाहनासे प्राकार और भित्तिओंकी उचाई बारह गुणी अधिक थी इसी तरह भांति २ की कांतियोंसे व्याप्त मानस्तंभ भी विद्यमान थे चेदियां (मंडपशालायें) भगवान जिनेन्द्रकी अवगाहनासे चौगुनी और विशाल थीं तथा पद्मराग आदि नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त थीं ॥ १२—२० ॥ पृथ्वीसे पांच हजार धनुष आकाशमें जानेपर समवसरणकी शोभा देखी जा सकती थी । वहांपर साढ़े बारह करोड़ बाजोंके घोर शब्द होते थे इसप्रकार वहांपर समवसरणकी शोभा लोकोत्तर थी । तथा भगवान जिनेंद्रके माहात्म्यसे छहो ऋतुओंके फल फूलोंसे वृक्ष लद बदा गये थे । इसप्रकार समवसरणकी शोभा और छहों ऋतुओंके फल फूलोंकी अपूर्व शोभा देखकर और कुछ फल एवं फूलोंको राजाकी भेंटके लिये

सार्धद्वादशकोटीनां वादित्राणां महारवाः । एवमादिमहाशोभां प्रादुर्भूतद्रुतकौसुमीं ॥२२॥ दृष्ट्वा मालाकरो नीत्वा फलानि कुसुमानि च । मेरुमन्दरयोरग्रे मुमोचेति वदन् भृशं ॥ २३ ॥ देवः श्रीकिन्नरोद्याने समायातोऽस्ति श्रीजिनः । तत्प्रभावान्नगा वध्या जज्ञिरे फल संयुताः ॥ २४ ॥ शोभा सर्वर्तुद्भूता तं संभूयेव विलोकितुं । प्रादुरासीत्सुभंकारितारापुष्पविलोचना ॥ २५ ॥ श्रुत्वा । तन्मुखतोऽदायि तस्मै ताभ्यां धनं महत् । वस्त्रालङ्कारसंघातो मुदा भक्त्या जिनस्य च ॥२६॥ पुण्याद्दितं जगन्नाथं जिनं श्रीमेरुमंदिरौ । राजपुत्रौ सुकामामौ वंदितुं जग्मतुः पुरात् ॥ २७ ॥ महासेनासमुद्रारसागरोत्तरणक्षमौ । अरातिध्वंसकौ सर्वसामंतालिराजितौ ॥ २८ ॥ (युग्मं)

लेकर मालकार शीघ्र ही मथुरा नगरीकी ओर चल दिया उस समय मथुरापुरीके स्वामी राजा मेरु और मंदिर दोनों भाई थे । मालीने राजसभामें पहुंच कर उनके सामने फल फूलोंकी भेंट रखदी और इसप्रकार आनंदमयी बात सुनाने लगा—

स्वामिन् ! किन्नर नामके उद्यानमें भगवान विमलनाथका समवसरण आया है । भगवान विमलनाथके माहात्म्यसे जो वृक्ष वांझ थे--कभी भी जिनपर फल फूल नहीं लगते थे वे इससमय फल और फूलोंसे व्याप्त हो गये हैं ॥ २०—२४ ॥ समस्त ऋतुओंमें होनेवाले फल और फूलोंसे वृक्षोंके लदबदा जानेसे यह जान पड़ता है कि नाना प्रकारके पुष्पोंकी लालसासे परिपूर्ण और ताराओंके समान पुष्परूपी नेत्रोंकी धारक समस्त ऋतुओंमें होनेवाली शोभा ही मिलकर भगवान जिनेन्द्रको देखनेके लिये आकर प्राप्त हो गई है ॥२५॥ मालीके मुखसे इस प्रकारके हर्ष समाचार सुन राजपुत्र मेरु और मन्दिरको बड़ा आनन्द हुआ । भगवान जिनेन्द्रके अन्दर अपनी भक्ति प्रगट करनेके लिये उन्होंने विशाल धन वस्त्र और अलङ्कार मालीको प्रदान किये । कामदेवके समान सुन्दर राजपुत्र मेरु और मन्दिरने यह समझकर कि भगवान जिनेन्द्रका पधारना बड़े पुण्य से हुआ है शीघ्र ही उनकी वंदनाके लिये वे नगरसे चल दिये । उस समय वे दोनों राजपुत्र विशाल

महाभूत्या जिनं पूज्य स्तुत्वा गंधादिभिः पुनः। नत्वैकादशमे कोष्ठे तस्थतुः सादरं तकौ ॥ २९ ॥ पयोराशिध्वनिर्दिव्यवाण्योवाच जिनाधिपः। महानतिशयस्तस्याधरस्पंदो न दृश्यते ॥ ३० ॥ गृहस्थयमिनां धर्मं प्रोक्त्वा पूर्वं ततः परं। तत्त्वद्रव्यपदार्थादिधर्मं गदितवान् नृप! ॥ ३१ ॥ अनादिनिधनो जीवो चियते संसृतौ भ्रमात्। कर्मयंत्रकृतः केन नास्ति रत्नत्रयात्मकः ॥ ३२ ॥ सर्वकालं पुरा प्राणी जीवति द्रव्यभेदतः। कदाचित्प्रलयस्तन्न स जीवो गद्यते जिनैः ॥ ३३ ॥ द्विषड्भेदोपयोगात्मा कर्ता व्यवहारतः खलु। अमू

सेनाके भारसे विशाल समुद्रको तरनेकी सामर्थ्य रखते थे। वैरियोंका ध्वंस करनेवाले थे एवं समस्त सामन्तोंसे शोभायमान थे ॥ २६—२८ ॥ समवसरणमें प्रवेशकर मेरु और मन्दिरने बड़े ठाट बाटसे भगवान जिनेन्द्रकी जल चन्दन आदि अष्ट द्रव्योंसे पूजा की। मनोहर पद्योंमें स्तुति की एवं भक्ति-पूर्वक नमस्कार कर बड़े आदरसे मनुष्य कोठेमें जाकर बैठ गये ॥ २९॥ समुद्रके समान गम्भीर ध्वनिके धारक भगवान जिनेन्द्र अपनी दिव्य ध्वनिसे धर्मका स्वरूप वर्णन करने लगे। बोलते समय अन्य मनुष्योंके तो होठ चलते हैं परन्तु भगवान जिनेन्द्रके अन्दर यह महान् अतिशय था कि उनके होठ किसी प्रकार हिलते डुलते न थे ॥ ३० ॥ भगवान जिनेन्द्रने सबसे पहिले गृहस्थ और मुनियोंके धर्मका वर्णन किया पीछे सात तत्त्व पांच द्रव्य और नव पदार्थोंका स्वरूप निरूपण किया ॥ ३१ ॥ वह इसप्रकार है—

इस जीवकी न तो आदि है और न अन्त है। यह अनादि निधन है और कर्मरूपी यन्त्रके वश में पड़कर यह बराबर संसारमें घूमता रहता है। यह किसीका बनाया हुआ नहीं है और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रयका स्वामी है ॥ ३२ ॥ यह जीव अपने जीवत्व रूपसे सदा काल जीता है कभी भी इसका प्रलय नहीं होता इसलिये जो अपने जीवत्वरूपसे सदा काल जीवे और जिसका कभी भी प्रलय न हो वह भगवान जिनेन्द्रने जीव द्रव्य कहा है ॥३३॥ यह जीव आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन इसप्रकार बारह प्रकारके उपयोग स्वरूप है।

तिर्देहपर्यंतं स्थायी भोक्ता भवस्थितः ॥ ३४ ॥ कालत्रये भवेत्यस्य प्राणाश्चत्वार एव च । सत्तासौख्यमहाबोधचेतना गदिता इति ॥ ३५ ॥ व्यवहारतया ख्याता दश प्राणा जिनागमे । मनोवाक्कायश्वासायुः पंच खानां च पञ्च हि ॥ ३६ ॥ उपयोगो द्विधा ख्यातो दर्शनज्ञानभेदतः । चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनं केवलं मतं ॥ ३७ ॥ ज्ञानं चाष्टविधं प्रोक्तं मतिः श्रौतावधी तथा ; तदज्ञानत्रयं प्रोक्तं मनःपर्ययकेवले ॥ ३८ ॥ प्रमाणद्वयभेदाभ्यां मिश्रितं ज्ञानमष्टधा । सामान्यापेक्षया नूनं लक्षणं देहिनां मतं ॥ ३९ ॥ नित्यं शुद्धं समाख्यातं ज्ञानदर्शनयोर्द्वयं । ज्ञानं तज्ज्ञायते येन त्रैलोक्यं सचराचरं ॥ ४० ॥ दृश्यते येन सूक्ष्मादित्रैलोक्यार्था यथास्थिताः । भूताश्च वर्तमानाश्च भाविनो दर्शनं हि तत् ॥ ४१ ॥ वर्णाः पञ्चेति रक्तश्च कृष्णश्वेतौ पिशङ्गकः । हरितो देहिनः प्रोक्ताः सामान्यान्नैव निश्च-

व्यवहार नयसे अपने कर्मोंका कर्ता है। अमूर्तिक है। जब तक इसका शरीरके साथ सम्बन्ध है तब तक संसारमें रहनेवाला है ॥ ३४ ॥ तीनों काल इसके चार प्राण सदा देदीप्यमान रहते हैं और वे चार प्राण सत्ता सौख्य ज्ञान और चेतना ये हैं ॥ ३५ ॥ व्यवहार नयकी अपेक्षा जीवके मन वचन काय श्वासोच्छ्वास आयु और स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियां ये दश प्राण हैं ॥ ३६ ॥ दर्शन और ज्ञानके भेदसे उपयोग दो प्रकारका माना है। चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन और केवल दर्शनके भेदसे दर्शन चार प्रकारका है। मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान कुमति कुश्रुत और कुअवधि, मनःपर्यय और केवल इस प्रकार ज्ञान आठ प्रकारका माना है। ये जो मतिज्ञान आदि आठ भेद माने हैं वे प्रमाणके भेद प्रत्यक्ष और परोक्षसे युक्त हैं अर्थात् अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये तीन ज्ञान तो प्रत्यक्ष हैं और बाकीके परोक्ष हैं। जीवका यह उपयोग ही सामान्य लक्षण है ॥ ३७—३९ ॥ ज्ञान और दर्शन यह दोनों प्रकारका उपयोग नित्य है कभी भी इसका विनाश नहीं होता और शुद्ध है। जिसके द्वारा तीन लोक सम्बन्धी चराचर पदार्थ जाने जावें वह ज्ञान कहा जाता है। तथा तीन लोक सम्बन्धी और भूत भविष्यत वर्तमान तीन काल संबंधी पदार्थ यथावस्थित रूपसे जिसके द्वारा दीखें वह दर्शन नामका उपयोग है ॥ ४०—४१ ॥

यात् ॥ ४२ ॥ पुद्गलात्कर्मतो जीवः सौख्यदुःखादिभावनं । व्यवहारान्निश्चयात्सिद्धः कर्माभावान्निरंजनः ॥ ४३ ॥ षड्रसा मिष्टतो
हनी च कषायात्कटुकोत्करणं । पाञ्चिकं चेति सामान्यात्पञ्च वा तीक्ष्णक्षारता ॥ ४३ ॥ गंधः स्याद्द्विधो नूनं सुगंधेतरभेदतः । अष्टौ
स्पर्शाश्च सामान्यात् स्निग्धरूक्षौ लघुर्गुरुः ॥ ४५ ॥ उष्णशीतौ दृढो भूयः कोमलश्चेति वस्तुतः । निर्बन्धो ज्ञानवान् शुद्धो ज्योतीरूपो
ऽकलो ध्रुवं ॥ ४६ ॥ यावद्देहे स्थितो देही यावांश्च लघुको गुरुः । उपसंहारावसंहारभेदाभ्यां च जिनागमे ॥ ४७ ॥ निश्चयाद्वेदना ना
स्ति कषायो विक्रियाऽथवा । मारणांतिकतैजस्काहारा जीवस्य चिद्गतः ॥ ४८ ॥ समुद्घाता इति प्रोक्ताः सप्तमः केवलाभिधः । आत्मा

निश्चय नयसे न मान कर सामान्यरूपसे लाल काला सफेद पीला और हरा यह पांच प्रकारका वर्ण माना है। व्यवहार नयकी अपेक्षा यह जीवात्मा पुद्गलीक कर्मकी कृपासे सुखी दुःखी होता है किंतु निश्चय नयकी अपेक्षा यह समस्त प्रकारके कर्मोंसे रहित है और कर्म कालिमासे रहित होनेके कारण निरंजन है ॥ ४२—४३ ॥ मीठा तीखा कषैला कड़वा नुनखरा और खट्टा विशेष रूपसे ये छह रस माने हैं किंतु सामान्यसे तीखापन खारापनको एक मानकर पांच ही रस माने गये हैं। सुगन्ध और दुर्गन्धके भेदसे गंध दो प्रकारका माना है। चिकना रूखा हलका भारी गरम ठण्डा और कठोर कोमल, सामान्य रूपसे यह आठ प्रकारका स्पर्श माना है। यह जीव इन वर्ण रस गन्ध और स्पर्शोंसे रहित है। बन्धहीन है। ज्ञानवान शुद्ध ज्योतिरूप सुख स्वरूप और अविनाशी है ॥ ४३-४६॥ जब तक यह जीव देहके अन्दर विद्यमान रहता है तब तक देही कहा जाता है एवं संकोच और विकास शक्तिका धारक होनेसे यह अपने शरीरके प्रमाण कभी लघु गुरु भी है। वेदना समुद्घात १ कषायसमुद्घात २ विक्रिया समुद्घात ३ मारणांतिकसमुद्घात ० तैजससमुद्घात ५ आहारकसमुद्घात ६ और केवल समुद्घात ७ ये सात प्रकारके समुद्घात माने हैं। निश्चय नयसे यह आत्मा सातों प्रकारके समुद्घातोंसे रहित है और लोक जिसप्रकार असंख्यात प्रदेशी माना है उसीप्रकार यह असंख्यात प्रदेशी है ४७—४६ ॥ स्थावरोंके ब्यालीस भेद माने हैं। तथा देव

संख्यप्रदेशश्च लोकवद्वस्तुतो यतः ॥ ४६ ॥ स्थावराणां द्विचत्वारिंशद्भेदाश्च चिरायुषां । सुराणां नारकाणां च द्वौ भेदौ श्रीजिनागमे

और नारकियोंके दो दो भेद हैं तिर्यंचोंके चौंतीस मनुष्योंके नौ और विकलेन्द्रिय दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय इस प्रकार विकलेन्द्रियोंके नौ मिलकर जीवोंके सब भेद ६८ हैं । खुलासा इसप्रकार है—

पृथिवी जल तेज वायु नित्य निगोद और इतर निगोद इन सातोंको सूक्ष्म और बादरसे गुणा करनेपर चौदह भेद हो जाते हैं तथा उन चौदह भेदोंको पर्याप्त अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तसे गुणा करने पर ब्यालीस भेद हो जाते हैं। इस प्रकार स्थावरोंके ब्यालीस भेद हैं। पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे मनुष्य भी दो प्रकारके हैं और नारकी भी दो प्रकारके हैं। जलचर थलचर और नभचर इन तीनोंको संज्ञी और असंज्ञीसे गुणने पर छह भेद हो जाते हैं। भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाले गर्भज जीव थलचर और नभचरके भेदसे दो प्रकारके हैं। इन दो को पहिले छहोंके साथ जोड़ने पर आठ भेद हो जाते हैं। इन आठोंको पर्याप्त और अपर्याप्तसे गुणने पर सोलह भेद होते हैं। जिन जलचर थलचर और नभचर जीवोंको संज्ञी असंज्ञीके भेदसे दो प्रकार कह आये हैं उन्हें सम्मूर्छन मानकर पर्याप्त अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तसे गुणा करने पर अठारह भेद हो जाते हैं। अठारह और सोलहको आपसमें जोड़ने पर चौंतीस भेद हो जाते हैं इसप्रकार तिर्यंचोंके चौंतीस भेद हैं। आर्य मनुष्य म्लेच्छमनुष्य भोग भूमिज मनुष्य और कुभोग भूमिज मनुष्य इन चारोंको पर्याप्त अपर्याप्तसे गुणने पर आठ भेद हो जाते हैं। इन आठोंमें संमूर्छन मनुष्य नामका भेद जोड़ देने पर नौ भेद हो जाते हैं ये नौ भेद मनुष्योंके हैं । दोइन्द्रिय तेइ-

॥ ५० ॥ चतुस्त्रिंशत्प्रमाष्टभेदास्तिरश्चां च नृणां नव । नवैव विकलेन्द्राणामित्यष्टानवतिप्रभाः ॥ ५१ ॥ मार्गणैर्गुणकैश्चैव चतुर्दश मिरात्मन । संसारित्वं च सामान्यात्सिद्धत्वं निश्चयान्मतं ॥ ५२ ॥ जीवास्तु द्विविधाः प्रोक्ता मुक्ताः संसारिणोऽपरे । जीवास्तु द्विविधाः प्रोक्ता भव्याभव्यत्वभेदतः ॥ ५३ ॥ समनस्कामनस्काश्च ते भूयो द्विविधा मताः । प्रणीताः सूरिभिर्भूयः स्थावरा जङ्गमा इति ॥ ५४ ॥ साकारश्च निराकाराः सिद्धा भेदद्वयात्मकाः । तत्त्वतो भेद एकोऽस्ति सिद्धानां नापरः कचित् ॥५५॥ कर्माष्टकविनिःक्रांता गुणाष्टकनिधीश्वराः । किंचिदूनाः स्वदेहाच्च सिद्धा लोकाग्रवासिनः ॥ ५६ ॥ चतुर्धा बन्धनिर्मुक्ता ऊर्ध्वं यांति ततोऽपरे ।

न्द्रिय चौइन्द्रिय इन तीनोंको पर्याप्त अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तसे गुणनेपर नौ भेद हो जाते हैं इस प्रकार कुल जीवोंके मिलाकर अठानवे भेद हैं ॥ ५०—५१ ॥ गति इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणा और मिथ्यात्व सासादन आदि चौदह गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीव चौदह प्रकार माने हैं। व्यवहार नयसे आत्मा संसारी और निश्चय नयसे सिद्ध माना जाता है। सामान्यसे संसारी और मुक्तके भेदसे जीव दो प्रकारके हैं। भव्य और अभव्यके भेदसे संसारी जीव दो प्रकारके है। समनस्क और अमनस्कके भेदसे भी संसारी जीव दो प्रकारके हैं। जो मनसहित हों वे समनस्क और जो मन रहित हों वे अमनस्क कहे जाते हैं। इस प्रकार स्थावर और त्रसके भेदसे संसारी जीवोंका यह संक्षेप स्वरूप है ॥ ५२—५४ ॥ साकार और निराकारके भेदसे सिद्ध दो प्रकारके हैं। ये दो भेद व्यवहार नयसे हैं निश्चय नयसे तो सिद्धोंका एक ही भेद है। दूसरा कोई भेद नहीं। ये सिद्ध परमेष्ठी आठ कर्मों से रहित हैं। सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंके स्वामी है। चरम शरीरके आकारसे कुछ ऊन आकारके धारक हैं और लोकके अग्रभागमें विराजमान हैं ॥५५—५६॥ प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध अनुभाग बन्ध और प्रदेशबन्ध इन चारों प्रकारके बन्धोंसे रहित महा पुरुषोंकी केवल ऊर्ध्व गति ही होती है। निश्चयरूपसे विदिशा आदिमें गमन नहीं होता। अभव्य भी जीव तपश्चरण कर ग्रैवेयक पर्यन्त चले जाते हैं। निगोद जीव पांच प्रकारके हैं और भेद उनके अनन्तानन्त माने

विदिशादिविधिं कृत्वा गतिं यांति न संशयः ॥ ५७ ॥ अनन्योऽपि तपस्तप्त्वा यात्यात्रैवेयकं भृशं । निगोदाः पञ्चधा प्रोक्तास्तेऽनंतानंतभेदकाः॥५८॥अनन्तानंतगुणितान् निगोदान् सिद्धतोऽवदन् । अनन्तानन्तकालेषु राद्धांते श्रीजिनेश्वराः ॥५६॥ शुक्तिकाक्रमिशङ्खाद्या जलूका वालकस्तथा । कपर्दी चेति द्व्यक्षाः स्युर्जिनदेवागमेऽगमे ॥ ६० ॥ मत्कुणाः कुन्थवो यूकाः प्रपेल्युर्देहिकाः पुनः । गोम्याद्याोऽपरे जीवास्त्र्यक्षाः श्रीजिनभाषिताः ॥ ६१ ॥ पघटा मशका दंशा मक्षिकाः शलभास्तथा । पतंगाद्याः समाख्यातास्तुर्यक्षाः पूर्वसूरिभिः ॥ ६२ ॥ तिर्यंचो नरदेवाश्च नारकाः खप्रचारिणः । जलस्थलगता जीवाः पञ्चाक्षाः समता मतैः ॥ ६३ ॥ एकद्व्यक्षादिजीवानां

हैं। जैन सिद्धान्तके अन्दर यह बात वतलाई गई हैं अनंतानंत कालोंमें निगोदराशि सिद्धराशिसे अनंतानंत गुणी अधिक है ॥५७-५८॥ सीप मकोड़े शंख आदि जोंक ये जीव तथा वालक जातिके और कपर्दी जातिके जीव दो इन्द्रिय माने हैं। खटमल कुन्थुनामके जीव यूक और गोह आदिक जीव तेइन्द्रिय हैं। मच्छर डांस माखी शलभ और पतङ्ग आदि जीव चौइन्द्रिय है। तिर्यंच मनुष्य देव नारकी नभचर जलचर और थलचर जीव पंचेंद्रिय हैं। एकेंद्रिय दोइन्द्रिय आदि जीवोंकी उत्पत्ति करनेवाला मन ही है क्योंकि मनरूपी वीज ही वंधरूपी वृक्षका उत्पन्न करनेवाला है और वन्धका कारण होनेसे मोक्षकी प्राप्तिका बाधक है ॥५९-६३॥ यदि मनको वश कर लिया जाय तो सिद्धपने की प्राप्ति दूर नहीं है और यदि मन चंचल वना रहे तो संसार दूर नहीं है अर्थात् मनको वस करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और मनके वश न करनेसे संसारमें रुलना पड़ता है। ज्ञानावरण आदि मुख्य कर्मोंके जीतनेमें उपवास आदि तप वाह्य कारण हैं वास्तवमें महा वलवान मनका जीतना ही मुख्य कर्मका जीतना है। जो महानुभाव परमात्मपदको अभिलाषा रखनेवाले हैं वे करोड़ोंप्रकारके वाह्य तप तपें तो वा क्षण भरके लिये मन वश करें तो दोनोंका फल उनके लिये समान ही है। अर्थात् वे करोडों प्रकारके वाह्य तपोंके आचरणसे जितने कर्मोंको खिपा सकते हैं उतने ही क्षण भरके लिये मनको रोकनेसे भी खिपा सकते हैं ॥ ६४—६६ ॥ जिन महानुभावोंने आत्माको पहि-

संचलयुत्पत्तिकारकं । मम पत्र कहं कर्मवन्धमोक्षाकरं यतः ॥ ६४ ॥ हन्यायते मनसि नूनं सिद्धत्वं नैव दूरतः । चंचले मनसि नृणां संसारत्वं न दूरतः ॥ ६५ ॥ उपोषकादितपसः कर्तव्यं बाह्यमुच्यते । अभ्यंतरतमो नूनं नेतृत्वं मुख्यकर्मणां ॥ ६६ ॥ समाकोटिमिगु द्गतबाह्येन तपसा फलं । क्षणात्तन्मनसो रोधादरमात्ममावर्जिनः ॥ ६६ ॥ आत्माध्यवनतो येन तेन लब्धं परं महः । तपोऽप्यकारि सहानमदायि चापठि श्रुतं ॥ ६७ ॥ विहायात्मगतं तत्वं ये भ्रमंति बहिर्विधिः । तैरेव भवसौख्यार्थं तपोनिर्दह्यते तनुः ॥ ६८ ॥ जीवतत्त्वं समाख्यायाजीवतत्त्वं निगद्यते । पुद्गलश्चाथवा धर्माधर्मावाकाशमेव च ॥ ६९ ॥ कालश्चेति समाख्यातः पुद्गलो मूर्तिमान् गुणैः पूरणं द्गलनाच्चैव पुद्गलो ध्वन्यते जिनैः ॥ ७० ॥ शब्दो बन्धोऽथ संस्थानं तमश्छायातपा मताः । उद्योतः पुद्गलस्यैव पर्याया अर्हदागमे

चान किया है उन्होंने ही संसारमें सर्वोच्च तेजकी प्राप्ति करली है ऐसा समझ लेना चाहिये तथा उन्होंने उत्तम तप तपा है। उन्होंने उत्तम दान दिया है और उन्होंने सिद्धांतको पढ़ा है ऐसा भी समझ लेना चाहिये ॥ ६७ ॥ जो पुरुष आत्माके स्वरूपको न समझकर बाहिर बाहिर घूमनेवाले हैं वे संसारके सुखको ही परम सुख मानकर उसकी प्राप्तिके लिये पूर्ण प्रयत्न करते रहते हैं और वे जो भी तप तपते हैं वे केवल शरीरको ही उससे जलाते हैं। इस प्रकार जीवतत्त्वका वर्णन कर दिया गया अजीवतत्त्वका वर्णन इसप्रकार है—

पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और कालके भेदसे अजीव तत्त्व पांच प्रकारका माना है। उनमें पुद्गल द्रव्य मूर्तिमान है क्योंकि वह रूप आदि मूर्तिक गुण स्वरूप है। जो पूरा जा सके और जो गल सके वह पुद्गल द्रव्य है ऐसा भगवान जिनेन्द्रने पुद्गल द्रव्यका स्वरूप बतलाया है। शब्द बंध सूक्ष्मता स्थूलता आकार अंधकार छाया आतप—सूर्यका प्रकाश, उद्योत-चंद्रमाका प्रकाश-ये सब पुद्गल द्रव्यकी ही पर्यायें हैं ॥ ६७—७० ॥

जिस प्रकार मछलियोंके गमनमें सहायता पहुंचानेवाला जल माना गया है-बिना जलके मछलियां नहीं चल सकती उसीप्रकार जीव और पुद्गलोंके गमनमें सहकारी कारण धर्म द्रव्य है।

.॥ ७१ ॥ चतुर्गतिषु जीवानां धर्मोऽयं साह्यकृन्मतः । पुद्गलानां च मत्स्यानां वारिवद्गणनाथकैः ॥ ७२ ॥ जीवानां पुद्गलानां च स्थानं दातुं हि शक्तिमान् । अधर्मः पथिकानां वा छाया नैसर्गतो भृशं ॥ ७३ ॥ अवकाशो विद्यते योग्यं जीवादीनां विशेषतः । तल्लोकाकाशमाख्यातमलोकस्तत्परो यतः ॥ ७४ ॥ नवजीर्णकरः कालो व्यवहारस्ततः परः । एकरूपतया ख्यातो निश्चयो रत्नराशिवत् ॥ ७५ ॥ कालस्यैकप्रदेशत्वादकायो गद्यते मतैः । जीवाजीवोऽथ धर्मश्चाधर्मोऽसंख्यप्रदेशवान् ॥ ७६ ॥ आकाशं प्रोच्यते पूर्वैः प्रदेशोऽनन्तवद्ध्रुवं ।

जहां तक धर्म द्रव्यका संबंध रहता है वहीं तक जीव और पुद्गलोंकी गति होती है आगे नहीं होती जिस प्रकार छाया पथिक जनोंको ठहरानेवाली होती है—धूपके तापसे संतप्त पथिक जिस समय किसी वृक्षकी शीतलछाया देख लेता है तो कुछ विश्रामकी अभिलाषासे उसके नीचे ठहर जाता है। यदि वृक्षकी छाया न हो तो वह ठहर नहीं सकता उसीप्रकार जीव पुद्गलोंकी स्थितिमें कारण अधर्म द्रव्य है। अधर्म द्रव्यकी सहायतासे ही जीव और पुद्गलोंकी स्थिति होती है ॥ ७१—७२॥ आकाशके लोकाकाश और अलोकाकाशके भेदसे दो भेद माने हैं जीव आदि द्रव्योंको जो विशेष रूपसे अवकाश दान दे वह लोकाकाश है और उसके आगे अलोकाकाश है । व्यवहार और निश्चयके भेदसे काल द्रव्यके भी दो भेद माने हैं। द्रव्योंकी जो नई पुरानी आदि पर्यायोंके करानेमें कारण है वह व्यवहार काल है और जो असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर एक एक रूपसे स्थित है। रत्नोंकी राशिके समान जिसके अणू जुदे जुदे हैं वह निश्चय काल द्रव्य है ॥ ७३—७४ ॥ जिसके प्रदेश आपसमें मिल सकें वह काय कहलाता है काल द्रव्यके प्रदेशोंका मिलना नहीं होता और न उनमें मिलनेकी शक्ति ही है इसलिये काल द्रव्यको अकाय माना है । जीव काल धर्म और अधर्म द्रव्य इनमें प्रत्येकके असंख्याते असंख्याते प्रदेश हैं। आकाशके प्रदेश अनंत हैं तथा पुद्गलके संख्यात भी प्रदेश हैं असंख्यात भी प्रदेश हैं और अनन्त भी प्रदेश हैं।

त्रिविध' पुद्गलोऽनन्तसंख्यातासंख्यवानिति ॥७७ अकालास्ते समाख्याताः कायाः पञ्चास्तिसंज्ञकाः । जीवाजीवास्रवा बन्धसम्वरौ निर्जराशिवौ ॥ ७८॥ तत्त्वान्येतानि पुण्यैनोभ्यामाख्याताः पदार्थकाः । आस्रवो द्विविधो भावद्रव्यभेदात्प्रकीर्तितः ॥ ७६ ॥ ॥ समायात्या-

॥ ७५—७६ ॥ जीव पुद्गल धर्म अधर्म और आकाश इन पांच द्रव्योंको अस्तिकाय कहते हैं काल द्रव्यकी अस्तिकाय संज्ञा नहीं । जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं । इन्हींमें पुण्य पाप जोड देनेपर नव पदार्थ हो जाते हैं । जीव और अजीव तत्वका वर्णन कर दिया गया । अब आस्रव आदि तत्त्वोंका वर्णन किया जाता है—

भावास्रव और द्रव्यास्रवके भेदसे आस्रवके दो भेद हैं । तन्दुल मत्स्यके समान आत्माके क्रोध आदि भावोंसे जो कर्म आवें उन भावोंका नाम ही भावास्रव है । अर्थात् स्वयम्भूरमण नामके अन्तिम समुद्रमें एक महामत्स्य नामका मत्स्य रहता है । जिस समय वह अपने विशाल मुखको फाड कर सोता है उस समय उसके मुखमें अगणित जलचर जीव आते जाते रहते हैं । उस महामत्स्यके कानमें एक तंदुल नामका मत्स्य रहता है । महामत्स्यके मुखमें इसप्रकार जीवोंको आता जाता देख वह सदा यह विचार करता रहता है कि देखो यह महामत्स्य वड़ा मूर्ख है । इसके मुखमें इतने जीव अपने आप आते जाते हैं तब भी यह निकल जाने देता है यदि यह मुह वन्द कर लेवे तो सबके सब इसके पेटमें जा सकते हैं परन्तु यह ऐसा नहीं करता यदि मैं ऐसा होता तो सबोंको पेटमें रख लेता । यद्यपि वह तंदुल मत्स्य किसी जीवको सताता नहीं तथापि वह इसप्रकारके निंदित विचार करता रहता है इसलिये उन निंदित विचारोंसे सदा उसके कर्मोंका आस्रव होता रहता है उसी प्रकार चाहैं हिंसादि पांच पाप किये जाय या न किये जाय आत्माके अन्दर जो क्रोध आदि भावोंकी उत्पत्ति होती है उन क्रोध आदि भावोंका ही नाम भावास्रव है ठीक ही है जो

मनो भावैः कर्म तंदुलमत्स्यवत् । भावास्रवो हि स प्रोक्तो भावबद्धं दृढ़ायते ॥८०॥ मिथ्यात्वाविरतियोगकषायप्रमादैः प्रबध्यते । यत्कर्म सूरिभिः ख्यातः स द्रव्यास्रव एव च ॥ ८१ ॥ ज्ञानावरणादिसंयोगात्कर्मास्रवति संहतं । द्रव्यास्रवस्य भेदोऽयं प्रोक्तोऽन्यः पूर्वसूरिभिः ॥ ८२ ॥ बन्धोऽथ द्विविधः प्रोक्तो भावद्रव्यानुसारतः । दुर्भावैः कर्म बध्नाति भावबन्धो हि सोऽगदि ॥ ८३ ॥ कर्मणामात्मनश्चैव प्रदेशानां परस्परं । एकत्र मिलनं यच्च द्रव्यबंधो मतो हि सः ॥ ८४ ॥ बंधश्चतुर्विधो भूयः प्रकृतिरनुभागकः । स्थितिः प्रदेशः प्रकृतियोगादनुभागः स्थितिश्च वै । कषायेभ्योहि जायंते निर्णीतं केवलाधिपैः ॥ इत्युक्तो बन्धो हि दुस्त्यजो नृणां ॥ ८५ ॥

कार्य भावोंसे किया जाता है वह दृढ होता ही है यहां पर मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योगोंके द्वारा कर्मोंका आना होता है इसलिये मिथ्यात्व आदि भावोंका ही नाम भावास्रव है तथा मिथ्यात्व अविरति योग कषाय और प्रमादके द्वारा जो द्रव्य कर्म आते हैं उन द्रव्य कर्मोंका नाम द्रव्यास्रव है । द्रव्यकर्म जिस समय आता है वह ज्ञानावरण आदि समूह स्वरूप आता है इसलिये ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र और अन्तराय ये आठ द्रव्य कर्मके भेद हैं । ये आठ प्रकारके द्रव्य कर्म ही द्रव्यास्रवके आठ भेद माने हैं ॥ ८०—८१ ॥ द्रव्य बंध और भाव बंधके भेदसे बंध भी दो प्रकारका माना है । जिन मिथ्यात्व अविरति आदि दुर्भावोंके द्वारा कर्म बंधते हैं उन दुर्भावोंका नाम तो भावबंध है एवं कर्म और आत्माके प्रदेशोंका जो एक क्षेत्रावगाहरूप आपसमें मिलना है वह द्रव्य बंध कहा गया है ! वह बंध तत्त्व चार प्रकारका माना है प्रकृतिबंध अनुभागबंध स्थितिबंध और प्रदेशबंध । इस बंधका छूटना बड़ी कठिनतासे होता है । इन चारो प्रकारके बंधोंमें प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध तो योगोंके द्वारा होते हैं और अनुभाग एवं स्थितिबंध कषायोंके द्वारा होते हैं ऐसा भगवान जिनेंद्रने कहा है ॥ ८२—८५ ॥ द्रव्य संवर और भावसंवरके भेदसे संवर तत्त्व भी दो प्रकारका माना है । व्रत गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा चारित्र

८६ ॥ संवरो द्विविधः प्रोक्तो भावद्रव्यप्रभेदतः । आत्मनो भावतः कर्मास्रवस्य यन्निरोधनं ॥ ८७ ॥ उक्तोऽसौ ज्ञानिभिर्भावसंवरः संवरात्मकः । व्रतैश्च गुप्तिभिर्धर्मैरनुप्रेक्षादिभिः पुनः ॥ ८८ ॥ चारित्रेण क्षुधादीनां जेतृत्वेनागतं धनं । द्रव्यास्रवेण यत्पापं वार्यते द्रव्यसंवरात् ॥ ८९ ॥ निर्जरा द्विविधा ख्याता सविपाकाविपाकतः । सर्वेषां सविपाका स्यादविपाका हठादिति ॥ ९० ॥ भेदद्वमात्मको मोक्ष आत्मभावैश्च कर्मणां । सर्वेषां क्षयकारी यो भावमोक्षोमुनीरितः ॥ ९१ ॥ ध्यानैर्धर्मैर्महोग्रैश्च पृथग्भावो हि कर्मणां । द्रव्य-

और परीषहजय रूप आत्माके भावोंसे जो आस्रवके द्वारा आये हुए कर्मोंका रुकना है उन व्रत गुप्ति आदि भावोंका नाम भावसंवर है। यह भाव संवर संवर स्वरूप है अर्थात् किवाड़ लगा देने पर जिसप्रकार भीतर महलमें प्रवेश नहीं किया जाता उसी प्रकार जिस समय यह आत्मा संवर स्वरूप परिणत हो जाता है उस समय आत्मारूपी महलके अंदर कर्मोंका भी प्रवेश नहीं होता तथा द्रव्यास्रवसे जो द्रव्यरूप कर्म आते हैं उन द्रव्य कर्मोंका व्रत गुप्ति समिति आदिके द्वारा जो रुक जाना है वह द्रव्य संवर है अर्थात् व्रत गुप्ति आदिके द्वारा मिथ्यात्व अविरति आदि भावोंका रुकना तो भाव संवर है और द्रव्यरूप कर्मोंका रुकना द्रव्य संवर है ॥ ८६—८८ ॥ सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जराके भेदसे निर्जरा भी दो प्रकारकी मानी है। अपने आप फल देकर कर्मोंका खिर जाना अविपाक निर्जरा कहलाती है प्रत्येक संसारी जीवके कर्म प्रतिक्षण फल दे दे कर खिरते रहते हैं इसलिये सविपाक निर्जरा तो संसारी जीवोंके प्रतिक्षण होती रहती है। तथा तप आदिके द्वारा जबरन कर्मोंका झड़ाना अविपाक निर्जरा है। यह तप आदिके आचरण करनेपर होती है द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्षके भेदसे मोक्ष तत्त्व भी दो प्रकारका माना है। गुप्ति आदि आत्माके भावोंके द्वारा समस्त कर्मोंका सर्वथा क्षय हो जाना भाव मोक्ष है तथा ध्यान जप मनका वश करना, और उग्र तपोंके द्वारा जो द्रव्य कर्मोंकी आत्मासे जुदाई कर देना है वह द्रव्य मोक्ष है

मोक्षो जिनाधीशैः स प्रोक्तोऽशनशालिभिः ॥ ६२ ॥ सुभावानां महापुण्यं पाप दुर्भावचेतसां । सातासुखादिसन्नामसद्गोत्रायूंषि पुण्यतः । ६३ ॥ पापात्तद्विपरीतानि श्वभ्रतिर्यग्गतिः पुनः । द्रव्यतत्त्वपदार्थाश्च भाषितास्तेन मागध ! ॥ ६४ ॥ अथो श्रीजिननाथोऽसौ मोक्षमार्गमचीकथत् ॥ ध्यानसाध्यं विना तेन मुक्त्यवाप्तिर्न जायते ॥ ६५ ॥ दर्शनज्ञानचारित्रं मन्येऽहं मोक्षकारणं । तन्मयो निश्चयाद्देही कर्माण्याप्याप्नोति ॥ ६६ ॥ ध्यानेन विना योगी न समर्थः कर्मनाशने । अदंष्ट्रः कुञ्जराणां वा ध्वंसने केसरी यथा ॥

ऐसा केवल ज्ञानी भगवान जिनेन्द्रका सिद्धांत है ॥ ८६—६१ ॥ जिन महानुभावोंके परिणाम पवित्र रहते हैं उनके तो उत्तम पुण्यकी प्राप्ति होती है और जिनके निंदित परिणाम रहते हैं उनके पापोंकी उत्पत्ति होती है। साता रूप सुख उत्तम नाम उत्तम गोत्र और उत्तम आयु इनकी पुण्यसे प्राप्ति होती है और पापसे आसाता रूप दुःख निन्दित नाम गोत्र और आयुकी प्राप्ति होती है एवं पापके उदयसे नरकगतिमें जाना पड़ता है इस प्रकार भगवान विमलनाथने द्रव्य तत्व और पदार्थोंका विस्तारसे उपदेश दिया ॥ ६२—६३ ॥

इसके बाद भगवान विमलनाथने मोक्ष मार्गका वर्णन किया जिसकी कि सिद्धि ध्यानसे है और उस ध्यानके विना मोक्षकी प्राप्ति ही नहीं हो सकती। भगवान विमलनाथने कहा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्षके कारण हैं जो आत्मा निश्चयनयसे सम्यग्दर्शन आदि स्वरूप हो जाता है वह ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंसे रहित हो जाता है जिस प्रकार डाढ़ोंसे रहित सिंह हाथियोंके विध्वंस करनेकी समर्थ्य नहीं रखता उसी प्रकार ध्यानके विना योगी भी कर्मोंके नाशकी सामर्थ्य नहीं रखता। कर्मोंका नाश ध्यानके द्वारा ही हो सकता है ।६४। ॥ ६६ ॥ आर्तध्यान रौद्र ध्यान धर्म्यध्यान और शुक्ल ध्यानके भेदसे ध्यानके चार भेद माने हैं। इनमें आर्त और रौद्र ये दो ध्यान अप्रशस्त हैं इसलिये ये छोड़ने योग्य है। धर्म्य और शुक्ल ये

९७ ॥ आर्तं रौद्रं द्विधा ध्यानं त्याज्यं ग्राह्यं द्विधापरं । धर्म्यं शुक्लं महाध्यानं मुक्तिशर्मप्रदं हितं ॥ ९८ ॥ पुत्रस्त्रीभक्षणादीनां चिंतनं चार्तमुच्यते । बन्धनादिसमुद्भूतचिंतनं रुद्रमीरितं ॥ ९९ ॥ सूत्रार्थश्रवणं यच्च व्रतस्यादानभावना । दानस्य तपसश्चैव धर्म्यध्यानं हि तन्मतं ॥ १०० ॥ सङ्कल्पाद्यतिगं सात्वमात्मनश्चिंतनं परं ।शुक्लध्यानं तदाख्यातं निःसङ्गैः साध्यते हि तत् ॥१०१॥ गिरौ दरीश्मसानेषु विवरेषु शिलातले । मठमन्दिरशून्येषु ध्यानसिद्धिः प्रजायते ॥ १०२ ॥ पिण्डस्थं च पदस्थं च रूपस्थं रूपव-

दो ध्यान प्रशस्त ध्यान हैं एवं ये दोनों मुक्तिरूपी कल्याणके प्रदान करनेवाले और परम हितकारी हैं ॥ ९७ ॥ पुत्र स्त्री और भोजन आदिका चिंतवन करना अर्थात् ये मुझे कब मिलेंगे और कैसे मिलेंगे इस प्रकारका विचार करना आर्तध्यान कहा जाता है। दूसरे जीवोंके बांधने मारने आदि-का विचार करना रौद्रध्यान कहा जाता है। सूत्रके अर्थका श्रवण करना, व्रतोंके ग्रहण करनेकी भावना भाना एवं दान तथा तपके आचरणकी भावना भाना धर्म्यध्यान कहा जाता है। तथा जिस ध्यानमें समस्त संकल्प विकल्पोंसे रहित और निर्मल आत्माके स्वरूपका चिंतवन किया जाता है वह शुक्ल ध्यान है। समस्त परिग्रहोंसे रहित मुनिगण इस ध्यानका आचरण करते हैं ॥९७-९९॥ पर्वत गुफा मरघट खोलार मठ मन्दिर और शून्य स्थानोंमें शिलाओंपर बैठनेसे ध्यानकी सिद्धि होती है। पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थ और रूपातीतके भेदसे भी ध्यानके चार भेद माने हैं। ध्यानी पुरुषको चाहिये कि वह समस्त आरंभोंसे रहित होकर और मनको स्थिर कर ध्यानकी आराधना करै ॥ १००—१०१ ॥ जिसकी कांतिकी छटा चारो ओर छटक रही है और जो सूर्यके तेजके समान देदीप्यमान है ऐसे अपने आत्मरूपका जो नाभि कमलके मध्यभागमें चिंतवन करना है वह पिण्डस्थ नामका ध्यान है। तथा भालके मध्यभागमें वा करोंके मध्यभागमें हृदयमें वा गले के मध्यभागमें जो अपने आत्मस्वरूपका चिंतवन करना है वह भी पिण्डस्थ नामका ध्यान कहा

र्जितं । ध्यानस्थैर्यमना ध्यायेत् सर्वारम्भच्युतः पुमान् ॥ १०३ ॥ नाभ्यंभोजांतरे ध्येयमात्मरूपं स्फुरद्द्युतिः । सूर्यतेजःसमं तद्धि पिण्डस्थं जिनचिंतनं ॥ १०४॥ भालमध्ये करातर्वा हृदये वा गलांतरे । निजरूपं चिंतयेत्तच्च पिण्डस्थं मन्यते यतिः ॥१०५॥ अर्हमित्यक्षरं -च योगी ध्यायेन्निरतरं । पदस्थं तन्मतं ध्यानमेकवर्णादिकं पुनः ॥ १०६ ॥ कर्माष्टकच्युतश्चार्हन् प्रातिहार्यादिसंयुतः । ध्यायते शुक्लवर्णः मन् तद्रूपस्थं जिनागमे ॥ १०७ ॥ कंदर्पदर्परागद्वेषमनोवाक्कायमत्सरममत्वतनुसंस्कारधनधान्यकषायादिव्यापारनिष्क्रांतो भूत्वा कस्याहं न मे कश्चनेति निःसङ्गोध्यायत्यहंशब्दं सकारकलितादिं तद्रूपातीतध्यानमिति गद्यं ॥ १०८ ॥ शिवं च शीतलं ध्यानं निश्चयं भ्रांतिवर्जितं । सुधापानसमा ज्योत्स्ना शारदीव सुधावतः ॥ १०९ ॥ अकारवर्ग्रमानाक्षरजातिः । अवजङ्गम्यते येनाहंशब्दा-

जाता है ॥ १०२—१०३ ॥ जो योगी 'अर्हं' ऐसे पदका सदा ध्यान करते हैं उनका वह ध्यान पदस्थ ध्यान माना जाता है। अथवा 'ओं' इत्यादि एक अक्षर स्वरूप ध्यानका नाम भी पदस्थ ध्यान है ॥ १०४ ॥ जिस ध्यानमें आठ प्रातिहार्य आदि महिमासे विराजनान शुक्ल वर्णके धारक और कर्मरहित भगवान अर्हंतके स्वरूपका चिंतवन किया जाता है वह रूपस्थ ध्यान कहा जाता है।१०५। काम विकार राग द्वेष मन वचन कायकी कुटिलता मत्सरता ममता शरीरका संस्कार धन धान्य और कषाय आदिके व्यापारसे रहित होकर एवं समस्त परिग्रहसे विमुख न मैं किसीका हूं और न कोई मेरा है' ऐसा पूर्ण विचार कर जिस ध्यानके अन्दर 'सोऽहं, वह मैं हूं' ऐसा ध्यान किया जाता है वह रूपातीत नामका ध्यान है ॥ १०६ ॥ यह रूपातीत ध्यान अत्यन्त कल्याणकारी है। शांतिमय है। वास्तविक है। समस्त प्रकारकी भ्रांतिओंसे रहित है। अमृतपानके समान आनंददायी है और शरद कालकी चांदनीके समान शांति प्रदान करनेवाला है। जिसका चित्त अर्हं शब्दसे व्याप्त है ऐसा जो योगी इस निश्चय ध्यानका आराधन करता है उसे संसारमें नहीं रूलना पड़ता वह मोक्ष सुख प्राप्त कर लेता है ॥ १०७—१०८ ॥ इन चारो प्रकारके ध्यानोंमेंसे आर्त—ध्यानसे तिर्यंच गति मिलती हैं। रौद्र ध्यानसे नरक गतिमें जाना पड़ता है। धर्म्यध्यानसे स्वर्ग और शुक्ल ध्यानसे मोक्ष धाम प्राप्त होता है ॥ १०९ ॥ इस प्रकार धर्मोपदेशके वाद भगवान वि-

न्वीतचेतसा । योगिना निश्चयं ध्यानं तस्यास्ते का च संस्तुतिः ॥ ११० ॥ तिर्यग्गतिर्भवेदार्तात् रौद्रात् श्वभ्रगतिर्भवेत् । धर्मध्याना द्भवेत्स्वर्गः शुक्लध्यानाच्छिवास्पदः ॥ १११ ॥ इत्यादिश्रद्धया राजन् ! सम्यक्त्वं निर्मलं भवेत् । तस्मिन् सति महाकर्मक्षयस्तस्मिन् निरजनः ॥ ११२ ॥ तत्त्वानीनां कथा कार्या ध्यानं ध्येयं मनीषिभिः । अन्तर्मुहूर्तं सद्ध्यानात्कोटिकर्मक्षयो भवेत् ॥ ११३ ॥

श्रुत्वा तत्वामृतरसमहो राजपुत्रौ सुभावात् देवेंद्राद्यं जिनवरमुखाम्भोजजातं प्रशस्तं ।
भव्यस्वाद्यं सकलजनतानन्दकृद्दुर्गतिघ्नं कामाभौ तौ मृदुतरहृदौ नन्दयामासतुर्वै ॥ ११४ ॥
जग्मतुर्विनयमेरुमन्दिरौ सद्मपङ्कजदृशौ गुणान्वितौ ।

मलनाथने कहा—इस प्रकारके तत्त्वोंके स्वरूप पर श्रद्धान करनेसे सम्यक्त्व निर्मल होता है। सम्यक्त्वकी निर्मलतासे समस्त कर्मोंका क्षय होता है एवं जिस समय समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं उस समय यह आत्मा निरंजन-परमात्मा बन जाता है। जो पुरुष मनीषी— विद्वान हैं उन्हें अपने आत्मकल्याणकी अभिलाषासे सदा तत्त्व आदिकी कथा करते रहना चाहिये क्योंकि यदि अंतर्मुहूर्त पर्यंत भी उत्तम ध्यान आचरण कर लिया जाता है तो उस ध्यानसे देखते २ करोड़ों कर्मों का क्षय हो जाता है ॥ ११०—११२ ॥

इस प्रकार मेरु और मंदिर नामके राज पुत्रोंने उत्तम भावोंसे भगवान विमलनाथके समवसरणमें तत्त्वामृत रसको आस्वादन किया जिसकी कि लालसा बड़े २ देवोंके इन्द्र रखते हैं। जो भगवान जिनेन्द्रके मुखरूपी समुद्रसे उत्पन्न है। जो प्रशस्त है। भव्य जीवोंके स्वादने योग्य है। समस्त मनुष्योंको आनंद प्रदान करनेवाला है और दुर्गतियोंका नाशक है तथा कामदेवके समान सुन्दर और कोमल परिणामी वे दोनों राजपुत्र उस तत्त्वामृतरसके आस्वादनसे बड़े ही आनंदित हुए। तथा कमलके समान विशाल नेत्रोंके धारक अनेक गुणोंके भण्डार एवं धीर वीर चित्तके

अर्हतात्तविमलेन भापितं धार्यं धीरमनसौ मनोंऽतरे ॥ ११५ ॥

इत्यार्षे वृहद्विमलनाथपुराणे रत्नभूपणोऽन्नयालङ्कार वि० समवसृतिसंदर्भमेरुमन्दिरा
गमनश्रीविमलनाथोक्तब्रह्मज्ञानतत्त्वागृनरसो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

धारक वे मेरु और मंदिर नामके राजकुमार भगवान विमलनाथके मुखसे जायमान धर्मका स्वरूप अपने चित्तमें अच्छी तरह धारण कर अपने अपने राजमहल लोट आये ॥ ११३—११४ ॥

ब्रह्मकृष्णदास विरचित वृहद्विमलनाथ पुराणमें समवसरणकी रच-। मेरु और मंदिर नामके राजकुमारोंका आगमन और भगवान विमलनाथके मुखसे जायमान तत्वामृत रसका उपदेश वर्णन करनेवाला पाचवा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा सर्ग ।

श्रीमन्तं काश्यपं नौमि लसंतं श्वेतभूधरे। कोटिमेशप्रभं भव्यास्तं यं दृष्ट्वा चकोरवत् ॥ १ ॥ अथैतौ भ्रातरौ भव्यौ प्रातरु

जो भगवान आदिनाथ वाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी हैं। भरत क्षेत्रके आदि तीर्थङ्कर है। कैलाश पर्वतसे जिन्होंने मोक्षको पाया है। करोडों चन्द्रमाओंकी प्रभाके धारक हैं एवं चकोर पक्षी जिस प्रकार चंद्रमाकी ओर टकटकी लगाये रहता है उसी प्रकार भव्य जीव जिनकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं ऐसे श्रीआदिनाथ भगवानको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ दूसरे दिन पुनः वे दोनों भाई मेरु और मन्दिर प्रातःकाल वहुत जल्दी सोकर उठ गये एवं बड़े ठाट वाट और विभूतिके साथ भगवान जिनेंद्रकी वंदनाके लिये चल दिये। भगवान वि-

त्याय वेगतः । संरम्भेण महाभूत्या जग्मतुर्वंदितुं जिनं ॥ २ ॥ गत्वा रत्नासनासीनं जिनं विमलवाहनं । नत्वा पद्मारिजं स्तुत्वा गद्य-
पद्यैः स्थितौ सुखं ॥ ३ ॥ तदात्रदद्राधीशो मेरुस्तामरसप्रभः । प्रभाभारंभरिं देवं निर्द्वंद्वं चेति सादरात् ॥ ४॥ कर्मसुपनद्धेपनाकेद्र्यात
चर्चितपत्कज ! । प्रभो ! हं श्रोतुमिच्छामि भ्रातुर्मेऽथ भवावलिं ॥ ५॥ ज्योत्स्नोल्लासितवाराशिमहाघोषसमध्वनिः । मेरुं प्राहेति भव्यो
धाम्भोजभानुर्जिनो नृप ! ॥ ६ ॥ सम्यक् पृष्टं त्वया वत्सासंख्यजीवसुखप्रदं । त्वं च मंदरनामा च यास्यतोऽतः शिवालयं ॥

मलनाथ उस समय रत्नमयी सिंहासन पर विराजमान थे। दोनों भाइयोंने अनेक प्रकारके मनो-
हर गद्य पद्योंमें भगवान विमलनाथके चरण कमलोंकी स्तुति की एवं सुख पूर्वक मनुष्य कोठेमें
जाकर बैठ गये ॥ २—३ ॥ वे भगवान विमलनाथ उस समय महा मनोज्ञ कांतिसे शोभायमान
थे और समस्त प्रकारके द्वंदोंसे रहित थे। कमलकी प्रभाके समान शोभायमान राजा मेरुने अव-
सर पाकर भगवान जिनेंद्रसे इसप्रकार बड़े आदरसे पूछा—

भगवन्! आप समस्त प्रकारके कर्मोंके नाश करनेवाले हो। सबोंके स्वामी हो। बड़े बड़े इन्द्र
भी आपके चरण कमलोंको पूजते हैं स्वामिन्! मैं अपने भाई मंदिरका पूर्वभवका वृत्तांत सुनना
चाहता हूं कृपाकर कहिये। वे भगवान जिनेंद्र चंद्रमाके संबंधसे लहलहाते हुए विशाल समुद्रके
गंभीर शब्दके समान दिव्य ध्वनिके धारक थे और भव्यरूपी कमलोंके प्रकाशनेके लिये सूर्यस्वरूप
थे। राजा मेरुका इस प्रकारका प्रश्न सुन उन्होंने उत्तरमें कहा— राजन्! इस समयका तुम्हारा
प्रश्न बहुत ही उत्तम है। असंख्य जीवोंको सुख प्रदान करनेवाला है। तुम निश्चय समझो तुम
और मंदिर दोनों इस भवसे मोक्ष पाओगे। मन्दिरके पूर्व भवके वृत्तांतको तुम आदर पूर्वक
सुनो क्योंकि तुम एक मनीषी पुरुष हो किन्तु जो पुरुष अन्तरङ्गमें सार रहित मनीषी नहीं होते
उन्हें कितना भी उत्तम उपदेश क्यों न दिया जाय वह उनको बड़ा दुःखदायी जान पड़ता है क्यों

७॥ सावधानत्वमाश्रित्य शृणु त्वं सादरं यतः। अन्तःसारविहीनानां प्रतिबोधोऽपि दुःखति ॥ ८ ॥ अन्तःसारविहीनानां बुद्धिः कापि न जायते। मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ॥ ९ ॥ अथासंख्यमहाद्वीपमध्ये राजेव राजते। जम्बूभूरुहचिह्नत्वाज्जम्बूद्वीपोऽभिधानतः ॥ १० ॥ तन्मध्ये मेरुराभाति नानारत्नविचित्रत्विट् । षोडशार्हन्महागारसंदर्भी कृतसत्तटः ॥ ११ ॥ विरंमन्ति यतः स्वस्था नैव लोके श्रुतं कदा । अप्सरःस्तनसंश्लेषैर्विवितेलातलाद्विरः ॥ १२ ॥ अस्यैव पश्चिमे भागे विदेहोऽपरसंज्ञिकः। सार्थकोऽतो विदेहत्वं तपसा प्राप्नुवंत्यहो ॥ १३ ॥ सीतोदानावतः सिंधुस्तत्रास्तेऽगाधसन्नदा। शतोन्नतमहाचैत्योद्भासितोभयपार्श्वकाः ॥

कि मलयागिरि चन्दनके सम्बन्धसे जिस प्रकार अन्य वृक्ष तो चन्दन स्वरूप हो जाते हैं परन्तु वासका वृक्ष चंदन स्वरूप परिणत नहीं होता उसी प्रकार जो पुरुष अन्तः सार विहीन हैं कुछ भी मनीषिता नहीं रखते उनकी बुद्धिपर भी धर्मोपदेशका असर नहीं पड़ता ॥ ४—६ ॥

असंख्याते द्वीपोंके मध्यभागमें एक जंबूद्वीप नामका विशाल द्वीप है जो कि समस्त द्वीपोंका राजा सरीखा जान पड़ता है तथा जम्बूवृक्षके सम्बन्धसे ही उसका जंबूद्वीप यह प्रसिद्ध नाम है । जंबुद्वीपके ठीक मध्य भागमें मेरुनामका पर्वत है जो कि चित्र विचित्र रत्नोंकी प्रभासे देदीप्यमान है एवं उसका तट बड़े २ विशाल मंदिरोंसे व्याप्त हैं । मेरु पर्वतकी पृथ्वीपर देवांगनाओंके स्तन संघट्टनोंकी सदा प्रतिविंब पड़ती रहती हैं इसलिये जो पुरुष स्वस्थ है—विषय भोगोंसे रहित हैं वे भी उस पृथ्वीसे विरक्त नहीं होते उस पृथ्वीपर विहार करना आनंदप्रद समझते हैं यह वात लोक प्रसिद्ध है ॥ १०—१२ ॥ मेरु पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें विदेह नामका एक विशाल क्षेत्र है और उसका नाम विदेह सार्थक है क्योंकि वहां तपोंके द्वारा मनुष्य विदेह-देहरहित सिद्ध परमात्मा वन जाते हैं। वहां पर शीतोदा नामकी विशाल नदी बहती है जिसका कि तलभाग अगाध है और जिसके दोनों पसवाड़े विशाल सौ मंदिरोंसे शोभायमान है । शीतोदा नदीके उत्तर तटपर

१४ ॥ तस्या उदक्तटे गंधमालिनी विषयो महान् । यातायातैः सरामाणां सुराणां रम्यभूतलः ॥ १५ ॥ भूरुहै यत्र वध्यंते भूरिपुष्प फलांचिताः । कोकिलालिकलाप्यंता दानच्युत्कुम्भिकंपिताः ॥ १६ ॥ निगमा यत्र राजंते शालीक्षुक्षेत्रकोटिभिः । पदे पदे तडागानि पङ्कजालियुतानि च ॥ १७ ॥ योगरूढर्षिपन्न्यासपवित्रितमहीधराः । लसंति लवलीवल्लीपुष्पसौगंधिवायवः ॥ १८ ॥ अब्जबाग्व्यक्तवक्त्रा वा वासंती चलनालिदृक् । अर्णोवेषोर्मिवेषा च राजते हंसनूपुरा ॥ १९ ॥ तत्रास्ते वीतशोकाख्यं पत्तनमृद्धिसंकुलं । गोपुरोद्दालि

गंध मालिनी नामका एक विशाल देश है । वहां पर अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ सदा देवों-का आना जाना वना रहता है इसलिये सदा उसकी पृथ्वी रमणीक वनी रहती है । गंधमालिनी देशके वृक्ष सदा अनेक प्रकारके पुष्प और फलोंसे व्याप्त रहते हैं सदा उनपर कोयल भ्रमर और मयूरोंके महा मनोहर शब्द हुआ करते हैं और मदोन्मत्त हाथी सदा उन्हें कंपित करते रहते हैं । गंधमालिनी देशके गांव करोडो धान्य और ईखोके खेतोंसे व्याप्त रहते हैं तथा पदपद पर वहां सर विद्यमान हैं जो कि भ्रमरोंसे युक्त कमलोंसे व्याप्त रहते हैं ॥ १३—१७ ॥ वहांके पर्वत ध्यानारूढ मुनियोंके चरणोंसे सदा पवित्र वने रहते हैं और लवली नामकी लताओंके पुष्पोंकी सुगन्धिसे सदा वहांकी पवन सुगंधित बहती रहती है । वहां पर वसंत ऋतुकी शोभा मनोहर स्त्रीके समान अत्यन्त शोभायमान थी क्योंकि स्त्री जिसप्रकार वस्त्र पहिनती है उसीप्रकार वसंत ऋतुकी शोभा भी फूले हुए कमलरूपी वस्त्र पहिने थी। स्त्रीका मुख होता है उसीप्रकार वसंत ऋतुकी शोभा भी कमलरूपी मुखोंसे शोभायमान थी । स्त्रीके नेत्र होते हैं उसी प्रकार चलते फिरते भौंरेही उस वसंतको शोभाके नेत्र थे। स्त्री जिसप्रकार सुन्दर वेषसे शोभायमान रहती है उसी प्रकार वसंत ऋतु की शोभा भी जल वा तरङ्ग रूपी सुन्दर वेषसे शोभायमान थी ॥ १८—१९ ॥

शालालिमंडितं स्वर्गपूरिव ॥ २० ॥ अर्हद्गृहा विराजन्ते प्रोच्चैर्गगनसंस्पृशः। पताकावलिभिर्भव्यानाह्वयंति च वेगतः ॥ २१ ॥ धर्मे धीरास्तपोधीरा दानधीराः कृपायुजः। श्रुतज्ञाः सुन्दराः शूरा विद्यंते सज्जना अपि ॥ २२ ॥ पुरे तत्र महेभ्याढ्ये वैजयन्तो नराधिपः दाता पाता श्रुतज्ञाता हर्तारिश्रियश्च वै ॥ २३ ॥ प्रतापाक्रांतभूपालमंडलीकः कलानिधिः। क्रूरसौम्यगुणान्वीतो मीनरत्नैव वारिधिः ॥ २४ ॥ राजन्ते सिंधवो वामाः सुधाया इव सिंधवः। भूरयः कंबुगामिन्यः पुन्नागमतयोऽमलाः ॥ २५ ॥ सर्वश्र्याख्या महादेवी तस्या

गन्ध मालिनी देशके अंदर एक वीत शोक नामका नगर है जो कि अनेक प्रकारकी ऋद्धियों से व्याप्त है। जिनके अन्दर बड़े २ गोपुर खास दरवाजे शोभायमान हैं ऐसे विस्तीर्ण परकोटोंसे व्याप्त है अतएव वह स्वर्गपुरोंके समान जान पड़ता है। वीत शोक नगरके विशाल जिनमंदिर जो कि अपनी ऊचाईसे आकाश मण्डलको स्पर्शते थे अत्यंत शोभायमान जान पड़ते थे तथा उनके ऊपर पताकायें फर हराती रहतीं थीं इसलिये वे ऐसे जान पड़ते थे मानों भव्य जीवोंको ये बुला रहे हैं। उस नगरके निवासी सज्जन धर्म कार्योंमें पूर्ण धैर्य रखनेवाले थे। तपके आचरणमें बड़े धीर वीर थे अत्यंत दानी कृपालु विद्वान सुन्दर और शूर वीर थे॥ २०—२२ ॥ अनेक धनिकोंसे व्याप्त उस वीत शोक नगरका स्वामी राजा वैजयंत था जो कि अत्यंत दानी था। प्रजाका न्याय पूर्वक पालन करनेवाला था। शास्त्रके मर्मका पूर्णज्ञाता था एवं शत्रुओंकी लक्ष्मीका हरण करने वाला था। अपने प्रतापसे उसने समस्त राजा लोग वश कर रक्खे थे। अनेक कलाओंका वह भंडार था एवं जिस प्रकार समुद्र मीन और रत्नोंका स्थान होता है उसी प्रकार वह राजा भी क्रूरता और सोमता रूपी गुणोंका स्थान था ॥ २३—२४ ॥ राजा वैजयंतकी बहुत सी रानियां थीं जो कि परम सुन्दरी थीं। अमृतकी साक्षात्समुद्र थीं। गजगामिनी पवित्र बुद्धिकी धारक और विमल थीं। राजा वैयंजतकी पटरानीका नाम सर्वश्रीप्या जो कि साक्षात् लक्ष्मी वा सूर्यकी स्त्री प्रभा वा रम्भा

स्ते शशिकेव भाः । रवे रम्भा च दाक्षिण्यरूपलावण्यतोयधिः ॥ २६ ॥ पीवरस्तनभारेण दरनम्रा कृशोदरी । स्थूलगौरनितम्बेन मन्थरा
मृगलोचना ॥ २७ ॥ (युग्मं) तयोर्भुंजानयोः सौख्यं पुलोमापुरहूतयोः । इवाभूतां सुतौ रम्यौ कामाभौ कमलेक्षणौ ॥ २८ ॥ संज
यंताभिधः सर्वलक्षणांकितविग्रहः । जयन्ताख्योऽपरः ख्यातः शुक्रो वाङ्मी च ताविव ॥ २९ ॥ एधेतां प्रत्यहं बालचन्द्रवद्वर्दितान्वयौ
बालत्वेऽभ्यस्तविद्यौ तौ बाहुनारीपती ततः ॥ ३० ॥ पुत्राभ्यां सहितो राजा वैजयंतोऽतिदुर्जयः । भुनक्तिस्माधिपत्यं च प्रतापोष्ण

सरीखी जान पड़ती थी । एवं वह चतुरता रूप और लावण्यकी समुद्रस्वरूप थी । वह स्थूल स्तनोंके भारसे आगेको कुछ झुकी हुई थी, कृशोदरी थी । स्थूल और भारी नितम्बोंके कारण धीरे २ चलने वाली थी एवं हरिणीके समान चंचल नेत्रोंसे शोभायमान थी । इन्द्र और इंद्राणीके समान इच्छा नुसार सुख भोगनेवाले राजा वैजयन्त और रानी सर्वश्रीके दो पुत्र हुए जो कि अत्यन्त मनोहर थे कामदेवके समान सुन्दर थे । कमलके समान विशाल नेत्रोंके धारक थे ॥ २५—२८ ॥ प्रथम पुत्र-का नाम संजयत था जो कि समस्त उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त शरीरका धारक था तथा दूसरा पुत्र जयंत था जो कि अपने गुणोंसे समस्त पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध था । दोनों ही पुत्र विद्वत्तामें शुक्र और बृहस्पतिकी शोभा धारण करते थे । वे दोनों कुमार बाल चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढ़ते रहते थे । बाल अवस्थामें ही उन्होंने समस्त विद्याओंका अभ्यास कर लिया था एवं वे शस्त्र विद्या-रूपी स्त्रीके पति थे—पूर्ण शस्त्र कलाके जानकार थे ॥ २९—३०॥ प्रतापी दोनों पुत्रोंके साथ राजा वैजयंत दुर्जय शत्रुओंका अगम्य था । एवं प्रतापी सूर्यके समान देदीप्यमान प्रभाका धारक वह अपने राज्यका पूर्णरूपसे भोग करता था ॥ ३१ ॥

वीतशोक नगरके समीपमें एक अशोक नामका विशाल उद्यान था जो कि भांति २ के वृक्षों से व्याप्त था । अनेक देवोंके साथ जहां तहां विहार कर भगवान् विमलनाथ उस उद्यानमें आकर

करप्रभः ॥ ३१ ॥ अथैकदा समायातस्तत्पुरस्य वने जिनः अशोकाख्ये द्रुमाकीर्णे स्वयम्भूर्निर्जरावृत ॥ ३२ ॥ बन्दितुं जग्मतुस्तं तौ सोदरौ सोदराविव । महाभूत्या गजारूढौ छत्रछन्नार्कदीधिती ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा स्वयंभुवं दूरादुत्तीर्य गजाग्रतः । गत्वा भक्त्या परीत्याशु नत्वा स्तुत्वा च तस्थतुः ॥ ३४ ॥ जिनोक्तं दशधा धर्मं संसारानित्यतां च तौ । श्रुत्वा वैराग्यमापन्नौ कौशलं हि सतामिति ॥ ३५ ॥ वैजयंतोऽवनीनाथो दृष्ट्वा पुत्रविरक्तता । ततकं मनसि स्वीये मोहशैथिल्यतो महान् ॥ ३६ ॥ युवानोऽपि तपस्यंति ते धन्या

विराज गये । कुमार संजयत और जयंतको भगवान जिनेंद्रके आनेका समाचार मिल गया । शीघ्र ही लक्ष्मीके समुद्र स्वरूप वे दोनों भाई हाथियोंपर सवार हो गये और बड़े ठाट वाटके साथ भगवान जिनेंद्रकी वंदनाके लिये चल दिये । दोनों कुमारोंके ऊपर छत्र ढुलते जाते थे जो कि अपनी उग्र दीप्तिसे सूर्यकी दीप्तिको दवानेवाले थे ॥ ३२—३३ ॥ भगवान स्वयम्भूको दूरसे ही देखकर वे दोनों राजकुमार हाथीसे उतर गये । पासमें जाकर भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दीं । नमस्कार किया। मनोहर गद्य पद्योमें स्तुति की और अपने योग्य स्थानपर जाकर बैठ गये ॥ ३४ ॥ भगवान जिनेंद्र उस समय उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंका स्वरूप निरूपण कर रहे थे और संसारकी अनित्यताका उपदेश दे रहे थे जिसे सुनकर सञ्जयन्त और जयंत दोनो ही संसारसे विरक्त हो गये ठीक ही है सज्जनोंकी कुशलता यही कहलाती है। राजा वैजयंतने जब अपने पुत्रोंको संसारसे विरक्त देखा तो उसका भी मोह संसारमें शिथिल पड़ गया और वह अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगा—

युवा होकर भी जो विषय भोगोंसे विरक्त हो तप आचरण करते हैं संसारमें वे ही धन्य हैं । मुझ सरीखे पापियोंके लिये धिक्कार है जो कि अपनी वृद्ध अवस्थाको युवावस्था मान रहे हैं अर्थात् यह अवस्था धर्म साधनकी है उसे भोग विलासोंमें बिता रहे हैं। इन्द्रके पुत्रके समान और का-

…तलेऽखिले। माद्वक्षाणां महार्घानां वृद्धत्वं तरुणायते ॥ ३८ ॥ तिष्ठेयं किमहं राज्ये जराक्रांतो विषण्णधीः। दीक्षेते चेत्कुमारौ द्व…
…मौ वा शक्रनंदनौ ॥ ३७॥ एवमादि चिरं चिंत्य जातो निर्वेदमानसः। संजयंतस्य पुत्राय वैजयंताय धीमते ॥ ३९ ॥ दत्त्वा राज्यं
…मायातं पुत्राभ्यां सहितो नृपः। दिदीक्षे सकलं संगं त्यक्त्वा मगधनायक ! ॥ ४० ॥ वैजयंताख्ययोगींद्रः सप्तमे निःप्रमादवान्।
क्रियाकांडं भृशं शुद्धिं कर्तुं प्रोद्यमवान्भूत ॥ ४१ ॥ द्वादशे चाकषायाख्ये क्षीणाशेषकषायकः। तीर्थंकरत्वमापासौ वैजयंतस्तपो
…लात् ॥ ४२ ॥ तदानीमेव देवेंद्राः कर्तुं तत्केवलोत्सवं। समायाता जयध्वानवादिनः परमभक्तिकाः ॥ ४३ ॥ तत्क्षणे तौ गुणाम्भोधी

मके समान सुन्दर ये दोनों कुमार तो दिगंबरी दीक्षा धारण करें और मैं वृद्धावस्थामें भी राज्यके फासे में फसा रहूं मुझसे बढकर संसारमें कोई मूर्ख नहीं। बस इस प्रकार बहुत देरतक अपने मनमें विचार कर राजा वैजयंतका चित्त संसारसे विरक्त हो गया। कुल परम्परासे प्राप्त राज्यको राजा वैजयन्तने अपने पोते कुमार संजयन्तके पुत्र वैजयन्तको प्रदान कर दिया और वह समस्त परिग्रह का सर्वथा त्यागकर दोनों पुत्रोंके साथ शीघ्र ही दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥३५—४०॥ मुनिराज वैजयन्तने अप्रमत्त नामक सातवें गुण स्थानमें प्राप्त होकर समस्त प्रमादोंका सर्वथा नाश कर दिया एवं अपने चारित्रकी शुद्धिका वे विशेष रूपसे प्रयत्न करने लगे। क्षीण कषाय नामक बारहवें गुणस्थानमें उन्होंने समस्त कषायोंका सर्वथा नाश कर दिया। विशिष्ट तपके बलसे उन्हों ने तीर्थंकर गोत्रका बंध कर लिया और उन्हें अन्तमुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। मुनिराज वैजयन्तको केवल ज्ञानकी प्राप्तिका ज्ञान होते ही उनके केवलज्ञानका उत्सव मनानेके लिये शीघ्र ही इन्द्र आ गये। उस समय समस्त इन्द्रोंके मुखोंसे जय जयकार शब्द निकलता था और सबके सब प्रबलभक्तिके स्रोतमें मग्न थे ॥ ४१—४३ ॥ गुणोंके समुद्र परम तपस्वी प्रबलकांतिके धारक वस्तु स्वरूपके जानकार क्षमारूपी भूषणसे शोभायमान एवं शास्त्ररूपी समुद्रके पारगामी उन संज

तपोभारभगी मुनी । संजयंत जयंताख्यौ श्रुत्वा तातस्य केवलं ॥ ४४॥ वन्दितुं भूरितेजस्की तत्वज्ञौ शांतिभूषणौ । समायातौ स्तुवंतौ तौ श्रु तांवोधितवौ परौ । ४५ ॥ धरणेंद्रस्तदायासीदुत्सवार्थं जिनस्य च । द्विसप्तकोटिभिर्देवै रावृतः कम्रताम्बधि ॥ ४६ ॥ जयंताख्यो मु नस्तत्र दृष्ट्वा रूपं धरापतेः । विह्वलांगो वभूवाशु भोगोदयविधेर्वशात् ॥ ४७ ॥ तपो घोरतरं तप्त्वा साशङ्कं दृशिकादिषु । सोऽकार्षीन्नितरां प्रान्ते निदानमिति शल्यवत् ॥ ४८ ॥ फलं चेत्तपसो मेऽत्र चिरं तप्तस्य सादरात् । भूयान्मे नागनाथत्व मावश्यक महोदयं ॥ ४९ ॥ मृत्वा निदानतो जज्ञे धरणेंद्रः शुभाशयः । महर्द्धिः फणिमह्रीभारकिरीटः पुष्पदन्तभः ॥ ५० ॥ तपसोग्रे ण दुःप्राप्यं

यंतऔर जयंत नामके मुनियोंने भी अपने पिताको केवलज्ञान हुआ सुना इसलिये वे भी तत्काल मुनिराज वैजयन्तकी वन्दनाके लिये आ गये। चौदह करोड़ देवोंसे व्याप्त अतिशय मनोहर शरीरका धारक धरणेंद्र भी जिनराज वैजयंतके केवलज्ञान उत्सवमें शामिल हुआ था। धरणेंद्रके मनोहर रूपको देखकर मुनिराज जयंत एकदम निर्बुद्धि हो गये। मोहनीय कर्मके तीव्र उदयसे उनकी स्त्री आदिमें लालसा फटकने लगी इसलिये तीव्र तपके तपनेके वाद यह उन्होंने निदान नामकी शल्य बांध ली—

'चिरकाल पर्यंत तपे गये तपका यदि आदरपूर्वक मुझे फल प्राप्त हो तो मैं महान अभ्युदयका स्वामी धरणेंद्र बनूं' बस आयुके अन्तमें मरकर वे महान ऋद्धिके स्वामी और शुभ चित्तके धारक धरणेंद्र हुए। उनका मुकुट नागके भारसे शोभायमान था और सूर्य चन्द्रमाके समान उनकी अद्वितीय प्रभा थी ॥ ४४—५० ॥ ग्रन्थकार निदान शल्यकी निंदा करते हुए कहते हैं कि जब उग्र तपके प्रभावसे मोक्ष तक प्राप्त हो जाती है तब उससे धरणेंद्र पदका मिलना कठिन नहीं क्योंकि यह संसार प्रसिद्ध वात है कि बहुमूल्यकी वस्तुसे थोड़े मूल्यकी वस्तुका मिलना कठिन नहीं है। उग्रतपका तपना बहुमूल्य वस्तु है और धरणेंद्र पदकी प्राप्ति थोड़े मूल्यकी वस्तु है। इसलिये मुनिराज जयन्तका उस प्रकारका निदान एक निंदित निदान था।

धरणत्वं कदापि न। अत्यल्पं बहुमूल्येन सौख्यं विद्यते ननु ॥ ५१ ॥ अथासौ संजयंताख्यो योगींद्रो व्यवहरद्भुवि। तपस्यन् भूधरप्रस्थे ऽमिसूर्यं ब्रह्म संजपन् ॥ ५२ ॥ त्रिधामङ्गादिनिर्मुक्तो निश्चलो मेरुवत्परः। निःक्रियो ध्यानसंरुद्धचेताः परमतत्त्ववित् ॥ ५३ ॥ तत्त्वे ह्यवगते नूनं संसृतिः कियती यते। क्षैणिकध्यानलेशेन वज्रवत्कर्म भूधरः ॥ ५४ ॥ अन्येद्युः पर्वतारूढो ध्यानास्तमितलोचनः। ब्रह्मण्या टमानमायोज्य स्थितो यावन्महीं मुनिः। ५५। मनोहरपुराभ्यर्णे भीमारण्यांतरे यतिं। प्रतिमायोगसंलीनं ध्यायंतं परमं महः ॥ ५६ ॥ विद्युद्दंष्ट्रः खगो दृष्ट्वा तं मार्गे वेगतो व्रजन्। पूर्ववैरानुसंबन्धाज्जातिस्मरणवानभूत् ॥ ५७ ॥ महाक्रोधेन दुष्टात्मा ताडयामास प्रस्तरैः। मुष्टिभल्लकुठैर्घातैस्तं मुनिं ब्रह्मचिंतिनं ॥ ५८ ॥ समुद्धृत्य मुनिं वैरान्नीत्वाकाशे जिघांसया। यायो विद्यावलेनाशु खगस्तं

मुनिराज जयन्तके धरणेंद्र हो जानेके बाद वे योगिराज संजयंत पृथ्वीमण्डल पर विहार करने लगे। सूर्यकी ओर मुखकर परमात्माके स्वरूपका ध्यान करते हुए पर्वतोंकी शिलाओंपर स्थिर हो कर घोर तप तपने लगे ॥ ५१—५२ ॥ वे मुनिराज संजयंत चेतन अचेतन एवं चेतनाचेतन तीनों प्रकारकी परिग्रहसे रहित थे जिस समय वे ध्यानारूढ निश्चल होते थे उस समय वे निश्चल मेरु पर्वतके समान जान पड़ते थे। समस्त प्रकारकी वाह्य क्रियाओंसे रहित थे। वे सदा परमात्माका ध्यान करते रहते थे इसलिये उनके चित्तकी वृत्ति रुकी रहती थी और वे पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपके पूर्ण जानकार थे। यह निश्चय है कि जहांपर वस्तुके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो जाता है वहां पर विशेष संसारमें नहीं रुलना पड़ता किंतु जिस प्रकार वज्रसे विशाल भी पर्वत चूर चूर हो जाता है उसीप्रकार शुक्ल ध्यानके द्वारा वलवान भी कर्मरूपी पर्वत खण्ड २ हो जाता है ॥५३-५४॥

एक दिनकी वात है कि वे मुनिराज संजयंत पर्वतके अग्र भागपर विराजमान थे। ध्यानकी कृपासे उनके दोनों नेत्र निश्चल थे, चित्तमें परमात्माका चिंतवन कर रहे थे। मनोहर पुरके उद्यान में एक भीमारण्य नामका वन था उसमें प्रतिमा योगसे वे ध्यानारूढ थे उसी समय एक विद्यु-

मेरुनिभृतं ॥ ५९ ॥ अथ जम्बूमति द्वीपे भारते क्षेत्रमुत्तमं । विद्याधराचलस्तत्र राजते राजतोपमः ॥ ६० ॥ तस्य पूर्वदिशायां च सरित्पंचसमागमः । आद्या कुसुमवत्याख्या हरिवत्यभिधाऽपरा ॥ ६१ ॥ सुवर्णगजवत्यौ च चन्द्रवेगा च पञ्चमी । न्यक्षिपत्संगमे तासामगाधे सलिले खलः ॥ ६२ ॥ क्षिप्त्वायं पुरमध्ये स समायातोऽपकारकः । पटहेन खगान् सर्वान् पिण्डीकृत्य जगाविति ॥ ६३ ॥ अयं पापी महाकायो दानवो मानवाशनः । सर्वान् विद्याधरानस्मान् पृथकृत्यात्तु मास्थितः ॥ ६४॥ बाणखड्गादिशस्त्रौघैर्निष्कृपं सर्वभक्षणं।

दंष्ट्र नामका विद्याधर विमानमें बैठकर उनके ऊपरसे निकला। मुनिराज संजयन्तके साथ उसका पूर्व भवका वैर था इसलिये पूर्व भवके वैरके सम्बन्धसे उसे शीघ्र ही जाति स्मरण हो गया। पूर्व भवके बैरसे मारे क्रोधके वह भवल गया एवं परम ध्यानी उन मुनिराजको वह पत्थर मुक्क लाठी और धक्कोंसे मारने लगा। मेरु पर्वतके समान निश्चल उन मुनिराजको मारनेकी इच्छासे दुष्ट विद्याधरने अपने विद्यावलसे आकाशमें उठा लिया और शीघ्र ही लेकर चल दिया।

इसी जंबू द्विपके भरत क्षेत्रमें एक विजयार्ध नामका विद्याधर पर्वत है जो कि चांदीके समान सफेद वर्णका है। विजयार्ध पर्वतकी पूर्व दिशामें कुसुमवती, हरिवती, सुवर्णवती, गजवती और चंद्रवेगा नामकी पांच नदियोंका समागम है। दुष्ट विद्याधरने उन्हीं पांचों नदियोंके समागमके आगाथ जलमें परम पवित्र मुनिराज संजयंतको लेजाकर पटक दिया। वह निर्दयी मुनिराजको पटक कर अपने नगरमें आ गया। भेरी बजाकर समस्त विद्याधरोंको इकट्ठाकर लिया और उनसे इसप्रकार कहने लगा—

विशाल शरीरका धारक मनुष्योंका खानेवाला राक्षस यह महा पापी है। हम सब विद्याधरोंको एक एक कर खानेके लिये यहां पर स्थित है। निर्दयी सर्व भक्षी और हम सबोंको खानेकी अभिलाषा रखनेवाले इस दुष्टको बाण खड्ग आदि शस्त्रोंसे हम सबोंको मिलकर मार डालना चा-

वधं सर्वेऽपि संभूय हनामोऽखिलघातिनं ॥ ६५ ॥ माकुरुतास्य विश्वासं मन्यध्वं मद्वचो ध्रुवं । अयं रात्रौ स्त्रियो वालान् पशून् वा भक्षयिष्यति ॥६६॥ तस्मात्सद्वचनं यूयं प्रतीत किमहं वृथा । मृषा भाषे किमेतेन वैरमस्त्यत्र मे पृथक् ॥ ६७ ॥ इति विद्याधराः सर्वे मुग्धास्तेन प्रतारिताः । सायुधा निर्ययुस्तूर्णं मृत्युभीत्रस्तमानसाः ॥ ६८ ॥ गत्वा ते शस्त्रघातैस्त युगपज्जघ्नुरादरात् । दृषद्दण्डकराघातैर्गगलान्मुनिपुङ्गवं ॥ ६९ ॥ रोहिणीभचतुर्दश्या चतुर्दशमिते ध्रुवं । गुणस्योद्भावभावायां श्रितायां भुवनेश्वरैः ॥ ७० ॥ शमाढं

हिये । इसका तुम रञ्चमात्र भी विश्वास मत करो मैं जो कहूं उसे ठीक समझो तुम निश्चय समझो रात्रिमें यह स्त्री वालक और पशुओंको नियमसे खा लेगा । मेरे हितकारी वचनों पर तुम सव लोगोंको पूर्ण विश्वास करना चाहिये मैं मिथ्या नहीं बोल सकता क्योंकि इसके साथ मेरा कोई खास बैर नहीं है ॥५५-६७॥ दुष्ट विद्युद्दंष्ट्रके वचनोंका मूर्ख विद्याधरों पर प्रभाव पड़ गया मृत्युके भयसे जिनका चित्त चल विचल है ऐसे वे समस्त विद्याधर अपने २ शस्त्रोंको लेकर शीघ्र नगरसे निकल दिये । वे दुष्ट पास जाकर मुनिराज संजयन्तको एक साथ बड़े उत्साहसे नीचेसे ऊपर तक पत्थर लाठी मुक्के और अनेक शास्त्रोंसे एक साथ मारने लगे ॥ ६८—६९ ॥ रोहिणी (भाद्रपद मासकी ?) कृष्ण चतुर्दशी जो कि अनेक गुणोंके विकासका स्थान है और तीनों लोक के इन्द्र जिसकी पूजा करते हैं उस दिन मुनिराज संजयन्तने अपने परिणामोंमें उत्कृष्ट सीमाकी समता धारण कर ली एवं अनेक प्रकारके कष्टोंको अनेक प्रकारका आनन्द मान वे आनन्दमय हो गये ठीक ही है जिन पुरुषोंका चित्त धीर वीर है उनके लिये घोर आपत्ति भी उत्सव स्वरूप हो जाती है । परम पवित्र मुनिराज संजयन्तने जिसप्रकार काष्ठसे अग्नि जुदी कर दी जाती है कोष-खोलसे तलवार और दूधसे घी पृथक् कर दिया जाता है उस प्रकार अपनी आत्माको देहसे सर्वथा जुदा समझ लिया । दुष्ट विद्युद्दंष्ट्र द्वारा किये गये सारे उपसर्गको उन्होंने सह लिया । उपसर्गोंके

व्य समुत्पत्त्यानेकानन्दमयोऽभवत् । विघ्ना अप्युत्सार्यंते सतां निभृतचेतसां ॥ ७१ ॥ पृथग्भूतं चकाराशु स्वात्मानं देहतो मुनिः काष्ठादग्निमसिं कोषाद्ध्यात्मपरिवामलं ॥ ७२ ॥ तत्कृतं स सहिष्णुः सन् वज्रदेहो नगाकृतिः । निश्चलो निर्वृतिं यातः शुक्लध्यानेन शुद्धधीः ॥ ७३ ॥ अतींद्रियं परं पाप मायाकाय विवर्जितं । धर्मभावाद्योनित्यं कर्माभावादगोचरं ॥ ७४ ॥ यत्रैकस्मिन्ननन्तानि निष्ठंति सिद्धराशयः । सूक्ष्मादिगुणतोऽस्त्यात्मसूक्ष्मसूक्ष्मातिसूक्ष्मतः ॥ ७५ ॥ सूच्यग्रेऽनन्तजीवानां कंदे स्थितिरुदाहृता । नेऽनन्तानन्तभेदेन यदा स्थूलीभवंत्यहो ॥ ७६ ॥ पूरयित्वा तदा लोकाकाशं यांत्यग्रतो ध्रुवं । अतः सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च जीवतत्त्व निगद्यते ॥ ७७ ॥

समय उन्होंने अपना शरीर वज्रके समान कठोर बना लिया । पर्वतके समान वे निश्चल बने रहे जिससे विशुद्ध बुद्धिके धारक वे मुनिराज शुक्लध्यानके बलसे मोक्ष सुखके पात्र बन गये । उन पूज्य मुनिराजने ममता और शरीरसे रहित अतींद्रिय—मोक्ष पद प्राप्त कर लिया । पवित्र धर्मकी कृपासे वे जन्म जरा मरण रहित हो गये एवं कर्मोंके सर्वथा नष्ट होजानेसे वे तत्क्षण सिद्धालयमें जाकर विराज गये इसलिये सब लोगोंके नेत्रोंके अगोचर हो गये ॥ ७०—७४ ॥ सिद्धगण सूक्ष्म अव्याबाध जो निजी गुण हैं उनके स्थान एवं सूक्ष्म २ जो पुद्गलोंका भेद होता है उससे भी अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं इसलिये जहां पर एक सिद्ध आत्मा रहता है वहीं पर अनंतानंत सिद्ध रहते हैं । सुईकी अणीके समान कन्दमें अनन्तानन्त जीव रहते हैं ऐसा शास्त्रका उपदेश है । यदि वे अनन्तानन्त जीव स्थूल शरीर धारण करतें तो असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशमें भी न समाकर वे अलोकाकाश तक चले जा सकते हैं इसलिये जीव तत्त्वको सूक्ष्मातिसूक्ष्म बतलाया गया है । यदि जीव तत्त्वको सूक्ष्मातिसूक्ष्म न माना जायगा तब सिद्ध जीवोंको भी संख्यात मानना होगा । उससे मोक्ष स्थानके भर जानेसे मोक्षकी ही समाप्ति हो जायगी—किसीको भी मोक्ष न होगी एवं मोक्षको कारण स्वरूप धार्मिक क्रियाओंका सर्वथा नाश हो जायगा इसलिये कर्मोंके सर्वथा नष्ट हो

चेदन्यथा तदा सिद्धा भवेयुः संख्यिता यतः । तदा मुक्तिसमाप्तिः स्यात्प्रांतोऽभूद्धर्मकर्मणोः ॥७८॥ अतः सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च जीवतत्वं क्षयाद्विधेः। तदभावादथ संप्राप्यं शिवं सूक्ष्मं न जायते ॥ ७६ ॥ अथो निर्वाणकल्याणपूजां कर्तुं सुराधिपाः। समांदुर्वे गतः स्वस्व वाहनारूढ़मूर्तयः ॥ ८० ॥ चतुर्विधामरा नैर्दुर्गेयं गायंति सन्मुनेः। नमन्नागेन्द्र तदा स्वस्य भ्रात्राकृतिमचिंतयत् ॥ ८१ ॥ स्वाग्रजांगे क्षणोद्भू ततृतीयावगमः क्रुधा । अर्हीद्रो नागपाशेन ताम्नवन्धाखिलान् खगान् । ८२ । महाक्रोधारुणीभूतलोचनो धरणो जगौ । तान् दुष्टानिति वाणोग्रैर्वचोभिस्तन्नयप्रदैः ॥ ८३ ॥ भो भो गतधियः खेटा युष्माभिर्मत्सहोदरः। निर्मदो निर्मलः शांतो ध्यानस्थो हि कथं

जानेसे स्वभावसे ही जीवतत्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म है परन्तु मोक्ष स्थान छोटा नहीं हो सकता किंतु कितने भी मुक्त जीव क्यों न जाय उन सबोंका उसमें समावेश हो जाता है ॥ ७५—७९ ॥

मुनिराज संजयन्तने घोर उपसर्ग सहकर जब मोक्ष प्राप्त कर ली उस समय अपने २ वाहनों पर चढकर शीघ्र ही समस्त देव उनके निर्वाण कल्याणकी पूजाके लिये आ गये। मुनिराज संजयन्त-के निर्वाण कल्याणकी खुशीमें चारो निकायोंके देव आनन्द नृत्य करने लगे। मुनिराज संजयन्तके गुणोंका गान करने लगे। मुनिराज सञ्जयन्तके निर्वाण उत्सवमें उनके छोटे भाई मुनिराज जयंतका जीव नाग कुमारोंका इन्द्र भी आया था वह वार २ अपने बड़े भाईकी मूर्तिका स्मरण करने लगा। अवधि ज्ञानके वलसे उसे इस बातका भी पता लग गया कि विद्युद्दंष्ट्र आदि दुष्ट विद्याधरोंने मुनिराज सञ्जयन्तको विशेष त्रास दिया है जिससे उसका हृदय मारे क्रोधके भवल गया। शीघ्र ही उसने नाग पाशसे समस्त विद्याधरोंको बांध लिया। प्रवल क्रोधसे उसके दोनों नेत्र लाल हो गये एवं महा भयप्रद वाण स्वरूप वचनोंसे समस्त विद्याधरोंको ताड़ता हुआ वह इस प्रकार कहने लगा—

रे दुष्ट विद्याधरो ! मेरे बड़े भाई संजयन्त मुनि अहङ्कार रहित निर्मल शांत और दृढ ध्यानी थे तुम सबोंने मिलकर उन्हें क्यों मारा ! तुम लोग शीघ्र कहो तुम्हारा उन्होंने क्या अपराध किया

हतः ॥ ८४॥ कोऽपराधः कृतस्तेन युष्माकं वदत त्वरा। यूयं कृतापराधा मे रे रे विद्याधराधमाः ।८५। इदानीं मारयिष्यामि मत्सहोदर-घातकान्। सर्वान् वियद्गतान् नागपाशवज्रप्रहारतः ॥ ८६ ॥ ध्वांक्षहन्तृनरं ध्वाक्षाश्चञ्चुभिर्हंति कारवाः। प्रभवो मत्समा ये तु ते सहंते कथं द्विषः ॥ ८७ ॥ त्रासयन् विषभृन्नाथस्तान् कुकर्मकरान् शठान्। ततर्केति चिरं चित्ते क्षिपामि क्षारतोयधौ ॥ ८८। एतानब्धौ विभागे वा पर्वतस्य क्षिपामि स्वित्। अपि पुरीमाशु वज्रेण दिक्षु दद्यां वलिं बलात् ॥८९॥अन्यथा हि यथा भ्राता हतः शस्त्रैर्दुरात्मभिः तथाहं शस्त्रजालेन खण्डं खण्डं करोम्यमीन् ॥ ९० ॥ विक्लवाङ्गास्तदा खेटा अब्रुवन् लेलिहानपं। स्वस्थीभूत्वा कृपानाथ! शृणुताद्वृत्त

था। दुष्टो! तुम लोगोंने मेरे भाईको मारकर मेरा घोर अपराध किया है। तुम समस्त विद्याधर मेरे पूज्य भाईके मारनेवाले दुष्ट हो। तुम्हें नागपाशके वज्र प्रहारसे शीघ्र हो मारूंगा इसमें कोई संशय नहीं॥ ८०—८६ ॥ एक काकको यदि कोई पुरुष मार देता है तो उस मारनेवालेको अन्य काक पूर्ण कोलाहल मचाकर अपनी चोंचोंके घातोंसे जब मार डालते हैं तब जो पुरुष मेरे समान समर्थ हैं वे कैसे वैरियोंको सह सकते हैं! वे तो कभी वैरियोंसे बदला चुकाये विना मान नहीं सकते। बस इस प्रकार उन दुष्ट कार्यके करनेवाले समस्त विद्याधरोंको नाग कुमारोंके इन्द्रने बेहद डाटा एवं उन दुष्टोंके विषयमें वह इसप्रकार विचार करने लगा—

इन दुष्टोंने अकारण मुनिराज संजयन्तको दुखाकर तीव्र अपराध किया है ऐसे दुष्टोंको क्षमा कर देना महा पाप है इसलिये उस अपराधके बदलेमें इन्हें क्या मैं किसी खारे समुद्रमें जाकर फैक दूं। वा वज्र शस्त्रसे चारो दिशाओंमें इनकी वलि प्रदान कर दूं। अथवा इन दुष्टोंने जिसप्रकार मेरे भाईको शस्त्रोंसे मारा है मैं भी उसी प्रकार शस्त्रोंसे इनके खण्ड खण्ड कर दूं। नागेंद्र कुमारका यह प्रवल क्रोध देखकर समस्त अपराधी विद्याधर थर थर कांपने लगे एवं चाटुमय वचनोंमें इसप्रकार उन्होंने नगेन्द्र कुमारसे कहा—

माहितः ॥ ९१ ॥ अयं दोषोऽस्ति नास्माकं मृदूनां धर्मशालिनां। प्रतारिता वयं मुग्धा विद्युद्दंष्ट्रेण पापिना ॥ ९२ ॥ पुरस्तात्तव की यतो वयं क्षुद्राः खचारिणः। गण्डशैला यथा मेरोः पतंगस्योडुवत्प्रभो ! ॥ ९३ ॥ देवधिष्ण्यं विशार्दं वा विकदल्यथ वाटिका। कदली हीना न भात्येव न्यायहीना नरस्तथा ॥ ९४॥ अतो देव विचार्याशु न्यायमार्गेण धर्मवित्। सदोषो हन्यतां हन्त न्यायवन्तो हि पण्डिताः

कृपानाथ ! आप शांत हुजिये और आदिसे अन्त तक सारा यथार्थ वृत्तांत सुन लीजिये ॥८७-॥ ९१ ॥ हम लोग धर्म मार्गके अनुयायी और कोमल परिणामी हैं। यह जो वलवान अनर्थ वन पड़ा है इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है। हम लोगोमेंसे एक विद्युद्दंष्ट्र नामका महा पापी विद्याधर है उसीकी यह करतूत है--उसीके वचनों पर विश्वास कर हमसे यह निंदित कार्य वन गया है। स्वामिन् ! जिस प्रकार विशाल मेरु पर्वतके सामने गण्डशैल—स्थूल पत्थरोंके धारक पर्वत कोई चीज नहीं। तथा सूर्य और चन्द्रमाके सामने नक्षत्र कोई चीज नहीं उसी प्रकार हम क्षुद्र विद्याधर आपके सामने क्या चीज हैं ? प्रभो ! जिस प्रकार शिखरके विना मन्दिर शोभा नहीं पाता कदली (केला) के वृक्षोंसे रहित बगीचा जिस प्रकार कदली वृक्षोंके विना शोभा नहीं धारण करता उसी प्रकार जो मनुष्य न्यायहीन है-न्याय पूर्वक कार्य नहीं करता वह भी शोभित नहीं होता ॥ ९२—९४ ॥ अतएव हे देव ! आप धर्म मार्गके अनुयायी हैं आपको चाहिये कि आप न्याय—पूर्वक विचार कर जो दोषी हो उसे ही मारें और दण्ड दें क्योंकि आप पूर्ण विज्ञ हैं और विज्ञ पुरुष जितना भी कार्य करते हैं न्याय पूर्वक कार्य ही करते हैं। जो मनुष्य मदोन्मत्त हो अपनी इच्छानुसार न्यायमार्गके प्रतिकूल कार्य करते हैं संसारमें उनके विशिष्ट वलकी प्रशंसा नहीं होती ठीक ही है कर्मोंकी निर्जरा जो भी होती है वह निरंकुश होती है अर्थात् उत्तम वल प्राप्त कर जो न्याय पूर्वक कार्य करते हैं उन्हींको वलवान माना जाता है किंतु वलवान होकर भी अन्याय पूर्वक

॥ ९५ ॥ यथारुचि ततः कुर्याः प्रोन्मत्तत्वदमार्गतः । नैवास्य सह्वलं चात्र निर्जरा हि निरंकुशाः ॥ ९६ ॥ तुष्टीभूयमितो नागराजस्तेषां वचोरमैः । मुमोच खेचरान्नार्यान् विद्युद्दंष्ट्रमबन्धयत् ॥ ९७ ॥ पुत्रस्त्रीभ्रातृदायादसंयुतं तं पयोधरे । सक्षितुं यतोऽहीन्द्रस्तावदन्य कथांतः ॥ ९८ ॥ आदित्याभः सुरोत्तिः प्राहेति सात्त्विकं वचः । अनेनाकारि यो दोषः क्षम्यतामाग्रहान्मम ॥ ९९ ॥ त्वादृशां महतां नागेंद्र क्षुद्रे कोपो न शस्यते । गोमायु हन्त न क्रूरः कृतेर्ष्यं चापि केसरी ॥ १०० ॥ पुरा पुरुजिनेंद्रस्य काले विद्याधरेशिनां । विद्या

कार्य करनेवालोंको बलवान नहीं माना जाता ॥ ९५—९६ ॥ विद्याधरोंके इसप्रकार शांतिमय दीन वचन सुन नागेन्द्र कुमार क्रोधरहित संतुष्ट हो गया। जितने भी निरपराध आर्य विद्याधर थे नागेन्द्र कुमारने उन्हें क्षमा कर छोड़ दिया। अपराधी विद्युद्दंष्ट्रको कसकर बांध लिया एवं पुत्र स्त्री भाई और कुटम्बियोंके साथ उसे समुद्रमें डालनेके लिये उद्यत हो गया। नागेन्द्रकुमार जिस समय यह कार्य करनेकी चेष्टा कर रहा था उस समय आदित्याभ नामके नागकुमारको दया आगई और वह शांत वचनोंमें इसप्रकार कहने लगा—

यद्यपि इस विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरने आपका घोर अपराध किया है तथापि मेरे आग्रहसे तुम्हें इसे क्षमा कर देना चाहिये। प्रिय नागेंद्र! आप एक महान पुरुष हो आप सरीखे महान पुरुषोंको क्षुद्र पुरुषों पर कोप करना शोभा नहीं पाता यह तुम अच्छीतरह जानते हो कि क्षुद्र शृगाल क्रूर केसरीसे कितनी भी ईर्षा क्यों न करे तो भी वह क्रूर सिंह उसे कभी नहीं मारता। भाई! भगवान ऋषभ देवके समयमें तुम्हारे वंशजोंने विद्याधर राजाओंको अनेक प्रकारकी विद्यायें दीं थीं उसी समय विद्याधर वंशका संसारमें उदय हुआ था। प्रिय नागेंद्र! यह संसार प्रसिद्ध बात है कि जिस मनुष्यने विष वृक्षको भी अच्छी तरह दूधसे सींचकर बढाया है वह चाहें वज्र मूढ भी हो तो भी उसे स्वयं नहीं छेद सकता तुम तो एक महान और विद्वान पुरुष हो तुम अपने वंशजों द्वारा नि-

'द-। ध्ठड्'इ्यै'ईश्ोऽस्य नि'मे मुदा ॥१०१॥ पूर्वं दुग्धैः प्रसिंच्यैव सम्वर्ध्यं विषभूरुहं। उपक्रमेत को मूढः छेत्तुं भो लेलिहानप ! ॥ ॥ १०२ ॥ इत्युक्तस्तेन नागेन्द्रः प्रत्युवाच रविप्रभ । पापीयसोऽस्य दुर्वृत्तं त्वया ज्ञातं न विद्यते ॥ १०३ ॥ मदग्रजं तपोभारभूषितांगं दयानिधिं । अयं बिनापराधेन संजयंतममीमरत् १०४ ॥ अतोऽयं मम हंतव्यो न निषेध्यं त्वयामर । मुमुक्षेर्भ्रातृहंतारं यः स स्यात्पाप भाजनं ॥ १०५ ॥ आदित्याभस्तदा प्राह वैयर्थ्यं याचितो मया याञ्चाभंगे गतो मानो मानभङ्गे तृणं पुमान् ॥ १०६ ॥ मानहीना नरा लोके निंदनीयाः पदे पदे । किञ्चित्कर्तुं मशक्तत्वादलोकपुरुषोपमाः ॥ १०७ ॥ त्रिमानमानवं पद्मा विजहात्येव दूरतः । शांतार्चिर्वं प्रदीपं

मौपित वंशका कैसे संहार कर सकोगे ? सूर्यके समान देदीप्यमान आदित्याभ नामक नाग कुमार की यह बात सुनकर मुनिराज जयंतके जीव नागेंद्रने कहा—

भाई ! तुम इस अतिशय पापी विद्युद्दंष्ट्रका क्रूर कर्म जानते नहीं हो इसलिये इसे दयाका पात्र समझ रहे हो मेरे बड़े भाई संजयन्त परम तपस्वी थे और दयाके सागर निरपराध थे इस दुष्टने विना अपराध उन्हें मार डाला है इसलिये अपना भाईका वदला चुकानेके लिये मुझे इसे मार-डालना ही ठीक होगा तुम्हें इस वातमें किसी प्रकारकी वाधा नहीं डालना चाहिये क्योंकि यह नीति है कि जो अपने भाईके मारने वालेको क्षमा कर देता है—उससे वदला नहीं लेता वह संसारमें पापी माना जाता है ॥ ९७—१०५ ॥ जयंतके जीव नागेन्द्रकी यह बात सुन आदित्याभ नामका नागकुमार अपने मनमें विचारने लगा—

मैंने जो विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरकी रक्षाके लिये याचना की वह ठीक नहीं हुआ क्योंकि मुनिराज जयंतके जीव नागेंद्रने वह मेरी याचना स्वीकार नहीं की। यह नियम है जहांपर याचनाका भंग है वहां पर सन्मानका भी भङ्ग है और जिस मनुष्यका सन्मान नहीं वह मनुष्य तृणके वरावर है। संसारमें यह बात स्पष्टरूपसे दीख पड़ती है कि जिन पुरुषोंका सन्मान नहीं होता वे पद २ पर

बा प्रकाशोऽतितरां गुरुः ॥ १०८ ॥ अतिरेको हि दर्पस्य गतमानं नरं त्यजेत् । प्रतिमेवाधियं नागेंद्र योशं मङ्गलदेवता ॥ १०६ ॥ वृणुते मानिनं मा च संभ्रमेण गुरुं गुरुं । विनेयः कुलजारामा सस्नेहाजिह्वितं गुरुं ॥ ११० ॥ पुरस्तात्तव नागेंद्र ! याञ्चाभंगोऽपि मे सुखः । अधमे लब्धकामा नु वरं शिष्टे विपर्ययः ॥ १११ ॥ इति शासदहिपतिमाशु स्तकरकीतिनामकः । अम्बरगफणिपयोः परममयिष्यति

निंदा जन्य दुःख भोगते रहते हैं। वे संसारमें कुछ महत्त्व पूर्ण कार्य भी नहीं कर सकते इसलिये वे मिट्टी आदिके वने पुरुषके समान गिने जाते हैं। जिस प्रकार लो रहित दीपकको प्रकाश छोड़ देता है उसी प्रकार जो पुरुष सन्मान रहित हैं लक्ष्मी उन्हें छोड़ देती है मानहीन पुरुषोंपर उसका प्रेम नहीं होता ॥ १०६—१०८ ॥ जिस प्रकार निर्बुद्धि पुरुषोंको प्रतिभा-उत्तम वुद्धि छोड़ देती है और भाग्यहीन पुरुषोंको मङ्गल देवता—लक्ष्मी आदि छोड़कर चली जाती हैं उसी प्रकार मानहीन पुरुषोंको अभिमान भी छोड़ देता है। क्रोधी भी सन्माननीय गुरुको जिस प्रकार शिष्य मानता है। संमाननीय पतिको जिस प्रकार स्त्री मानती है उसी प्रकार सम्माननीय महत्त्वशाली पुरुषको लक्ष्मी वरती है। चण एक इस प्रकार विचार कर आदित्याभ नामक कुमारने अपने स्वामी नागेंद्रसे कहा-

प्रिय नागेंद्र ! यद्यपि तुम्हारे सामने मेरी याचनाका भङ्ग हुआ है तथापि वह मेरे लिये सुखदायी है क्योंकि जो अधम पुरुष हैं उनमें यदि याचना पूरी भी हो जाय तव भी ठीक नहीं किन्तु जो पुरुष महान हैं उनसें वह निष्फल भी चली जाय तव भी ठीक है आप एक उत्तम पुरुष हो मेरी याचना आपने स्वीकार नहीं की तव भी वह मेरे लिये कल्याणकारी है॥१०८-११०॥इसप्रकार जिस आदित्याभ नामके नागकुमारने जयन्तके जीव नागेन्द्रके वचनोंकी पुष्टिकी वही आदित्याभ नाग कुमार अपने उत्तम उपदेशसे विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र और धरणेंद्रके कल्याणोंके करनेवाला होगा ।१११।

विधाय शत्करं ॥ ११२ ॥ महातपा यः परमेण तेजसा । जगाम सिद्धिं सुरुतोदयान्मुनिः । सुरासुरैर्मार्चितपदकञ्जः सदा । स पातु भव्यान् जिनराजसेवितः ॥ ११३ ॥

इत्यार्षे श्रीवृहद्विमलनाथपुराणे भ० रत्नभूषणाम्नायालङ्कारविद्वज्जनचातुरीसमुद्रचन्द्रायमाणोभयभाषाचक्रवर्तिहर्ष वीरकातनूजब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममंगलदाससाहाय्यसापेक्षे वैजयंतसंजयन्तजयंतदीक्षाग्रहणसंजयंतोपसर्गशिवप्राप्तिजयंतधरणत्वप्राप्तितदागमादित्याभदेवसमागमा नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

जो मुनिराज संजयन्त दिव्य तेजके धारक परम तपस्वी थे । तीव्र पुण्यके उदयसे जो मोक्ष लक्ष्मीके पात्र बने जिनके चरणोंको बड़े २ इन्द्र पूजते हैं और बड़े २ मुनि जिनकी आराधना करते हैं वे मुनिराज भव्य जीवोंकी रक्षा करें ॥ ११ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकार स्वरूप विद्वानोंके विद्वत्तारूपी समुद्रके लिये चंद्रमा समान उभय भाषाके चक्रवर्ती हर्षवारिकाके पुत्र भाई ब्रह्ममंगल दासकी सहायता पूर्वक ब्रह्म कृष्णदास विरचित बृहत् विमलनाथ पुराणमें वैजयंत संजयंत और जयतका दीक्षा ग्रहण संजयंतको घोर उपसर्ग और मोक्ष प्राप्ति जयतका धरणेंद्र होना और आदित्याभ नाग कुमारका समागम वर्णन करनेवाला छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवां सर्ग ।

श्रीमज्जिनं जगन्नाथं मादं पापच्छिदं शदं । यं स्तौतिस्म देवालिस्तं वाये परमेश्वरं ॥ १ ॥ अथादित्यप्रभोऽहीशं प्रोवाचेति

जो भगवान जिनेन्द्र जगतके नाथ हैं । लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं । पापोंके नाशक और कल्याणके देनेवाले हैं और जिनकी स्तुति बड़े २ इन्द्र करते हैं उन भगवान जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ महान ऋद्धिके धारक आदित्याभ नागकुमारने अपने मित्र नागेंद्रसे कहा—

महर्द्धिकं । शृणु नागाधिराज ! त्वं मद्वचो रीतिसंयुतं ॥ २ ॥ किं करोपि वृथा वैरं शल्यवद्भवदुःखदं । तस्मान्नश्यन्ति जीवाश्च स्यंति किं नो परस्परं ॥ ३ ॥ विद्युद्दंष्ट्रो हि ते भ्राता न जातः संसृतौ भ्रमन् । को बन्धुः को न वा बन्धुः को हितश्चाहितो हि कः ॥ ४ ॥ कस्तातः को न वा तातः सवित्री का मता न का । कः स्वीयः को न वा स्वीयः जातौ जातौ वदाहिराट् ॥५॥ सर्वे परस्परं जीवाः सगोत्राः सन्ति वस्तुतः । शत्रवोऽपि तथा सर्वे मातृपितृसहोदराः ॥ ६ ॥ पूर्वजन्मनि ते भ्राता संजयंतो महामुनिः । अदण्डयन्महाक्रोधाद्विद्युद्दंष्ट्रं कृतागसं ॥ ७ ॥ ततो वैरादयं खेटो भूत्वा जातिस्मरोऽधुना । महादुःखं चकारोच्चैः संजयंतस्य सन्मुनेः ॥ ८ ॥ भ्रातरं तव

प्रिय नागेंद्र ! तुम मेरे न्यायपूर्वक वचनोंको सुनो तुम जो विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रके साथ वैर बांध रहे हो वह वृथा है क्योंकि वैर भव भवमें शल्यके समान दुःख देनेवाला है। इसी वैरके कारण जीव नष्ट होते रहते हैं और आपसमें एक दूसरेको छेदनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। संसारमें भ्रमण करता हुआ यह विद्युद्दंष्ट्र क्या तुम्हारा भाई किसी भवमें नहीं हुआ ? अनेक वार हो चुका है, क्योंकि संसारमें भ्रमण करते हुए इस जीवका जन्म जन्ममें कौन तो बंधु नहीं हुआ और कौन अबंधु, वैरी-नहीं हुआ। कौन हितकारी नहीं हुआ और कौन अहितकारी नहीं हुआ। कौन तात नहीं हुआ और कौन वेतात नहीं हुआ। कौन माता नहीं हुई और कौन अमाता-स्त्री आदि नहीं हुई। एवं कौन अपना नहीं हुआ और कौन पराया नहीं हुआ ?। भाई नागेंद्र ! संसारमें भ्रमण करते हुए ये सव जीव नियमसे अपने सगे हो चुके हैं। तथा जो इस समय शत्रु दीख पड़ते हैं वे भी माता पिता और भाई हो चुके हैं ॥ २—६ ॥ पूर्व जन्ममें तुम्हारे भाई संजयन्त मुनिराजने अपराधी विद्युद्दंष्ट्रको क्रुद्ध हो दण्ड दिया था उसी वैरसे मरकर यह विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर हुआ। मुनिराज सञ्जयन्तको देखकर इसे पूर्व जन्मका स्मरण हो गया उसीसे इसने मुनिराज सञ्जयन्तको विशेप कष्ट पहुंचाया ॥ ७—८ ॥ यह पापी विद्युद्दंष्ट्र चार जन्मोंसे वार वार तुम्हारे भाईका वैरी चला आया है उसी

पापोऽयं प्राक्जन्मचतुष्टये। महावैरानुवंधेन लोकांतरमजीगमत् ॥ ९ ॥ अस्मिन्भवे शुभं मन्ये विद्युद्दंष्ट्रं खरं यतः। सुसोढं तत्कृतं विघ्नं मुक्तिं यातो महामुनिः ॥ १० ॥ केनचित्सांहसापायोऽकारि तेन गुणोऽजनि। तं गुणं धीधनाः सन्तो मन्यंते नापकारकं ।११। परिभूतिमितो धीमान् विकृतिं नैव गच्छति। चन्दनो वा भिदां प्राप्तश्चंदते पुरतः स्थितान्। १२। खलो विव्याध यं साधुं जिह्मोभवति सोऽपि न। दह्यमानोऽ गुरुः साधु प्रकाशयति सद्गुणं ॥ १३ ॥ कोविद्वानां मनिर्जातु प्राणांते विकार न। इक्षुर्निष्पोड्यमानोऽपि

महा वैरके सम्बन्धसे इसने तुम्हारे भाईको मारा है ॥ ९ ॥ मैं तो इस भवमें विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रको मुनिराज सञ्जयन्तका परममित्र मानता हूं क्योंकि इसके द्वारा किये गये उपसर्गको सहकर मुनिराज सञ्जयन्तने मोक्ष स्थान प्राप्त कर लिया ॥ १० ॥ जिस किसी भी पापीने किसीको कष्ट पहुंचाया है वह कष्ट उसके लिये गुणस्वरूप ही हुआ है इसलिये विद्वान लोग उस कष्टको गुण ही मानते हैं दुःख नहीं मानते ॥ ११ ॥ जो पुरुष विद्वान हैं संसारकी वास्तविक स्थितिके जानकार हैं उन्हें कितना भी कष्ट क्यों न पहुंचाया जाय वे उस कष्टसे कष्टायमान नहीं होते—विकृत न होकर उनका स्वभाव ज्योंका त्यों बना रहता है। जिस तरह कि चंदनको कितना भी काटा छेदा जाय तब भी वह अपना सुगन्धित स्वभाव नहीं छोड़ता-जैसा उसे छेदा जाता है वैसा ही वह पासमें खड़े रहनेवालोंके लिये महकता चला जाता है। सज्जनोंका स्वभावभी चन्दन सरीखा होता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अगरको कितना भी जलाया जाय वह सुगन्धि ही छोड़ता जाता है उसी प्रकार दुष्ट पुरुष मुनियोंको भले ही मार डाले तथापि वे मारनेवाले पर क्रोध नहीं करते वे अपने परिणामोंमें समता भाव ही रखते हैं ॥ १३ ॥ जिस प्रकार ईखके पेडको जितना२ पेरा जाता है वह मिठास ही छोड़ता चला जाता है—उसमें कोई विकार नही उत्पन्न होता उसी प्रकार जो पुरुष विद्वान हैं दुष्टोंसे दुःखित होनेपर भी उनकी बुद्धिमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता वे

माधुर्यं क्षरति ध्रुवं ॥ १४ ॥ अहो आस्तामतो नागेट् वैरेण गुणवारिधे ! । पूर्ववैरोत्थदुःखस्य वद केन प्रतिक्रिया ॥ १५ ॥ इत्याकर्ण्यो रगाधीशः प्राहादित्यप्रभं सुरं। कथ्यतां सा कथा देव । वैरसंबन्धयादिनो ॥ १६ ॥ तद्वोवाचेति सूर्याभः शृणु त्वं फणिशेखर ! । अमुष्मिन् वैरमुत्सृज्य तत्प्रपंचं वदाम्यहं ॥ १७ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे विशाले लक्षयोजने. । भारतं वर्षमाभाति कार्मुकाकृतिमादधत् ॥ १८ ॥ रराजेति पुरं तत्र नानाशोभासमन्वितं । पद्ममालयसुराधीशैरिष्टं सिंहपुरं पुरं ॥ १९ ॥ सप्तभूमिगृहा यत्र सविलासाश्च योषितः । रक्तोष्ठ्यः पीवरस्तन्यः सहासा भांति भूरिशः ॥२०॥ यत्र दंडोऽस्ति चैत्येषु भ्रांतिरर्हत्प्रदक्षिणे । काठिन्यं हृदये स्त्रीणां

शांत ही वने रहते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये भाई नागेन्द्र ! तुम्हारे लिये मेरा यही हितकारी कहना है कि संसारमें तुम एक गुणशाली व्यक्ति कहे जाते हो। विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र के साथ तुम्हें वैर न बांधना चाहिये। भाई ! तुम्हीं सोच लो पूर्व भवमें जो वैर वन्धहो चुका है उसका क्या प्रतीकार हो सकता है ? वह तो वँध गया सो वंध ही गया ॥ १५ ॥ नागकुमार आदित्याभकी यह वात सुन धरणेंद्रका क्रोध कुछ शांत पड़ गया और विद्युद्दंष्ट्र का मुनिराज सञ्जयंतके साथ कैसें वैर वंधा यह कथा जाननेकी उसके मनमें लालसा होगई इसलिये वह आदित्याभसे इसप्रकार कहने लगा—

मुनिराज सञ्जयन्त और विद्युद्दंष्ट्र के आपसो वैरसे संवन्ध रखनेवालो कथा कृपाकर कहिये ! उत्तरमें देव आदित्याभने कहा प्रिय नागराज ! मैं सारी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूं। विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र के साथ वैर छोड़कर तुम आनन्द पूर्वक सुनो—

एक लाख योजनके चौड़े इसी जम्बू द्वीपमें एक भरत नामका क्षेत्र है जो कि धनुषकी आकृतिको धारण करने वाला महा शोभायमान जान पड़ता है। प्रसिद्ध भरतक्षेत्रके अन्दर एक सिंहपुर नामका नगर है जोकि अनेक प्रकारकी शोभाओंसे व्याप्त अत्यन्त शोभायमान है। लक्ष्मीके स्थान बड़े २ देवेंद्रोंको प्यारा है और उत्तम है ॥१६-१९॥ सिंहपुर नगरके अन्दर उस समय सतखंडे

ताडनं कर्मपंकजे ॥ २१ ॥ नास्तिक्यं सौगतागारे विरोधोऽधरपल्लवे । जघने चापि दन्तैर्वा करजैर्विद्यते क्वचः ॥ २२ ॥ तत्र राजा बभू- वारिभामालोचनतोयकृत् । सिंहसेनो महासैन्यः सिंहभूरिपराक्रमः ॥ २३ ॥ चित्रभानुसुधाभानुचन्द्रभानुप्रभाधिकः । सासिश्च भे रवे नेव कातरः करुणालयः ॥ २४ । युग्म । अत्रोकरत्परं धर्ममपोपूजज्जगद्गुरुं । अदीदहद्विपां देशानर्थिभ्योऽदोदिशद्वसु ॥ २५ ॥

मकान शोभायमान थे एवं लाल२ ओठोंकी धारक स्थूल स्तनोंसे व्याप्त सदा हंसनेवाली और विलासरस परिपूर्ण स्त्रियां थीं। सिंहपुर नगरमें सारी प्रजा सदाचारिणी थी इसलिये राजाकी ओरसे किसी प्रकारके दण्डका विधान न था। यदि दण्ड था तो चैत्यालयोंके शिखिर भागोपर था जिसपर कि ध्वजा फहरातीं थीं। वहांपर किसी बातमें भ्रांति न थी—सब लोगोंको ठीकरूपसे पदार्थोंका निश्चय था। यदि भ्रांति थी तो भगवानकी प्रदक्षिणाओंमें थी—लोग घूम २ कर भगवान जिनेन्द्रकी प्रदक्षिणा करते थे। कठिनता वहांपर स्त्रियोंके स्तनोंमें ही थी अन्य कहीं किसी मनुष्यके हृदयमें कठिनता न थी—सब लोग सरलपरिणामी थे। कर्मपंकजके सिवाय वहांपर किसीको मारने पीटने- की प्रथा न थी। उस सिंह पुरमें नास्तिकता बौद्धमन्दिरोंकी थी—कोई भी बौद्धधर्मका अनुयायी न होनेके कारण किसी भी बुद्ध मन्दिरकी वहांपर सत्ता न थी परन्तु वहांपर लोग नास्तिक न थे— पर लोक आदि पदार्थों पर पूर्ण विश्वास रखनेवाले थे। वहांपर दांत वा नखोंका जघन और अधर पल्लवोंके ही साथ विरोध था आपसमें किसीके साथ कोई विरोध नहीं रखता था ॥ २०—२२ ॥ सिंहपुरका रक्षण करने वाला राजा सिंहसेन था जो कि शत्रुओंकी स्त्रियोंके नेत्रोंसे आंसू वहाने वाला था। विशाल सेनाका स्वामी था और सिंहके समान प्रबल पराक्रमी था। वह राजा सिंहसेन चित्र भानु सुधा भानु और चन्द्रमाओंसे भी अधिक प्रभाका धारक था। संग्राममें शत्रुओंको पीठ न दिखानेके कारण वह बलवान खड्गधारी था। धर्मका आचरण करता था। तीन जगतके गुरुकी पूजा

जज्ञे तस्यैं महादेवी रामदत्तेति विश्रुता । भोगप्रिया समांगत्वान्नानाभोगासनोत्सुका: ॥ २६ ॥ सती प्रियानुकूलत्वात्कामिनीव मनोभुवः । रूपरंभोन्नतस्थूलवृत्तनैतंबमंथरा ॥२७॥ युग्मं । मंत्री तस्य गुणागारो वेदविद्ब्राह्मणोत्तमः । श्रीभूतीत्यभिधो मान्यो लोकानां सत्यवादया ॥ २८ ॥ अन्यदा स चकारेमां प्रतिज्ञां कैतवादिव । अवश्यं चेदलीकं तदकरिष्यं गलच्छिदां ॥ २९ ॥ लोकेऽथाभूत्तदाख्यातः पत्तने राजसंसदि । कंठासिपुत्रको भूत्वा स्वल्पभाषी च तिष्ठति ।३०। नामधेयं तदा दत्तं द्वितीयं तस्य हर्षतः । सिंहसेनेन सेनेत

करता था शत्रुओंके देशोंको राखमें मिलाता था और याचकोंको विशिष्ट धन प्रदान करता था ॥ २३—२५ ॥ राजा सिंहसेनकी स्त्रीका नाम रामदत्ता था जो कि अपने गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध थी । भोगोंको प्यारा मानती थी और भोग भोगनेके जो भी आसन है उनमें सदा लालायित रहती थी । वह रानी रामदत्ता अपने पतिके अनुकूल चेष्टा करनेवाली थी इसलिये सती थी । सुन्दरतामें कामदेवकी स्त्री रति थी । रूपसे रम्भाकी उपमा धारण करती थी एवं उन्नत स्थूल और गोलाकार नितम्बोंसे शोभायमान होनेके कारण मन्द मंदरूपसे गमन करने वाली थी ॥ २६—२७ ॥ राजा सिंहसेनके मन्त्रीका नाम श्रीभूति था जो कि अनेक गुणोंका भण्डार था । वेदोंका जानकार था । जातिका ब्राह्मण था और सत्य बोलनेके कारण समस्त लोकका आदरणीय था ॥ २८ ॥ एक दिन श्रीभूतिने छलसे यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं झूठ बोलूंगा तो अपना गला छेद डालूंगा ॥ २८—२९ ॥ अपने सत्यवक्तापनेके कारण वह श्रीभूति समस्तलोक नगर और राजसभामें प्रख्यात था एवं वह अपनी की हुई प्रतिज्ञाकी दृढ़ता बतलाकर बहुत थोड़ा बोलने वाला होकर रहने लगा ॥ ३० ॥ श्रीभूतिकी यह कड़ी प्रतिज्ञा सुन राजा सिंहसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और लक्ष्मीके भण्डार राजा सिंहसेनने हर्ष पूर्वक मन्त्री श्रीभूतिका नाम सत्यघोष रखदिया ॥ ३१ ॥

सत्यघोप इति ध्रुवं ।३१। अथास्ते पद्मखंडाख्यं पुरुहूतपुरोपमं । पत्तनं नयनानंदि सदानन्दभरैभृतं ॥ ३२॥ तत्रोवास महाश्रेष्ठी सुदत्ता ख्योगुणाधिकः । धार्मिकाणां धुरि स्थायी विनेयानां यथा गुरुः ॥ ३३ ॥ सुमित्रा भामिनी तस्य भामिनीव मनोभुवः । भ्रूभङ्गकार्मुकक्षिप्तवाणाहतसुरान् व्यधात् ॥ ३४ ॥ भद्रमित्रस्तयोरासीत् सुतः शक्रसुतोपमः । अधीताखिलसद्विद्यो युवा भोगपुरन्दरः ॥ ३५ ॥ एकदा स्वपुरोद्याने रन्तुमिभ्यसुता ययुः । तद्वासी भद्रमित्राख्यस्तैरमा तद्वनं गतः ॥ ३६ ॥ समयं प्राप्य ते प्रोचुर्भद्रमित्रमिति स्फुटं । मित्र ! यस्तु वणिक्पुत्रो व्यवसायेन जीवति ॥ ३७ ॥ उपायेन विनागारे त्वं किं तिष्ठसि सर्वदा । साकमस्माभिरेतो हि रत्नद्वीपं यियासुभिः ॥ ३८ ॥ जातेनानर्जिना मित्र ! पुत्रेणार्थक्षयकृता । किं भवेन्मुक्तिभूमनपसा सकुपेन च ॥ ३९ ॥ जहासोच्चैस्तदा

इसी पृथ्वीपर एक पद्मखण्ड नामका नगर है जो कि अपनी शोभासे इन्द्रपुरीकी समता धारण करता है। सदा नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है और सदा नाना प्रकारके आनन्दोंसे व्याप्त रहता है। पद्मखण्ड नगरमें एक सुदत्त नामका सेठ रहता था जो कि विपुल संपत्तिका स्वामी था। अनेक गुणोंका भण्डार था। एवं जिसप्रकार शिष्योंके लिये शिक्षा देनेवाला गुरु होता है उसीप्रकार वह धर्मात्मा पुरुषोंका गुरु स्वरूप था ॥ ३२—३३ ॥ सेठ सुदत्तकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था जोकि अपनी अद्वितीय सुन्दरतामें कामदेवकी स्त्री रतिके समान जान पड़ती थी और भृकुटीरूपी धनुष पर कटाक्ष रूपी बाण चढ़ाकर वह बड़े २ देवोंके चित्त व्यथित करनेवाली थी॥३४॥ सेठसुदत्तके सेठानी सुमित्रासे उत्पन्न पुत्र भद्रमित्र था जो कि सुन्दरतामें इन्द्रपुत्रके समान जान पड़ता था, समस्त विद्याओंका पारगामी था। युवा और पूर्णरूपसे भोग भोगने वाला था। एक दिनकी बात है कि नगर निवासी समस्त सेठोंके पुत्र सिंहपुरके उद्यानमें क्रीडा करनेके लिये गये। कुमार भद्रमित्र भी उनके साथ क्रीड़ा करनेके लिये वनमें गया। अवसर पाकर अन्य सेठ पुत्रोंने भद्रमित्रसे कहा—

मित्र ! अपन वणिक्पुत्र कहलाते हैं। वणिक्पुत्रोंका जीवन व्यवसायके आधीन है। व्यवसाय केलिये तुम कोई भी उपाय न कर निरर्थक घरमें रहते हो। हम लोग व्यवसायके लिये रत्नद्वीप

भद्रमित्रो दत्त्वा सुतालिकां। अहो मुनिः कथं तेन दरिद्रेणोपमीयते ॥ ४० ॥ तदोचुस्तेऽथ मुन्मित्रं कथ्यमानां कथां शृणु । श्रुता मुनिमुखाम्भोजान्निश्चयोत्पादिनीं सुहृत् ॥ ४१ ॥ अथास्ति स्तवकग्लुंछपत्तनं सागरांतिके। हेमरूप्यायसां दुर्गैर्वेष्टितं त्रिभिरूर्मिगे। ॥ ४२ ॥ रामाणां पुरुषाणां वा चातुर्याः सद्मनां पुरः। शोभायाः सरसः केन वर्ण्यते गुरुणापि न ॥ ४३ ॥ तत्र चैरावणो राजा राज-

जाना चाहते हैं तुम्हें भी चाहिये कि हमारे साथ तुम भी व्यापारके लिये रत्नद्वीप चलो। मित्र ! जिसप्रकार प्रवल तप तपनेवाले क्रोधी मुनिका विपुल भी तप निरर्थक माना जाता है उसीप्रकार पुत्र भी उत्पन्न हो परन्तु वह धनका उपार्जन करने वाला न होकर उसका क्षय करने वाला हो तो उसका होना भी निरर्थक है। अन्य धनिक पुत्रोंकी यह वात सुन भद्रमित्र ताली देकर हंसने लगा और हंसते हंसते उसने यह कहा—

भाई ! तुमने जो मुनिके साथ दरिद्रकी तुलना की है वह वड़ी हास्य जनक है। उत्तम मुनिके साथ दरिद्रकी तुलना कैसी ! भद्रमित्रकी यह वात सुन सेठ पुत्रोंने कहा—प्रिय भद्रमित्र ! इसी विषयमें हमने मुनिराजके मुखसे कथा सुनी है जो कि सर्वथा निश्चय करने योग्य है हम वह कथा तुम्हें सुनाते हैं तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

इसी पृथ्वीपर एक स्तवकग्लुंछ नामका नगर है जो कि सोना चांदी और लोहेके वने तीन परकोटोंसे शोभायमान है इसी लिये तीन तरङ्गोंसे व्याप्त वह समुद्र सरीखा जान पड़ता है ॥ ३५—४१ ॥ वह स्तवकग्लुंछ नगर चतुरता और शोभाकी स्थान स्वरूप स्त्री और पुरुषोंसे सरसरूप था इसलिये वह ब्रह्मा और वृहस्पतिकी भी वर्णनाके अगोचर था ॥ ४२ स्तवकग्लुंछ नगरका स्वामी राजा ऐरावण था जो कि कुवेरके समान दानी था। और चन्द्रमाके समान स्वच्छ यशका धारक था। शत्रुओंके लिये शल्यस्वरूप था और समृद्ध था ॥४३॥ उस समय राजा ऐरावणके राज्यकालमें

राजवद्दूर्जितः । राजते रजनीशांशुयशाः शल्यं द्विषां महान् ॥ ४४ ॥ राजधान्यश्च पीलूनां वीराणामुग्रतेजसां । औत्कटं विद्यते भूमौ वाहुवल्यादिवद्भृशं ॥ ४५ ॥ षट्सहस्रप्रमा रामाः संति ग्लौमुखपंकजाः । पृथुस्तनतला मध्ये क्षामा अस्य रतिप्रभाः ॥ ४६ ॥ सुताः पंचशतान्यस्य वीरसेनादयो बभुः । मृगयासक्तचेतस्का योद्धारो रणकोविदाः ॥ ४७ ॥ प्रयाणसमये यस्य रारटन्ति महानकाः । एकलक्षप्रमा नूनं तावंतः पटहा हठात् ॥ ४८ ॥ विष्टरासीन आभाति घर्मतेजाः पुरन्दरः । शेषो वा शैलराजः किं स राजा दुर्जयो

प्रचण्ड तेजके धारक अगणित वीरोंकी राज धानियां वाहुवलि आदिकी राज धानियोंके समान पृथ्वीपर विद्यमान थीं । राजा ऐरावणके छह हजार रानियां थीं जो कि चन्द्रमाके समान मुखकमल की धारक थीं विशाल स्तनोंसे शोभायमान कृशोदरी और रतिके समान परम सुन्दरी थीं ॥ ४४—४५ ॥ राजा ऐरावणके वीरसेन आदि पांचसौ पुत्र थे जो कि शिकार खेलनेके बड़े शौकीन थे योद्धा थे अत एव संग्राम सम्बन्धी अनेक कलाओंके जानकार थे ॥ ४६ ॥ जिससमय राजा ऐरावणका किसी शत्रु आदिके प्रति प्रयाण होता था उससमय उसके आगे आगे एक लाख नगाड़े वजते थे तथा जिसप्रकार एक लाख नगाड़े वजते थे उसीप्रकार एक लाख ही पटह जातिके वाजे वजते थे । वह ऐरावण नामका राजा जिस समय सिंहानपर वैठता था उससमय ऐसा जान पड़ता था कि सूर्यके समान तेजका धारक यह साचात् इन्द्र है वा शेषनाग और मेरुपर्वत है विशेष क्या वह राजा समस्त शत्रुओंके लिये दुर्जय था—कोई भी शत्रु उसे जीतनेके लिये समर्थ न था ॥ ४७—४६ ॥

विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणिमें एक अलकपुर नामका नगर विद्यमान है । इस नगरका रक्षण करने वाला राजा महाकच्छ था और उसकी पटरानीका नाम दामिनी था । राजा महाकच्छके रानी दामिनीसे उत्पन्न एक प्रियंगुश्री नामकी कन्या थी जो कि सुन्दर रूपकी सीमास्वरूप थी—उससे

द्विरां ॥ ४९ ॥ विजयार्धोत्तरश्रेण्यामथाभात्यलकं पुरं। तत्र राजा महाकच्छो भामिनी तस्य दामिनी ॥ ५० ॥ तयोः पुत्री प्रियंगुश्री रूपसीमा बभौतरां। दृष्ट्वैकदा स तां राजा यौवनाक्रांतशैशवी ॥ ५१ ॥ इति चित्ते समाद्ध्यौ कस्मा-एषा प्रदीयते। राज्ञे यो ग्याय रूपेण जितचेतोजतेजसे ॥ ५२ ॥ नैमित्तिकाद्वर मत्वा स्तवकग्लुंछस्वामिनं। कन्याया अकरोच्चिन्तां तदानयन एव सः ॥ ॥ ५३ ॥ मायाप्तिं पृथूरस्कं ह्रस्वकर्णं विधाय सः। जगाम स्तवकग्लुंछे मुक्तास्तवकमंडिते ॥ ५४ ॥ दुर्गं हि दूरतो दृष्ट्वा दुर्निरीक्ष्यं ततर्क नु। श्वेतांगः शैलराजो नु हैमशैलो नु देवपूः ॥ ५५ ॥ संभावयन्निति द्वारं सहस्रस्तंभतोरणं। पूर्वकाष्ठोदयं योऽन्टलक्षद्वादश

बढ़कर संसारमें कोई भी रूपवती उससमय कन्या न थी जिससमय कन्या प्रियंगुश्रीको यौवनसे मंडित देखा राजा महाकच्छके मनमें यह चिंता होने लगी—

अपने सुन्दर रूपसे कामदेवकी कांतिको फीके करनेवाले किस योग्य राजाके लिये यह कन्या प्रदान करनी चाहिये ? बस राजा महाकच्छने शीघ्र हा नैमित्तिकको बुलाया और उससे यह जानकर कि इस कन्याका स्वामी स्तवकग्लुंछ नगरका राजा ऐरावण होगा, शीघ्र ही वह उसको अपने नगरमें ले आनेकी चिन्ता करने लगा ॥ ५०—५२ ॥ अच्छी तरह सोच विचार कर राजा महाकच्छने शीघ्र ही विशाल वक्षस्थल और छोटे छोटे कानोंसे शोभायमान एक माया मयी घोड़ा बनाया एवं मुक्ताओंकी मालाओंसे शोभायमान स्तवकग्लुंछ नगरकी ओर प्रयाण कर दिया। स्तवकग्लुंछ नगरका किला एक विशाल किला था। राजा महाकच्छ उसे देखकर विचार करने लगा कि क्या यह कैलाश पर्वत वा मेरुपर्वत वा अन्य सुवर्ण मयी पर्वत अथवा कोई देवनगर है ऐसा विचार करता २ राजा महाकच्छ किलेके दरवाजेके पास पहुंच गया जो दरवाजा हजार स्तंभोपर लटकते हुए तोरणोंसे शोभायमान था। जिसका मुख पूर्वकी ओर था एवं बीस लाख वीर योधाओंसे सदा रक्षित रहता था ॥ ५३—५५ ॥ इसप्रकार किलेको देखकर वह विद्याधर

रक्षितं ॥ ५६ ॥ विलोक्य दुर्गमं गत्वा वने व्याघुट्य वेगतः । अधिरुह्य हरिं रेमे नानाकौतुककृत्खगः ॥ ५७ ॥ राजपुत्रास्तदा रन्तुं वीरसेनादयोऽखिलाः । आफेणुस्तद्वने दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तं सकौतुकं ॥ ५८ ॥ कोऽसि त्वं कुत आयातः कस्याश्वोऽयं निरूप्यतां । अलकादागत खेटोऽस्म्यहं मेऽश्वोऽतिदुर्धरः ॥ ५६ ॥ घोटकं दुर्धरं घण्टामालारावचलीकृतं । देहि तत्पाटवं लोक्य मूल्यं दत्वा ततः परं ॥ ६० ॥ गृण्हामीत्यगदीद्वीरसेनाख्यस्तं च खेचरं । आरूढं तं समावेद्य हरिर्वीरमपातयत् ॥ ६१॥ अश्वारोहेण ते जाता नष्टपादकरास्तदा । महापूत्कारमाकर्ण्यापफाणैरावणो नृपः ॥ ६२ ॥ घोटकं दुर्धरं मत्वा संस्थाप्योच्चैः सकधरं । आरुरोह महातेजास्तेजः

राजा महाकच्छ शीघ्र ही वनको लोट आया और घोड़ेपर सवार हो अनेक प्रकारके कौतूहल करने लगा । ५६ । राजा ऐरावणके वीरसेन आदि कुमार भी उसी वनमें क्रीड़ा करनेके लिये आये । घोड़े पर चढ़े विद्याधर महाकच्छको देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे इसप्रकार पूछने लगे—

भाई ! तुम कौन हो ? कहांसे आये हो और जिस घोड़े पर तुम चढ़े हो वह किसका घोड़ा है ? उत्तरमें विद्याधर राजा महाकच्छने कहा-मैं अलकपुरसे यहां आया हूं। मैं विद्याधर हूं और यह बलवान घोड़ा मेरा है ।५७-५८। भाई ! घंटरियोके शब्दोंसे शोभयमान और चंचल तुम्हारा यह घोड़ा बड़ा दुर्घट जान पड़ता है । कृपाकर दीजिये हम इसकी चाल ढाल देखलें । यदि हमें जच गया तो हम मूल्य देकर इसे खरीद लेंगे । जब ऐसा कुमार बीरसेनने कहा तो विद्याधर महाकच्छने उसे घोड़ा देदिया । बीरसेन घोड़ेपर चढ भो लिया ज्यों ही घोड़ेने उसे अपने ऊपर चढ़ा देखा देखते २ शीघ्र नीचे पटक दिया । ५६।६०। और भी कुमार घोड़े पर चढ़े परन्तु घोड़ेने एकको भी सवारी नहीं झेली, क्रम क्रम कर सबोंको नीचे पटक दिया जिससे हाथ पैरोमें चोट आनेसे उन समस्त राजाकुमारोंमें हाहाकार मच गया । अपने पुत्रोका इसप्रकार हाहाकार सुन राजा ऐरावण शीघ्र वहांपर आया एवं अपने तेजसे चन्द्रमाको फीका बनाने वाला महातेजस्वी वह राजा ऐरावण

स्थगितचन्द्रमाः ॥ ६३ ॥ साष्टांगाष्टसहस्रं च नमस्कारं पुरा पुरोः । पुरस्तात् श्वेतशैले स चक्रीतिस्म प्रत्यहं ॥ ६४ ॥ तत्पुण्योदयतस्तस्य पद्भ्यामश्वो हि कीलितः ! इवोत्पाटयितुं शक्तो न बभूव धरापतिं ॥ ६४ ॥ महौजसं नृपं मत्वा महाकच्छः खगाधिपः नत्वा कन्योद्भवां वार्तां चकार विनयान्वितः ॥ ६५ ॥ निशम्यरावणो राजा रराणेति खगेश्वरं । अहं नैमि रुचिस्ते चेऽानय त्वं च कन्यकां ॥ ६६ ॥ इक्ष्वाकन्वयसंभूतनृपाणा स्त्र्यर्थमागमः । सञ्जाघटीति नो जातु लंध्यते न कुलक्रमः ॥ ६७ ॥ सांप्र तं स

उत्तम गर्दनसे शोभायमान एवं अतिशय भयङ्कर उस घोड़ पर तत्काल सवार होलिया ।६१।६२। वह राजा ऐरावण प्रति दिन कैलाश पर्वतके आगे उस घोड़के साथ साष्टांग नमस्कार करता था । राजा ऐरावणके पुण्यके उदयसे उसके पैरोंसे वह घोड़ा कीलित हो गया था । अत एव वह राजा ऐरावणको कभी भी डाल नहीं सका था । ६३—६४ । विद्याधर महाकच्छकी यह इच्छा थी कि मैं घोड़के द्वारा राजा ऐरावणको अपनी राजधानी ले जाऊंगा और वहां ले जाकर अपनी कन्याके साथ उसका विवाह कर दूंगा परन्तु जब घोड़ा राजा ऐरावणके पैरोंसे कीलित हो गया तब उसकी कुछ भी तीन पांच न चली इसलिये राजा ऐरावणको प्रबल पराक्रमी जान विद्याधर महाकच्छने उसे नमस्कार किया एवं कन्या सम्बन्धी जो कुछ भी बात थी विनय पूर्वक सारी कह सुनाई ॥ ६५ ॥ विद्याधर महाकच्छकी यह बात सुन राजा ऐरावणने कहा—

मैं तुम्हारी राजधानी जाकर उस कन्याके साथ अपना विवाह नहीं कर सकता यदि मेरे साथ उस कन्याके विवाह करनेकी तुम्हारी इच्छा है तो तुम उस कन्याको यहां ला सकते हो । क्योंकि जो राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए हैं स्त्रीके लिये वे कहीं भी नहीं जासकते, मैं भी तुम्हारे यहां जाकर अपनी कुल मर्यादाका लोप नहीं करना चाहता । ६६।६७ । राजा ऐरावणके ऐसे वचन सुन विद्याधर महाकच्छ अपने घर लौट आया और राजा ऐरावणके कहे अनुसार वह कन्याको ले ही जारहा था कि उसी समय यह घटना आकर उपस्थित हो गई ।

वचस्तस्य श्रुत्वा सदनमाययौ। नीत्वा सुतां समायाति तावदन्यकथाऽभवत् ॥ ६८ ॥ तत्रान्यो वज्रसेनाख्यः खगचक्री निशम्य तां। रूपसीमानमायात आहर्तुं पृष्ठतो बली ॥ ६९ ॥ ऐरावणपुराभ्यर्णे रणध्वानं निशम्य सः । ऐरावणोऽथ तं जित्वा परिणीय सुखं स्थितः ॥ ७० ॥ दिदीक्षे लज्जितो वज्रसेनाख्यस्तप आकरोत्। जाते वर्षसहस्रे स स्तवककुलुंछमाययौ ॥ ७१ ॥ एकदा तं मुनिं दृष्ट्वा

विद्याधर नगर अलकपुरमें ही विद्याधरोंका चक्रवर्ती एक वज्रसेन नामका भी राजा रहता था कन्या प्रियंगुश्रीको परम रूपवती देख वह उसपर आसक्त होगया एवं राजा महाकच्छ जैसे ही उसे राजा ऐरावणके साथ विवाह करनेके लिये ले जारहा था वैसे ही वह कन्या प्रियंगुश्रीको हरण करनेके लिये राजा महा कच्छके पीछे २ चल दिया ॥ ६८—६९ ॥ राजा ऐरावणकी राजधानीके पास पहुंचते २ विद्याधर वज्रसेन और महाकच्छकी मुठ भेंट होगई। दोनों सेनाओंमें रणबाजा बजने लगा और युद्ध होने लगा। रण बाजोंका शब्द राजा ऐरावणके कानतक भी पहुंच गया। वह शीघ्र ही रण क्षेत्रमें आ पहुंचा। विद्याधर वज्रसेनको जीतकर कन्या प्रियंगुश्रीको व्याह लिया और विषय जनित सुखोंको भोगता हुआ सानन्द रहने लगा।

अपमान बड़ा दुख दायी होता है। राजा ऐरावणसे जब विद्याधर वज्रसेन हार गया तो उसे बड़ी लज्जा आई। लज्जित हो समस्त राज्यका उसने परित्याग कर दिया एवं दिगम्बरी दीक्षा धारण कर वे घोर तप तपने लगे। तप करते २ जब पूरे हजार वर्ष बीत गये तब विहार करते २ वे मुनिराज एक दिन राजा ऐरावणकी राजधानी स्तवककुलुंछ नगरकी ओर आये और नगरके बाहिर किसी बगीचेमें आकर विराज गये ॥ ७० । ७१ ॥ किसी दिन वे मुनिराज पूर्ण ध्यानमें लीन थे कि जहा तहां वनमें क्रीडा करने वाले राजा ऐरावणके पुत्रोंने उन्हें देखा और वे मूर्ख मुनिमुद्राका कुछ भी महत्त्व न समझ हंसी उड़ाते हुये आपसमें इसप्रकार कहने लगे—

ध्यानस्थं च वने सुताः । ऐ तावणस्य हास्येन भेणुरेवं परस्परं ॥ ७२ ॥ वराकोऽयं पुरा पिता वलिनामाऽकरोद्रणं । क्व यास्यत्यधुनेत्युक्त्वा चकर्पु स्तं तपोधनं ॥७३॥ मुनेः कर्मवशाज्जज्ञे क्रोध. प्रलयकारकः । तेन क्रोधेन तद्वामात्स्कंधाद्ग्निरुत्थितः ॥७४॥ पुरं जज्वाल सर्वत्र सलोकं सनृपं सखे ! । महापापभरेणाशु मुनिर्नरकमाविशत् ।७५। अतो नर्जकगोधस्य सक्रोधस्य मुनेरपि । साम्यमुक्तं मया मित्र ! तौ स्यातामर्थहारिणौ ॥७६॥ प्रतिपद्य तथागारमागत्य पितरं जगौ । प्रभोऽहं रत्नसद्वीपे यामि मित्रैः समं धने ॥७७॥ सुदत्तस्तं तदेत्याह

यह वही दुष्ट वज्रसेन नामका विद्याधर राजा है जिसने कि प्रियंगुश्रीके विवाहके समय अतिशय पराक्रमी भी हमारे पिताके साथ युद्ध किया था । रे दुष्ट ! अब तू कहाँ वचकर जायगा ऐसा कहकर उन तपस्वी मुनिराजको उन्होंने जकड़ कर पकड़ लिया और उन्हें मारने ताड़ने लगे । कर्मके प्रवल उदयसे मुनिराज वज्रसेनके प्रलय करनेवाला क्रोध उत्पन्न होगया । क्रोधके कारण उनकी वाईं भुजासे अग्निका फुलिंगा निकला जिससे मय प्रजा राजाके समस्त रत्नकल्लुछ नगर जलकर खाख हो गया एवं पापके तीव्रभारसे वह मुनि भी नरकमें गया । इसप्रकार क्रोधी मुनिराजकी कथा सुनाकर श्रेष्ठि पुत्र भद्रमित्रसे उसके मित्र अन्य श्रेष्ठिपुत्रोंने कहा—भाई भद्रमित्र ! इसीलिये हमने धन नहीं उपार्जन करनेवाले पुरुषकी और क्रोधी मुनिकी तुलनाकी थी क्योंकि धन न उपार्जन करनेवाला पुरुष और क्रोधी मुनि दोनों ही सञ्चित धनके नाश करनेवाले हैं अर्थात् जो हजारो वर्ष तप कर क्रोध कर लेता है उसका समस्त तप व्यर्थ चला जाता है और जो पुरुष कुछ भी धन न कमा कर संचित धनको बैठा २ खाता रहता है उसका भी धन समय आनेपर समस्त चला जाता है ॥ ७२—७६ ॥ अपने मित्रोंसे इसप्रकार धन न उपार्जन करने वालेकी निन्दा सुन भद्रमित्र अपने घर लौट आया और अपने पिता सेठ सुदत्तसे इसप्रकार कहने लगा—

पूज्य पिता ! मैं अपने मित्रोंके साथ धन कमानेके लिये रत्नद्वीप जा रहा हूं । अपने प्रिय पुत्र की यह बात सुन मोही सुदत्तने कहा—प्रियपुत्र ! हमारे बहुतसा धन विद्यमान है तुम क्यों धन

द्रव्य भूरितर सुत ! । विद्यतेऽस्माकमेतर्हि किमर्थं गम्यते त्वया ॥ ७८ ॥ एक एव सुतोऽस्माकं त्वं लघुर्ललितविग्रहः । प्रेषयित्वाथ तं पश्चात् योगी भूत्वा भ्रमाम्यहं ॥ ७६ ॥ तिरस्कृत्य पितुर्वाक्यमत्याग्रहतया गतः । रत्नद्वीपे समुत्तीर्थ ललत्कल्लोलसागरं ॥ ८० ॥ तत स्थित्वाऽगम त्सिंहपत्तने भद्रमित्रवाक् ॥ ८१ ॥ सङ्गत्य सत्यघोषाख्यं मन्त्रिणं परमादरात् ॥ प्राचुर्य प्राभृतं मुक्त्वा पप्रच्छेति वणिक् सुतः ॥ ८२ ॥ युष्मत्प्रेम भवेत्तर्हि ममोपरि यदा विभो ! । निवासार्थं समायामि पत्तनेऽथ सुखाप्तये ॥ ८३ ॥ सत्यघोषेण सन्मान्य जगदे

कमानेकी इच्छासे परदेश जा रहे हो ! पुत्र ! तुम मेरे एक ही पुत्र हो तिसपर भी तुम सुन्दर शरीर के धारक छोटी उम्रके हो तुम्हें परदेश भेजकर क्या मैं योगी होकर पृथ्वीपर घूमूंगा ? ॥ ७८-- ७६ ॥ कुमार भद्रमित्रने अपने पिताके वचनोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया वह मोह तोड़ शीघ्र ही चल दिया एवं जिसमें प्रबल तरङ्गे उठ रही हैं ऐसे गम्भीर समुद्रको पारकर रत्नद्वीपमें जा पहुंचा ॥ ८० ॥ बराबर बारहवर्ष तक रत्नद्वीपमें रहा । रत्न आदि बहुतसा धन उपार्जन किया और घूमता २ वह कुमार भद्रमित्र एक दिन सिंहपुर नामक नगरमें आ पहुंचा । सिंहपुर नामका नगर उस समय अद्वितीय सुन्दरताका स्थान थाँ और उसमें सत्यघोष नामका राजमंत्री निवास करता था । कुमार भद्रमित्र ! आदर पूर्वक मन्त्री सत्यघोषसे मिला । बहुतसी उसे भेंट दी और उससे इस प्रकार पूछा—

स्वामिन् ! यदि आपका मेरे ऊपर प्रेम हो तौ मैं सुख भोगनेकी आशासे इस महामनोज्ञ नगरमें कुछ दिन निवास करूं ! कुमार भद्रमित्रकी यह बात सुन मन्त्री सत्यघोष बड़ा प्रसन्न हुआ । कुमारको उसने बड़े सन्मानको दृष्टिसे देखा और बडे आदरसे यह कहा—

भाई ! तुम्हारे यहां रहनेसे मैं बड़ा प्रसन्न हूं । शीघ्र ही तुम अपने माता पिताको लेकर यहां आइये और रहिये । मन्त्री सत्यघोपकी वातसे कुमार भद्रमित्र बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ । कुमार भद्र

चेति सादरात् । आनय त्वं द्रुतं बंधो ! मातृपित्रादिसत्कुलं ॥ ८४ ॥ मन्त्रिवाक्यात्तदा तुष्टः सप्तरत्नानि तत्करे । स्थापयित्वा गतः पद्मखण्डाख्यं पत्तनं द्रुतं ॥ ८५ ॥ मातरं पितरं बन्धून पशूश्चापि धनादिकं । नीत्वा समागतो भद्रमित्रः सिंहपुरे जवात् ॥ ८६ ॥ सत्य घोषं समेत्याशु ययाचे रत्नसप्तकं । तदा क्रोधारुणो भूत्वा प्रोवाचेति वणिक्सुतं ॥ ८७ ॥ रे रे दुर्गत ! रत्नानि कदाऽदायिषत त्वया मद्धस्ते ब्रूहि पापीयान् नाशोऽद्य भविता तव ॥ ८८ ॥ भद्रमितस्तदा प्राह द्वीपे रत्नादिनानि । गत्वा रत्नानि चानीय त्वत्करे स्थापि तानि भो ॥ ८९ ॥ तदा तत्सेवका भेणुर्येषा याति धनं महत् । तएव ग्रथिला नूनं भवेयुश्चिवलमत किं ॥ ९० ॥ अर्घचन्द्रं तदा वाणं

मित्रके पास उससमय सात रत्न वहुमूल्यके थे। कुमारने उन्हें मन्त्री सत्यघोषको सौंप दिया और वह अपनी जन्मभूमि पद्मखण्ड नगरमें शीघ्र ही आगया। पद्मखण्ड नगरमें आकर भद्रमित्रने माता पिता भाई पशुगण और धन आदिक सबोंको साथ ले लिया और शीघ्र ही सिंहपुरमें आगया। ८१—८६ ॥ सिंहपुरमें आकर कुमार भद्रमित्र मन्त्री सत्यघोपसे मिला और जो सात रत्न उसे सोंपकर गया था वे उससे मांगे। वहुमूल्य सात रत्नोंके मिलनेसे मन्त्री सत्यघोपकी नीयति पहिले ही से विगड़ चुकी थी। जिस समय कुमारने सात रत्न मागे मारे क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये एवं अनेक प्रकारकी ताडना करता हुआ वह भद्रमित्रको इसप्रकार दुर्वाक्य कहने लगा—

रे दरिद्री ! तू महा पापी है। कह तो तूने मेरे हाथमें कव रत्न दिये थे ! याद रख इस प्रकार झूठ वोलनेसे तेरा काल तेरे शिरपर मड़रा रहा है ॥ ८७—८८ ॥ उत्तरमें भद्रमित्रने कहा—रत्नद्वीपमें जाकर मैं रत्न लाया था वे रत्न मैंने तुम्हें सोंपे थे तुम क्यों भूल रहे हो !। सत्यघोष और भद्रमित्रका यह आपसी झगड़ा देख सत्यघोपके सेवक कहने लगे—जिन मनुष्योंका विपुल धन चला जाता है वे ही संसारमें पागल सरीखे हो जाते हैं इसमें किसी वातका आश्चर्य नहीं। ॥ ८९—९० ॥ परदेशी भद्रमित्रको दुष्ट मंत्रीने एक वात भी न सुनी। वुद्धिमान कुमार भद्रमित्रके

कण्ठे दत्त्वास्य धीमतः । मुष्टिघातैर्दृढं ताड्य स निष्कासित एव तैः ॥ ६१ ॥ स्वद्रव्यहरणोद्भूतशोकव्याकुलिताशयः । चकार पूत्कृतिं गाढं राजद्वारे पुरेऽखिले ॥ ६२ ॥ सत्यघोषोपि राजाग्रे लोकाग्रे सर्वतोपि च । एवं निरूपयामास निःस्वाः स्युर्ग्रथिला ध्रुवं ॥ ६३॥ चकार शपथं सैनाः शुद्ध्यर्थं स्वस्य दुष्टधीः । नृपस्याग्रेऽधमो गृध्नुरधीतोऽपि भृशं शठः ॥ ६४ ॥ भद्रमित्रो निशाप्रांते रोरौत्यारुह्य भूरुहं । प्रत्यहं चेति पूत्कारं कुर्वन् कातरचेतसा ॥ ६५ ॥ द्विजेनानेन दुष्टेन वंचितोऽहं विनागसा । किं करोमि क्व गच्छामि

गलेमें अर्ध चन्द्र-अर्ध चन्द्रमाके आकार वाण गिरवा दिया । और मुक्कोंकी मार मार कर उसे नगर से वाहिर निकाल दिया ॥ ६१ ॥ अपने द्रव्यके इस प्रकार अपहरण हो जानेसे भद्रमित्रका चित्त भयंकर शोकसे व्याकुल हो गया । उससे और तो कुछ नहीं वना समस्त पुर और राजाकी ड्योढी पर वह रोता चिल्लाता घूमने लगा ॥ ६१-६२ ॥ मन्त्री सत्यघोषने भी राजा और पुरवासियों के सामने सब जगह यही वात स्वीकार की कि जिन मनुष्योंका धन चला जाता है वे निश्चयरूप से पागल हो ही जाते हैं ॥ ६३ ॥ दुष्ट वुद्धि सत्य घोषसे जव यह पूछा गया कि क्या तुमने इसके रत्न लिये हैं ? तो समस्त शास्त्रोंको पढ़कर भी वज्र मूर्ख महा लालची और नीच उस दुष्टने अपनी शुद्धिके लिये राजाके भी आगे न लेनेकी कसम खाई ॥६४॥ जिसका धन चला जाता है उसका दुख वही जानता है विचारे भद्रमित्रको धनके चले जानेसे कल कहां थी उसने प्रति दिनका यह कार्य हाथमें ले लिया कि वह प्रति दिन प्रातः कालके समय वृक्ष पर चढ जाय और दीन चित्तसे इस प्रकार करुणा जनक चिल्लावे—

विना अपराधके इस दुष्ट ब्राह्मण मन्त्रीने मेरे रत्न अपहरण कर मुझे ठग लिया है । मैं क्या करू कहां जाऊ और किसके सामने अपना रोना रोऊं ॥ ६५-६६ ॥ रे मन्त्री ! महाराज सिंहसेनकी प्रसन्नतासे तुम्हारे सब कुछ है । यह तुम निश्चय समझो छत्र और सिंहासनके विना सारा राज्य

कल्याग्रे च वदाम्यहं ॥ ६६ ॥ सिंहसेनमहाराजप्रसादेन न तेऽस्ति किं । छत्रसिंहासने मुक्त्वा ध्रुवं राज्यमिदं तव ॥ ६७ ॥ धर्मो यशो महत्त्वं च यात्यपह्नवदोषतः । विद्वानपि महाद्रोषं करोति त्वं कथं द्विज ! ॥ ६८ ॥ भवाम्यहं न शत्रुस्ते तथापि मम सद्धनं । अप ह्नुषे कथं मूढ ! द्विजाचारपराङ्मुख ! ॥९९॥ एकदा-रात्रिपाश्चात्ययामे पूत्कृतिमाकरोत् । तदा राज्ञी स्वके चित्ते ततर्केति गुणोज्वला ॥ १०० ॥ जानेऽहं नायमुन्मत्तः सर्वदानुगतं वदन् । अतोऽहमस्य विन्यायं न्यायं पश्यामि निश्चित ॥ १०१ ॥ इत्थमुक्तवतो राज्ञी

तुम्हारा है—तुझे इस प्रकार पर धन नहीं अपहरण करना चाहिये ॥ ६७ ॥ यह बात विलकुल सत्य है कि जो मनुष्य किसोकी कुछ वस्तु हरण कर लेता है उसके उस अपहरण करने रूप बलवान दोषसे धर्म यश और उच्चपन सब गुण एक ओर किनारा कर जाते हैं अर्थात् अपहरण करने वाला मनुष्य धर्मात्मा यशस्वी और महान् कुछ भी नहीं माना जाता। रे ब्राह्मण मन्त्री ! विद्वान हो कर भी तू यह घोर पातक क्यों कर रहा है। भाई ! मैं तुम्हारा किसी प्रकारका शत्रु भी नहीं हूं तथापि न मालूम तुम मेरा क्यों इस क्रूरताके साथ धन अपहरण कर रहे हो । ब्राह्मणों का जो आचार विचार है नीच कर्मकर तुम क्यों उससे विमुख होते हो ॥ ६८—६६ ॥ एक दिनकी बात है कि वह रात्रिके पिछले पहरमें प्रति दिनकी तरह वडे जोरसे रो रहा था । राजा सिंहसेनकी रानो जो कि अनेक गुणोंकी भण्डार थी उसके कानमें भद्रमित्रके रोनेकी भनक पड़ी वह भद्रमित्रका इसप्रकार दुःख जनक रोना सुन मन हो मन इस प्रकार विचार करने लगी—

यह जो भद्रमित्र प्रतिदिन मन्त्रोको अपने धनका ठगनेवाला कह कर रोता चिल्लाता रहता है इसे लोग पागल कहते हैं, किन्तु यह पागल नहीं कहा जा सकता। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि राज दरवारमें जो कुछ भी न्याय किया गया है वह सर्वथा अन्याय है-मुख देखकर ही न्याय किया गया है ॥ १००—१०१ ॥ वस ऐसा अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर रानीने राजा सिंहसेनसे यह कहा

राजाग्रे भो नराधिप ! त्वयार्थातःपुरे स्थैर्यं करोम्येतत्परीक्षणं ॥ १०२ ॥ प्रातरुत्थाय सा राज्ञी त्रिदशा संस्थिता रहः। तत्क्षणे स समायातः सत्यघोषो द्विजाग्रमः ॥ १०३ ॥ तत्रैव स्थापितो राज्ञ्या सन्मान्यासनदानतः। ततो द्यूतं समारेभे साकं तेन द्विजातिना ॥ १०४॥ प्राहेत्यमात्यमानन्दाद्वामदत्ता द्विजोत्तम ! । मया त्वं जीयसे चेत्तत् किं दद्या वद सांप्रतं ॥ १०५ ॥ अश्वं धनं गजं भूयो वस्त्रालङ्कारसंचयं । दद्यां च हारितस्तुभ्यं सत्यं जानीहि सर्वथा ॥ १०६ ॥ श्रुत्वाथ तद्वचो राज्ञी रराणेति रतिप्रभा । तत्सर्वं भवता प्रोक्तं समस्ति मम सौलभं ॥ १०७ ॥ मुद्रिकां नामसंयुक्तां संबद्धछुरिकां पुनः । यज्ञोपवीतमस्मभ्यं देयं देव ! विदांवर ! ॥ १०८॥

राजन् ! परदेशी भद्रमित्रका जो न्याय हुआ है वह मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ता । आज आप रणवासके अन्दर रहें, मैं स्वयं इस न्यायकी जांच करूंगी । दूसरे दिन प्रातः काल उठकर बुद्धिमती वह रानी एकांतमें बैठ गई । उसी समय ब्राह्मण मन्त्री सत्यघोष भी वहीं आ पहुंचा । भोजन आदिके द्वारा उसका रानीने भले प्रकार सन्मान किया । वहीं पर बिठा लिया और उसके साथ जूआ खेलना प्रारम्भ कर दिया ॥ १०२—१०४ ॥ रानी रामदत्ता बडी ही चतुर थी उसने आनन्दमय मीठे वचनोंसे इसप्रकार सत्यघोष मन्त्रीसे कहा—

हे विप्रोंके सरदार ! यदि इस जूआमें मैं तुम्हें जीत लूंगी तो कृपाकर कहिये तुम मुझे क्या दोगे ! शीघ्र कहो ! उत्तरमें मन्त्री सत्यघोषने कहा— यदि मैं आपके साथ हार गया तो आप निश्चय समझें मैं घोडा धन हाथी और नानाप्रकारके वस्त्र सभी कुछ आपको प्रदान कर दूंगा ॥१०५ ॥ १०६ ॥ मन्त्री सत्यघोषकी यह बात सुनकर रतिके समान सुन्दरी रानी रामदत्ताने कहा—

भद्र ! हारने पर जिन चीजोंके देनेका आपने वायदा किया है वे सारी चीज मेरे यहां विद्यमान हैं । मैं इन चीजोंकी लालसा नहीं रखती मुझे कुछ अपूर्व ही चीज तुम्हें देनी होगी और वह यह है कि हारने पर आप मुझे अपने नामकी मुद्रिका कटारी और यज्ञोपवीत प्रदान कर दें ।

तथेति प्रतिपद्याशु रेमे द्यूतं निरंकुशं । अभाग्यवशतो मन्त्री निर्जितो रामदत्तया ॥ १०९ ॥ तदा तद्द्वितयं नीत्वा सानन्दांभोजलोचना । ददत्ता निपुणमत्याख्यधात्रीकरतले शनैः ॥ ११० ॥ अत्रोदितं हे धात्रि ! याहि शीघ्रं द्विजगृहे । एतत्पत्न्यै च दत्त्वैतद्ग्रहमिलकरण्डकं ॥ १११ ॥ याचयित्वा जवाद्देहि सागता प्रियभाषिणी । अभिज्ञानेन तन्नीत्वा रत्नसप्तकरंडकं ॥११२॥ आगत्यैव ददौ राज्ञ्यै तदादायि नृपाय वा । सिंहसेनोऽपि तन्नीत्वा सभायामागतो ध्रुवं ॥ ११३ ॥ कियद्भिः स्वीयरत्नैश्च मिश्रितानि विधाय सः । तानि प्राहेति हे वैश्य ! गृहाणैतत्स्वकं धनं ॥ ११४ ॥ भद्रमित्रः स्वरत्नानि जग्राह गुणगौरवः । विहायान्यानि रत्नानि तदा राज्ञेति तर्कितं ॥ ११५ ॥

ब्राह्मण सत्यघोषकी निर्मल भी बुद्धिपर उस समय बलवान मूढ़ताका आवरण पड़ा हुआ था । रानी-के कहे अनुसार उसने सब चीज देनी स्वीकार कर लीं । वह निरंकुश हो सानन्द जूआ खेलने लगा । दुर्भाग्य वश उस मन्त्रीको अपनी चतुरतासे रानी रामदत्ताने जीत लिया । कमलनयनी रानी रामदत्ताने मुद्रिका और कटार दोनों चीजे लेकर धीरेसे निपुणमती नामकी धायके हाथमें दे दीं और उससे यह कहा—

तू शीघ्र ही ब्राह्मण सत्यघोषके घर जा । इसकी पत्नीसे सात रत्नोंवाली पिटारी मागला और मुझे जल्दी लाकर देदे । धात्री निपुणमती बड़ी ही प्रियवादिनी थी वह शीघ्र ही मन्त्री सत्यघोषके घर चली गई । अपनी चतुरतासे उसने सात रत्नोंकी पिटारी लेली । लाकर रानी रामदत्ताको दे दी । रानीने राजाके हाथमें वह पिटारी दे दी । राजा लेकर शीघ्र ही राज सभामें आ गया । वहां आकर उसने कुछ अपने रत्नोंके साथ मिलाकर वे सातो रत्न रख दिये । वैश्यपुत्र कुमार भद्रमित्र को राज.सभामें बुलाया और यह कहा—

भाई ! तुम अपने रत्नोंको पहिचान कर लो ॥ १०७—११४ ॥ वैश्य पुत्र भद्रमित्र एक ईमानदार व्यक्ति था । अनेक रत्नोंमेंसे उसने अपने सात रत्न चुनकर ले लिये एवं गुणशाली उस

अहो अयं महान् कोऽपि सत्यवाक् सुकृती नरः । निर्लोभः स्वकुलाचारे विदग्धो वञ्चितोऽमुना ॥ ११६ ॥ सत्यघोषो महापापी स्वधर्माचारदूरगः । असत्योक्तिः कृपाहीनो दण्डनीयो महाशठः ॥११७॥ प्राहेत्याकार्य भूमीशः स्वीयभृत्यान् प्रति क्रुधा । त्रिधा दण्डो विधातव्यो वाडवस्यास्य दुर्मतेः ॥ ११८ ॥ सर्वस्वहरणं पूर्वं विधेयं पूर्वरीतिभिः । चपेटा वज्रमुष्ट्याख्यमल्लस्य त्रिंशदूर्जिताः ॥ ११९ ॥ कांस्यपात्रत्रयापूर्णनवगोमयभक्षणं । कारितव्यमिति त्रेधा दण्डोदेयोऽविलम्बत. ॥ १२० ॥ तथाकारि भृशं भृत्यैर्यमसन्निभविग्रहैः ।

कुमारने अन्य रत्न वहींपर छोड़ दिये । वैश्यपुत्र भद्रमित्रकी यह लोकोत्तर निर्लोभता देख राजा सिंहसेन बड़ा ही प्रसन्न हुआ और मन ही मन इसप्रकार विचार करने लगा—

यह भद्रमित्र कोई सामान्य पुरुष नहीं किन्तु महान् सत्यवक्ता पुण्यवान निर्लोभ और कुलाचारसें चतुर पुरुष रत्न है अवश्य इस पापी सत्यघोषने इस महापुरुषको ठगा है । यह सत्यघोष महापापी धर्माचारणोंसे विमुख झूठा निर्दयी और वज्र मूर्ख है इसे अवश्य दण्ड देना उचित है ॥ ११५—११७ ॥ राजा सिंहसेनने शीघ्र ही मन्त्री सत्यघोषको राजसभामें बुलाया और क्रोधसे आगवबूला हो इसप्रकार सेवकोंको आज्ञा दी—

यह ब्राह्मण बड़ा भारी दुष्ट है इसके लिये तीन दण्ड मैं निश्चित करता हूं । प्रथम दण्ड यह है कि प्राचीन प्रथाके अनुसार इसका सारा धन हरण कर लिया जाय १ । दूसरा यह है कि वज्रमुष्टि नामक मल्लके तीस मुक्के इस पर पड़ें एवं तीसरा दण्ड यह है कि कांसेके तीन बर्तन ताजे गोबरसे भराये जांय और वह समस्त गोबर इसे खवाया जाय । इन तीन बातोंका प्रबन्ध बहुत शीघ्र कर देना चाहिये और इसे बहुत जल्दी दण्ड देना चाहिये ॥ ११८—११९ ॥ राजाकी आज्ञा पाते ही यमराजसरीखे क्रूरभृत्योंने शीघ्र ही अपना कार्य पूरा कर दिया । ठीक ही है जो भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा मानने वाले हैं बहुत शीघ्र वे अपने पर सोंपे हुये कार्यको कर डालते हैं ॥ १२० ॥ अप-

संजायटत्यहो भृत्याः स्वनाथोक्तविधायिनः ॥ १२१ ॥ नृपे सम्बद्धवैरः सन् मृत्वार्तध्यानदूषितः । द्विजिह्वोऽगन्धनो नाम भांडागारेऽजनिष्ट सः ॥ १२२ ॥ अतश्चौर्यं न वर्तव्यं तेन कीर्तिर्न जायते । अन्यायेनान्यवित्तस्य स्वीकारश्चौर्यमुच्यते ॥ १२३ ॥ सौजन्यं हन्यते भ्रंशो विस्रंभस्य धनादिषु । विपत्तिः प्राणपर्यंता मित्रबंध्वादिभिः सह ॥ १२४ ॥ गुणप्रसवसंदृब्धा कीर्तिरम्लानमालिका । लतेव दावसंप्लुष्टा सद्यश्चौर्येण हन्यते ॥ १२५ ॥ इतीदं जानता सर्वं सत्यघोषेण दुर्धिया । नैसर्गिकेण चौर्येण तद्रत्नापहृतिः कृता ॥१२६॥

राधी सत्यघोषको जब राजाने यह दण्ड दिया तो उसकी आत्माको अपमान जनित नितांत कष्ट हुआ। परिणामोंकी क्रूरतासे राजाके साथ उसने तीव्र वैर बांध लिया एवं आर्त ध्यानसे मर कर वह राजाके भण्डारमें सर्प हो गया ॥ २२१ ॥ ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि सत्यघोषकी यह दुर्दशा देख कर किसी मनुष्यको चोरी पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि चोरीका कार्य करनेसे संसारमें किसी प्रकारकी कीर्ति नहीं होती तथा अन्याय पूर्वक दूसरेका धन हरण कर लेना चोरी कहलाता है यह चोरी काम इतना निकृष्ट है कि इससे मनुष्योंकी सज्जनता नष्ट हो जाती है । धन आदिके सम्बन्धमें चोरी करनेवालेका विश्वास नष्ट हो जाता है। चोरी करनेवालेको जब तक वह जीता है तब तक मित्र बन्धु आदिके साथ सदा उसे आपत्तिका सामना करना पड़ता है। जिस प्रकार सुन्दर फूलोंसे शोभायमान और विकसित लता अग्निसे झुलस जाने पर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार चोरीका कार्य करनेसे अनेक गुणोंको उत्पन्न करनेवाली निर्मल कीर्ति भी नष्ट हो जाती है । यह सब जानकर भी दुर्बुद्धि सत्यघोषने स्वभावसे ही चोरी कर भद्रमित्रके रत्नोंका अपहरण किया था ।१२२—१२४। इस चोरी रूप पापके ही कारण उसे मंत्रिपदसे हाथ धोना पड़ा। उस प्रकारका तीव्र अपमान सहना पड़ा। १२५। तथा राजा सिंहसेनने संतुष्ट होकर बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रको राजसेठ पद प्रदान किया ठीक ही है जब शुभका उदय होता है तब कौन सी दुर्लभ भी बात

सद्यो मन्त्रिपदाद्भ्रष्टो निग्रहं तादृशं गतः। दुर्गतिं च पुनः प्राप्तो महापापानुबंधिनीं ॥ १२७ ॥ संतुष्य नृपतिस्तस्मै भद्रमित्राय सद्धिये ज्येष्ठं श्रेष्ठिपदं भाग्यात् ददौ किं न शुभोदयात् ॥ १२८ ॥ इत्यमात्यस्य दुर्वृत्तं राजात्मनि व्यचिंतयत् । धम्मिल्लाख्याय विप्राय तत्साचिव्यपदं ददौ ॥ १२९ ॥ अथासनाटवी दुर्गा मृगजातिसमाकुला । नानादरीदरोद्गच्छद्दर्भांकुरविरोमभुः ॥ १३० ॥ तत्रास्ते विमलाद्युक्ति कांतारं तारभूतलं । कांतारं तत्र तन्नामा भूधरो विद्यते महान् ॥ १३१ ॥ तत्रैकदा समायासीद्वरधर्मो मुमुक्षुकः । वंदितुं तं गतो

नहीं प्राप्त हो जाती । १२६ । राजा सिंहसेनने मंत्री सत्यघोषके दुश्चरित्रपर बहुत समय तक विचार किया एवं उसकी जगह धम्मिल्ल नामके विप्रको मंत्रि पद प्रदान कर दिया ॥ १२७ ॥

इसो पृथ्वीपर एक भयंकर आसनानामकी अटवी विद्यमान थी जोकि अनेक प्रकारके मृगोंसे व्याप्त थी एवं अनेक गुफाओंके दरवाजोंपर ऊगे हुए दर्भके अंकूरोंसे शोभायमान थी। उस अटवीके अंदर विमल कांतार नामका वन था जो कि बिस्तीर्ण पृथ्वीतलसे शोभायमान था और कांतार नामका ही उसके अंदर एक विशाल पर्वत था। उसके अंदर एक बरधर्म नामके मुनिराज आये और उनका आगमन सुन भद्रमित्र नामका सेठ पुत्र उनकी वन्दनाके लिये गया। १२२—१३१। मुनिराज वरधर्मने धर्मका उपदेश दिया। बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रने धनकी असारता जान बहुत सा दान करना प्रारम्भ कर दिया। पुत्रको इस प्रकार धारा प्रवाह दान देते देख उसकी माताको बड़ा क्रोध हुआ। यद्यपि उसने भद्रमित्रको बहुत रोका परंतु उस समय भद्रमित्रके चित्तमें दान देनेका पूरा उत्साह था इसलिये उसने अपनी माकी एक नहीं सुनी। भद्रमित्रकी उस समयको इस प्रकार दान परायणता देख भाट लोग इस प्रकार उसकी प्रशंसा करने लगे—

जो मनुष्य दानी है उसके लिये धन कोई चीज नहीं। जिनके चित्तमें राग भाव नहीं मोह उनका कुछभी नहीं कर सकता। जो शूरवीर हैं उनके लिये रण क्या चीज हैं वे निर्भय

भद्रमित्रनामा वणिक्सुतः ॥१३२॥ श्रुत्वा धर्मं ततः प्राज्यं ददौ दान स धीधनः। व्ययीकुर्वं तमालोक्य तस्मै माता चुकोप च ॥१३३॥ सविहृया वार्यमाणोऽपि दानं दातुं समुत्सुकः। बभूव च तदा कीर्तिर्वैतालिकमुखोद्गता ॥ १३४ ॥ दातॄणां क्रोधनोऽ रागचित्तानां मोह एव कः। शूराणां कातराणां च रणौत्सुक्याटनं च किं।१३५। कोपादसहमाना सा तद्दानं दुर्मतिप्रिया। काले मृत्वासनाटव्यां व्याघ्री जज्ञे विधेर्वशात् ॥१३६॥ रौद्रध्यानाद्भवेज्जीवो व्याघ्रमार्जारयोनिषु। प्रयाति पन्नगीभूय बुधोऽतस्तत्परित्यजेत् ॥१३७॥ एकदा भद्रमित्राख्यः क्रीडार्थं तद्वनं गतः। दृष्ट्वा तं सा महाकोपादखादत्स्वसुतं त्वरा ॥ १३८ ॥ यतः क्रोधो यतो माया यतो धर्मार्थनाशनं यतो वैरं यतो हिंसा धिक्तं लोभं च नाचरेत् ॥ १३६ ॥ स मृत्वा स्नेहतो भव्यो रामदत्तोदरेऽभवत्। सिंहचन्द्रः सुतो धीमान् मोन

होकर रणमें जाकर युद्ध करते हैं। भद्रमित्रकी मा अत्यन्त दुर्बुद्धि थी भद्रमित्रके द्वारा दिये गये दानको मारे क्रोधके उसने अच्छा नहीं कहा मरकर वह कर्मके उदयसे उसी आसना नामकी अटवीमें व्याघ्री हो गई। ठीक ही है रौद्रध्यान ऐसी बुरी चीज है कि उससे जीवको व्याघ्री और बिल्ली आदिकी योनियोंमें जन्म धारण करना पड़ता है। सर्प हो जाना पड़ता है इसलिये जो बुद्धिमान हैं उन्हें चाहिये कि वे रौद्र ध्यानका सर्वथा त्यागकर दें---कभी उसके जालमें न फसें॥१३२—१३६॥ एक दिनकी बात है कि सेठ भद्रमित्र क्रीड़ार्थ वनमें गया। उसकी पूर्वभवकी मा व्याघ्रीकी दृष्टि उसपर पड़ी और उसने पूर्वभवके बैरके कारण भद्रमित्रको खा डाला। यह निश्चय है कि इस दुष्ट लोभके ही कारण क्रोध, माया, धर्म और धनका नाश एवं बैर होता है इसलिये ग्रन्थकार कहते हैं कि ऐसे दुष्ट लोभके लिये धिक्कार है॥१३७।१३८॥ राजा सिंहसेनकी रानी रामदत्ताने भद्रमित्रकी पूर्ण प्रतिष्ठा रक्खी थी इसलिये भद्रमित्र रानी रामदत्तासे विशेष स्नेह रखते थे और उसे अपनी मासे भी अधिक मानते थे।

जिस समय व्याघ्रीके खानेके बाद सेठ भद्रमित्रकी मृत्यु हुई वह पूर्व भवके स्नेहके संबंधसे

बेतुरिवापरः ॥ १४० ॥ पुत्रोऽनुजस्ततो जज्ञे पूर्णचन्द्रो विशालदृक् । सिंहसेनस्य भूपस्य वल्लभौ तौ बभूवतुः ॥ १४१ ॥ रामापुत्राधिपत्योत्थं सुखं राजा बुभोज सः । लोकोत्तरं सुखं प्राप्य के न स्युर्मग्नधराः ॥ १४२ ॥ भाण्डागारावलोका र्थमेकदा काश्यपीपतिः । गतो रत्नादिसद्वस्तु दृष्ट्वा निर्यात्यसौ यदा ॥ १४३ ॥ दृशानिल्न तदा क्रोधाग्नदुः श्रुतिरगंधनः । धराधीशं महावैरादुल्कणोऽरुणलोचनः ॥ १४४ ॥ पपात धरिणीनाशो भूमौ पविनाद्रिन. ।

रानी रामदत्ताके गर्भसे आकर अवतीर्ण हो गया । उत्पन्न होनेपर सिंहचन्द्र उसका नाम रक्खा गया जो कि एक उत्तम बुद्धिका धारक था । कुमार सिंह चन्द्रका छोटा भाई एक दूसरा कुमार था जिसका कि नाम पूर्णचन्द्र था एवं वह अपने विशाल नेत्रोंसे अत्यन्त शोभायमान था । सिंहचन्द्र और पूर्णचन्द्र दोनों ही कुमार राजा सिंहसेनको बड़े ही प्यारे थे ॥ १३९—१४० ॥ इस प्रकार आज्ञाकारी स्त्री और दोनों पुत्रोंको पाकर राजा सिंहसेन लोकोत्तर संसारीक सुखका अनुभव करते थे। ठीक ही है लोकमें अद्वितीय सुख पाकर सभी आनन्दमें मग्न हो जाते हैं ॥ १४१ ॥ एक दिन राजा सिंहसेन अपने भण्डारके देखनेके लिये गये। उसमें रहनेवाली रत्न आदि वस्तु देखकर वे लोटते ही थे कि मन्त्री सत्यघोषके पूर्व भवके जीव अगन्धन सर्पकी दृष्टि उनपर पड़ गई। पूर्व वैरके सम्बन्धसे वह दुष्ट क्रोधसे आग बबूला हो गया। फणां ऊंचेको कर लिया। क्रोधसे दोनों नेत्र लाल कर लिये और सिंहसेनको डस लिया ॥१४२—१४३॥ वह सर्प एक अत्यन्त विषमय सर्प था इसलिये जिस प्रकार वज्रसे पर्वत नीचे गिर जाता है। पवनके तीव्र आघातसे वृक्ष उखड़ कर जमीन पर गिर पड़ता है उसी प्रकार राजा सिंहसेन भी सर्पके डसते ही नीचे जमीन पर गिर गये। महा राजकी यह दशा देखकर उसी समय अनेक वैद्य बुलाये गये और उनसे विषके नाश करनेके लिये कहा गया परन्तु उनमेंसे एक भी विषके नाश करनेके लिये समर्थ न होसका। अन्तमें गारुड़

उर्वीधरोऽथ वा वृक्षो वायुवेगाकुलीकृतः ॥ १४५ ॥ नानावैद्याः समाहूता विषनाशार्थमंजसा । ते सर्वे तद्विषं हतु शक्नुवंतिस्म नो यदा ॥ १४६ ॥ तदा गारुड़दण्डाख्यो विषवैद्योऽहिमर्दकः । आहूतो मन्त्रवित्प्राज्ञः ,पन्नगाकर्षणोत्कटः ॥१४७॥ मन्त्रं स्मृत्वा तदा तेन समाहूताश्च पन्नगाः । दिग्विदिक्संस्थिताः सर्वे समायाता भयार्दिताः ॥ १४८ ॥ उवाच विषवैद्यस्तान् दन्दशूकानिति स्फुटं । अग्नि कुंडं प्रविश्याशु निर्दोषा यांतु शुद्धितां ॥ १४९ ॥ मन्यथा निगृहीष्यामि तेनेत्युक्तास्तु पन्नगाः । जलाश्रयादिवाक्लेशान्निर्यांतिस्म

दंड नामके विष वैद्यको वुलाया गया जो कि सर्पोंकेमानको मर्दन करने वाला था मंत्रोंका जानकर विद्वान और सर्पोंको अपने पास खींचलानेमें बड़ा चतुर था ॥१४४—१४६॥ वस वहां आकर उसने अपने मंत्रका स्मरण किया। जिससे भयसे व्याकुल हो दिशा विदिशाओंमें रहनेवाले समस्त सर्प उसने अपने पास वुला लिये और वे सबके सव आगये ॥ १४७ ॥ जिस समय वे समस्त सर्प आ पहुंचे गारुड़दण्डने उनसे कहा—

तुम लोग इस अग्निकुण्डमें प्रवेशकर शुद्ध हो और निर्दोष होकर अपने अपने स्थानोंपर चले जाओ। यदि तुम लोग यह कार्य न करोगे तो याद रक्खो मैं तुम्हें कठोर दण्ड दूंगा। वस उस विषवैद्यके कहते ही चट पट समस्त सर्प अग्निकुण्डमें गिर गये एवं जिस प्रकार जलसे निकलकर बाहिर आजाते हैं और किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता उसी प्रकार वे समस्त सर्प अग्निसे निकल आये उन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। अगंधन नामका सर्प जो कि बिजलीके समान चंचल जीभका धारक था एवं क्रोधसे उसके दोनों नेत्र जाज्वल्यमान थे ज्योका त्यों खड़ा रहा। उसने बिषवैद्यकी कुछ भी नहीं सुनी। विषवैद्यको मालूम पड़ गया कि यही अपराधी हैं इसलिये उसने इस प्रकार कड़ककर कहा—

या तो तू इस राजाका विष पीकर इसे उज्जीवित करदे यदि तुझे यह वात मंजूर न हो तो

हुताशनात् ॥ १५० ॥ अगंधनः स्थितस्तत्र विषुज्जिह्वोऽग्निदृक्कुधा । तद्ग्राहेति न वैद्यो मुंचैनं वानलं विश ॥ १५१ ॥ महावैरोत्थ क्रोधेन भस्मितोग्नावगंधनः । कोलकाख्ये वने जज्ञे सल्लोमश्चमरोमृगः ॥ १५२ ॥ सिंहसेनो नरो मृत्वा कालेन सल्लकीवने । स.मजोऽभून्मदोन्मत्तोऽशनिघोषाभिधः परः ॥ १५३ ॥ तच्छोचनादिसंप्लुष्टवपुर्यष्टिर्विचक्षणा । रामदत्ता महामोहाद्विललाप कृपारवैः ॥ १५४ ॥ कराघातैश्च सा वक्षस्ताडयन्ती पुनः पुनः । पतंनी भूतले भूषां विक्षेपाम्लानलोचना ॥ १५५ ॥ हा नाथ ! मदनावास ! मम प्राणाधिकप्रिय ! । शत्रुपुराग्निजोमूत ! पूर्णे पांकस्य दीर्घदृक् ।१५६। विलासिनीमुखाम्भाजपुष्पप्रिय ! रतिप्रिय ! । मुक्त्वैकां मां महारा-

इस अग्निकुण्डमें प्रवेशकर। दोनों मार्गोंमेंसे एक मार्गका तुझे अनुसरण करना होगा। सर्प अगंधनकी आत्मा पूर्वभवके महाबैरसे पजली हुई थी उसने राजा का विष पीना स्वीकार नहीं किया। वह अग्निकुण्डमें प्रवेश कर खाख होगया एवं वह लोभी मरकर कीलक बनमें चमर नामका मृग हो गया। १४८—१५१। राजा सिंहसेन भी मरकर सल्लकीबनमें अशनिघोष नामका मदोन्मत्त हाथी हो गया॥ १५२ ॥ राजा सिंहसेनके मरजाने से रानी रामदत्ताका शरीर शोकाग्निसे दग्ध होगया। वह करुणा जनक रोना रोने लगी। मारे शोकसे वह हाथोंसे वक्षःस्थल कूटने लगी। जमीनपर पड़ गई। समस्त भूषण बसन उतारकर उसने फेंक दिये। एवं रोते रोते उसके नेत्र फीके पड़ गये। वह इस प्रकार चिल्लाकर रोने लगीं—

कृपानाथ.? तुम कामदेवके समान सुन्दर थे। प्राणोंसे भी अधिक प्यारे थे। शत्रुरूपी अग्निके लिये मेघ थे। पूर्णमासोके चन्द्रमाके समान विशाल नेत्रोंके धारक थे। स्त्रियोंके मुख रूपी कमलोंके भ्रमर थे और रतिकलामें प्रेम करने वाले थे। प्राणप्यारे। अभागिनी मुझ अकेलीको छोड़ कर आप कहां चले गये। १५३—१५६। मैं क्या करू कहां रहूं और तुम्हारे बिना प्राणोंको कैसे राखूं। नाथ। तुम्हारे बिना यह समस्त राज्य मुझे विषको ज्वालाके समान भयंकर जान पड़ रहा

जन् ! सांप्रतं क गतोऽसि हा ॥१५७॥ किं करोमि क तिष्ठामि कथं प्राणान् दधाम्यहं । विना त्वां भूतले राज्यं विषज्वालोपमं मम ।१५८। विद्यमाने धवे स्त्रीणां तन्नयद् ुष्करं वत । तदभावे हि राज्यादि पराधीनत्वतोऽरिवत् ॥ १५६ ॥ विलाप भूरि कृत्वेव विरराम नृपप्रिया तदा तत्र समायाते द्वे आर्ये प्रतिबोधने ॥ १६० ॥ एका दांतमती ख्याता हिरण्यादिमती परा । एताभ्यां रामदत्ता सा बोधिताख्याय सद्वृषं ॥ १६१ ॥ द्रव्यक्षेत्रादिसद्भावं ज्ञात्वाभ्यर्णे तयोस्तदा । जग्राह संयमं शुद्धं रामदत्ता पवित्रधीः ॥ १६२ ॥ सिंहचन्द्रोऽभव द्राजा सिंहोऽरातिगजोत्करे । पूर्णचन्द्रोलघुभ्राता यौवराज्ये बभूव च ॥ १६३ ॥ तयोर्भुंजानयो राज्यमिवाभूद्वत्सरः क्षणं । एकदा सिंहचन्द्रस्य पित्रोर्दुःखं हृदागतं ॥ १६४ ॥ तदानोमागतं श्रुत्वा पूर्णचन्द्राभिधं मुनिं । गत्वा नत्वा द्विधाधर्मं श्रुत्वा वैराग्यमाप सः

है । स्वामिन् ! पतिके विद्यमान रहते ही राज्य आदि समस्त पदार्थ सुखकर होते हैं किंतु उसके मरते ही पराधीन हो जानेके कारण वे सब शत्रुके समान दुःखदायी हो जाते हैं ॥ १५७ ॥ १५८ । इस प्रकार वहुतसा बिलापकर बड़ी कठिनतासे रानी रामदत्ता शांत हो पाई थी कि उस समय उसे प्रति बोध देनेके लिये दो आर्यिकाये आईं । दांतमती और हिरण्मती दोनों आर्यिकाओंके ये दो नाम थे । रानी रामदत्ताको धर्मका उपदेश दे संबोधा । रानी रामदत्ता भी पूर्ण-पंडिता थी । द्रव्य चेत्र आदिका स्वरूप समझकर उसने उन्हीं दोनों आर्यिकाओंके समीपमें संयम धारण कर लिया ॥ १५६—१६१॥ राजा सिंहसेनके मर जाने पर कुमार सिंहचन्द्र राजा बने जो कि शत्रुरूप हाथियोंका मान मर्दन करने वाले थे;एवं उनके छोटे भाई कुमार पूर्ण चन्द्रको युव-राज पद प्रदान किया गया । १६२। राजा सिंहचन्द्रको राज्य करते करते एक ही वर्ष व्यतीत. हुआ था कि अकस्मात् उनके;चित्तमें पिताका दुःख उत्पन्न हो गया । उसी समय एक पूर्णचन्द्र नामके मुनिराज भी वहां पर पधारे थे । राजा सिंहसेन उनका आगमन सुन उनके पास गये । भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । मुनिराजके मुखसे यती और श्रावकका धर्म सुना जिससे उन्हे संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया ॥ १६३—१६४॥ राजा सिंहचन्द्रने कुल परंपरासे प्राप्त राज्य अपने छोटे

॥ १६५ ॥ लघवे पूर्णचन्द्राय दावा राज्यं क्रमागतं । सिंहचन्द्रोहि तत्पार्श्वे गृहीतसंयमो मुनिः ॥ १६६ ॥ सिंहचन्द्रोऽप्रमादः सन्नप्रमादगुणस्थितः । स तपोनानाविधं कुर्वन् खचारणपदं समैत् ॥ १६७ ॥ तुर्यावगमोत्कर्षं पुनः प्राप तपोबलात् । सार्धद्वीपसूक्ष्मादि-पदार्थविषयं गतः ॥ १६८ ॥ मनोहरवनोद्याने रामदत्तेकदा मुदा । सिंहचन्द्रं तपःसंस्थं दृष्ट्वा तं वंदितुं गता ॥ १६९ ॥ नत्वेति तं

भाईको प्रदान किया एवं मुनिराज पूर्ण चन्द्रके चरणकमलोंमें दिगम्बरी दीक्षा धारण करली २६५ मुनिराज सिंहचन्द्रने जिस समय विकथा कशाय आदि प्रमादोंका नाश किया उससमय वे अप्रमत्त गुणस्थानके पात्र बनगये। वे अनेक प्रकारके तपोंका आचरण करने लगे जिससे तपोंके प्रभावसे उन्हें चारण ऋद्धि प्राप्त हो जानेके कारण वे चारण ऋद्धिधारी मुनिराज बन गये। तपके बलसे उन्हें मनः पर्यय नामका चौथा ज्ञान प्राप्त हो गया जिससे ढाई द्वीपके अंदर रहनेवाले शुभ पदार्थोंको वे अच्छी तरह जानने लगे ॥ १६५—१६७ आर्यिका रामदत्ताने मनोहर नामके बनमें तप करते हुए मुनिराज सिंहचन्द्रको देखा इसलिये प्रेम पूर्वक वन्दना करनेके लिये वह उनके पास गई भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया मुनिराज सिंहचन्द्र आर्यिका रामदत्ताके उसीभवके बड़े पुत्र थे इसलिये उन्हें देख पुत्रस्नेहसे उसका हृदय उमड़ आया। एवं मोहसे गद्गद हो वह इसप्रकार स्तुति करने लगी—

मुने! युवा अवस्थामें राज्यका त्याग कर आपने यह मुनि मुद्रा धारण की है इसलिये आपके लिये धन्यवाद है तुम राजा सिंहसेनके वश रूपी कमलके लिये सूर्य समान हो। विद्वान भव्यरूपी चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमाके समान हो और संसारसे पार होने वाले महापुरुष हो। बस इस प्रकार स्तुतिकर आर्यिका रामदत्ता मुनिराज सिंहचन्द्रके समीप बैठ गई एवं बार बार आदर पूर्वक उनके तपकी कुशल पूछने लगी तथा उसने इसप्रकार मुनिराजसे कहा—

सुतं स्नेहाद्रामदत्ता नयत्स्तुतिं । धन्यस्त्वं यौवने साधो ! राज्यं त्यक्त्वा भवेद्यतिः ॥ १७० ॥ सिंहसेनान्वयाम्भोजकर्मसाक्षी कलानिधिः । भव्यविद्वज्चकोरेषु त्वं संसारतरस्तरां ॥ १७१ ॥ स्तुत्वा स्थित्वा तदभ्यर्णे कुशलं तत्तपोविधौ । अन्वयुक्तादराद्दिव्या राम दत्ता मुहुर्मुहुः ॥ १७२ ॥ पप्रच्छेति मुनिं भूयः सा साधो ! तव बांधवः । पूर्णचन्द्राभिधो राज्यं धर्मं त्यक्त्वा भुनक्त्यरं ॥ १७३ ॥ सुखाकाङ्क्षी स किं धर्मं गृही ग्रहीष्यति वा नहि । ब्रूहि त्वं ज्ञानमार्गेण याथातथ्यं तपोनिधे ! ॥ १७४ ॥ सिंहचन्द्रो मुनिः प्राह युष्मद्धर्मं गृहीष्यति । रामदत्ता पुनः प्राह कथं साधो ! निगद्यतां ।१७५।मुनिः प्राह भवास्तस्य श्रुत्वा तान्मन्निरूपितान् । तदग्रे ज्ञानमार्गेण कथ

मुनिनाथ ! तुम्हारा वन्धु राजा पूर्णचन्द्र धर्मकी कुछ भी पर्वा न कर राज्य सुख भोग रहा है वह मुझे विषय सुखोंका प्रेमी जान पड़ता है कृपाकर कहिये कि वह पवित्र धर्मको धारण करेगा या नहीं क्योंकि तुम दिव्य ज्ञाननेत्रके धारक महापुरुष हो इसलिये अपने दिव्य ज्ञानके द्वारा यह बात मुझे समझा दीजिये ॥१६८—१७३॥ उत्तरमें मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा वह नियमसे जैन धर्मको धारण करेगा इस वातमें कोई सन्देह नहीं । रामदत्ताने फिर पूछा—प्रभो। किस उपायसे वह जैनधर्म धारण करेगा कृपाकर कहिये । उत्तरमें पुनः मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा—

मैं अपने अवधिज्ञानसे पूर्णचन्द्रके भवोंका वर्णन करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो और पूर्णचन्द्रको जाकर कह दो । तुम निश्चय समझो जिससमय वह अपने पूर्व भवोंको सुनेगा राज्य सुखमें अतिशय मग्न रहने पर भी वह नियमसे संसारसे विरक्त हो जायगा और दिगंबरी दीक्षा धारण करेगा । मुनिराज सिंहचन्द्रसे यह राजा पूर्णचन्द्रके वैराग्यका उपाय सुन आर्यिका रामदत्ता वडी प्रसन्न हुई और बड़े आदरसे उसने मुनिराजसे यह कहा—कृपाकर राजा पूर्णचन्द्र के पूर्वभवोंको आप कहिये मैं सुननेके लिये तयार हूं । उत्तरमें मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा—मैं खुला सा रूपसे राजा पूर्णचन्द्रके पूर्वभवोंको कहता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

यन्तु सुभावतः ।१७६। श्रुत्वा स्वभवसम्बन्धं निर्विण्णो भवसागरे । अधिगम्याधिपत्ये स वैराग्यं प्रव्रजिष्यति ।१७७।न्ध्वं तद्भवसंबंधं शृणोमि सादरं यतः । तदा प्राह मुनिः सुष्ठु शृणुतास्य भवस्थितिं ।१७८।जंबूद्वीपेत विख्याते भारते विषयो महान् । कोशलः कुशलैर्लोकैः संपूर्णः सम्पदा भृतः ॥ १७६ ॥ वृद्धपौरैः समाकीर्णो वृद्धग्रामो मनोहरः । मृगायणाभिधस्तत्र विद्यते वाड़वाग्रिमः ।१८०। धर्मपत्नी च तस्यै व बभूव मधुराह्वया । स्वर्णचम्पकसद्वर्णा भर्तुः स्वेच्छानुचारिणी ।।१८१।। बभूव वारुणीनाम्ना तयोः पुत्री विशालधीः । मृगायणो ऽथ कालांते मृतो भोगप्रियो ध्रुवं ॥ १८२ ॥ अथ प्राक् पुरुदेवस्य भक्त्ये निर्मितामरैः । साकेता द्विरसैस्त्रियुक् योजनैर्भाति भूतले ॥ १८३ ॥ तत्र राजारिसन्तानध्वंसी सामन्तसेवितः । रराजातिवलो नाम्ना तिमीशवदनो महान् ॥ १८४ ॥ तस्य रामा रमेवासीत्सुम-

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कोशल नामका महादेश है जो कि विद्वान लोगोंसे परिपूर्ण है और संपदाका खजाना है। कोशल देशमें एक वृद्धग्राम नामका महामनोहर नगर है जो कि सब बातोंमें वृद्ध पुरवासी जनोंसे भरा था। वृद्धगाम नगरमें एक मृगायण नामका ब्राह्मणोंका सरदार रहता था। उसकी धर्मपत्नीका नाम मधुरा था जो कि सोना और चंपाके रङ्गके समान महामनोहर वर्णकी धारक थी और पतिकी अतिशय आज्ञाकारिणी थी ॥१७४—१८०॥ उन दोनों ब्राह्मण और ब्राह्मणीके एक वारुणी नामकी पुत्री थी जो कि अत्यन्त वुद्धिमती थी कदाचित् काल पाकर उसका पिता मृगायण मर गया ॥ १८१—१८२ ॥

इसी पृथ्वीपर एक साकेता नामकी नगरी है जिसका कि निर्माण भगवान ऋषभ देवके समयमें उनकी भक्ति प्रगट करनेके लिये देवोंने किया था और जो बारह योजन पर्यन्त पृथ्वीपर विस्तीर्ण है। साकेता नगरीका स्वामी राजा अतिवल था जोकि अपने शत्रु राजाओंके वंशका नाश करनेवाला था। अनेक सामंतोंसे सेवित था। चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान और महान था ॥ १८३ । १८४ ॥ राजा अतिवलकी रानीका नाम सुमति था जो कि लक्ष्मीके समान परम सुन्दरी

त्याख्या पिकस्वना । श्यामा रक्ताधरा हंसगतिर्गंभीरगीर्वरं ॥ १८५ ॥ तयोर्हिरण्यवत्याख्या पुत्री जाता मृगायणः । भोगोदयविपाकेन स्त्रीत्वं प्राप्नोति मानवः ॥ १८६ ॥ विवादिनो वदंतीत्थं नास्तिकैकांतदृष्टयः । गोधूमादिसुजातीनां प्रादुर्भावो हि नान्यथा ॥ १८७ ॥ नरत्वं स्त्री नरः स्त्रीत्वं पशुर्नृत्वं नरस्तथा । प्राप्नुयान्नविचारेण क्षेत्रधान्यादिवद्गतिः ॥१८८॥ वादिनो भो भवद्भिश्च यदुक्तं सत्यमेव तत् । यद्धान्यमुप्यते क्षेत्रे तद्धान्योत्पत्तिरेव हि ॥ १८९ ॥ जैनाः कर्मप्रधानीयाः नानाकर्माणि संत्यहो । अभुक्त्वा तत्क्षयो नास्ति कल्पकोटिशताधिकैः १९० ॥ आत्मक्षेत्रं समादिष्टं तत्त्वज्ञानादसंशयं । कर्मबीजोदयो यादृक् समुत्पत्तिस्तु तादृशी ॥ १९१ ॥

थी। कोकिलाके समान वचन बोलने वाली थी। श्यामा थी। लाल २ होंठोंकी धारक हंसके समान मनोहर गतिसे चलनेवाली गम्भीर वचन बोलनेवाली और प्रशस्त थी ॥ १८५ ॥ मृगायण का जीव ब्राह्मण, रानी सुमतिके गर्भसे हिरणवती नामकी पुत्री हुआ ठीक ही है। अति रूपसे भोग बिलास करनेवाला पुरुष भी स्त्री हो जाता है ॥ १८६ ॥ जो पुरुष एकांत मिथ्यादृष्टि और नास्तिक है उनका कहना यह है कि गेहू आदि पदार्थोंके समानही जीव पदार्थकी उत्पत्ति होती है, जीव पदार्थ अनादिनिधन नहीं क्योंकि वे यह मानते हैं कि क्षेत्रमें जिस प्रकार धान्यसे दूसरा धान्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार स्त्रीसे पुरुष पुरुषसे स्त्री पशुसे पुरुष पुरुषसे पशु स्वभावसेही उत्पन्न हो जाता है ॥१८७--१८९॥ ग्रन्थकार इसका उत्तर देते हैं कि तुम्हारा एकान्त मिथ्यादृष्टि वादियोंका कहना कथंचित ठीक है क्योंकि क्षेत्रमें जो धान्य बोया जाता है उसी धान्यकी उत्पत्ति होती है जैन सिद्धांतके अनुयायी पुरुष कर्मको प्रधान मानते है। वे कर्म अनेक प्रकारके हैं। बिना उनका फल भोगे करोड़ों कल्पकाल क्यों न बीत जाय उनका क्षय नही हो सकता ॥१९०॥ यह निश्चय है तत्त्व ज्ञानियोंने अपने तत्त्व ज्ञानसे आत्माको क्षेत्र कहा हैं उसमें जैसा कर्म रूपी बीज पड़ता है वैसी ही उत्पत्ति होती है अर्थात् पुरुषपनेका कारण यदि कर्म उत्पन्न होगा तो पुरुष उत्पन्न होगा।

अतः कर्मविपाकेन नानायोनित्वमाश्रयेत् । तत्सम्बन्धक्षये मोक्षो जीवःस्यात्परमं महः ॥ १६२ इत्यलं कुविवादेन धर्मध्वंसो यतो भवेत् तत्त्वज्ञानश्रया ये तु वादं कुर्वंति जातु न ॥ १६३ ॥ सत्यज्ञानं विवादे भो मानवानां भवत्यरं । तत्क्षये ज्ञानसंसिद्धिर्विनिर्धूमप्रदीपवत् ॥ १६४ ॥ सा क्रमाद्यौवनं प्राप्ता ललितांगी ललद्गतिः । लोलदृक् पीवरस्थूलनितम्बोद्धारशालिनी ॥ १६५ ॥ सुरम्यो विषयोऽथास्ति

और स्त्री पनेका कारण कर्म होगा तो स्त्री होगी इसलिये यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जाती है कि जब तक इस जीवके साथ कर्मका संवंध रहता है तब तक यह अनेक प्रकारकी योनियोंमें घूमता फिरता हैं किन्तु जिस समय उस कर्मकें संबन्धका सर्वथा नाश हो जाता है उस समय जीवको मोक्षकी प्राप्ति होजाती है जो मोक्ष एक उत्कृष्ट तेज कहा जाता है ॥ १६१—१६२ ॥ वस विशेष कुविवादके करनेकी कोई आवश्यता नहीं क्योंकि खोटे विवादसे वास्तविक धर्मका नाश हो जाता है। जो पुरुष तत्त्व ज्ञानी हैं वे कभी भी किसी प्रकारका विवाद नहीं करते ॥ १६३ ॥ जिस प्रकार धूंवाके रहते दीपकका प्रकाश मदमेला रहता है किन्तु जिस समय धूंआ नष्ट हो जाता है उस समय दीपकका प्रकाश उज्ज्वल हो जाता है उसी प्रकार विवाद करनेसे मनुष्योंमें अज्ञानकी वृद्धि होती है और विवाद न करनेसे ज्ञानकी भले प्रकार सिद्धि होती है ॥ १६४ ॥ मृगायणाका जीव कन्या हिरणवती क्रमसे युवति होगई। उसका समस्त अङ्ग सुडौल मनोहर था। लीला पूर्वक वह गमन करने वाली थी। चंचल नेत्रोंकी धारक थी एवं स्थूल स्तन और नितंबोंके भारसे शोभायमान थी ॥ १६५ ॥

इसी पृथ्वीपर एक सुरम्य नामका देश है जो कि यथार्थ नामका धारक हैं। सुरम्य देशके अन्दर एक पोदन नामका नगर है जो कि अपनी सुन्दरतासे राजराजपुर—कुवेरपुरी अलकाकी शोभा धारण करता है ॥ १६५ ॥ पोदन पुरका स्वामी राजा पूर्ण चन्द्र था जो कि यशस्वी था। पूर्ण

नामान्वर्थं समुद्वहन्। पोदनाख्यं पुरं तत्र राजराजपुरोपमं ॥ १९६ ॥ तत्र राजा यशःसंज्ञः पूर्णचन्द्राभिधोऽजनि। पूर्णचन्द्रमुखः पूर्ण रामाभोगपुरंदरः ॥ १९७ ॥ ददावतिवलो राजा पूर्णचन्द्रनृपाय तां। हिरण्यादिवतीमाशु पङ्कजारुणपत्तलां ॥ १९८ ॥ प्रगल्भया तया सार्कं रेमे राजा चिरं सुखं। भोगावच्छिन्नभावेन कजमृद्वधारवर्णया ॥ १९९ ॥ भुञ्जानयोस्तयोः सोऽयं सुता जाता विधेर्वशात्। मधुरा ब्राह्मणी सैव रामदत्ता त्वमुत्तमा ॥ २००॥ भर्ता मातृत्वमायाति जाया पुत्री भवेद्रहो। पुत्री पुत्रत्वमाप्नोति धिक् धिक् संसार-चित्रतां ॥ २०१ ॥ भद्रमित्रवणिक् योऽहं सिंहचन्द्राभिधस्तव। पुत्रो भूत्वातिमोहेन मुनीन्द्रपदमाश्रितः ॥ २०२ ॥ तवैव प्राग्भवे याऽभूत् वारुणी पुत्रिका शुभा। सा मृत्वा पूर्णचन्द्राख्यो मेऽनुजोऽभूत्तवोदरे ॥ २०३॥ त्वत्पिमता पूर्णचन्द्रो यः पोदनाधीश्वरो हि मः। त्यक्त्वा

चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था ॥ २९६ ॥ राजा अतिवलने कमलके समान लाल-२ चरणोंसे शोभायमान कन्या हिरणवतीका विवाह राजा पूर्णचन्द्रके साथ कर दिया ॥ २९७।२९८ ॥ कन्या हिरणवती अपनी प्रौढ अवस्थासे शोभायमान थी। कमलके समान कोमल और सुन्दर वर्ण की धारक थी इस लिये राजा पूर्णचन्द्रने चिर काल तक उसके साथ मनमाना सुख भोगा ॥२९९॥ वहुत दिनतक भोग विलास करते २ उन दोनोंके एक पुत्री हुई जो कि मधुरा ब्राह्मणीका जीव था वही मधुरा ब्राह्मणीका जीव तू रामदत्ता है ॥ २०० ॥ यह संसारको वड़ी भारी विचित्रता है कि इसमें जो अपना पति है वह तो माता हो जाता है। स्त्री पुत्री हो जाती है और पुत्री पुत्र वन जाता है इसलिये ऐसे दुःखप्रद संसारके लिये सहस्र वार धिक्कार है ॥ २०१ ॥ मेरा तेरे ऊपर विशेष मोह था इसलिये भद्रमित्र नामका जो मैं सेठ पुत्र था वह तेरा सिंहचन्द्र नामका मैं पुत्र हुआ हूं जो कि मैं इस संसारसे विरक्त हो मुनि वन गया हूं ॥ २०२ ॥ पहिले भवमें जो तुम्हारे वारुणी नामकी कन्या थी वही मरकर तुम्हारे उदरसे उत्पन्न मेरा छोटा भाई पूर्णचन्द्र हुआ है। ॥ २०३ ॥ तुम्हारा पिता राजा पूर्णचन्द्र जो कि पोदन पुरका स्वामी था समस्त राजपाटको छोड़

राज्यं प्रवव्राज भद्रबाहुसमीपके ॥ २०४ ॥ आवयोः स गुरुर्जज्ञे सर्वावधिविलोचनः । आर्यिकादांतमत्यन्ते तव मातापि दीक्षिता ॥ २०५ ॥ त्वत्पतिः सिंहसेनाख्यो मृत्वा दष्टोऽहिना नृपः । करींद्रोऽशनिघोषाख्यः प्रौढो घन इवापरः ॥ २०६ ॥ भूत्वारण्ये भ्रमन् मत्तो मां ... जिघांसया । धावतिस्म मयाकाशे स्थित्वाऽसौ प्रतिबोधितः ॥२०७॥ मयोक्तं पूर्वसंबंधं श्रुत्वा सम्यक् प्रबुद्धवान् । संयमासंयमं भव्यः कुम्भी सद्यः समग्रहीत् ॥ २०८ ॥ स्थिरचित्तः सनिर्वेगो ज्ञात्वा देहाद्यसारतां । कृत्वा मासोपवासादीन् शुष्कपत्राणि भक्षयन् ॥ २०९ ॥ कुर्वन्नेव महासत्वश्चिरं घोरतरं तपः । कृशोऽभूच्छक्तिहीनत्वात्पयोधिरिव निर्जलः ॥ २११ ॥ अथो यः पूर्वद्विट् सर्पो

कर मुनिराज भद्रबाहुके समीप दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगया था वही अवधि ज्ञानसे शोभायमान हमारा गुरु हुआ है। तुम्हारी माताने भी आर्यिका दांत मतिके समीपमें आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये हैं। तुम्हारा पति सिंहसेन जो. कि सर्पने डस लिया था अशनिघोष नामका विशाल हाथी हुआ जो कि साक्षात् काला मेघ सरीखा जान पड़ता था। वह इसी वनमें एक दिन मदोन्मत्त हो घूम रहा था कि उसने मुझे देखा एवं एकदम वह मुझपर मारनेके लिये टूट पड़ा। मैं चारण ऋद्धिका धारक था इसलिये मैं आकाशमें ऊपर स्थित होगया एवं मैंने उसे सुन्दर वाक्योंमे पूर्व जन्मका वृतान्त सुनाकर प्रतिबोध दिया। जिस समय उसने मुझसे अपने पूर्व भवका वृतान्त सुना तो वह एक दम प्रतिबुद्ध होगया और मेरे उपदेशानुसार उसने शीघ्रही संयमासंयम-देश चरित्र धारण कर लिया ॥ २०४—२०८ ॥ वह अशनिघोष हाथी उस दिनसे स्थिर चित्त होगया। शरीर आदिको असार जानकर वह एक दम विरक्त होगया। एकमास तो कभी एक पक्ष आदिका उपवास करने लगा। जीव हिंसाके भयसे सूखे पत्ते खाने लगा इस प्रकार अत्यन्त बलवान भी वह चिर काल तक घोर तप तपनेके कारण एकदम कृश होगया इसीलिये जिस प्रकार जल रहित समुद्र शोभा नहीं पाता उसी प्रकार शक्तिहीन वह हाथी भी शोभायमान नहीं जान पड़ता था ॥ २०९—२१० ॥

मृत्वाऽभूच्चमरो मृगः । पुनर्मृत्वा स संजज्ञे कुर्कुटाहिः क्रुधान्वितः ॥ २११ ॥अन्यदा स गजस्तोयं पातुं मासोपवासवान् । यूपकेसरिणी नाम सरित्तीर्थे प्रविष्टवान् ॥ २१२ ॥ क्षामकायोऽपतत्तत्र कर्दमे कुञ्जराधिपः । सर्पस्तं पतितं दृष्ट्वा पूर्ववैराच्चुकोप सः ॥ २१३ ॥ आरुह्य मस्तकं तस्य पीलोः परमधर्मिणः । दन्दशीतिस्म स व्यालः सांहास्तद्धिजहाति न ॥ २१४ ॥ रागद्वेस्तद्विषेणैव समाधिमरणादभूत् । विमाने श्रीधरोदेवः सहस्रारे रविप्रभे ॥ २१५ ॥ सचिवः सिंहसेनस्य धम्मिल्लाख्यश्च स मृतः । तत्रैव कानने सोऽभूत

मन्त्री सत्यघोषका जीव जो मर कर सर्प हुआ था और राजा सिंहसेनको काटनेसे वह उनका वैरी होचुका था अपनी सर्पकी पर्यायसे मरकर वह चमर मृग हुआ था एवं पुनः वहांसे मरकर क्रोधके कारण वह कुर्कुट जातिका सर्प होगया ॥ २११ ॥

एक दिनकी बात है कि एक मासका उपवासी वह अशनिघोष हाथी यूपकेसरिणी नामक नदीके किनारे जल पीनेकी अभिलाषासे गया। वह एकदम कृशशरीरका धारक था इसलिये उसके गाढ़े कीचड़में फसकर गिर गया। उसके पूर्वभवका वैरी वह सर्प भी वहीं पर उत्पन्न हो गया बस हाथी अशनिघोषको देखते ही पूर्वभवके वैरसे उसका क्रोध उमड़ गया। परम धर्मात्मा उस हाथीके मस्तकपर वह चढ़ गया एवं उसे डसलिया ठीक ही है जो पापी होते हैं वे अपने पापकर्मों को छोड़ते नहीं ॥ २१२—२१४ ॥ हाथी अशनिघोषने सर्पके तीव्र बिषके कारण समाधिमरण पूर्वक अपने प्राण छोड़े एवं वह सूर्यके समान देदीप्यमान सहस्रारविमानमें श्रीधर नामका देव हो गया ॥ २१५ ॥ राजा सिंहसेनका जो धम्मिल्ल नामका मन्त्री था वह मरकर उसी वनमें जिसमें कि हाथी अशनिघोष उत्पन्न हुआ था वन्दर हो गया एवं हाथी और उसकी आपस में गहरी मित्रता हो गई ॥ २१६ ॥ जिससमय वन्दरने अपने मित्र हाथीको सर्पसे डसा देखा मारे

वानगे गजमतंसखा ॥ २१६ ॥ दृष्ट्वा मित्रं गजं दष्टं तेनाहिर्वानरेण सः । हतोऽगात्तृतीये श्वभ्रे कुर्कुटः पापभाजनं ॥ २१७ ॥ अन्त मुहूर्तमात्रेण सूपपादशिलानलात् । समुत्थाय लुलोकासौ चिरं स्वर्गश्रियं सुरः ॥ २१८ ॥ कौतस्कुतश्चप्सरःपंक्तिर्विमानाश्च कुतस्तरां श्वभ्रक्रीडागसौधालिर्द्रश्यते शंबरो नु वा ॥ २१९ ॥ देवं भ्रांतिगतं दृष्ट्वा समूचुस्तं सुरांगनाः । भो भो नाथ ! वयं रमाः समस्तवैव सुराश्रितः ॥ २२० ॥ भावनोऽथ सुरावासो यदन्यत् तवैव तत् । अतः किं तर्कयैश्चित्ते मागास्त्वं भ्रांतिमन्दिरं ॥ २२१ ॥ श्रुत्वा देवांगना वाक्यं स दध्याविति चनसि । अश्रं किं कृतं पुण्यं यदत्रागतोऽस्म्यहे ॥ २२२ ॥ एवं चिंतयतस्तस्य प्रादुरासीत्तृतीयद्रुक् । तदैव

क्रोधके उसका हृदय पजल गया। उसने अपने मित्रका वदला लेनेके लिये उस कुर्कुट सर्पको मार डाला जिससे वह पापी मर कर तीसरे नरकमें गया एवं राजा सिंहसेनका जोव श्रीधर देव अचरज भरी दृष्टिसे स्वर्गको लक्ष्मीको देखकर मनही मन यह विचारने लगा—

कहांसे तो ये देवांगनाओंकी कतार आई। कहांसे ये विमान आये और अपनी ऊंचाईसे आकाशको स्पर्शनेवाले ये बड़े २ महल कहांसे आये ? यह इन्द्रजालका खेल तो नहीं है। देव श्रीधर को स्वर्गकी विभूतिसे इसप्रकार आश्चर्यमय देखकर उसकी नियोगिनी देवियोंने कहा—

प्राणनाथ ! हम जो देवांगना दीख रहीं हैं वे आपकी ही स्त्रियां हैं। यह महल आपका ही है तथा और भी जो चीजें आप देख रहे हैं सब आपकी ही हैं। आप यहांकी विभूति देख कर जो आश्चर्य कर रहे हैं वह व्यर्थ है। आपको इसविभूतिको देखकर किसी प्रकारका भ्रम नहीं करना चाहिये ॥ २१७—२२१ ॥ देवांगनाओंके इसप्रकार वचन सुन देव श्रीधरको बड़ा आश्चर्य हुआ एवं वह अपने मनमें इसप्रकार विचार करने लगा—

मैंने ऐसा कौनसा ठोस पुण्य किया था जिसके कारण मैं यहां आकर उत्पन्न हुआ हूं ! उसीसमय उसके अवधिज्ञान उदित होगया एवं उसके द्वारा उसने समझ लिया कि मैं जो हाथी था वह कीचड़में फस जानेके कारण मरकर देव हुआ हूं ॥ २२२—२२३ ॥ बस वह अपने मनमें

पतितं नागं ददर्शावधिलोचनः ॥ २२३ ॥ तदा संभावयामास चेतसीति मुहुर्मुहुः । धन्यं व्रतं यतोजीवस्तिर्यगपि सुरोभवेत् ॥ २२४ ॥ धन्यास्ते गुरवो भूमौ ज्ञानसारङ्गमध्यमाः । तरन्ति तारयंत्येव नौका इव व्रतं यतः ॥ २२५ ॥ आरभ्य तद्दिनं देवो बुभोज स्वर्गसंपदं असंख्यातसमुद्रेषु द्वीपेषु क्रीडयन् स्थितः ॥ २२६ ॥ क्रीडाशैलेषु देवीभिः शब्दभोगो महर्द्धिकः । रेमे तपः समुद्भूतं फलं लब्ध्वा लसद्द्युतिं ॥ २२७ ॥ चतुर्हस्तोन्नतांगं स सप्तधातुविवर्जितं । हैमगंधिवभारेव चन्द्रभं पुण्यसंचयं ॥ २२८ ॥अष्टादशसमुद्रायुर्मनसा हारमाहरन् । अष्टादशसहस्रैश्च वत्सरैः पुण्यतोऽमरः ॥ २२९ ॥ तावत्पक्षैः समुच्छ्वासं सुगंधीकृतदिग्चयं । कुर्वन् स्वर्गगपुष्पौघ-

बड़ा ही प्रसन्न हुआ और बार बार इसप्रकार विचारने लगा—व्रताचरणको धन्यवाद है जिसके कारण तिर्यंच भी जीव देव हो जाता है ॥ २२४ ॥ संसारमें वे गुरु धन्यवादके पात्र हैं जो ज्ञानरूपी समुद्रके अन्दर विद्यमान हैं एवं नावके समान जीवोंको संसारसमुद्रसे पार करते हैं और स्वयं भी पार होते हैं एवं जिनके द्वारा व्रतोंकी प्राप्ति होती है ॥ २२५ ॥ श्रीधर देवको जब अच्छी तरह ज्ञान होगया तब वह उसदिनसे स्वर्गकी सम्पदाको भोगने लगा। असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें जाकर क्रीडा करने लगा। वह विपुल ऋद्धिका धारक श्रीधर देव अनेक क्रीडा पर्वतोंपर शब्द जनित भोग भोगने लगा। एवं सुन्दर कांतिका धारक वह तपसे जायमान उत्तम फलको पाकर सानन्द क्रीडा करने लगा ॥ २२७ ॥ देव श्रीधरका शरीर चार हाथ प्रमाण था जो कि मलमूत्र आदि सात धातुओंसे रहित था। चन्दनके समान महकने वाला चन्द्रमाके समान कांति वाला और पुण्यका समूह स्वरूप था। देव श्रीधरकी आयु अठारह सागर प्रमाण थी। अपने तीव्र पुण्य की कृपासे वह अठारह हजार वषबाद एक बार मनसे आहार ग्रहण करता था। अठारह पक्षोंके बाद ही वह उच्छ्वास लेता था जो कि अपनी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको महकानेवाला था एवं वह देव सदा कल्पवृक्षोंके सुगंधित पुष्पोंसे बनी पुष्पमालाओंको धारण करता रहता था। उसके पद्म नामकी लेश्या थी। सदा भगवान जिनेंद्रका वह ध्यान करता रहता था। मेरु आदिकी

भूषितः श्रीधरो मरुत् ॥ २३० ॥ पद्मलेश्यो जिनं ध्यायन् यात्रार्थं मेरुषु व्रजन् । नानानाट्यरसान् पश्यन् गतं कालं विवेद न ॥२३१॥
यतो भवति लेखपोऽमरवधूमुखांभोजलिट् । निकायकलरूपवान् बहुविलासिनीभोगभाक् ॥
व्रतादखिलभूमिपः परमधामसौख्यालयः । अगम्यमिह किं यतस्त्रिभुवने विधीयेत तत् ॥ २३२ ॥

इत्यार्षे श्रीवृहद्विमलनाथपुराणे भव्वरत्नभूषणाम्नायालङ्कारब्रह्मचारिकृष्णदास
विरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे सिंहसेनचरश्रीधरदेवो
त्पत्तिवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

यात्रा करता था। नाना प्रकारके नाट्य रसोंको देखता था इसलिये उस दिव्य सुखमें इस बातका पता ही नहीं लगता था कि मेरा काल कहां वीत रहा है ॥ २२८—२३१॥ ग्रन्थकार व्रतकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस व्रत ही की कृपासे जीव देवांगनाओंके मुखकमलका आस्वादनेवाला देव हो जाता है। सुन्दर शरीर कलायें और रूपका धारक होता है। भांति भांतिकी सुन्दर स्त्रियों-का भोक्ता होता है। समस्त पृथ्वीका स्वामी मोक्षसुखका स्थान होता है विशेष क्या तीनों लोकमें ऐसी कोई चीज नहीं जो इस व्रतके अगम्य हो अर्थात् व्रताचरणकी कृपासे जीवोंको सब बातें सुलभ रूपसे मिल जाती हैं। धर्मात्माओंको चाहिये कि वे व्रताचरणसे एक क्षण भी अपने चित्तको विमुख न करें ॥ ३३२ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकारस्वरूप ब्रह्ममंगलदासकी सहायतासे
ब्रह्मकृष्णदास विरचित वृहत् विमलनाथपुराणमें सिंहसेनके जीव श्रीधर
देवकी विभूतिका वर्णनकरनेवाला सातवां सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

आठवां सर्ग ।



आदिदेवं परं ज्योतिः सिद्धं सर्वार्थगोचरं । शिक्षोद्धारं जगत्कारं गोपार्च्यं संस्मराम्यहं ॥ १ ॥ अथवात्र वने व्याधो नाम्ना शृंगालवानिति । दृष्ट्वा तं पतितं नागं तुतोष हृदये निजे ॥ २ ॥ शुक्तिजानि रदौ तस्य भूरितेजांसि चोन्नतौ । आदाय गतवान् सिंहपत्तने शबराग्रणीः ॥ ३ ॥ धनमित्रोऽस्ति तत्रैव राजश्रेष्ठी शुभाशयः । ददौ तस्मै स तौ तानि बहुमूल्यानि चादरात् ॥ ४ ॥ पूर्णचन्द्रमहीशाय सोऽपि श्रेष्ठी ददौ मुदा । शुक्तिजानि च दन्तौ द्वौ शुक्रतेजांसि सुन्दरौ ॥ ५ ॥ पूर्णचंद्रोऽपि तद्व्यया व्यधात्पादचतुष्टयं

जो भगवान ऋषभदेव उत्कृष्ट ज्योतीस्वरूप हैं । समस्त कर्म्मों से रहित सिद्धस्वरूप हैं । समस्त पदार्थोंके जानकार सर्वज्ञ हैं । जगतमें वास्तविक शिक्षाके प्रदान करनेवाले हैं और गोप-बड़े २ मुनियोंसे स्तुत है उन भगवान ऋषभदेवको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ जिस वनमें हाथी अशनिघोष मरा था उसी वनमें शृंगालवान नामका एक भील रहता था । हाथीको इसप्रकार मरा देख उसे बड़ा हर्ष हुआ । अत्यन्त देदीप्यमान गजमोती और दांत उसने ले लिये और वह राजा पूर्णचन्द्रकी राजधानी सिंहपुरकी ओर चल दिया ॥ २—३ ॥ सिंहपुरमें उससमय एक धनमित्र नामका सेठ रहता था जो कि राज सेठ था और उत्तम हृदयका था । भीलने दोनों दांत और गजमोती जो कि बहुमूल्य थे उस सेठको जाकर दे दिये ॥ ४ ॥ राजसेठ धनमित्रने भी उसे बहुमूल्य वस्तु समझ राजा पूर्णचन्द्रकी भेंट कर दिये उन्हें देखकर पूर्णचन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ क्योंकि वे गजमोती शुक्र विमानके समान देदीप्यमान थे और दोनों दांत परम सुन्दर थे ॥ ५ ॥ रति प्रेमी और शोभामें कुबेरकी उपमा धारण करनेवाले राजा पूर्णचन्द्रने उन दोनों दांतों

पल्यंकस्य रतिप्रेमा राजराजाधिकक्रमः ॥ ६ ॥ शुक्तिजानां विधायाशु हारं चेतोहरं निजे । आससंजोरसि प्रीत्या संसारस्येदृशी गतिः ॥ ७ ॥ अतो मातर्भवे तोषं को विदध्या इतीच्छया । धनं घ न्यं सुतस्त्र्यादि कस्याभूद् तन्न्रे वद ॥ ८ ॥ वल्लभः कस्यचित्कोऽपि नास्ति स्वार्थादृते ध्रुवं । असारः खलु संसारो जन्मनाशादिदुःखदः ॥ ९ ॥ उक्त्वेत्थं संसृतेर्भावं योगमाश्रितवान्मुनिः । रामदत्तापि तच्छ्रुत्वा त्रिधावैराग्यसंगता ॥ १० ॥ जगामानुजपुत्रस्य प्रतिवोधाय वेगतः । स्नेहतस्तत्र गत्वाशु वोधयामास तं सुतं ॥ ११ ॥ नाना भेदैर्यदा सोऽपि प्रतिवोधं हि नागतः । तदास्य मुनिना प्रोक्तां कथां सा समचीकथत् ॥ १२ ॥ वृत्तिं श्रुत्वा भवोद्भूतां भव्यत्वान्नृप

के तो पलङ्गके चार पाये वनवालिये और गजमोतियोंका महामनोहर हार वनवालिया जोकि प्रीति पूर्वक अपने गलेमें पहिना ठीक ही है संसारकी यही दशा है ॥ ६—७ ॥ माता! तुम्हीं कहो संसार की यह भयंकर दशा देख कौन वुद्धिमान इसमें सन्तोष धारण कर सकता है । एवं धन धान्य पुत्र स्त्री आदि किसके संसारमें हुए हैं ! तुम निश्चय समझो विना स्वार्थके कोई भी किसीसे संसारमें प्रेम करना नहीं चाहता क्योंकि यह संसार असार है और जन्म मृत्यु आदि दुखोंका देनेवाला है ॥ ८—९ ॥ मुनिराज सिंहसेन सवोंकी पूर्वभवावलि सुनाकर चुप होगये आर्यिका रामदत्ता भी उसे सुनकर मन वचन कायसे एकदम विरक्त हो गई ॥ १० ॥ मोहसे मोहित हो आर्यिका रामदत्ता अपने छोटे पुत्र पूर्णचन्द्रके प्रतिवोधनेके लिये शीघ्र ही सिंहपुरकी ओर चल दी और राजा पूर्णचन्द्रको अनेक प्रकारसे प्रतिवोधने लगी परन्तु राजा पूर्णचन्द्र संसारमें एकदम लिप्त था इस लिये आर्यिका रामदत्ताके वचनोंका उसपर रंचमात्र भी असर नहीं पड़ा । जव आर्यिका रामदत्ता ने यह समझ लिया कि—

यह किसी प्रकारसे प्रतिवुद्ध होना नहीं चाहता तव उसने जो मुनिराज सिंहचन्द्रने राजा पूर्णचन्द्रके पूर्व भवका वृतांत कहा था कह सुनाया ॥ ११—१२ ॥ राजा पूर्णचन्द्र भी भव्य पुरुष

पुङ्गवः । संसारानित्यतां चिंत्य विरागत्वमुपागतः ॥ १३ ॥ गृहीतधर्मतत्त्वोऽसौ चिरं राज्यमपालयत् । सम्यक्त्वालंकृतांगः सन् का-मिनीवल्लभोभृशं ॥ १४ ॥ रामदत्तापि कालांते निदानमकरोदिति । एतेषां मे पुनर्भूयात्संयोगः स्नेहतो ध्रुवं ॥ १५ ॥ महाशुक्रे विमानेऽभूद्भास्करे भास्कराह्वयः । ऋतुचन्द्रसमुद्रायुः पद्मलेश्यो हिमद्युतिः ॥ १६ ॥ षोडशायुतवर्षेश्च मानसाहारमाहरन् । पक्षैः षोडशभिर्देवः श्वसन् विक्रियभूषितः ॥ १७ चतुर्बाहुप्रमाणांगोऽसंख्यद्वीपाब्धिषु व्रजन् । यातार्थमप्सरोत्रातपरिगीतोऽरुणप्रभः ॥ १८ ॥ पूर्णचन्द्रोऽपि तत्रैव लेखलोके वृपोदयात् । वैडूर्ये व्योमयाने च वैडूर्याख्योऽमरोऽभवत् ॥ १९ ॥ सिंहचन्द्रमुनीन्द्रोऽपि तपस्तप्त्वातिदुष्करं । प्रीतिंकरविमानेऽभूदूर्ध्वग्रैवेयकोर्ध्वके ॥ २० ॥ एकविंशत्समुद्रायुः षष्ठमः श्वभ्रकावधिः । शुक्ललेश्यस्तुपाराभो बाहुसार्धैकदेहभाक् ॥२१॥

थे जिस समय उन्होंने अपने पूर्व भवका वृतांत सुना वे एक दम संसारसे भयभीत होगये । उसी समय अपने मनमें संसारकी अनित्यता विचारने लगे एवं परिणामोंमे सदा वैराग्य धारण कर ही राज्य करते रहे ॥ १३ ॥ धर्मात्मा होकर उन्होंने वहुत काल तक राज्यका पालन किया एवं अनेक स्त्रियोंके प्यारे होकर भी उन्होंने अपनी आत्मा सम्यग्दर्शनसे ही अलंकृत रक्खी ॥ १४ ॥ मृत्युके समय आर्यिका रामदत्ताने मोहवश यह निदान वांध लिया कि इन पुत्रोंके साथ फिर भी मेरा सम्बन्ध हो । वह मरकर महाशुक्र स्वर्गके भास्कर नामक विमानमें भास्कर नामका देव होगया जो कि सोलह सागरकी आयुका धारक था । पद्म लेश्यासे शोभायमान था । चन्द्रमाके समान मनोहर था । सोलह हजार वर्षोंके वाद वह एकवार मनसे आहार ग्रहण करता था । सोलह पक्षोंके वाद उसास लेता था । विक्रिया शक्तिका धारक था । चार हाथ प्रमाण शरीरका धारक था । अनेक [illegible]ांगनाओंसे मण्डित हो असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें यात्रा करता था एवं सूर्यके समान देदी-प्यमान था । ॥ १५—१८ ॥ राजा पूर्ण चन्द्र भी पुण्यके उदयसे उसी स्वर्गके वैडूर्य नामक विमान में वैडूर्य नामका देव हुआ था । मुनिराज सिंहचन्द्रने भी घोर तप तपा और आयुके अन्तमें मर कर वे उर्ध्व ग्रैवेयकके प्रीतिंकर विमानमें जाकर अहमिंद्र होगये जो कि इक्कीस सागरकी आयुके

अहमिंद्रत्वमापन्नो भुनक्तिस्म शिवाच्छिवं। किंचिदूनं जिनध्यानध्यायी प्रीतिंकरोऽपरः ॥ २२ ॥ रूप्याद्रिदक्षिणश्रेण्यां विद्यतेऽथ पुरं परं। धरणीतिलकाख्यं वै धारिण्यास्तिलकोऽनुस्वित् ॥ २३ ॥ तत्रैव नायकोऽत्यादिवेगाख्यः खेचराधिपः। समास्ते वहुविद्येनस्तस्य भार्या सुलक्षणा ॥ २४ ॥ महाशुक्रविमानात्स रामदत्ताचरोऽजनि। भासुराख्यः सुरश्च्युत्वा श्रीधराख्या सुता तयोः ॥ २५ ॥ समस्त्यन्या पुरी तत्र वहुरत्नालकाभिधा। दर्शकाख्यः पतिस्तस्या वभूव स्मरविग्रहः ॥२६॥ तस्मै दत्ता सुता पिता श्रीधराख्या दृढस्तनी

धारक थे। छठे नरक तकके पदार्थोंको जाननेकी शक्ति रखनेवाले अवधिज्ञानसे शोभायमान थे। शुक्ल लेश्याके धारक थे। तुषार—बरफके समान उज्ज्वल थे। डेढ़ हाथ प्रमाण उनका शरीर था एवं वे मुनिराज सिंह चन्द्रके जीव प्रीतिंकर देव अहमिन्द्र हो मोक्षसे कुछ ही कम उर्ध्व ग्रैवेयकके सुखका आस्वादन करने लगे और हृदयमें सदा भगवान जिनेंद्रका ध्यान करते २ सुखसे वहां रहने लगे ॥ १६—२२ ॥

इसी पृथ्वीके रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें धरणी तिलक नामका मनोहर पुर है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे पृथ्वीका तिलक ही जान पड़ता है ॥ २३ ॥ धरिणी तिलकपुरका स्वामी राजा अतिवेग था जो कि अनेक विद्याओंका पारगामी था। राजा अतिवेगकी स्त्रीका नाम सुलक्षणा था। महाशुक्र विमानसे आर्यिका रामदत्ताका जीव वह भास्कर देव चया और उसके गर्भमें आकर श्रीधरा नामकी पुत्री हुआ ॥ २४। २५ ॥

उसी रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक अलका नामकी दूसरी पुरी है जो कि नाना प्रकारके रत्नोंका स्थान है। उस पुरीका रक्षण करने वाला राजा दर्शक था जो कि कामदेवके समान परम सुन्दर था ॥ २६ ॥ जिस समय कन्या श्रीधरा दृढ स्तनी पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान स्थूल नितम्ब और कृश कटिकी धारक पूर्ण युवती होगई राजा अतिवेगने उसका

। पूर्णचन्द्रानना स्थूलनितंबा क्षामकोदरी॥२७॥भुंजानयोस्तयोः सौख्यं वैडूर्याधिपतिस्ततः । च्युत्वा पुत्री बभूवेति ख्याता नाम्ना यशोधरा ॥ २८ ॥ नवयौवनसपन्ना मध्यक्षामा विशालदृक् । विततोरोनितम्बाभ्यां मथराभूद्ध पानना ॥ २९ ॥ भास्कराख्यंपुरं देवपुराभं वर्तते महत् । सूर्यावर्ताभिधो राजा तत्रासीत्स्मरसुन्दरः ॥ ३० ॥ पितृभ्यां यौवनाभ्यां तस्मै दत्ता यशोधरा । सोऽपि रेमे तया साकं रोहिण्येव कलानिधिः ॥ ३१ ॥ गर्भे श्रीधरदेवोऽथ भुक्त्वा नाकसुखं ततः । च्युत्वा तयोः सुनोजज्ञे रश्मिवेगाधिपः सुधीः ॥ ३२ ॥ कदा

विवाह अलकापुरीके स्वामी राजा दर्शकके साथ कर दिया ॥ २७॥ राजा दर्शक और रानी श्रीधरा दोनोंही सानन्द विषय सुखोंका अनुभव करने लगे। राजा पूर्णचन्द्रका जीव वैडूर्य देव वहांसे चया। रानी श्रीधराके गर्भमें आकर यशोधरा नामकी पुत्री हुआ। जो पुत्री खिलते हुए नवीन यौवनसे शोभायमान थी। पतली कटिकी धारक थी। उसके दोनों नेत्र विशाल थे। विशाल स्तन और नितम्बोंके कारण वह मंद मंद रूपसे गमन करनेवाली थी और चन्द्रमाके समान अति-शय शोभायमान थी ॥ २८—२९॥

इसी पृथ्वी पर एक भास्कर नामका पुर है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे स्वर्गपुरकी समानता धारण करता है। उस भास्कर पुरका रक्षण करनेवाला उस समय राजा सूर्यावर्त्त था जो कि कामदेवके समान परम सुन्दर था॥ ३० ॥ जिससमय कन्या यशोधराके पिताको यह ज्ञात हो चुका कि कन्या यशोधरा पूर्ण युवती होगई है तो उन्होंने उसका विवाह राजा सूर्यावर्तके साथ कर दिया एवं राजा सूर्यावर्त भी जिस प्रकार चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण क्रीडा करता है उसी प्रकार युवती यशोधराके साथ मनमानी रमण क्रीडा करने लगा ॥ ३१ ॥ राजा सिंहसेनका जीव वह श्रीधर देव स्वर्गोंके अनुपम सुख भोगकर वहांसे आयुके अन्तमें चया और रानी यशोधराके गर्भमें अवतीर्ण हो रश्मिवेग नामका पुत्र होगया ॥ ३२ ॥ एक दिन राजा सूर्यावर्तको मुनिचन्द्र

चिन्मुनिचन्द्राख्यो मुनिधर्मानुशासनात् । सूर्यावर्तो नृपस्त्यक्त्वा राज्यं संयममग्रहीत् ॥ ३३ ॥ तद्वियोगोत्थदुःखेन विक्लवा सा यशोधरा । दीक्षां समग्रहीद्भावाद्भवभोगांगनिस्पृहा ॥ ३४ ॥ श्रुत्वा जामातृपुत्र्योश्च दीक्षाग्रहणमुत्तमं । श्रीधरा संयमं प्रापद्गुणवत्यार्यिकांतिके ॥ ३५ ॥ रश्मिवेगोऽधिगम्याशु राज्यं कामाधिको बभौ । भुंजन् पुराकृतं पुण्यं पुण्यचेताः प्रसन्नधीः ॥ ३६ ॥ अन्यदा रश्मिवेगोऽगात्सिद्धकूटजिनालयं । वंदितुं क्रीडितुं चैव भव्याःस्युः पुण्यबुद्धयः ॥ ३७ ॥ हरिचन्द्राह्वयं तत्र दृष्ट्वा चारणसंयमं । पुरस्तात्सं

नामके मुनिराजके दर्शन होगये । उनसे मुनिधर्मका उपदेश सुनकर उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया । राज्यका सर्वथा परित्याग कर दिया और दिगम्बरी दीक्षा धारण करली ॥ ३३ ॥ राजा सूर्यावर्त जब मुनि बन गये तो रानी यशोधराको बड़ा कष्ट हुआ । उसे भी संसारकी असारतासे वैराग्य होगया एवं संसारके भोग और उनके कारणोंसे विमुख हो उसने आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ३४ ॥ जमाई और पुत्रीकी दीक्षाका समाचार सुन यशोधराकी मा रानी श्रीधरा भी एक दिन संसारसे विरक्त होगई और गुणवती आर्यिकाके पास जाकर उसने आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ३५ ॥ पिता माताके दीक्षा ले जाने पर कुमार रश्मिवेग राजा बन गये । कामदेवके समान उनकी उस समयकी अद्वितीय शोभा थी । पहिले उपार्जन किये गये पुण्यके फलको भोगने वाले थे । पुण्यात्मा और प्रसन्न चित्तके धारक थे ॥ ३६ ॥

एक दिनकी बात है कि राजा रश्मिवेग सिद्धकूटके जिन मन्दिरोंकी वंदनाके लिये और उनके बनोंमें क्रीड़ा करनेके लिये गये ठीक ही है भव्य जीवोंकी बुद्धि पवित्र हुआ ही करती है । वहां पर एक हरिचन्द्र नामके चारण ऋद्धि धारी मुनि विद्यमान थे उन्हें देखकर राजा रश्मिवेगने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया ॥ ३७ । ३८ ॥ प्रणामके बदलेमें मुनिराज हरिचन्द्रने राजा रश्मिवेगको धर्म वृद्धि दी एवं वे यह कहने लगे—

स्थितो नम्य प्रांजलिः परमोदयात् ॥ ३८ ॥ धर्मवृद्धिं प्रदायास्मै मुनिः प्राहेति तद्धितं । शृणु दत्तावधानस्त्वं राजन्! धर्मं जिनोदितं ॥ ३९ ॥ श्वभ्रतिर्यग्गतिभ्यां यः समुद्धरति देहिनः । तं धर्मं मुनयः प्राहूरज्जुः कूपादिव स्फुटं ॥ ४० ॥ सांप्रतं दृश्यते यच्च तत्सायं नैव दृश्यते । अतोऽनित्यो भवो विद्धि समाख्यातो व्यलीकदः ॥ ४१ ॥ संयोगविप्रयोगोत्थं भवे दुःखं भृशायते । तेन दुःखेन तल्लब्धिर्न स्यादश्वविषाणवत् ॥ ४२ ॥ सयोगे विप्रयोगे च नानाकर्म दृढी भवेत् । कर्मणायाति पातालं संसृतौ भ्रमणं पुनः ॥ ४३ ॥ कस्य स्त्रीसुतदायादिराज्यं प्राज्यं वपुः सुखं । किं न धनेऽनुयात्येव स्नेहाद्व्यर्थमतोऽखिलं ॥ ४४ ॥ ते धीराः सुखिनस्तेपि विदग्धास्ते

राजन ! मैं भगवान जिनेंद्रके द्वारा प्रतिपादित, अतिशय हितकारी धर्मका उपदेश देता हूं, तुम ध्यान पूर्वक सुनो जिस प्रकार रस्सी कूवेमेंसे घड़ा आदि चीजको बाहर खींच लेती है उसी प्रकार जो धर्म जीवोंको नरक और तिर्यंच गतिसे छूटा दे उसे ही वास्तविक धर्म कहते हैं। ३९। ॥ ४० ॥ जो चीज सवेरे देखनेमें आती है वह शामको देखनेमें नहीं आती इसीलिये विद्वानोंने संसारको अनित्य और दुःखोंका देनेवाला ठहराया है ॥ ४१ ॥ संसारमें रहकर संयोग और वियोगोंसे जायमान प्रचुर दुःख भोगने पड़ते हैं एवं उन दुःखोंसे जिस प्रकार घोड़ेके सींगोंमें धर्मको प्राप्ति नहीं होती उस प्रकार धर्मको प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ४२ ॥ राजन्! संसारमें अनेक संयोग और वियोगोंके कारण दृढ रूपसे कर्म बंधते रहते हैं । उन कर्मोंके कारण नरक जाना पड़ता है। समस्त संसारमें घूमना पड़ता है ॥ ४३ ॥ स्त्री पुत्र कुटुम्बी राज्य शरीर सुख ये सब बातें मृत्युके समय साथ नहीं चलतीं इसलिये इनके साथ स्नेह करना वृथा है ॥ ४४ ॥ संसारमें वे ही पुरुष धीर वीर हैं वे ही सुखी विद्वान और सुन्दर हैं जो कि दश प्रकार भोगोंका सर्वथा परित्याग कर मोक्षकी इच्छासे दिगम्बरी दीक्षा धारते हैं ।४५। जो मूढ पुरुष सदा स्त्रियोंमें आसक्त रहते हैं महा लोभी और महा मानी होते हैं वे शुद्रोंके समान महा निंद्य कीचड़से व्याप्त संसार

च सुंदराः। भोगान् दशविधान् भुक्त्वा प्रव्रजंति शिवेच्छया ॥ ४५ ॥ सदैव स्त्रीसुखासक्ता लोभिनो मानिनो नराः। अमेध्यकर्दमकीर्णकूपे ते शूकरा इव ॥ ४६ ॥ स्वार्थमुख्यं सुखं त्यक्त्वा ये ध्यायति परं महः। अन्तर्मुहूर्ततस्तेऽपि कर्माणि त्व क्षपयंत्यहो ॥ ४७ ॥ :इत्यादितत्त्वसद्बीजं ध्यानवुद्ध्या मुनीरितं। श्रुत्वासौ चिंतयामास मानसे रश्मिवेगकः ॥ ४८ ॥ आधिपत्ये सति प्राज्ये भूरिभोगेषु सत्सु वा। समासीन्मरणं नूनं तर्हि किं तैः क्षुभगुरैः ॥ ४९ ॥ साधयामीदृशं धर्मं यतो न स्यात्पुनर्भवः। विचिंत्येत्थं स जग्राह सम्यक्त्वं सुसंयमं ॥ ५० ॥ परिणामविशुद्धं .स तपस्तप्त्वाऽगरोधसि। चारणत्वं च संप्राप्तः सद्यो गगनगोचरं ॥ ५१ ॥ विहरन्नेकदा सोऽपि रश्मिवेगो यमीश्वरः। कांचनाख्यगुहां दृष्ट्वा तस्थौ तत्र समाधये ॥ ५२ ॥ पर्यंकासनमारूढं ध्यानस्तिमितलोचनं। ध्यायंतं

रूपी कूपमें पड़े रहते हैं। किन्तु जो महापुरुष स्वार्थ परिपूर्ण सुखका सर्वथा परित्याग कर चिदानन्द चैतन्य स्वरूप आत्माका ध्यान करते हैं देखते २ वे अन्तर्मुहुर्तमें समस्त कर्मोंको खिपा देते हैं ॥ ॥ ४६—४७ ॥ राजा रश्मिवेगने मुनिराज हरिचंद्रसे जव यह धर्मका स्वरूप सुना तो वह मन ही मन ऐसा बिचारने लगा—

बिशाल राज्य और विपुल भोगोंके रहते भी जब संसारमें मरण है तब क्षण भरमें विनश जानेवाले राज्य भोग आदिको अपनाना व्यर्थ है। मैं अब उस परम पावन धर्मका आराधन करूंगा जिससे मुझे फिर संसारमें न घूमना पड़े वस उसने यह दृढ विचार कर शीघ्र ही सम्यग्दर्शनके साथ संयम धारण कर लिया दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ ४८—५० ॥ परिणामों को विशेष विशुद्धिसे उन्होंने उग्र तप तपा। तपके प्रभावसे चारण ऋद्धि प्राप्त होगई जिससे वे आकाशमें भ्रमण करने लगे ॥ ५१ ॥ एक दिनकी बात है कि विहार करते करते वे मुनिराज रश्मिवेग कांचन नामकी गुफाके पास जा पहुंचे और उसे समाधिके उचित जानकर उसमें विराज गये। वहांपर उन्होंने पर्यंक आसन मार लिया। ध्यानसे दोनों नेत्र निश्चल कर लिये एवं वाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी आकुलतासे रहित वे चिदानन्द चैतन्य स्वरूप परमात्माका ध्यान करने

परमात्मानं द्विधा द्वंद्वविवर्जितं ॥ ५३ ॥ तं विलोक्य समायाते द्वे आर्ये वंदितुं मुदा । वन्दित्वा तिष्ठतां तत्र श्रीधरा च यशोधरा ॥ ५४ ॥ श्वाभ्रोऽथ प्राक्तनस्तस्मात्प्रच्युत्वाघविपाकतः । चिरं भ्रांत्वा स संसारे महानजगरोऽभवत् ॥ ५५ ॥ पूर्ववैरानुबंधेन तत्रागत्य मुनिं च ते । आर्यिके क्रोधतः पापी वेरं त्याज्यमतोऽगिलत् ॥ ५६ ॥ आराध्याराधनाः प्रांतेरश्मिवेगोऽमरोऽभवत् । कापिष्ठेऽर्कप्रभाख्ये च विमाने तत्कृताह्वयः ॥ ५७ ॥ मृत्वा ते आर्यिके तत्र विमाने रुचकाभिधे । अभूताममरौ रम्यावणिमादिविभूषितौ ॥ ५८ ॥ चतुर्दश समुद्रायुरायुर्येषां प्रकीर्तितं । पञ्चपाणिप्रमाणानां रूपभोगवतां भृशं ॥ ५९ ॥ प्रांते पङ्कप्रभां प्रापत्पापादजगरोहि सः । भुनक्तिस्म कृतं

लगे ॥ ५२—५३ ॥ मुनिराज रश्मिवेगको कांचन गुफामें इस प्रकार ध्याना रूढ सुन श्रीधरा और यशोधरा नामकी दो आर्यिकायें उनके पास आईं और भक्तिपूर्वक वंदना कर उनके पास बैठ गईं ॥ ५४॥ मंत्री सत्यघोषका जीव जो कि अपने प्रवल पापसे नरक गया था वहांके दुःखोंको भोगकर वह वहांसे निकल आया । प्रवल पापके उदयसे वह संसारमें जहां तहां बहुत घूमा और कांचन गुफामें एक विशाल अजगर होगया ॥ ५५ ॥ पूर्व वैरके संबन्धसे वह अजगर मुनिराज रश्मिवेगके पास आया और क्रोधसे भबल कर मय दोनों आर्यिकाओंके मुनिराज रश्मिवेगको निगल गया । ॥ ५६ ॥ मुनिराज रश्मिवेगने अन्त समयमें अच्छी तरह आराधनाओंको आराधा जिससे कापिष्ठ स्वर्गके सूर्यप्रभ नामक विमानमें वह सूर्यप्रभ नामका देव होगया ॥ ५७ ॥ श्रीधरा और यशोधरा नामकी दोनों आर्यिकायें भी कापिष्ठ स्वर्गके रुचक विमानमें जाकर देव होगईं, दोनों आर्यिकाओं के जीव वे दोनों देव अत्यन्त मनोहर थे । अणिमा आदि विभूतियोंसे विभूषित थे । चौदह सागर प्रमाण आयु थी एवं मनोहर रूप और अनेक भोगोंके खजाने स्वरूप वे पांच हाथ प्रमाण शरीरसे शोभायमान थे ॥ ५८—५९ ॥ मुनिराज और दोनों आर्यिकाओंके निगलनेसे उस अजगरने तीव्र पापका बंध किया था इसलिये आयुके अन्तमें उस तीव्र पापके उदयसे वह अजगर

पापं तत्र वाचामगोचरं ॥ ६० ॥ नारकास्तं विलोक्याशु परस्परममीमरत् । छेदनैर्भेदनैः शूलारोपणैर्दुःप्रवादनैः ॥ ६१ ॥ ध्वांक्षोलूक विडालाश्व व्याघ्रवृश्चिकरूपिभिः ! नारकैस्ताड्यतेस्मांहा लंघ्यते न गतिर्विधेः ॥ ६२ ॥ अथ जम्बूमति द्वीपे विख्याते त्वत्र भारते । । विद्यते चक्रपूरस्या पौरहतीव पूः परा ॥ ६३ ॥ राजापराजितस्तत्र शत्रुभिः कृतशासनः । अस्यास्ति सुन्दरी नाम्ना रामा रम्भानुकारिणी ॥ ६४ ॥ ऊर्ध्वग्रैवेयकाद्देव सिंहचन्द्रचरस्तयोः । च्युत्वा प्रांते वभूवैव पुत्रश्चक्रायुधो महान् ॥ ६५ ॥ महाराजसुताः पञ्चसहस्रप्रमिताः पराः । उपयम्य सुखं तस्थौ पुत्रश्चक्रायुधोबली ॥६६॥ अर्कप्रभोऽपि कापिष्ठाच्च्युत्वा चक्रायुधस्य तु रु । 'संजातश्चित्रमालायां

पङ्क प्रभा नामके नरकमें जाकर नारकी होगया और अपना किया हुआ पापोंका फल जोकि बचनों से कहा नहीं जा सकता भोगने लगा ॥ ६० ॥ अन्य नारकियोंने जिस समय उस अजगरके जीव नारकीको देखा तो उनका एक दम क्रोध उवल उठा एवं वे आपसमें छेदना भेदना शूलीपर चढ़ा देना और गाली गलौज करना आदि कारणोंसे उसे मारने ताड़ने लगे। उस पापी अजगरके जीव नारकीको काक उल्लू विल्लो घोड़ा बाघ वीछूके स्वरूपके धारक नारकियोंने अनेक प्रकारसे मारना पीटना प्रारम्भ कर दिया। ठीक ही हैं कर्मकी गति रोकी नहीं जा सकती ॥ ६१—६२ ॥

इसी जम्बूदीपके प्रसिद्ध भरत क्षेत्रमें एक चक्रपुरी नामकी नगरी है जो कि उत्कृष्ट है और शोभामें इन्द्रपुरीकी उपमा धारण करती है ॥ ६३ ॥ चक्रपुरीका स्वामी राजा अपराजित था। जिसका कि शासन शत्रुओंपर पूर्ण रूपसे चलता था और उसकी सुन्दरी नामकी रानी थी जो कि शोभामें इन्द्राणीका अनुकरण करती थी ॥ ६४ ॥ मुनिराज सिंहचन्द्रका जीव वह अहमिंद्र ऊर्ध्व ग्रैवेयकसे चया और रानी सुन्दरीके गर्भमें अवतीर्ण हो चक्रायुध नामका पुत्र होगया ॥ ॥ ६५ ॥ अपनी युवावस्थामें कुमार चक्रायुधने पांचसौ राज कन्याओंके साथ विवाह किया और वह सानन्द विषय भोगोंका अनुभव करने लगा ॥ ६६ ॥ मुनिराज रश्मिवेगका जीव अर्कप्रभ देव

नाम्ना वज्रायुधः सुधीः ॥ ६७ ॥ पृथिवीतिलकं नाम्ना पत्तनं तिलको भुवः । रराज नररत्नाढ्यं सोत्सवं चैत्यमंडितं ॥ ६८ ॥ अतिवेग महीपालस्तत्राभूद्राजलक्षणः । प्रियकारिणिका तस्य बभूवे वामरप्रिया ॥ ६९ ॥ कापिष्ठात् श्रीधराजीवश्च्युत्वासौ रुचकाभिधः । सुताऽभवत्तयोरम्या रत्नमालाभिधा शुभा ॥ ७० ॥ एकदा तां पिता दृष्ट्वा यौवनश्रीविराजितां । वज्रायुधकुमाराय ददौ भानुप्रियामिव ॥ ७१ ॥ वज्रायुधस्तयामेत्र रेमे रात्रिदिवं सुखं । रम्भापो रम्भयाहोशः पद्मया तमसोडुपः ॥ ७२ ॥ यशोधरापि कापिष्ठाच्च्युत्वा रत्नायुध

भी अपनी आयुके अन्तमें कापिष्ठ स्वर्गसे चया और राजा चक्रायुधकी चित्रमाला नामकी रानीसे वज्रायुध नामका पुत्र होगया ॥ ६७ ॥

इसी पृथ्वी पर एक पृथिवी तिलक नामका नगर है जो कि अपनी शोभासे साक्षात् पृथिवीका तिलक स्वरूप जान पड़ता है। सदा वह उत्तमोत्तम पुरुष रत्नोंसे भरा रहता है और उसके चैत्यालय और मन्दिर सदा अनेक उत्सवोंसे जग मगाते रहते हैं ॥ ६८ ॥ पृथिवी तिलक पुरका स्वामी राजा अतिवेग था जो कि समस्त राज लक्षणोंसे शोभायमान था। उसकी रानीका नाम प्रिय कारिणी था जो कि अपनी अनुपम शोभासे देवांगना सरीखी जान पडती थी ॥ ६९ ॥ श्रीधरा नामक आर्यिकाका जीव रुचक देव कापिष्ठ स्वर्गसे चया और रानी प्रिय कारिणीके गर्भमें अवतीर्ण हो कन्या होगया जिसका कि नाम रत्न माला था ॥ ७० ॥ एक दिन राजा अतिवेगने पूर्ण यौवनसे शोभायमान राजपुत्री रत्नमालाको देखा। उसे विवाहके योग्य समझकर कुमार वज्रायुधको प्रदान करदी एवं सूर्यको जिस प्रकार अपनी स्त्री प्यारी है उसी प्रकार वह रत्नमाला कुमार वज्रायुधको परम प्यारी बन गई ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार रंभाका स्वामी रंभाके साथ रमण करता है नागेन्द्र लक्ष्मीके साथ और चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण करता है उसी प्रकार कुमार वज्रायुध भी सुन्दरी रत्नमालाके साथ रात दिन रमण करने लगा और भोग जन्य सुख भोगने लगा ॥ ७२ ॥

स्तयोः। सुतोजज्ञे मनोऽम्भोजःपूर्णचन्द्राननोऽरिजित् ॥ ७३ ॥ एवं संयोगमापन्ना एते पुण्यफलं महत् । भुंजंतिस्म महाप्रीत्या
दुर्लभं किमपोदयात् ॥ ७४ ॥ गंधेभाश्वोत्कृष्टामात्यरतिरामासमुद्भवं । सुखं ते भोजयामासुर्धर्मकल्पद्रु मार्पितं ॥ ७५ ॥ श्रुत्वापराजितो
धर्ममन्येद्युः पिहितास्रवात् । चक्रायुधाय साम्राज्यं दत्वादीक्षिष्ट धीरधीः ॥ ७६ ॥ चक्रायुधोऽपि तद्राज्यं प्राप्याधिकतरं बभौ । चिंवन्
कुवलय राजा राजवत्पालयन् प्रजाः ॥ ७७ ॥ अन्यदा विष्टरासीनो लोकयन् विष्टरे सुखं । पलितं काशसंकाशं मस्तके दृष्टवान्नृपः ।

आर्यिका यशोधराका जीव देव भी कापिष्ठ स्वर्गसे चया और रानी रत्नमालाके गर्भसे रत्नायुध नामका पुत्र हुआ जो कि मन रूपी कमलको विकास करने वाले पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था। इस प्रकार आपसमें संबंधके रखनेवाले वे सिंहसेन आदिके जीव बड़े प्रेमसे पुण्यके महाफल स्वरूप सुखका भोग करने लगे ठीक ही है पुण्यके उदयसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है ॥ ७३—७४ ॥ वे सबके सब उत्तम धर्मरूपी कल्पवृक्षके द्वारा समर्पित उत्तम हाथी घोड़े मंत्री रतिके समान स्त्रियोंसे जाय मान सुखको सानन्द भोगने लगे ॥ ७५ ॥

एक दिनको बात है कि राजा अपराजितने पिहितास्रव नामके मुनिराजसे धर्मका उपदेश सुना जिससे उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया। धीर वीर राजा अपराजितने अपने पुत्र चक्रायुधको समस्त राज्य प्रदान कर दिया और वह तत्काल दिगंबरी दीक्षासे दीक्षित होगया। ॥ ७६ ॥ अपने कुल परम्परासे प्राप्त राज्यको पाकर कुमार चक्रायुध अतिशय शोभायमान जान पड़ने लगा। उसने समस्त पृथ्वीको अपने वश कर लिया और वह पूर्ण रूपसे प्रजाका पालन करने लगा ॥ ७७ ॥

एक दिनकी बात है कि राजा चक्रायुध सानन्द राजसिंहासन पर विराजमान थे और सिंहासनमें लगे हुए दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे अचानक ही उन्हें अपने मस्तकमें एक कासके

७८। तदेति चिन्तयामास मानसे स विशुद्धधीः। आगतो यमदूतोऽयं मामाकारयितुं ध्रुवं ॥ ७९ ॥ अहो आयुर्गतं सर्वं वैयर्थ्यं मामकं वने। मल्लिकापुष्पवद्धर्मं विना स्वर्गापवर्गदं ॥८०॥ त्रिधा वैराग्यमापन्नश्चक्रायुधनराधिपः। वज्रायुधे सुते राज्यं समारोप्य वनेऽगमत् ॥ ८१ ॥ प्राव्राजीत् स्वपितुःपार्श्वे राद्धांताऽम्भोधिपारगः। नद्यास्तीरे महारण्ये नगलानौ तपोऽकरोत् ॥ ८२ ॥ वज्रायुधोऽपि तद्राज्यं दत्वा रत्नायुधाय च। पितुःपार्श्वेऽग्रहीद्दीक्षां किं न कुर्वंति सात्विकाः ॥८३॥ मुनिश्चक्रायुधो ध्यात्वा स्वात्मानं परमं पदं। प्राप्य जज्ञे

फूलके समान सफेद केश दीख पड़ा ॥ ७८ ॥ विशुद्ध बुद्धिका धारक वह राजा अपने मस्तकका सफेद केश देख इस प्रकार विचारने लगा—

मुझे बुलानेके लिये यह महाराज यमराजका दूत आपहुंचा है। नियमसे अब मुझे मृत्युका सामना करना पडेगा। जिस प्रकार वनमें मालती लताके पुष्पका होना व्यर्थ है क्योंकि वहां उसका आदर करनेवाला कोई नहीं होता उसी प्रकार स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाले धर्मके विना मेरा भी समस्त जीवन विफल ही चला गया ॥ ७९—८० ॥ वह राजा चक्रायुध मन वचन काय तीनो योगोंसे संसारसे विरक्त होगया। अपने पुत्र वज्रायुधको उसने राज्य प्रदान कर दिया और वह सीधा वनकी ओर चल दिया ॥ ८१ ॥ अपने पिता मुनिराज अपराजितसे उन्होंने दिगंबरी दीक्षा धारण कर ली। अभ्यासकर सिद्धांतरूपी समुद्रके पारको पहूंच गये। किसी नदीके पास एक विशाल बन था उसके पहाड़की चोटी पर घोर तप तपने लगे ॥ ८२ ॥ अपने पिताके दीक्षित होजानेके वाद कुछ दिन कुमार वज्रायुधने राज्य किया। कदाचित उन्हें भी संसारसे वैराग्य हो गया शीघ्र ही उन्होंने अपने पुत्र रत्नायुधको राज्य दे दिया और वे दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये। ठीक ही है सज्जन प्रकृतिके मनुष्य जो भी उत्तम कार्य कर डालें थोड़ा है ॥८३॥ जिस प्रकार धूपसे व्याकुल पुरुष वृक्षकी छाया पाकर शांतिका अनुभव करने लगता है उसी प्रकार

सुखी घर्मततश्छायातरुं यथा ॥ ८४ ॥ वज्रायुधो गिरौ ग्रीष्मे हेमन्ते सरितस्तटे । प्रावृषि भूरुहां कण्ठे तपस्यन् पुरुमस्मरत् ॥ ८५ ॥ अथ रत्नायुधो राजा शक्तो भोगेषु प्रत्यहं । धर्मं त्यक्त्वानिगृह्णुतरात्सुखानि चिरमन्वभूत् ॥८६॥ पट्टहस्त्येकदा तस्य दानवर्षी पयोदवत् । कुम्भसानुर्दरीभृद्वा मनोहरवने गतः ॥ ८७ ॥ तत्रारण्ये मुनिर्वज्रदन्ताख्योऽपि समागतः । लोकानुयोगमूचे स नानाधर्मात्मकं यतिः ॥ ८८ ॥ तदा शास्त्रं गजः श्रुत्वा मेघादिविजयाह्वयः । पूर्वजन्मस्मृतिं प्रापन्निनिंदात्मानमञ्जसा ॥ ८९ ॥ तिर्यक्त्वं च मया प्राप्तं

मुनिराज चक्रायुधने भी पूर्ण रूपसे अपनी आत्माका ध्यान किया जिससे उन्होंने परमपद मोक्ष पदको पा लिया और वे अविनाशी सुखके भोगनेवाले बन गये ॥ ८४ ॥ मुनिराज वज्रायुध भी ग्रीष्म ऋतुमें पर्वतोंके अग्रभागपर तप तपने लगे। शीत ऋतुमें नदियोके तटोंपर और वर्षा ऋतुमें वृक्षोंके नीचे बैठकर उन्होंने तप तपना प्रारम्भ कर दिया तथा वे प्रति समय भगवान ऋषभ देवके गुणोंका स्मरण करने लगे ॥ ८५ ॥

वज्रायुधका पुत्र कुमार रत्नायुध जिस समय राजा बन गया तो धर्मका सर्वथा परित्याग कर वह प्रति समय भोगोंमे मग्न होने लगा और भोगोंका अति लोलुपी हो उनके सुखोंको भोगने लगा ॥ ८६ ॥ राजा रत्नायुधका एक मत्त हस्ती था जिसके कि गंडस्थलोंसे सदा मद झरता था अतएव वह साक्षात् मेघ सरीखा जान पड़ता था। उसके दोनों कुम्भस्थल पहाड़की चोटी सरीखे थे जिससे वह साक्षात् पर्वत सरीखा जान पड़ता था। एक दिन वह मनोहर नामके वन में गया वहांपर उस समय एक वज्रदन्त नामके मुनिराज आये थे और वे अनेक धर्म स्वरूप लोकानुयोगका वर्णन कर रहे थे। हाथी मेघ विजयको भी धर्मोपदेश सुननेका अवसर मिल गया धर्मोपदेश सुनते ही उसे पूर्व जन्मका स्मरण होगया और वह इस प्रकार अपनी निन्दा करने लगा ॥ ८७—८९ ॥

पूर्वपापोदयादिति । मुहुर्मुहुर्विनिंद्य स्वं नात्त्यदलफलं तथा ॥६० ॥ संसृतेर्दुःस्थितिं ध्यायन् सामजो न भ्रमन्वने । पिपासुः क्षुधितस्त स्थौ श्रुतत्त्वश्च होद्गशः ॥ ६१ ॥ सत्संगः पाफलीत्येवाचिराद्भव्यात्मनां भुवि । मधुमत्याशु सद्रावा भवेच्छयामापि कोकिला ॥ ६२ ॥ यथा पुरुपदस्पर्शाद्दर्भं इन्द्रशिरःस्थितः । सव्यापसव्यसंस्थायि पक्षादीनां वचोऽर्हतां ॥ ६३ ॥ तादृक्षं तं गजं दृष्ट्वा दुःस्थितं भेषजं नृपः ॥ व्याकुलीभूयमापन्नः पृष्टवान् मन्त्रिवैद्यकान् ॥ ६४ ॥ ब्रूत वैद्या गजस्यास्य को विकारोऽस्ति सांप्रतं । विकाराभावतः प्रोचुस्ते वैद्याः श्रुतवार्तिकाः ॥ ६५॥ अनुभा श्रूयतां राजन्! कुञ्जरोऽयं कृपामयः । धर्मं श्रुत्वा कुतश्चिच्च मुनेर्जातिस्मरोऽभवत् ॥

पूर्व पापके उदयसे मैंने यह तिर्यंच गति पाई है। मुझसे बढ़कर पापी कौन है बस इसप्रकार अपनी प्रतिक्षण निन्दा करने लगा। वनके साजे फलोंका भी उसने खाना छोड़ दिया ॥ ६० ॥ धर्म तत्त्वका यथार्थ रूपसे श्रवण करने वाला वह हाथी मेघ विजय रातदिन संसारकी असारता मानने लगा। वनमें घूमना उसने सर्वथा छोड़ दिया जिससे वह चाहे भूखा हो चाहे प्यासा हो एक ही जगह वह निश्चल खड़ा रहने लगा ॥६१॥ जो पुरुष भव्यजीव हैं उन्हें सत्सङ्गति अवश्य फल के देनेवाली होती है क्योंकि यह वात स्पष्ट रूपसे दीख पड़ती है कि काली भी कोयल वसंत ऋतुके संसर्गसे मीठे और मनोहर शब्द करने वाली हो जाती है एवं जिस दर्भ घासका भगवान जिनेंद्रके पैरसे स्पर्श हो जाता है वह इन्द्रके मस्तकका भूषण वन जाता है तथा भगवान अर्हंतके संसर्गसे उनका बचन भी पक्ष दिन मास आदिके भले बुरेका सूचक होजाता है। इसलिये सत्संगतिका प्रभाव अचिन्त्य है ॥६१—६३॥ मेघ विजय हाथीकी इस प्रकार दुःखित अवस्था देख कर राजा रत्नायुध एक दम व्याकुल होगया और उसने शीघ्र ही मंत्री और वैद्योको बुलाकर इस प्रकार पूछा—

वैद्यो! शीघ्र वताओ हाथी मेघ विजयको यह क्या विकार उत्पन्न होगया है जिससे यह एक

९६ ॥ अतः सत्पात्रनिष्पन्नं शुद्धाहारं घृतादिभिः । निश्चितं भक्षयेन्नागो नान्यत्फलफलादिकं ॥ ९७ ॥ कृत्वाहारं तथाभूतं न्यक्षिपत् कुंजराग्रतः । कुंजरोऽपि जघासैष आहारं मिश्रितं घृतैः ॥ ९८ ॥ यदा रत्नायुधो राजा विस्मयीभूयमागतः । जगाम सामजारूढो मनोहरवनेऽवनः ॥ ९९ ॥ वज्रदन्तं मुनिं तत्र नत्वावधिविलोचनं । गजवृत्तं समाख्याय तद्धेतुं पृच्छतिस्म सः ॥ १०० ॥ मुनिः प्राह तदा भव्यपंकजालिदिवाकरः । सादरं शृणु राजेन्द्र प्रोच्यमानां मया कथां ॥ १०१ ॥ अत्र जम्बूमति द्वीपे भारते भारते--रतं । भारते भाति

दम निर्बुद्धि दीख पड़ता हैं ?। वैद्योंको इस बातका पता लग चुका था कि वनमें मुनिराज वज्रदंत को देखनेसे इसकी यह दशा हुई है इस लिये उन्होंने कोई भी विकार न बतलाकर यह कहा—

राजन् ! कृपाकर हमारी बात सुनिये । यह हाथी मेघ विजय अत्यन्त दयालु है । वनमें जाकर इसने किसी मुनिसे धर्मोपदेश सुना है इसलिये इसे जाति स्मरण होगया है अब यह शुद्ध मनुष्य से बनाये गये और घृत आदिसे तयार किये गये भोजनको ही खा सकेगां अब यह पहिलेके समान फल फूल आदि नहीं भक्षण कर सकेगा ॥ ९४—९७ ॥ राजा रत्नायुधकी आज्ञासे शीघ्रही वैसा आहार तयार होगया । तयार हो जाने पर हाथीके सामने रख दिया गया । हाथी भी उसे शुद्ध जानकर चट खागया ॥ ९८ ॥ हाथीकी यह विलक्षण चेष्टा देख राजा रत्नायुधको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मुनिराज वज्रदंतसे सब हाल जाननेके लिये शीघ्र ही हाथी पर चढ़कर वनकी ओर चल दिया ॥ ९९ ॥ वनमें जाकर उसने अवधिज्ञानी मुनिराज वज्रदंतको नमस्कार किया । हाथीका सब हाल कहा एवं इस बातकी प्रार्थना की कि हाथीकी ऐसी दशाका कारण क्या है ? मुनिराज वज्रदंत भव्यरूपी कमलोंके लिये सूर्य स्वरूप थे इसलिये उन्होंने यह कहा—

राजन् ! मैं सब हाल कहे देता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

इसी जंवूद्वीपके सूर्यकी कांतिके समान देदीप्यमान भरत क्षेत्रमें एक छत्रपुर नामका उत्तम

छलाढि पुरं रत्नालिसुन्दरं ॥ १०२ ॥ प्रीतिभद्रो नृपस्तत्र शत्रुभ्योऽत्रस्तमानसः । राजतेऽमरराजो वा विशालोरा गुणार्णवः ॥ १०३ ॥ तस्यासीत्सुन्दरी नाम्ना प्रिया मधुरभाषिणी । सुन्दरीव सती रम्या सुन्दरी च मनोभुवः ॥ १०४ ॥ तयोर्मु नयोः सौख्यं नाम्ना प्रीतिंकरः सुत. । संबभूव गरीयांश्च चातुरीरंजितामरः ॥ १०५ ॥ मन्त्री चित्रमतिस्तस्य कमला कमलोपमा । भामिनी भूरिवर्णांगी जातास्येव सुरांगना ॥ १०६ ॥ तुग्विचित्रमतिर्नाम्ना नानाविज्ञानपारगः । कलासु कुशलः कंतुरम्यांगो मेरुराननः ॥ १०७ ॥ अन्यदा मन्त्रिपुत्रेण साकं राजात्मजोवने । क्रीडितुं गतवांस्तत्र दृष्ट्वा धर्मरुचिं मुनिं ॥ १०८ ॥ नत्वा तत्पुरतो धीमान् निविष्टः कालमासने

नगर है जो कि रत्नोंकी पंक्तियोंसे सदा शोभायमान रहता है ॥ १००—१०२ ॥ छत्रपुरका स्वामी राजा प्रीतिभद्र था जो कि शत्रुओंसे सदा निर्भय रहता था । शोभामें इन्द्रके समान शोभायमान था । विशाल वक्षस्थलका धारक था और अनेक गुणोंका समुद्र था ॥ १०३ ॥ राजा प्रीतिभद्र की स्त्रीका नाम सुन्दरी था जो कि अत्यन्त मीठा बोलने वाली थी । पतिव्रतापनमें सती सुन्दरीके समान थी और सुन्दरतामें कामदेवकी सुन्दरी रतिकी उपमा धारण करती थी ॥ १०४ ॥ राजा प्रीतिभद्रके रानी सुन्दरीसे उत्पन्न प्रीतिंकर नामका पुत्र था जो कि गुणोंमें महान था और अपनी पांडित्य पूर्ण चतुरतासे देवोंकोभी रंजायमान करनेवाला था ॥ १०५ ॥ राजा प्रीतिभद्रके मंत्रीका नाम चित्रमति था । उसकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि कमला लक्ष्मीके समान परम सुन्दर वर्णके धारक शरीरसे शोभायमान थी अतएव वह देवांगना सरीखी परमसुन्दरी थी ।१०६। मन्त्री चित्रमतिका पुत्र विचित्रमति था जो कि ज्ञान विज्ञानोंका पारगामी था । अनेक कलाओंमें कुशल था । कामदेवके समान परम सुन्दर था और चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था ॥ १०७ ॥

एक दिनकी बात है कि मंत्रिपुत्र विचित्रमतिके साथ राजपुत्र प्रीतिंकर वनमें क्रीड़ा करनेके

। पप्रच्छेति पुनर्नत्वा कुमारः प्रीतिङ्करतिं ॥१०९॥ भो स्वामिन् सर्वधर्माणां व्रतानां च विशक्तिभिः । किं कर्तव्यं व्रतं ब्रूहि सद्मस्थैः सादरं सदा ॥ ११० ॥ धर्मरुची रराणेति कुमारं भव्यमानसं । तिथिपंचसु कर्तव्यः प्रोषधो धर्मवेदिभिः ॥ १११ ॥ गृहाचारोऽमलः कार्यः स्त्रीपुष्पौ चेष्ट्य इर्जितः । सुखाय क्षेत्रशुद्ध्यर्थमन्यथाचारहीनता: ॥ ११२ ॥ स्त्रीपुष्पौ चेष्ट्य धर्मेण नरा यांति दरिद्रतां । रोगत्वं विश्रु तत्वं च विधर्मत्वं ततः परं ॥ ११३ ॥ देवार्चा च गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः । दानं च गृहिभिर्देयं धर्मसोपानसिद्धये ॥ ११४ ॥ तथाभूता न शक्तिश्चेत्तर्हि मौनं विधीयते । सप्तमेदं जिनैः प्रोक्तं तद्द्वैधं पुनरुच्यते ॥११५॥ वमने मैथुने स्नाने भोजने मलमोचने

लिये गया। बहांपर उस समय एक धर्मरुचि नामके मुनिराज विद्यमान थे। कुमार प्रीतिंकरने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। सिंहाकार आसनसे उनके सामने बैठ गया एवं पुनः नमस्कार कर वह इस प्रकार पूछने लगा—

भगवन्! जो मनुष्य गृहस्थ हैं और ब्रतोंके धारण करनेकी परिपूर्ण शक्ति नहीं रखते उन्हें धर्म स्वरूप संपूर्ण ब्रतोंमेंसे कौनसा व्रत आचरण करना चाहिये ! ॥ १०८—११० ॥ मुनिराज धर्मरुचिने कुमार प्रीतिङ्करको आसन्न भव्य समझ कर यह कहा—प्रिय कुमार ? जो मनुष्य धर्म के स्वरूपके जानकार हैं उन्हें चाहिये कि वे पांचों तिथियोंमें निर्मल रूपसे प्रोषधोपवास ब्रतको धारण करें और स्त्रियोंके अंगका सर्वथा परित्याग करदें क्योंकि ऐसा करनेसे सुख प्राप्त होता है और आत्माकी विशुद्धि होती है यदि प्रोषधोपवासके समय स्त्रियोंकी लालसा रक्खी जायगी तो अनाचार माना जायगा ॥ १११—११२ ॥ यह निश्चय है जो पुरुष उत्कृष्ट रूपसे स्त्रियोंके अभिलाषी हैं वे दरिद्री रोगी मूर्ख और धर्मरहित पापी माने जाते हैं ॥ ११३ ॥ देव पूजा गुरुओंकी सेवा स्वाध्याय संयम तप और दान ये गृहस्थोंके छह आवश्यक कर्म बतलाये हैं इनके करनेसे मोक्षकी सीढी स्वरूप धर्मकी सिद्धि होती है ॥ ११४ ॥ यदि किसी पुरुषमें इतनी बातकी करनेकी

सामायिके जिनार्चादाविति स्यान्मौनसप्तकं ॥ ११६ ॥ नित्यमेतत्समाख्यातं मौनं सर्वजनैर्ध्रुवं । इत्यनेन न जायेत ज्ञानावर्णादिकोदयः ॥ ११७ ॥ अन्यन्नैमित्तिकं प्रोक्तं विधिना तत्समाचरेत् । तेन मौनेन मुक्तिः स्यादितोऽपि साध्यते द्वयी ॥११८॥ पुनस्तं प्राह धर्माणः कुमारो मारविग्रहः । हे स्वामिन् प्राक्कृतं केन फलं लब्धं ततश्च किं ॥११९॥ तदा प्राह यमी वत्स ! शृणु त्वं सादरं व्रतं । मयोच्यते तथाभूतं धर्मशीला हि साधवः ॥ १२० ॥ इह जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भारतनामनि । जनांतः कौशलस्तत्र कौशांबी विद्यते पुरी ॥

भी शक्ति न हो तो भगवान जिनेंद्रने बाह्य अभ्यन्तर रूप सात प्रकारका मौन बतलाया है उसे धारण करना चाहिये ॥ ११५ ॥ वह मौन इस प्रकार है—

वमिके समय मौन रखना मैथुन स्नान भोजन मल (मूत्र विष्ठा) का मोचन सामायिक भगवान जिनेन्द्रकी पूजा वंदना आदिमें मौन रखना । समस्त मनुष्योंको चाहिये कि वे प्रतिदिन इस सात प्रकारके मौनको धारण करें ऐसा करनेसे उनके ज्ञानावरण आदि कर्मोंका बंध नहीं हो सकता ॥ ११६-११७ ॥ तथा इस नित्य मौनके सिवाय नैमित्तिक—किसी खास समयका भी मौन बतलाया है उसका भी विधि पूर्वक आचरण करना चाहिये । उस नैमित्तिक मौनके धारण करनेसे भी परम्परासे मोक्ष मिलती है और इह लोक परलोक दोनों लोकोंका सुधार होता है । मुनिराजसे इस प्रकार गृहस्थके योग्य धर्मका स्वरूप सुनकर धर्मात्मा कुमार प्रीतिङ्करने पुनः उनसे यह पूछा—भगवन् ! पूर्व जन्ममें मैंने कौनसा घोर तप तपा था जिससे मुझे यह विभूति इस भवमें प्राप्त हुई है । उत्तरमें मुनिराज धर्मरुचिने कहा—वत्स ! मैं यथार्थ रूपसे तुम्हारे पूर्व भवका वृतान्त सुनाता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो ठीक ही है मुनिगण धर्म शील हुआ ही करते हैं ॥ ११८—१२० ॥

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कोशल नामका देश है और उसमें कौशांबी नामकी प्रसिद्ध

१२१ ॥ हरिबाहननामाभूदिलापः पालितप्रजः । शशिप्रभा प्रिया तस्य तयोः पुत्रः सुकोशलः ॥ १२२ ॥ गुरोर्विनयतः स्वल्पकालेनापी पठच्छ्रुतं । समग्रमार्हतं धीमान् पूर्वपुण्यात्सुकोशलः ॥ १२३ ॥ समासयौवनो जज्ञे सत्कन्यापरिणायिनः । विद्याभ्यासेन रामाणां संगं चक्रे न राजतुक् ॥ १२३ ॥ तदा तत्पितरौ चित्ते तर्कयामासतुस्तरां । दुःखिनौ च कथं तस्य वंशवृद्धिर्भविष्यति ॥ १२४ ॥ अन्यदा तत्पुरोद्याने सोमप्रभयमीश्वरं । आगतं बनपालात्स श्रुत्वैनं वंदितुं ययौ ॥ १२५ ॥ गत्वा नत्वा वृषं श्रुत्वा प्रागदीदिति तं नृपः । हे

नगरी है। कौशांवी पुरीका स्वामी उस समय राजा हरिवाहन था जो कि न्याय मार्गके अनुसार प्रजाका पालन करनेवाला था। उसकी स्त्रीका नाम शशिप्रभा था और उन दोनोंसे उत्पन्न पुत्र सुकोशल था ॥ १२१—१२२ ॥ कुमार सुकोशल गुरुका अतिशय विनयी था इसलिये पूर्व पुण्यके उदयसे भगवान जिनेन्द्र प्रति पादित समस्त सिद्धान्तको वह थोड़े ही दिनोंमें पढ़ गया था। जिस समय वह पूर्ण युवा होगया उसके साथ अनेक कन्याओंका विवाह होगया परन्तु कुमार सुकोशलके चित्तपर विद्याभ्यासका पूर्ण प्रभाव जमा हुआ था इस लिये परिणामोंमें सदा विरक्ति के कारण वह उनके संग रंचमात्र भी भोग विलास करना नहीं पसन्द करता था। कुमार सुकोशल की यह लोकोत्तर विरक्ति देख उसके माता पिताको बड़ी चिन्ता होगई। दुःखित हो वे इसप्रकार विचारने लगे—

यदि कुमारकी यही वैराग्यमय चेष्टा रही तो यह निश्चय है इसके कोई भी संतान नहीं हो सकती और विना संतानके इसके वंशकी बृद्धि भी असम्भव है ॥ १२३—१२४ ॥ एक दिन कौशांवी पुरीके उद्यानमें मुनिराज सोमप्रभ आकर विराजे। वनपालके मुखसे उनका आना सुना इसलिये उनकी वंदनाके लिये वह चल दिया।१२५। मुनिराजके पास पहुंचकर राजा हरिवाहनने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। उन्होंने जो धर्मोपदेश दिया वह सुना एवं इसप्रकार मुनिराजसे कहा

स्वामिन्! मामकः पुत्रो राजनीतिं च वेद न ॥ १२६ ॥ विद्याभ्यासेन रामाणां सांगत्यं प्रकरोति न। तत्किं देव द्रुतं ब्रूहि संतो हि भ्रांतिवेदिनः ॥ १२७ ॥ नृप भ्रांतिगतं मत्वा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः। देशेऽस्मिन् पत्तन भाति नरकूटाभिधं महत् ॥ १२८ ॥ तत्पती राणको नाम्ना प्रतापी रणजित्सुधीः। तत्रैव पत्तने श्रीलः कुटुम्बी तुंगिलाह्वयः ॥ १२९ ॥ तस्यास्ति तुङ्गिला रामा सती भर्त्तानुगामिनी। दुहिताभूत्तयोस्तुंगभद्राख्या मूलभे शुभे ॥ १३० ॥ पूर्वपापोदयात्तस्याः पिता माता सहोदराः। क्षय प्राप्तास्तदा सापि भिक्षयावीवृधद्धात् ॥ १३१ ॥ कालेन साष्टवर्षीया जज्ञे दुःखभरार्दिताः। एधभारं बहंती वै चक्रे स्वोदरपूरणं ॥ १३२ ॥ एकस्मिन्वासरे काष्ठानय

भगवन्! मेरा पुत्र सुकोशल राजनीतिका रञ्चमात्र भी जानकार नहीं है। अनेक सुन्दरी स्त्रियां उसके मौजूद हैं तथापि वह उनके साथ भोग विलास करना नहीं चाहता यह क्या बात है? मुझे इस बातकी बड़ी भारी चिन्ता है आप मेरी इस भ्रांतिको शीघ्र दूर करें क्योंकि भ्रांतिका दूर करना सज्जनोंका स्वभाव होता है ॥ १२६—१२७ ॥ राजा हरिवाहनको इसप्रकार चिन्तित देख मुनिराज इस प्रकार कहने लगे—

इसी कोशल देशमें एक नरकूट नामका विशाल नगर है। उसका स्वामी राजा राणक था जो कि अत्यन्त प्रतापी था और रणमें सदा विजय पानेवाला था। उसी नगरमें एक तुङ्गिल नामका गृहस्थ सेठ भी निवास करता था ॥१२८—१२९॥ सेठ तुङ्गिलको स्त्रीका नाम तुङ्गिला था जो कि सती साध्वी और अपने स्वामीकी आज्ञाकारिणी थी। उन दोनोंसे उत्पन्न तुंगभद्रा नामकी पुत्री थी जो कि मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुई थी ॥ १३० ॥ पूर्व जन्मके तीव्र पापके उदयसे उसके बाप मा भाई सभी मर गये। धन भी सब किनारा कर गया जिससे वह भीख मांगकर अपना पेट भरने लगी ॥ १३१ ॥ जब वह आठ वर्षकी होगई तब वह दुखित होकर ईंधन ढोने लगी और बड़े कष्टसे अपना पेट भरने लगी ॥ १३२ ॥

नाथं बने गता। तत्रायातोऽवधिज्ञानी पिहितास्रवनामभाक् ॥ १३३ ॥ जनतापरिवीतं तं तेजःपुंजं विलोक्य सा। आगता वन्दितुं दीना दीनानाथं यमीश्वरं ॥ १३४ ॥ ननाम कुड्मलीकृत्य करयोः संयताग्रिमं। समीपे संस्थिता पुण्याद्धर्मं श्रुत्वाऽवदन्मुनिं ॥ १३५ ॥ हे स्वामिन्! किं कृतं पापं मया प्राक् येन दुर्भगा। दुर्वंधा ईदृशो नाथ! बभूवाहं च दुःखिनी ॥१३६॥ मुनीरराण हे पुत्रि! दुःखं माकुरु माकुरु। जीवः पापं करोत्येव तद्विपाको हि दुःसहः ॥ १३७ ॥ ततोऽवदत्तुङ्गभद्रा सा सत्यं देव मया चितं। एनो विलीयते येन तद्व्रतं

एक दिनकी बात है कि वह लकड़ी लानेके लिये वनको गई। वहांपर एक पिहितास्रव नामके अवधिज्ञानी मुनिराज विराजमान थे। उनके चारो ओर अनेक जन विद्यमान थे इसलिये उनके मध्यमें वे तेजपुंज सरीखे जान पड़ते थे। दीन कन्या तुंगभद्रा भी उनके पास आई। मुनिराज की भक्ति पूर्वक बंदना की। नमस्कार किया। हाथ जोड़कर उनके समीप बैठ गई। पुण्यके उदयसे धर्मोपदेश सुना। और विनय पूर्वक मुनिराजसे यह पूछा—

स्वामिन्! पूर्व जन्ममें मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था जिससे मैं महा बद सूरत निंद्य कार्य करनेवाली और दुःखिनी हुई हूं। उत्तरमें मुनिराजने कहा—

पुत्रि! तू किसी बातका अपने चित्तमें दुःख न कर। यह जीव सदा अनेक प्रकारके पाप करता ही रहता है और उनका दुःखदायी फल भोगता रहता है ॥ १३३—१३७ ॥ प्रीतिंकरके ये वचन सुन तुंगभद्राने कहा—कृपानाथ इसमें कोई संदेह नहीं मैंने अवश्य दुष्कर्मोंका उपार्जन किया है। अब यह वतलाइये कि किस उपायसे मेरे इन सब पापोंका नाश होवे। उत्तरमें ध्यानशील अवधिज्ञानी मुनिराजने कहा—

पुत्री! तुम स्वर्ग और मोक्ष सुखके देने वाले मौन व्रतको धारण करो। मौन व्रतके धारण करनेसे तुम्हारा यह सव संकट कट जायगा। मुनिराजके मुखसे यह वात सुनकर तुंगभद्राने

ब्रू हि तत्त्ववित् ॥ १३८ ॥ सदयोऽलीलपद्मध्यानी तामेवावधिलोचनः । पुत्रि ! मौनव्रतं धेहि लेखावासशिवप्रदं ॥१३९॥ तत्कथं क्रियते ध्यानिन् ! कस्मिन् मास्यस्य को विधिः । कथ्यते श्रृणु सानन्दाद्विधिं मौनद्वयस्य च ॥ १४० ॥ भोजने वमने स्नाने मैथुने मलमोचने नित्यमेतेषु कुर्यास्त्व मौनं पुत्रि स्वसिद्धये ॥१४१॥ नैमित्तिकं पुनर्योषं कर्तव्यं श्रृणु तद्विधिं । पौषे मास्यसिते पक्षे ध्रुवं चैकादशीदिने ॥ १४२ ॥ आयामषोडशान्मौनसंयुतः प्रौषधः परः । कर्तव्यस्तद्दिने पुत्रि ! हस्तसंज्ञादिवर्जनं ॥ १४३ ॥ हुङ्कारो न विधातव्यो मुखसंज्ञा तथैव च । कासः खंखारवो हुं हुं दन्तबद्धेन जल्पनं ॥ १४४ ॥ हसनं दृष्टिविक्षेपः शरीरस्य विधूननं । शयनं नैव कुर्वीत दिवानक्तं जिनालये ॥ १४५ ॥ सुकरं व्रतमेतत्ते कर्तव्यं कर्महानये । प्रमाणीकृत्य सा नीत्वा व्रतं याता निजास्पदं ॥१४६॥ विधिना तद्व्रतं कृत्वा

पृछा—प्रभो ! मौन व्रत कैसे और किस मासमें किया जाता है और उसके करनेकी क्या विधि है ! कृपाकर आप बतलाइये उत्तरमें मुनिराजने कहा—नित्य और नैमित्तिकके भेदसे मौनव्रत दो प्रकारका है। तुम सुनो हम उसका स्वरूप वर्णन करते हैं—

पुत्री ! अपने आत्माकी विशुद्धिके लिये तुझे भोजन वमि स्नान मैथुन और मलमोचनमें सदा मौन व्रत धारण करना चाहिये यह नित्य मौन व्रत है। तथा पूस मासकी वदी एकादशीके दिन खासकर तुझे मौन धारण करना चाहिये यह नैमित्तिक मौन व्रत है। नैमित्तिक मौनव्रतकी विधि इस प्रकार है—

पूस बदी एकादशीके दिन सोलह प्रहर पर्यन्त मौन सहित तुम्हें प्रोषध व्रत करना चाहिये। उस दिन मौन व्रतके समय तुम्हें हाथसे किसी प्रकारका इशारा न करना होगा। हुङ्कार भी न करना होगा। मुखसे भी किसी प्रकारका इशारा न करना होगा। खासी खखारका शब्द हुंहू शब्द दांत मीचकर बोलना हंसना आंखोंसे इशारा करना शरीरका कपाना और जिनालयके अंदर बैठकर दिनरात सोना भी न होगा। पुत्री ! यह व्रत अत्यंत सरल है। तुझे अपने कर्मोंके

स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां । मृत्वा काले वभूवायं तव पुत्रः सुकोशलः ॥१४७॥ अस्मिन् भवे तपस्तप्त्वा मुक्तिं यास्यति भूपते ! । नृपोऽपि तद्वचः श्रुत्वा ययौ धामविरक्तधीः ॥ १४८ ॥ निजं राज्यं तुजे तस्मै दत्त्वासौ हरिवाहनः । पिहितास्रवमादाय दीक्षां दैगम्बरीमितः ॥ १४९ ॥ तद्धीरत्वं समालोक्य शतं राज्ञां च धीमतां । प्राव्राजीज्जितशत्रूणां धीराणां चेष्टितं ह्यदः ॥१५०॥ राजा सुकोशलो राज्यं चकें रीत्यथ नोदनात् । सचिवस्य श्रुताभ्यासी नीरागी कामिनीषु च ॥ १५१ ॥ सविवेनैकदा प्रोक्तः स्वकीयो देहजः सुधीः । श्रुतसागर

खिपानेके लिये यह व्रत अवश्य करना चाहिये । तुंगभद्राने मुनिराजके वचन प्रमाणीक मान लिये और वह व्रत लेकर अपने घर चली आई । जब तक वह जीती रही विधि पूर्वक उस व्रतका आचरण उसने किया आयुके अंत समयमें पंचपरमेष्ठिका स्मरण कर उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया वही तुंगभद्राका जीव यह कुमार सुकोशल हुआ है ॥ १३८—१४७ ॥ राजन् ! यह कुमार सुकोशल तीव्र तपोंको तपकर नियमसे इसी भवसे मोक्ष जायगा । इस वातमें किसी प्रकारका संदेह मत समझो । मुनिराजके मुखसे इस प्रकार सुकोशल कुमारका पूर्व भव सुनकर राजा हरिवाहनको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया । वह मुनिराजके पाससे सीधा राज महल लौट आया । अपने पुत्र सुकोशलको राज्य प्रदान किया एवं मुनिराज पिहितास्रवके चरणोंमें दिगम्बर दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ १४८—१४९ ॥ राजा हरिवाहनकी इसप्रकार धीर वीरता देख सौ राजा उसके साथ और भी दीक्षित होगये। ठीक ही है शत्रुओं पर सदा विजय पाने वाले धीर वीर पुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा हुआ करती हैं ॥ १५० ॥ कुमार सुकोशल अपने पिताके मुनि हो जानेपर यद्यपि राजा वन गये परन्तु परिणामोंमें वैराग्य रहनेके कारण उनका चित्त राजकी ओर कम झुकता था तथापि वे मंत्रीकी प्रेरणासे वरावर राज्यका कार्य सम्हालते थे किन्तु उनका शास्त्रोंका अभ्यास सदा चलता रहता था । और स्त्रियोंके अन्दर उनकी सदा अनिच्छा रहती थी ॥ १५१ ॥

मेव रहस्याकार्यं पापिना ॥ १५२ ॥ राजायं बालकः पुत्रः । राजनीतिं न वेत्त्यतः । कुतश्चित्कारणान्नूनं भारणीयस्त्वयाचिरात् ॥१५३॥ तुभ्यं प्रौढाय पुत्राय राज्यं दास्यामि निश्चितं । अहं मन्त्री भवेयं ते स्वीयं राज्यं हि सौख्यदं ॥१५४॥ श्रुत्वेति तत्पितुर्वाक्यं स्वामिद्रोहकरं सुतः । शिरोविधूननं कुर्वन् भूपाभ्यासं समाययौ ॥ १५५ ॥ राजानं स समाहूय निःशलाके सुप्रीतिमान् । पित्र्युक्तं सकलं तस्मै नृपाय समबूबुधत् ॥ १५६ ॥ विचार्य वचनं तस्य राज्ञा मन्त्री निराकृतः । देशात्स्वपुरतो वेगाद्राजद्वाराच्च दुर्मतिः ॥ १५७ ॥ विद्युत्पातान्मृतं दृष्ट्वा मरालद्वयमेकदा । सद्यो वैराग्यमापन्नो विरक्तोऽभून्मुनीन्द्रवत् ॥ १५८ ॥ राज्यभारं ददौ तस्मै श्रुतसागरमंत्रिणे

राजा सुकोशलका मंत्री बड़ा दुष्ट था एक दिन उसने अपने पुत्र श्रुतसागरको एकांतमें बुलाया और उस पापीने इस प्रकार उससे कहा—पुत्र! राजा सुकोशल अभी बालक हैं। किसी प्रकारकी राजनीतिका जानकार नहीं तुम्हें चाहिये कि तुम किसी भी उपायसे इसे मार डालो ॥१५२।१५३॥ तुम युवा और राजके योग्य हो तुम निश्चय समझो यह सारा राज्य मैं तुम्हें दूंगा और मैं तुम्हारा मंत्री बनकर रहूंगा बस फिर राज्य हमारा ही हो जायगा ॥ १५४ ॥ मंत्रिपुत्र श्रुत सागर अपने पिताके इस प्रकार स्वामी द्रोह सूचक वचन सुनकर चित्तमें बड़ा दुःखित हुआ। उसने अपने पिता भी मंत्रीकी कुछ भी पर्वा न की शिर पटकता हुआ वह शीघ्रही राजाके पास चला गया। सज्जन पुरुषोंपर सदा प्रेम रखनेवाले मंत्रीपुत्र श्रुत सागरने शीघ्रही राजाको बुलाया और जो उसके पिता मंत्रीने कहा था सब ज्यों का त्यों राजाको कह सुनाया ॥ १५५—१५६ ॥ श्रुतसागरके वचनोंपर राजा सुकोशलने पूर्ण ध्यान दिया। दुर्बुद्धिके धारक उस मंत्रीको तिरस्कार पूर्वक देश नगर और राज दरबारसे तत्काल वाहिर निकाल दिया॥ १५७॥ एक दिन राजा सुकोशलने क्या देखा कि बिजलीके गिरनेसे दो हंस मर गये हैं बस एक दम उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया और मुनिके समान राज वैभवको उन्होंने मंत्री श्रुत सागरको समझा दिया ॥ १५८ ॥ राज्य भारके योग्य

जग्राह संयमं सारं पितुः पार्श्वे कृती स च ॥ १५६ ॥ मतिसागरनामा यो मंत्री निष्कासितः पुरात्। निदानं कृतवानेव स सांहाः स्वामिद्रुट् शठः ॥ १६० ॥ यदहं वारितोऽनेन कोशलेन महीभुजा। अहं प्रमाणं तर्ह्यग्रे हन्म्येनं कष्टतो ध्रुवं ॥ १६१ ॥ निदानमिति कृत्वासौ मंत्री निधनमासदत्। मौद्गल्यपर्वते सिंहो बभूवारुणकेसरः ॥ १६२ ॥ अथैकदा मुनी तौ द्वौ मौद्गल्यगिरिमापतुः। धृत्वा योगं स्थितौ तत्र तावत्सिंहः समागतः ॥ १६३ ॥ पूर्ववैरानुबंधेन क्रोधारुणितलोचनः। नखैर्दंतैः खरैः पापी भक्षयामास तौ मुनी। ॥ १६४ ॥ शुद्धध्यानेन तौ वीरौ क्षपकश्रेणिमाश्रितौ। केवलज्ञानमुत्पाद्य प्रापतुः परमं पदं ॥ १६५ ॥ अतो वत्स! विधातव्यं मौनं द्वैधं

उन्होंने मंत्री श्रुत सागरको समझा इसलिये समस्त राजपाट उसे सौंप दिया एवं पुण्यवान वे राजा सुकोशल अपने पिताके पास दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १५८—१५९ ॥ मंत्री मतिसागर जिसे कि राजा सुकोशलने उसके दुष्ट भावोंके कारण राज्यसे तिरस्कार पूर्वक निकाल दिया था वह जहां तहां पृथ्वी पर घूमता फिरा एवं अन्त समयमें उस स्वामीद्रोही मूर्ख और दुष्ट ने यह निदान बांधा—

मैं जो इस राजा सुकोशलने अनादर पूर्वक निकाला हूं उससे मैं ऐसा हूं जो इसे कष्ट पूर्वक मारूं बस ऐसा महादुष्ट निदान बांधकर वह मंत्री मरा और मुद्गल पर्वत पर वह लाल २ आल वालोंका धारक सिंह होगया ॥ १६०—१६२ ॥ एक दिनकी बात हैं कि पिता पुत्र वे दोनों मुनि जहां तहां विहार करते २ मुद्गल पर्वत पर आये और उसकी विस्तीर्ण शिलापर योग धारण कर स्थित होगये। जहांपर ये योग धारण कर विराजे थे वह सिंह भी वहांपर आया। पूर्व जन्मके तीव्र वैरके कारण मारे क्रोधके उसके नेत्र लाल होगये एवं तीव्र नख और दांतोंसे दोनों मुनियों का शरीर विदारण कर वह दुष्ट भक्षण कर गया ॥ १६३—१६४ ॥ वे दोनों ही मुनिराज परम धीर वीर थे अपने परिणामोंकी विशुद्धिसे वे क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ होगये एवं केवलज्ञानको प्राप्त

समाप्तये। महत्पुण्यं व्रतं सत्रोकं तत्लई व त्रियोयते ॥ १६६ ॥ तद् तं मन्त्रिपुत्रेण सार्कं जग्राह प्रीतिंकृत्। गंतुकामौ यथाभूतां नत्वा तौ मुनिपुङ्गवं ॥ १६७ ॥ तदा च हरिणं मृग्या कुर्वंतं सुरतक्रियां। सिंहेन प्रहतं वीक्ष्य तौ च वैराग्यमापतुः ॥ १६८ ॥ यथैणं हतवान् सिंहो सतृष्णं कांतया सह। तथा कालोऽपि नो हत हनिष्यति हठादिति ॥ १६९ ॥ तत्क्षणे वै द्विधा संगं त्यक्त्वा मार्दवमानसौ

कर मोक्ष शिला पर जा विराजे ॥ १६५ ॥ मौनव्रतका माहात्म्य बतलानेवाली यह कथा सुनाकर मुनिराज धर्मरुचिने कुमार प्रीतिङ्करसे कहा—

कुमार ? मौनव्रतका यह विशिष्ट फल है इसलिये नित्य नैमित्तिकके भेदसे जो दो प्रकारका मौन बतलाया गया है वह अवश्य आचरण करना चाहिये। यद्यपि यह व्रत देखनेमें अति सुलभ जान पड़ता है तथापि वह महान् पुण्यका कारण है इसलिये यह अवश्य आचरण करने योग्य है। ॥ १६६ ॥ मुनिराज धर्मरुचिसे यह मौनव्रतका विशेष माहात्म्य सुन राजपुत्र प्रीतिंकरने मन्त्रीपुत्रके साथ शीघ्र ही मौनव्रतकी प्रतिज्ञा लेली। भक्ति पूर्वक दोनोंने मुनिराजको नमस्कार किया और वे अपने नगरकी ओर चल दिये ॥ १६७ ॥ जिस समय वे अपने नगरकी ओर लौट रहे थे उस समय मार्गमें क्या देखते हैं कि अपनी हिरणीके साथ सानन्द विषय भोग करते हिरणको सिंहने मार डाला है। बस हिरणकी वैसी दशा देखकर उन्हें संसारसे वैराग्य होगया और वे मनही मन यह विचारने लगे—

जिस प्रकार अपनी स्त्रीमें तीव्र तृष्णा रखनेवाले इस हिरणको इस सिंहने मार डाला है उसी प्रकार काल रूपी सिंह भी हमें नियमसे हनेगा—उसके भी पंजेसे बचना हमारा अत्यन्त कठिन है बस शीघ्र ही उन दोनों कुमारोंने बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर दिया। परिणामोंमें अत्यन्त कोमलता धारण कर ली एवं वनमें मुनिराज धर्मरुचिके पास जाकर शीघ्रही

धर्मादिरुचिसामीप्ये तौ प्रवव्रजतुर्वने ॥ १७० ॥ क्षीरस्राविर्द्धिरुत्पन्ना प्रीतिंकरमहामुनेः । अद्भुतरसा क्षामशरीरस्य दयानिधेः ॥ १७१ ॥ एकदा जग्मतुः शुद्धौ साकेतस्य वनांतरे । विहरन्तौ मुनी सौम्यौ तौ विद्वांसो हतांहसौ ॥१७२॥ गणिका बुद्धिषेणाख्या दृष्ट्वा स्वगृह-सन्निधौ । चर्यायतं मुनिं नत्वा जगादेति कृतांजलिः ॥१७३॥ मुनेऽहं कुत्सिता निंद्या दानयोग्यकुलातिगा । अस्मिन् मन्ये विधा ग्राह्या न तवैव तपोनिधेः ॥ १७४ ॥ कादंबरी पलं यत्र कुले स्वप्ने न दृश्यते । नानाचारोऽपि योगीन्द्रैस्तत्र ग्राह्या विधान्यथा ॥ १७५ ॥ आश्रमद्वयभ्रष्टास्ते मुनयो मांसभक्षिणः । अनाचारप्रसङ्गत्वाद्भवंति व्याधसन्निभा ॥ १७६ ॥ इत्यप्राक्षीन्मुनिं क्षुद्रा प्रोच्चैर्गोत्रकुलादिकं ।

दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १६८—१७० ॥ अत्यन्त कृश शरीरके धारक दयाके समुद्र महामुनि प्रीतिंकरके घोर तपके कारण क्षीरस्राव नामकी ऋद्धि प्राप्त होगई ॥ १७१ ॥

विद्वान समस्त पापोंके नाश करनेवाले एवं शुद्ध मुनिराज प्रीतिङ्कर विहार करते २ एक दिन साकेत नगरके वनमें जा पहुंचे। किसी दिन जब वे आहारके लिये नगरमें गये और बुद्धिषेणा नामकी वेश्याने जब उन्हें चर्या पूर्वक अपने मकानके समीपसे निकलता देखा तो वह शीघ्र ही उनके पास आई और इस प्रकार विनय पूर्वक निवेदन करने लगी—

भगवन्! मैं हीन निन्दनीक और दानके योग्य कुलसे रहित हूं इसलिये तपके भंडार आप मेरा दिया आहार तो ग्रहण कर ही नहीं सकते? उत्तरमें मुनिराजने कहा जिस कुलमें शराब और मांसका स्पर्श स्वप्नमें भी न होगा और जहांपर किसी प्रकारका अनाचार न दीख पड़ेगा योगीन्द्र लोग उसी कुलका आहार ग्रहण कर सकते हैं ॥ १७२—१७५ ॥ जो मुनि मांसका भक्षण करते हैं वे दोनों ही आश्रमोंसे भ्रष्ट हैं अर्थात् न वे गृहस्थ ही कहे जाते हैं और न मुनिही ही कहे जाते हैं क्योंकि वे अनाचारी हैं। अतएव वे भीलोंके समान निन्दनीक हैं ॥ १७६ ॥ मुनि-राजके ऐसे वचन सुनकर बुद्धिषेणाने पुनः यह पूछा—प्रभो? जीवोंको उच्च गोत्र उच्चकुल सुन्दर

देहिनां स्यात्कथं ब्रूहि रूपं कीर्तिश्च भो मुने ! ॥ १७७ ॥ पुनस्तां स मुनिः प्राह मद्यमांसादिवर्जनात्। ब्रह्मचर्याच्च तत्प्राप्तिर्नान्यथा देहिना मुने ! ॥ १७८ ॥ उदीर्येति गतोऽरण्ये मुनिः प्रीतिंकरो महान्। तदा तमगदीत्साधु विचित्रमतिरित्यहो ॥ १७९ ॥ एतावत्काल पर्यंतं क्व स्थितं भवता पदे। संजायते सदा देव ! मुमुक्षूणां स्थितिर्वने ॥ १८० ॥ तदा प्रीतिंकरः क्षुद्रावृत्तांतं सर्वमादितः। तस्मै न्यवेदयत्सोऽपि श्रुत्वा चानंदमागतः ॥ १८१ ॥ विचित्रमतिरन्येद्युर्भुक्त्यै प्राविशद्गृहं। क्षुद्रायाः सापि तं दृष्ट्वा ववंदे पूर्वजन्मुनिं

रूप और कीर्ति किस प्रकार प्राप्त होती है कृपाकर आप खुलासा रूपसे यह बतलाइये। उत्तरमें मुनिराजने कहा—

जो मनुष्य मद्य मांस और मधुके त्यागी हैं और अपनी आत्मामें ब्रह्मचर्यका बल रखते हैं उन्हींके उच्च गोत्र वा उच्च कुल आदिकी प्राप्ति होती है अन्यको नहीं ॥ १७७—१७८ ॥ बस इस प्रकार बुद्धिसेनाको समझा कर मुनिराज प्रीतिंकर वनमें लौट आये उन्हें कुछ विलम्बसे लौटते देख मुनिराज विचित्र मतिने कहा—

मुने ! इतनी देर तक आप किस स्थान पर ठहरे रहे थे। देव ! जो पुरुष मुमुक्षु है—मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिये सदा वनमें ही रहना उचित बतलाया गया है। मुनिराज विचित्र मतिकी यह बात सुन मुनिराज प्रीतिंकरने आदिसे अंत तक वेश्या बुद्धिसेनाका समस्त वृत्तांत कह डाला जिसे सुनकर मुनिराज विचित्र मतिको अति आनन्द हुआ ॥ १७९—१८१ ॥ दूसरे दिन मुनिराज विचित्र मतिभी आहारके लिये गये एवं दुर्भाग्यवश वे वेश्या क्षुद्राके घरमें प्रवेश कर गये वेश्याने उन्हें भी मुनिराज प्रीतिङ्करके समान जानकर वंदना की। और धर्मोपदेश सुननेकी लालसा प्रगट की परन्तु उसे देख मुनिराजका चित्त चंचल होगया इसलिये वे धर्मकथाकी चर्चा न कर दुर्बुद्धि हो इसप्रकार काम कथा कहने लगे—

॥ १८२ ॥ अन्वयुक्त यथा धर्मं रूराजीवा मुनिं प्रति। कामरागकथामेव व्याजहार स दुर्मतिः ॥ १८३ ॥ सुन्दरि ! स्थूल वक्षोजे ! गौरांगि। मृगलोचने ! रुवंकास्ये ! प्रगल्भे ! त्वं धर्मं पृच्छसि किं पुनः ॥ १८४ ॥ यौवनं यास्यति नूनं वार्धक्यं च समेष्यति। कस्मै कृत्याय देहोऽयं तव स्यात्सुरतं विना ॥ १८५ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं क्षुद्रा तं जगौ विहितस्मिता। काचार्थं सन्मणिं पोलुं गर्धभार्थं च कस्त्यजेत् ॥ १८६ ॥ मुनिस्तद्वचनं श्रुत्वा भृश कामाकुलोऽभवत्। रत्नरम्भोत्तमेऽस्माकं त्वमेवासि गजेश्वरः ॥१८७॥ पुनस्तं बुद्धि पेणाह स्तोकसौख्यार्थमंजसा। भो नै कस्यागतं शर्म शेवं कस्त्यजति शिव ॥ १८८ ॥ स्वत्सर्प सौंद्रवं शनै महा रोचेत नायके !

सुन्दरी ! तुम उन्नत स्तनोंसे शोभायमान हो। गोरे अंगकी धारक हो। तुम्हारे दोनों नेत्र हिरणोंके समान मनोहर हैं तुम चंद्रमुखी और प्रौढ़ उम्रकी हो धर्मके विषयमें तुम क्या पूछना चाहती हो? देखो यह यौवन चला जाता हैं और बुढापा आ धमकता है। तुम्हारा यह सुन्दर शरीर भोग विलासोंके लिये है सो तुम भोग विलास न कर क्यों इस महा मनोहर शरीरको निरर्थक खो रही हो और किस कार्यके लिये इसका लालन पालन कर रहीं हो ॥ १८२—१८५ ॥ मुनिराज विचित्रमतिकी यह बात सुनकर वेश्या बुद्धिषेणा मुस्कराने लगी एवं मुस्कराते हुए उसने यह उत्तर दिया—मुने? काचके लिये उत्तम मणि और गधाके लिये हाथीको छोड़ता मैंने कोई नहीं देखा है। भोग विलास काच और गधाके समान हैं एवं धर्माचरण उत्तम मणि और हाथीके समान हैं। धर्माचरण छोड़कर भोग विलासोंसे शरीरको नष्ट करना व्यर्थ है। मुनि विचित्र मति की काम वासना प्रज्वलित हो चुकी थी। वेश्याको बातका उनके चित्तपर जरा भी असर नहीं पड़ा एवं कामसे अत्यन्त पीडित हो वे इस प्रकार कहने लगे—

सुन्दरी ! तुम देवांगनाके समान मनोहर रूपसे शोभायमान हो इसलिये मेरे लिये तो तुम्हीं उत्तम मणि और उत्तम हाथी हो तुम्हें देखकर धर्माचरणकी ओर चित्त नहीं जा सकता ॥१८६॥

करणागोचरं शर्म शाश्वतं नापि तत्तथा। सा तं भ्रष्टं परिज्ञाय तिरश्चक्रेऽतिवेगतः। तदा लब्धापमानः सः, वने गत्वा तपोऽकरोत् ॥ १६० ॥ मासे मासद्वये याते पारणामकरोन्मुनिः। तत्तपो दुष्करं मत्वा राजा तद्वशमागतः ॥ १६१ ॥ बुद्धिषेणा तदा स्वाते तत-र्केति मुहुर्मुहुः। अस्याधीनो वशो राजा तर्हि कोऽप्यस्त्ययं महान् ॥ १६२ ॥ वशीभूयमिता तस्य बुद्धिषेणापि लज्जिका। ततस्तांगत्यं

१८७ ॥ बुद्धिषेणाका कार्य यद्यपि वेश्याका था परन्तु वह धर्मको कुछ समझती थी इसलिये वह पुनः मुनि विचित्रमतिको समझाने लगी—

मुने! विषय जनित थोड़ेसे सुखकी लालसासे विलकुल पासमें आये हुए मोक्ष सुखको कोई छोड़ता नहीं सुना। मोक्षका प्रधान कारण तुमने दिगंवर लिंग धारण कर रक्खा है मोक्षका सुख विलकुल तुम्हारे समीप है तुम्हें निन्दित विषय भोगोंकी लालसा कर उसे न छोड़ देना चाहिये ॥ १८८ ॥ मूढ़ मुनिपर उसके वचनोंका कव प्रभाव पड़ सकता था। विचित्रमतिने अपने मुनिलिंग की कुछ भी पर्वा न की वह एक दम मूढ़ वनकर इसप्रकार कहने लगा—

सुन्दरी! मुझे इस समय तो तुम्हारे संसर्गसे जगमान सुख ही रुच रहा है। जो सुख इंद्रियोंके गोचर नहीं वह नित्य हो चाहे अनित्य वह वैसा ही रहे। मुनिके इन निर्लज्ज वचनोंसे वेश्या बुद्धिषेणाको यह मालुम पड़ चुका कि यह धर्माचरणसे भ्रष्ट है इसलिये उसे वडा क्रोध आया और उसका घोर तिरस्कार किया जिससे मुनि विचित्रमतिको गाढ अपमान मान वड़ा कष्ट हुआ। सीधा वह वनको चला गया एवं मनमें किसी प्रकारका धर्माचरण न रख ढोंगसे वह एक एक वा दो २ मासके वाद पारणा करने लगा जिससे राजा पर भी उसका प्रभाव पड़ गया और वह विचित्रमतिका अनन्य भक्त वन गया ॥ १८९—१९१ ॥ जिस समय विचित्रमतिका अनन्य भक्त राजा होगया उस समय वुद्धिषेणा अपने मनमें बार २ विचारने लगी जब इस मुनिके वश राजा होगया

मुनिः प्राप्य मोहांधोऽभूत्तपश्च्युतः ॥ १६३ ॥ पूर्ववैरेण वेरं स्यात्पूर्वस्नेहेन भोगता। न दोपोऽस्त्यत्र कस्यापि तन्निंदी नरकं व्रजेत् ॥ १६४ ॥ तिर्यग्योनिश्च मोहाद्वै निर्वंधो भवति स्फुटं। मृत्वा स कुंजरो जज्ञे तवायं मानवाधिप! ॥ १६५ ॥ अस्य त्रिलोकभगतिश्रवणा जातिसंस्मृतिः वभूवातो गजोऽयं तैः नागृहीद्द्रवणं शुचा ॥ १६६ ॥ इत्याकर्ण्य नृपशिखरो चिंतयामास धिग्धनं। राज्यं रामा सुखं चेति निर्विण्णोऽभूत्तदा नरेट् ॥ १६७ ॥ साधिपत्यं तुजे दत्वा स्वभाता रत्नमालया। साकं संयममापेदे रत्नायुधनराधिपः ॥ १६८ ॥ योग्याश्रमाद्वते व्यर्थं तपो भवति निश्चितं। यत्राश्रमे मनो याति विलयं तत्तपो विदुः ॥ १६९ ॥ तपासि विन्ध्ये शैले फल्गाग्रे तिग्मरो

है तव अवश्य ही यह कोई महान पुरुष है वस मारे भयके चुन्द्रिलेखा भी मुनिके वश गई। मोहसे अन्ध हो मुनिराजने भी उसकी संगति करनी प्रारम्भ करदी और तपसे अपना मुंह मोड़ लिया। ॥ १६२—१६३ ॥ जिस किसी मनुष्यका जिस किसीके साथ वैर वा स्नेह होता है वह पूर्व भवके वैरके संबंधसे होता है इससें किसीका दोष नहीं इसलिये किसीको बुरा भला कहना व्यर्थ है ॥ १६४ ॥ मोहकी प्रबलतासे जीवको तिर्यंच योनिके अन्दर तिर्यंच होना पड़ता है।

राजन वज्रायुध! वह विचित्रमति मुनिका जीव मरकर तुम्हारा यह हाथी हुआ है। तीनलोक का स्वरूप सुनकर इसे अपना जाति स्मरण होगया था इस लिये मारे शोकके इसने खाना पीना छोड़ दिया ॥ १६५—१६६ ॥ राजा रत्नायुधने मुनिराज वज्रदन्तके मुखसे जब इसप्रकार हाथीके पूर्व भवका वृत्तांत सुना तो उसने लक्ष्मी राज्य स्त्री जनितसुख आदिको बहुत धिक्कारा। वह उनसे विरक्त होगया। राज्य भार अपने पुत्रको प्रदान किया एवं अपनी माता रत्नमालाके साथ संयम धार लिया ॥ १६७—१६८ ॥ तपके आचरणका जो आश्रम वतलाया गया है यदि उस आश्रमकी कुछ भी पर्वा न की जाय तो वह तपा हुआ तप भी व्यर्थ चला जाता है। यदि तप करते भी चित्त

विश्वं । प्रांते समाधिना मृत्वा सोऽभूदच्युते दिवि ॥ २०० ॥ तपसा रत्नमालापि स्त्रीत्वं छित्वाऽच्युताभिधः । देवोऽभूदच्युते स्वर्गे सुखार्णोधौ पनङ्गभः ॥ २०१ ॥ द्वाविंशत्यब्धिमानायुः सुखं तौ प्रापतुः परं । तावद्भिश्च सहस्रैस्तौ मनसाहारमापतुः ॥ २०२ ॥ तावत्पक्षैः समुच्छ्वासं सुगंधीकृतदिक्चयं । कुर्वंतौ सेव्यमानौ च रम्भाराज्यामरालिभिः ॥ २०३ ॥ भोजयामासतुस्तौ शं निमिषा ऽच्युतनामिधौ । शुक्लेश्यौ करत्र्यंगौ पद्मरागमणिप्रभौ ॥ २०४ ॥ अथ यः प्राक्तनः श्वाभ्रो निर्गतः पङ्कश्वभ्रतः । नानायोनिषु दुःखानि तानि भुक्तानि तेन वै ॥ २०५ ॥ नाम्ना छत्रपुरे व्याधो वर्तते कज्जलप्रभः । दारुणाख्यो महापापी पापपुंज इवाद्भुतः ॥ २०६ ॥ तस्य

गृहस्थाश्रममें हो फसा रहे तो वह तप नाशक बन जाता हैं ॥ १९९ ॥ वे मुनिराज रत्नायुध सूर्यकी ओर टकटकी लगाकर घोर तप तपने लगे और अंतमें समाधिपूर्वक प्राणोंको त्याग कर अच्युत स्वर्गमें जाकर देव होगये ।२००। आर्यिका रत्नमालाने भी घोर तपके भावसे स्त्रीलिंगको छेद दिया। अच्युत स्वर्गमें जाकर वह अच्युत नामका देव होगई जो कि देव सुखरूपी समुद्रकी वृद्धिके लिये चंद्रमा स्वरूप था । वे दोनों देव बाईस सागर प्रमाण आयुके धारक थे। परम सुखी थे। बाईस हजार वर्षोंके बाद एकवार मनसे आहार ग्रहण करते थे। बाईस पक्षोंके बाद अपनी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको महकानेवाला सुगंधित उसास लेते थे और अनेक देवांगना और देव उनकी सेवा करते थे ॥२०१-२०३। शुक्ललेश्याके धारक थे। तीन हाथके शरीरसे शोभायमान थे और पद्मराग मणिके समान प्रभाके धारक थे ॥ २०४ ॥

मंत्री सत्यघोषका जीव जो अजगरकी पर्यायसे चौथे नरकमें गया था। वह वहांसे अपनी आयुके समाप्त होजानेके बाद निकला एवं अनेक योनियोंमें घूमनेके कारण उसने बहुत दुःख भोगा।२०५। पद्मपुर नगरमें एक दारुण नामका भील रहता था जो कि काजलके समान काला था और साक्षात् पाप स्वरूप था ॥ २०६ ॥ उसकी स्त्रीका नाम मंगिका था जो कि काजलका पिंड स्वरूप थी एवं

स्त्री मंगिका नाम्ना कज्जलालिश्च वेधसा। रचिता तमसां माला जगत्स्थानमिव ध्रुवं ॥ २०७ ॥ तयोः पुत्रोऽभवत्सोऽपि भीषणो भीरुभीप्रदः। नाम्नातिदारुणोदुष्टो मृगादीनां विनाशकृत् ॥ २०८ ॥ वने प्रियंगुखण्डाख्ये वज्रायुधमुनीश्वरः। आययावेकदा हिंस्रैर्भीषणे विहरन्नसौ ॥ २०९ ॥ गहनं विपिनं स्थानं दृष्ट्वा तत्र स्थितो मुनिः। कायोत्सर्गं विधायाशु संस्मरन् परमं महः ॥ २१० ॥ तपसा क्षामगात्रं तमर्धदग्धपरासुवत्। गतच्छायं मुनिं दृष्ट्वा समैत्तत्रातिदारुणः ॥ २११ ॥ अब्रवीदिति कोपेन समारूढं विधाय सः। कार्मुकं दुर्वचोभिस्तं दृषद्धस्तो भ्रमन्नपि ॥ २२ ॥ कोऽसि त्वं कुत आयातो मद्वने जनवर्जिते। किमर्थं कस्य पुत्रोऽसि किंनामा

ऐसी जान पड़ती थी मानों यह जगतमें ब्रह्माने अंधकारकी माला रच दी है भीलिनी मंगीके सत्यघोषका जीव वह नारकी अतिदारुण नामका पुत्र हुआ जो कि महाभयंकर था। डरपोकोंको भय प्रदान करनेवाला था दुष्ट था और मृग आदि दीन पशुओंका नाशक था। छत्रपुरका एक प्रियंगुखंड नामका वन था जो कि हिंसक जीवोंसे महा भयंकर था। जहां तहां विहार करते २ मुनिराज वज्रायुध वहांपर आये। गहन निर्जन स्थानमें कायोत्सर्ग मुद्रा धारणकर वे विराज गये और सिद्धोंके स्वरूपका चिंतवन करने लगे। मुनिराज वज्रायुधका शरीर घोर तपोंके तपनेके कारण एकदम कृश था इसलिये वे आधे जले मुर्दे सरीखे जान पड़ते थे एवं उनके शरीरकी प्रभा एकदम नष्ट होगई थी। मृगोंके पकड़नेकी खोजमें भीलपुत्र अतिदारुण भी घूमता २ वहां आ पहुंचा एवं मुनिको देखकर पूर्व वैरके संबन्धसे उस दुष्टने वाण धनुष पर चढ़ा लिया। हाथमें मारनेके लिये पत्थर ले लिये। एवं मारनेके लिये घुमाता हुआ वह इसप्रकार दुर्वचन कहने लगा—

तू कौन है! और इस जनशून्य मेरे वनमें तू कहांसे और क्यों आया है? किसका पुत्र और तेरा क्या नाम है? जल्दी बता यदि तू जल्दी न बतायेगा तो वाण पत्थर और मुक्कोंसे तुझे अभी यमराजके मन्दिरमें पहुंचा दूंगा ॥ २०७—२१३ ॥ परम ध्यानी मुनिराज ऐसे कब भय

वद वेगतः ॥ २१३ ॥ ब्रूयास्त्वं यदि:नों तूर्णं तर्हि कीनाशमन्दिरं । नेष्याम्यहं धनुर्घातैस्त्वां पाषाणैश्च मुष्टिभिः ॥ २१४ ॥ निश्चलो मेरुवद्धीरः सिंहवद्वारिराशिवत् । गम्भीरः सत्वमाश्रित्य न चचाल स योगतः ॥ २१५ ॥ तदासौ दुर्मतिर्व्याधस्तताडोपलराशिभिः पूर्ववैरोदयाद्गाढं तस्य क्रोधोऽभूशायत ॥ २१६ ॥ आकण्ठं ताड्यमानोऽपि तेन पापीयसा मुनिः । नापतद्भूतले भव्यो ध्यानभित्त्यबलंबतात् ॥ २१७ ॥ यदा भिल्लो मुनेः कण्ठे चापमारोप्य वेगतः । आचकर्ष बलाद्दोर्भ्यां न चचाल तदापि सः ॥ २१८ ॥ दोर्दण्डीकृत्य चापं स्वं किरातो मुनिमस्तके । जघान घन घातैश्च तद्विघ्नो दुर्वचो विदां ॥२१९॥ द्वादशेति मुनिर्दध्यावनुप्रेक्षाः स्वमानसे । तद्ध्यानं

भोत होनेवाले थे वे मेरुपर्वतके समान निश्चल सिंहके समान धीरवीर समुद्रके समान गंभीर होगये। चित्तमें उत्तम कोटिकी शांति धारण कर वे रञ्चमात्र भी ध्यानसे न चिगे। मुनिराजका इसप्रकार का मौन देख उस दुष्टका क्रोध एकदम उवल उठा एवं पूर्ववैरके सम्बन्धसे वह उन्हें पत्थरोंसे मारने लगा ॥ २१४—२१५ ॥ कण्ठपर्यन्त उस पापीने मुनिराजको पत्थरोंकी मार मारी परन्तु वे ध्यानरूपी मजबूत भीतिके सहारे खड़े थे इसलिये वे जमीनपर न गिरपाये ॥ २१६ ॥ मुनिके गलेमें दुष्टने धनुष डाल दिया और दोनों भुजाओंसे उन्हें खींचने लगा तथापि वे मुनिराज रञ्च-मात्र भी चल विचल न हुए ॥ २१७ ॥ अन्तमें दुष्टने क्या किया दोनों भुजाओंसे धनुषको पकड़ लिया एवं तीक्ष्ण बाणोंसे मुनिराजका मस्तक छेदने लगा। यह विघ्न वास्तवमें विद्वानोंके वचनके अगोचर था। मुनिराज वज्रायुधने अपने ऊपर तीव्र उपसर्ग समझकर बारह भावनाओंका चिन्तवन करना प्रारम्भ कर दिया। वे रञ्चमात्रभी उस विघ्नसे विचलित न हुये ठीक ही है ध्यान और तप वही प्रशस्त माना गया है जो विघ्नके उपस्थित हो जानेपर मनुष्यको विचलित न होने दे ॥ २१८—२१९ ॥ वे मुनिराज चित्तके अन्दर इसप्रकार भावना भाने लगे—

संसारमें जितने भी धन धान्य आदि पदार्थ दीख पड़ते हैं सव अनित्य हैं तथा पिता पुत्र

तत्पय: ख्यातं यद्विम्ने शक्तिमद्भवेत् ॥२२०॥ अनित्यं दृश्यते सर्वं धनधान्यादिकं भवे। पितृपुत्रकुटुम्बानां नित्यत्वं नैव दृश्यते ॥२२१॥ चक्रवर्त्यादयो भूपाः षट् खण्डधराविनः। मृतास्ते कालसर्पेण दष्टा देवनमस्कृताः ॥२२२॥ देवार्यखण्डभूभूपा दृश्यार्था पन्नगेशिनः। भूधरा भूरुहस्तारा ग्रहा दैत्याः सुराधिपाः ॥ इष्टानिष्टानि वस्तूनि पुद्गलाः पापकारिणः। सर्वे कालेन नश्यंति नास्ति कालप्रतिक्रिया ॥ २२४ ॥ संसारकानने जीवमृगंतं कालपीलुमित्। अत्त्येव कोपतः श्वेतः कस्तं शक्नोति रक्षितुं ॥ २२५ ॥ पिता पुत्रं सवित्री च पुत्रश्च पितरावपि। अलन्न रक्षितुं कालगृह्यमाणमये मनः! ॥ २२६ ॥ असारेऽत्र भवे चेतः! कः कस्यापि न विद्यते। स्वार्थभूतं

कुटुम्ब आदि पदार्थोंमें भी कोई अविनाशी नहीं दीख पड़ता ॥ २२० ॥ छह खण्डके स्वामी अनेक देवोंसे सेवित चक्रवर्ती आदि राजा भी कालरूपी सर्पके द्वारा डसे जानेके कारण मृत्युके मुखमें प्रविष्ट होगये हैं ॥२२१॥ देव, आर्यखण्डकी पृथ्वीके स्वामी, दृष्टि गोचर उत्तमोत्तम पदार्थ, धरणेंद्र पर्वत, वृक्ष तारा ग्रह दैत्य देवेंन्द्र इष्ट और अनिष्ट रूप चीजें और पापके कारण पुद्गल सभी कालके द्वारा नष्ट हो जाते हैं ॥ कालका प्रतीकार किसीके पास नहीं—उसे कोई वश नहीं कर सकता ॥ २२२—२२३ ॥ इस प्रकार संसारमें समस्त पदार्थ अनित्य हैं इस संसार रूपी वनमें जीव रूपी मृगको कालरूपी सिंह नियमसे खाता ही है। जिस समय इस जीव पर कालरूपी सिंह कुपित हो जाता है उस समय इसकी कोई भी उससे रक्षा नहीं कर सकता ॥ २२३ ॥ विशेष क्या! रे मन! इस संसारमें जिस समय इस जीवको कालरूपी सिंह जिकड़कर पकड़ लेता है उस समय पिता और माता, पुत्रकी रक्षा नहीं कर सकते एवं पुत्र, पिता माताको नही बचा सकता ॥ २२४-२२५ ॥ इस प्रकार इस जीवका संसारमें कोई अपना नहीं है। इस संसारमें कोई किसीका नहीं है समस्त जगत मतलबी है स्वार्थ रहने पर एक दूसरेको चाहता है ॥ २२६ ॥ इस प्रकार संसार बड़ा ही स्वार्थी है। निश्चय नयसे यह जीव नित्य है। सिद्ध बुद्ध और निरंजन है। किसीके द्वारा छेदा

जगत्सर्वं नित्यं जानीहि वस्तुतः ॥ २२७ ॥ जीवोऽयं नित्य एवास्ति सिद्धोबुद्धो निरंजनः । मच्छद्योऽनादिचिद्रूपो ध्येयो निर्द्वंद्वता मितः ॥ २२८ ॥ भिन्नोऽयं पुद्गलः ख्यातो जीवाज्जीवोऽपि तन्मनः । अतोऽस्मिन् मित्रता कैव कर्मरूपे विनश्वरे ॥ २२६ ॥ सप्तधातु मयो देहो विण्मूत्रैर्निचितोऽशुचिः । अस्थिसन्तानसंवद्धो रोगोरगपदं शठः ॥ २३० ॥ चर्मावृतः कदर्यैश्च दुर्गंधैः पूरितो घनं ध्यानं मुक्त्वार्थं केनायं पोष्यते कर्मभाजनं ॥ २३१ ॥ मिथ्यात्वाविरतित्रासैः कषायविषयादिभिः । कर्मास्रवति यत्तेन निरयं याति

जानेवाला न होनेके कारण अछेद्य हैं। अनादि है। चैतन्य स्वरूप है। ध्यान करने योग्य है और समस्त प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित निर्द्वन्द्व है ॥ २२७ ॥ इस प्रकार यह जीव अकेला ही है। पुत्र स्त्री आदि इसका कोई भी नहीं। जीवसे यह पुद्गल भिन्न है। पुद्गलसे जीव भिन्न है मन भी जीव से भिन्न है इसलिये विनाशीक कर्मके साथ अविनाशीक जीवकी कोई भी मित्रता नहीं है ॥२२८॥ इस प्रकार यह जीव कर्मसे अन्य हैं। यह देह मेद मज्जा आदि सप्त धातु स्वरूप है। विष्टा और मूत्रसे व्याप्त है। अपवित्र हैं। हड्डियोंसे व्याप्त है। रोग रूपी सर्पोंका विल है और अनेक प्रकार से पोषा जानेपर भी नष्ट ही होता चला जाता है इसलिये कृतघ्नी है ॥ २२६ ॥ यह शरीर चारों ओरसे चामसे वेष्टित है। महानिन्द्य दुर्गन्धिका खजाना है इसलिये कर्मोंके कारण इस शरीरका विद्वान लोग ध्यानके लिये ही पोषण करते हैं विषय भोगके लिये नहीं ॥ २३० ॥ इस प्रकार यह शरीर अपवित्र है। मिथ्यात्व अविरति त्रास प्रमाद कषाय और विषय आदिके द्वारा इस जीवके सदा कर्मोंका आस्रव होता रहता है उससे यह जीव नरकमें जाकर अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहता है ॥ २३१ ॥ इस प्रकार इस जीवके मिथ्यात्व आदिके द्वारा सदा कर्मोंका आस्रव होता रहता है। आस्रवके दो भेद माने हैं एक द्रव्यास्रव दूसरा भावास्रव। जिसके द्वारा दोनों प्रकार के कर्मोंका निरोध हो वह संवर कहा जाता है इस संवर तत्वकी प्राप्ति गुप्ति समिति धर्म व्रत आदि

मामनः ॥ २३२ ॥ द्रव्यभावास्रवौ येन रोध्येते सम्वरोहि सः । व्रतधर्मादिवान् जीवं इतो नयति [संत्पदं ॥ २३३ ॥ द्वौ भेदौ निर्ज
राया: स्तः सविपाकोऽविपाककः । मुनीनामविपाकः स्यादन्यस्य सर्वदेहिनां ॥ २३४ ॥ अनादिनिधनो लोकः षट्द्रव्यादिचितो महान्
केनाकारि न मूढो न्नंनराकारमलं दधत् ॥ २३५ ॥ चिंत्यते ध्यानसिद्ध्यर्थं योगिना लोकसंस्थितिः । स्थैर्यं यतो मनो याति तस्मिन्नेव

के द्वारा होती है इस लिये व्रत और धर्म आदिका करनेवाला जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥२३२॥ इस प्रकार दोनों प्रकारके आस्रवका रुक जाना संवर कहा जाता है और संवर तत्त्वका चिंतवन संवरानुप्रेक्षा कही जाती है। सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जराके भेदसे निर्जराके दो भेद माने हैं। स्थितिके पूरे होनेपर प्रति समय कर्मोंका खिरता रहना सविपाक निर्जरा है और तप आदिके द्वारा जबरन कर्मोंका खिपा देना अविपाक निर्जरा है। व्रतियोंके अविपाक निर्जरा होती है क्योंकि वे तप आदिके द्वारा जबरन कर्म खिपाते हैं और अन्य सबोंके सविपाक निर्जरा होती है ॥ २३३ ॥ इस प्रकार एक देश रूपसे कर्मोंका खिपना निर्जरा है। यह समस्त लोक अनादि निधन है न इसकी आदि है और न इसका अन्त है। यह जीव अजीव आदि द्रव्य स्वरूप है। विशाल है। किसीके द्वारा वनाया हुआ नहीं हैं तथा यह उन्नत पुरुषाकार हैं ॥ २३४ ॥ ध्यानकी सिद्धिके लिये योगी लोग लोकके आकारका चिंतवन करते हैं क्योंकि मनके स्थिर करनेसे ध्यान हो सकता है तथा लोकका आकार चिन्तवन करनेसे मन स्थिर होता हैं और मनकी स्थिरतासे परम पद मोक्ष पदकी प्राप्ति होती हैं ॥ २३५ ॥ इस प्रकार लोकके स्वरूपका चिन्तवन करना लोकानुप्रेक्षा हैं। समस्त पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति संसारमें वड़ी कठिन है क्योंकि इस सम्यग्ज्ञानके द्वारा जीवोंको आत्मरूपी तेजका स्पष्ट रूपसे ज्ञान हो जाता हैं । तथा वह सम्यग्ज्ञान कर्मरूपी वृक्षके लिये फरसा है। मनरूपी पर्वतके भेदनेमें वज्र है और अज्ञानरूपी

परंपदं ॥ २३६ ॥ संसारे दुर्लभो बोधो दीपो वस्तुप्रदर्शने । आत्मज्योतिर्यतः स्पष्टीभूयमायाति कायिनां ॥ २३७ ॥ कर्मांगे परशुर्वज्रं चेतोजागे गरीयसि । तमोऽरिस्तमसि स्वांतध्यातव्यो बोध एव ते ॥ २३८ ॥ जगन्नाथेन यः ख्यातो धर्मो भावव्रतान्वितः । दुःप्राप्यः प्राणिनां मत्वा चिंतनीयः प्रयत्नतः ॥ २३९ ॥ चिंतयन्निति सद्ध्यानं वज्रायुधमुनीश्वरः । प्रत्यूहं तत्कृतं जित्वा मुमोचासून जितेन्द्रियः ॥ २४० ॥ सर्वार्थसिद्धिमाराशु धर्मध्यानपरोमुनिः । अहमिंद्रो महासौख्यं भुंजन् तस्थौ स निर्मलः ॥ २४१ ॥ शुक्ल लेश्योऽथ शुक्लांगहस्तमात्रो महोनिधिः । त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुर्निरुपाधिर्भ्रमातिगः ॥२४२॥ ईदृक्षा तत्र देवस्य विद्यते शक्तिरुत्तमा ।

अन्धकारके नाशके लिये सूर्य है इसलिये सम्यग्ज्ञानका हृदयसे ध्यान करना आवश्यक है। इस प्रकार संसारमें सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति बड़ी दुलभ है ॥ २३६—२३७ ॥ भगवान जिनेंद्रने जो भावव्रत आदि स्वरूप धर्म बतलाया हैं वह बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है इसलिये धर्मात्माओंको चाहिये कि वे प्रयत्न पूर्वक धर्मका चिंतवन करते रहें ॥ २३८ ॥ इस प्रकार धर्मके स्वरूपका चिन्तवन करना धर्मानुप्रेक्षा है। इस प्रकार बारह भावनाओंके चिंतवन करनेवाले मुनिराज वज्रायुधने दुष्ट अति दारुण भील द्वारा किया गया समस्त उपसर्ग बड़ी शांतिसे सह लिया। जितेन्द्रिय मुनिराज धर्म ध्यानमें लीन होगये। प्राणोंका परित्याग कर सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाकर अहमिन्द्र होगये। एवं वहांका सानन्द सुख भोगने लगे ॥ २३९—२४०॥ मुनिराज वज्रायुधके जीवके शुक्ल लेश्या थी। एक हाथका सुन्दर शरीर था। वह तेजका खजाना था। तेतीस सागरकी आयु थी। किसी प्रकारकी उनके साथ विशेष उपाधि न थी एवं भ्रांत ज्ञानसे वे रहित थे ॥ २४१ ॥ शास्त्रमें सर्वार्थ सिद्धिके देवोंके अन्दर इतनी अद्भुत शक्ति बतलाई है कि यदि वह चाहे तो निमेषका जितना प्रमाण बतलाया है उसके अठारहवे भागमें ही अर्थात् देखते देखते वह लोकाकाशको उलटा कर सकता है ॥ २४२ ॥ मुनिराज वज्रायुधको कष्ट देनेवाला वह अति दारुण भील पापके तीव्र उदयसे

लोकाकाशं करे कृत्वा काष्ठया विपरीतयेत् ॥ २४३ ॥ व्याधोसौ पापतो मृत्वा न्यविशत् सप्तमीं भुवं तद्दुःखं गदितुं तत्र कः शक्रो
ति जिनं विना ॥ २४४ ॥ मुनौ जज्ञे लीना सकलसुखसंतानजननी । दुराप्या सर्वार्थाप्तिरिव च वशतामेति ननु न । जगत्स्थामा
रामा परमपदमायाति जवतो यतो धैर्यध्यानात्किमिति वत चित्तं शमवतां ॥ २४५ ॥ जितेन्द्रियाणां न भवेद राप्यं परं पदं स्वर्ग
नरेंद्रसौख्यं । जितेंद्रियाणां न भवेद्द राप्यं परं पदं, स्वर्गनरेन्द्रसौख्यं ॥ २४६ ॥

इति श्रीविमलनाथपुराणे भट्टारक श्रीरत्नभूषणाम्नायालङ्कारविद्व०हर्षवीरिकान्वयोदारमानसराजहंस
ब्रह्मचारीश्वरकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे रामदत्ताचररत्नमालाच्युतदेव
पूर्णचन्द्रचररत्नायुधाच्युतदेवसिंहसेनवरवज्रायुधसर्वार्थसिद्धिगमनवर्णनो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

मरकर सातवे नरक गया। सातवें नरकका इतना भयङ्कर दुःख है कि उसे भगवान जिनेंद्रके सिवाय कोई नहीं कह सकता ॥ २४३ ॥

मुनिराज वज्रायुध पर जब समस्त सुखोंकी स्थान और कठिनतासे प्राप्त होनेवाली सर्वार्थ सिद्धिरूपी स्त्री भी आसक्त होगई तब संसारकी स्त्रियोंका मुग्ध होना कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि जो शांति स्वरूप संयमी हैं उनको स्थिर ध्यानसे मोक्ष सुख भी प्राप्त हो जाता है तब अन्य सुखोंका प्राप्त होना आश्चर्य कारी नहीं ॥२४४॥ जिन महा पुरुषोंने इन्द्रियोंका विजय कर लिया है उनके मोक्ष स्थान स्वर्ग और नरेन्द्रोंका सुख दुर्लभ नहीं किन्तु जिन्हें इन्द्रियोंने ही जीत लिया है उनके लिये मोक्ष सुख और नरेंद्र सुख सभी कुछ दुर्लभ हैं ॥ २४५ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकारस्वरूप हर्षवीरिकाके पुत्र उत्तम ब्रह्मचारी
कृष्णदासद्वारा विरचित वृहत् विमलनाथपुराणमें रानी रामदत्ताके जीव रत्नमाला
और अच्युतदेव, पूर्णचन्द्रका जीव रत्नायुध और अच्युतदेव एवं सिंहसेनका
जीव वज्रायुधका सर्वार्थसिद्धि गमन वर्णन करनेवाला आठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नवमां सर्ग



नौम्यहं शिवकर्त्तारं गोरक्षं वृषभं जिनं । आद्यन्तवर्जितं सारं सारङ्गामं च शर्मणे ॥ १ ॥ अथैव धातकीखण्डप्राग्भागे विस्तृतो महान् । विदेहः पश्चिमो भाति मरुद्वास इवापरः ॥ २ ॥ तन्मध्ये गंधिलो नाम्ना समस्ति विषयोभृतः । धार्मिकैर्धनधान्यैश्च विद्वन्मुनिपदांकितः ॥ ३ ॥ अयोध्या विद्यते तत्र पुरी स्वर्धामसन्निभा । अर्हद्दासोऽभवद्राजा तत्र लीलापुरंदरः ॥ ४ ॥ सुव्रताख्या प्रिया तस्य विलसन्ती रतेच्छया । विद्युन्मालेव संजज्ञे कुंकुमारुणदेहका ॥ ५ ॥ रत्नमालावरश्च्युत्वा स्वर्गादच्युतात्तयोः । जज्ञे

जो भगवान ऋषभदेव मोक्षके प्रदान करनेवाले हैं । पृथ्वीके रक्षक है । आदि अन्तसे रहित है सार स्वरूप है और कल्याण स्वरूप हैं उन भगवान ऋषभ देवको मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ इसी पृथ्वीपर धातुकी खंड द्वीपके पूर्व भागमें विदेह नामका क्षेत्र है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे उत्तम और स्वर्ग नगर सरीखा जान पड़ता है ॥ २ ॥ विदेह क्षेत्रमें एक गंधिल नामका प्रसिद्ध नगर देश है जो कि धर्मात्मा पुरुष और धन धान्य आदिसे सदा व्याप्त बना रहता है और विद्वान मुनियोंके चरण चिह्नोंसे सदा अंकित रहता है ॥ ३ ॥ गन्धिल देशमें एक अयोध्या नामकी नगरी हैं जो कि शोभामें स्वर्ग पुरीको उपमा धारण करती है । अयोध्या नगरी का संरक्षक उस समय राजा अर्हदास था जो कि शोभा और क्रीड़ाओंमें इन्द्रके समान जान पड़ता था ॥ ४ ॥ राजा अर्हदासकी रानीका नाम सुव्रता था जो कि रति संबंधी अनेक प्रकारके विलासोंकी करनेवाली थी एवं उसका शरीर केसरके रङ्गका सदा शोभायमान रहता था इसलिये वह वीजलीके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥ ५ ॥ रानी रामदत्ताका जीव जो कि रत्नमाला होकर

धीमान् महातेजाः सुतो वीतभयाह्वयः ॥ ६ ॥ रत्नायुधोऽपि तन्नाकाच्च्युत्वा तस्यैव भूपतेः । प्रियायां जिनदत्तायां सुनोऽजनि विभीषणः ॥ ७ ॥ बलदेवकेशवौ तौ च वीतभीकविभूषणौ । अज्ञाते पुण्यतो राज्यं भोजयामासतुश्चिरं ॥ ८ ॥ मृत्वा बिभीषणे राजा केशवत्वाद्गतः क्षितिं । द्वितीयायां महैनोभिरारम्भोत्थैश्च दुस्त्यजैः ॥६॥ बलदेवोऽपि तद्दुःखं चिरं कृत्वातिमोहतः । त्यक्त्वा राज्यं निवृत्यंते संयमं प्राप पुण्यधीः ॥ १० ॥ दुष्करं स तपस्तप्त्वा लांतवाख्यं दिवं ययौ । आदित्यामे विमानेऽभूदादित्याभः सुरोत्तमः ॥ ११ ॥

अच्युत स्वर्गमें जाकर देव हुआ था राजा अर्हद्दासके रानी सुव्रतासे उत्पन्न वीतभय नामका कुमार हुआ जो कि वुद्धिमान था उग्र तेजका धारक था। राजा पूर्णचन्द्रका जीव रत्नायुध जो कि मरकर अच्युत स्वर्गमें ही देव हुआ था आयुके अन्तमें वहांसे चयकर उसी राजा अर्हद्दासके जिनदत्ता नामकी रानीसे उत्पन्न विभीषण नामका पुत्र हुआ था ॥ ६—७ ॥ इन दोनों कुमारोंमें कुमार वीतभय बलदेव था और विभीषण नारायण था। ये दोनों ही बलदेव और केशव पदवियोंके धारक कुमार समस्त भयोंसे रहित थे। कवियोंके भूषण थे और पूर्व पुण्यके उदयसे सानन्द राज्य का भोग करते थे ॥ ८ ॥ राजा विभीषण जो कि नारायण पदका धारक था मरकर अनेक प्रकारके आरम्भोंसे जायमान घोर पापोंके द्वारा दूसरे नरकमें जाकर नारकी होगया ॥ ६ ॥ नारायण बिभीषणके मरनेसे वलदेव बीतभयको बड़ा दुःख हुआ। मोहके तीव्र उदयसे भाईके मर जानेके वाद उसने राज्यका परित्याग कर दिया और संयम धारण कर लिया ॥ ६—१० ॥ पुण्यात्मा वीतभय वलदेव ने घोर तप तपा जिससे वह लांतव स्वर्गके आदित्याभ नामक विमानमें आदित्याभ नामका उत्तम देव होगया ॥ ११ ॥ प्रिय जयन्त मुनिके जीव नागेंद्र वही मैं आदित्याभ नामका इस समय देव हूं। अपने पूर्व जन्मके भाई नारायण विभीषणको नरकमें अवधिज्ञानके द्वारा दुःखो देख एक दिन मैंने यह विचार किया—

नागनाथ स एवाहमादित्याभोऽस्मि सांप्रतं। बांधवं दुःखिनं श्वभ्रेऽत्रधेद्दं दृष्ट्वा व्यचिंतयं ॥ १२ ॥ अहं स्वर्गेऽमरो जातो लीलावान् सुखभाजनं। मत्सोदरो महादुःखं भुनक्ति श्वभ्रसागरे ॥ १३ ॥ निष्कासयाम्यहं तूर्णं बांधवं प्राणतोऽधिकं। असुरान् वज्रघातेन प्रहत्याशिथति चिंत्य च ॥ १४ ॥ अगमं मोहतस्तत्राबोधयं बांधवं निजं। त्रासयित्वा सुरान्पापान् प्रकृत्या दुःखदायिनः ॥ १५ ॥ निष्कासितुं मयोपाया अकारिषत हे महीट्। जज्ञे तस्य महादुःखं तैरुपायैर्यदा तदा ॥ १६ ॥ निर्गतेन ततः पृष्टः श्रीमंधरजिनाधिपः। स्वत्कथालिकां नूनं तत्प्रोक्तं मेऽखिलं श्रुतं ॥ १७ ॥ तत् श्रोतव्यं त्वया नागेट् ब्रवीमि भ्रांतिहानये। जम्बूद्वीपेऽत्र विख्याते वर्षे चैरावताभिधे

मैं तो स्वर्गमें आकर अनेक क्रीड़ाओंका स्थान देव होगया हूं और अनेक प्रकारके सुख भोग रहा हूं परन्तु मेरा भाई विभीषण नरकमें पड़ा २ महा दुःख भोग रहा है मुझे चाहिये कि मैं समस्त असुरोंको बज्रसे छिन्न भिन्न कर शीघ्र ही अपने प्राण प्यारे भाईको नरकसे निकाल ले आऊं बश मैं ऐसा विचार कर मोहसे व्याकुल हो शीघ्र हो दूसरे नरक गया। अपने भाईको पूर्व भवका वृत्तांत सुना संबोधा एवं जो असुर कुमार जातिके देव स्वभावसे ही नारकियोंको पीड़ा पहुं-चानेवाले थे उन्हें शक्तिभर धमकाया डराया ॥ १२—१६ ॥ प्रिय नागेन्द्र ! अपने भाईको नरकसे निकालनेके लिये मैंने बहुत उपाय किये परन्तु उनसे उसे उल्टा घोर दुःख होने लगा। जब मैंने देखा कि इसके निकालनेके लिये जो उपाय किये जाते हैं उनसे इसे दुःख ही होता है, तो मैंने उसके निकालनेका विचार स्थगित कर दिया। सीधा मैं भगवान श्री मन्धरके पास गया । मैंने उनसे सब बात पूछी। उन्होंने तुम्हारे पूर्व भवोंका वर्णन किया जिसे मैंने रुचिपूर्वक सुना । प्रिय नागेंद्र ! भगवान श्रीमन्धरके द्वारा सुना गया तुम्हारे पूर्व भवका वृत्तांत मैं तुम्हारे सामने वर्णन करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें एक अयोध्या नामकी पुरी है जो कि खाई और किलोसे

॥ १८ ॥ अयोध्यास्ते पुरीरम्या परिखादुर्गवेष्टिता । श्रीधर्मा तत्र राजाऽभूत्सुसीमा तस्य भामिनी ॥ १९ ॥ श्वभ्राद्विभीषणः प्रांते निर्गत्याभूत्तयोः सुतः । सुधर्माख्यो गुणाम्भोधिर्भामिनीभोगचंचुरः ॥ २० ॥ एकदाऽनंतयोगींद्रात् श्रुत्वा धर्मं विरक्तधीः । तत्पार्श्वे संयमं नीत्वा तप्त्वगाद्ब्रह्मनामनि ॥ २१ ॥ माश्लेषैश्चुम्बनैस्तत्र रमाणां सुखमन्वभूत् । गतं कालं न जानाति गीतनाट्यरसैरसौ ॥ २२ ॥ सर्वार्थसिद्धिजोदेवो वज्रायुधचरस्ततः । च्युत्वाभूत्सञ्जयंताख्यो बलीयान् योगरोधकः ॥ २३ ॥ स ब्रह्मेशोऽपि तत्रत्यं सुखं भुक्त्वायुषः क्षये । च्युत्वा जयंतनामाभूत्सजयंतानुजः सुधीः ॥ २४ ॥ निदानेन मृतः सोऽपि त्वं फणीशोऽभवन्महान् । मोहाद्विलुप्त :

महा शोभायमान जान पड़ती है। अयोध्यापुरीका स्वामी उस समय श्री धर्मा था और उसकी रानीका नाम सुशीला था ॥ १७—२० ॥ नारायण विभीषणका जीव नारकी अपनी आयुके अन्तमें नरकसे निकला एवं राजा श्रीधर्माके रानी सुसीमासे उत्पन्न सुधर्म नामका पुत्र हुआ जो कि अनेक गुणोंका समुद्र था और स्त्रियोंके भोगोंमें प्रेम रखनेवाला था ॥ २१ ॥ एक दिन मुनिराज अनंतसे उसने धर्मका स्वरूप सुना जिससे उसे संसारसे वैराग्य होगया। शीघ्र ही उसने मुनिराज अनंतके पासमें संयम धारणकर लिया। घोर तप तपा जिससे तपके प्रभावसे वह ब्रह्म स्वर्गमें उत्तम ऋद्धि का धारक देव होगया ॥ २२ ॥ वहांपर पुण्यके उदयमे उसे सब सामग्री प्राप्त हुई वह देवांगनाओं के साथ आलिंगन चुम्बन आदि क्रियाओंमें एवं उत्तमोत्तम गायन और नाटकोंके देखनेमें इतना मग्न होने लगा कि उसे यह भी नहीं जान पड़ने लगा कि उसकी आयुके दिन वहां वीत रहे हैं। ॥ २३ ॥ राजा वज्रायुधका जीव अहमिन्द्र जो सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाकर देव हुआ था वह अपनी आयुके अन्तमें वहांसे चया एवं महाशक्तिका धारक और योगोंका निरोध करनेवाला संजयंत नामका महापुरुष हुआ जो कि तुम्हारा भाई था। मेरे भाई नारायण स्वयंभूका जीव जो ब्रह्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ था उसने वहांके बहुत काल पर्यंत दिव्य सुख भोगे। आयुके अन्तमें वहांसे चया

२५४

डिव। गतं कालं न जानाति श्रेणिकः शेषविक्रमी ॥ ५२६ ॥ प्रतापजितमार्तंडो वक्त्रनिर्जितचंद्रमाः । बुद्धया चातिगुरू राजा राजते जितशात्रवः ॥ ५३० ॥ स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषदेशदुर्गवलान्वितः । सतांगमिव सद्राज्यं भुनक्ति मगधाधिपः ॥ ५३१ ॥ स्वर्णसद्वर्ण काश्मीरललामललभालकः। स्वर्णानुविद्धमुक्तानां हारान्वितगलः कलः ॥ ५३२ ॥ स्वर्णाभः स्वर्णदो स्वर्णविभूषितगजाश्वकः। स्वर्णग्राही च शत्रुभ्यः स्वर्णकुंडलमंडितः ॥ ५३३ ॥ मुक्ताफलरदोन्मुक्तालीनोमुक्तानखप्रभः । मुक्ताकांक्षी मुमुक्षूणां गुणग्राही सुदर्शनः ॥ ५३४ ॥ ददिर्दानं सुपात्रेभ्यः पपिर्धर्मामृतं परं। सज्जनौघान् समाजहिश्चक्रिश्चाहितखंडनां ॥ ५३५ ॥ सहस्रद्वयभूपालकिरीटा-

और उत्तमोत्तम क्रीडाओंसे इन्द्रके समान थे और जाते हुए कालको तनिक भी नहीं जानते थे। महाराज श्रेणिकने अपने दीप्त प्रतापसे सूर्यको जीत लिया था। मुखकी सुंदरतासे चंद्रमा नीचा कर दिया था। बुद्धिसे इन्द्रके गुरु वृहस्पतिको हरा दिया था एवं समस्त वैरियोंको जीत लिया था इसलिये वे अत्यंत शोभायमान थे। तथा मगध देशके स्वामी वे महाराज श्रेणिक, राजा मन्त्री मित्र खजाना देश किला और सेना रूप राज्यके सात अङ्गोंसे वेष्टित हो उत्तम राज्यका इच्छानुसार भोग करते थे ॥ ५२८—५३१ ॥ वे महाराज श्रेणिक ललाटपर सुवर्णके समान उत्तम वर्णके काश्मीरी चंदनका तिलक लगाते थे। गलेमें सुवर्णके तारमे पिरोए हुए मोतियोंका हार पहिने थे। मनोहर थे। सुवर्णके समान कांतिवाले थे। याचकोंको सुवर्णका दान देनेवाले थे। उनके हाथी और घोड़े सुवर्णके भूषणोंसे भूषित थे। शत्रुओंसे वे न्यायानुकूल ऋण लेते थे। सुवर्ण कुण्डलोंसे भूषित थे। उनके दांत मोती सरीखे थे। जिस चीजको छोड़ देते थे—दान करदेते थे फिर उसकी लालसा नहीं रखते थे। मोतियोंके समान नखोंकी कांतिसे शोभायमान थे। मोक्ष की सदा अभिलाषा रखते थे। जो महानुभाव मोक्षाभिलाषी थे उनके गुणोंको ग्रहण करनेवाले थे सम्यग्दृष्टि थे। सुपात्रोंको अच्छी तरह दान देनेवाले थे। धर्मरूपी अमृतको सदा पीनेवाले थे। सज्जनोंको सदा प्रसन्न करने वाले थे। जो बात अहितकारी होती थी उसका सदा खंडन करते थे

नीत्वा मंत्रं जजापाशु दृढध्यानासनोद्यात् । अभयस्य महाविद्या सिषेधाचिरकालतः ॥ ५२१ ॥ तत्प्रभावात् खगस्यापि विद्यासिद्धि-रभूत्तरां । तयोस्तदा सुमित्रत्वाचान्योन्यं नेमतुस्तरां ॥ ५२२ ॥ मृगाक्षीं-द्रव्यपुत्रादिविद्याराज्ययशांसि च । स्वर्गमोक्षसुखान्येव भवंत्यद्भुतपुण्यतः ॥ ५२३ ॥ गत्वागारेऽभयो धीमॉश्चक्रे मेघं वलान्वितं । राज्ञ्याशां पूरयित्वा स झौजिङ्नमंदिरस्य तां ॥५२४॥ किय-त्यपि गते काले राज्ञी पुत्रमजीजनत् । दोहदकानुसारेण नाम्ना मेघकुमारकं ॥ ५२५ ॥ श्रेणिकस्य सुतो धीमानभयाख्यो विचक्षणः । बुद्ध्या गुरुरिवोद्भूतो देवराडिव लीलया ॥ ५२६ ॥ पूरमल्लापतिः कृष्ण इवार्हच्चरणप्रियः । मंगलो वा महाप्राज्ञो धैर्यगांभीर्यगौरवः ॥ ५२७॥ पट्टराज्याः सुताः सप्त बभूवुः सप्त सागराः । गंभीरा इव सद्बुद्धिपारगाः परमोदयाः ॥५२८॥ एवं पुनादिमत्सौख्यलीलया देवरा-

दिया । दृढ ध्यान और दृढ आसन माढकर कुमार अभय बैठ गये और मन्त्र जपने लगे । पुण्यकी प्रबलतासे थोड़ी ही देरमें उन्हें महाविद्या सिद्ध हो गई । उनके प्रभावसे विद्याधर वायुवेगको भी विद्या सिद्ध हो गई । दोनों आपसमें मित्र हुए और प्रेमपूर्वक दोनोंने आपसमें नमस्कार किया । ठीक ही है पुण्यके उदयसे संसारमें स्त्री द्रव्य पुत्र विद्या राज्य यश स्वर्ग और मोक्षके सुख सभी कुछ प्राप्त होते हैं ॥ ५१६—५२३ ॥ मन्त्र सिद्धकर कुमार अभय घर लौट आये । विद्याबलसे मेघकी रचना की उसमें रानीको घुमाकर उसकी आशा पूरी की। एवं घुमा फिराकर उसे राजमन्दिर में लौटा लाये । कुछ दिनबाद रानी चेलिनीके पुत्र हुआ और दोहलेके अनुसार उसका नाम मेघ कुमार रक्खा गया ॥५२४—५२५॥ महाराज श्रेणिकका पुत्र कुमार अभय बड़ा भारी बुद्धिमान और चतुर था । बुद्धिमें बृहस्पतिके समान था और इन्द्रसरीखी लीला करनेवाला था । वह पूरमल्लाके स्वामी मुक्त कृष्णदासके समान भगवान अर्हतके चरणोंका प्रेमी था ॥ ५२६॥ तथा दास वा मंगल ताराके समान महा विद्वान एवं धीरता गंभीरता और गौरवका खजाना था ॥ ५२७॥ महाराणी चेलिनीके सात पुत्र थे जो कि साक्षात् सात समुद्र थे। महागंभीर थे। उत्तम बुद्धिके पारगामी थे और परम उपमाके धारक थे । शेष नागके समान पराक्रमी वे राजा श्रेणिक उत्तम पुत्र दिव्य सुख

राज्ञेव सद्बलः । एकदा मंदिरे नंतुं गतश्चैत्यालयान् ध्रुवं ॥५१४॥ यदा विजयार्धस्थस्य वालकाख्यस्य पुत्रिका । नाम्ना सुभद्रिका दृष्टा तदाहं विस्मयं गतः ॥ ५१५ ॥ कामेषुनिहितेनाशु हृता सा हृदयेश्वरा । तया साकं मया देव ! मानुष्यं सफलीकृतं ॥ ५१६ ॥ खग-चक्री हृतां ज्ञात्वा तनूजां पूरयन्नभः । आजगाम महाक्रोधान्नानाविद्याविशारदः ॥ ५१७ ॥ सोऽपि मां संगरे जित्वा मम विद्या निहत्य च । नीत्वा सुतां गतो गेहे वभूवाहं च भूचरः ॥ ५१८ ॥ द्वादशाब्दसुपर्यंतं मंत्रजाप्यं करोमि च । विद्यार्थं भो तथाप्यत्र सिद्धिर्नाभूद्गुणप्रिय ! ॥ ५१९ ॥ सांप्रतं तु गृहे गंतुं कामोऽस्मि गृहमायया । श्रुत्वा जगाद मंत्रीशस्तन्मंत्रं मे समर्पय ॥ ५२० ॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गगन प्रिय नामका नगर है मैं वहांका वायुवेग नामका विद्याधर राजा हूं । जो कि चन्द्रमाके समान शोभायमान और उत्तम धनसे मंडित हूं । मैं एक दिन (मेरु वा विजयार्ध) पर्वतके चैत्यालयोंकी वंदना करने गया था वहींपर विजयार्ध श्रेणिके स्वामी राजा वालककी सुभद्रा नामकी पुत्री भी आई थी जो कि परम सुन्दरी थी। उसे देखते ही मैं चकित हो गया । कामवाण मुझे बुरी तरह वेधनेलगे इसलिये वह मैंने बलपूर्वक हरण कर ली । अपनी प्राणप्यारी बनाई और उसके साथ मैंने अपना मनुष्यजन्म सफल बनाया ॥ ५१३-५१६ ॥ विद्याधरोंके स्वामी उसके पिता राजा वालकको यह पता लग गया कि मैं सुभद्राको हर लाया हूं, वह मारे क्रोधके पजल गया और समस्त आकाशको आच्छादता हुआ मेरी नगरीकी ओर चल दिया । वह अनेक विद्याओंका धनी था इसलिये मेरी और उसकी जिससमय मुठ भेंट हुई संग्राममें उसने मुझे जीत लिया । मेरी विद्याओंको नष्ट कर दिया । अपनी पुत्री सुभद्राको घर ले गया और मुझे विद्यारहित भूमिगोचरी बना दिया ॥ ५१७-५१८ ॥ गुणप्रिय कुमार ! विद्यासिद्ध करनेके लिये बराबर वारह वर्षोंसे मंत्रोंकी जाप कर रहा है तो भी मुझे विद्यासिद्ध नहीं हुई है । वस अब मैं हताश होकर घरकी चिंतासे अपने घर जारहा हूं । वायुवेगकी यह बात सुनकर मंत्रीश अभयकुमारने कहा—भाई ! यदि तुम जाते हो तो उस मंत्रको मुझे वता दो । वायुवेगने मन्त्र बता

नरीकृतभीस्वनाः ॥ ५०८ ॥ तमिस्रा तामसी यत्र रुद्धालोका प्रवर्तते। भक्षयित्वाखिलं विश्वं तारिकास्थिविभूषणा ॥ ५०९ ॥ रात्रि धूंकारसंरावा पर्वतस्तनमंडिता। ज्वलच्छवादना नूनं राक्षसीव विराजते ॥ ५१० ॥ (युग्मं) ईदृक्षे कानने विद्वानभयो भीतिवर्जितः। दीपाकुले वटे चैकं विभीकं दृष्टवान्नरं ॥ ५११ ॥ गत्वा पप्रच्छ कोऽसि त्वं कस्मात्त्वं च समागतः। मालया जपसि किं भो किं नाम वद मंक्षु मे ॥ ५१२ ॥ अरीरणद्वटस्थस्तं शृणु भ्रातर्निगद्यते। विजयार्धोत्तरश्रेण्यां गगनप्रियपत्तनं ॥ ५१३ ॥ तत्राहं वायुवेगाख्यो राजे

जलतीं थीं। व्यंतर जातिके भूत पिशाच आदि देव जोरसे कोलाहल करते थे शाकिनी डाकिनी भूतिनी और किन्नरियोंके भयंकर शब्द होते थे ॥ ५०८ ॥ उससमय उस श्मसान भूमिमें विपुल अन्धकारको धारण करनेवाली रात्रि सां सां शब्द कर रही थी। चांदनीका प्रकाश एकदम रुका हुआ था इसलिये वह रात्रि उससमय ऐसी जान पड़ती थी मानो इसने समस्त जगत्को भक्षण कर लिया है और यह तारा रूपी हड्डियोंके भूषणोंको धारण किए हैं। वह श्मसानभूमि साक्षात् राक्षसी थी क्योंकि राक्षसी जिसप्रकार धुंकार शब्द करती है उसीप्रकार वह श्मसान भूमि भी धुंकार शब्दोंसे व्याप्त थी। राक्षसीके जिसप्रकार स्तन होते हैं। श्मसान भूमिके भी पर्वत रूपी स्तन विद्यमान थे। एवं राक्षसी जिसप्रकार मुर्दोंको खाने वाली होती है उसीप्रकार वह श्मसान भूमि भी मुर्दोंको भस्म करनेवाली थी। इसप्रकारके भयंकर वनमें निर्भीक एवं चतुर कुमार अभय एक बट वृक्षकी ओर चला जिसपर कि एक दीपक टिमटिमा रहा था एवं वहांपर एक निर्भीक मनुष्य दीख पड़ा। कुमार अभय शीघ्र ही उसके पास पहुंचा एवं इसप्रकार बात चीत करने लगा-

भाई! तुम कौन हो? कहांसे यहांपर आये हो? यह जो हाथमें माला लिये बैठे हो इससे क्या जपना चाहते हो और तुम्हारा नाम क्या है? मुझे शीघ्र कहो ॥ ५०९—५०१२ ॥ वटवृक्षपर बैठा हुआ पुरुष कहने लगा—सुनो भाई! मैं अपना सारा वृत्तांत सुनाता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

म्यहं । दुर्धरं तं परिज्ञाय सचिंतोऽस्थान्नराधिपः ॥ ५०१ ॥ एकदा दुर्बलां वीक्ष्य योषं धृत्वा स्थितस्ततः ॥ ५०२ ॥ दुःस्थितं वीक्ष्य राजानमभयः पृष्टवान्स्थितः ! । कुतो दुर्बलता देहे त्वदीये स्वर्णसन्निभे ॥ ५०३ ॥ तदा प्रोक्तं समाकर्ण्य प्रागदीत्सरसं वचः । मा चिंतां कुरु हे तात ! करिष्येऽदोऽविलंबतः ॥ ५०४ ॥ एवमुक्त्वा गतो रात्रौ श्मसानेऽतिभयंकरे । विलोकनाय प्रेतस्य खड्गहस्तो महाभुजः ॥ ५०५ ॥ फणिफूत्कारसंदग्धकुंजवृक्षे परस्परे । व्यंतरारब्धसंग्राममहत्काराबमहाकुले ॥ ५०६ ॥ युग्मं । अंजनाभाह्यो यत्र दंदृश्यंते दृढ-द्विजाः । व्याघ्रभल्लकगृध्राद्विधृतमांसा विवलिगताः ॥ ५०७ ॥ ज्वलंतोऽनलसंघाता रारटन्त्येव व्यंतराः । शाकिनी डाकिनी सिद्धो कि

जिससमय कुमार मेघ रानी चेलिनीके गर्भमें था उससमय उसे यह दोहला हुआ कि "मैं हाथीपर बैठकर वर्षा कालमें आकाशमें घूमूं" एवं वह उस दोहलेकी चिंतासे दिनों दिन दुर्बल होती चली गई । तथा महाराज श्रेणिकके पूछे जानेपर उसने सारा दोहलेका समाचार कह सुनाया जिससमय महाराज श्रेणिकने यह दोहला सुना उन्होंने उसकी पूर्ति अत्यंत कठिन समझी इसलिये उन्हें बड़ी चिंता हो गई वे चुप होकर घरमें रहने तो लगे परंतु उस तीव्र चिंतासे उनका शरीर दिनों दिन कृश होता चला गया ॥ ४९९—५०२ ॥ महाराज श्रेणिकको अत्यंत दुःखित देख कुमार अभयने पूछा—पूज्य पिता ? तुम्हारा शरीर सुवर्णके समान कांतिमान और पुष्ट था सो वह दुर्बल और फीका क्यों पड़ता चला जाता है । कुमारके ये वचन सुन उत्तरमें महाराज श्रेणिकने सारा किस्सा कह सुनाया । कुमार अभय बड़े चतुर और गंभीर थे शीघ्र ही उन्होंने मनोहर वचनों में कहा—पिताजी ! आप रंचमात्र भी चिंता न करें मैं बहुत जल्दी इस कामको करूंगा बस ऐसा कह कर रातके समय वह विशाल भुजाओंका धारक कुमार हाथमें खड्ग लेकर प्रेतोंके देखनेके लिये उस श्मसान भूमिकी ओर चल दिया जो श्मसान भूमि सर्पोंके फूत्कारोंकी गर्मीसे जले हुए वृक्षोंकी धारक थी एवं आपसमें लड़नेवाले व्यंतरोंके महाभयंकर शब्दोंसे व्याप्त थी ॥५०३-५०६॥ जिनके दांत दृढ़ थे जो अन्जन पर्वतके समान महाकाले थे वाघ भालू और गीध आदिको मासोंको ग्रहण किये थे एवं फुंगरते थे ऐसे महाभयंकर वहांपर सर्प थे ॥ ५०७ ॥ जगह जगह वहां अग्निकी शिखायें

सिंधुरं नीत्वा सांकुशं तं यदाकरोत् । तदा पलाय्य गंगायास्तीरमागतवान् गजः ॥४९३ ॥ निवारितो यदा हस्ती तापसं तममीमरत् । एतद्युक्तमयुक्तं वा भो मुने ! वद संप्रति ॥ ४९४ ॥ इत्याद्विवादसंवातैर्दुष्टभावं पितुश्च सः । ज्ञात्वा कुबेरदत्तो हि न्यक्षिपदग्रतो घटं ॥ ४९५ ॥ धिग् द्रव्यं पापदं नीचं मुनिश्चौरायते यतः । विचार्य पितृपुत्राभ्यामिति दीक्षां समाश्रितौ ॥ ४९६ ॥ हे श्रेणिक नराधीश ! कायगुप्तिः स्थिता न मे । अतो व्याघुट्य त्वद्गेहादागतोऽहं वनांतरे ॥ ४९७ ॥ चेलिन्या सह भूपोऽपि ससम्यक्त्वो गृहागतः । जैनधर्ममयो भूत्वा भुनक्तिस्म सुखं सुखं ॥४९८॥ बभूवुः सप्तपुत्राश्च चेलिन्या वेंद्रसूनवः । कुणिको वारिषेणश्च शिवहल्लौ विहल्लकः ॥४९९ जितशत्रुः षष्ठमो जातः सप्तमश्च निगद्यते । गर्भे सप्तमके राज्ञ्या एवं दोहलकोऽजनि ॥ ५०० ॥ आरुह्य सिंधुरं मत्तं प्रावृषि च भ्रमा

साथ वर्ताव किया वह युक्त था वा अयुक्त ? ॥ ४९१ । ४९४ ॥ इत्यादि रूपसे जिससमय सेठ जिनदत्त और मुनिराजका आपसमें वाद विवाद हो रहा था जिनदत्तका पुत्र कुवेरदत्त भी वहां वैठा था। मुनिराजके विषयमें अपने पिताके दुष्ट भाव जान शीघ्र ही उसने रत्नोंका घड़ा लाकर रख दिया एवं यह विचार कर कि—"यह द्रव्य पापोंका प्रदान करने वाला है महानीच है क्योंकि इसके संबंधसे मुनिराजको भी चोर होना पड़ता है इसलिये इसे धिक्कार है, दोनों पिता पुत्रोंको संसारसे वैराग्य हो गया एवं दोनोंने दिगंवरी दीक्षा धारण कर ली। इसी कारण हे राजन् श्रेणिक मेरे कायगुप्ति न थी इसलिये मैं तुम्हारे मन्दिरमें आहार न लेकर सीधा वनको चला आया ॥४९५-४९७ ॥ तीनों मुनिराजोंके मुखसे ये वचन सुन महाराज श्रेणिकका सम्यक्त्व दृढ़ हो गया वे अपनी रानी चेलनाके साथ घर लौट आये एवं साक्षात् जैनधर्म स्वरूप होकर अनेक प्रकारके सुख भोगने लगे ॥ ४९८ ॥ महाराज श्रेणिकके रानी चेलिनीसे सात पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि साक्षात् इन्द्रके पुत्र समान थे उनमें पहिला पुत्र कुणिक था दूसरा वारिषेण तीसरा शिव चौथा हल्लक पांचवां विहल्लक और छठा जितशत्रु था। सातवां पुत्र मेघकुमार था और उसका वर्णन इस प्रकारहै—

फलं नीत्वा स मालिकः । भूपालं दत्तवांस्तावद्भूपस्तस्मै ददौ धनं ॥ ४८६ ॥ पुत्राय मोहतो दत्तं तत्फलं तेन भक्षितं । विषेण पतितो भूमौ वृक्षं छेदयतिस्म सः ॥ ४८७ ॥ भिषगाकारितो राजा तेन ज्ञाता विषोद्भवा । विक्रिया तत्फलं नीत्वा तदा दत्तं विषं गतं ॥४८८॥ तदा राजा महादुःखं चकरीतिस्म मानसे । अहो वृक्षो विषघ्नोऽयं व्यर्थं छेदपितो मया ॥ ४८६ ॥ अविमृश्य न कर्तव्यमतो गुणिजनैः स्फुटं । अपरीक्ष्य न वक्तव्यं विमृश्यकारिभिर्नरैः ॥ ४६० ॥ पुनः श्रेष्ठी मुनिं प्राह कथामेकां शृणु प्रभो ! गंगातटेऽतिविख्यातो विश्वभूतोऽस्ति तापसः ॥ ४६१ ॥ तत्तटे कुंजरं दृष्ट्वा वहंतं लघुकं स च । निष्कास्य मठमानीतो वर्धितस्तेन भावतः ॥ ४६२ ॥ राजा तं

कर वह फल उसने अपने पुत्रको खानेके लिये दे दिया ज्यों ही उसने खाया तीव्र जहरके प्रभावसे वह मूर्छित हो जमीनपर गिर गया । राजाको बड़ा कष्ट हुआ शीघ्र ही उसने वृक्ष कटवाकर फिकवा दिया । पुत्रकी चिकित्साके लिये शीघ्र ही वैद्य बुलवाया । उसने वह मूर्छा विषजन्य जानली । तत्काल उसी आमका फल मगाया और उससे विषकी वेदना दूर करदी ॥ ४८३—४८८ ॥ आम्र फलका यह विचित्र प्रभाव जान राजाको बड़ा कष्ट हुआ एवं वह अपने मनमें इसप्रकार क्लेश करने लगा । हाय विषको दूर करने वाला वृक्ष मैंने वृथा खोद डाला । गुणीजनोंको विना विचारे कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये और जो मनुष्य विचार शील हैं उन्हें किसी बातकी विना जांच किये कुछ कहना भी नहीं चाहिये ॥ ४८६—४६० ॥ मुनिराजकी यह कथा सुन फिर भी सेठ जिनदत्तने यह कथा कहनी प्रारंभ कर दी—

गंगा नदीके तटपर एक विश्वभूत नामका तपस्वी रहता था । एक दिन एक हाथीका बच्चा नदीमें बहता चला जाता था । दयालु तपसीने उसे निकाला और अपने मठमें लाकर प्रेमपूर्वक पालन पोषण कर बढ़ाया । जब वह बढ़कर सवारीके योग्य होगया तब उसे नगरका राजा ले आया और उसे शिक्षित करनेके लिये अंकुशसे वश करने लगा । हाथीको यह बात दुःखदायी जान पड़ी । वह तत्काल भागकर गंगाके तटपर आ गया । तपस्वीने उसे वहां न रहने दिया । दुष्ट हाथीने क्रोध कर अपने पोषण करने वाले तपस्वीको मार डाला । भगवन् ! कृपाकर बतलाइये हाथीने जो तपस्वीके

कारसहस्रकं ॥ ४७८ ॥ एवंश्रुत्वा मुनिः प्राह श्रेष्ठिनं भ्रमिताशयं । विश्वासहेतवे नूनं श्रोतव्या कथिका त्वया ॥ ४७९ ॥ हास्तिनागपुरे राजा विश्वसेनोऽस्य भामिनी । वसुकांता तयोः पुत्रो वसुदत्तो गुणप्रियः ॥४८०॥ एकदा केन चिद्राज्ञे सार्थवाहेन प्राभृतं । रसाल-फलमाचक्रे पृष्टं राज्ञा तदेति किं ॥ ४८१ ॥ तदोवाच महीशं स आमप्रभृतिरोगहृत् । सुधासमंफलं चैतत् नीत्वा राजा प्रिये ददौ ॥ ४८२ ॥ सा पुत्राय ददौ मोहात् पुत्रो राज्ञे ददौ नृपः । वल्लभत्वात्फलं मेध्यं मालिने वपने ददौ ॥ ४८३ ॥ उप्तं च मालिना बीजं तदा तरुरजायत । कियद्दिवासरैः श्रेष्ठिन्! प्रादुर्भूतफलं क्रमात् ॥ ४८४ ॥ विगेन इति पाठः

खे गृध्रे सर्पमास्ये च गृहीत्वा सति गच्छति । फलस्योपरि सद्बिन्दु विषस्य पतितं तदा ॥४८५ ॥ (इति पाठः) विषोष्मपाकं जातं

सेठ जिनदत्तकी यह बात सुनकर और उसे अपनेमें भ्रांत समझ कर विश्वास उपजानेके लिये मैंने कहा—मैं भी एक कथा कहता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

हस्तिनागपुरमें एक राजा विश्वसेन था। उसकी स्त्रीका नाम भामिनी था और उससे वसुदत्त नामका पुत्र उत्पन्न था जो कि गुणोंमें प्रेम करने वाला था ॥ ४७८—४८० ॥ एकदिन किसी यात्रीने आकर राजाको भैंटमें आमका फल दिया। नवीन किंतु सुन्दर चीज जानकर राजाने पूछा—भाई यह क्या है ? उत्तरमें व्यपारीने कहा—राजन्! यह आम आदि रोगोंका हरने वाला अमृतके समान आमका फल है। राजाने उसे ग्रहण कर लिया और अपनी प्यारी स्त्रीको दे दिया ॥ ४८१—४८२ ॥ माताका पुत्रपर विशेष स्नेह होता है इसलिये राजरानीने वह अपने पुत्रको दे दिया। पुत्र पिताको वहुत मानता था इसलिये उसने उठाकर राजाको दे दिया राजाने उसफल को चाकूसे वनाया खाया एवं उसे अत्यंत मनोज्ञ जान मालीको वुलाकर उसे वोनेके लिये दे दिया। मालीने वीज लेकर वगीचेमें उसे वोदिया। कुछ दिन वाद वह वृक्ष होगया और फल भी लग आये। एक गीध पक्षी मुखमें सर्प लेकर आकाशमें जा रहा था दैवयोगसे एक फलपर विषकी वूंद पड़ गई। विषकी गरमीसे फल पक गया। मालीने उसे पका जान राजाको आकर भैंट किया। राजा वहुत प्रसन्न हुआ और उसे धन देकर राजी कर दिया। पुत्रपर अत्यंत स्नेह

दीति सद्वचः ॥ ४७० ॥ त्वमेव कथयानंदात् शृणोमि जिनदत्तक ! । तदोवाच निजं भावं शृणु त्वं मुनिपावन ! ॥ ४७१ ॥ वाराणस्यां
नृपो नाम्ना जितशत्रुर्जितारिकः । तद्वैद्यो धनदत्तात्यस्तस्य भामा धनार्पणा ॥ ४७२ ॥ राजदत्तां निजां वृत्तिं भुनक्त्येव सुखं तयोः
धनमित्रधनेन्द्राख्यौ पुत्रौ स्तोऽपि जडौ स्थितौ ॥ ४७३ ॥ कियत्काले मृतस्तातस्तदा वृत्तिं नृपोऽगृहीत् । अन्यवैद्याय तां वृत्तिं ददौ
शास्त्रविदे मुदा ॥ ४७४ ॥ तदा तौ भ्रातरौ चंपायां च गत्वा चिकित्सितं । पठित्वा शिवभूतेश्च पार्श्वे सद्मागमोत्सुकौ ॥ ४७५ ॥
आगच्छंतौ तदारण्ये व्याघ्रमेतौ विलोचनं । विलोक्य धनमित्राख्यः प्रोवाचेति लघुं प्रति ॥ ४७६ ॥ भेषजैरंधव्याघ्रं मो करोमि निर्मल-
दृशं । निषिद्धोऽपि कनिष्ठेन भेषजं कृतवांस्तदा ॥ ४७७ ॥ गतपीडेन व्याघ्रेण भक्षितो धनमित्रवाक् । कृतघ्ना नैव जानंति ह्युप-

किसी समय वनारसमें एक जितशत्रु नामका राजा था जो कि वैरियोंको जीतनेवाला था,
उसका राजवैद्य धनदत्त था और उसकी स्त्री धनदत्ता थी । राज्यकी ओरसे जो उसे वृत्ति मिलती
थी उससे वह सानंद भोग भोगता था । राजवैद्य धनदत्तके धनमित्र और धनचंद्र नामके दो पुत्र थे,
दोनों ही महामूर्ख थे और मस्त पड़े रहते थे ॥ ४६६—४७३ ॥ कुछ कालके बाद वैद्य धनदत्तका
अंतकाल हो गया । पुत्रोंको मूर्ख जान राजाने उनकी वृत्ति छीन ली एवं वैद्य शास्त्रके जानकार
किसी अन्य वैद्यको दे दी । आजीविकाके छूट जानेसे दोनों भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ । वे दोनों
घरसे निकल दिये । चंपापुरीमें जाकर शिवभूति नामक प्रसिद्ध वैद्यके पास वैद्यशास्त्रका अभ्यास
किया । वे पूर्ण विद्वान हो गये तब उन्होंने अपने घर आनेका विचार कर लिया । वहांसे चलकर वे
एक जङ्गलसे होकर आ रहे थे कि मार्गमें उन्हें अंधा बाघ दीख पड़ा । दयालु धनमित्रने उसे
दुःखी जान अपने छोटे भाई धनचन्द्रसे कहा—भाई ! यह अंधा बाघ बड़ा दुःख पाता है अपनी
दवासे मैं इसे सूझता बना दूं ऐसी इच्छा है । छोटे भाई धनचंद्रने मना की तो भी धनमित्रने नहीं
माना और उसे अपनी औषधसे सूझता कर दिया ॥ ४७४—४७७ ॥ जब बाघ सूझता हो गया
तो उस कृतघ्नी दुष्ट बाघने अपने उपकारी धनदत्तको खा डाला, ठीक ही है जो मनुष्य कृतघ्नी
होते हैं उनके हजारों उपकार किये जाय तो भी वे उपकारोंको नहीं मानते-अपकार ही करते हैं ।

समायाता तत्राहं प्रावृषि स्थितः। एकदा जिनदत्तोपि चिंतयित्वा स्वचेतसि ॥ ४६४ ॥ द्यूतरक्तस्य पुत्रस्य भयाद्रत्नभृतं घटं। समीपे यमिनो भूमिं खनित्वा चाक्षिपत्तदा ॥ ४६५ ॥ (युग्मं) तं घटं दृष्टवान् पुत्रो निष्कास्यान्यत्र क्षिप्तवान्। मुनिर्ददर्श तत्सर्वं विचित्रं लोभसंभवं ॥ ४६६ ॥ चातुर्मासे गते ध्यानी विजहार महीतलं। पश्चात्स श्रेष्ठिना तत्र न दृष्टो रत्नसद्घटः ॥ ४६७ ॥ तदा विचारयामास मुनिश्चौरोऽथ वा न च। तदा भ्रांत्या स्वभृत्यान् स प्रेषयामास सर्वतः ॥ ४६८ ॥ एकमार्श्वगतः सोऽपि मां दृष्ट्वा हर्षितो भृशं। नीत्वा गेहे समायातोऽलीलपन्मां पूतीति सः ॥ ४६९ ॥ कथामेकां शुभां नाथ! कथय त्वं ममाग्रतः। भया ज्ञाताभिप्रायेण पूत्यपा-

कर जिनदत्तने मेरे समीपमें जमीनके अन्दर एक गढ़ा खोदा एवं ज्वारी पुत्रके भयसे रत्नोंका भरा घड़ा उसने लाकर रख दिया ॥४६४-४६५॥ जिनदत्तजिससमय यह घड़ा रख रहा था उसका पुत्र देख रहा था। जिनदत्त जब चला गया उसके पुत्रने वह घड़ा वहांसे उखाड़ कर अन्यत्र गाड़ दिया। मैं उस लोभसे जायमान समस्त विचित्र कार्यको चुप चाप देखता रहा था ॥ ४६६ ॥ चौमासेके समाप्त हो जानेपर मैं वहांसे चल दिया और पृथ्वीतलपर विहार करने लगा। मेरे पीछे सेठ जिनदत्तने जब जमीन खोदी और वह घड़ा न मिला तो वह विचारने लगा—

मेरे रत्नोंके वटको चुराने वाले मुनि हैं या नहीं? क्योंकि सिवा मुनिराजके अन्य किसीने भी वह घड़ा नहीं देखा था खैर पता लगाकर उनसे पूछनेमें कोई हानि नहीं बस उसने चारो ओर मेरे खोजनेके लिये सेवक भेज दिये। एक मार्गपर स्वयं भी मुझे खोजनेके लिये चल दिया। भाग्य से मैं मिल गया मुझे देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। भक्तिपूर्वक मुझे घर लेगया एवं मुझसे विनय पूर्वक इसप्रकार कहने लगा—स्वामिन्! मेरे सामने कोई शुभ कथा कहिये। मैं उसका अभिप्राय समझ गया था इसलिये मैंने गंभीरता पूर्वक यह कहा—भाई जिनदत्त! तुम्हीं कोई कथा कहो मैं आनंदपूर्वक उसे सुनूंगा मेरे ये वचन सुन अपने मनके भावोंको व्यक्त करता हुआ जिनदत्त कहने लगा—अच्छा भगवन्! आपने मैं कहता हूं—

णितेन पापोऽसौ कंवलानां हि रंजनं । कुरुते कृमिसूत्राणां रंजनं च विशेषतः ॥ ४५७ ॥ लक्ष्यमूल्याभिधं तैलं कृत्वा मे देहजां व्यथां । निवारयत्यसौ दुःखात्तत्र तिष्ठामि भीयुता ॥ ४५८ ॥ तदेव चिंतितं स्वांते गृहे त्वं सोढुमक्षमा । एवं दुखं सहेत्राहं विचित्रा कर्मणां गतिः ॥ ४५६ ॥ अथैव धनदेवाख्यो भ्रातर्मे प्रेषितः कृते । विशालपतिना पारासुरभूपसमीपकं ॥ ४६० ॥ तदा मां वीक्ष्य नीत्वैव गृहमागत्य सत्वरं । पश्चान्मज्जनको नूनमदाच्छ्रीसोमशर्मणे ॥ ४६१ ॥ एकदा मुनिमासाद्य गृहीतं कोपसद्व्रतं । अतः करोमि नो कोपं भूरिदुःखप्रदायकं ॥ ४६२ ॥ तैलं नीत्वा गतो गेहे जिनदत्तो दयापरः । तैलाभ्यंगेन जातोऽह निर्व्याधिर्मगधाधिप ! ॥ ४६३॥ तदा प्रावृट्

खवाता था हर एक पत्तमें मेरी नसोंसे रक्त निकलता था । उस रक्तसे कंवलोंको रंगता था एवं विशेषकर रेशमको रंगता था । जिससमय नसोंसे रक्त निकलता था उस समय मुझे भयंकर कष्ट होता था उसके पास यही लाखामूल नामका तेल था इसलिये मेरे शरीरके कष्टको वह दूर करता था । मैं भी परवश हो सदा भयभीत होकर उसके घर रहती थी । उससमय प्रतिक्षण मुझे इस बातका विचार उठता था कि घरमें मैं "तू" शब्द भी नहीं सह सकती थी और यहां मैं यह भयंकर कष्ट भोग रही हूं । हा कर्मोंकी गति विचित्र है ॥ ४५६—४५६ ॥

मेरे भाईका नाम धनदेव है । विशालापुरीके स्वामीने किसी कार्यके लिये उसे पारासर राजाके पास भेजा दैवयोगसे वहांपर मैं रहती थी उसी मार्गसे वह निकला । मैं उसे दीख पडी । मुझे वह घर ले आया और मेरे पिताने मेरे पति सोमशर्माको बुलाकर दे दी ॥ ४६० । ४६१ ॥ एकदिन मुनिराजका पधारना यहां पर होगया और मैंने कोपके त्यागका व्रत ले लिया । भाई जिनदत्त ! क्रोधको इसप्रकार दुःखदायी जान मैंने सर्वथा उसका त्याग कर दिया है ॥ ४६२ ॥ रमणी तुंकारी की यह बात सुन दयालु जिनदत्त तेल लेकर अपने घर लौट आया और हे राजन् श्रेणिक ! उस तेलके लगानेसे मैं नीरोग हो गया ॥ ४६३ ॥ उससमय वर्षाकाल चौमासा लग गया था । चौमासे में मैं वहीं ठहर गया । जिनदत्तका पुत्र पक्का ज्वारी था इसलिये एकदिन अच्छी तरह सोच विचार

॥ ४४८ ॥ अतिक्रम्यार्धरात्रं स मंदिरं च समाययौ । द्वाराग्रेऽवीभणत्कांतां भो भो कमललोचने ! ॥ ४४९ ॥ उद्घाटयत सद्द्वारं यूयं नोद्घाटितं यदा । रे उद्घाटय द्वारं त्वं तदाहं निर्गता गृहात् ॥४५०॥ सभूषां मां समालोक्य चौरैर्नीत्वार्धरात्रके । भीमभिल्लाय दत्ता हं स्वामिने परमादरात् ॥ ४५१ ॥ तेन प्रोक्तं त्वकं बाले ! मे पत्नी भव निश्चितं । मयेत्युक्तं तदा भीम ! युक्तं न कुलयोषितां ॥ ४५२ । तदा कामाकुलो भूत्वा समागत्य खुबलाति । वनदेव्या तदाताडि सेवका अपि ताडिता ॥ ४५३ ॥ देवाः शीलं प्रशंसंति वाठमत्र स्फुरत्यतः । चक्रवर्तित्वं स्वर्गत्वं शिवत्वं दुर्लभं न च ॥ ४५४ ॥ तदा कोपाकुलो भिल्ली मूल्यं लात्वा हि मां ददौ । सार्थवाहस्य दुष्टस्य पापपंकनिमज्जिनः ॥ ४५५ ॥ सोऽपि मे भोजयत्येव मिष्टान्नं शर्करायुतं । पक्षे पक्षे शिरायाश्च मोचनं कुरुते मम ॥ ४५६ ॥ तच्छो-

प्रियकमलनयनी ! कृपाकर आप द्वार खोलें । परंतु मैंने दरवाजा नहीं खोला । मेरे स्वामीको क्रोध आगया इसलिये वे यह कहने लगे-अरी ! तू दरवजा खोल । बस मैं मारे क्रोधके भवक गई । और कुछ भी न बोलकर एकदम घरसे वाहिर होगई ॥ ४४८—४५० ॥ वह समय ठीक आधीरात का था ओर मैं भूषण पहिने थी इसलिये चोरोंने मुझे देख लिया । मुझे पकड़कर वे अपने स्वामी भीम नामक भीलके पास ले गये और बड़े आदरसे भैंट कर दी ॥ ४५१ ॥ मेरे सौंदर्यपर मुग्ध होकर भीमने कहा—वाले ? तू मेरी पत्नी हो । उत्तरमें मैंने कहा-भीम ! मैं कुल स्त्री हूं कुलस्त्रियोंके लिये यह कार्य करना युक्त नहीं । भीम कामसे अत्यंत व्याकुल था उसने मेरी नहीं सुनी । वह वल पूर्वक कामसेवन करनेके लिये मेरे पास आ गया और डाट डपट करने लगा । शीलके माहात्म्यसे वन देवता प्रगट हुई । उसने भीमको और उसके सेवकोंको फटकार डाला क्योंकि देवगण शीलकी प्रशंसा करते हैं । इस संसारमें शीलसे वड़प्पन होता है तथा इस शीलसे चक्रवर्तीपना स्वर्गपना मोक्षपना भी दुर्लभ नहीं ॥ ४५२—४५४ ॥ जब भील भीमकी कुछ भी नहीं चली तब वह बड़ा क्रोधित हुआ एवं एक ऐसे व्यापारीके साथ जो कि निरंतर पापरूपी कीचड़में फसा रहता था और अत्यंत दुष्ट था मुझे मूल्य लेकर वेच दिया ॥ ४५५ ॥ वह दुष्ट प्रतिदिन मुझे शक्कर आदि मिष्टान्न

गृहीतं तैर्वृतं संसारतारकं। मयापोर्ष्या विना ब्रह्मव्रत नीतं मनोहरं ॥ ४४२ ॥ तद्दिनप्रभृति भ्रातः! भ्रातृभिः सह संस्थिता। मच्छीलं च परिज्ञाय कोऽपि मां भो वृणोति न ॥ ४४३ ॥ पितरावेकदा वीक्ष्य यौवनाढ्यां लसद्द्युतिं। चिंतयामासतुश्चित्ते वरान्वेषणहेतवे ॥ ४४४ ॥ एकदा सोमशर्माख्यो द्यूते द्रव्यं जहार च। द्यूतकारैस्तदा बध्वा ताड्यते मुष्टिभिस्तरा ॥ ४४५ ॥ तदैव मत्पिता गत्वा कैतव प्रत्यवीभणत्। वृणुया यदि मे कन्यां तदा त्वां मोचयाम्यहं ॥ ४४६ ॥ स्वीकृतं भूमिदेवेन तदा तातेन मोचित.। पश्चात् गोक्तं च मन्नुप्याल्लंकारोनैव दीयतां ॥ ४४७ ॥ उद्वाहिता सुखं प्राप्ता भोगजं च यदा तदा। एकदा नाट्यशालायां लोकनार्थं स्थितः पतिः

सागर पधारे। राजा आदि सब लोग उनकी वंदनाके लिये गये। मैं भी गई। उपदेशके अन्तमें सबोंने अपनी अपनी शक्तिके अनुसार संसारसे पार करनेवाले व्रत नियम लिये, मैंने भी शीलव्रत का नियम लेलिया ॥४४१-४४२॥ भाई जिनदत्त! मैं उस दिनसे लेकर भाइयोंके साथ रहने लगी। मेरे क्रूर स्वभावको जानकर कोई भी मेरे साथ विवाह करनेको राजी नहीं होता था। एक दिन मुझे पूर्ण युवती [illegible] माता पिता मेरे योग्य वर ढूंढनेके लिये चिंता करने लगे। सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण [illegible] मेरा स्वामी है ज्वारियोंके अड्डेमें जूआ खेल रहा था। दैवयोगसे वह [illegible] हार गया जिससे अन्य ज्वारी उसे बांधकर मुक्कोंकी मार मारने लगे। मेरा [illegible] आ निकला और वरके योग्य सुंदर जान सोमशर्मासे यह कहने लगा— [illegible] पिता [illegible] के साथ विवाह करना पसंद करो तो मैं तुम्हें छुड़ा लूं, परवश हो सोमशर्मा [illegible] पड़ा एवं मेरे पिताने उसे छुडाकर यह प्रतिज्ञा कराली कि मेरी पुत्रीसे तू [illegible] कहकर [illegible] गा ॥ ४४३—४४७ ॥ बस सोमशर्माने मेरे साथ विवाह कर लिया और समय [illegible] गोंसे जायमान सुख भोगे। एक दिन मेरा स्वामी नाट्यशालामें नाटक देखने के लिये [illegible] खते देखते आधीरात हो गई इसलिये आधीरातपर वह अपने घर लौटा एवं दरवाजेपर [illegible] र इसप्रकार कहने लगा—

सः ॥ ४३५ ॥ (षट्पदी) श्रुण्वानन्दपुरे भ्रातः शिवशर्मा नृपो धनी। नाम्ना श्रेष्ठी वसत्यत्र कजश्रीस्तस्य भामिनी ॥ ४३६ ॥ तयोरष्टौ महापुत्रा बभूवुः सधनोन्मदाः। अहं भट्टे ति नाम्नी वै पुत्री जाता विचक्षणा ॥ ४३७ ॥ अथैकदा पिता भूपं विज्ञापयति सादरं। भवद्भिः स्त्रीति पौरैश्च मत्पुत्र्या वल्लभत्वतः। त्वंकारो नैव दातव्यः प्रमाणं कृतवान्नृपः ॥ ४३८ ॥ (षट्पदी) नृपादेशं समाप्याह मैवं प्राह समक्षकं। यो मां प्रति त्वकं दत्ते तस्यानर्थं करोम्यहं ॥ ४३९ ॥ तदाप्रभृति मन्नाम तुंकारीति कृतं जनैः। इत्थं तातादिसन्मान्या स्थिता धाम्नि सकोपिका ॥ ४४० ॥ अथैकदा समायातं मुनिं श्रीगुणसागरं राजाद्या वंदितुं जग्मुस्तद्वेवाहं गता मुदा ॥ ४४१ ॥ यथायथं

भी क्रोध नहीं आया। जिनदत्तके ये वचन सुन तुंकारीने कहा—भाई! क्रोधका मैं भयंकर फल भोग चुकी हूं इसलिये मैंने क्रोध एकदम करना छोड़ दिया है। तुंकारीके ये वचन सुन जिनदत्तने कहा सो कैसे? उत्तरमें तुंकारी इस प्रकार कहने लगी—

आनन्दपुर नगरमें एक शिवशर्मा नामका सेठ है जो कि धनमें राजाकी तुलना करता है। उसकी स्त्रीका नाम कमलश्री है। सेठ शिवशर्माके आठ पुत्र हैं जो कि धनी और निर्भय हैं। मैं एक पुत्री हूं और मेरा नाम भट्टा है ॥४३०—४३७॥ मैं इतनी घमंडिन थी कि मुझसे जो तू कह कर बोलता था वह मुझे विषसरीखा जान पड़ता था। मेरे पिताका मुझपर गाढ़ स्नेह था। वे मुझे सुखी बनानेके लिये एक दिन राजाके पास गये और यह कहा— मेरी भट्टापुत्री मुझे अत्यंत प्यारी है और तुंकारसे चिढ़ती है इसलिये आप तथा कोई भी पुरवासी लोग उससे तू न कहें। राजाने भी सेठ शिवशर्माका वचन स्वीकार कर लिया ॥ ४३८ ॥ जब राजाकी वैसी आज्ञा मिल गई तब मेरा और भी अधिक साहस बढ़ गया और मैंने सबोंके सामने खुले शब्दोंमें यह कह दिया कि जो कोई भी मुझसे तू कह कर बोलेगा मैं उसका अनर्थ कर डालूंगी। बस लोगोंने उस दिनसे मेरा नाम तुंकारी रख दिया। यद्यपि मेरे पिता आदि मेरा पूरा आदर करते थे तथापि मैं सदा गुस्सा ही होकर घरमें रहती थी ॥ ४३९—४४० ॥ आनन्दपुरमें एकदिन मुनिराज गुण-

स्त्वं गुणागारा कौशलान्वितविग्रहा ॥ ४२८ ॥ मुमुक्षुदाघनाशार्थं देहि तैलं सुमूल्यतः । तदा तु प्राह तुंकारी मूल्यं गृह्णाम्यहं नहि ॥
४२९ ॥ विद्यतेऽट्टालिकायां भो कांचकुंभा ममैव हि । यावत्प्रयोजनं कुंभं गृहाण त्वं तदंतरात् ॥ ४३० ॥ गत्वा गृह्णाति भग्नः स कांच
कुंभो मनोहरः । तदागत्य भिया प्राह भगिनि ? भग्नो हि कुम्भकः ॥ ४३१ ॥ तदा सा प्राह हे भ्रातर्गृहाण त्वं द्वितीयकं । यदा जिघृ-
क्षति नूनं तदा भग्नो द्वितीयकः ॥४३२ ॥ एवं कुंभाश्च सप्तैव भग्नास्तस्या न क्रुद्भूत् । तदाश्चर्यं समाप्याशु तां पप्रच्छेति कारणं ॥४३३॥
हे मातरीदृशी शांतिर्मुनावपि न दृश्यते । सावीवददहं भ्रातरभोजं तत्फलं यतः ॥ ४३४ ॥ अशीशममतः क्रोधं प्राह सोऽपि कथं स्व

मेरी अटारीमें बहुतसी तेलकी भरी शीशियां रक्खी हैं तुम्हें जितने तेलकी आवश्यकता हो उसके भीतरसे उठाकर ले जाओ ॥ ४२३—४२९ ॥ तुंकारीका यह सज्जन स्वभाव जान जिनदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ । वह ऊपर अटारीमें चढ़ गया । ज्यों ही उसने एक शीशी तेलकी भरी उठाई दिनारी होनेके कारण वह तत्काल फूट गई । शीशीको टूटी देख जिनदत्त भयसे कंपित होगया । डरता २ वह तुंकारीके पास आया और कहने लगा—बहिन ! वह शीशी तो फूट गई ? उत्तरमें तुंकारी ने कहा—भाई ! यदि वह फूट गई तो और दूसरी ले जाओ । जिनदत्तने दूसरी भी उठाई परंतु वह भी फूट गई । जिनदत्तने फिर तुंकारीसे उसके फूटनेका समाचार कहा । उत्तरमें तुंकारीने फिर भी अपने सज्जन स्वभावसे यही कहा अच्छा भाई ! यदि वह दूसरी शीशी फूट गई तो तुम तीसरी ले जाओ । जिनदत्तने फिर भी तीसरी शीशी उठाई परंतु फिर भी वह फूट गई इसप्रकार बराबर सात शीशी तक फूटती चली गईं एवं वह तुंकारी बराबर दूसरी दूसरी ग्रहण करनेकी आज्ञा देती गई । उसे रंचमात्र भी क्रोध नहीं आया । तुंकारीकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर सेठ जिनदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ इसलिये प्रेमसे गद्‌गद हो वह इसप्रकार कहने लगा—हे माता ! जैसी अद्वितीय क्षमा तुम्हारे अन्दर विद्यमान है वैसी किसी मुनिके अन्दर भी जल्दी नहीं दीख पड़ती । सात शीशियोंके फूटनेसे तुम्हारी बहुत हानि हुई है तथापि तुम्हें तनिक

मालारूढिलोक्य च मामरं । दग्धमूर्धानमापत्स्थं जिनदत्तानचीकथत् ॥ ४२३ ॥ हाहा चक्रुस्तदा सर्वे संभूयागत्य नम्य च । उद्धृत्य मां करैः पुर्यामानयन् श्रावकाः शुभाः ॥ ४२४ ॥ जिनदत्तालये भक्त्या स्थापयामास मां नृप ! । जिनदत्तो भिषजं भव्यं पप्रच्छौषधमादरात् ॥ ४२५ ॥ वैद्योप्यलीलपत्सत्यं लक्षमूलाद्दृते वरित् । तैलाच्छांतिर्भविता न तत् क्वास्ते कथयेति मां ॥ ४२६ ॥ इति पृष्टः प्राग-दीर्घैव. सोमशर्मा गृहेऽस्ति तत् । तदा नेतुं गतस्तस्य गेहे गहनकार्यवित् ॥४२७॥ तद्भार्यामब्रवीदेवं नाम्ना तुंकारिकां प्रति । हे स्वस-

उस वनके मालीने मुझे देखा मुझे महा दुःखित जान शीघ्रही उस नगर निवासी जैनियोंके पास पहुंचा और सारा हाल कह सुनाया। मेरी यह भयंकर अवस्था सुन वे सबके सब हा हा करने लगे। सबके सब मिलकर श्मसान भूमिमें आये। मुझे नमस्कार किया। अपने हाथोंसे उठाकर वे भव्य श्रावक मुझे उज्जयिनी ले आये। जिनदत्त नामक सेठके घरमें मुझे लाकर रख दिया। जिनदत्तने एक वैद्यसे मेरी नीरोगताकी आशासे औषध पूछी। उत्तरमें वैद्यने भी बड़े प्रेमसे यह कहा कि—प्रिय वैश्य सरदार ! लाक्षामूल तेलके विना इस दाहकी शांति नहीं हो सकती इसलिये तुम्हें लाक्षामूल तेल लाना चाहिये। वैद्यराजकी यह वात सुन जिनदत्तने कहा—लाक्षामूल तेल तो यहांपर है नहो कहिये कहां वह मिलेगा जिससे मैं उसे ले आऊं ? उत्तरमें वैद्यराजने कहा--यहां एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता है उसके घरमें लाक्षामूल तेल मिल सकता है। भव्य जिनदत्त लाक्षामूल तेलके विना दाहकी आगका सिटना अति कठिन जान वह शीघ्र ही सोमशर्माके घर गया। उसकी स्त्रीका नाम तुंकारी था उससे जाकर इसप्रकार कहने लगा--

वहिन ! तुम अनेक गुणोंकी भंडार और अनेक कला कौशलोंकी खजाना हो ? मुनिराजका सारा मस्तक किसी दुष्टने जला दिया है। दाहकी वड़ी भारी आग भेरा रही है। उसको नाश करने वाला तुम्हारे यहां लाक्षामूल तेल सुना है इसलिये कृपाकर जितना उसका मूल्य हो वह लेकर मुझे दे दो वड़ा उपकार होगा। उत्तरमें तुंकारीने कहा—भाइ जिनदत्त ! मैं मूल्य नहीं ले सकती

सागरं। अधिगन्य गुरुं वेगाद् दिदीक्षाहं नराधिप ! ॥४१६॥ तपस्यन्नेकदा भूप ! चोज्जयिन्याः श्मसानके। ध्यानसिद्ध्यै स्थितस्ता-वन्मंत्रसिद्धः समागतः ॥ ४१७ ॥ कौलिकोऽस्थिमराभूपाभूपितो भूतसेवकः। वैतालीयमहाविद्यासिद्ध्यर्थं नग्नरूपकः ॥ ४१८ ॥ (युग्मं) मदेहं कुणपं मत्वा द्वितीयं चौरमस्तकं। आनीयायोजयत्पश्चान्मम मूर्ध्नि च कौलिकः ॥ ४१९ ॥ चुल्लीं शीर्षं ममैव तां कृत्वैव रंधनाय च। पायसस्य ततो मंत्री संजज्वाल धनंजयं ॥ ४२० ॥ यथाग्निर्ज्वलते तत्र शीर्षं मे व्यथते तथा। तदाहं नारकोद्भूतदुःखं संस्मृत्य ध्यानवान् ॥ ४२१ ॥ शिरासंकोचयोगेनोर्द्धीभूय च करौ मम। दंडवत्संस्थितौ मूर्ध्नि दुग्धपाते पलायितः ॥ ४२२ ॥ दिनरात्रोदये

के ऐसे वचन सुन मैंने ज्ञानके भंडार अपने पुत्रको शीघ्र राज्य प्रदान कर दिया। शीघ्र अपने गुरु के पास चला गया और मैंने दिगंबरी दीक्षा धारण करली ॥ ४१६ ॥ राजन् ! विहार करता करता मैं एक दिन उज्जयिनी नगरी जा पहुंचा और उसकी श्मसान भूमिमें ध्यानकी सिद्धिके लिये निश्चलरूपसे स्थिर हो गया। उसीसमय एक कौलिक (कोरिया) मन्त्रवादी जो कि हड्डियोंके भूषणोंसे भूषित था। भूतोंका सेवक था और नग्नरूपका धारक था। महावैतालीय विद्या सिद्ध करनेके लिये वहां आया। मेरे शरीरको उसने मुर्देका शरीर समझा। कहींसे वह एक दूसरा मस्तक उठा लाया और उसने पीछेसे मेरे मस्तकके साथ जोड़ दिया। खीर पकानेके लिये उसने मेरे मस्तकको ही चूल बनाई और उसने अग्नि जलानी प्रारंभ कर दी ॥ ४१७--४२० ॥

जैसी जैसी वह भयंकर अग्नि जलने लगी मेरे मस्तककी पीड़ा भी बढ़ती चली गई। वह दाहका दुःख मुझे नरकका दुःख जान पड़ने लगा इसलिये उसकी ओरसे हटकर मैंने अपने चित्तको आत्मस्वरूपके चिन्तवनमें लगाया ॥ ४२१ ॥ अग्निके सम्बन्धसे नसोंके संकुचित हो जानेसे मेरे दोनों हाथ ऊपरको उठकर दंडाकार सीधे खडे हो गये। मेरे मस्तकपर जो रांधनेका पात्र रक्खा था नीचे गिर गया उसका दूध फैल गया, यह देख वह मंत्रवादी कौलिक भयसे भाग गया॥ ४२२ ॥ मेरा सारा मस्तक दग्ध हो चुका था। प्रातःकाल होते ही

त्यवधिलोचनं । तेनैव ज्ञायते सर्वमन्येषां तद्धि नो भवेत् ॥४०९॥ श्रुत्वा प्रशस्य धर्मं वै जैनं स कांतया सह । गत्वा पप्रच्छ वृत्तांतं नत्वा श्रीमणिमालिनं ॥ ४१० ॥ मद्गृहागत्य कथंकारं निःसृतो भोजनाद्वते । मुमुक्षुर्वचनं प्राह राजानं राजपाजितं ॥४११॥ चेलिन्या विहितं मत्वा कायगुप्तिर्न मे यतः । अतः स्थितं न राजेंद्र ! श्रृणु तद्वृत्तमादरात् ॥४१२॥ मणिवद्विषये रम्ये मणिवत्पत्तने त्वथ । मणिमाल्यहकं राजा गुणमाला प्रिया मम ॥ ४१३ ॥ मणिशेखरपुत्रोऽभूत् राजराज इवार्पणात् । एवं भोगान् प्रभुंजानो गतं कालं न वेद्म्यहं ॥ ४१४॥ एकदा कांतया केशान् विरलयंत्या ममोदितं । यमदूतः समायातः आरादात्महितं कुरु ॥ ४१५ ॥ तदा राज्ये नियोज्याशु पुत्रं च ज्ञान-

वे अवधिज्ञानके विषयभूत पदार्थोंको जानते हैं किंतु जिनके तीन गुप्तियां नहीं होतीं उनके अवधि ज्ञान भी नहीं होता ॥ ४०१—४०६ ॥ मुनिराज जिनपालके ये वचन सुन महाराज श्रेणिकने जैन धर्मकी बड़ी भारी प्रशंसा की। वे रानी चेलिनीके साथ वहांसे उठकर मुनिराज मणिमालीके पास गये और उनसे इसप्रकार पूछने लगे--

पूज्य मुनिराज ! राजमन्दिरमें आप आहारके लिये पधारे थे परंतु आहार विना ही लिये आप क्यों चले आये ? उत्तरमें मुनिराज मणिमालिनीने कहा-- रानी चेलिनीने तीन अङ्गुलियां उठा कर यह प्रकट किया था कि तीन गुप्तियोंके धारक मुनिराज मेरे मन्दिरमें आहारके लिए विराजें मेरे कायगुप्ति थी नहीं इसलिए हे राजेन्द्र ! मैं राजमन्दिरमें आहारके लिए न ठहर सका। मेरे कायगुप्ति क्यों नहीं थी इसका खुलासा इसप्रकार है—

इसी पृथिवीपर एक मणिवत नामका देश है। उसमें एक मणिवत ही नामका नगर है। वहांका मैं मणिमाली नामका राजा था। मेरी स्त्रीका नाम गुणमाला था और मेरे पुत्रका नाम मणिशेखर था जो कि कुवेरकी उपमा धारण करता था इसप्रकार मैं सुखपूर्वक भोगोंको भोगता था और काल कहां चला जा रहा है ? यह मुझे तनिक भी नहीं सूझ पड़ता था ॥४१०--४१४॥ मेरी स्त्री गुणमाला एक दिन मेरे केश संभाल रही थी। एक सफेद केश देख कर उसने कहा— यमराजका दूत आ पहुंचा है अब शीघ्र आत्माका हित करना उचित होगा ॥ ४१५ ॥ अपनी रानी

स्वामिना जिनपालेनाभयं दत्तं तवैव भो ॥४०२॥ चंडः प्राहेति हे कांते ! मुनीनां छिपता कुतः । रागो हि विद्यते कुत्र साम्यत्वात्तु त्य-
क्तपता ॥ ४०३ ॥ यद्येवं विद्यते चित्ते वैहि नंतुं गतौ तदा । जिनपं वीक्ष्य नत्वैवं पप्रच्छेति मनोगतं ॥ ४०४ ॥ हे नाथ ! योगिनां
कस्याभयचिंतनमादरात् । कस्य विनाशनत्वं हि युक्तं प्रोक्तं जिनागमे ॥ ४०५ ॥ मुनिर्मौनं समाश्रित्य स्थितो ध्याने यदा तदा ।
कांता प्राह न तद्युक्तं परंतु गगनध्वनिः ॥ ४०६ ॥ भ्रांतिं चित्तस्थितां तौ च विनाश्य सदने गतौ । अहं तवालये राजन्नागतो भोजन-
कृते ॥४०७॥ तदोक्तमिति चेलिन्या त्रिगुप्तिर्भवतां यदि । तिष्ठंतु चान्यथा नैव तदभावान्न स्थिता वयं ॥४०८॥ त्रिगुप्तीनां मुनीनां हि भव-

किसीसे राग कर सकते हैं। तुम जो कह रही हो यदि वह बात सत्य ही है तो चलो अपने मुनि राजके पास चलें और यथार्थ बात उनसे पूछें बस वे दोनों मुझ जिनपालको वंदनेके लिये चल दिये। मुझे देख कर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं अपने हृदयका भाव राजा चंडप्रद्योतन इस प्रकार व्यक्त करने लगा—

भगवन् ! योगी लोग किसीका तो अभय चिंतवन करें और किसीका नाश चिंतवन करें क्या यह बात जैनसिद्धांतमें ठीक मानी गई है ? मैंने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। मौन धारण कर ध्यान करने लगा। रानी मृगांकाने कुछ भी उत्तर न देते जब मुझे ध्यान लीन देखा तो उसने राजा चंडप्रद्योतनसे कहा—नाथ ! मुनिराजने अभय दानका सूचक वचन नहीं कहा था किंतु उस प्रकारकी आकाश ध्वनि हुई थी। रमणी मृगांकाके ऐसे वचन सुन दोनोंकी भ्रांति मिट गई और वे दोनों अपने राजमहल लौट आये। मैं भी उस उपसर्गसे अपनेको मुक्त जान राज मंदिरमें आहारके लिये गया। रानी चेलिनीने तीन अङ्गुली उठाकर यह बात प्रगट की थी कि-- यदि आप तीन गुप्तियोंके धारक हों तो मेरे मन्दिरमें आहारके लिये ठहरें नीच नहीं। राजन् ! हमारे तीन गुप्तियां थीं नहीं इसलिये हम राजमन्दिरमें आहारके लिये स्थित न हो सके क्योंकि यह नियम है जो मुनि तीन गुप्तियोंके धारक होते हैं वे नियमसे अवधिज्ञानी होते हैं और उससे

जयत्वं भाविता तत्र ॥ ध्वनिं मुनेर्वचो मत्वा सत्यं मौनीश्वरं वचः। इति कृत्वा गतो गेहे रणतो समागतः ॥ ३९६ ॥ चंडस्तदा समाकर्ण्य जयत्व तस्य भूपतेः। जैनं मत्वा यदायाति स्वगृहेषु रणान्वितः ॥ ३९७ ॥ प्रजापालाभिधो राजा प्रेषयामास सद्भटान्। ते गत्वा प्रोचुरित्येवं कथं यासि रणाद्विना ॥ ३९८ ॥ चंडप्रद्योतनोऽवादीच्छ्रुत्वा तेषां वचः स्फुटं। जैना मे बाधवा मित्रं कथं योधुध्यते मया ॥ ३९९ ॥ गत्वान्ववेदयन्वीराश्चण्डप्रद्योतनोदितं। तथा श्रुत्वा ददौ प्रीत्या मृगाक्षीं मारमंजरी ॥ ४०० ॥ एकदा तौ च रेमाते तदा चंडो जगाद भो। कांते! ते पितरं जैनं मत्वा मुक्तो रणांगणे ॥ ४०१ ॥ श्रुत्वा मृगाक्षिका प्राह शृणु त्वं नाथ! मद्वचः।

रणभूमिमें आ धमका ॥ ३९३—३९६ ॥ राजा चंडप्रद्योतनको किसी कारणसे यह भ्यास गई कि राजा प्रजापालका ही विजय है इसलिये वह उसे जैनी मान अपने घर जाने लगा। रणके लिये सर्वथा तयार राजा प्रजापालने अपने कुछ सुभट राजा चंडप्रद्योतनके पास भेजे और वे कहने लगे कि भाई रणको छोड़कर तुम क्यों जा रहे हो ? उत्तरमें राजा चंडप्रद्योतनने गंभीर वचनोंमें कहा—समस्त जैनी मेरे बंधु हैं और मित्र हैं मुझे उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। राजा प्रजापालके सुभटोंने चंडप्रद्योतनका संदेशा उससे जाकर कह दिया। चंडप्रद्योतनके ये वचन सुन राजा प्रजापाल प्रसन्न हो गया एवं कामकी मन्जरी स्वरूप अपनी मृगनयनी कन्याका उसके साथ विवाह कर दिया ॥ ३९७—४०० ॥

रमणी मृगांका और चंडप्रद्योतन एक दिन आपसमें रमण क्रीड़ा कर रहे थे उससमय चंडप्रद्योतनने कहा--प्रिये तुम्हारा पिता जैनी था इसलिये मैंने उसे रणसंग्राममें छोड़ दिया था यदि कोई दूसरा होता तो मैं उसे नहीं क्षमा करता। अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन रमणी मृगांकाने कहा--प्राणनाथ! मुनिराज जिनपालने उन्हें अभय दान दिया था इसलिये वे आपसे नहीं जीते जा सके। अपनी रानीके ऐसे वचन सुन चंडप्रद्योतनको बडा आश्चर्य हुआ वह कहने लगा--मुनियोंकी तो शत्रु मित्रमें समान वृत्ति रहती है इसलिये न तो वे किसीसे द्वेष कर सकते हैं और न

भूमितिलकपुरे राजा प्रजापालोऽस्ति धीधनः ॥ ३८६ ॥ तस्यैव धारिणी जाया मृगांकाख्या सुताभवत् । वृत्तोन्नतनितंबा च मध्य क्षामोरसि पृथुः ॥ ३८७॥ चंडप्रद्योतनो राजा श्रुत्वा तामतिरूपिणीं । ययाचे सादरं पित्रा नो दत्ता दर्पधारिणा ॥३८८॥ चतुरंगवलान्वीतो दुर्दमार्थं चचाल सः । क्रमेण तत्पुरं प्राप्य वेवेष्टि वलिभिर्वलैः ॥३८६॥ घस्रे घस्रे तयोर्जातो रणो रणविदोः पुनः ॥३६०॥(षट्पदी) कुंतकर्तितमूर्धानो योयुध्यंते नरास्तदा । महारणसमुद्रे स्मिन् पतद् तिमहाशिले ॥ ३६१ ॥ वहुवीरक्षये युद्धे हारितो हि प्रजापालक् । ३६२॥(षट्पदी)विषण्णस्तिष्ठते यावत्तावन्मां च वनागतं। जिनपं वनपालाच्च श्रुत्वा वंदितुमाययौ ॥३६३॥ इत्थं जगाद नत्वा मां त्राहि त्वं शरणागतं । सेवकं दुःखितं मत्वा ध्रुवं चिंतां निवारय ॥ ३६४ ॥ तदाकाशध्वनिर्जज्ञे वनदेवतया कृतः । प्रजापाल ? भय मागाः

चंडप्रद्योतन क्रोधसे भवक गया । राजा वसुपालको वश करनेके लिये वह चतुरंग सेनासे व्याप्त हो भूमितिलक पुरको ओर चलदिया एवं अपनी वलवान सेनासे चारो ओरसे पुर घेरलिया ॥ ३८४-३८६ ॥ दोनों ही राजा रणकुशल थे । दोनोंका आपसमें प्रतिदिन युद्ध होने लगा । उस महारण रूपी समुद्रमें जिनके मस्तक भालोंसे कटे हुये हैं ऐसे पुरुष युद्ध करने लगे । शस्त्रोंके कठोर प्रहारों से बड़ी बड़ी हाथीरूपी महाशिलायें पड़ने लगीं । वहुतसे वीरोंका क्षय होने लगा ऐसे भयंकर संग्राममें राजा प्रजापालको हार खानी पड़ी ॥ ३६०—३६२ ॥ हारकर प्रजापाल खिन्न हो घरमें बैठा ही था कि वनपालकेमुखसे उसने मुझ जिनपालका वनमें आना सुना और मेरी वंदनाके लिये चल दिया एवं मेरे पास आकर और नमस्कार कर वह इसप्रकार विनयपूर्वक कहने लगा—

भगवन् ! मैं आपके शरणमें आया हुआ हूं आप मेरी रक्षा कीजिये । सेवकको दुःखी जान उसकी शीघ्र चिंता मेटिये मैं तो उससमय कुछ भी नहीं बोला परंतु वनदेवताकी ओरसे यह आकाश ध्वनि हुई कि—प्रजापाल ! तुम किसी प्रकारका भय मत करो विजय तुम्हारा ही होगा । राजा प्रजापालने वन देवताकी इस ध्वनिको मुनिका वचन जानकर और यह पक्का श्रद्धान कर कि मुनियोंका वचन सत्य होता है, वह अपने राजमहल लौट गया एवं तयारी कर

भार्या गरुडदत्ताख्या तयाऽहं स्नापितोऽद्दने । यदैव कौपने लेपस्तदा स्वैरं ममैव हि ॥३८१॥ तदा मत्करतः स्निग्धं पतितं वीक्ष्य वेगत दृष्टिर्गता यदा निकटे तदंगुष्ठो विलोकितः ॥ ३८२॥ तदा सस्मार मन्नार्या अंगुष्ठं कर्मपाकतः । अतो मे मानसी गुप्तिर्न स्थिता नर नायक ! ॥ ३८३ ॥ श्रुत्वोत्तस्थौ तदा राजा गत्वा नत्वा मुहुर्मुहुः । जिनपालं पप्रच्छेति ध्यायनं वृषभं प्रभुं ॥३८४॥ हे मुने ! मद्गृहा-च्छीघ्र कथमत्रागतो वद । वाग्गोपिनी ममास्ते नो अतो न स्थितवान्नृप ! ॥ ३८५ ॥ कथं तदा मुनिः प्राह शृणु त्वं काश्यपीपते ! ।

अङ्गूठेके देखनेसे मुझे अपनी स्त्रीके अङ्गूठेका स्मरण उठ आया एवं सहसा मेरे मनमें यह भावना खड़ी हो गई कि अहा, ऐसा ही सुन्दर अङ्गूठा मेरी रानीका था। बस राजन् ! उसदिन से आज तक मेरे मनोगुप्तिका उदय नहीं हुआ इसलिये तीनो गुप्तियोंके न रहनेके कारण मैं राज मंदिरमें आहारके लिये न ठहर सका ॥ ३७५—३८३ ॥ मुनिराज धर्मघोषकी कथा सुन राजा श्रेणिक उन्हें नमस्कार कर वहांसे उठे। जिनपाल नामक मुनिराजके पास गये व भगवान उस समय भगवान ऋषभदेवका ध्यानकर रहे थे राजाने पास जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और यह पूछा—

पूज्य मुनिराज ! आप मेरे राजमन्दिरमें आहारके लिये गये थे परंतु आहार बिना ही लिये आप चले आये इसका कारण क्या? उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन् मेरे कायगुप्ति न थी इसलिये मैं राजमंदिरमें आहारके लिये नहीं ठहरा। राजाने पुनः पूछा--महाराज ! आपके कायगुप्तिका उदय क्यों नहीं हुआ ? उत्तरमें मुनिराज अपना सारा हाल खुलासारूपसे इसप्रकार कहने लगे। भूमितिलक पुरका स्वामी राजा प्रजापाल है। उसकी पटरानीका नाम धारिणी और उससे उत्पन्न एक मृगांका नामकी कन्या है। जो कि गोल और उन्नत नितंबोंसे शोभायमान है। सूक्ष्मकटिभागकी धारक है और उसका वक्षःस्थल विशाल है। अत्यंतरूपवती जान चंडप्रद्योतन नामके राजाने उसे वसुपालसे सरलता पूर्वक मांगी थी परंतु अभिमानी वसुपालने उसे नहीं दी।

नत्वा पप्रच्छेति नृपो गुरुं। चर्यार्थं मद्गृहे स्वामिन्नागतो निर्गतः कथं ॥३७५॥ जगाद मुनिराड् भूपं शृणु श्रेणिक! श्रीमनः। इत्युक्तांतयास्माकं ये तु गुप्तित्रयात्मकाः ॥ ३७६ ॥ तिष्ठंतु भोजनार्थं ते नापरे ह्यत्र भृशं ॥ ३७७ ॥ (यह्यपठी) नो गुप्तित्रितयं नास्ति नास्माभिश्च स्थितं ततः। का गुप्तिर्नास्ति युष्माकं मानसीति कथं वद ॥ ३७८ ॥ धर्मघोषस्तदा प्राह शृणु राजन्निगद्यते। कलिंगविषये दंतपुरे राजाहं महान् ॥ ३७९ ॥ विहरन् भोजनार्थं वै कौशाम्ब्यामगमं नृप!। तत्रैव गरुडाभिख्यो राजमंत्री प्रवर्तते ॥३८०॥

नामक मुनिराजके पास गये। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं राजाने इसप्रकार उनसे पूछा स्वामिन्! आहारके लिये आप राजमंदिर पधारे थे परंतु आहार बिना ही ग्रहण किये आप वापिस क्यों चले आये। उत्तरमें मुनिराजने कहा—सुनो राजा जिससमय हम राजमंदिरमें आहारके लिये गये थे उससमय रानी चेलिनीने तीन अङ्गुली उठाकर यह प्रगट किया था कि तीन गुप्तियोंके पालक मुनिराज मेरे यहां आहारके लिये तिष्ठें। जिनके तीनों गुप्तियां न हों वे न तिष्ठें। हमारे तीनों गुप्तियां थीं नहीं इसलिये हम वहां आहारके लिये नहीं ठहरे। न ठहरनेका अन्य कोई कारण न था। मुनिराजके ये वचन सुन राजा श्रेणिकने पूछा—महाराज! तीनों गुप्तियोंमें आपके कौनसी गुप्ति नहीं है? मुनिराजने कहा—हमारे मनोगुप्ति नहीं है। राजाने फिर पूछा महाराज! आपके मनोगुप्ति क्यों नहीं है। उत्तरमें मुनिराजने अपने मनोगुप्ति न होनेका कारण इस प्रकार खुलासारूपसे वर्णन किया—

कलिंगदेशमें एक दंतपुर नामका नगर है। मैं वहांका एक बहुत बड़ा राजा था। भोजनके लिये विहार करता करता मैं एक दिन कौशांबी नगरीमें जा निकला। वहांके राजाके मंत्रीका नाम गरुड़दत्त था और उसकी स्त्री गरुड़दत्ता थी। गरुड़दत्ताने मुझे आहारके लिये ठहरा लिया और विधिपूर्वक वह मुझे आहार देने लगी। जिससमय वह केवल मुझे ही आहार दे रही थी प्रबल कर्मके उदयसे एक ग्रास मेरे हाथसे नीचे जमीन पर गिर गया। ग्रासके गिरते ही मेरी दृष्टि भी उस ग्रासपर पड़ी। रमणी गरुड़दत्ताका पैरका अंगूठा मुझे दीख पड़ा कर्मकी प्रबलतासे उस

समस्या विहिता तया ॥ ३६९ ॥ त्रिगुप्तिगुप्ताःतिष्ठंतु लेहार्थं मम मंदिरे । अंगुलिद्वितयं तेऽपि दर्शयित्वा वनं ययुः ॥३७०॥
गुणसागरनामानं दृष्ट्वा यातं तथाऽकरोत् । प्रतिपद्य मुनिस्तस्थौ राजप्रक्षालितांघ्रिकः ॥ ३७१ ॥ मध्ये गृहं यदा योगी गत्वा तिष्ठति
भावतः । ज्ञात्वावधिबलाच्चर्मास्थ्यशुद्धिं गतवांस्तदा ॥३७२। अथाचख्यौ नृपो राज्ञीं ते त्रयो हि कथं गताः । लेहार्थमागताः पूर्वं ब्रूहि
त्वं तच्च कारणं ॥३७३॥ अवीवदत्तदा राज्ञी नो वेद्मीति नराधिप ! । आवां यावश्च पृच्छावो वाहनाज्जग्मतुर्वनं ॥३७४॥ धर्मघोषमुनिं

किया कि मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति तीनों गुप्तियोंके धारक मुनिराज मेरे मंदिरमें आहारके लिये ठहरें। तीनों मुनियोंमें तीनों गुप्तियोंका धारक एक भी मुनि न था इसलिये वे अपनी दो २ अङ्गुलियां दिखा कर वनको चले गये। उनके वाद एक गुणसागर नामके मुनिराज आये। रानीने उनको भी तीन अङ्गुली उठाकर अपने हृदयका भाव प्रकट किया, वे मुनि तीनों गुप्तिओंके धारक थे एवं तीन गुप्तिओंका धारक नियमसे अवधिज्ञानी होता है इसलिये वे अवधिज्ञानी भी थे बस रानीके वचनानुसार उन्होंने अपनेको उपर्युक्त समझा। वे खड़े रहगये राजाने उनके चरणोंका प्रचाल किया। घरके मध्यभागमें आहारके लिये वे भावपूर्वक जाकर स्थित ही हुए थे कि उन्होंने अवधिज्ञानकी ओर अपना उपयोग लगाया एवं अवधिज्ञानके वलसे चाम हड्डी आदि अपवित्र पदार्थोंको उन्होंने जान लिया। वे अपना अन्तराय समझ वनकी ओर चले गये। गुणसागरके विषयमें तो राजाने कुछ भी नहीं कहा किंतु उनसे पहिले जो तीन मुनिराज आहार विना ही लिये वन चले गए उनके विषयमें यह पूछा—

प्रिय रानी ! तीन मुनि जो आहारके लिए राजमंदिरमें आये थे वे विना ही आहारके राजमंदिरसे क्यों लौट गए ? उत्तरमें रानीने कहा—प्राणनाथ ! मैं भी कुछ नहीं समझ सकी चल अपन दोनों उनके पास चलें और उनसे विना आहार लिए लौट आनेका कारण पूछें। बस दोनों ही सवारियोंपर चढ़कर वनकी ओर चल दिये ॥ ३६९—३७४ ॥ सवसे पहिले वे धर्मघोष

त्वा त्वभूस्त्वकं । त्वद्वक्षोरुधिराकांक्षी चेलिन्या उदरे हि सः ॥ ३६४ ॥ सुषेणचरदेवोऽभूत् कुणिकाख्यो निदानतः । एतस्मात्त्वं निजं नाशं पंजरे विद्धि निश्चयात् ॥ ३६५ ॥ श्रुत्वा जातिस्मरो जज्ञे तदा श्रेणिकभूमिपः । जैनधर्मं समाधाय श्रद्दधत् स्वगृहं ययौ ॥३६६॥ जैनधर्मरतं मत्वा नृपं बौद्धाः समागताः ।:राजन् ! करोषि चेज्जैनं धर्मं कुर्याः परीक्ष्य भो ॥ ३६७ ॥ सद्ममध्येऽस्थिसंतानं क्षिप्त्वा राज्ञीं नृपो जगौ । भोजयेति मुनीन् जैनान् ज्ञातवृत्तोन्नतस्तनी ॥ ३६८ ॥ एकदा त्रय आयाता मुनयो नृपसद्मनि । तदांगुलीमिरित्येवं

राजका इसप्रकार मरण सुन बड़ा दुःखित हुआ एवं उसी दुःखमें राजकाज त्यागि वह मिथ्या तपस्वी हो गया। कुतपके प्रभावसे वह मिथ्यादृष्टि देव हुआ एवं वहांसे चयकर तुम राजा श्रेणिक हुए हो। तुम्हारे वक्षस्थलके रुधिरका आकांक्षी वह सुषेणका जीव देव अपने निंदित निदानसे रानी चेलिनीके गर्भमें अवतीर्ण हो गया है उसका नाम कुणिक होगा वह तुम्हें कठहरेके अन्दर बन्द रक्खेगा एवं उसके निमित्तसे उस कठहरेके अन्दर ही नियमसे तुम्हारा मरण होगा ॥ ३६३—३६५ ॥ मुनिराजके मुखसे अपने पूर्वभवका वृत्तांत सुन राजा श्रेणिकको भी अपने पूर्व भवका स्मरण हो गया एवं जैनधर्मका श्रद्धानी हो वह अपने राजमहल लौट आया ॥ ३६६ ॥ बौद्ध साधुओंने सुना कि राजाने बौद्धधर्मका आचरण छोड़ दिया है और वह जैनधर्मका सेवक बन गया है। वे सबके सब राजाके पास आये, बहुतसी तर्क वितर्क हुई। अन्तमें जब उनकी एक भी न चली तो उन्होंने यही कहा--राजन् ! तुम जैनधर्मको धारण तो करते हैं परंतु ठीक समझ सोचकर धारण करना जिससे पीछे पश्चाताप न करना पड़े ॥ ३६७ ॥ बौद्धगुरुओंके वचनोंका राजा पर कुछ असर पड़ गया। जैनधर्मकी परीक्षाका कौतूहल उसके शिरपर सवार हो गया। एक दिन उसने आहारके स्थानपर रानीसे छिपाकर कुछ हड्डी आदि अपवित्र पदार्थ गड़वा दिये और रानीसे यह कह दिया कि तुम जैन मुनियोंको आहार दान दिया करो। रानी चेलिनी बड़ी चतुर थी उसने राजाका अभिप्राय पहिचान लिया और वह चौकन्नी हो गई ॥ ३६८ ॥ एक दिन तीन मुनिराज मंदिरमें आहारके लिये आये। रानीने तीन अंगुली उठाकर यह भाव प्रगट

गतः। पुनः राज्ञो गजो दुष्टः स्तंभमुत्क्षेप्य निर्ययौ ॥ ३५७ ॥ तदा सह निशांतेन राज्ञा नावगतो मुनिः। द्विपक्षांतं तपो नीत्वा पुनः कांतारमाप सः ॥ ३५८ ॥ तृतीयपारणायां स क्षीणमात्रो जटान्वितः। राजधान्यां तदा दाहो बभूव लयकालवत् ॥ ३५६ ॥ तदा भूपादिभिर्नैव दृष्टः श्रीमुनिपुङ्गवः। प्रत्यूहं वै यदा कृत्वा याति लोकास्तदा जगु ॥३६०॥ अयं राजा महापापी भोजनं नैव यच्छति। दातारं वारयत्येव श्रुत्वा राज्ञे चुकोप सः ॥ ३६१ ॥ क्रोधस्खलितपादोऽयोगी पतद्भूमौ निदानकं। अचीकरन्महादुष्टं हन्मीदृक्षो भवाम्यहं ॥ ३६२ ॥ मृत्वा व्यंतरतां यातो धिङ्निदानमनर्थदं। तमावेद्य मृतं राजा तद्दुःखात्तापसोऽजनि ॥३६३॥ कुनपःस्थः सुरो जज्ञे ततश्च्यु-

गजने अपने बंधनेका खूंटा तोड़ डाला। सारे महल और नगरमें खलबली पड़ गई बस उसदिन भी मय अपने रणवासके राजा मुनिराजको न देख सका एवं दो पक्षोंका और भी आहारका नियम लेकर वे मुनिराज वनको चले गये ॥ ३५७—३५८ ॥ तीन मासके उपवासके बाद वे पुनः पारणाके लिये नगरमें आये। आहारके विना उस समय उनका शरीर एकदम क्षीण हो गया था और बड़ी बडी जटायें बढ़ गईं थीं परंतु जिससमय मुनिराजने नगरमें प्रवेश किया उसी समय प्रलय कालके समान नगरमें आग लग गई इसलिये किसी राजाआदिकी दृष्टि मुनिराजपर न पड़ी। वे अपना अंतराय समझ वनको लौट दिये। उनकी दुःखदायी क्षीण दशा देख कुछ लोग आपसमें कहने लगे—

यह राजा बड़ा भारी पापी है न तो स्वयं मुनिराजको भोजन देता है और यदि कोई अन्य दाता देता है तो उसे देने नहीं देता। बस पुरवासी लोगोंके ये शब्द सुन मुनिराज अशुभ कर्मके उदयसे राजापर आग बबूला हो गये। चलते चलते तीव्र क्रोधसे उनके पैर लटपटाने लगे। असमर्थतासे जमीनपर गिर गये एवं तीव्र क्रोधसे अज्ञानी बन यह महादुष्ट निदान किया-कि मैं आगे ऐसा हों जो इसदुष्टको मार सकूं ॥ ३५६—३६२ ॥ निदानके तीव्र पापसे वे व्यंतर जातिके देव हुए। हा इसप्रकारके अनर्थके कारण निदानके लिये धिक्कार है। राजा सुमित्र भी मुनि-

३५१ ॥ मुनिराहेति राजानं यद्दैमि भोजनाय वै । अनुमोदनं तदा दोषोऽव्रततो जीवनं च धिक् ॥ ३५२ ॥ श्रुत्वा नत्वा ययौ राजाऽरंजयत्स्वप्रजाः प्रजा । एकदा दायितस्तेन पटहो हि पुरेऽखिले ॥ ३५३ ॥ भो लोकाः ! योगिने यो हि दास्यत्याहारमात्रकं । राजग्राह्यो भवेत्सोऽपि भोजयिष्याम्यहं खलु ॥ ३५४ ॥ एकदा मुनिराजोऽसावागतो भोजनकृते । मासोपवासिको ध्यानी नैव केनापि रक्षितः राजद्वारे यदा यातो वैरिदूतस्तदागतः । मुनीराज्ञा हि न ज्ञातो विग्रहत्वान्मुनिर्गतः ॥ ३५६ ॥ मासद्वयोपवासी स पारणार्थं समा

मोदन करना ये प्रायः एक समान ही हैं तथा इस अनुमोदन दोषसे व्रत भंग होगा और व्रतके विना संसारमें जीना व्यर्थ है । मुनिराजका यह उत्तर सुन राजा सुमित्र और अधिक कुछ न बोल सका बस मुनिराजके वचन सुन और उन्हें नमस्कार कर राजमहल लौट आया एवं अपने पुत्रके समान प्रजाको रंजन करने लगा । एकदिन बैठे ही बैठे उसके मनमें उचंग उठ खड़ी हुई । उसने समस्त नगरमें ड्योढी पिटवा दी और यह घोषणा कर दी—

समस्त प्रजाको सूचित किया जाता है कि मुनिराज सुषेणको कोई भी आहार न दे । मेरी आज्ञा न मानकर जो उन्हें आहार देगा वह राजाकी ओरसे दण्डित किया जायगा क्योंकि उन्हें आहार देनेका पूरा संकल्प मैंने कर लिया है । केवल मैं ही उन्हें आहार दूंगा ॥ ३५०—३५४ ॥ एक मासके उपवासके वाद ध्यान शील वे मुनिराज सुषेण एक दिन आहारकेलिये नगरमें आये मुनि चर्याके अनुकूल वे जहां तहां घरोंमें घूम परंतु राजाके भयसे किसीने भी उन्हें आहार दान न दिया ॥ ३५५ ॥ जिससमय वे राजमहलमें आहारकेलिये गये तो उस समय राजा सुमित्रके किसी वैरीका दूत राजसभामें आ गया । उसकी गड़बड़में राजा उन्हें न देख सका । वे मुनिराज अंतराय कर्मका प्रबल उदय जान वनको चले गये ॥ ३५६ ॥ दो मासके उपवासके वाद वे पुनः पारणाके लिये नगरमें आये । मुनिचर्यानुसार सर्वत्र घूमकर वे आहारके लिये राजमहल में गये । जिससमय मुनिराज राजमहलमें प्रविष्ट हुए उसीसमय राजा सुमित्रके किसी दुष्ट

सुमित्रो हि निजं मित्रमदृष्ट्वा तद्गृहं गतः। विलोकनाय श्रुत्वा तं दीक्षितं दुःखवानभूत् ॥ ३४६ ॥ एकदा स्ववने राजा समायातं मुनीश्वरं। श्रुत्वा जगाम संप्रीत्या वंदनाय बहुश्रुतं ॥ ३४७ ॥ वंदित्वा प्राह हे मित्र ! त्वमेहि सदनं प्रति। अर्धराज्यं ददामीति श्रुत्वा प्राह मुनिर्वचः ॥ ३४८ ॥ तपसा प्राप्यते राज्यं स्वर्गो दिव्यं शिवं सुखं। रत्याभभामिनीवृंदं दुष्प्राप्यं तेन किं भवेत् ॥ ३४९ ॥ श्रुत्वा मौनीश्वरं वाक्यमवोचत्सादरादिदं। नागच्छसि यदा त्वं भो गृहं संसारवर्धके ॥ ३५० ॥ एहि मे मंदिरे नूनं भोजनाय सुखेन च ॥

था। दिगंबरी दीक्षा ले लेनेके कारण जब सुमित्रका सुषेणसे मिलाप न हो सका तो वह स्नेहसे प्रेरित हो सुषेणको देखनेके लिये उसके घर गया परंतु वहांपर उसे मालूम हुआ कि वह मुनि हो गया है इसलिये वह बहुत दुःख मानने लगा ॥ ३४६ ॥ एक दिन राजा सुमित्रने सुनी कि सूरपुरके वनमें मुनिराज सुषेण पधारे हैं, वह बड़े प्रेमसे बहुश्रुतके जानकार मुनिराज सुषेणकी वंदनाके लिये चल दिया ॥ ३४७ ॥ पास जाकर भक्तिपूर्वक मुनिराजको प्रणाम किया एवं स्नेहसे विह्वल हो इसप्रकार कहने लगा—

हे मित्र ! तुम घर चलो। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दूंगा--किसी वातका तुम्हें क्लेश न होगा। उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन् ! संसारमें तप सर्वोत्तम पदार्थ है, इसीसे राज्य प्राप्त होता है इसीसे स्वर्ग इच्छानुसार द्रव्य मोक्ष एवं संसारके अन्य सुख भी प्राप्त होते हैं। रतिके समान सुन्दरी स्त्रियां भी इससे प्राप्त होती हैं विशेष क्या, संसारमें कोई भी ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं जो तपसे न मिलती हो ॥ ३४८—३४९ ॥ मुनिराजके ऐसे गंभीर वचन सुन राजा सुमित्रसे अन्य उत्तर तो न बना किंतु बडे आदरसे वह यह कहने लगा—महाराज ! संसारको बढ़ाने वाले घरमें आनेकी यदि आपकी इच्छा नहीं है तो आप सुखपूर्वक भोजनके लिये मेरे मंदिरमें तो अवश्य पधारें इसका उत्तर भी मुनिराजने यह दिया—यदि मैं इसरूपसे भी तुम्हारे मंदिरमें भोजनके लिये आऊंगा तो अनुमोदना दोष लगेगा क्योंकि करना कराना और अनु-

भो। पृच्छय त्वं भवान् स्वीयाँस्तव्ऽप्राक्षीद्भवान् मुनिं ॥ ३३ . ॥ तदा गंभीरघोषेण मुनिराजो जगाद तं। श्रृणु राजन्! समादाय जंबूद्वीपेऽत्र भारते ॥ ३३६ ॥ आर्यखंडे सूरकांतदेशे सूरपुरे पुरे। मित्रनामा महाराजा श्रीमती तस्य भामिनी ॥ ३४० ॥ तयोः पुत्रः सुमित्राख्यः प्रधानो मतिसागरः। तस्यैव रूपिणी कांता सुषेणस्तनुजोऽजनि ॥ ३४१ ॥ सुमित्रो मंत्रिपुत्रेण सार्धं क्रीडति सर्वदा। संतापयति तं नित्यं भूमौ पात्य च मुष्टिभिः ॥ ३४२ ॥ एकदा जलकेल्यर्थं दीर्घिकायां ममज्जतुः। पद्मवृंदसमाकीर्णौ निमग्नौ जलमध्यतः ॥ ३४३ ॥ सविवेको विशालाक्ष. सुमित्रो राज्यमाप वै। अतर्कयत्तदा स्वांते सुषेणः संभ्रमादिदं ॥ ३४४ ॥ कौमारत्वेऽप्ययं राजा मे-संतापितवाँस्तरां। नुदिष्यत्यधिकं नूनं संप्रतीत्थं विचिंत्य सः। मुनिं नत्वा वने गत्वा प्रवव्राज पपाठ सः ॥ ३४५ ॥ (षट्पदी)

था और उन दोनोंके सुमित्र नामका पुत्र था। राजा मित्रके प्रधान मंत्रीका नाम मतिसागर था उसकी स्त्रीका नाम रूपिणी था और उससे सुषेण नामका पुत्र उत्पन्न था। राजपुत्र सुमित्र मंत्रिपुत्र सुषेणके साथ सदा क्रीड़ा करता था। सरलचित्त मंत्रिपुत्रको वह खेलते समय सदा संताप दिया करता था एवं जमीन पर डालकर खूब मुक्कोंकी मार मारता था ॥ ३३७—३४२ ॥ एक दिन वे दोनों बावड़ीपर जलक्रीड़ा करनेके लिये गये एवं कमलके पत्तोंसे मुंह ढांककर जलके भीतर पैठ गये ॥ ३४३ ॥ कदाचित् विवेकशाली और विशाल नेत्रोंके धारक राजपुत्र सुमित्रको राज्यकी प्राप्ति हो गई। उसे राजा जान मंत्रिपुत्र सुषेण मन ही मन भ्रमसे यह विचार करने लगा—

यह राजा सुमित्र जिससमय कुमार था उस समय भी मुझे मर्यादासे अधिक सन्ताप देता था। अब यह राजा होगया है इसलिये यह अब और भी संताप देगा, बस ऐसा मनमें पक्का विचार कर वह सीधा वनमें मुनिराजके पास चला गया। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया दिगंबरीदीक्षा धारण कर ली एवं सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगा ॥ ३४४—२४५ ॥ सुमित्र खिलाड़ी स्वभावका मनुष्य था सुषेणसे वह किसीप्रकारका द्वेष नहीं रखता था किंतु उसे बड़े प्रेमसे देखता

॥ ३३३ ॥ द्वाभ्यामप्यपि सद्धर्मवृद्धिः श्रीमुनिनाऽमुना । तदा राजा निजे चित्ते दुःखं चक्रे महोत्कटं ॥ ३३४ ॥ अहो मया कृतं नूनं पापं श्रीमुनिघातजं । तदाऽवोचद्यतीराजन् ! मा दुःखं कुरु चेतसि ॥ ३३५ ॥ आवश्यकं हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं ॥३३६॥ (षट्पदी) श्रुत्वा राजा तदाऽवोचत् चेलिनीं प्राणवल्लभां । हे रामेऽयं कथं वेद ममांतर्गतभावनां ॥३३७॥ अवीभणत्तदा राज्ञी का कथाम्र लसद्य

भावना भाते रहते थे। जिससमय "तुम्हारी धर्मवृद्धिहो" यह मुनिराजने आशीर्वाद दिया-अपनी भक्त रानी और द्वेषी राजामें कुछ भी भेदभाव न रख दोनोंको समान रूपसे समझा। उससमय मुनिराजकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर महाराज श्रेणिक बड़े लज्जित हुए एवं अपने मनमें उग्र दुःख करने लगे ॥ ३३४ ॥ मुनिराजके शिष्ट वर्तावसे वे मन ही मन यह विचारने लगे हाय मैंने श्रीमुनिराजके मारनेका घोर पाप किया है, मुझे धिक्कार है। मुनिराज दिव्य ज्ञानी थे अपने ज्ञानसे उन्होंने राजाके मनकी वात जान ली इसलिये वे यही कहने लगे कि--राजन्! तुम्हें अपने चित्तमें किसी प्रकारका दुःख नहीं करना चाहिये जो शुभ और अशुभ कर्म किया गया है उसका अच्छा बुरा फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥ ३३६ ॥ मुनिराजके ये अचरजभरे वचन सुन महाराज श्रेणिकने चेलिनीसे कहा--प्रिये! मेरे मनके भीतरकी वात मुनिराजने कैसे पहिचान ली? उत्तरमें चेलिनीने कहा--प्राणनाथ! इस वातके लिये आप क्या अचरज कर रहे हैं मुनिराजने जो आपके मनका भाव पहिचान लिया यह तो वहुत ही तुच्छ वात है यदि आप पूछना चाहें तो अपने पूर्वभवोंका भी हाल पूछ सकते हैं। चेलिनीकी यह वात सुनकर महाराज श्रेणिकने अपने पूर्वभवोंकी पूछने की मुनिराजसे लालसा प्रगट की। मुनिराज भी अपनी गंभीर ध्वनिसे इस प्रकार कहने लगे—

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्र संवंधी आर्यखंडमें एक सूरकांत नामका देश है। इस सूरकांत देश में एक सूरपुर नामका नगर है उसका स्वामी राजा मित्र था। उसकी पटरानीका नाम भामिनी

तदोत्फणमहानागं मार्य कण्ठे ससर्ज सः ॥ ३२८ ॥ चतुर्थदिवसे राज्ञा मध्यरात्रे निवेदितं । चेलिन्याश्च तदा श्रुत्वा शोकं कृतवती च सा ॥ ३२९ ॥ अत्रोचन्महिषीं राजा मा त्वं दुःखय सुन्दरि ! । मंत्रवादी च पाखंडी गतो नूनं भविष्यति ॥ ३३० ॥ राज्ञी वभाण राजेंद्र यद्ययं मम सद्गुरुः । अभविष्यत्तदा नूनं नागमिष्यन्महायमी ॥ ३३१ ॥ इत्युक्त्वा चेलिनी राज्ञी नृपेण सहमागता । ध्यानारूढं मुनिं दृष्ट्वा हाहेति वचनं जगौ ॥ ३३२ ॥ संदंशा चोत्तार्य वेगेन पिपीलीश्च द्विजिह्वकं । पश्चान्ननाम सद्भक्त्या धर्मध्यानस्थितं मुनिं

क्रोध और भी अधिक भबक गया वे कहने लगे इस दुष्ट पाखंडीने मन्त्रोंसे कुत्तोंको कील डाला बस स्वयं वह मूर्ख राजा मुनिराजकी ओर झपटा और भयंकर महानागको मार कर उनके गलेमें छोड़ दिया ॥ ३२८ ॥ राजा श्रेणिक राजगृह नगर लौट आये। राजकाजकी विशेष झंझटसे तीन दिन तक तो वे रानी चेलिनीके महलमें न जा सके। चौथे दिन वहां गये और ठीक आधी-रातके समय मुनिराजके साथ जो दुर्व्यवहार उन्होंने किया था सारा रानी चेलनासे कह सुनाया धर्म भक्त रानी चेलनाने जिससमय भयंकर समाचार सुना वह एकदम कंप गई और अनेक प्रकारसे शोक करने लगी। उसकी यह दुःखित अवस्था देख महराज श्रेणिकका भी हृदय पसी-जने लगा वे वार वार महाराणीसे यही कहने लगे--सुन्दरी ? तू रंचमात्र भी शोक न कर। वह मंत्रवादी पाखंडी साधु था। गलेसे सर्प फैंककर वह अवश्य कहीं चला गया होगा। महाराजके ये वचन सुन चेलिनीने कहा—राजन् ! यदि वह मेरा पवित्र गुरु होगा तो वह महामुनि वहांका वहीं विराजमान--होगा वहांसे कहीं भी न जा सकेगा। ऐसा कहकर वह रानी चेलिनी उसी समय राजाके साथ मुनिराज यशोधरके स्थानपर पहुंच। मुनिराज एकदम ध्यानारूढ थे--मुझे क्या कष्ट दिया जा रहा है इस बातका उन्हें रंचमात्र भी विचार न था। मुनिराजको ध्यानारूढ देख धर्म-भक्त चेलना हाय हाय कहने लगी। जल्दीसे पासमें जाकर सड़सीसे सर्प खींच कर नीचे डाल दिया। चिउंटी भी पोंछकर साफ करदी। पीछे धर्म्मध्यानमें स्थित उन मुनिको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ३२९—३३३ ॥ वे मुनिराज परम वीतरागी थे। सदा शत्रु और मित्रोंमें समानताकी

गौद्धाः सिद्धाः स्थिता मोक्षे किमेतैश्च कलेवरैः ॥ ३२१ ॥ श्रुत्वा राजा गतलज्जया दातुं प्रत्युत्तरं स वै। असकत्वान्मनोऽभीष्टं कुरु प्रोक्त्वेति सद्वचः ॥ ३२२ ॥ अन्यदा मृगयार्थं स गतो राजा वनांतरे। यशोधरं मुनिं दृष्ट्वा पप्रच्छेति भटान्प्रति ॥ ३२३ ॥ कोऽयं नग्नो जटाधारी निश्चलो तेजसान्वितः। तैः प्रोक्तं च नराधीश! चेलिनीगुरुरित्यलं ॥ ३२४ ॥ तदा राजा महाकोपाच्चिंतयामास मानसे। राज्ञ्या चोपद्रवं नीता गुरवो मम सम्प्रति ॥ ३२५ ॥ पृच्छामि गौरवं वैरं मत्वेति पापसंचयं ॥ ३२६ ॥ (षट्पदी) कुर्कुरान् यमदंष्ट्राभान् शतपंचमितांस्तदा। मुमोच योगिनं गत्वा नेमुस्तत्पादपंकजं ॥ ३२७ ॥ कीलिताः शुनका नून मंत्रैः पाखंडिनाऽमुना।

को धारण करना पडेगा और दुःख सहना होगा ॥ ३१८--३२१ ॥ महाराणी चेलनाके ये वचन सुन महाराज कुछ भी प्रत्युत्तर न दे सके किंतु असमर्थ हो यही कहने लगे बाबा! तुझे सूझे सो कर. तुझसे कुछ कहना व्यर्थ है ॥ ३२२ ॥

एक दिन महाराज श्रेणिक अनेक सुभटोंके साथ शिकारके लिये गये। वनके मध्यभागमें उन्हें यशोधर नामके मुनिराज दीख पड़े। उन्हें देख अपने साथी सुभटोंसे उन्होंने पूछा—नग्न जटाधारी निश्चल और अपने शरीरकी प्रभामंडलसे व्याप्त यह कौन है? उत्तरमें सुभटोंने कहा कृपानाथ! यही तो महाराणी चेलिनीका गुरु है। राजा श्रेणिक तो महाराणी चेलिनीसे अपने गुरुओंका वदला लेनेके लिये लालायित थे ही। "यह चेलिनीका गुरु है" यह वात सुनते ही मारे क्रोधके उनकी आत्मा भवक उठी वे मन ही मन विचारने लगे—रानीने अनेक प्रकारके उपद्रव कर इससमय मेरे गुरु व्याकुल कर रक्खे हैं। इससमय रानीसे गुरुओंका वदला लेनेका मुझे अवसर मिला है वस इसप्रकार पापोंका संचय करनेवाला विचारकर यमराजके समान राजा श्रेणिकने दाढ़ोंके धारक शीघ्र ही पांचसौ कुत्ते मुनिके ऊपर छोड़ दिये परंतु जैसे ही वे मुनिराजके पास पहुंचे उनके प्रभावसे कुत्तोंका क्रोध शांत हो गया एवं वे सरलस्वभावसे मुनिराजके चरणकमलों को नमस्कार करने लगे ॥ ३२३—३२७ ॥ कुत्तोंकी यह विचित्रदशा देखकर राजा श्रेणिकका

नागदत्तिका। पप्रच्छ कारणं मातः ? कथं रोदिषि संप्रति ॥ ३१६ ॥ सुतामवीवदन्माता त्वं मृगाक्षी घनस्तनी। भर्ता ते सर्परूपोऽतो रौमीति रात्रिपानने ! ॥३१७॥ सुतेत्यूचे च हे अंब ! मा दुःखं कुरु सर्वथा। रात्रौ भूत्वा नरः सोऽपि मुक्त्वा सर्पकलेवरं ॥३१८॥ रमतेऽमा मयाऽशुभ्रं प्रातर्गृह्णाति तद्वपुः। एतच्छु त्वाऽवदन्माता प्रेषितव्योऽस्तु पुद्गलः ॥ ३१९ ॥ (युग्मं) एकदा समयं प्राप्य प्रेषितः पुद्गलस्तया । जनन्या ज्वालितः सोऽपि नरो भूत्वा स्थितस्तदा ॥ ३२० ॥ एवं ज्ञात्वा महाराजन् ! मया च ज्वालितं गृहं।

अर्हद्दत्ता अपनी पुत्रीके दुःखका स्मरण कर रो रही थी कि उसपर नागदत्ताकी दृष्टि जा पडी एवं अपनी माताको रोती देखकर वह इसप्रकार कहने लगी—

मा ! विना कारण तू इससमय क्यों रो रही है ? उत्तरमें अर्हद्दत्ताने कहा-पुत्री ! तू तो मृग लोचनी और कठिन स्तनोंसे शोभायमान परम सुन्दरी है और तुझे पति सर्पके अकारका मिला है। प्रियपुत्री ! मैं इसी दुःखका स्मरण कर रो रही हूं ॥ ३१६—३१७ ॥ माताके ये वचन सुन नागदत्ताने कहा-मा ! तू किसी प्रकारका दुःख मत करे, मेरा पति रातमें सर्पका शरीर छोड़कर मनुष्यका रूप धारण कर लेता है। समस्त रात्रि मनुष्य रूपसे ही मेरे साथ रमण क्रिया करता है किंतु जब प्रातः काल होता है उस समय पुनः सर्पका शरीर धारण कर लेता है और सारे दिन सर्पाकारसे रहता है। पुत्रीके ये वचन सुन अर्हद्दत्ताने कहा यदि यह बात सत्य है तब वह सर्पका शरीर मेरे पास भेज देना जिससे मुझे भी निश्चय हो जाय। नागदत्ताने अपनी माकी बात मान ली। अवसर पाकर एक दिन वह सर्पका शरीर उसने अपनी माके पास भेज दिया। उसकी माने उसे अग्निमें जला दिया बस उस दिनसे वह नागदत्ताका पति मनुष्यरूपसे ही रह गया। प्रिय महाराज ! यही समझ कर मैंने बौद्ध सन्यासियोंके मठमें आग लगवा दी थी क्योंकि मुझे निश्चय हो गया था कि समस्त बौद्ध साधु तो सिद्ध होकर मोक्षमें जा बिराजे हैं। ये जो इनके कलेवर रह गये हैं वे व्यर्थ पड़े हैं। इनका जला देना ही अच्छा अन्यथा फिर उन्हें आकर इन कलेवरों

च यशास्विनी । यशस्विनी सुविख्याता तस्याभून्मृगलोचना ॥ ३१० ॥ श्रेष्ठी सागरदत्ताख्य आस्ते सगरबद्धनी । गंभीरो गुणवान्
वीर्यो राजमान्यो विदांवरः ॥ ३११ ॥ भार्या वसुमती तस्य तन्मनःपद्मचंद्रिका । चंद्रवक्त्रा विचारज्ञा तन्वंगी कठिनस्तनी ॥ ३१२ ॥
तत्रैवास्ते धनी चान्यः श्रेष्ठी श्रेष्ठक्रियाग्रणीः । समुद्रदत्त इत्याख्यो धर्मकार्यविदांवरः । अछिदत्ताभिधा रामा वर्तते विमलानना
॥ ३१२ ॥ (षट्पदी) ताभ्यामेषा कृता नूनं प्रतिज्ञा-मम चेत्सुतः । तवैव पुत्रिका भावी भाविनी वा यदा तदा । तयोः पाणिग्रहो नूनं
भविता नात्र संशयः ॥ ३१३ ॥ (षट्पदी) एवं गते कियत्काले सिंधुदत्तात्सुतोऽजनि । वसुमत्याः सुमित्राख्यः सर्परूपधरो हि सः ॥
३१४ ॥ सुता समुद्रदत्ताच्च तस्या नागार्पणाऽभवत् । सा च रूपकलारंभा तयोः पाणिग्रहः कृतः ॥३१५॥ एकदा मातरं दृष्ट्वा रुदंतीं

जो कि सागरके समान अपरिमित धनका स्वामी था, गंभीर था, पराक्रमी था एवं राज्यमान्य और विद्वानोंमें श्रेष्ठ था ॥ ३१० ॥ उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था और वह सेठ सागरदत्तके मनरूपी (रात्रिविकासी) कमलके प्रसन्न करनेमें चांदनी सरीखी थी । चन्द्रमाके समान मुख वाली थी । विचारशील तन्वंगी और कठिन स्तनोंसे शोभायमान थी ॥ ३११ ॥ उसी नग रीमें एक सुभद्रदत्त नामका और भी सेठ निवास करता था जो कि उत्तम क्रियाओंके करनेमें प्रधान था और धर्मकार्योंके करनेमें अत्यंत बुद्धिमान समझा जाता था । उसकी स्त्रीका नाम अछिदत्ता था जो कि निर्मल मुखसे शोभायमान थी ॥ ३१२ ॥ दोनों सेठोंने आपसमें प्रतिज्ञा करली थी कि यदि मेरे पुत्र होगा और तुम्हारे पुत्री होगी अथवा मेरे पुत्री होगी और तुम्हारे पुत्र होगा तो उन दोनों का आपसमें विवाह कर दिया जायगा इसमें कोई संदेह नहीं । इस प्रतिज्ञाके बाद बहुत कालके वीत जानेपर सेठ सागरदत्तके सेठानी सुमित्रासे एक पुत्र हुआ जिसका नाम सुमित्र रक्खा गया और उसका स्वरूप सर्प सरीखा था । तथा सेठ समुद्रदत्तके सेठानी अछिदत्तासे उत्पन्न एक पुत्री हुई जो कि रूप और कलाकी खानि थी और नागदत्ता उसका नाम था । प्रतिज्ञाके अनुसार उन दोनोंका विवाह हो गया और वे अपने भाग्यानुसार रहने लगे ॥ ३१३—३१५ ॥ नागदत्ताकी मा

३०४ ॥ राज्ञया कृतं नृपः श्रुत्वारीरणद्राविपाननां । इदं कर्म न कर्तव्यं त्वया निंद्यं च दुःखदं ॥ ३०५ ॥ चेरवं धर्मवती जैनी कृपापालन-पडिता । ज्वालयेस्त्वं कथं जीवान् करभोरु ! विचारय ॥ ३०६ ॥ तदा स्मित्वाऽवदद्राज्ञी शृणु गंभीरशासन ! मयेत्यवगतं मोक्षं गताः संति प्रबोधकाः ॥ ३०७ ॥ कलेवरान् यदेष्यंति तदा संसारवर्तिनः । संसारे वर्तते दुःखं यतो ज्वालयितं गृहं ॥३०८॥ (युग्मं) एतस्योपरि वृत्तांतं गदामि शृणु भूपते ! । वत्सदेशेऽस्ति विख्याता कौशांबी नगरी शुभा ॥ ३०९ ॥ वसुपालोऽस्ति तद्राजा भामिनी

आगको देखते ही वे समस्त साधु मठ छोड़कर एकदम भाग गये। रानी चेलिनीके इस कृत्यका पता महाराज श्रेणिकको लग गया वे शीघ्र रानीके पास आये और इसप्रकार उससे कहने लगे—

रानी ! साधुओंके मठमें जो तूने आग लगाई है यह वड़ा ही निंदनीक और दुःखदायी कार्य किया है ऐसा निंदनीक और दुःखदायी कार्य तुझे नहीं करना चाहिये। तूतो जैनधर्मकी पालन करने वाली और दया करनेमें पंडिता समझी जाती है जरा वता तो सही तूने मठको जलाकर जीवोंके विध्वंस करनेका कार्य कैसे कर डाला ? महाराजके ये वचन सुन मुस्कराकर रानीचेलिनीने कहा

नरनायक प्राणनाथ ! एक मनुष्यके कहे अनुसार मैंने यह समझा था कि ये समस्त साधुगण मोक्षमें चले गए हैं। तथा यह निश्चित बात है कि जबतक शरीरोंके अन्दर लालसा रहती है तब तक संसारमें घूमना पड़ता है और संसारमें अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। उनका यह समस्त दुःख नष्ट हो जाय इस आशासे मैंने उनके मठमें आग लगवा दी थी। मैं इसी विषय को लेकर एक कथा सुनाती हूं आप ध्यान पूर्वक सुनें—

वत्सदेशमें एक कौशांबी नामकी नगरी है जो कि पृथिवीपर प्रसिद्ध और शुभ है। किसी समय उसका पालन करने वाला राजा वसुपाल था और उसकी रानीका नाम यशस्विनी था जिस की कि कीर्त्ति अनुपम गुणोंसे सर्वत्र व्याप्त थी एवं वह संसारमें प्रसिद्ध और हरिणीके समान मनोहर नेत्रवाली थी ॥ ३०२—३०६ ॥ उस नगरीमें एक सागरदत्त नामका सेठ भी रहता था

तदा निर्मथ्य बौद्धौघानुपानत्सदीया तथा । क्षिप्ता नीरनेऽथ भुज्ये च ततो वांतं हठादिति ॥ ३०१ ॥ बौद्धसंघात्ततः श्रुत्वा राज्ञोपालं-भिता च सा । शृणु राज्ञि ! महाधर्मादन्यो धर्मो न विद्यते ॥ ३०२॥ ततो जगाद सा भामा परीक्ष्य ध्यानसंस्थितान् । क्षणिकत्वाद्गुरून् बौद्धान् करिष्ये तावकं वृषं ॥ ३०३ ॥ अन्यदा सा गता तेषां ध्यानकाले कलान्विता । सख्या संज्वालयामास तद्गृहं तैः पलायितं ॥

कहा; कि बौद्धगुरु तो सर्वज्ञ हैं वे अपने दिव्य ज्ञानसे समझें कि उनके जूते कहां है ? रानीके ये :वचन सुन बौद्धगुरु अवाक् रह गये। झक मार उन्हें यही कहना पड़ा कि हमारा ज्ञान ऐसा नहीं जो यह बात जान सके। थोड़ी देर वाद निकृष्ट छाछ खानेके कारण उन्हें वमि हो गई। वमिमें जूतोंके छिलके निकले इसलिये वे बड़े लज्जित हुए और चुप चाप अपने मठोंको चले गये॥३०१॥ रानीने बौद्धगुरुओंका जो अपमान किया था सारा महाराजसे जाकर सुनाया गया। अपने गुरुओं की यह अवज्ञा सुन उन्हें भी बड़ा क्रोध आया वे रानीके पास आये और उलहनोंके साथ उल्टी सीधी सुना कर यही कहने लगे देखो रानी ! बौद्धधर्मही महाधर्म है उससे भिन्न अन्य कोई भी संसारके अन्दर उत्तम धर्म नहीं। तुम्हें उसकी इसरूपसे अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। महा राजको कुपित देख रानी विशेष कुछ न कह कर यही कहने लगी—महाराज ! यदि आप बौद्धधर्मको ही सर्व श्रेष्ठ धर्म मानते हैं तो अच्छी बात है 'क्षणिक धर्मके अनुयायी बौद्ध गुरु जिससमय ध्यानमें लीन होंगे उस समय मैं उनकी परीक्षाकर आपका धर्म धारण करूंगी आप विश्वास रक्खें।

एक दिन जब कि समस्त बौद्धसाधु ध्यानमें लीन थे उस समय रानी चली उनके मठमें गई। पासमें खड़े रहने वाले किसी मनुष्यसे यह सुनकर कि "यद्यपि इन साधुओंके शरीर यहां पड़े दीखते हैं परंतु इनकी आत्मा ध्यानके योगसे इससमय सिद्धालयमें विराजमान है" उनकी असली परीक्षा करनेके लिये रानीने सखीके हाथसे मठमें आग लगवादी। ढोंग कबतक चल सकता है ?

८

भूपती राज्ञि ! कुरु पूजादिकं सदा । दुःखं मुक्त्वोन्मनी भूत्वा कुरु धर्मं यथारुचि ॥ २६७ ॥ श्रेणिकाद्बौद्धमंत्री हि श्रुत्वा राज्ञया-ग्रहं तदा । प्रतिबोधनहेतुत्वादागमच्चेलिनीगृहे ॥ २६८ ॥ प्रोवाच शृणु भो बाले ! जैनाः कुगुरवो मताः । जैना नग्नाः पशवोऽपि स्यु-र्वयं ज्ञानाब्धिपारगाः ॥ २६६ ॥ तदा बभाण राज्ञी तं नावको धर्म ईदृशः । चेद्भवेद्भोजयित्वाऽहं गृहीष्यामि न संशयः ॥ १०० ॥

कुछ भी न कह कर यही कहा प्रियरानी ! तुम इच्छानुसार अपने देव जिनेंद्रकी पूजा आदि करो दुःख छोड़ो एवं जिसरूपसे तुम्हें रुचे एकाग्रचित्त हो अपने धर्मका आराधन करो ॥ २६७ ॥ राजा श्रेणिकसे बौद्धगुरुओंने सुना कि महारानी चेलनीको जैनधर्मके अन्दर बड़ा आग्रह है इस लिये वे चेलनीके महलमें उसे समझानेके लिये आये और अपनी गुरुता प्रगट करते हुए यह कहने लगे--

अरे मूर्ख लड़की ! तू जो जैन गुरुओंकी प्रशंसा करती है यह तेरा अज्ञान है । जैनियोंके गुरु कुगुरु हैं । यदि उन्हें नग्न मानकर ही गुरु माना जाय तो नग्न तो पशु भी हैं उन्हें भी गुरु मानना चाहिये । देख हमलोग ज्ञानरूपी समुद्रकी पारपर पहुँचे हुए हैं--परम ज्ञानी हैं इसलिये हमको ही तुझे गुरु समझना चाहिये । बौद्धगुरुओंके वचन सुन बुद्धिमती रानी चेलनीने विशेष विवाद करना उचित नहीं समझा बस यही उत्तर दिया कि यदि आपका धर्म इतना उत्तम है तो मैं आप लोगोंको भोजन कराकर आपका धर्म ग्रहण करूंगी इस बातमें जरा भी संदेह नहीं ॥ २६६—३०० ॥ दूसरे दिन रानीने बौद्धसाधुओंको निमन्त्रण दे भोजनके लिये बुलाया । उन्हें भोजनके लिये विठा दिया । एक एक जूता उनका उठवा मगाया । खूब पीसकर उसे निकृष्ट छाछ में डाल मसाला मिला दिया और थोड़ा थोड़ा कर सबोंको परोस दिया गया । वे भी कोई स्वादिष्ट चीज जान खा गये । जब बाहिर आकर अपने मठको जाने लगे तो जूते खोजने लगे । गुरुओंके जूतोंकी चोरीका राजमहलमें हुल्लड़ मच गया । रानी चेलनीने भी वह हुल्लड़ सुना । उसने यही

श्रुत्वा रराण राजेंद्रः शृणु सर्वज्ञि ! मद्वचः । जाठराग्निर्महाधर्मो यस्माद्राज्यं सुखं धनं ॥ २९३ ॥ प्रोवाच चेलिनी दक्षा जिनः स्याद्वादनायकः । रागद्वेषविनिर्मुक्तो ध्यानलीनो निरंजनः ॥ २९४ ॥ केवलज्ञानसर्वज्ञः ततुं तारयितुं क्षमः । तत्समो न भवेदन्यो देवः शौद्धोधनादिकः ॥ २९५ ॥ निर्ग्रंथगुरुभिस्तुल्या नापरे गुरवो मताः । संस्थाप्य सुमतं बौद्धमतं निर्भर्त्स्य सा स्थिता ॥ २९६ ॥ प्रोवाच

उसकी स्त्री रोहिणी विधवा ही मानी जाती है अर्थात् परमतमें राहुको केवल शिरस्वरूप ही माना है इसलिये रोहिणीके लिये उसका रहना न रहना एकसा है उसीप्रकार विना धर्मके मेरा महाराणीपद भी व्यर्थ है। तथा जो शूद्र पतित हैं उनकेलिये वेद पढ़नेका अधिकार नहीं यदि वे पढ़ें तो उनका पढ़ना निकृष्ट माना जाता है उसीप्रकार मैं पवित्र वेदस्वरूप हूं यह घर पतित शूद्रस्वरूप है इसलिये मेरा यहां रहना अयुक्त है अतः राजगृहमें आना मेरा बड़ा दुःखदायी हुआ। महाराणी चेलिनीके ऐसे वचन सुन उत्तरमें महाराजने कहा—

हिरणीके समान नेत्रवाली महाराणी। जिसतरह तुम जैनधर्मको ही धर्म समझ रही हो उस प्रकार मेरा भी यह दृढ़ सिद्धांत है कि संसारमें बौद्धधर्म ही महाधर्म है। उससे बढ़कर कोई धर्म नहीं क्योंकि राज्य सुख धन जितने भी उत्तम पदार्थ हैं इस बौद्धधर्मकी ही कृपासे प्राप्त होते हैं। महाराणी चेलिनीको जैनधर्मका परिपूर्ण श्रद्धान था महाराजकी बात उसे सहन न हो सकी इस लिये उसने शीघ्र ही उत्तर दिया—राजन् ! भगवान जिनेंद्र स्याद्वाद-अनेकांत वादके स्वामी हैं। राग द्वेषसे रहित हैं। ध्यानमें लीन हैं। केवल ज्ञानसे युक्त होनेसे सर्वज्ञ हैं। स्वयं तरनेवाले और दूसरोंको भी तारनेवाले हैं। भगवान जिनेंद्रके समान बौद्धधर्मके शौद्धोधन आदि देव नहीं हो सकते ॥ २९०—२९५ ॥ तथा जैनधर्मके अन्दर परिग्रहरहित निर्ग्रंथ गुरु माने जाते हैं। निर्ग्रंथ गुरुओंके समान संसारमें अन्य गुरु नहीं हो सकते बस इसप्रकार अपने मत-जैनमतका स्थापन कर और बौद्धमतका खंडनकर महाराणी चेलनी शांत रह गई ॥ २९६ ॥ महाराज श्रेणिकने भी

जिनमत्यभिधागारे चोपयम्य सुखं स्थितः ॥ २८७ ॥ अथैकदा नृपस्यैवं दृष्ट्वाऽऽचारविवर्जितं । धर्मं बौद्धमयं चित्ते रुरोद गद्गदस्वरा
॥ २८८ ॥ पंडितैरभयैर्नूनं वंचिता मास्मदिता । किंकरोम्यधुना धर्माद्विना व्यर्थं हि जीवितं ॥ २८६॥ नो भुनक्ति न वक्ति सा कृशीभूत-
मुपागता । दृष्ट्वा पप्रच्छ राजेंद्रः कस्मात्त्वं दुर्बलासि भो ॥ २६० ॥ चेलिनी प्राह हे नाथ ! कुस्थाने पतितास्म्यहं । जैनधर्मं विहा-
न्यो धर्मो नैवास्ति भूतले ॥ २६१ ॥ त्वद्गृहेऽहं समायाता गंगांमश्च श्वचर्मणि । मूर्निश्च वैधवी राहौ पतच्छूद्रेषु सुश्रुतिः ॥ २६२ ॥

पुरकी ओर चल दिये ॥ २८२—२८६ ॥ चेलिनीके साथ कुमार अभयका आना सुन महाराज श्रेणिक अनेक सामंतोंसे वेष्टित हो उनके सन्मुख आये । जिनमती नामके मंदिरमें चेलिनीके साथ उनका पाणिग्रहण हो गया जिससे वे सुख पूर्वक रहने लगे ॥ २८७ ॥

एक दिन महाराणी चेलिनी गृहस्थोंके आचारसे रहित बौद्धधर्मको आचरण करते महाराज श्रेणिकको देखकर चित्तमें बड़ी दुःखित हुई एवं गद्गद स्वरसे इसप्रकार रोने लगी—हा काम की व्यथासे पीडित मुझे चतुर अभय कुमारने ठग लिया । बातोंमें फुसलाकर विधर्मी राजाके साथ मेरा विवाह करा दिया । धर्मकी यहां कुछ भी मर्यादा नहीं सूझ पड़ती इसलिये मैं इस समय क्या करूं ? क्योंकि विना धर्मके जीवन विफल है ॥ २८८—२८६ ॥ वस अत्यंत दुःखित हो उसने खाना बोलना सब छोड़ दिया जिससे वह एकदम दूर्बल हो गई । उसकी ऐसी दुःखदायी अवस्था देख महाराज श्रेणिकने पूछा-- प्रिये ! क्या कारण है जो तुम दिनों दिन दुर्बल होती चली जाती हो ? उत्तरमें चेलनीने कहा—प्राणनाथ ! मेरा विवाह तो हुआ परंतु मैं निकृष्ट स्थानमें लाकर डाल दी गई क्योंकि सिवाय जैनधर्मके संसारमें अन्य कोई भी धर्म नहीं सब धर्माभास हैं । राजन् ! जिसप्रकार महानिकृष्ट कुत्तेके चमड़ेमें गंगाजल सरीखा पवित्र जल भर दिया जाता है,कौन पदार्थ कैसा है ? तनिक भी विचार नहीं किया जाता उसीप्रकार कुत्तेके चाम के समान आपके घरमें मैं गंगाजल सरीखी आगई हूं तथा जिसप्रकार राहुके विद्यमान रहने भा

पचितीं कर्तुं स्थिनस्तावद्विलोकने। तिस्रः कन्याः समायाताः पप्रच्छुस्तं विशांवरं ॥ २८२॥ भो मकरध्वजाकाराश्चागतिर्भवतां कुतः। राजगृहात्समायातास्तत्र श्रेणिकभूमिपः ॥ २८३ ॥ कीदृशो भूपतिः सोऽस्ति तदा पट्टं प्रसार्य सः। अदर्शयत्तदा दृष्ट्वा कन्यकाः कीलिता इव ॥ २८४ ॥ प्रोचुर्भो जैनसद्धर्मश्चेदृशो हि वरः कुतः। तदीयमिंगितं मत्वा सुरंगायां मिषं व्यधात् ॥ २८५ ॥ हारमौद्रिकमिषेण ज्येष्ठा वै चंदना गता। तामादाय तदा विद्वां चेलनां स्वपुरं ययौ ॥ २८६ ॥ सन्मुखं श्रेणिको भूपो गत्वा सामंतसंयुतः।

पूजा कर रहे थे। राज महलके समीप होनेसे बराबर शब्द रणवांसतक पहुंचता था। पूजाकी ध्वनि सुन ज्येष्ठा चन्दना और चेलनी तीन कन्यायें चलीं आईं और कुमार अभयसे इसप्रकार पूछने लगीं—

कामदेवके समान आकृतिके धारक महानुभाव। आपका यहांपर आना किस देशसे हुआ है? उत्तरमें कुमारने कहा-हम लोग राजगृह नगरसे आये हुए हैं जहांपर कि महाराज श्रेणिक न्यायपूर्वक प्रजाका अच्छीतरह पालन करते हैं। कन्याओंने फिर पूछा-महाराज श्रेणिक कैसे राजा हैं? कुमार अभयने उनके सामने महाराज श्रेणिकका चित्रपट फैला दिया एवं स्पष्टरूपसे उनका स्वरूप दिखा दिया जिसे देख तीनों कन्यायें इसरूपसे निश्चल खड़ी रहगईं मानों कील दी हैं एवं इसप्रकार खेद प्रगट करतीं बोलीं—हे परम जिनधर्मी महानुभाव! हमें इसप्रकारके उत्तम वरकी प्राप्ति कहां हो सकती है। बुद्धिमान कुमार अभय उनके मनका भाव पहिचान गये एवं "मैं महाराज श्रेणिकसे मिला सकता हूं" ऐसा वायदा कर पहिले ही से अपने मकानसे राज महलतक जो सुरंग खुदवा रक्खी थी उससे आनेका इशारा कर दिया। रूपकी लोलुपी वे कन्यायें सुरंगमें होकर अभय कुमारके मकानकी ओर चलदीं परंतु आते आते ज्येष्ठा और चन्दनाको कुछ संदेह होगया इसलिये ज्येष्ठा हार लेनेके बहाने और चन्दना अपनी मुद्री लेनेके बहानेसे पीछे लौटगईं। अकेली विचारी चेलना रह गई। कुमार अभयने उसे अपनी ओर खींच लिया एवं उसे साथ लेकर राजगृह

र्यथा वे रोचते तुभ्यं करिष्यामि तथाहकं ॥ २७५ ॥ श्रुत्वाऽभयवचो राजा रराणेति सुतं प्रति । हे सन् ! देहज ? सोऽप्यस्ति जैन-धर्मेण रंजितः ॥ २७६ । अतो दास्यति नो मह्यं बौद्धधर्माय केवलं । ततोऽब्रवीत्सुतो धीरः करिष्येऽहमुपायकं ॥ २७७ ॥ सार्थवाहाधिपो भूत्वा जैनधर्मधुरंधरः । जैनलोकैः समं शुभ्रो विशालायां ययौ मिपात् ॥ २७८ ॥ सरत्नं प्राभृतं नीत्वा मिलितं चेटकस्य सः । सन्मान्य चेटको भूपो व्याजहार गिरं वरं ॥ २७९ ॥ स्थीयतामत्र पुर्यां भो भवद्भिः परमार्थिभिः । अस्माकं वल्लभा जैना मित्राणि धनबांधवाः ॥ २८० ॥ अत्याग्रहं नृपस्यैव मत्वा मंदिरसन्निधौ । गृहं संप्रार्थयामास तत्र सस्थितवांस्तदा ॥ २८१ ॥ एकदा

रुचेगी मैं उसे पूरी करदूंगा । कुमार अभयके ये वचन सुन पुनः महाराजने कहा-प्यारे पुत्र ! तुम अवश्य बुद्धिमान हो और हरएक कार्य कर सकते हो परंतु तुम्हारे लिये यह कार्य करना कठिन होगा क्योंकि राजा चेटक जैनधर्मका भक्त है और मैं बौद्ध धर्मका सेवक हूं इसलिये विधर्मी जान मुझे वह अपनी कन्या न दे सकेगा । धीर वीर कुमारने उत्तर दिया आप चिंता न कीजिये जिस रूपसे बनेगा मैं चेलनीकी प्राप्तिका ठीक उपाय करूंगा ॥२७३—२७७॥ बस परम जिनधर्मी उस कुमारने क्या काम किया कि अनेक व्यापारियोंका स्वामी बन और कुछ जैनलोगोंको साथ लेकर छलसे विशाला पुरीमें जा पहुंचा । रत्नमयी भैंट लेकर वह राजा चेटकसे मिला । राजा चेटकने भी कुमारका पूर्ण सन्मान किया एवं इसप्रकार मनोहर वचनोंमें बात चीत की—

आप महानुभाव मोक्षप्राप्तिके अभिलाषी धर्मात्मा हैं । मेरी इस पुरीमें आप ठहरें क्योंकि जो महानुभाव जैनी हैं । जैनधर्मका पालन करते हैं वे हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं । मित्र हैं और धन एवं बांधव भी वे ही हैं । कुमार अभय अत्यंत चतुर व्यक्ति थे राजा चेटकका जब उन्होंने यह आग्रह देखा तो उन्होंने राजमहलके पास ही ठहरनेके लिये मकान लेनेकी प्रार्थना की । राजा चेटकने धर्मात्मा जान उनकी प्रार्थना स्वीकार करली एवं वे सानंद वहां ठहर गये ॥२७८-२८१॥ एक दिन कुमार अभय अपने साथियोंके साथ उत्साह पूर्वक बड़े उच्चस्वरसे भगवान जिनेंद्रकी

विशालायां चेटकस्य सुभद्रिका । तत्पुत्री चेलिनी नाम्ना निम्ननाभिः कृशोदरी । २७० । प्रौढोन्नतनितंबा च बिम्बोष्ठी माररंजिनी । विशालहृदया चन्द्रवक्त्रा वचनभारती ॥ २७१ ॥ इत्यादिवर्णनोपेतां श्रुत्वा श्रेणिकभूपतिः । चिंतयामास चित्ते स्वे चित्रं शल्यायते नृणां ॥ २७२ ॥ समायातस्तदा तत्र सभायाममयाह्वय: । दृष्ट्वा तातं सदुःखं च तन्निरूपय वेगतः ॥ २७३ ॥ मनोगतं तदा राज्ञा प्रोक्तं च दुस्तरं वचः । श्रुत्वाभयकुमारो हि प्रावोचन्नरनायकं ॥ २७४ ॥ शृणु नाथ ! कृपाधार ! मा चिंतां कुरु सर्वथा ।

होनेपर उन्होंने भरतसे पूछा—कहो भाई ! चित्रमें अङ्कित यह मनोहर रूप किसका है ? महाराजको अपने अनुकूल समझ भरतने बड़े आदरसे कहा--राजन् ! आप सुनिये मैं समस्त वृत्तांत कहता हूं— 22689

सिंधुदेशकी विशाला नगरीके स्वामी राजा चेटक हैं उनकी पटरानीका नाम सुभद्रा है उससे उत्पन्न एक चेलिनी नामकी कन्या है जो कि गंभीर नाभिकी धारक है। कृशोदरी है ।प्रौढ़ और उन्नत नितंबवाली है। बिंबाफलके समान ओष्ठवाली, कामदेवके आनंदकी भूमि, विशाल हृदयको धारण करनेवाली चन्द्रमुखी एवं साक्षात् सरस्वती सरीखी है उसीका चित्र यह आपके सामने विद्यमान है । चित्रकार भरतसे इस दिव्य वर्णन युक्त कन्याको सुनकर महाराज श्रेणिक मन ही मन गहरी चिंतामें लीन हो गये । ठीक ही है चित्र भी मनुष्योंको शल्य (कील) के समान दुःख देता है अर्थात् कीलके गढ़ जानेपर जिसप्रकार गहरी वेदनाका अनुभव होता है उसीप्रकार चित्र भी हृदयमें चुभ जानेपर विशेष दुःख भुगाता है ॥ २६९—२७२ ॥ जिस समय महाराज चिंतामें लीन थे उसी समय कुमार अभय राज सभामें आये एवं अपने पूज्य पिता महाराजको दुःखित और चिंतित देख जल्दी उस दुःख और चिंताका कारण पूछने लगे—महाराजके मनमें जो बात थी उन्होंने कह दी एवं यह भी कहा कि यह बात होनी कठिन है । धीर वीर कुमार अभयने नरोत्तम महाराजको उत्तर दिया--दयालु पिता ! तुम्हें तनिक भी चिंता न करनी चाहिये जो बात आपको

सुलक्षणं। दर्शयामास भूपाय दृष्ट्वा भूपो ननंद तत् ॥ २६३ ॥ अन्यदा कन्यकास्तिस्रः संप्राप्य चित्रकारकं । विचित्रत्वाद्विहस्यैव प्राहुरेवं वचोवरं ॥ २६४ ॥ भो भो त्वं चेलिनीरूपं नग्नं चित्रय शीघ्रतः। चित्रितं तेन सद्रूपं गुह्यस्थैस्तिलकैर्युतं ॥ २६५ ॥ कर्णेजपं केनापि प्रोक्तं चेटकसन्निधौ। देवानामपि दुर्लक्ष्यं गुप्तं जानात्ययं कुतः ॥ २६६ ॥ श्रुत्वा महेर्ष्यया राजा चुकोप भ्रमसंगतः। तदा राज्ञः प्रकोपेण नष्टोऽसौ चित्रकृद्भयात् ॥ २६७ ॥ गत्वा राजगृहे रम्येऽदर्शयत् श्रेणिकाय तत्। दृष्ट्वा रूपं तदा राजा चित्रार्पित इवाभवत् ॥ २६८ ॥ स्वस्थो भूत्वा पप्रच्छेति कस्य रूपमिदं वद। अनुकूलं नृपं ज्ञात्वाऽचीकथत् शृणु चादरात् ॥ २६९ ॥ सिंधुदेशे

जो कि चित्रकलाके गुणोंसे युक्त थी तथा महाराज चेटकको दिखाई जिसे देख राजा चेटक भरत की चित्रकलाकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ २६१—२६३ ॥ किसी दिन ज्येष्ठा आदि तीनों कन्याएं मिलकर चित्रकार भरतके पास गईं एवं एक विचित्रप्रकारकी हंसी हँसकर इसप्रकार उससे कहने लगीं—

चित्रकार ! हम जब तुम्हारी चित्रकलादिकी निपुणता समझें जब तुम कुमारी चेलनीका नग्नरूप शीघ्र चित्रित कर दो। चित्रकार भरतको यह बात कोई कठिन न थी, देखते देखते उसने चित्र बनाकर तयार कर दिया एवं महाविद्याके प्रभावसे जो भी चेलनीके गुप्तस्थानोंमें तिल आदि चिह्न थे सब उस चित्रमें अङ्कित करदिये ॥ २६४—२६५ ॥ संसारमें चुगल खोरोंकी कमी नहीं चेलनीका वह नग्नचित्र देखकर एक चुगुलखोर शीघ्र राजा चेटकके पास पहुंचा और यह कहने लगा—राजन् ! चेलनीके गुह्य स्थानोंके चिह्नोंको देव भी नहीं देख सकते उन्हें यह आपका चित्रकार कैसे जानता है ! यह बड़ी विचित्र बात है ॥ २६६ ॥ चुगुलखोरकी यह बात सुन राजा चेटकको भी भरतपर संदेह हो गया इसलिये वह विनाही विचारे प्रबल ईर्षासे कुपित हो गया। राजाके क्रोधका पता चित्रकार भरतको भी लग गया। मारे भयके वह एकदम कंपगया और शीघ्र ही राजगृह नगरके लिये रवाना हो गया। राजगृहमें जाकर कन्या चेलिनीका चित्र महाराज श्रेणिकको दिखाया जिसे देख वे चित्राम सरीखे निश्चल हो गये ॥ २६७--२६८ ॥ कुछ देर वाद स्वस्थ

यतः ॥ २५७ ॥ भरतो देशमध्ये हि प्रसिद्धीभूयमागतः । चित्रसत्कलया लोकान् रंजयन् सदने स्थितः ॥ २५८ ॥ सद्युक्ते सिंधुदेशे वै विशाला नगरी मता । चटकाख्यः पतिस्तस्य सुभद्रा महिषी मता ॥ २५९ ॥ तस्यैव सप्तसत्पुत्र्यो विंबोष्ठ्यः स्मरवल्लभाः । यासां मध्ये प्रियादत्ता सिद्धार्थाय सुभूभुजे ॥ २६० ॥ द्वितीया च पिनाकाय तृतीया दशरथाय च । प्रभावती चतुर्थी तु महानुदयिने तथा ॥ २६१ ॥ कुमारिका हि विद्यते तिस्रः कन्याः प्रभाभराः । एकदा तत्र चायातश्चित्रकृद्भरताभिधः ॥ २६२ ॥ रूपं यत्सप्तपुत्रीणां पट्टे कृत्वा

प्रिय वत्स! जिस वरके मागनेके लिये तुम्हारी रुचि हो उस वरको मागो मैं तुमसे प्रसन्न हूं। उत्तरमें भरतने कहा महामाता! मुझे इसप्रकारकी चित्र शुद्धि प्रदान करिये जिस चित्रशुद्धिकी कृपासे विना देखे हुए पदार्थको भी पटपर अङ्कित कर सकूं। तथास्तु, कह कर महाविद्या सिद्धि हो गई। उस महाविद्याके प्रभावसे चित्रकार भरतकी सारे देशमें ख्याति हो गई एवं अपनी चित्रकलासे समस्त लोकको आनंदित करता हुआ वह सानंद अपने घर रहने लगा ॥ २५५—२५८ ॥

अनेक सज्जनोंसे व्याप्त सिंधु देशमें एक विशाला नामकी नगरी है। उस समय उसका पालन करनेवाला राजा चेटक था और उसकी मुख्य पटरानी सुभद्रा थी। महाराणी सुभद्रासे उत्पन्न सात पुत्रियां थीं जो कि बिंबाफलके समान लाल ओठोंकी धारक थीं और कामदेवकी परम प्यारी थीं। सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियादत्ता था और उसका कुण्डलपुरके स्वामी नाथवंशीय राजा सिद्धार्थके साथ विवाह हुआ था ॥ २५९—२६० ॥ दूसरी कन्या मृगावतीका विवाह वत्स देशके कौशांबीपुरके स्वामी महाराज पिनाकके साथ हुआ था। तीसरी कन्या वसुप्रभा थी और उसका विवाह दशार्ण देशके हेरकच्छपुरके स्वामी राजा दशरथके साथ हुआ था तथा चतुर्थ कन्या प्रभावतीका विवाह कच्छदेशके रोरुकपुरके स्वामी महाराज महानुदयीके साथ हुआ था। बाकी ज्येष्ठा चन्दना और चेलना ये तीन कन्या अभीतक अविवाहित थीं। प्रसिद्ध चित्रकार भरत घूमता २ एक दिन विशाला नगरीमें आ पहुंचा। एक पट्टपर उसने सातो कन्याओंकी तसवीर अंकित की

न्यायार्थमंजसा ॥ २५० ॥ मनःप्रसन्नतां कृत्वा जगादाभयपंडितः । उद्दालकस्य रंध्रे यो द्वयोर्मध्ये, सुनिःसरेत् ॥ २५१ ॥ स स्याद्भद्रा पतिर्नूनं निर्गतं तं व्यताड़यत् ॥ २५२ ॥ (षट्पदी) पूर्वस्मै हलिने दत्वा भद्रामभयपंडितः । तद्दिनाद्विप्रसिद्धोऽभूत् न्यायी सप्रतिभः प्रदः ॥ २५३ ॥ श्रेणिकोक्तं समाकर्ण्य कूपांतपतितां शुभां । निष्कास्य मुद्रिकां बुद्ध्या प्रसिद्धोऽभूद्धिशेषतः ॥ २५४ ॥ अथैकदाऽमरावत्यां चित्रकृद्भरताभिधः । पद्मावतीं महाविद्यां साधयामास तद्वते ॥ २५५ ॥ प्रसिद्धीभूयमागत्य प्रावोचत्फणिशेखरा । याचस्व त्वं वरं वत्स ! मनोऽभीष्टं यथारुचि ॥ २५६ ॥ श्रुत्वाऽवोचन्महामातर्देहि मे चित्रशुद्धतां । यया (थ) शुद्धया भवेत्सिद्धिर्द्दृष्टं लिख्यते

मश्रान रूपके धारक थे इसलिये दोनोंका आपसमें झगड़ा होने लगा इसलिये अपना न्याय कराने के लिये चलते चलते वे राजगृह नगर आ गये ॥ २४८ ॥—२५० ॥ सब झगड़ोंका निबटेरा प्रायः कुमार अभय ही करते थे जिससमय वे दोनों कुमारके पास आये, उनको प्रसन्नकर कुमारने कहा देखो भाई । तुम दोनोंमेंसे जो इस तूंबीके छेदमें होकर बाहर निकल जायगा वही भद्राका पति समझा जायगा । यह काम करना असली बलभद्रकी शक्तिके तो बाहिर था कुमारकी बात सुनते ही नकली बलभद्र वसन्त देखते देखते छेदमें घुसकर बाहिर निकल गया बस कुमारने उसे ही अपराधी समझ पकड़ लिया और दण्ड दिया ॥ २५१—२५२ ॥ कुमार अभयने अपनी बुद्धिकी चतुरतासे असली बलभद्रको भद्रा दे दी । इस न्यायके बाद कुमार अभय, अत्यंत बुद्धिमान प्रसिद्ध न्यायी माने गये ॥ २५३ ॥ किसी दिन जलरहित कूवेमें एक अङ्गूठी गिर गई महाराज श्रेणिकने बिना किसी लागके कुमारको निकालनेके लिये आज्ञा दी कुमारने अपनी बुद्धिमानीसे बिना किसी लागके उसे बाहिर निकाल दिया इसलिये कुमारकी उस दिनसे और भी विशेष प्रसिद्धि हो गई ॥ २५४ ॥

अमराबतीमें उस समय एक भरत नामका चित्रकार भी रहता था एक दिन जंगलमें जाकर उसने महाविद्या सिद्ध करनेके लिये पद्मावती देवीकी आराधना की । जिससमय वह विद्या सिद्ध हो गई तो नागोंका मुकुट धारणकर वह प्रत्यक्ष हुई और स्नेहमय वचनोंमें इसप्रकार कहने लगी

विमल० ४७

मानसे ॥ १४३ ॥ एकदा तत्र दुष्टस्त्रैव समायातं कपालिनं । लोकैः सुपूजितं रुद्रं स्वकामेन ननाम सः ॥ १४४ ॥ भक्त्या तं तोषयन्नि
त्यमोदनैर्व्यंजनै रसैः । मोदकैः खज्जकैः पूपैः कार्यार्थी किं करोति न ॥ २४५ ॥ दृष्ट्वा संतुष्यमानं तं याचते स्वमनोप्सितं । बहुरूपि-
[illegible]
॥ २४७ ॥ बलभद्रस्तदा प्रातर्ज्ञात्वा क्षेत्रं ययौ यदा । चतुष्पाद्वारणार्थं वै तत्र यं धृतवान् मधुः ॥ २४८ ॥ मध्ये सद्म गतो धृष्टो ज्ञातो
[illegible]

भद्रा उसके हाथ न आई इसलिये वह अपने मनमें बड़ी चिंता करने लगा ॥ २४३ ॥

[illegible] पास गया । [illegible] तुष्ट हो गया [illegible] कि सवेरा हो [illegible]

घरके भीतर घुस गया । चतुर भद्राने चाल ढालसे निश्चय कर उस दुष्टको पहिचान लिया इस
लिये उसने चिल्लाना प्रारंभ कर दिया । विशेष हुल्लड़ सुन बलभद्र वापिस लौट आया । दोनों ही

पुराण

४७

लुरूपिणं दृष्ट्वा कामवाक्यैर्मुनिं जगौ। भो भो रूपकलागार! स्त्रीणामाशां प्रपूरय ॥२३७॥ किं ध्यानेन व्रतेनैव लेक्षि त्वं स्मरमंदिरं। श्रुत्वैवं कटुकं वाक्यं बभाण मुनिरात्मवान्॥ २३८॥ रे रे रण्डेऽबले! बाले! कथं वदसि दुर्वचः। भर्तारं चलितं मुक्त्वा रमसे त्वं

[illegible]

त्पापं तस्मश्च नरकं व्रजेत्। रौद्रदुःखं कि [illegible] ॥ २४१ ॥ [illegible] मुनिः। इत्थं
अरी रांड मूर्ख अबला! ऐसे कड़वे वचन क्यों तू अपने मुखसे निकालती है। तुझे लज्जा
विचार्य सद्व्रतं गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥ २४२ ॥ पुनस्तेन तथा दृष्ट्वा द्रव्येण स्वस्य [illegible]। नागता भद्रका मत्वा चिंतयामास
नहीं आती कि शक्तिमान भी अपने स्वामीको छोड़कर तू दूसरोंके साथ रमण किया करती फिरती
है। [illegible]

[illegible]

विचारने लगी कि यह मुनि हमारे पापकी बात कैसे जानता है? बस उसी समय उसने शीलव्रत धारण
कर लिया और अपने घर चली आई ॥ २४२ ॥ वसंत रोजकी तरह भद्राके घर गया परंतु उसने

नगरमायान्तु तं तथा ज्ञात्वा तस्मै ददौ मुदा । परीक्ष्यान्यायकर्तारं मत्वा न्यायं ददौ तुजे ॥ २३३ ॥ अथैकदामरावत्यां कुटुंबी वलभ-
द्रनाम् । प्रिया तस्यास्ति भद्राख्या पीनस्थूलपयोधरा ॥ २३४ ॥ तत्र पुर्यां वसत्येव क्षत्रियो हि वसंतकः । भद्रां दृष्ट्वैकदा कामवाण
व्याप्तो हितोऽभवत् ॥ २३५ ॥ दूत्यानुरक्तनां नीत्वा रेमे साकं मुदा तया । एकदा सा वन याता तत्र दृष्टो मुनीश्वरः ॥ २३६ ॥ भद्रा-

उस बालकको दयालु वसुमित्राका ही पुत्र जान उसे ही सुपुर्द कर दिया और अन्याय करनेवाली नस, दत्ताको अपराधके अनुकूल दंड दिया इसप्रकार पुत्रकेलिये जो झगड़ा था न्यायकर कुमारने उसका निवटेरा कर दिया ॥ २३३ ॥

मगध देशकी अमरावती नगरीमें एक वलभद्र नामका कुटुम्बी रहता था । उसकी स्त्रीका नाम भद्रा था जो कि वलभद्रको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी और पीन किंतु स्थूल स्तनोंसे शोभाय-मान थी । उसी नगरीमें एक वसंत नामका क्षत्रिय पुरुष भी रहता था एक दिन रमणी भद्रा उस के देखनेमें आगई जिससे वह उसके सौंदर्यपर मुग्ध हो कामवाणोंसे व्याकुल हो गया ॥ २३४— २३५ ॥ शीघ्र ही उसने भद्राके पास अपनी दूती भेजी । भद्रा भी वसंत पर पूर्ण आसक्त हो गई जिससे वसंत मनमानी उसके साथ आनंद रमण क्रीडा करने लगा । एक दिन भद्राको वाहिर जंगलमें जानेका अवसर मिल गया वह वनमें गइ । दैवयोगसे एक मुनिराजसे उसकी भेंट हो गई । वे मुनिराज परम सुन्दर थे उन्हें देख भद्राका चित्त चलित हो गया एवं कामको सूचित करने वाले वाक्योंमें वह इसप्रकार मुनिराजसे कहने लगी—

प्रिय साधो ! तुम सौंदर्य और कलाओंके स्थान हो तुम्हें स्त्रियोंकी अभिलाषा पूरण करनी चाहिये । तुम जो यह ध्यान व्रत आचरण कर रहे हो यह तुम्हारा व्यर्थ है इसमें कुछ भी आनंद नहीं प्राप्त हो सकता तुम्हें विषय भोगोंको आस्वादना चाहिये । भद्राके ये कड़वे वचन सुन उत्तर में आत्मध्यानी मुनिराजने कहा—

दत्तोऽत्र वसत्येव गुणालयः ॥ २२६ ॥ तस्यास्ति भामिनीयुग्मं रैमित्रायां सुतोऽजनि । कदाकाले मृतः श्रेष्ठी तयोर्जातोऽतिविड्वरः ॥२२७॥(२२८)अछिदत्ता वदत्येवं पुत्रोऽयं मामको भृशं । वसुमित्रा तथाऽवादीत् खलेयं मामकः सुतः ॥२२९॥ विवदंत्यौ तदा ते द्वे गते श्रेणिकसन्निधौ । न्यायं कर्तुमशक्तत्वादभयाय समर्पिते ॥ २३० ॥ अभयोऽपि चिरं ध्यात्वा शिशुं भूमौ निक्षिप्तवान् । स नीत्वा छुरिकां प्राह ह्यर्धमर्धं प्रगृह्यतां ॥ २३१ ॥ वसुमित्रा तथा दृष्ट्वा दयार्द्राः समुवाच तं । एतस्मै देहि पुत्रं भो न मे पुत्रः कदाचन ॥ २३२ ॥

राजगृह नगरमें उससमय एक सागरदत्त नामका वैश्य रहता था । अत्यंत धनाढ्य और अनेक गुणोंका मंदिर था, उसकी दो स्त्रियां थीं, एक वसुमित्रा और दूसरी अछिदत्ता (वसुदत्ता) उनमें वसुमित्राके एक पुत्र था वसुदत्ताके कोई संतान न थी । किसी समय सेठ सागरदत्तका मरण हो गया और उससमय उन दोनों स्त्रियोंमें रात दिन कलह होने लगी । वसुदत्ताका कहना था कि यह पुत्र मेरा है और वसुमित्रा यह कहती थी कि यह झूठी है । यह पुत्र मेरा है । जब दोनोंका विवाद इतना बढ़ गया कि वे आपसमें अपना निवटेरा न कर सकीं तो वे महाराज श्रेणिकके समीप राजसभामें अपना न्याय करानेके लिये गईं । उनका विवाद सुन महाराज श्रेणिक भी अवाक् रह गये—कुछ भी न्याय न कर सके इसलिये कुमार अभयको बुलाकर उन्हें न्याय करनेकी आज्ञा दे दी ॥ २२५—२३० ॥ अभयकुमार भी बहुत देर तक तो यह विचार करते रहे कि इसका निवटेरा किस प्रकार किया जाय अंतमें उन्हें एक बुद्धि सूझ गई । वालकको शीघ्र ही उन्होंने जमीनपर लिटालिया एवं हाथमें छुरी लेकर वे यह कहने लगे कि अच्छा भाई ! जब तुम दोनों हीं इसे अपना अपना पुत्र बतलाती हो तो आधा आधा दोनों ले लो ॥ २३१ ॥ कुमारका यह न्याय देख पुत्रकी असली माता वसुमित्रा एकदम कप गई एवं दयासे आर्द्र हो वह इसप्रकार नम्र वचनोंमें कहने लगी—कुमार ! कृपाकर यह पुत्र वसुदत्ताको ही प्रदान करिये मेरे पुत्र कभी भी नहीं हुआ इस लिये मेरा पुत्र यह नहीं ॥ २३२ ॥ वसुदत्ताके अंदर किसी प्रकार दयाकी झलक न थी । कुमारने

विमल ४३

प्रश्नः कृतो राज्ञा दिवारात्रं विवर्ज्य भो। मार्गे नैव कुमार्गे च समागंतव्यमेव च ॥ २२१ ॥ अभयाख्योपदेशेन शकटाक्षेषु यंत्रणं।
वध्वा तत्र स्थिताः सर्वे आर्द्र वाणकपारकाः ॥ २२२ ॥ अभयेन समं सर्वे गतास्ते राजसन्निधौ। ननाम स्वसुतस्तस्य चरणौ वाडवैः
सह ॥ २२३ ॥ समालिंग्य निजं पुत्रं स्वयं प्राशंस सः। [illegible]
[illegible]

[illegible] सुपुत्र श्रेणिकने [illegible] राजगृह [illegible] मांगने [illegible] कुमार [illegible] अभयकुमारके साथ [illegible] चलाया गया [illegible] महाराज श्रेणिकको [illegible] अभयकुमारको युवराज बनाया और [illegible] इसप्रकार वे महाराज श्रेणिक बौद्धधर्मके परम भक्त बन सानंद राज्य करने लगे।

१ श्रेणिक चरित्र १०६ पृष्ठसे यह वर्णन विस्तारसे लिखा है ग्रंथके विस्तार भयसे यहां उसे उद्धृत नहीं किया गया है।

पुराण ४३

कुमारो हि दृष्ट्वा चाकुलवाडवान्। जगादैवं वचस्तथ्यं कुतो विग्रहचेतसः ॥ २१५ ॥ तैश्च प्रोक्तं समाकर्ण्य प्रोवाच वचनं सुधीः।
माकुला भवतो यूयं शृणुतोपायमित्यलं ॥ २१६ ॥ व्याघ्रयोरंतरे स्थाप्यो मेषो मिष्टान्नभक्षणैः। भयाद् वलतां चैव पुष्टतां नैव यास्यति ॥
[illegible] ॥ इत्याकर्ण्य [illegible]
[illegible] मेषो मिष्टान्नभक्षणैः। भयाद् वलतां चैव पुष्टतां नैव यास्यति ॥
२१७ ॥ तथाकृतैर्द्विजैस्तूर्णं मासार्धे प्रेषितो [illegible] ॥२१८॥ इत्यादि दश संप्रश्नाः कृता
राज्ञा विवेकिना। नंदिग्रामीणकैर्विप्रैः प्रोक्ता [illegible] दिवानिशावर्जसमागमश्च ॥ २२० ॥

मेषश्च वापी करिकाष्ठतैलं क्षीराण्डजं वालुकवेष्टनं च।
घटस्थकूष्माण्डफलं शिशूनां दिवानिशावर्जसमागमश्च ॥ २२० ॥

अत्यंत चिंतित और दुःखित देख कुमार अभयने पूछा—भाई! तुम लोग चित्तमें इतने दुःखित क्यों हो। उत्तरमें विप्रोंने महाराज श्रेणिककी सारी आज्ञा कह सुनाई। सुनकर कुमारने धीरज बंधाते हुए [illegible] कहा—[illegible] हानिकी कोई बात नहीं है। मैं तुम्हें एक उपाय बतलाता हूं [illegible] दो व्याघ्रोंके बीचमें बकरेको बांध दो और खूब उसे मिष्टान्न भोजन खिलाओ। मिष्टान्नके खानेसे न तो वह पतला होगा और न मोटा होगा। कुमारकी आज्ञानुसार विप्रोंने वैसा ही किया अर्धमास—पन्द्रह दिन रखकर उसे महाराजके पास भेज दिया। जैसा बकरा भेजा था वैसा ही देख महाराज श्रेणिक चकित हो गये एवं नंदिग्रामके विप्रोंकी चतुरताकी मन ही मन सराहना करने लगे। [illegible] इसीतरह महाराज श्रेणिकने नंदिग्रामके विप्रोंसे राजगृह नगरमें बावड़ी भेजनेको कहा। हाथीका वजन मांगा, काठके नीचे ऊपरका भाग पूछा, तिलके बराबर तेल मांगा, गाय भैंस आदिके दूधसे अन्य दूध मंगाया, एक ही मुर्गा लड़ानेको कहा, बालूकी बनी रस्सी मांगी, घड़ामें भीतर ही भीतर बढ़ा हुआ कूष्मांडफल मांगा शिशुओंकी बुद्धि परीक्षा की और रात दिन आदिके विभागको छोड़कर बुद्धिमान मनुष्यको राजगृह नगर बुलाया वह सब कुमार अस-

इतो राजा [illegible] रात्रं विवर्ज्य भो । मार्गे नैव कुमार्गे च समागंतव्यमेव च ॥ २२१ ॥ अभयास्योपदेशेन शकटाक्षेषु यंत्रणं ।

अथैकदा विशांनाथो दुष्टतां चिंत्य मानसे । नंदिग्रामद्विजान [illegible] ॥ २२२ ॥ अनयेन समं सर्वे गतास्ते राजसन्निधौ । ननाम स्वसुतस्तस्य चरणौ वाड्वैः

युज्यते । विद्यमाने तनौ छिद्रे न्यायश्च नाथो भवेत् ॥ २१० ॥ साधु साधु तथा कृत्वा मेषं च प्राहिणोत्चरैः । नो पुष्टो दुर्बलो नैव

कर्तव्यो मम मेदकः ॥ २११ ॥ अन्यथा निगमं नीत्वा निर्गमयामि देशतः ॥ २१२ ॥ (षट्पदी) इति श्रुत्वा द्विजाः सर्वे व्याकुलीभूत-

मानसाः । इंद्रदत्तस्तदायातो नंदिग्रामाभयेन च ॥ २१३ ॥ पट्टक्षितं नृपं मत्वा मिलनाय विशेषतः ॥ २१४ ॥ (षट्पदी) तदाभय-

महाराज श्रेणिक सानंद राज्य भोग कर रहे थे कि उन्हें नंदिग्रामके विप्रोंकी दुष्टताका स्मरण उठ आया और उन्हें खुटवानेके लिये कुछ मनुष्योंका शीघ्र ही वे प्रबंध करने लगे ॥२०६॥ मंत्री आदिने आकर महाराजको समझाया राजन्! नंदिग्रामके विप्रोंका छिद्र-दोष, विना प्रगट किये आपका यह कार्य अच्छा नहीं माना जा सकता इसलिये आप पहिले उनका कोई दोष प्रगट करिये, पीछे उन्हें दंडित कीजिये क्योंकि यह कहावत है कि जब अपने शरीरमें छिद्र होता है अर्थात् दंड देने-वाला स्वयं दोषी ठहरता है तब न्याय नहीं माना जाता-सब लोग उसे अन्याय कहते हैं ॥ २१० ॥ ठीक, ठीक कहकर महाराजने मंत्री आदिकी बात मान ली। शीघ्र ही एक बकरा मंगाकर सेवकों-के साथ उसे नंदिग्राम भेज दिया और यह आज्ञा कर दी कि नंदिग्रामके विप्र इसे खूब खिलावें पिलावें परंतु यह ध्यान रक्खें कि न तो यह बकरा पुष्ट हो और न कृश हो। यदि मेरी इस आज्ञा-का पालन नहीं किया गया तो मैं तुम्हारा सर्वस्व लुटवा लूंगा और देशसे वाहिर निकलवा दूंगा ॥ २११—२१२ ॥ महाराजकी यह घोषणा सुन नंदिग्रामके समस्त ब्राह्मण भयसे कंप गये, महा-राजकी आज्ञाका किस प्रकार पालन करें यह कुछ भी उन्हें न सूझ पड़ा।

वेणातट नगरके निवासी सेठ इन्द्रदत्तने जब यह सुना कि श्रेणिक राजगृह नगरके राजा बन गये हैं तो वह अपनी पुत्री नंदश्री और अभयकुमारको साथ ले उनसे विशेष रूपसे मिलने आया और नंदिग्राममें ही दैवयोगसे आकर ठहर गया ॥ २१३—२१४ ॥ नंदिग्रामके समस्त ब्राह्मणोंको

यथा वे रोचते तुभ्यं कर्तव्यं च तथा त्वया ॥ २०२ ॥ श्रुत्वा स्थितो महाराजा श्रेणिकः कोपमानसः । भूमिगानां गतिर्नास्ति तत्र गंतुं यतो ध्रुवं ॥ २०३ ॥ तदा चिंताप्रपन्नः स तूष्णीभावमुपागतः । जंबूर्नत्वा गतस्तेन सार्धं विद्याधरेण वे ॥ २०४ ॥ गत्वा व्याजीभद्दत्तेन रत्नचूडेन पापिना । आष्टसाहस्रिकान् वारांस्तस्यामीमरदुत्कटान् ॥ २०५ ॥ बंधयित्वा क्षिपं दुष्टं मृगांकेण समं सुखं । कृत्वा कन्यां समादाय यावदायाति तैः सह ॥ २०६ ॥ तावद्राजगृहाधीशं विंध्याटव्यां हि केरले । पर्वते सास्थितं मत्वा तैर्नाम महायशाः ॥ २०७ ॥ उपयम्य तयोः प्रीतिं विधायाशु विशांपति. । गत्वा निजपत्तने कत्रे तया साकं सुखं स्थितः ॥ २०८ ॥

समाचार कहनेके लिये आपके पास आया हूं अब जैसा आप उचित समझें शीघ्र करें ॥ १९८—२०२॥ विद्याधर आकाशगतिकी यह बात सुन महाराज श्रेणिक बड़े कुपित हुए परंतु "वहांपर भूमि गोचरियोंकी गति नहीं इसलिये जा नहीं सकते" ऐसा विचारकर वे सचिंत हो चुप रह गये महाराजको इसप्रकार सचिंत देख एक जंबूकुमार नामके व्यक्तिने महाराजको नमस्कार किया और वह विद्याधर आकाशगतिके साथ शीघ्र केरला नगरीको चल दिया ॥२०३—२०४॥ केरला नगरीमें जाकर पापी रत्नचूड़के साथ उसने झगड़ा करना प्रारंभ कर दिया । उसके महा उत्कट आठ हजार योधाओंको मार भगाया । दुष्ट रत्नचूड़को बांध लिया । उसे, मृगांकको और उसकी कन्याको साथ ले राजगृह नगरकी ओर चल दिया । जिससमय जंबूकुमार केरला नगरीकी ओर गया था महाराज श्रेणिकने भी अपने जानेकी तयारी कर ली थी और वे चलते चलते विंध्याचलकी वनीमें केरल नामके पर्वतपर जाकर ठहर गये थे । यशस्वी जंबूकुमार सबोंको साथ ले जिस समय विंध्याचल पर्वतके पास आया उसे मालूम पड़ गया कि महाराज श्रेणिक यहीं ठहरें हैं । वह शीघ्र उनके पास गया और उन्हें नमस्कार किया । कन्या विलासवतीके साथ महाराज श्रेणिकका विवाह हो गया । मृगांक आदिके साथ उन्होंने बहुत स्नेह जनया । वहांसे अपनी राजधानी राजगृह नगर लौट आये और रमणी विलासवतीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ २०५—२०८ ॥

खिलान् देशान् सुखं राज्यं भुनक्ति सः ॥ १६४ ॥ अथैकदा सभामध्ये समागत्यैकखेचरः । नाम्नाऽऽकाशगतिर्नत्वा राजानं च व्यजिज्ञपत् ॥ १६५ ॥ हे राजन् विजयार्धस्य दक्षिणश्रेणिका मता । तत्रैव केरला पूश्च तत्र राजा मृगांककः ॥ १६६ ॥ तस्य राज्ञी गुणागारं मद्भगिनी मालतीलता । विलासवतिका पुत्री रूपरंभा सयौवना ॥ १६७ ॥ मृगांकोऽपि तथाभूतां सुतां दृष्ट्वा पप्रच्छ सः । मुनिं सुमतिनामानमस्याः को भविता पतिः ॥ १६८ ॥ श्रेणिकोऽस्या धवो राजन् ! भविता भूरिविक्रमः । श्रुत्वैवं निश्चयं कृत्वा स्थितः श्रीकेरलापतिः ॥ १६६ ॥ तदा मरालद्वीपस्य रत्नचूड़ो नराधिपः । दृष्ट्वा तां रतिभां भूरिसद्वर्णां याचते स्म सः ॥ २०० ॥ नो ददौ तस्मकै राजा रत्नचूड़ाख्यभूपतिः । तदागत्य पुरं क्रोधाद्वेष्टयित्वा स्थितो हि सः ॥२०१॥ तदाभ्यर्णे समायातोऽहं कथनाय वेगतः ।

राजधानी राजगृह नगरमें प्रविष्ट हो गये ॥ १६३ ॥ राजलक्षणोंसे मंडित महाराज श्रेणिकने राजसिंहासन अलंकृत किया एवं समस्त देशोंको जीतकर वे सुखपूर्वक राज्य भोगने लगे ॥ १६४ ॥

महाराज श्रेणिक सानन्द सिंहासनपर विराजमान थे कि उससमय एक आकाशगति नामका विद्याधर राजसभामें आया और राजाको नमस्कार कर यह संदेशा कहने लगा—विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणिमें एक केरला नामकी नगरी है। उसका स्वामी राजा मृगांक है। राजा मृगांककी पटरानीका नाम मालतीलता है जो कि अनेक गुणोंकी मंदिर है और नातेमें मेरी भगिनी लगती है एवं उन दोनोंके विलासवती नामकी अत्यंत सुन्दरी और यौवनसे मंडित पुत्री है ॥१६५-१६७॥ विवाह योग्य अपनी युवति पुत्रीको देखकर राजा मृगांकने सुमति नामके मुनिराजसे पूछा था कि भगवन् ! मेरी पुत्रीका पति कौन होगा ? उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि राजगृह नगरके स्वामी राजा श्रेणिक इसके पति होंगे जो कि संसारमें एक प्रवल पराक्रमी राजा हैं । मुनिराजके ऐसे वचन सुन राजा मृगांक पुत्रीकी ओरसे निश्चिन्त हो रहने लगे । किसी समय मराल द्वीपके स्वामी राजा रत्नचूड़ने रतिके समान सुन्दरी और कमनीय वर्णसे शोभित वह पुत्री देख ली और उसे मांग बैठा परंतु मुनिवचनके गाढ़ श्रद्धानी राजा मृगांकने रत्नचूड़को पुत्री नहीं दी । रत्नचूड़को यह बात सहन न हो सकी और उसने जलकर अपने सैन्यमंडलसे केरला नगरी घेर ली । मैं यह

चलातिने ॥ १८७ ॥ मृते राज्ञि स्वयं राजा भूत्वा पालयति प्रजाः । इंद्राणीप्रमुखाराज्ञ्यो दुखं तिष्ठंति चौरवत् ॥१८८॥ दुष्टान् संस्थापयामास शिष्टान्नाशयतिस्म सः । तदा संचिंत्य मंत्रीशो गूढपत्रमलीलिखत् ॥ १८९ ॥ दत्वा दूतकरे पत्रं प्राहिणोत् श्रेणिकं प्रति । गत्वा दत्तं शुभं पत्रं वाचयित्वा शमाप सः ॥ १९० ॥ आज्ञां श्री इंद्रदत्तस्य नीत्वा मुक्त्वा प्रियां सुतं । गूढैः पंचसहस्रैश्च सुभटैः सहितो ययौ ॥ १९१ ॥ ससैन्यं श्रेणिकं मत्वा नीत्वा द्रव्यव्रजं भयात् । निःसृत्य नगरात्सोऽपि पल्लीमाश्रितवांस्तदा ॥ १९२ ॥ गजारूढो महाराजा वृषस्कंधः प्रतापवान् । छत्रचामरसंयुक्तो विवेश निजपत्तनं ॥१९३॥ शुभयोगेऽधितस्थौ यो विष्टरं राजलक्षणः । साधयित्वा

समक्षमें चलाती पुत्रको राज्य प्रदान कर दिया ॥ १८७ ॥ आयुके अन्तमें महाराज उपश्रेणिकका मरण हो गया । वह राजा होकर प्रजाका पालन करने लगा । उसके राज्यकालमें इंद्राणी आदिक जो रानियां थी वे चोरोंके समान बड़े दुःखसे रहने लगी । राजा चलाती तनिक भी उनके दुःख सुखपर ध्यान नहीं देता था ॥ १८८ ॥ वह दुष्ट राजा अपने राज्यमें दुष्टोंकी बढ़वारी करता था और शिष्ट—भले आदमियोंका विनाश करता था । समस्त प्रजा उसके शासनसे दुःखित थी । मंत्री मतिसागरको बड़ी चिंता हुई । अच्छी तरह विचारकर उसने कुमार श्रेणिकको एक गूढ़ पत्र लिखा एवं दूतके हाथमें देकर उसे कुमार श्रेणिकके पास भेज दिया । जहांपर कुमार श्रेणिक रहते थे दूत सीधा वहां पहुंचा । कुमारके हाथमें पत्र दे दिया, जिसे वांचकर कुमारके चित्तको बड़ी भारी शांति मिली ॥ १८९—१९० ॥ उन्होंने शीघ्र ही अपने श्वसुर इन्द्रदत्तसे राजगृह नगर जानेकी आज्ञा मागी । प्रियतमा नंदश्री और पुत्र अभयकुमारको वहीं छोड़ा एवं पांच हजार गूढ़ वेषधारी सुभटोंके साथ शीघ्र ही राजगृह नगरकी ओर प्रस्थान कर दिया ॥ १९१ ॥ राजा चलातीने जिस समय कुमार श्रेणिकको सैन्यसे मंडित आया सुना साथमें बहुतसा द्रव्य लेकर वह शीघ्र ही नगर से बाहिर निकल गया एवं अपने नानाके पास जाकर भीलोंकी पल्लीमें रहने लगा ॥ १९२ ॥ कुमार श्रेणिक उसी समय राजगृह नगरके महाराज बन गये एवं बैलके समान पुष्ट स्कंधोंके धारक महा प्रतापी एवं छत्र और चमरोंसे शोभायमान वे महाराज श्रेणिक विशाल हाथीपर सवार हो अपनी

तं क्षामं संविधाय करोद्दसः । दृष्ट्वा लोकास्तथाभूतं शंसयामासुरेव तं॥ १८२॥ वसुपालोऽवदद्वाक्यं प्रार्थय त्वं मनोगतं । सप्तवासरपर्यंतं देहि देशेऽभयं व्रत ॥ १८३ ॥ प्रतिपद्य तथा राजा तस्थौ राज्ये सुखान्वितः । शुभे लग्ने महायोगेऽजीजनन्नंदनं च सा ॥ १८४ ॥ दोहदाकांक्षया नाम्ना चक्रेऽभयकुमारकं । अनुक्रमेण संप्राप्तो यौवनं विद्ययान्वितः ॥ १८५ ॥ नंदश्रिया समं क्रीडन् श्रेणिकश्चतुरांगकः । कर्मपंकजसंसक्तो गतं कालं न वेत्त्यसौ ॥१८६ ॥ अथोपश्रेणिको राजा क्षयं ज्ञात्वायुषो ध्रुव । सर्वसामंतसामक्ष्यं ददौ राज्यं

करना चाहिये बस चित्तमें क्रोधकर तत्काल उठ बैठे और मुष्टियोंके प्रहारोंसे उस मदोन्मत्त भी हाथीको देखते देखते वश कर डाला ॥ १७८—१८१ ॥ हाथी जिससमय मदरहित शांत और सीधा हो गया कुमार उसके ऊपर चढ़ लिये उनका यह लोकोत्तर प्रभाव देख सारा लोक उनकी प्रशंसा करने लगा ॥ १८२ ॥ राजा वसुपालके कानतक भी यह समाचार पहुंचा वह आकर कुमारसे मिला और कहने लगा—कुमार ! तुमने वडे साहसका कार्य किया है मैं तुमसे प्रसन्न हूं जो तुम्हें मांगना हो सानंद मांग सकते हो। कुमार श्रेणिक सातदिन तक अभय दानकी चिंतामें थे इसलिये राजासे उन्होंने यही कहा कि कृपाकर आप सात दिनतक अपने देशमें अभय दानकी घोषणा कर दें। राजा वसुपालने कुमारकी बात स्वीकार कर ली और वह सुख पूर्वक अपना राज्य करने लगा। शुभ लग्न और शुभ योगमें रमणी नंदश्रीके पुत्र हुआ। दोहलेके अनुसार उसका अभय कुमार नाम रक्खा गया। क्रमसे वह युवा हो गया एवं अनेक विद्याओंका भंडार बन गया ॥ १८२—१८५ ॥ चतुर अंगके धारक कुमार श्रेणिक रमणी नंदश्रीके साथ सानंद क्रीड़ा करने लगे एवं रतिक्रीड़ारूपी कमलमें इतने आसक्त हो गये कि जाता हुआ काल भी उन्हें नहीं जान पड़ने लगा ॥ १८६ ॥

कुमार श्रेणिक तो उधर इन्द्रदत्तके घर रहने लगे इधर महाराज उपश्रेणिकको जब यह मालूम हो गया कि मेरी आयु बिलकुल समीप है तो उन्होंने समस्त सामन्तोंको इकट्ठा किया और सबोंके

तदुत्तरं ॥१६९॥ नंदश्रीरंजिता तेन गत्या वाचा स्मरेक्षणैः । ददर्श व्याकुली भूत्वा कामवाणादि ता हि तं ॥१७०॥ स्वांगं सा दर्शयत्येव कपोलौ दर्पणाविव । ईषद्धास्येन दंताश्च मुक्तामणिचयानि च ॥ १७१ ॥ अन्योन्यं तौ च कामांगौ परं प्रेम प्रजग्मतुः । इंद्रदत्तोऽनुरक्तां तां ज्ञात्वा तस्मै ददौ मुदा ॥ १७२ ॥ श्रेणिकोऽपि तया साकं रेमे राजसुतः सुखं । रोहिण्या सीतया नाम्या चंद्ररामधरेशवत् ॥

शीघ्र ही उत्तम व्यंजन तयार कर दिये। कुमारको उनकी इच्छानुसार भोजन करा दिया एवं भोजनके वाद तांबुल देकर उन्हें संतुष्ट कर दिया ॥ १६९ ॥ कुमार श्रेणिकने अपनी मनोहर गतिसे मिष्ट वचनोंसे और तिरछी चितवनसे कुमारी नंदश्रीको अपनेमें अनुरक्त कर लिया। कामवाणों से व्याकुल हो वह उनकी ओर लालसा दृष्टिसे देखने लगी। कामके वशी भूत वह कुमारी कभी अपना मनोहर अंग कुमारको दिखाने लगी कभी दर्पणके समान अपने कपोलोंको तो कभी कभी मंद मंद मुसकानेसे मोतियोंके समान अपने दातोंके दिखलानेकी चेष्टा करने लगी॥१७०--१७१॥ अपने आपसी व्यवहारसे वे दोनों कुमार कुमारी कामवाणोंसे पीड़ित हो अपना अपना प्रेम व्यक्त करने लगे। सेठ इंद्रदत्तको भी कुमारमें कन्याके अनुरागका पता लग गया, उन्होंने बड़ी खुशीसे दोनोंका आपसमें विवाह कर दिया ॥ १७२ ॥ युवा कुमार श्रेणिक भी जिसप्रकार चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण करता है रामचन्द्र सीताके साथ रमते थे और नागेन्द्र नागकुमारीके साथ रमण क्रियासे उपयुक्त रहता है उसप्रकार रमणी नंदश्रीके साथ रमण क्रीडा करने लगे ॥ १७३ ॥

कुछ कालके वाद रमण क्रीडा करते करते कुमारी नंदश्रीके गर्भ रह गया उस समय उसके एक दोहला भी हुआ जिसकी सिद्धि कठिन जान वह दिनों दिन कृश होने लगी। किसी दिन एकांतमें आलिंगन चुम्बनके वाद बड़े प्रेमसे कुमारने नन्दश्रीसे यह पूछा—प्रिये! मैं देखता हूं दिनों दिन तुम कृश होती चलीं जातीं हो। नहीं जान पडता तुम्हारी कृशताकी कारण कौन चिंता है? तुम्हें उसे प्रगट करना चाहिये। कुमारका इसप्रकार विशेष आग्रह देख नंदश्रीने कहा—कृपा-

१७३ ॥ गर्भं बभार सा बाला कियत्काले गते सति। दोहदेन कृशीभूता दृष्ट्वा श्रीश्रेणिकेन च ॥ १७४ ॥ पप्रच्छालिंग्य संचुंव्य रह-
स्ये रतिविह्वलां। कृशत्वकारणं कांतः साग्रहादग्रहीदिति ॥ १७५ ॥ शृणु नाथ! कृशाधार! प्राणजीवन! मद्वचः। सप्तवासरपर्यंतं
देशेऽस्मिन्नभयं यदा ॥ १७६ ॥ भवेन्नूनं तदा सौख्यं श्रुत्वासौ दुष्करं वचः। समाश्वास्य निजां रामां नद्यास्तीरं गतस्तदा ॥ १७७ ॥
उपायं चिंतयन् यावत्तावदन्यकथांतरं। वसुपालनरेंद्रस्य कृत्वा वालानभंजनं ॥ १७८ ॥ पुरमाकुलयन् लोकांस्त्रासयन् पुष्करीं हठात्।
धुरीज्यन्निव तिग्मांशुं पातयिष्यन् धरातलं ॥ १७९ ॥ गमिष्यन्निव चाकाशे निर्ययौ मदनोद्धुरः। अन्यायं तं गजं दृष्ट्वा चिंतया-
मास श्रेणिकः ॥ १८० ॥ अयं दुष्टो गजः केन वशीकर्तुं हि शक्यते। इति मत्वोत्थितः कोपाज्जघानैनं प्रमुष्टिभिः ॥ १८१ ॥ निर्मदं गलि-

धार! प्राणजीवन प्राणनाथ! सुनिये मुझे यह दोहला हुआ है कि इस देशमें सर्वत्र सात दिन तक अभयदानकी प्रवृत्ति हो, कोई भी जीव किसीको न सतावे। यदि मेरा यह दोहला पूर्ण हो जाय तव मुझे सुख मिले इसका पूर्ण होना कठिन जान पड़ता है इसीलिये मैं सदा कृश होती चली जाती हूं मेरी कृशताका अन्य कोई कारण नहीं। प्राणप्यारी नंदश्रीका यह दोहला सुन कुमार श्रेणिकको भी उसकी सिद्धिमें कठिनता सूझने लगी परंतु अपनी निर्बलता न प्रगट कर अपने धीर वीर स्वभावसे उन्होंने उसे समझा दिया एवं कुछ उपाय खोजनेके लिये वे नदीके तटकी ओर चल दिये ॥ १७४—१७७ ॥

नदीके किनारे बैठकर कुमार दोहलेकी सिद्धिका उपाय सोच ही रहे थे कि उस समय एक नवीन ही घटना उपस्थित हो गई। उसी नगरका स्वामी एक वसुपाल नामका राजा था उसके किसी मदोन्मत्त हाथीने आलान—अपने बंधनेका खूंटा तोड़ डाला। वह दुष्ट गज समस्त लोगोंको व्याकुल करता, हथिनियोंको त्रास देता, अपनी उछल कूदसे सूर्यको ग्रहण करता, समस्त पृथ्वी-तलको कपाता एवं अपनी ऊंचाईसे आकाशमें चलता हुआ जिस जगह कुमार बैठे थे उसी जगह आया उस दुष्ट गजको अपने पास आता देख कुमार श्रेणिक मन ही मन सोचने लगे—यह गज बड़ा दुष्ट मालूम पड़ता है। इसे वश करनेकी किसीकी हिम्मत नहीं जान पड़ती इसे अवश्य वश

यिता भोज्यं सर्पिःशाकादिपूरितं। तदा भुनज्मि गौरांगि! तप्तजांबूनदप्रभे ॥ १६३॥ भर्तृस्खलितया वाण्या श्रुत्वा तद्वांछितं सका अवोचद्द हि तान् रम्यान् कुर्वेऽहं भोजनं वरं ॥ १६४ ॥ आदाय चूर्णकं कृत्वा पूपं कृत्वा ददौ करे । आलिकायास्तदा सापि नीत्वा द्यूतगृहं ययौ ॥ १६५ ॥ भाजनं द्यूतकारैश्च पट्टकूलं प्रसारितं। विलोक्य जगदे साहि श्रूयतां सद्वचो मम ॥ १६६ ॥ देवताधिष्ठितं पूपं यो गृह्णाति वराक्षिकः। लाभं मनीप्सितं सोऽपि लभेतालं न संशयः ॥ १६७ ॥ अत्याग्रहं विधायाशु दत्वा द्रव्यं घनं धनी। नाम्ना जग्राह पूपं तं धनं नीत्वा गृहं ययौ ॥ १६८ ॥ स्वामिन्या तेन द्रव्येण पूपापायसव्यंजनं । निर्माप्य भोजयामास तांबूलं च

रांगी ! संसारमें तुम बडी चतुर सुनी जाती हो मैं भी कुछ चतुरताका अभ्यास रखता हूं मैंने आज यह प्रतिज्ञा की है कि मेरे पास वत्तीस चावल है यदि केवल उन्हीसे घी और शाक आदिसे परिपूर्ण मेरे लिये भोजन तयार किया जायगा तो मैं उसे खाऊंगा वीच नहीं खा सकता। सुवर्णके समान प्रभावाली गौरांगी ! यदि तुम इसरूपसे भोजन तयार कर सको तो मैं खा सकता हूं। कुमार श्रेणिक जिससमय यह कह रहे थे विशिष्ट आनंदसे उनकी वाणी कुछ कुछ स्खलित निकलती थी चतुर नंदश्री स्खलितवाणीसे उनके मनका अभिप्राय समझ कहने लगी—कृपाकर उन वत्तीस चावलोंको दीजिये मैं अभी आपके लिये मिष्ट और मनोहर भोजन तयार करती हूं ॥ १६१—१६५॥ कुमारने उसी समय वत्तीस चावल दे दिये । कुमारी नंदश्रीने शीघ्र उन्हें पीसकर पूवे बनाये। सखीको वुलाकर उन्हें बजार वेचनेके लिये भेज दिया। वह सखी भी वडी चतुर थी जहां ज्वारियों का अड्डा था वहां पहुंची। ज्वारी लोग कपडा विछाकर जिससमय जूआ खेलना प्रारंभ करने लगे उस समय उस सखीने इसप्रकार मनोहर वचनोंमें कहा—

देखो भाइयो ! ये पूवे जो मैं लाई हूं देवमयी हैं। जो महानुभाव इन पूवोंको खावेगा वही उत्तम ज्वारी इच्छानुसार घन उपार्जन करेगा इसमें किसी वातका संदेह नहीं। ज्वारियोंको कल कहां? बड़े आग्रहसे शीघ्र ही उन्होंने पूवे खरीद लिये। मुंहमागा धन दिया एवं उस धनको लेकर वह सखी शीघ्र ही अपने घर आ गई ॥ १६६—१६८ ॥ कुमारी नंदश्रीने उस द्रव्यसे पूवा खीर आदि

दृश्यते पंकः समस्यात कथं ननु ॥ १५३ ॥ यामि प्रस्तरपंक्त्याऽहं पतिष्यामि यदा तदा । हसिष्यंत्यखिला लोका अतः पंके प्रयास्यहं ॥ चिंत्वेत्थं गतवान् सद्मद्वारे नंदश्रिया तदा । कौशलं चिंतयामासे (स) सन्नरस्य सकौतुकं ॥ १५५ ॥ सख्या संप्रेषयामास पादक्षालनहेतवे । अंजलिप्रमितं तोयं दृष्ट्वासौ तदुव्यचिंतयत् ॥ १५६ ॥ इयं धूर्ता समीक्ष्येत कौतुकं यत्करोत्यदः । वेणुचीर्यात्तदुत्तार्य क्षालयामास पत्कजं ॥ १५७ ॥ नंदश्रीश्च तदा स्वांते चतुरं तं व्यचितयत् । मुदं गत्वालिकां प्राहाकारयेति सुभोजने ॥ १५८ ॥ आकारितस्तदा तत्र रम्यांगो राजलक्षणः । आगतो लीलया युक्तः प्राघूर्णक इव स्थितः ॥ १५९ ॥ आगतस्वागतं कृत्वा नंदश्रीर्वचनं जगौ । तिष्ठ तिष्ठासने साधो ! कुरु भोज्यं मनीप्सितं ॥१६०॥ तदाकर्ण्य कुमारोऽसावब्रवीत्तां शुभाशयां । श्रूयसे चतुरा लोके त्वं ललांगि ! चकोरदृक् ॥ १६१ ॥ प्रतिज्ञाय कृता बाले ! मया विज्ञानशालिना । द्वात्रिंशत्तंदुला रम्या विद्यंते मम पार्श्वके ॥ १६२ ॥ तेषां चेन्न

वाके लिये नंदश्रीने अंजुलीप्रमाण जल उनके पैर धोनेके लिये सखीके हाथ भेजा। कुमार उस थोड़े से जलको देखकर मन ही मन विचारने लगे कि मेरे साथमें जो दिल्लगी हो रही है वह इसी धूर्त नंदश्री द्वारा की जा रही है खैर, उन्होंने बांसकी फच्चट लेकर शीघ्र ही सारी कीचड़ उतार डाली और उस थोड़ेसे जलसे अपने पैर धो डाले। कुमारकी इसप्रकार बुद्धिमानी देख नंदश्रीने मन ही मन उन्हें अत्यंत चतुर समझ लिया। वडी खुश हुई एवं अपनी सखीसे यह कहा कि कुमारको भोजनके लिये लिवा लाओ। नंदश्रीके कहे अनुसार सखीने कुमारको भोजनके लिये बुलाया। मनोहर अंगके धारक एवं राजलक्षणोंसे शोभायमान वह कुमार भी क्रीडापूर्वक नंदश्रीके पास आ गया एवं जिसप्रकार अतिथि आकर बैठ जाता है उसप्रकार आकर बैठ गया ॥ १५२—१५६ ॥ अतिथिका जिसरूपसे स्वागत करना चाहिये नंदश्रीने बड़े उत्साहके साथ उनका स्वागत किया एवं मनोहर वचनोंमें वह इसप्रकार कहने लगी—

महानुभाव ! आइये इस आसनपर विराजिये और इच्छानुसार भोजन कीजिये ॥ १६० ॥ शुद्ध हृदयवाली नंदश्रीके ये मनोहर वचन सुन कुमारने कहा—चकोरके समान नेत्रवाली मनोह-

यातिं सदनं प्रति ॥ १५० ॥ तावन्नंदश्रिया द्वारं कारितं कर्दमाकुलं । जानुपंगं दृपद्वंगं स्थिता पश्यति कौतुकं ॥ १५१ ॥ ताडचिह्नेन मत्वा स द्वारे समागतस्तदा । दृष्ट्वा कर्दमसंतानं चिंतयामास मानसे ॥ १५२ ॥ पुरमध्ये पुराभ्यर्णे प्रतोल्यां प्रतिसद्म च नो दरी-

चाप अपने घरको चली गई। बुद्धिमान कुमारने अपनी चतुरतासे उसका इशारा समझ लिया एवं जिस घरमें तालवृक्ष हो वही कुमारी नंदश्रीका घर है ऐसा विचारकर वह कुमार स्नानकर उसी घरकी ओर सीधा रवाना हो गया ॥ १४७--१५० ॥ विपुलमतीके मुखसे कुमारका आना सुन नंदश्रीने अपने दरवाजके सामने घोंटू पर्यंत कीचड़ भरवा दी। ठीक दरवाजके सामने पत्थर रखवा दिये जिससे यह जान पड़े क भीतर जानेका रास्ता इन पत्थरोंके टुकड़ोंके ऊपरसे है एवं कुमारका कौतूहल देखनेके लिये वह सामने खिड़कीमें बैठ गई ॥ १५१ ॥ नंदश्रीके घरमें ताड़का वृक्ष था ताड़के चिह्नसे उसी घरको नंदश्रीका घर जान कुमार उसके दरवाजेपर आ गये एवं दरवाजके आगेका भाग कीचड़से भरा हुआ देख वे इसप्रकार मन ही मन विचारने लगे--

न तो नगरके मध्यभागमें कीचड़ दीख पडती है न नगरके पास कहीं कीचड दीख पडती है। किसी गली वा किसी मकानमें भी कीचड़ नहीं दीख पड़ती परंतु इस मकानके सामने कीचड़ दीख पड़ती है इसलिये इस कीचड़के होनेमें अवश्य कोई न कोई रहस्य छिपा हुआ है—क्या बात है सो कुछ जान नहीं पड़ती घरके भीतर जानेके लिये जो यह पत्थरके टुकड़ोंका मार्ग बनाया गया है जान पड़ता है मेरी बुद्धिकी परीक्षाके लिये यह धोखाबाजी की गई है यदि मैं इन पत्थरके टुकड़ोंके बने मार्गसे घरके भीतर जाऊंगा तो अवश्य नीचे कीचड़में गिर जाऊंगा तो सारा लोक मेरी हँसी करेगा इसलिये मुझे कीचड़में होकर ही जाना चाहिये बस इसप्रकार विचारकर वे कीचड़के भीतरसे जाकर—नंदश्रीके दरवाजेपर पहुंच गये। कुमारके इस तीव्र कौशलको देखकर नंदश्रीने मन ही मन उनके कौशलकी सराहना की एवं दिल्लगीसे फिर भी कुमारकी बुद्धिकी परी-

तत्र वृत्तांतं प्रतिपादितं । तैलेन मज्जनं कृत्वा गंतव्यं मम सद्गृहे । श्रुत्वाथ चिंतयित्वासौ तोये तैलं क्षिपाह तं ॥ १४७ ॥ (पट्पदी) किमर्थं सा जगौ रम्या येन सार्धं समागतः । तस्यास्ति रूपसद्धारभूषिताकन्यका शुभा ॥ १४८ ॥ तथा नंदश्रिया त्वं भो आकारित इव ध्रुवं। तदा प्राह कुमारोऽसौ कुत्रास्ते सदनं तव ॥ १४९ ॥ दर्शयित्वा तदा कर्णतालं सैव ययौ गृहं । स्नात्वा विज्ञानतो यावद्-

वह कुमार इससमय तालावके किनारे बैठा है। मैं उससे यह कहकर आया हूं कि मेरी आज्ञाके विना तुम कहीं भी मत जाना इसलिये जवतक मेरी आज्ञा उसके पास न पहुंचेगी वह कहीं जा नहीं सकता। अपने पिताके ये मनोहर वचन सुन कुमारी नंदश्री विचारने लगी यद्यपि वह कुमार संसारमें एक बुद्धिमान पुरुष रत्न है तथापि और भी उसकी परीक्षा करलेना परमावश्यक है इस-लिये शीघ्र ही उसने अपनी विपुलमती नामकी प्रियसखी बुलवाई और प्रेममय वचनोंसे उससे यह कहा कि मैं जिस कार्यके करनेकी तुमसे प्रेरणा कर रही हूं उसे शीघ्र करो। देखो तालावके किनारे कोई अन्य देशका पुरुष बैठा है। नखमें तेल भरकर तुम शीघ्र उसके पास जाओ और उससे कहो कि आप यह तेल लेकर शीघ्र स्नान करिये ॥ १३९—१४६ ॥ कुमारी नंदश्रीके वचन सुन सखी विपुलमती शीघ्र ही तालावके किनारे जा पहुंची। नंदश्रीने जो कहा था सारा समा-चार कुमारसे कह सुनाया एवं तेल लगाकर स्नानकर आप मेरे घर चलें, यह निवेदन भी कर दिया विपुलमतीके वचनोंपर थोड़ी देर तक कुमारने विचार किया एवं 'इस तेलको इस जलमें डाल दो, ऐसा कहकर उससे यह पूछा—

तुम्हारे घर मुझे क्यों चलना चाहिये ? उत्तरमें मनोहरांगी विपुलमतीने कहा--प्रिय महानुभाव जिस महापुरुषके साथ तुम आये हो उसके एक नंदश्री नामकी पुत्री है जो कि दिव्य सौंदर्यके भारसे शोभायमान है और शुभ है उसी कुमारीने आपको बुलाया है आप किसी प्रकारका संदेह न करें। विपुलमतीकी यह बात सुन कुमारने पूछा तुम्हारा घर कहां है ? इसके उत्तरमें विपुलमती ने कुछ भी नहीं कहा उसके कानमें जो तालवृनके पत्तेका बना भूषण था उसे धीरेसे दिखाकर वह चुप

खास तात्पर्य उस समय यही था कि यह पुरुष जो इस स्त्रीको मार रहा है यह स्त्री इसकी व्याहिता है वा भगाई हुई है। मरे मनुष्यको देखकर जो कुमारने यह प्रश्न किया था कि 'यह मुर्दा आजका मरा है वा पहिले ही मर चुका है'? यह भी उनका प्रश्न बडी निपुणताका था क्योंकि जो मनुष्य धर्मात्मा दानी तेजस्वी आदि उत्तम गुणोंका भंडार होता है और वह मर जाता है उसको तो आजका मरा हुआ कहते हैं और जो दुर्गुणोंका खानि होता है वह भले ही आज ही मरा हो तो भी वह पहिलेका मरा हुआ ही माना जाता है। कुमारका आशय भी उस समय यही था। धान्यके खेतको देखकर जो कुमारने यह पूछा था इस खेतके स्वामीने इस खेतका उपभोग कर लिया है वा करेगा? यह प्रश्न भी कुमारका बड़ी बुद्धिमानीका था क्योंकि जो खेत कर्ज लेकर वोया जाता है उसके धान्यका तो पहिले ही उपभोग कर लिया जाता है और जो कर्ज न लेकर वोया जाता है उस खेतके धान्यको उसका स्वामी भोगेगा, ऐसा कहा जाता है। कुमारका प्रश्न भी उस समय इसी आशयको लेकर था। कुमारने जो यह प्रश्न किया था कि इस हलमें कितनी शाखा हैं? यह प्रश्न भी कुमारका बडा मार्केका था क्योंकि उस समय कुमारका यह आशय था कि इस हलके स्वामी कितने किसान हैं? इसलिये यह प्रश्न भी कुमारका मूर्खता परिपूर्ण न था। तथा इस बदरी वृक्षपर कितने कांटे हैं? यह जो कुमारने पूछा था वह पूछना भी उनका बड़ी कुशलतासे था क्योंकि कांटे दो प्रकारके होते हैं एक सीधे दूसरे टेढ़े। दुर्जनोंके वचन भी सीधे टेड़े दोनों प्रकारके होते हैं कुमारका पूछना भी इसी आशयको लेकर था" इसलिये हे पूज्यपिता! जिस कुमारको आपने मूर्ख समझ रक्खा है वह बत्तीस शुभ लक्षणोंका धारक अत्यंत बुद्धिमान है कृपाकर अब शीघ्र बताइये कि वह चतुर कुमार इससमय कहां है? उत्तरमें इंद्रदत्तने कहा—

मूर्ख समझा है सो वह मूर्ख नहीं बड़ा भारी बुद्धिमान है । कुमारने जो जो बातें कही थीं उनका खुलासा इसप्रकार है—

उस कुमारने जो आपको मामा कहकर पुकारा था उसका मतलब यह था कि संसारमें भानजा अत्यंत माननीय और प्रिय होता है इसलिये मामा कहकर कुमारने आपके विशिष्ट प्रेम की आकांक्षा की थी । जिह्वारथका अर्थ कथा कौतूहल है । कुमारने जो जिह्वा रथ कहा था वह भी उसका कहना बहुत उत्तम था क्योंकि जिससमय सज्जनपुरुष मार्गमें थक जाते हैं उस समय वे उस थकावटको अनेक प्रकारके कथा कौतूहलोंसे दूर करते हैं । कुमारका लक्ष्य भी उससमय थकावट दूर करनेका ही था । कुमार जो नदीके जलमें जूता पहिनकर घुसा था वह कार्य भी उसका एक बड़ी बुद्धिमानीका था क्योंकि जलके अन्दर बहुतसे कंकड पत्थर और सर्प आदि जीव रहते हैं जो कि सूझ नहीं पड़ते, यदि जूता पहिनकर जलमें प्रवेश न किया जाय तो कंकर पत्थरोंके लगजानेका और सांप आदिके काटनेका भय रहता है इसलिये कुमारका जलमें जूता पहिनकर प्रवेश करना मूर्खताका कार्य न था । कुमार वृक्षके नीचे जो छत्री तानकर बैठा था वह भी उसका कार्य बुद्धिमानीका था क्योंकि वृक्षके ऊपरसे पत्तियोंकी वीट आदिका गिरना संभव है । छत्रीसे बचाव हो सकता है । नगरको देखकर कुमारने जो यह प्रश्न किया था कि यह बसा हुआ है वा उजडा हुआ है वह प्रश्न भी कुमारकी बडी बुद्धिमत्ताका था क्योंकि जिस नगरमें धर्मात्मा मनुष्य और धर्मके आयतन विद्यमान हों वह नगर बसा हुआ माना जाता है और जिसमें ये बातें न हों वह उजड़ा समझा जाता है कुमारका तात्पर्य इसी बातको लेकर था । स्त्रीको बांधकर मारते देख जो कुमारने यह पूछा था कि यह स्त्री बंधी हुई है वा छूटी हुई है ? यह प्रश्न भी. कुमारका बडी चतुरताका था क्योंकि बंधी हुईका अर्थ विवाहित है और छूटी हुईका अर्थ अविवाहित है। कुमारका

भृशं। तदा वभाण हे पुत्रि ! मूर्खनामा समागतः ॥ १४० ॥ कथं ज्ञातस्त्वया मूर्खः, शृणु पुत्रि ! निगद्यते। जिह्वारथादिसंप्रोक्तं श्रुत्वा हर्षमुपागता ॥ १४१ ॥ उक्तं च—

जिह्वारथः पादसुरक्षणं च छत्रं तथा ग्रामविनिश्चयश्च।
नारी शवं शालिवनं च दा (हा) लं कांटक्यवार्तेति च कल्प्यतेस्म ॥ १४२ ॥

नंदश्रीः पितरं प्राह नासौ मूर्खः कृपानिधे ! द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तो वर्तते कुत्र हे पितः ? ॥ १४३ ॥ इंद्रदत्तस्तदा प्राह सरस्तीरे स्थितोऽस्ति सः। श्रुत्वा सा चिंतयामास परीक्ष्येऽहं शुभं नरं ॥ १४४ ॥ तदा विपुलमत्याख्यां सखीमाकार्य वेगतः। प्राहेति वचनं रम्यं कुरु कार्यमिदं त्वकं ॥ १४५ ॥ नखेन तैलमादाय याहि त्वं सरसस्तटे। तत्रस्थितस्य गोधस्य देहि स्नानार्थमंजसा ॥ १४६ ॥ प्रतिपद्य गता

उपमा धारण करती थी। जिस समय सेठ इंद्रदत्त घर पहुंचे उन्हें अत्यंत थका हुआ जान नंदश्री ताड़ गई कि इनके साथ कोई न कोई अन्य मनुष्य भी आया है क्योंकि अकेला चलनेवाला मनुष्य अपने स्वभावानुकूल गतिसे चलता है इसलिये विशेष नहीं थक सकता किंतु साथमें अन्य मनुष्य के रहते दोड़ा दोड़ी चलना पड़ता है इसलिये विशेष थकावट हो जाती है, इसलिये उसने शीघ्र ही पूछा—पिताजी ! तुम किसी न किसीके साथ आये जान पड़ते हो कृपाकर कहिये आपके साथमें जो आया है सो कौन है ? उत्तरमें इन्द्रदत्तने कहा—पुत्री ! मैं अवश्य किसी अन्य पुरुषके साथ आया हूं परंतु मेरे साथ आनेवाला वज्र मूर्ख है। पिताके ऐसे वचन सुन नंदश्रीने फिर पूछा—पूज्य पिता ! आपने यह कैसे जाना कि आपके साथ आनेवाला पुरुष मूर्ख है ? उत्तरमें सेठ इन्द्रदत्तने जिह्वारूपी रथपर सवार होकर चलना, जूता पहिने ही नदीमें प्रवेश कर जाना, वृक्षके नीचे छत्री लगाकर बैठना, गांवको उजड़ा बसा कहना, स्त्रीको बांधी छूटी कहना, यह मुर्दा आज मरा है वा पहिले, धान्यके खेतके फल खा लिये वा खाये जावेंगे हल और वदरीके कांटोंके विषयमें जो भी बात चीत हुई थी सारी कह सुनाई। जिस समय कन्या नंदश्रीने सारी बातें सुनी उसे बड़ा हर्ष हुआ। शीघ्र ही उसने अपने पितासे कहा—कृपानाथ ! ऊपर कही हुई बातोंसे जो आपने उसे

पुरो दृष्ट्वा ह्यन्वयुंक्तेति तं प्रति । मा[illegible]मक ! हलीवेशा विद्यते कतिका इमे ॥ १३२ ॥ समाकर्ण्य तथा प्रोक्तं पुनः प्रोवाच तं प्रति कदर्याः कंटका माम ! [illegible] ॥ १३३ ॥ चिंतयामास मूर्खोऽयं श्रेष्ठी चिंतापरायणः । एवं प्रश्नवितर्केषु सत्सु तौ जग्मतुस्तरां ॥ १३४ ॥ वेणा[illegible] पत्तनं स्व समाप्य सः । श्रेष्ठी तं भूपजं प्राह कुत्र यासि त्वकं वद ॥ १३५ ॥ तदा कुमार आहेति तिष्ठामि सरसस्तटे । इंद्रदत्तो वणि[illegible] प्राह विनाज्ञां नैव गम्यतां ॥ १३६ ॥ इत्युक्त्वा स्वगृहे यात इंद्रदत्तो वणिग्वरः । श्रेणिकश्चिंतयामास धिङ्मैत्री वाणिजामिति ॥ १३७ ॥ वैश्यमैत्रीमहिक्रीडां द्यूतकर्म विषादनं । योषित्संगं त्यजेद्विद्वान् मुदाकांक्षी कुसंगतां ॥ १३८ ॥ पितरं श्रमसंयुक्तं दृष्ट्वोवाच सुता मुदा । नंदश्रीर्नागकन्येव रूपरंजितरंभिका ॥ १३९ ॥ हे तात ! सह केनैव चागतस्त्वं वद

हलमें कितनी शाखायें (हिस्से) हैं। कुमारके ये वचन सुनकर भी सेठ इंद्रदत्त उसे मूर्ख समझ चुप रहगये। आगे चलकर एक वदरीवृक्ष पड़ा उसे देख कुमार श्रेणिकने पूछा—बताइये मामा ! इस वृक्षमें कितने कांटे हैं। कुमारका यह प्रश्न सुन इंद्रदत्तके मनमें पूरा विश्वास हो गया कि यह बालक अवश्य पूरा पागल है। बस इसप्रकार प्रश्न और वितर्क करते करते वे दोनों मार्गमें सानंद गमन करते जाते थे ॥ १३२—१३४ ॥ सेठ इंद्रदत्तकी जन्मभूमि वेणातड़ाग नामका नगर था। मार्गमें चलते चलते जिस समय वेणातड़ाग आया सेठ इंद्रदत्त वहीं ठहर गया एवं कुमारसे यह कहने लगा कि भाई मेरा घर [illegible] गया, मैं अब अपने घर जाता हूं, तुम अब यहांसे कहां जाओगे कहो ? उत्तरमें कुमारने कहा—इससमय तो मैं इसी तालावके किनारे ठहरूंगा। कुमारकी यह बात सुनकर इन्द्रदत्तने कहा—अच्छा ठीक है परंतु मेरी आज्ञाके बिना आगे मत जाना। बस ऐसा कह कर सेठ अपने घर चला गया। सेठ इन्द्रदत्तके ऐसे सूखे व्यवहारसे कुमार श्रेणिकको कुछ कष्ट हुआ। वे मन ही मन यही विचारने लगे कि वणिकोंके साथ की गई मित्रताके लिये धिक्कार है। जो विद्वान कल्याणके इच्छुक हैं उन्हें वणिकोंके साथ मित्रता, सर्पोंके साथ क्रीड़ा जूआ खेलना विष खाना स्त्रियोंकी संगति और खोटी संगतिका करना सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ १३५—१३८ ॥

सेठ इन्द्रदत्तकी एक नंदश्री नामकी कन्या थी जो कि अपने मनोहर रूपसे अप्सराकी

॥ १२६ ॥ श्रुत्वास निश्चिनोतिस्म गर्गोयं संभ्रमी शठः। नानावस्तुसमाकीर्णं पुरं पृच्छति वार्तकं ॥ १२७ ॥ केनचित्ताड्यमानां हि दृष्ट्वा रामां जगाद तं। भो माम ! ताड्यते वद्धा मुक्ता वा कथय द्रुतं ॥ १२८ ॥ पूर्ववच्चिंतयन् श्रेष्ठी तावद् दृष्ट्वा शवं जगौ। भो माम ! प्राक् मृतं किंवा सांप्रतीदं मृतं वद ॥ १२६ ॥ तथाकर्ण्य पुनश्चित्ते चिंतयामास पूर्ववत् । पुरस्ताच्छालिकेदारं दृष्ट्वा प्रोवाच तं प्रति ॥ १३० ॥ माम ! भक्ष्येत किं क्षेत्रं भुक्तं वा त्वं निरूपय। समाकर्ण्य तदा श्रेष्ठीदमीयं जीवितं च धिक् ॥ १३१ ॥ लांगलं च

थोंसे व्याप्त है तो भी व्यर्थ पूछता है कि यह उजड़ा हुआ है या वसा हुआ ? ॥ १२६—१२७ ॥ आगे चलकर क्या देखा कि एक स्त्रीको वांधकर कोई पुरुष मार रहा है। उसे देख कुमारने सेठसे पूछा मामा ! कृपाकर जल्दी वताओ तो कि जिस स्त्रीको यह पुरुष मार रहा है यह वंधी हुई है वा मुक्त—छूटी हुई है। कुमारकी वातका तात्पर्य न समझकर फिर भी वह सेठ विचारने लगा कि यह वालक तो वज्र मूर्ख है। सवको दीखती है कि यह स्त्री वंधी हुई है तो भी यह झूठा जवाव सवाल करता है। आगे चलकर एक मुर्दा पड़ा उसे देखकर कुमारने पूछा—मामा ! कृपा कर कहो कि यह मुर्दा पहिले ही मर चुका है कि अभी मरा है ? सेठ इन्द्रदत्त कुमारके इन वचनोंका भी तात्पर्य न समझ सका इसलिये पहिलेके समान वह पुनः भी यही मनमें कहने लगा कि यह वालक भारी मूर्ख है। अभीके मरे मुर्देको भी नहीं जान सकता। आगे चलकर एक शालि धान्योंका क्षेत्र पड़ा उसे देखकर कुमारने फिर इन्द्रदत्तसे पूछा—वताओ मामा ! इस खेतके मालिकने इस खेतके फलोंको पहिले खा लिया है कि अव खायगा ? कुमारके वचनोंका तनिक भी तात्पर्य न समझ अवके तो इंद्रदत्त झुलझुला उठे क्योंकि वे समझते थे कि जव धान कटे ही नहीं तव पहिले कैसे खाये जा सकते हैं ? कुमारने खेतको देखकर जो प्रश्न किया है वह वज्र मूर्खताका है इसलिये वे यही कहने लगे कि ऐसे मूर्खता परिपूर्ण जीवनके लिये धिक्कार है ॥ १२८—१३१ ॥ आगे चलकर एक हल दीख पड़ा। उसे देखकर कुमारने इंद्रदत्तसे पूछा—वताओ मामा ! इस

जिह्वारथं समारुह्य आवां यावः प्रमोदतः ॥१२०॥ तदा श्रेष्ठी विचिंत्येत्थं गर्गोयं गुणवर्जितः । जिह्वामारुह्य वेगेन कथं गम्यते स्फुटं ॥ १२१ ॥ कियन्मार्गे पुनः प्राप्ते निर्मले सजलाशये । पादत्राणं पदे कृत्वा निर्गतः कौतुकान्वितः ॥ १२२ ॥ व्यतकयत्तदा श्रेष्ठी मूर्खोयं मनसि स्वके । अग्रमार्गे पुनर्नीत्वा जगाद मधुरं प्रियं ॥१२३॥ भो मातुलात्र तिष्ठावो वृक्षे पत्रिविराजिते । श्रुत्वा वाक्यं स्थितः श्रेष्ठी सोऽपि पर्णमयं महत् । आतपत्रं विधायाशु मस्तके धृतवान् खलु ॥ १२४ ॥ (षट्पदी) इभ्योऽसौ तर्कयामास तापच्छन्नतरोरधः । मूर्खं गर्गं विछायान्यः कः छत्रं मस्तके धरेत् ॥ १२५ ॥ अग्रे ग्रामं विलोक्यासावप्राक्षीदिंद्रदत्तकं । भो भो मामोद्वसो ग्रामो वसते वा वद त्वकं

मामा ! आओ जिह्वारूपी रथपर सवार होकर अपन दोनों आनंदपूर्वक शीघ्र चलें । कुमारकी यह चतुरताको भी बात न समझकर सेठ इन्द्रदत्त कहने लगा—यह बालक तो मूर्ख जान पड़ता है, भला जिह्वारूपी रथपर बैठकर भी कभी जल्दी जाया जा सकता है ? ॥ ११६—१२१ ॥ मार्गमें कुछ दूर आगे जाकर एक नदी पड़ी । कौतूहली कुमार श्रेणिक जूता पहिनकर ही उस नदीके जलमें चलने लगा । उसकी यह चेष्टा देख फिर इन्द्रदत्त अपने मनमें विचार करने लगा कि यह बालक अवश्य मूर्ख है । आगे मार्गमें अनेक प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त एक विशाल वृक्ष पड़ा उसे देखकर कुमारने मीठे स्वरमें कहा--मामा ! आओ थोड़ी देर इस वृक्षके नीचे आराम करलें । कुमारके कहने से सेठ इन्द्रदत्त ठहर गया । कुमारने वृक्षके पत्तोंकी उसी समय एक छत्री बनाई और मस्तकपर छत्री तानकर वह बैठा । कुमारकी यह चेष्टा देख इंद्रदत्त विचार करने लगा । धूपके संतापको दूर करनेके लिये मस्तकपर छत्री तानी जाती है । यह उत्तम वृक्ष धूपका संताप दूर करनेवाला है—छत्री तानकर बैठनेकी कोई आवश्यकता नहीं परंतु यह बालक इस वृक्षके नीचे भी मस्तकपर छत्री तानकर बैठा है इसलिये यह बड़ा हठी और मूर्ख है ॥ १२२—१२५ ॥ मार्गमें आगे चलकर एक गांव पड़ा उसे देख कुमारने इंद्रदत्तसे पूछा-मामा ! कृपाकर यह बताओ तो यह गांव उजड़ा हुआ है या बसा हुआ है ? कुमारकी यह बात सुन और उसका असली तात्पर्य न समझ इंद्रदत्तने अपने मनमें विचार किया कि यह बालक पक्का मूर्ख है क्योंकि यह गांव अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम पदा-

मामक ? यावो वां द्विजाग्रे भोजनाय वै । गतौ निर्घाटितौ विप्रैर्द्विजाः पश्चिमवुद्धयः ॥ ११५ ॥ जठराग्निमठं प्राप्य स्थितस्तेन समं मुदा । कुमारं श्रेणिकं मत्वा भोजनादिपुरस्कृतः ॥ ११६ ॥ ततोऽवादीत्तरां बौद्धः श्रेणिक ! शृणु मद्वचः । बौद्धं धर्मं गृहाण त्वं येन राज्यं भविष्यति ॥ ११७ ॥ विपदः संपदायंते कष्टं याति विरागवत् । बौद्धधर्मात्परो धर्मो नोऽभून्नैव भविष्यति ॥ ११८ ॥ प्रतिपद्य तदा गंतुमुत्सुकोऽग्रे कुशाग्रधीः । तेनासाविंद्रदत्तेन मार्गे कौतुककृद्धठात् ॥ ११९ ॥ उवाच श्रेणिको धीमान् भो भो मातुल ! शीघ्र-

भोजनके लिये कहें। वस दोनोंके दोनों विप्रके पास गये परंतु उसने इनकी एक भी न सुनी। विप्रोंने उन्हें सूखा ही टाल दिया। ठीक ही है विप्रगण विचित्र बुद्धिके धारक होते हैं—अपने घमंडके सामने किसीको भी नहीं सुनते ॥ ११३—११५ ॥ उसी गांवके अंदर एक बौद्धोंका भी मठ था। कुमार श्रेणिक विप्रोंके उत्तरसे हताश हो मामा इंद्रदत्तके साथ उसी मठमें जाकर प्रवेशकर गये और आनन्दवार्ता करने लगे। वहांपर एक बौद्ध सन्यासी जो कि कुमार श्रेणिकको पहिचानता था, रहता था। कुमार श्रेणिकको पहिचानकर उसने कुमारका भोजन आदिसे पूरा आदर सत्कार किया एवं अंतमें कुमारके संतुष्ट हो जानेपर वह इप्रकार कहने लगा—

प्रिय कुमार ! मालूम होता है तुम राज्य प्राप्तिकी कोई आशा न रख यहां वहां मारे फिर रहे हो और अत्यंत दुःखका अनुभव कर रहे हो। तुम बौद्धधर्मको धारण कर लो। इस बौद्ध धर्मकी कृपासे नियमसे तुम्हे राज्य मिलेगा क्योंकि इसी बौद्ध धर्मकी कृपासे जो घोर विपत्तियां है वे संपत्तियां हो जाती है एवं जिसप्रकार विरागी पुरुष धन धान्य आदिको छोड़ देता है उसीप्रकार बौद्ध धर्मके सेवन करनेवालेको कष्ट छोड़कर भाग जाता है उसे किसी प्रकारका कष्ट भोगना नहीं पड़ता विशेष क्या यह बौद्धधर्म इतना उत्तम धर्म है कि न तो इससे उत्कृष्ट धर्म संसारके अन्दर हुआ न होगा ॥ ११७—११८ ॥ कुशाग्रवुद्धि कुमार श्रेणिकने बौद्धसाधुके कहे अनुसार बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। सेठ इंद्रदत्तके साथ वे नंदिग्रामसे आगेको चल दिये एवं कौतूहली और बुद्धिमान वह कुमार श्रेणिक मार्गमें इसप्रकार वार्तालाप करता करता चलने लगा—

कथं राज्ञः कोपो वल्लभप्राणहृत् ॥ १०६ ॥ तदा जगाद मंत्रीशो राज्यं नूनं तवैव भो । परंतु शासना राज्ञः पालनीया प्रयत्नतः ॥ ११० ॥ निस्ससार कुमारोऽसौ श्रुत्वा दुर्वचनं हि तत् । भटैः पंचायुतैर्गुप्तैर्मृग्यमाणो विषण्णधीः ॥ १११ ॥ अथ माता तदा श्रुत्वा चक्रं देति मनोभव ! हा हा पुत्र ! सुवर्णाभ ! शोभामृत् सांध्यरागजित् ॥११२॥ मार्गे गच्छन् ददर्शासौ कुमारो मारविग्रहः । नंदिग्रामं गुणारामं दृष्ट्वा कृती न्यवीविशत् ॥११३॥ सभामंडपमासाद्य यावत्पश्यति कौतुकं । तावदग्रे स्थितो दृष्ट इंद्रदत्तो वरार्थिकः ॥११४॥ यदि

बना, केवल वह इसप्रकार चापलूसी करने लगा—

कुमार ! यह तुम निश्चय समझो कि राज्य तुम्हारा ही है—तुम्हारे प्रतापके सामने अन्य पुत्र राज्यका अधिकारी नहीं वन सकता परंतु महाराजकी आज्ञा इस समय ऐसी ही है, वह तुम्हे निःसंकोच भावसे इस समय अवश्य पालन करनी चाहिये इसीमें कुशल है ॥ १०२—११० ॥ वलवानके सामने कुछ वश चल नहीं सकता । मंत्रीके उसप्रकारके दुर्वचन सुन कुमार श्रेणिकको बड़ा खेद हुआ एवं वे महाराज उपश्रेणिक द्वारा नियुक्त पांच (?) जासूस सुभटोंकी देख रेखमें खिन्न चित्त नगरसे निकल दिये ॥ १११ ॥ माताका प्रेम विलक्षण होता है कुमारको ऐसी हालतसे चले जानेपर उनकी मा इंद्राणीको बड़ा दुःख हुआ। वह माता हा कामदेव ! हा पुत्र ! हा सुवर्णके समान देदीप्यमान कांतिके धारक ! एवं हा संध्याकालकी ललाईको फीकी करनेवाले कुमार ! तू कहां गया ? इसप्रकार करुणाजनक स्वरसे रोने लगी ॥ ११२ ॥

कामदेवके समान सुंदर शरीरके धारक कुमार श्रेणिकने मार्गमें जाते जाते एक नंदिग्राम नामका गांव देखा जो कि गुणोंका साक्षात् वगीचा स्वरूप था । वह पुण्यवान कुमार उसमें प्रवेश कर गया । गांवके मध्यभागमें राज्यकी ओरसे बने सभा मंडपके पास पहुंचकर कुमार चकित दृष्टिसे उसे देख ही रहे थे कि सामने एक इंद्रदत्त नामका वैश्य दीख पड़ा । अपने समान उसे भी पथिक जान उसे मामा बनाया और उससे इसप्रकार कहने लगे—राज्यकी ओरसे यहांपर एक दान-शाला खुली हुई है उसका स्वामी.एक विप्र है । आओ अपन दोनों उसके पास चलें और उससे

राजा ' सुखिनं कृत्वा गतः श्रेणिकसन्निधौ । समाभाष्य शुभैर्वाक्यैर्व्याजहार गिरं गुरु ॥ १०३ ॥ नो पुत्र ! श्रूयतामद्य महान् कोपोस्ति भूपतेः कुतो मं त्रिँस्त्वकं ब्रूहि ? कुमार ! श्रूयतां वचः ॥ १०४ ॥ कस्माच्चित्पुरुषात् राज्ञा श्रुतं निंद्यं कदर्थमा । पुरश्वैर्नितरां भुक्तं तद्भुक्तं श्रेणिकेन च ॥ १०५ ॥ इति राज्ञो महाद्वेषो बभूव तवकोपरि । तस्मात्क्षणं विलंब्यो न राज्ञः कोपो हि दुर्गमः ॥ १०६ ॥ विद्याविभववाणिज्यं व्यसनं वै विचित्रता । वादो वाणीविलासश्च भ्रश्यंते राजकोपतः ॥ १०७ ॥ इति श्रुत्वा कुमारोऽसौ व्याजहार वरं वचः । यक्तेर्भोज्यं न रक्षेत राज्यं रक्षेत तैः कथं ॥ १०८ ॥ वदिष्यंतीति लोकौघाश्चातुर्याभोजि मे ततः । विधीयते

कुमार ! राजगृह नगरमें इस समय तुम्हारा रहना उचित नहीं क्योंकि महराज तुम्हारे ऊपर इस समय अत्यंत कुपित हैं। मंत्रीकी यह आश्चर्य भरी बात सुन कुमारने पूछा—महाराजका कोप मेरे ऊपर क्यों है ? मंत्रीने उत्तर दिया—महाराज उपश्रेणिकने किसी पुरुषके मुखसे यह निंदित और क्षुद्र बात सुनी है कि कुमार श्रेणिकने कुत्तोंका झूठा खाया है, जीमते समय कुत्तोंके आजानेपर जिसप्रकार और कुमार उठकर खड़े हो गये वह नहीं उठा था-जीमता ही रहा था, वस तुम्हारे ऊपर यही राजाके कोपका कारण है। तुम्हे अब क्षण भर भी यहां नहीं रहना चाहिये क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है कि ' राजाका क्रोध महा दुर्गम—भयंकर होता है। राजाके क्रोधके सामने विद्या ऐश्वर्य व्यापार विशिष्ट भोजन चातुर्य वाद करना और सरस्वतीका विलास, सवके सव एक ओर किनारा कर जाते हैं—रंचमात्र भी किसीका आदर नहीं होता। मंत्रीकी यह विचित्र वात सुन कुमारने मनोहर वचनोंमें यह उत्तर दिया—

भाई मंत्री ! तुम्हारी बात मुझे युक्ति पूर्ण नहीं जचती। आश्चर्यकी बात है कि जो अपने भोजनकी रक्षा नहीं कर सकते वे राज्यकी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं ? भाई ! सारा संसार यह कह रहा है कि मैंने बड़ी चतुरता और वीरतासे भोजन किया है और वास्तवमें मेरा उसी तरह भोजन करना उपयुक्त था परंतु वल्लभ—अपने प्रिय पुत्रके प्राणोंका हरण करनेवाला महाराजका यह कोप क्यों ? कुमारका यह युक्तिपूर्ण उत्तर सुन विज्ञ भी मंत्रीसे कुछ भी जवाव न

॥ ९८ ॥ देशाधीशा जिताः सर्वे नमंति त्वां नराधिपं। किन्नूनं विद्यते स्वामिनित्युक्त्या यो षमाश्रितः ॥ ९९ ॥ श्रुत्वाहासौ नराधीशः सुमते ! श्रूयतां वचः। राज्यं चलातिपुत्राय पुरा दत्तं मया मुदा ॥ १०० ॥ निमित्तज्ञानतो नूनमाधिपत्यं महर्द्धिकं। अधिश्रेणिकमस्त्ये व चिंतायाः कारणं, त्विदं ॥ १०१ ॥ जगौ मंत्री तदा सुज्ञः सुखं तिष्ठ नराधिप ! । श्रेणिकं देशतो नूनं निर्गमयामि सांप्रतं ॥ १०२ ॥

वासमें बहुतसी रानियां हैं जो कि हरिणियोंके समान सुंदर नेत्रवाली हैं। बुद्धिपूर्वक बड़े प्रेमसे आपकी सेवा करनेवालीं हैं। अपनी सुंदरतासे चित्त चुरानेवालीं हैं। स्तनोंके भारोंसे आगेको कुछ झुकी हुईं हैं एवं चंद्रमाके समान मनोहर मुखोंको धारण करनेवालीं हैं ॥ ९७—९८ ॥ देशोंके स्वामी जितने राजा थे वे समस्त आपने जीत लिये जिससे वे आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं इस रूपसे जब आपके कोई बातकी कमी नहीं दीख पड़ती फिर नहीं मालूम होता आप किस चिंतामें भीतर ही भीतर घुले जाते हैं—कौन चिंता आपके पीछे लगी हुई है। बस इतना कहकर जब मंत्री सुमति चुप रह गया तब उत्तरमें महाराज उपश्रेणिकने कहा—

प्रियमंत्री सुमति ! तुमने जो कुछ भी कहा है सब ठीक है परंतु मेरी बात सुनो—मैं पहिले प्रसन्नता पूर्वक चलाती पुत्रको राज्य देनेका वायदा कर चुका हूं परंतु ज्योतिषीने अपने निमित्त ज्ञानसे राज्यप्राप्तिके जो भी निमित्त बतलाये हैं उनसे इस विशाल राज्यका अधिकारी श्रेणिक ही सिद्ध होता है बस मेरी सारी चिंताका कारण यही है क्योंकि ऐसा होनेसे मैं वचन हार होता हूं ॥९९—१०१ ॥ मंत्री सुमति बुद्धिमान था। महाराज उपश्रेणिककी यह आत्मकहानी सुन उसने कहा—महाराज आप सुखपूर्वक रहें, कुमार श्रेणिकको मैं अभी देशसे बाहिर किये देता हूं। श्रेणिकके चलेजानेपर आप चलाती पुत्रको राज्य देकर अपने वचनकी रक्षा कर सकते हैं। बस इसप्रकार राजाको प्रसन्न कर मंत्री सुमति कुमार श्रेणिकके पास गया। पहिले तो मीठे २ वचनोंमें बात चीत की पीछे कुछ चेहरेपर गौरव लाकर गंभीर वचन बोलने लगा—

करोमि गुणप्रियः ॥ ६३ ॥ नार्पयामि यदा राज्यं चलातिसूनवे भृशं । याति वाक्यं मदीयं वे वैयर्थ्यं जीवितं तदा ॥ ६४ ॥ वचनं हारितं येन तेन पुण्यादि हारितं एवं तं चिंतया ग्रस्तं दृष्ट्वामात्यो जगाद भो । सुमत्याख्यो गुणाम्भोधिः सभ्यश्चिंतानिवर्तकः ॥६५॥ राजंस्तेऽस्ति च का चिंता गर्जंति गजराजयः। मदोन्मत्तामहातुंगा पुष्करोद्गगनस्पृशः ॥ ६६ ॥ जविनस्ताण्डवारंभकुशला जयशालिनः। ह्रेषति सुभटाग्रण्यो योद्धारश्च रणाजिरे ॥ ६७ ॥ मृगीदृशो महाप्रीत्या सेवंते त्वां विवेकतः । चित्तस्तेयास्तनोद्धारनमिता रात्रिपाननाः

कुमार श्रेणिकको ही पाया इस लिये बड़ी भारी चिन्ता उनके हृदयमे प्रविष्ट होगई एवं वे मन ही मन दुःखित हो इस प्रकार विचारने लगे—

मैं चिलाती पुत्रको राज्य देनेका पहिले संकल्प कर चुका हूं परन्तु ज्योतिषी द्वारा बतलाये गये निमित्तोंसे राज्यका अधिकारी गुणोंका प्रेमी कुमार श्रेणक ही सिद्ध होता है ऐसी हालतमें क्या करूं । यदि मैं चलाती पुत्रको राज्य न देकर कुमार श्रेणिकको देता हूं तो मैं पहिले जो वचन दे चुका हूं वह व्यर्थ होता है एवं वचनके व्यर्थ होनेपर मेरे जीवनका कोई मूल्य नहीं होता क्योंकि संसारमें यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जो वचन हार हो गया वह पुण्य आदि सव ही उत्तम गुणोंका हारनेवाला हो गया—वचन हारनेवालेकी आत्मामें पुण्य आदि कभी स्थान नहीं पा सकते । इसलिये मुझे क्या करना चाहिये कुछ सूझ नहीं पड़ता ? महाराज उपश्रेणिकके प्रधान मंत्रीका नाम सुमति था । वह मंत्री सुमति गुणोंका समुद्र था । अत्यंत सभ्य था एवं चिंताको दूर करनेवाला था । अंतरंग चिंतासे ग्रस्त महाराज उपश्रेणिकको उसने ताड़ लिया और शांति जनक मीठे शब्दोंमें वह उनसे यह कहने लगा—

महाराज ! आपके हाथियोंके समूहके समूह विद्यमान हैं । जो कि मदोन्मत्त हैं । खूब ऊंचे ऊंचे हैं एवं अपनी सूंढ़से आकाशको स्पर्श करनेवाले हैं ॥ ६२—६६ ॥ आपके बहुतसे घोड़े हींस लगाते हैं जो कि अपनी चालसे तांडव नाच नाचते हैं और पवनके समान शीघ्रगामी हैं । बडे बडे सुभट और योद्धा भी आपके यहां मोजूद हैं जो कि रणके मैदानमें गर्जनेवाले हैं । आपके रण-

कुंभान्जलैःपूर्णान् समुद्रान् वस्त्रसंस्कृतान् ॥८९॥ कृत्वा प्रत्येकपुत्रेभ्य एकैकः स प्रदीयतां । उच्यतामिति भो पुत्र ! अनुद्घाट्य सुभुंजत ॥ ९० ॥ तथा करिष्यति हे राजन्नाधिपत्याधिपो हि सः । एवं पंचनिमित्तांकान्निगद्य विरराम सः ॥९१॥ तथाकार्षीन्नराधीशो लक्षणैश्च परीक्षणं । श्रेणिकं राज्यनाथं हि मत्वा चित्तेऽन्वचिंतयत् ॥ ९२ ॥ अहो चलातिपुत्राय दत्तं राज्यं मया पुरा । लक्षणैः सन्नयं राजा किं

तयार हो जाय समस्त पुत्रोंको बुलाकर एक पंक्तिमें जीमनेके लिये बिठा दीजिये और पीछे से उनपर भयंकर कुत्तोंको छोड़ दीजिये जो प्रतापी पुत्र अपनी उग्र शक्तिसे उन कुत्तोंको हटाकर सानन्द भोजन करता रहेगा समझ लीजिये महाराज ! वही अपने मनोहर रूपसे कामदेवको भी जीतने वाला कुमार राजा बनेगा अन्य नहीं । राज्य प्राप्तिका चौथा निमित्त यह है कि नगरमें आग लगानेपर जो पुत्र राज्यके मुख्य चिन्ह छत्र चमर और सिंहासनको लेकर भागे बस वही राजा बननेका अधिकारी है अन्य नहीं । तथा राज्यप्राप्तिका पांचवा निमित्त यह है कि आप खाजे और लाडुओंसे भरवाकर पिटारोंको रखवा दीजिये और जलसे परिपूर्ण कोरे घड़े जिनपर कि मोहर लगी हो और जिनका मुख वस्त्रसे ढांका हुआ हो रखवा दीजिये जिस समय यह कार्य हो चुके उस समय आप समस्त पुत्रोंको बुलाइये । उन्हें एक एक पिटारा और एक एक जलसे भरा घड़ा दीजिये और यह आज्ञा कर दीजिये कि वे पिटारे और घड़ोंका मुख खोले बिनाही खाजे आदि पदार्थ खावें और पानी पीवें । समस्त पुत्रोंमें जो प्रतापी पुत्र यह कार्य करेगा बस वही राजा बनेगा अन्य राज्यका भार नहीं सह सकता । बस राज्यकी प्राप्तिके पांच निमित्त बतलाकर वह ज्योतिषी चुप रहगया ॥८५—९१॥ ज्योतिषीके कहे अनुसार महाराज उपश्रेणिकने भी पूर्वोक्त निमित्तोंसे राज्यकी प्राप्तिके योग्य पुत्रकी परीक्षा करनी प्रारम्भ कर दी । समस्त परीक्षाओंमें पास

१ कुमार श्रेणिकने ओसके जलसे पूर्ण घासपर कपड़ा बिछाकर और उसे नीचोड़कर घड़ा भर लिया था और किसी पुत्रको यह अक्ल नहीं सूझी थी । २ कुमार श्रेणिकने पिटारा हिला २ कर चूर कर सब माल खा लिया था । घड़ा टेढ़ाकर पानी पी लिया था ।

को भविष्यति । लग्नं विचिंत्य च दृष्टं स्वामिदृष्टं शुभाश्रितं ॥८२॥ योगाधियोगिकः प्राह श्रृणु सामंतनायक! शर्कराकुंभको देयः प्रत्येकं सर्वसतुजां ॥ ८३ ॥ कुंभमन्येन गोध्रेन यः सद्म प्रति नेष्यति । राज्यभाजं विजानीयाः प्रांशुलं गतविद्विषं ॥ ८४ ॥ ओसजैः सलिलैः कृत्वा भृत्वा कुंभं समेष्यति । राज्यभाजं विजानीयास्तृतीयांकं निगद्यते ॥ ८५ ॥ नानाव्यंजनसद्भोज्यं पूपापायससंयुतं । कारयित्वा सुतान् सर्वान्नेकपंक्तौ निवेशय ॥ ८६ ॥ शुनकान् मोचयेः पश्चात्तान्निवार्य भुनक्ति यः । राज्याधिपं त्वकं विद्या रूपनिर्जितमन्मथं ॥८७॥ दह्यमाने पुरे यस्तु छत्रचामरविष्टरं । नीत्वा प्रयाति राजा स पंचमाकं समुच्यते ॥८८॥ खज्जलालुकपर्यांतान् करण्डान् सं विधाय च । कौर

प्रिय ज्योतिषी । तुम अनेक प्रकारकी कला और कौशलोंके पारगामी हो कृपाकर बताओ तो कि मेरे इन समस्त पुत्रोंमें राज्य प्राप्त करने वाला कौन पुत्र होगा ? क्योंकि जो बात लग्न विचारकर देखी जाती है और जो स्वामी भगवान केवली द्वारा देखी जाती है वह शुभजनक अर्थात् ठीक ही निकलती हैं ॥८०--८२॥ वह ज्योतिषी समस्त ज्योतिषियोंमें मुख्य था । महाराज उपश्रेणिकके वैसे वचन सुनकर वह कहने लगा—हे अनेक सामन्तोंके स्वामी राजा ! मैं राज्यकी प्राप्तिके कुछ निमित्तोंका वर्णन करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

महाराज । राज्यकी प्राप्तिका सबसे पहिला निमित्त यह है कि आप अपने सब पुत्रोंको बुलाइये और उन्हें अपने अपने घर ले जानेके लिये एक एक घड़ा दीजिये जो प्रतापी पुत्र उस घड़ेको अपने शीशपर्यन्त रखकर किसी अन्य मनुष्य (चाकर) के शिरपर रखवाकर अपने घर ले जाय, समझ लो राज्यका प्राप्त करने वाला वही है और वही बलवान और शत्रुओंका वश करनेवाला है अन्य नहीं ॥८३—८४॥ दूसरा, राज्यकी प्राप्तिका निमित्त यह है कि आप अपने समस्त पुत्रोंको बुलाकर प्रत्येकको एक एक कोरा घड़ा दीजिये और यह आज्ञा कीजिये कि हर एक कुमारको ओसके जलसे भरकर घड़ा लाना होगा जो प्रतापी कुमार घड़ाको ओससे भरकर ले आवे समझ लो वही राज्यकी धुरा धारण कर सकता है अन्य नहीं । राज्यकी प्राप्तिका तीसरा निमित्त यह है कि पूआ खीर आदि नाना प्रकारके व्यंजनोंसे महा मिष्ट भोजन आप तयार कराइये । जिस समय भोजन

लासैश्च सुं बनैरंभणैस्तथा । रेमे राजा रतिक्रीड़ापर्वते स्ववने गृहे ॥ ७८ ॥ पुत्रो जातस्तयोः क्रीड़ाशक्तयोर्लक्षणान्वितः । चलातीत्यभिधो वालो ववृधे वालचंद्रवत् ॥ ७६ ॥ यौवनाढ्यो यदा जातश्चिंतयामास भूपतिः । राज्यं हि श्रेणिकस्यैव वरो दत्तोऽस्मकै मया ॥ ८० ॥ संचिंत्येत्थं निमित्तज्ञं समाहूय जगाविति । भो भो निमित्तसंज्ञानिन् कलाविज्ञानपारग ! ॥ ८१ ॥ एतेषां मम पुत्राणां राज्यभाक्

न कर राजा यमदण्डकी वात उन्होंने स्वीकार कर ली । सुन्दरी तिलकवतीके साथ उनका विवाह हो गया । राजा यमदण्डकी सेनासे वेष्टित हो बड़े ठाट वाटसे वे अपने राजधानीकी ओर चल दिये एवं अपने नगरमें प्रवेश कर गये ॥७३-७६॥ अपने महाराजकी फिरसे प्राप्ति दुर्लभ जान नगर निवासियोंको बड़ा आनन्द हुआ । महाराजकी प्राप्तिकी खुशीमें राजगृह नगर ध्वजा पताका तोरण आदिसे सजा दिया गया एवं समस्त सामंत मन्त्री आदिने भगवानकी पूजा अभिषेक आदि मंगलीक कार्य किये ॥७७॥ राजमहलमें प्रवेश कर राजा उपश्रेणिक रतिक्रीडाके योग्य पर्वत वगीचे और महलोंमें रमणी तिलकवतीके साथ सानन्द भोग भोगने लगे। कभी तो महाराज उपश्रेणिकने नानाप्रकारके हाव भाव और विलासोंके साथ भोगोंके सुखोंका अनुभव किया एवं कभी कभी वे चुम्बन और आलिंगनोंसे भोगोंका रस आस्वादने लगे ॥७७—७८॥ नानाप्रकारकी क्रीडाओंमें आसक्त उन दोनोंके भोगोंका फलस्वरूप एक पुत्र हुआ जो कि राजलक्षणोंसे युक्त था 'चलाती, इस शुभ नामका धारक था एवं वह पुत्र वाल चन्द्रमाके समान दिन दिन बढ़ने लगा ॥७६॥कामांध महाराज उपश्रेणिक चिलाती पुत्रको राज्य देनेका वायदा कर चुके थे इसलिये जिस समय कुमार चिलाती युवा हो गया महाराज उपश्रेणिकको चिन्ताने अपना स्थान बना लिया । वे मन ही मन सोचने लगे कि सब पुत्रोंमें कुमार श्रेणिक राज्यके योग्य है इसलिये हक प्राप्त तो राज्य श्रेणिकका ही है परन्तु मैं चिलाती पुत्रको उसे देनेका वायदा कर चुका हूं ऐसी दशामें क्या करूं ? बहुत कुछ सोच विचारके वाद महाराज उपश्रेणिकने ज्योतिषी बुलाया और उससे इस प्रकार कहने लगे—

॥ ७३ ॥ अतः पुत्र्याः सुखं न स्यात् पुत्रो भावी न वा प्रभो ! भविष्यत्यथ वा पुत्र. सेवया जीवितं वृथा ॥ ७४ ॥ मत्पुत्रीजाय राज्यं चेद्दास्यसि त्वं यदा तदा । ददामि पुत्रिकां तुभ्यं प्रतिपन्न तथैव तत् ॥ ७५ ॥ उपश्रेणिकभूपाल उवाच तद्वचः स्मरविराजितः । जंगम्यते स्म राज्ये स्वे विवेश नगर निजं ॥७६॥ उत्तरार्कं पुरं कृत्वा तोरणादिपुरस्सरं । सर्वसामंतसंगत्या विदधुर्मंगलक्रियां ॥ ७७ ॥ हावैर्भावैर्वि

कर महाराज उपश्रेणिकका चित्त ठिकाने न रहा। वे हृदयसे मोहित हो गये एवं अपने मनोहर दांतोंकी प्रभासे विशाल सभाको शोभायमान करनेवाले वे महाराज उपश्रेणिक भिल्लराज यमदंडसे कन्या तिलकवतीकी याचना कर बैठे ॥ ७२ ॥ राजा यमदंडने महाराज उपश्रेणिककी जिस समय यह याचना सुनी तो वह उनकी प्रार्थना नामंजूर तो न कर सका क्योंकि महाराज उपश्रेणिक नीतिपूर्वक प्रजाके पालन करनेवाले एक महान् राजा थे परंतु वह अपनी पुत्रीकी कल्याणकी इच्छासे इसप्रकार कहने लगा—

कृपानाथ ! आप इससमय एक प्रधान राजा माने जाते हैं और आपके रणवासमें अगणित सुंदरियां मोजूद हैं जो कि सुंदरतामें एकसे एक बढ़ी चढ़ी हैं, संभव है उनकी मोजुदगीमें मेरी पुत्री तिलकवतीको सुख चैन न मिले। अथवा पुत्रकी उत्पत्तिसे स्त्रियां विशेष सुख अनुभव करती हैं संभव है इसके पुत्र न हो जिससे भी इसे कष्ट भोगना पड़े। अथवा शुभ भाग्यसे उसके पुत्र भी हो जाय परन्तु अन्य पुत्रोंके विद्यमान रहते वह राजा न बन सके उनका सेवक ही बना रहे ऐसी दशामें भी मेरी पुत्रीको सुख मिलना कठिन है क्योंकि सेवासे जीवनका बिताना निरर्थक समझा जाता है इसलिये पुत्रीके सुखकी अभिलाषासे मेरी यह प्रार्थना है कि यदि आप यह बात स्वीकार करें कि इस पुत्रीसे जो पुत्र हो वही राज्यका अधिकारी समझा जाय उसके रहते अन्य कोई पुत्र राजा न बनाया जाय तो मुझे आपको पुत्री देनेमें कोई उज्र नहीं-मैं सहर्ष उसे आपको प्रदान कर सकता हूं। महाराजा उपश्रेणिक तो उससमय कामांध थे। योग्य अयोग्यका कुछ भी विचार

पप्रच्छ परमानन्दवाक्यैर्ललितविग्रहः । राज्ञा प्रोक्तं च तद्वृत्तं विचित्रा कर्मणां गतिः ॥ ६७ ॥ प्राहोपश्रेणिको श्रीमान् कोऽसि त्वं वससि क्व च । स्वीयराज्यप्रणाशत्वादत्रैव वसतिर्मम ॥ ६८ ॥ एहि राजन् ! ममागारे देहपीडापनुत्तये । गत्वाचारं समालोक्य प्रोवाच वचनं क्षितीट् ॥ ६९ ॥ नो भुनज्मि तवागारे ह्याचारपरिवर्जिते । तदाह यमदंडाख्यः शृणुताद्वचनं मम ॥ ७० ॥ तिलकादिवती पुत्री सामुद्रलक्षणांकिता । पथ्यं विधाय सद्भक्त्या भोजयिष्यति भूपते ? ॥ ७१ ॥ ररंज भूपनिर्भक्त्या तस्या रूपेण मोहितः । ययाचे ता यमं भूपं द्विजश्रीराजितोत्सभः (य.) ॥ ७२ ॥ तदाराक्षोयमो प्रोत्या भूपाल पालितप्रज । तवैव सुंदरीत्रातो त्रियतेऽत्यंतरूपवान्

नीचेसे ऊंचापन और ऊंचेसे नीचापन होगा किसीको जान नहीं पड़ता । अंतमें महाराज उपश्रेणिकने कहा—

प्रिय महानुभाव ! तुम कौन हो और तुम्हारा निवासस्थान कहां है ? उत्तरमें भिल्लराज यमदंडने कहा—राजन् ! जिस समय मेरा राज्य मेरे हाथसे चला गया और मैं राज्यरहित हो गया तबसे मैं इसी वनमें आ गया हूं और यहींपर रहने लगा हूं । भयंकर गढेमें गिरनेसे आपका शरीर पीड़ायुक्त हो गया है कृपाकर इस पीड़ाकी निवृत्तिके लिये आप मेरे घरपर चलें । भिल्लराजकी प्रार्थना राजा उपश्रेणिकने मंजूर करली । वे उसके साथ चले आये । घरमें आकर जिस समय उन्होंने यमदंडका आचार भीलों सरीखा देखा उन्हें वह सहन न हो सका इसलिये शीघ्र ही उन्होंने यमदंडसे कहा—भाई यमदंड ! तुम्हारा घर स्वाचार—श्रावककी क्रियाओंसे रहित है मैं तुम्हारे घरमें भोजन नहीं कर सकता । उत्तरमें यमदंडने कहा—कृपानाथ ! यदि यही बात है तो आप मेरी बात सुनें—। मेरे एक तिलकवती नामकी पुत्री है । सामुद्रिक शास्त्रमें कहे गये शुभ लक्षणोंसे युक्त है । श्रावकोंके घरमें जैसी भोजन क्रिया प्रचलित है वैसा ही भोजन बना सकती है इसलिये भक्तिपूर्वक वह आपके अनुकूल भोजन बनाकर आपको जिमा सकती है। महाराज उपश्रेणिकने यमदंडकी यह प्रार्थना स्वीकार करली एवं वे उसके हाथका बना महामिष्ट भोजन करने लगे ॥ ६४—७१ ॥ वह कन्या तिलकवती परम सुंदरी थी । उसका सौंदर्य और गुण देख

हा देव ! हा हा किं दुष्कृतं कृतं ॥ ६१ ॥ मुनीनां निंदया कंदमूलादिना सुभक्षणात् । धर्मवाक्योपघातान्मे पातकं समुपस्थितं ॥ ६२ ॥ दुर्गंधे नरकात्तत्र चकाण व्यथितो नृपः । जपन् जापं स्थितो यावत्तावदन्यकथांतरं ॥ ६३ ॥ अथ वैवच्छवासाख्यपल्यामभिधया यमः । स जात्या क्षत्रियो राजा भिल्लानां विद्यते भृश ॥ ६४ ॥ विद्युन्माली प्रिया तस्य पुत्र्यस्ति तिलका तयोः । क्रीड़ार्थे चागतः सोऽपि ददर्श पतितं नृपं ॥ ६५ ॥ दध्यौ तदा यमः प्रायः क्वायं राजगृहाधिपः । क्वात्रस्थेय विचिंत्येत्थमद्रिनो राजसन्निधौ ॥ ६६ ॥

आपसे जुदा होना पड़ा ॥ ६०—६१ ॥ हाय क्या मैंने मुनियोंकी निंदा की थी वा कंद मूल आदिका भक्षण किया था अथवा धर्मवाक्योंका उल्लंघन किया था जिससे तीव्र पापका बंध होकर मुझे यह दुःख भोगना पड़ा ॥ ६२ ॥ राजा उपश्रेणिकके कुटुंबी जन तो इधर इसप्रकार दुःख मना रहे थे उधर जिस गढ़ेमें घोड़ाने उन्हें ले जाकर डाला था वह गढ़ा नरकसे भी अधिक दुर्गंधमय था इसलिये उन्हें बड़ी व्यथा होने लगी । उन्हें उस समय सिवाय परमात्माके शरणके अन्य किसीका भी शरण न सूझ पड़ा इसलिये वे उन्हीके नामका जप वहां बैठकर करने लगे ॥६३॥ जिस बनके गढेमें महाराज उपश्रेणिक पडे थे उसी वनमें एक वैवच्छ(स्थ) वास नामकी भीलोंकी पल्ली थी। उस पल्लीका स्वामी यम (यमदंड) नामका भीलोंका राजा था जो कि क्षत्रिय जातिका था और सदा वहींपर रहता था । राजा यमदंडकी स्त्रीका नाम विद्युन्माली था । उससे उत्पन्न एक परम सुंदरी कन्या थी जिसका शुभ नाम तिलका (तिलकवती) था। क्रीड़ाका प्रेमी वह भिल्लराज यमदंड उस गढेके पास आ निकला और गढेमें शोचनीय अवस्थामें पड़े राजा उपश्रेणिकको उसने देखा । प्रसिद्ध महाराजको इसप्रकार बुरी हालतमें देख वह विचारने लगा कि-देखो कर्मकी विचित्रता, कहां तो यह राजगृहपुरका स्वामी उपश्रेणिक और कहां इसकी यह दुःखमय शोचनीय अवस्था ! बस वह शीघ्र ही राजाके बिलकुल पास पहुंच गया एवं मनोहर शरीरका धारक वह मीठे प्यारे शब्दोंमें कुशल पूछने लगा । महाराज उपश्रेणिकने भी जो बात जिसतरह वीती थी सारी कह सुनाई । रंचमात्र भी न छिपाई क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र है—किस समय

सत्कोडं सुवनं ययौ ॥ ५७ ॥ दुर्मुखो दुष्टचक्रको नोत्याऽश्वकः प्रगर्तके । अत्रोक्षिप्तः क्वापि दुर्निरीक्ष्यं हि दैवतं ॥ ५८ ॥ अहो लुलोकयामासुः श्रेणिकाद्याः सुताः परे क्वापि दृष्टो न भूपालो व्याघुट्य सद्मनि स्थिताः ॥ ५९ ॥ अथो इंद्राणिका राज्ञी विललापा- पतद्भुवि । गाढं चक्रंद हाराद्यत्रोटयद्वेणिकां त्वपि ॥ ६० ॥ हा हा नाथ ! गतोऽसि क्व मां त्यक्त्वा त्वं दुराशयां । हा प्राणनाथ !

वह उपाय मुझे करना चाहिये" ऐसा अपने चित्तमें विचार करने लगा। थोड़ी देर विचार करनेके बाद उसने एक मायामयी घोड़ा तयार किया जो कि अशिक्षित और दुष्ट था एवं उस घोड़ाको तथा और भी मुक्ताफल आदि मनोहर चीजोंको राजा उपश्रेणिककी सेवामें भैंट स्वरूप भेज दिया ॥ ४९—५६ ॥ राजा सोमशर्माकी भेजी हुई भैंट जिससमय महाराज उपश्रेणिकने देखी वे अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए। भेटकी चीजोंमें सबसे उत्तम घोड़ा उन्हें जना पड़ा इसलिये उसके अच्छे वुरेकी परीक्षा करनेके लिये वे शीघ्र ही उसपर सवार हो लिये और उत्तम क्रीड़ाके स्थान वनकी ओर चल दिये। वह दुष्ट घोड़ा सर्वथा अशिक्षित था चित्तमें दुष्ट अभिप्राय धारण किये था। वस जिस समय वह बनके अन्दर पहुंचा शीघ्र ही उसने किसी भयंकर गढ़ेमें महाराज उपश्रेणिकको डाल दिया और तत्काल कहीं चला गया ठीक ही है भाग्यकी महिमा दुर्निरीक्ष्य है-क्यासे क्या होगा, यह सूझ नहीं पड़ता ॥ ५६ ५८ ॥ महाराज उपश्रेणिकके इसप्रकार लापता हो जानेपर उनके श्रेणिक आदि पुत्रोंको बड़ा दुःख हुआ। अपने पूज्य पिताको वे इधर उधर खोजने लगे जब कहीं भी उनका पता न लगा तो वे समस्त पुत्र लौटकर अपने राजमहल चले आये ॥ ५९ ॥ अचानक ही महराजके लापता हो जानेपर महाराणी इंद्राणी विलाप करती करती जमीनपर गिर गई। दयाजनक रोने लगी। हार आदि भूषण तोड़कर फैंक दिये। चोटीके बाल विखर गये एवं इसप्रकार कहने लगी—हा स्वामी ! मुझ अभागिनीको छोड़कर आप कहां चले गये। हा प्राणप्यारे देव ! मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था जिसका फल यह हुआ कि मुझे

हुवीविशत् । पत्रं नत्वैव पप्रच्छ सोमशर्माभिधश्च तं ॥ ४६ ॥ कस्येदं दूत सत्पत्रं प्रोवाच मतिसागरः । राजगृहपुराधीशो राजोपश्रेणि-
केन ॥ ५० ॥ प्रेषितं भो नराधीश ! श्रुत्वा पत्रं लुलोक सः । स्वस्तिश्रीदं निपत्याशु मारुदेवं मनोहरं ॥ ५१ ॥ राजमहात्पुरात्
श्रीमान् महाराजोपश्रेणिकः प्रणिगदति शुभार्थं वै चंद्रपुर्यां च तत्पतेः (तिः) ॥ ५२ ॥ सर्वे सामंतभूपाश्च शासनं पालयंति मे । क्षुद्र-
स्त्वं च कथं सेवां नाकरोपि स्वगर्वतः ॥ ५३ ॥ यदि राज्ये भवेदाशा ह्यागंतव्यं त्वया तदा । श्रुत्वेति पत्रसद्भावं प्रतिपद्य ससर्ज तं ॥
५४ ॥ चिंतयामास चित्ते स्वे सोमशर्माभिधो नृपः । येनोपायेन पंचत्वं प्राप्नोति तं करोम्यहं ॥ ५५ ॥ ध्यात्वेत्थं विनयया कृत्वा श्रोटकं
दुर्धर दृढं । मुक्ताफलादिसद्वस्तुप्राभृतं प्राहिणोत्तक ॥ ५६ ॥ तदोपश्रेणिको दृष्ट्वा मुमोद मानसे स्वके । परीक्षार्थं वटित्वासौ

आज्ञासे वह चंद्रपुरकी ओर चल दिया। सभामें पहुंचकर राजाको नमस्कारकर और पत्र देकर अपने योग्य स्थानपर बैठ गया। पत्र पाकर राजा सोमशर्माने कहा—अरे दूत! कहांसे तू आया और किसका यह पत्र लाया है? उत्तरमें दूतने कहा--राजन्! राजगृहके स्वामी प्रसिद्ध राजा उपश्रेणिक हैं उन्होंने ही यह पत्र आपके लिये भेजा है। दूतके मुखसे यह वचन सुन राजा सोमशर्माने पत्र हाथमें ले लिया और उसे अपने मंत्रीको वांचने दे दिया वह भी स्वस्ति और लक्ष्मीको प्रदान करनेवाले महा मनोहर सिरनामेंपर लिखे हुये भगवान ऋषभदेवके वाचक शब्दोंको अर्थात् सिरनामेको छोड़कर जो कुछ भी उसमें आज्ञा लिखी थी इसप्रकार उसे वांचने लगा—

चंद्रपुरीमें उसके स्वामी राजा सोमशर्माके कल्याणकी अभिलाषासे राजगृहपुरसे श्रीमान् महाराजा उपश्रेणिक यह आज्ञा प्रदान करते हैं कि समस्त बड़े बड़े सामंत और राजा विनयपूर्वक मेरी आज्ञाका पालन करते हैं उनके सामने तुम बहुत क्षुद्र राजा हो परंतु अहंकारके पुतले होकर मेरी आज्ञा स्वीकार नहीं करते, यह सर्वथा अनुचित है। आजतक जो हुआ सो हुआ परंतु अबसे तुम्हारे लिये मेरी यह आज्ञा है कि यदि तुम्हें राज करनेकी इच्छा है तो तुम यहांपर आओ और मेरी सेवा करो। बस पत्रके लेखको इसप्रकार सुनकर और उसका भीतरी तात्पर्य समझकर दूतको तो विदा कर दिया परंतु "राजा उपश्रेणिक जिस उपायसे प्राण रहित हो जायं

राज्यलक्षणलक्षितः ।.श्रेणिकाख्यो वरीयांश्च रूपराजतमन्मथः ॥ ४५ ॥ अन्ये पंचशतान्येव पुत्रा आसन् सुभूपतेः । तैः साकं त्रिविधान् भोगान् भुंजन् स सुखतः स्थित ॥ ४६ ॥ अथ चंद्रपुराधीशः सोमशर्मातिविश्रुतः । मनुते नैव भूपस्य शासनं शुभशासनं ॥ ४७ ॥ तत्रोपश्रेणिको राजाऽलीलिखत्सद्दलं वरं । दत्त्वा दूतकरे शीघ्रं प्रेषयामास तं प्रति ॥ ४८ ॥ मतिसागराभिधो दूतो गत्वा दत्त्वा न्य-

सरीखी थी और वह मुखरूपी चंद्रमासे अमृत पीनेकी अभिलाषासे उसके मस्तकपर विद्यमान थी ऐसी जान पड़ती थी। उस महाराणीका ललाट भाग आधे चंद्रमाके समान शोभायमान था क्योंकि चंद्रमा जिसप्रकार हिरणके चिह्नका धारक माना जाता है, लालाट भी नेत्ररूपी हिरणोंका धारक था। चंद्रमा जिसप्रकार मंडलके बीचमें (पासेमें) रहता है ललाट भी सुवर्णमयी कुंडलरूपी चक्रके अर्ध भागमें था। इसप्रकार अपने मनोहर रूपसे कामदेवके समान वह राजा प्रीतिपूर्वक उस रानी इंद्राणीके साथ जुदी जुदी ऋतुओंके नानाप्रकारके भोग भोगता था एवं हास्य नाना-प्रकारकी क्रीड़ा और विनोदोंसे वह भोगोंकी सुंदरताका अनुभव करता था ॥ ४०—४४ ॥

महाराज उपश्रेणिकके महाराणी इंद्राणीसे उत्पन्न पुत्र श्रेणिक था। वह कुमार श्रेणिक उत्तमोत्तम राजलक्षणोंसे मंडित था। उत्कृष्ट था और अपने मनोहर रूपसे कामदेवकी तुलना करता ॥ ४५ ॥ कुमार श्रेणिकके सिवाय राजा उपश्रेणिकके और भी पांचसौ पुत्र थे जिनके साथ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ वह राजा सुखपूर्वक काल व्यतीत करता था ॥ ४६ ॥

इसी पृथ्वीपर एक चंद्रपुर नामका नगर है। चंद्रपुर नगरका स्वामी उस समय राजा सोमशर्मा था जो कि अत्यंत पराक्रमी और प्रसिद्ध था। राजा उपश्रेणिककी आज्ञा यद्यपि शुभ थी तथापि वह सोमशर्मा उनकी आज्ञा मानना नहीं चाहता था ॥ ४७ ॥ राजा उपश्रेणिकको यह बात पसंद न थी इसलिये शीघ्र ही उन्होंने एक आज्ञापत्र लिखवाया। दूत बुलाकर उसे सोंपा एवं शीघ्र ही उसे राजा सोमशर्माके पास भेज दिया ॥ ४८ ॥ दूतका नाम मतिसागर था। राजाकी

च शक्रस्य पत्तनं देवपत्तनं ॥३१॥ यत्र धान्यादिसंयुक्ता नराः सद्धर्ममंडिताः। कलाविज्ञानपारीणाः परमोत्साहिनो वभुः ॥३३॥ सुंदर्यः कामदीप्तांगा मृगाक्ष्यः पिकसुस्वराः। उत्तुंगस्तनभारेण नम्रा ईषत्सुमंदगाः ॥ ३४ ॥ सशीला मुखचन्द्रैश्च भूपितांतःस्वधामकाः। दानपूजादिसंसक्ता व्रताचारलसत्क्रियाः ॥३४॥ गतागतैः स्तनाश्लेषसंघट्टैश्च परस्परं। कामिनां हृदये दाहं कुर्वंत्य इव चावभुः॥३६॥ तत्रोपश्रेणिको राजा राजते रजनीशवत्। कुवलयानन्दको लोकचकोराह्लादकारकः ॥३७॥ वृषस्कंधः प्रतापी च अत्यंत धर्मात्मा हैं सदा सत्य बोलनेवाले हैं एवं मोक्षलक्ष्मीकी अभिलाषासे सदा ध्यानी और ज्ञानी हैं ॥ ३१ ॥

इसी मगध देशके अन्दर एक राजगृह नामका नगर है जो कि परम पवित्र है उत्कृष्ट है, सदा अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे शोभायमान रहता है अतएव अपनी दिव्य शोभासे यह इंद्रकी राजधानी स्वर्गलोककी उपमा धारण करता है ॥ ३२॥ उस समय यह नगर अनेक प्रकारके धान्योंसे व्याप्त था। इसमें रहने वाले मनुष्य परम धर्मात्मा थे। नाना प्रकारके कार्य और कौशलोंके पारगामी थे एवं प्रत्येक कामके करनेमें बड़े उत्साही थे इसीलिये वे राजगृहपुरकी शोभा स्वरूप थे॥ ३३ ॥ राजगृहपुरके अन्दर रहनेवाली सुंदरियां भी कामदेवसे देदीप्यमान अंगकी धारक थीं। हरिणियोंके समान नेत्रोंवाली थीं। कोकिलाओंके समान सुरीली थीं। विशाल स्तनोंके भारसे आगेको कुछ झुकी हुई थीं। मंद मंद चलनेवाली थीं। अत्यंत शीलवती थीं। अपने कांति परिपूर्ण मुखरूपी चंद्रमाओंसे अपने महलोंको प्रकाशमान करती थीं। दान पूजा आदि जितने भी पवित्र कार्य हैं उनमें लीन थीं। वे जितनी भी क्रियायें करतीं थीं व्रत और आचारके अनुकूल करती थीं इसलिये उनकी सारी क्रियायें निर्दोष होनेसे अत्यंत मनोहर होतीं थीं तथा राजगृहपुरमें नर नारियोंका इतना जमघट था कि वहांकी नारियां आने जानेसे तथा स्तन और आलिंगनोंके संघर्षणोंसे कामियोंके हृदयोंमें काम जनित दाह उत्पन्न कर देतीं थीं। अतएव वे मनको हरण करनेवालीं होतीं थीं ॥ ३४--३६ ॥

हेलानिर्जितशात्रवः । महाबाहुर्महारूढ़ो मकरध्वज इवापरः ॥ ३८ ॥ दानी धर्म्मी गुणी ज्ञानी महामानी महोद्धुरः । पीनग्रीवः कम्बु-पाणिश्चक्रमत्स्ययवांघ्रिपः ॥ ३९ ॥ तस्यैव हृदयानंदकारिणी मदनप्रियां विडंबमाना सत्कांतिश्चंद्रास्या च कुरंगदृक् ॥ ४० ॥ पट्ट-राज्ञी महाप्रीत्या राज्ञो जीवाधिका प्रिया । स्म वोभवीति चैंद्राणी नाम्नेंद्रस्य प्रिया परा ॥ ४१ ॥ स्निग्धवेणी विराजेत सर्पिणी नु भवेत्किमु । मुखचंद्रसुधापानं कर्तुं मस्तकमास्थिता ॥ ४२ ॥ भालमाभाति यस्यानु समर्थं दुरथो स्थितः । दृक्कुरंगधरो जंबूनदकुण्डल चक्रगः ॥ ४३ ॥ एतया सह संभुजन् भोगान् ऋतुसमुद्भवान् । हास्यक्रीडाविनोदैश्च रूपरंजितमन्मथः ॥ ४४ ॥ तयोः पुत्रोऽजनि प्राज्य

इसप्रकारके महामनोहर राजगृह नगरका रक्षण करनेवाला राजा उपश्रेणिक था जो कि रजनीश--चंद्रमाके समान महा मनोहर था । चंद्रमा जिसप्रकार कुवलय--रात्रिविकासी कमलोंको आनंद प्रदान करनेवाला होता है उसीप्रकार वह राजा भी कु-वलय--पृथ्वीमंडलको आनंद प्रदान करनेवाला था । चंद्रमा जिसप्रकार चकोर जातिके पक्षियोंको आनंद प्रदान करता है उसीप्रकार वह राजा भी लोकरूपी चकोर पक्षियोंको आनंद प्रदान करनेवाला था । वह महानुभाव राजा वैलके समान उन्नत स्कंधोंका धारक था । प्रतापी था । समस्त शत्रुओंका जीतना खेल समझता था । विशाल भुजाओंका धारक था । सुभट था । सुंदरतामें दूसरा कामदेव सरीखा था । दानी धर्म्मात्मा गुण-वान और ज्ञानवान था । उत्तम क्रियाओंके करनेमें पूरा घमण्ड रखता था । महान धीर वीर था । फूली हुई गर्दनसे युक्त था । कमलोंके समान शोभायमान हाथ तथा चक्र मच्छी और जोके चिन्होंसे शोभायमान पैरोंका धारक था ॥ ३७--३९ ॥

महातेजस्वी राजा उपश्रेणिककी पटरानीका नाम इंद्राणी था जो कि महाराजके हृदयको अत्यन्त आनंद प्रदान करनेवाली थी । कामदेवकी प्रिया रतिको भी अपनी शोभासे नीचा दिखाने वाली थी । चंद्रमाके समान मुखसे शोभायमान थी । हरिणीके समान विशाल नेत्रवाली थी । राजाको अपने जीवसे भी अधिक प्यारी थी एवं अपनी अनुपम सुंदरतासे इंद्रकी प्यारी दूसरी इंद्राणी सरीखी थी । उस महाराणी इंद्राणीकी काली लंबी चिकनी वेणी (चोटी) काली नागिनी

सभास्ते लेखपानां च नानाश्चर्यकरो नृणां ॥ २५ । तन्मध्ये मगधो देशश्चिंतारत्नमिव ध्रुवं । राजते निवरां हारमध्ये वै हीरको यथा । २६ । यो घोषादिमटंबैश्च कर्वटैर्वाहनैस्तथा महाग्रामैर्महापूर्भिराश्रितो वस्तुसंकुलः । २७ । यत्र नद्यो विराजंते सजलाः पद्ममंडिताः । राजहंसचकोरादिसारसैर्मुखरीकृताः ॥२८॥ कुर्कुटोत्पातसंलक्ष्या ग्रामा यत्र पदे पदे । तडागानि प्रपाः पांथसंतर्पिण्यो वभुस्तरां ॥२९॥ सरलास्तरवो यत्र वल्लीव्रातसमाश्रिताः । भ्रमद्भ्रमरसंरावमंडिताः पिकसत्स्वनाः ॥३०॥ धनिनो दानशीलाश्च धर्माढ्याः सत्यभाषिणः । ध्यानान्विता भवंत्येव ज्ञानिनो यत्र सच्छ्रिये ॥३१॥ तत्र राजगृहं नाम्ना पुरं परमपावनं । चोततां

अन्दर एक आर्य नामका महाखण्ड है जो कि वत्तीस विशाल देशोंका धारक है देवेन्द्र और मनुष्योंको अनेकप्रकारके आश्चर्योंका करनेवाला है ॥२५॥ भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगध नामका प्रसिद्ध देश हैं जो कि मनुष्योंकी अभिलाषा पूरण करनेके लिये चिन्तामणि रत्नके समान है एवं हारके मध्यभागमें जिसप्रकार हीरा रत्न मनुष्योंके चित्तको रंजायमान करनेवाला होता है उसी प्रकार भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगध देश भी मनुष्योंके चित्तको आनंद प्रदान करनेवाला है ॥२६॥ यह मगध देश घोष मटंब कर्वटोंसे अनेक प्रकारके वाहनोंसे वड़े वड़े गावोंसे और वड़े वड़े शहरों से व्याप्त है एवं अनेक प्रकारकी मनोज्ञ २ चीजोंका खजाना है ॥२७॥ इस देशके अंदर बड़ी बड़ी विशाल नदियां हैं जो कि निर्मल जल और महा मनोहर कमलोंसे शोभायमान हैं एवं राजहंस चकोर और सारस (स्यास) आदि पक्षियोंके मनोहर शब्दोंसे शब्दायमान हैं ॥२८॥ इसी देशमें एक गांवसे उड़कर कुक्कुट दूसरे गांवमें जा सकें इसरूपसे विलकुल पास पास वसे हुये गांव हैं और उसके तालाव प्रपा (प्याऊ) पथिकोंके मनको सन्तुष्ट करने वाले महामनोहर जान पड़ते हैं ॥२९॥ इस मगध देशके अन्दर महामनोज्ञ सीधे वृक्षोंकी पंक्तियां विद्यमान हैं जो कि नानाप्रकारकी लताओंसे व्याप्त हैं। घूमते हुए भौंरोंकी मधुर भुनभुनाहटसे चित्तको हरण करनेवाली हैं एवं कोकिलाओंकी मीठी मीठी ध्वनियोंसे शोभायमान हैं ॥३०॥ इस देशके धनी मनुष्य स्वभावसे ही दानी हैं- आहार आदि किसी भी दानका अवसर देख कभी भी उससे मुह मोड़नेवाले न

पद्मह्रदादिनिर्ह्रादगर्जनामधुरंवदः। १८। सूर्याचंद्राक्षिकस्ताराभरणामरविभूषितः। खगाचलमहापादः पद्मरागादिकांतिभृत्। जंबूशाल्मलिसद्धेतिः क्षारोऽर्णोंऽशुकावृतः। नानापत्तनमहारावंवेगशंसिगजध्वनिः। २०। जंबूद्वीपः (पं) पवित्रः (त्रं) सु(त्) लक्षैकयोजनप्रमः। विदेहादिमहाचित्रहृदो यो हृदयं गतः। २१। लक्षैकयोजनो मेरुर्विभाति रंजिताशयः। त्रिषष्टिषु सहस्राणां योजनानां विचित्रत्विट्। २२। अत्रशिष्टो हि तन्मध्ये शातकुंभात्मकोलकं। नानाचैत्यालयाकीर्णश्चतुरारामम(ं)डितः। २३। तस्य दक्षिणकाष्ठायां भारतं वर्तते स्फुटं। खगाचलगणेनैव कार्मुकाकृतिराजितं। २४। तत्रैवार्यो महाखंडो द्वात्रिंशद्विषयैर्भृतः।

राजा जिसप्रकार आभरण-भूषणोंसे शोभायमान रहता है उसीप्रकार जम्बूद्वीप भी तारा रूपी भूषणोंसे शोभायमान है। राजाके जिसप्रकार पैर होते हैं जम्बूद्वीपके भी खगाचल विजयार्ध-पर्वत रूपी पैर मोजूद है। राजा जिसप्रकार पद्मराग आदि भूषणोंकी कांतिसे देदीप्यमान रहता है जम्बूद्वीप भी खानियोंमें विद्यमान पद्मराग आदि मणियोंकी कांतिसे व्याप्त है। राजा जिसप्रकार अस्त्रशस्त्रोंका धारक होता है जम्बूद्वीपके भी जम्बूवृक्ष और शाल्मलिवृक्षरूपी शस्त्र विद्यमान हैं। राजा जिसप्रकार वस्त्रोंसे वेष्टित रहता है जम्बूद्वीप भी लवणोदधि समुद्रसे चारो ओरसे वेष्टित है। राजाके जिसप्रकार हाथियोंके चीत्कार होते रहते हैं उसीप्रकार जम्बूद्वीपके भी अनेक पत्तनोंमें रहने वाले प्राणियोंके कोलाहलोंके वेग ही प्रशस्त गजोंके चीत्कार हैं। तथा यह जम्बूद्वीप पवित्र एक लाख योजन चौड़ा है। विदेह क्षेत्र आदि क्षेत्र रूपी विशाल हृदयका धारक है एवं चित्तको अत्यंत आनन्द प्रदान करने वाला है ॥१७ १८॥ इसी जंबूद्वीपके ठीक मध्यभागमें एक सुमेरु नामका पर्वत है जो कि एक लाख योजन प्रमाण ऊंचा है। अपनी शोभासे अपने समीपवर्ती स्थानको शोभायमान करनेवाला है। त्रेसठ हजार योजनोंके इर्द गिर्दमें विद्यमान है। विचित्र कांतिका धारक है। सुवर्णमयी खोल स्वरूप है। अनेक चैत्यालयोंसे व्याप्त है एवं नन्दनवन सौमनस आदि वनोंसे रमणीक है ॥२२ २३॥ मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशामें भरत क्षेत्र है जो कि खगाचलों (पर्वतों)के समूहसे धनुषके समान आकारवाला शोभायमान जान पड़ता है ॥२४॥ इस भरत क्षेत्रके

भूमिहास्यया । चेद्गुणः कजसौगंधिवतैरिव सुतन्यते । १४ । वृषभेशस्य पादाब्जे चंचरीकत्वमेत्य वै । विधीयते ऽस्म काभिश्च पुराणं परमादरात् । १५ । बहूनां भव्यजीवानां कथाश्चोपकथास्तथा । धर्मस्वयंभुवोः ख्यातिस्तैर्गहनं समुद्रवत् । १६ । अथो असंख्यद्वीपानां मध्ये राजेव राजते । कुलाचललसद्बाहुर्भोगभूसुभटैः श्रितः । १७ । गंगासिंध्वादिभामाभिः सेव्यमानो निरंतरं ।

उतनी ही शुद्ध होती चली जायगी ॥१३॥ अथवा सज्जन और दुर्जनोंके सामने संसारमें हंसी करानेवाली इस व्यर्थ प्रार्थनासे भी क्या प्रयोजन क्योंकि यदि कविके अन्दर गुण होगा तो जिसप्रकार कमलकी सुगन्धि पवनके द्वारा चारो ओर फैल जाती है उसीप्रकार उस गुणके द्वारा कवित्वकी शक्तिकी प्रशंसा भी चारो ओर फैल जायगी ॥१४॥ ग्रन्थकार अपने पवित्र भाव झलकाते हुए कहते हैं कि-मैं भगवान ऋषभ देवके चरण कमलोंका भ्रमर वन इस भगवान विमलनाथके पुराणको बड़े आदरसे कह रहा हूं यह पुराण मामूली पुराण नहीं किन्तु इसके अन्दर बहुतसे भव्य जीवोंक कथा और उपकथाओंका वर्णन है। धर्म नामके बलभद्र स्वयंभू नामके नारायणके पवित्र चरित्रका कथन हैं इसलिये उनके निमित्तसे यह पुराण समुद्रके समान गम्भीर है अतः मनको स्थिरकरही हर एक विषयका पठन पाठन, हित करनेवाला होगा ॥१५॥१६॥

मध्यलोकके असंख्याते द्वीपोंके मध्यभागमें एक जम्बूद्वीप नामका प्रसिद्ध द्वीप है जो कि साक्षात् राजाके समान शोभनीक जान पड़ता है क्योंकि राजा जिसप्रकार विस्तीर्ण भुजाओंसे शोभायमान रहता है उसीप्रकार यह जंबूद्वीप भी कुलाचल रूपी विस्तीर्ण भुजाओंसे शोभायमान है। राजा जिसप्रकार अनेक सुभटोंसे व्याप्त रहता है उसीप्रकार यह जंबूद्वीप भी भोगभूमि रूपी सुभटोंसे व्याप्त है। जिसप्रकार राजा अनेक स्त्रियोंसे सेवित होता है उसीप्रकार जम्बूद्वीप भी गंगा सिन्धु आदि अनेक नदी रूपी स्त्रियोंसे सेवित है। राजा जिसप्रकार गर्जना परिपूर्ण किन्तु मधुर बोलनेवाला होता है। जम्बूद्वीप भी पद्म महापद्म आदि सरोवरोंके मनोज्ञ शब्दोंसे मधुर बोलनेवाला है। राजाके जिसप्रकार नेत्र होते हैं जम्बूद्वीपके भी सूर्य्य चन्द्रमा रूपी नेत्र विद्यमान हैं।

म्बुधिः । १२ । सज्जना अपि नंदंतु दुर्जनाश्च विशेषतः । स्तुतिनिंदकरा नूनं यद्धीत्या कविशुद्धता । १३ । भवेदनया व्यर्थयाख्यया

आदिके सामने तुच्छबुद्धिका धारक हूं तथापि मेरे मनमें जो चरित्र विद्यमान है उसे मैं अपनी थोड़ीसी बुद्धिसे भी वर्णन करनेका विशेष आकांक्षी हूं यहांपर यह कल्पना न कर बैठना चाहिये कि जब जिनसेन आदि सरीखे उद्भट विद्वान हैं तब तुम्हारी आवश्यकता क्या है ? क्योंकि जहांपर सूर्यका प्रवेश नहीं होता वहांपर दीपकसे भी काम चला लिया जाता है अर्थात् जो महानुभाव जिनसेन आदि सरीखे उद्भट विद्वानोंके गम्भीर बचनोंका तात्पर्य नहीं समझ सकते वे मेरे साधारण बचनोंसे अर्थलाभ कर सकते हैं । इसलिये मेरे द्वारा किये गये पुराणका वर्णन व्यर्थ नहीं । १० । ११ । फिर भी यह बात है कि मैं अपनी बुद्धिकी कल्पनासे कुछ कहूं तब तो वह कल्पना भगवान जिनसेन आदिकी कल्पनाके सामने फीकी मानी जा सकती है क्योंकि उनकी बुद्धि विशाल है और मेरी तुच्छ है परन्तु सो तो बात है नहीं किन्तु मुझसे महान और उत्कृष्ट पूर्व आचार्यों ने जो कहा है क्रमसे मैं उसीको कहता हूं । यहांपर भी यह न समझ बैठना चाहिये कि जब तुम्हारी बुद्धि तुच्छ है तब बिमलनाथ पुराण सरीखे विशाल कार्यमें तुम्हारा प्रवृत्त होना व्यर्थ है क्योंकि लोकमें ऐसी कहावत है कि अगस्त नामका ऋषि मामूली था परन्तु वह सारे समुद्रको पी गया था इस लिये क्षुद्र भी अगस्त ऋषिने जब विशाल भी समुद्र पी डाला था तब अल्प बुद्धिका धारक भी मैं विशाल पुराणका वर्णन कर सकता हूं क्या आश्चर्य है ? ॥ १२ ॥ बहुतसे लोग स्तुति करनेवालोंको अच्छा समझते हैं और निन्दा करनेवालोंको बुरा समझते हैं परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि यह बात मुझे पसंद नहीं मैं तो यह कहता हूं कि स्तुतिके करनेवाले सज्जन भी संसारके अन्दर वृद्धिको प्राप्त हों और निन्दाके करनेवाले भी विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त हों क्योंकि उनके भयसे कविकी विशुद्धता बढ़ती है । दुर्जन जितने जितने दोष निकालते जायंगे कविता भी उतनी

गाधिपारीणान् ध्यानसंस्थान् शिवप्रदान्। नंनस्ये मामके चित्ते भृशं भृंशितमन्मथान्।६। गुरुसामर्थ्यसंतप्ततपसा व्योमगा-
मिनः। गुरून् गाम्भीर्यधैर्यादिवारिखांतांश्च चिरिवषः।७। रामसेनान् महाविद्यान् कीर्त्या रामयशोधरान्। प्रावीभवन् यके नौमि
ज्ञानिनरसिंहकाश्च तान्।८। चिकीर्षुरहमस्येव पुराणं वैमलं ध्रुव। यथा पूर्वैर्महाप्राज्ञै जिंनसेनादिसूरिभिः। ६। क्वेदं क्व मे

जिसका उदय हुआ है ॥ ५ ॥ जो महानुभाव आचारांग आदि बारह अंगोंके पारगामी हैं।
ध्यानमें लीन हैं। मोक्षमार्ग प्रदान करनेवाले हैं और समस्त संसारको अपने वशमें करनेवाले
दुष्ट कामदेवके जीतनेवाले हैं उनकी भी मैं अपने चित्तमें पूर्ण भक्ति रखता हूं ॥ ६ ॥ मैं विद्या-
धरोंके समान गुरुओंको भी नमस्कार करता हूं क्योंकि जिसप्रकार विद्याधरगण आकाशमें गमन
करनेवाले हैं उसीप्रकार गुरुगण भी विशिष्ट सामर्थ्यसे तपे गये तपके द्वारा आकाशगामिनी ऋद्धिकी
प्राप्तिसे आकाशमें गमन करनेवाले होते हैं। जिसप्रकार विद्याधरगण गंभीरता धीरता आदि
गुणोंके धारक होते हैं उसप्रकार गुरुगण भी गंभीरता धीरता आदि गुणोंकी खान होते हैं। जिस
प्रकार विद्याधरगण 'चित्विषः,। चित्-विद्याओंसे देदीप्यमान रहते हैं। उसप्रकार गुरुगण भी ज्ञान
आदि गुणोंसे जाज्वल्यमान रहते हैं। जिसप्रकार विद्याधरगण 'रामसेनान्' सीताहरणके समय
रावणसे युद्धके समय रामचन्द्रकी सेनास्वरूप हुए थे उसीप्रकार 'रमंते योगिनोऽस्मिन्निति रामः'
अर्थात् जिनके ध्यानमें मुनिगण आनन्दका आस्वादन करैं वे राम-सिद्धपरमेष्ठी कहे जाते हैं। उन
सिद्धपरमेष्ठीकी निर्ग्रन्थ गुरुगण सेनास्वरूप हैं क्योंकि मुख्यरूपसे सिद्धपरमेष्ठीको ही उन्होंने अपना
स्वामी समझ रक्खा है। जिसप्रकार विद्याधरगण 'महाविद्यान्' अनेक महाविद्याओंके धारक
होते हैं उसीप्रकार गुरुगण भी महाज्ञानके धारक हैं। जिसप्रकार विद्याधरगण 'कीर्त्या रामयशोध-
रान्' कीर्तिके साथ रामचन्द्रके यशको सहन करने वाले थे अर्थात् समान जातीय और अपना स्वामी
होने पर भी वे रावणके विजय होनेपर उसकी कीर्तिसे अपनी कीर्ति नहीं समझते थे क्योंकि उसने
परस्त्रीहरणरूप पातक किया था किन्तु वे रामचन्द्रके विजय करनेपर जो उनकी कीर्ति संसारमें फैली

मतिः स्वल्पा कवयस्तेऽहकं च बच । महाबुद्धयूर्मिमाल्यसारंगार्णवगामठः । १० । स्वल्पीयस्यापि बुद्ध्याहं करोमि मनोगतं । तिमिरारेः प्रवेशो न दीपस्य स्यान्न तत्र किं । ११ । यदकारि महोत्कृष्टैः पूर्वप्राज्ञै रहं क्रमात् । कुंभोद्भवेन क्षुद्रेण किं हि नाचमितोऽ-
थी उससे अपनी कीर्ति समझते थे । उसीप्रकार गुरुगणभी सिद्धोंके यश-स्वरूपको कीर्ति पूर्वक धारण करनेवाले होते हैं अर्थात् उनके निष्कलंक स्वरूपका ध्यान करना ही अपना पूर्ण कर्तव्य समझते हैं । इन विशिष्ट शक्तिके धारक गुरुओंके सिवाय और भी ज्ञानी पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी महात्मा विशेषरूपसे हुए हैं उन्हें भी मैं इस ग्रन्थके प्रारम्भमें भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं । ७ ८ । महान बुद्धिके धारक जिनसेन आदि पूर्व आचार्योंने जिसरूपसे भगवान विमलनाथके चरित्रका उल्लेख किया है ठीक उसीके अनुसार मैं भगवान विमलनाथके पुराणके कहनेका इच्छुक हूं अर्थात् मैं जो इस पुराणको कह रहा हूं वह स्वतन्त्ररूपसे अपना मन गढ़न्त नहीं कह रहा हूं किन्तु भगवान जिनसेन आदिके वचनोंके अनुसार कह रहा हूं । ९ । ग्रन्थकार अपनी लघुता प्रगट करते हुए कहते हैं कि कहां तो यह भगवान विमलनाथका महागम्भीर पुराण और कहां मेरी अत्यन्त अल्पबुद्धि । तथा कहां तो जिनसेन सरीखे पुराण पारीण कवि और कहां मैं अत्यन्त तुच्छ, तथापि महाबुद्धिरूपी तरंगोंकी मालासे व्याप्त शास्त्रपारंगत आचार्यरूपी समुद्रोंके सामने मैं गामठ सरीखा हूं अर्थात् गामठका अर्थ प्रकरणसे यहां पर खाई है तो जिसप्रकार खाईका जल खास समुद्रका ही जल होता है परन्तु वह समुद्रस्वरूपसे नहीं होता उसीप्रकार मैं भगवान जिनसेन आदिके सामने तुच्छ हूं तथापि उनकी महाबुद्धिके द्वारा मुखसे निकले वचन मेरे हृदयमें भी विद्यमान हैं इस लिये इस पुराणमें जिन वचनोंका मैंने उल्लेख किया है वे वचन भगवान जिनसेन आदिके ही वचन मानकर प्रमाणीक समझना चाहिये । इसरूपसे यह बात ठीक है कि मैं भगवान जिनसेन

१ 'नरसिंहकंच, यहांपर भी ग्रन्थकारने श्लेषालंकारका उपयोग किया है क्योंकि अन्यधर्म्मी हिंदूसंप्रदायमें नरसिंह नामका एक अवतार माना है । यहांपर 'नरसिंहका, यह अर्थ न लेकर जो अर्थ लिखा गया है वही ठीक है ।

सम्यक्त्वो मोही केन विडम्बिताः ॥ २५ ॥ प्राक्तनो नारकः प्रान्तपृथिवीतो विनिर्गतः । जघन्यायुरहिर्भूत्वा पातालं तृतीयं गतः ॥ २६ ॥ ततो निर्गत्य तिर्यक्षु त्रसेषु स्थावरेषु च । भ्रांत्वाऽस्मिन् भारते भूतरमणाख्यवनांतरे ॥ २७ ॥ ऐरावतीनदीतीरे गोश्रृङ्गश्चास्ति तापसः । शङ्खिका भामिनो तस्य रूपाढ्या भर्तृवल्लभा ॥ २८ ॥ तयोर्जज्ञे सुतः सोऽपि मृगश्रृङ्गाभिधो ध्रुवं । पञ्चाग्नितपः कुर्वन्नेकदा वीक्ष्य खेचरं ॥ २९ ॥ दिव्यादितिलकस्यैव पुरस्य स्वामिनं परं । श्रीअंशुमालिनं नाम्ना निदानमकरोत्कुधीः ॥ ३० ॥ यथायं रूपवान् मानी प्रतापो प्राज्यराज्यभाक् । भूयामहं तथैतन्मे तपस्यायो अदः फलं ॥ ३१ ॥ अथात्र खेचराद्रेश्च प्रोदक् श्रेण्यां पुरं महत् ।

और संजयन्तका छोटा भाई जयंत हुआ जो कि निदानसे मरकर तू धरणेंद्र हुआ है इस समय तुम्हारा सम्यग्दर्शन मोहसे मलिन होगया है ठीक ही है मोहको वश करनेवाले संसारमे विरले ही पुरुष है ॥ २४—२६ ॥ मन्त्री सत्यघोषका जीव वह नारकी अपनी आयुके अन्तमें सातवें नरकसे निकल सर्प हुआ। वहांको जघन्य आयु धारण कर मरा फिर तीसरे नरकका नारकी हुआ वहांसे निकल कर त्रस स्थावर रूप तिर्यंच हुआ। इसी भरत क्षेत्रकी पृथ्वी पर एक भूत रमण नामका वन है। उसके अन्दर एक ऐरावती नामकी नदी है उसके तटपर एक गोश्रृंग नामका तपस्वी रहता था। शंखिका नामकी उसकी स्त्री थी जो कि अत्यन्त रूपवती और पतिकी प्राण प्यारी थी वह सत्यघोष मंत्रीका जीव तपस्विनी शंखिकाके गर्भसे मृगशंख नामका पुत्र हुआ और प्रति दिन पंचाग्नि तप तपने लगा। एक दिनकी बात है कि दिव्य तिलक पुरका स्वामी अंशुमाली नामका विद्याधर आकाश मार्गसे जा रहा था। उसकी दिव्य विभूतिपर मृगशंख तपस्वी मोहित होगया दुर्बुद्धि हो उसने यह निदान बांधा—

जिस प्रकार यह विद्याधर अत्यंत रूपवान दानी प्रतापी और विशाल राज्यका स्वामी है उसी प्रकार मैं भी हो वस मैं अपने किये हुए तपका यही फल चाहता हूं ॥ २७—३१ ॥

नानासंदर्भसंयुक्तमास्ते गगनबल्लभं ॥ ३२ ॥ बज्रदंष्ट्रः जगस्तत्र पाति तत्पत्तनं सुधीः । जम्भारातिः स्वधामेव तस्य भार्याचलप्रभा ॥ ३३ ॥ मृत्वासौ तापसो दुष्टो विद्युद्दंष्ट्रः सुतस्तयोः । वभूवायं स पापीयान् त्वदग्रजममीमरत् ॥ ३४ ॥ वध्वा कर्म चिरं दुःखमापदा प्स्यति च परं । एवं कर्मवशाज्जंतुः संसृतौ परिवर्तते ॥ ३५ ॥ पिता पुत्रः सुतो जाता माता भ्राता स च स्वसा । को बन्धुः को न वा धन्धुर्मुञ्च वैरमतः फणीट् ! ॥ ३६ ॥ कस्य को नापकर्ताऽत्र नोपकर्ता च कस्य कः । तस्माद्वैरानुबन्धेन मा कृथाः पापवन्धनं ॥ ३७ ॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गगन वल्लभ नामका नगर है जो कि विशाल है और अनेक रचनाओंसे शोभायमान है। गगन वल्लभ नगरका स्वामी राजा बज्रदंत था जो कि शोभामें इन्द्रकी तुलना करता था एवं उसकी स्त्रीका नाम विद्युत्प्रभा था वह दुष्ट मृगशृंग नामका तपस्वी अपनी आयुके अन्तमें मरा और रानी विद्युत्प्रभाके गर्भसे विद्युद्दंष्ट्र नामका पुत्र हुआ। पूर्व जन्मके वैरसे इसी दुष्टने तुम्हारे भाई संजयन्तको मारा है ॥ ३२—३३ ॥ इसने मुनिराज संजयन्तके मारनेसे घोर कर्मोंका वंध किया है जिससे इसने यह कष्ट प्राप्त किया है और करेगा। भाई धरणेंद्र ! यह जीव इसी प्रकार कर्मोंके जालमें फसकर इस संसारमें परिभ्रमण करता रहता है। ॥ ३४ ॥ देखो भाई ! इस संसारमें पिता तो पुत्र हो जाता है पुत्र माता हो जाता है। माता भाई वन जाता हैं और भाई सास बन जाता है इसलिये तुम निश्चय समझो इस संसारमें न कोई वास्तवमें किसी बंधु है और न बैरी है अतः प्रिय नागेंद्र ! तुम्हे कभी इस विद्याधरके साथ वैर नहीं वांधना चाहिये ॥ ३५ ॥ देखो इस संसारमें कोन तो किसका अपकारी नही और कौन किसका उपकारी नहीं अर्थात् हरएक दूसरेका अपकारी और उपकारी है इसलिये इसके साथ वैर बांधकर तुम बृथा पाप वांध रहे हो ॥३६॥ प्रिय धरणेंद्र ! तुम इस विद्याधरके साथ बैर मत बांधो इसे छोड़ दो वस इस प्रकार आदित्याभके वचन सुनकर धरणेंद्रका क्रोध शांत होगया ॥ ३७॥ उत्तरमें उसने यह कहा—

मुञ्च वैरमहीनास्मिन् विद्युद्दंष्ट्रश्च मुच्यतां । इति देववचोवृष्ट्या ययौ शांतिं फणीश्वरः ॥ ३८ ॥ अतोकौ सुखमायाति सज्जनों न खलो विधीः । अहरोदुदये हंसो मुदं याति न कोकमित् ॥ ३९ ॥ देवाहं त्वत्प्रसादेन सद्धर्मं श्रद्धये स्म भोः । किंतु विद्याबलादेष विद्युद्दंष्ट्रोऽघमाचरत् ॥ ४० ॥ तस्मादस्यान्वयस्यैव महाविद्यां छिनद्म्यहं । इत्याहैतद्वचः श्रुत्वा सुरो मदनुरोधतः ॥ ४१ ॥ त्वया नैतद्विधातव्यमित्याख्यत्फणिनां पतिं । आदित्याभवचः श्रुत्वाब्रवीदिति पुनः फणीट् ! ॥४२॥ यद्येवं तर्हि वंशमानांमेतस्यैव कुकर्मणा ।

प्रिय आदित्याभ ! मैं भी यह मानता हूं कि जिसप्रकार सूर्यके उदय होने पर हंसको आनंद होता है उस प्रकार उल्लूको आनन्द नहीं होता उसी प्रकार सत्य बोलनेसे सज्जनोंको ही परमानन्द प्राप्त होता है दुर्बुद्धि दुष्टको नहीं ॥३८॥ भाई आदित्याभ ! मैं तुम्हारे वचनोंसे परम पावन जैन धर्मका श्रद्धान करता हूं परन्तु इस दुष्ट विद्युद्दंष्ट्रने अपनी विद्याका घमण्ड कर यह दुष्पाप किया है इस लियें मैं कुल परम्परासे प्राप्त इसकी समस्त विद्याका उच्छेद करूंगा। धरणेंद्रकी यह वात सुनकर विद्याधर आदित्याभने कहा—

भाई धरणेंद्र ! मेरे अनुरोधसे तुम्हें इसकी विद्यायें नहीं छेदनी चाहिये। आदित्याभके इस प्रकार वचन सुनकर पुनः धरणेंद्रने कहा—

यदि तुम इसकी कुल परम्परा प्राप्त विद्याओंके छेदनेकी मना करते हो तो मैं स्वीकार करता हूं परन्तु मैं यह शाप देता हूं कि इस विद्युद्दंष्ट्रके कुकर्मके कारण इसके जितने वंशके पुरुष हों उन्हें मुनिराज संजयन्तको विना आराधना किये किसी भी विद्याकी सिद्धि मत हो तथा जिस चतुर्दशीको मेरे भाईने मोक्ष प्राप्त की है उस तिथिको विना आराधे किसीको भी मोक्ष पदकी प्राप्ति मत हो, मालुम होता है इसीलिये चतुर्दशीको विशिष्ट पर्वका दिन माना है। भाई ! इस शापके देनेका मेरा तात्पर्य यह है कि यदि मैं ऐसा शाप न दूंगा तो ये क्रूर हृदयके धारक पापी विद्या-

संजयंतमनाराध्य विद्या मायातु सिद्धितां ॥ ४३ ॥ मद्भ्रातृसिद्धिदं साक्षाद्नाराध्य तिथिं जनाः । मायांतु सत्पदं कापि ततः पर्वचतुर्दशी ॥४४॥ दृष्ट्वां चेन्नेद्रशं शापं तह्येते शापिनः खगाः । अपरानमारयन्त्येव मुनीनान् कुत्सिताशयाः ॥४५॥ पयोऽपि पर्वतो विद्याधरागो लज्जितोऽजनि । अतस्तं नामतः शैलं ह्रीमंतं कृतवांस्त स ॥ ४६ ॥ धनुः पञ्चशतोत्तुगां भ्रातृप्रतिनिधिं व्यधात् । प्रतिष्ठित्वाऽथ तं नत्वा महोत्सवपरः शतैः ॥ ४७ ॥ मुक्त्वा तं खेचरं पापं देवमभ्यर्च्य नागराट् । कलुषीभावमुत्सृज्य पफाणाशु निजं पदं ॥ ४८ ॥ आदित्याभोऽपि स्वस्वर्गं जगाम मगधेश्वर ! । त्याजयंति महाद्वेषं सात्त्विका हि हितेच्छवः ॥ ४९ ॥ अथ जंबूद्रुमान्वीते द्वीपे ह्रीमद्द्विधीकृतं । भारतं भाति षट्खण्डि गङ्गासिंधूर्मिभूषणं ॥ ५० ॥ ख्याते यत्र खडैकानित्यत्वं दृश्यते यदि । ह्रीमत्सुरस्तदा नीत्वा द्विसप्ततियुगानि च

धर अन्य मुनियोंको भी मारेंगे ॥ ३९—४६ ॥ इस विद्याधर पर्वत पर मुनिराज संजयन्तको कष्ट पहुंचाया गया है इसलिये यह भी लज्जाका स्थान है अतः उस पर्वतका उस दिनसे ह्रीमन्त (लज्जावान) नाम रख दिया गया ।४७। धरणेंद्रने अपने भाई संजयंतकी पांचसौ धनुष ऊंची प्रतिमा तयार कराई । सैकड़ों महोत्सवोंके साथ प्रतिष्ठाकर वहीं उसे विराजमान कर दिया और भक्तिपूर्वक उसे नमस्कार किया ॥ ४८ ॥ धरणेंद्रने पापी विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रको छोड़ दिया । आदित्याभ देवका परिपूर्ण आदर सत्कार किया । उसके हृदयमें जो विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रके मारनेके कलुषित विचार थे सब निकाल दिये और सानन्द अपने स्थान चला गया ॥४९॥ इतनी कथा सुनाकर गौतम स्वामीने राजा श्रेणिकसे कहा—प्रिय राजन् ! जब आदित्याभने देखा कि नागेंद्र वैरका सर्वथा परित्याग कर अपने स्थान चला गया है तब वह भी अपने स्थानको चला गया ठीक ही है जो मनुष्य दूसरों के हितकी इच्छा रखने वाले और सज्जन प्रकृतिके होते हैं वे अवश्य ही दूसरोंका आपसमें वैर मिटा देते हैं ॥ ५० ॥

ह्रीमन्त पर्वतसे जिसके कि दो खंड होरहे हैं ऐसे इसी जंबुद्वीपके अन्दर भरत क्षेत्र है जो कि

॥ ५१ ॥ शैलदर्या क्षिपत्येव गर्भजानामथापरे । श्यादयोऽदभ्रजीवाश्च यांति गङ्गातटे भिया ॥ ५२ ॥ तत्रार्योभाति सत्खण्डः स्वर्गखण्ड इवापरः । अस्ति ततोत्तरा नाम्ना पुरी श्रीमथुरा नृपः ॥ ५३ ॥ तं पात्यनन्तवीर्याख्यो राजा सिंहपराक्रमः । चन्द्राख्या वर्तते तस्य नाम्ना स्त्री मेरुमालिनी ॥५४॥ द्वितीया सुन्दरी तस्य रोहिणीव चकोरदृक् । आस्ते मितवती नाम्ना नामेवामरसुन्दरी ५५ आदित्याभस्त तश्च्युत्वा पूर्वोक्तायामभूत्सुतः । नाम्ना मेरुः प्रमोन्द्रासी तिग्मांशुः कुलभूधरे ॥ ५६ ॥ धरणेंद्रोऽपि पुत्रोऽभून्मन्दराख्यो महायशाः । द्वितीयायां सुतौ तौ च सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ५७ ॥ इत्थं विमलनाथस्य मुद्धाव्जान्मेरुमन्दरौ । स्वभवांस्तौ समाकर्ण्य वैराग्यं प्राप

छह खंडोंसे शोभायमान है एवं गङ्गा सिन्धु नामकी दोनों नदियोंकी तरंग रूपी भूषणोंसे शोभायमान है ॥ ५१ ॥ प्रलय कालके अन्तमें जब भरत क्षेत्रके किसी एक खण्डका प्रलय होता है उस समय ह्रीमन्त पर्वतका स्वामी देव हर एक गर्भज जीवके बहत्तर २ जोड़ा लेकर उस ह्रीमन्त पर्वतकी गुफामें रखता है तथा और बहुतसे जीव मारे भयके उस समय गङ्गा नदीके तटपर जाकर रहने लगते हैं ॥ ५२—५३ ॥ भरत क्षेत्रके अन्दर एक आर्य खण्ड है जो कि शोभामें स्वर्ग खण्डके समान जान पड़ता है। आर्य खण्डकी उत्तर दिशामें मथुरा नामकी नगरी है। उस समय मथुरा पुरीका स्वामी राजा अनन्तवीर्य था जो कि सिंहके समान पराक्रमी था। उसकी रानीका नाम मेरु मालिनी था जो कि चंद्रमाके समान मुखसे शोभायमान थी। उसकी दूसरी स्त्रीका नाम मितवती था जो कि रोहिणीके समान परम सुन्दरी थी। चकोरके समान उत्तम नेत्रोंसे शोभायमान थी इसलिये वह साक्षात् देवांगना सरीखी जान पड़ती थी ॥ ५४—५६ ॥ आदित्याभ नामका देव अपनी आयुके अन्तमें स्वर्गसे चया और रानी मेरुमालिनीके गर्भसे मेरु नामका पुत्र हुआ जो कि कांतिसे अत्यन्त देदीप्यमान था और अपने वंशरूपी पर्वत पर उदित होनेवाला सूर्य स्वरूप था।
५७ धरणेंद्रका जीव भी अपनी आयुके अन्तमें वहांसे चया और रानी मितवतीके गर्भमें अवतीर्ण

तुर्नृपौ ॥ ५८ ॥ गन्धेभसप्तिभिः प्रौढं राज्यं सामंतसेवितं । त्यक्त्वा जगृहतुर्दीक्षां तौ श्रीविमलसन्निधौ ॥ ५७ ॥ नत्वा स्वस्वामिनं धीरौ चक्राते तौ तपश्चिरं । चन्द्रादिरसमासांतं सरित्तीरनगादिषु ॥ ६० ॥ पर्यंकासनसंयुक्तौ धीरौ द्रुमतले क्वचित् । कायोत्सर्गस्थितौ क्वापि तिष्ठतः स्म हरी इव ॥ ६१ ॥ शीतकाले सरित्तीरे प्रशयद्द्रुरुहकदंबके । पृथुरोमगतिच्छेदे दग्धांभोजवनेऽवने ॥ ६२ ॥ तिष्ठतः स्म महाकायौ मेरुसंस्थौ शिवाप्तये । चतुःपथेऽनिलव्रातैः केशा दर्भांकुरा इव ॥ ६३ ॥ तयोः संजज्ञिरे नूनमंजनागसमानयोः । शीतदग्धांगयोर्भूरितपसा क्षामयोर्भृशं ॥ ६४ ॥ (त्रिभिर्विशेषकं) शुष्यद्यत जलं शीते नीरसीभूयभीतितः । द्रुमतुल्यं भवेत्त-

हो मन्दर नामका पुत्र हुआ जो कि बड़ा भारी यशस्वी था इस तरह वे दोनों कुमार सूर्य और चन्द्रमाके समान सानंद रहने लगे ॥ ५८ ॥ बस इस प्रकार भगवान विमल नाथके मुखसे अपने पूर्व भवोंका वृत्तांत सुन राजा मेरु और मन्दरको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया। जो उनका राज्य अगणित गज हस्ती और उत्तमोत्तम घोड़ोंसे शोभायमान था और अनेक दुर्घट सामन्त जिसकी सेवा करते थे उस राज्यको उन्होंने जीर्णतृणके समान तत्काल छोड़ दिया और भगवान विमलनाथके चरणोंमें तत्काल दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ ५९ ॥ ५९—६० ॥ भगवान विमलनाथको उन्होंने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं एक मास दोमास तीन मास चार मास पांच मास और छह मास तकका उपबास धारण कर वे नदीके तट और पर्वतों पर घोर तप तपने लगे ॥ ६१ ॥ वर्षा ऋतुमें धीर वीर वे दोनों मुनिराज पर्यंक आसन माड़कर और कायोत्सर्ग मुद्रा धारण कर दो सिंहोंके समान वृक्षोंके नीचे रहने लगे ॥ ६२ ॥ जिस शीत कालमें वनके वृक्ष दग्ध होजाते हैं। रोंगटे ठर्रा निकलते हैं और कमलोंके बनके वन दग्ध हो जाते हैं उस समय विशाल शरीरके धारक और मेरु पर्वतके समान निश्चल दोनों मुनिराज मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे चौपटे में निवास करते थे और तीखी पवनके झकोरे सहते थे। वे दोनों मुनि अञ्जन पर्वतके समान

हिं मानवानां तु का कथा ॥ ६५ ॥ ग्रीष्मर्तावगश्रृङ्गेऽस्यंशुमालिस्थितौ मुनौ । ध्यायंतौ सिद्धसद्वीजं वह्नोभूताशुभूतले ॥ ६६ ॥ अग्नितप्तकटाहाभं घनमारुह्य तस्थतुः । वह्निज्वालाधिके दुःखसमूहोत्पादके च तौ ॥ ६७ ॥ प्रावृषि नीरनिर्ह्रादचिताशायां यमोश्वरौ । भेकभीकृद्रवैः स्वस्तजीवायां कर्णरोधिभिः ॥ ६८ ॥ पतन्निर्ह्रादिनोप्लुष्टभूरुहायां च निर्भयौ । दूर्वांकुरितपादाब्जौ सर्पवल्ल्यन्वितांगकौ ॥ ६९ ॥ तिमिरस्नानमसां व्रातेरक्षेयोर्वी धराक्षहि । तस्थतुर्ध्यानसंसक्तौ मेरुवन्निश्चलौ च तौ ॥ ७० ॥ (त्रिभिर्विशेषकं) सतर्धिसमवेतः सन् मेरुस्तुर्यावबोधनः । बभूव मंदरश्चापि मनःपर्ययभारविः ॥ ७१ ॥ पञ्चपञ्चाशदाप्तांगगणैर्विमलवाहनः । परीतो भाति ताराभि

काले पड़ गये थे। उनका समस्त शरीर कृश होगया था इसलिये उस समय उनके मस्तकके केश दाव घासके समान रूखे और विखर गये थे ॥ ६३—६५ ॥ जिस शीतकालमें तालावोंका जल नीरस होकर सूखकर पत्थरके समान वरफ बन जाता है उस समय मनुष्योंकी तो वात ही क्या है ! ॥६६॥ ग्रीष्म ऋतुके समय जव कि पृथ्वीतल अग्निके समान दहकता रहता है उस समय वे दोनों मुनिराज सूर्यके सामने खड़े होकर पहाड़ोंपर तप तपते थे और हृदयमें 'सिद्ध' इस वीजाक्षर स्वरूप मंत्रका ध्यान करते थे। वे दोनों मुनिराज अग्निसे तपाये गये कड़ाहोंके समान जाज्वल्यमान अग्निकी ज्वालासे भी महा भयङ्कर और अनेक प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त ग्रीष्म ऋतुको वर्षा ऋतु सरीखी समझते थे ॥ ६७ ॥ जिस वर्षाकालमें चारो ओर महा भयङ्कर मेघोंकी गर्जना होती रहती है। कानोंको फोड़ देनेवाले मींडकोंके भयङ्कर शब्दोंसे समस्त जीव त्रस्त रहते हैं। बिजलियोंके गिरनेसे वृक्षके वृक्ष नष्ट हो जाते है उस वर्षाकालमें वे दोनों मुनिराज निर्भय हो अपने आत्म स्वरूपका चिन्तवन करते थे। उस समय उनके चरण दाव घासके अंकुरोंसे व्याप्त रहते थे। समस्त शरीर सर्प और लताओंसे वेष्टित रहता था तथापि उन्हें किसी वातका भय न था। तथा वर्षा कालकी अधियारी रातोंमें जब कि पृथ्वी पर्वत और वृक्ष कुछ भी नहीं दीख पड़ते थे

सिंधुर्वा विहरन्नसौ ॥७२॥ असंख्यातसुरैरर्च्यः केवलज्ञानभास्करः। चतुर्विधमहासंघसमेतोविजहार सः ॥७३॥ अङ्गे वंगे तिलिंगे मगध जनपदे सिंधुदेशे विराटे। कर्णाटे कुंकुणाख्ये कुरुलमुरुमहाभोटभोटेषु याम्ये। काश्मीरे लाटगोड़े गिवर (न) गहने मेटपाटे जिनेशः। पारस्ये मालवे वा व्यवहरदिनि महाबोधहेतोर्जनानां ॥७४॥ शेषायुषि स्थिते तस्य मासैकस्य जिनाधिपः। सम्मेदाचलमासाद्य विससर्ज सभाश्रियं ॥७५॥ आषाढ़स्योत्तराषाढे कृष्णाष्टम्यां निशामुखे। सद्यः कृत्वा समुद्घातं सूक्ष्म शुक्लं समाश्रितः ॥७६॥ सारूप्ययोगादयोगः सन् स्वास्थ्यं रोगीव सोऽगमत्। तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् पूज्या कालाष्टमी बुधैः॥ ७७ ॥ विश्वदृश्वा जिनो मोक्षमवापद्विमलोऽमलः

उस समय वे मुनिराज मेरुके समान निश्चल और ध्यानमें लीन रहते थे ॥ ६८—७१ ॥ तपके घोर रूपसे आचरने पर मुनिराज मेरु और मन्दिरको सातों ऋद्धियां और चौथा मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त होगया और वे निभय हो पृथ्वी पर विहार करने लगे ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार अनेक ताराओंसे व्यास चन्द्रमा शोभायमान जान पड़ता है उसी प्रकार वे भगवान विमलनाथ साढ़े पांचसौ केवलज्ञानी मुनियोंके साथ विहार करते हुए अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ ७३ ॥ भगवान विमलनाथ की सेवा असख्याते देव करते थे और वे केवल ज्ञान रूपी सूर्यसे देदीप्यमान थे। भगवान विमलनाथने मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इस प्रकार संघोंके साथ पृथ्वी पर विहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ७४ ॥ उन भगवान विमलनाथने मोक्षाभिलाषी भव्य जीवोंके संबोधनेके लिये अङ्ग बङ्ग तेलंग मगध सिंधुदेश विराट कर्णाटक कुंकण पुरु महा भोट भोट काश्मीर लाट गौड़ मेढ पाट फारस मालवा आदि देश जो कि पहाड़ और बनोंसे सघन थे उनमें भ्रमण किया ॥ ७५ ॥ जब भगवान जिनेंद्रकी एक मासकी केवल आयु अवशेष रह गई वे तो सम्मेदाचल पर्वतपर आ विराजे और समवसरणकी विभूतिसे रहित होगये ॥ ७६ ॥ आषाढ़ मासकी बदी अष्टमीके दिन जब कि उत्तराषाढ़ नक्षत्र विद्यमान था उन्होंने केवल समुद्धात माढा। सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती नामक शुक्ल

घात्यघातिक्षयात्सर्वदेवेंद्रार्चितपत्कजः ॥ ७८ ॥ संसारसागरसमुत्तरणप्रवीणः । कर्मानलावलिशमैकघनायमानः ॥ लेखालिमस्तक-किरीटमणिप्रभाभिराश्लिष्टपाद इविजिद्विमलोऽवताद्वः ॥ ७९ ॥ कृत्वाष्टकर्मविलयं गणसेव्यमानो व्युत्पाद्य केवलविभालिमलं विबोध्य । भव्याबुजानि नितरां शिवमाप दिव्यसम्मेदभूधरतटे विमलोष्णरश्मिः ॥ ८० ॥

विहारसंबोधितजीवलोकपो जगाममोहाद्रिपविः परं पदं ।

स्वयंभुवा शुद्धसमाधितत्परो जिनोऽर्चितः केवलबोधलोचनः ॥ ८१ ॥

ध्यानको आश्रय किया। समता योगसे उन्होंने अयोग गुण स्थानमें पदार्पण किया एवं जिस प्रकार रोगके नाश हो जानेसे रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है उसी प्रकार वे भगवान विमलनाथ भी स्वस्थ हो गये भगवान विमलनाथ आषाढ़ वदी अष्टमीको मोक्ष पधारे थे इसलिये उसी दिनसे उस अष्टमीका नाम कालाष्टमी पड़ गया और लोग उसे पूजने लगे ॥ ७७—७८ ॥ घाति अघाति दोनों कर्मोंके नाश होजानेपर सर्वज्ञ जिनेंद्र वे भगवान विमलनाथ मोक्ष शिलापर जाकर विराजमान होगये और बड़े बड़े देवेन्द्रोंकी पूजाके स्थान बन गये ॥७९॥ जो भगवान विमलनाथ जीवोंको संसार रूपी समुद्रसे पार करने वाले हैं। कर्मरूपी अग्निको बुझानेके लिये मेघ स्वरूप हैं। देवेन्द्रोंके मस्तकोंमें लगी हुई नील मणियोंसे व्याप्त चरणोंसे शोभायमान हैं और कामदेवके जीतनेवाले हैं वे भगवान विमलनाथ हमारी रक्षा करें॥८०॥ जिसप्रकार सूर्य अंधकारका नाश करने वाला है उसी प्रकार भगवान विमलनाथ भी कर्मरूपी अन्धकारके नाश करनेवाले हैं। जिसप्रकार सूर्य ऋषिगणोंसे सेवित रहता है उस प्रकार भगवान विमलनाथ भी मुनि आदिके गणोंसे सेवित हैं। जिस प्रकार सूर्य, प्रभासे मंडित है उस प्रकार भगवान विमलनाथ भी केवल ज्ञानकी प्रभासे मण्डित हैं एवं जिस प्रकार सूर्य कमलोंको खिलाकर अस्ताचल पर अस्त हो जाता है उस प्रकार

इत्यार्षे श्रीविमलनाथपुराणे भ० श्री रत्नभूषणाम्नायालंकारविद्वज्जनचातुरीसमुद्रकुमुदबांधवा वतारोभयभाषाचक्रवर्तिहर्षवीरिकान्वयोदरमानसराजहंसब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे श्रीमेरुमन्दिरदीक्षाग्रहणश्रीविमल नाथनिर्वाणगमनो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

भगवान विमलनाथने भव्य रूपी कमलोंको खिलाकर सम्मेदाचलसे मोक्ष प्राप्त की है इसलिये सूर्य-के समान भगवान विमल नाथ हमारो रक्षा करें ॥ ८१ ॥ जिन भगवान विमलनाथने समस्त जीव लोकको संबोधा। जो मोहरूपी पर्वतके लिये वज्र स्वरूप हैं। शुद्ध समाधि—अपने आत्म स्वरूपमें निश्चल हैं। केवल ज्ञानरूपी लोचनके धारक हैं और जो स्वयं भी ब्रह्मासे अर्चित हैं उन भगवानने परम पद प्राप्त कर लिया अतः वे हमारे कल्याणके कर्त्ता हों ॥ ८२ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकारस्वरूप विद्वज्जनोंकी चतुरता रूपी समुद्रके लिये चन्द्रमा दोनो भाषाके चक्रवर्ती एवं हर्ष वीरिकाके कुलरूपी मानसरोवरके राजहंस ब्रह्मकृष्णदासद्वारा अपने छोटेभाई ब्रह्ममंगलदासकी सहायतासे रचेगये वृहद्विमलनाथपुराणमें राजा मेरु और मंदरकी दीक्षाका ग्रहण और भगवान विमलनाथका निर्वाण गमन वर्णन करनेवाला नववां सर्ग समाप्त हुआ ॥९॥

दशवा सर्ग।

अथाजग्मुः सुनासीरा व्योमयानस्थिता मुदा। विमलेशस्य निर्वाणकल्याणकसमुत्सुकाः ॥ १ ॥ चतुर्णिकायदेवालिर्नियंयौ

भगवान विमलनाथके निर्वाण प्राप्त करलेने पर उनके कल्याणके उत्सव मनानेके लिये लाला-यित समस्त इन्द्रादि देव अपने विमानोंपर चढ़कर शीघ्र ही सम्मेदाचलकी ओर चल दिये ॥ १ ॥

युग पद्भुवि । वज्रपाण्यनुगा धीरजयध्वानप्रवादिनी ॥ २ ॥ ऐरावणं गजं शक्रः पुरस्कृत्य चचाल ते । पुरस्तान्नर्तकीव्रातो नर्नृतीति विमोहयन् ॥ ३ ॥ चित्रमेतद्यदाकाशे पादन्यासो न दृश्यते । रम्भाणां नर्तकीनां च देवानां चलतामपि ॥ ४ ॥ केचित्कुन्तकरा देवाः केचिच्छक्तिधनुर्धराः । केचित्कराशयः केचित्पाणिपाशा बभुस्तरां ॥ ५ ॥ त्रिशूलधारिणः केचिद्भिंडमालकराः परे । संचेलुरसुरा एते व्यंतराश्च दिगाश्रिताः ॥ ६ ॥ कल्पामराः स्थिताः केचिद्व्योमयानेषु दो.कृताः । हंसारूढामराः केचित् हस्तमाल्या मनोरमाः ॥ ७ ॥ वैननेयासनारूढा देवाः केचित् शुकप्रियाः । केकियानाश्चलंतिस्म मरुन्मार्गे करायुधाः ॥ ८ ॥ असंख्यातसुराः पञ्चश्रेण्यः शक्रकृता बभुः । प्रत्येकं पञ्चवर्णांशुविचित्रवाससो ध्रुवं ॥ ९ ॥ सम्मेदागं समालोक्य दूरतः सुरपादयः । उत्तेरुर्वाहनाद्भक्त्या भक्ति

उस समय चारों ओर जय २ शब्द करते हुए चारो निकायोंके देव एक साथ इन्द्रके पीछे २ चल दिये ॥ २ ॥ ऐरावत हाथीपर चढ़कर सवोंके सामने इन्द्र चलने लगा । उस समय ऐरावत हाथीके सामने अपने नाचसे समस्त लोकको मोहित करता हुआ देवांगनाओंका समूह नाचता चला जाता था ॥३॥ ग्रन्थकार आश्चर्य प्रगट करते कहते हैं कि यद्यपि वे आकाशमें चलते थे परंतु कहां पैर रखते थे और कहां नहीं रखते थे ! सूझ नहीं पड़ता था ।४। भगवानके निर्वाण कल्याणके उत्सव मनानेके लिये आनेवाले देवोंमें वहुतसे देव अपने हाथोंमें माला लिये थे वहुतसे शक्ति धनुप तलवार पाश त्रिशूल वन्दूक के धारक थे इस रूपसे तो असुर जातिके देव चलने लगे तथा इसी प्रकार दिशाओं में रहने वाले व्यन्तर लोग भी चलने लगे ॥ ५—७ ॥ कल्पवासी देवोंमेंसेव हुतसे देव अपने द्वारा रचे गये विमानोंमें सवार होलिये । वहुतसे हाथोंमें माला धारण किये हंसोंपर चढ़ लिये । वहुतसे हाथोंमें हथियार लेकर गरुड़ शुक और मयूरोंके आसनों पर चढ़कर आकाशमार्गमें चलने लगे। यद्यपि देव असख्याते थे तथापि इन्द्रने उन्हें पांच श्रेणियोंमें विभक्त कर रक्खा था और हर एक पांचों वर्णोंके अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे शोभायमान थे ॥ १० ॥ जिस समय देवोंने सम्मेदाचल पहाड़को देखा-भक्तिसे गद्गद हो वे शीघ्र ही अपने २ वाहनोंसे उतर गये ठीक ही है जो पुरुष

भाजो हि धार्मिकाः ॥ १० ॥ हरिर्विमलनाथस्य प्रतिबिंबं यथाकृति । कृत्वा स्फटिकसद्भासमर्चयामास सादरं ॥ ११ ॥ परोक्षस्तुति मारेभे देवराजो जिनेशिनः । इति दोःकुड्मलीकृत्य भावनिर्मलमानसः । १२ ॥ जय नाथ जिनाधीश जय त्वं जगतांपते । तपोनिधे दयाम्भोधे मुक्तिलक्ष्मीप्रिय प्रभो ! १३ ॥ मोहजेता त्वमेवासि त्वं सर्वज्ञः शिवप्रदः । कर्मध्वंसी चिदानन्दो भव्याम्भोजदिवामणिः ॥ १४ ॥ त्वामाराध्य जनाः सर्वे देवदेवेशनरादयः । शिवं सदातनं यांति समुत्तीर्य भवाम्बुधिं ॥ १५ ॥ स्तुत्वेति मघवा भावसुधापान परो जिनं । कर्पूरागुरुकल्याणनमेरुकुसुमोद्भवैः ॥ १६ ॥ सुगंधैः केसरैर्नानावस्तुभिः सुरनायकः । संस्कारविनयं कृत्वा चकार प्रांत्य

धर्मात्मा होते हैं वे भक्तिमान होते ही हैं ॥ ११ ॥ इन्द्रने भगवान विमलनाथकी स्फटिकमयी प्रतिमाका शीघ्रही निर्माण किया और बड़ी भक्तिसे उसका पूजन किया। निर्मल चित्तके धारक इन्द्रने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और उनके परोक्ष रहते भी वह इस प्रकार निर्मल भावोंसे स्तुति करने लगा—

हे भगवन्! आप आठो कर्मोंके जीतने वालोंके स्वामी हैं। समस्त जगतके पति हैं। तपोनिधि और दयाके समुद्र हैं। मोक्ष रूपी लक्ष्मीके प्यारे हैं। मोहके जीतनेवाले केवल आप ही है। सर्वज्ञ और कल्याणोंके प्रदान करनेवाले हैं। कर्मोंके नाश करनेवाले चिदानन्द चैतन्य स्वरूप और भव्यरूपी कमलोंको प्रसन्न करनेवाले सूर्य हैं इसलिये हे भगवन्! आप संसारमें जयवंते रहें ॥ १२—१५ ॥ प्रभो! देवोंके देव इन्द्र आदि भी तुम्हारा आराधन कर संसाररूपो समुद्रको तर कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। उत्तम भावरूपी अमृतके पान करनेवाले इन्द्रने इसप्रकार भगवान विमल नाथकी स्तुति की। कपूर अगुरु कल्प वृक्षोंके फूल और भी नाना प्रकारको सुगन्धित चीजोंसे विनय पूर्वक भगवानके शरीरका दाह संस्कार किया एवं भक्तिसे गद्गद हो नृत्य किया ॥ १६—१८ ॥ सम्मेदाचल पर्वतके चारो ओर अपनी २ देवांगनाओंके साथ श्रेणिरूपसे समस्त

नाटकं ॥ १७ ॥ श्रेणीभूताः सुराः सर्वे परितस्तीर्थभूधरं । नर्नृत्यंतिस्म रम्भाभिः संगता जयवादिनः ॥ १८ ॥ रक्तदोःपल्लवाभिश्च रम्भावल्लीभिरान्विताः । हैमीभिः सुरकल्पागाः स्फुरन्तीभिरिवानलात् ॥ १९ ॥ गायन्ति पिककंठे श्च गुणं श्रीविमलेशिनः । किंनर्यो यन्त्रमादाय नानारागरसान्वितैः ॥ २० ॥ हावैर्भावैरसैस्तालैर्ढालैर्ललितविग्रहाः । जेगीयन्ते यशोवृन्दं स्थूलपीनपयोधराः ॥ २१ ॥ मृदंग पटहारावैः स्निग्धै रम्भास्वनैर्बभौ । गगनं भूतलं चापि जंभारातिजयारवैः ॥ २२ ॥ जिनेन्द्रचरणाम्भोजपवित्रं भूधरं सुराः । पुरुहूता दयी नत्वा जग्मुर्धाम यथायथं ॥ २३ ॥ महतां संगतिर्नृणां सत्फलं विदधाति च । जिनेंद्रचरणन्यासाद्भूधरो बन्द्यते जनैः ॥ २४ ॥

देव नृत्य करने लगे एवं मिलकर भगवान विमलनाथकी जय उच्चारने लगे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार कल्पवृक्ष पवनसे झकोरे खाती हुई लताओंसे विशेष शोभायमान जान पड़ता है उसी प्रकार उस समय देव रूपी कल्पवृक्ष भी लाल २ हाथोंसे शोभायमान नृत्यकालमें चलती फिरती देवांगनाओं से अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ २० ॥ सुन्दर शरीरोंकी धारक एवं उन्नत स्थूल नितम्बोंसे शोभायमान किन्नरी जातिकी देवांगना अनेक प्रकारकी राग रागिनियोंसे युक्त एवं हाव भाव रस चाल ढालोंसे मिश्रित अपने मनोहर कंठोंसे भगवान विमलनाथके गुणोंको वखानने लगीं ।२१-२२ उस समय मृदङ्ग और नगाड़ोंके शब्दोंसे कोमल देवांगनाओंके शब्दोंसे एवं इन्द्रोंके द्वारा किये गये जय जय शब्दोंसे गूंजता हुआ समस्त आकाश अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥२३॥ भगवान विमल नाथके चरणोंसे पवित्र सम्मेदाचलको देवेन्द्रोंने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं सबके सब अपने २ स्थानोंपर चले गये ॥ २४ ॥ ग्रन्थकार सज्जनोंकी प्रशंसामें कहते हैं कि—महान पुरुषोंकी संगति उत्तम फल प्रदान करती है देखो भगवान जिनेंद्रके चरणोंके सम्पर्कसे ही सम्मेदाचल पर्वत समस्त लोकका वंदनीय बन गयो ॥ २५ ॥ जो महानुभाव मौनव्रत और ब्रह्मचर्यव्रत से भूषित हो सम्मेद शिखरकी यात्रा करते हैं उन्हें संसारमें अद्भुत विभूतिकी प्राप्ति होती है

तद्यात्रां ये करिष्यंति मौनब्रह्मव्रतान्विताः । ते लभंतेऽद्भुतां रामां व्यवहारादसंशयं ॥ २५ ॥ तिर्यंचोपि पदं दैवं यांति तद्भूधराश्रयात् । मनुष्या न लभंतेऽत्र तपसा किं परं पदं ॥ २६ ॥ आदितीर्थत्वतो लेखा निषेवंतेऽनिशं मुदा । तद्यात्राकृन्नराणां च पशूनां न गतिर्भवेत् ॥ २७ ॥ श्रीमत्सुविधितीर्थेऽभून्मेघदेवस्य साधनं । मेघेश्वरखगस्यात तद्दिनाद्घनवर्षणं ॥ २८ ॥ तथा भांडाष्टमी जज्ञे पर्वभूता हि सोत्सवा । सुकालेतरकालस्य दर्शिनी मध्यरात्रके ॥ २९ ॥ अथैकदा मुनिर्मेरुः प्रतिमायोगमाश्रितः । भूधराधस्तटे बभौ ॥ ३० ॥ निर्द्वन्द्वोनिस्पृहः शांतो क्रशीभूयमितो मुनिः । यावद्दध्यौ परं धाम मध्यराते स मागध ! ॥ ३१ ॥

इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ श्री सम्मेद शिखरके आश्रयसे जब तिर्यंच भी, देव पद प्राप्त कर लेते हैं तब उत्तम तपके आचरणसे मनुष्य तो परम पद प्राप्त कर ही लेते हैं, यह बात बिलकुल निश्चित है । यह सम्मेद शिखर तीर्थ सबसे उत्तम तीर्थ है अनादि निधन है इस लिये देवगण रात्रि दिन इसकी वन्दना करते हैं तथा यह नियम है कि श्रीसम्मेद शिखरकी यात्रा करनेवालोंको तिर्यंच गतिका दुःख नहीं भोगना होता ॥ २८ ॥ भगवान पुष्पदन्तके तीर्थकालमें विद्याधर मेघेश्वर ने मेघदेवका साधन किया था उसी दिनसे वर्षाका प्रारम्भ माना है वह दिन अष्टमीका था इस लिये उस अष्टमीका नाम भांडाष्टमी पड़ गया जो कि पर्व मानी जाती है और उसमें अनेक प्रकारके उत्सव हुआ करते हैं तथा उस दिन ठीक आधीरातके समय सुभिक्ष होगा वा दुर्भिक्ष होगा इस बातकी जांच की जाती है इसलिये संगति बड़ी चीज है ॥ २७—३० ॥

एक दिनकी बात है कि मुनिराज मेरु, पर्वतके अधो भागमें प्रतिमायोग धारणकर चिदानन्द चैतन्य स्वरूप आत्माका ध्यान कर रहे थे । उस समय वे समस्त प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित थे और निस्पृह थे । आधी रातके समय वे परमात्माके स्वरूपका चिंतवन कर हीरहे थे कि विद्युन्माली नामका विद्याधर अनेक पर्वतों पर क्रीड़ा करता हुआ और आकाशमें विचरता हुआ मुनिराजके ऊपरसे

समायातो विद्युन्माली खगो मुनेः। उपर्यं कांतया सार्धं क्रीडयन् भुधरेषु च ॥ ३२॥ व्यो यानं निजं स्फीतं किंकिणीरण राजितं। स्तंभितं धातुकीलैर्वा विलोक्याशु क्रुधं गतः ॥ ३३ ॥ नभोगश्चिंतयामास चिरं चित्ते मुहुर्मुहुः। इति क्रोधारुणो रौद्रः पदुघातैश्चालयस्तकत् ॥ ३४ ॥ मद्विमानो महाविद्यारक्षितो द्विड्भयप्रदः। केन पापीयसा वद्धो हठात्सामर्थ्यशालिना ॥ ३५ ॥ अथैव वध्यते हंसो व्याधेनाश्वथवा त्वया। मन्नमार्गं तथा केनाकारि भग्नगति द्विषा। ३६। पश्येयं चेद्द्विषं पापमावश्यकमहं त्वरा। शस्त्रघातैर्दृषद्भिश्च तं हन्या हंत दुर्धियं ॥ ३७ ॥ विमृश्येत्थं चिरं स्वांते शिंजितं किंधनुः खगः। जग्राहोद्धुरसामर्थ्यो भीषणो हरिवत्क्रुधा ॥

निकला। यह नियम है जहां पर ऋद्धिधारी मुनि विराजते हैं उनके ऊपरसे किसीका विमान नहीं निकलता। विद्याधर विद्युन्मालीका विमान विशाल था छोटी२ घण्टियोंसे शोभायमान था ज्योंही वह ठीक मुनिराजके ऊपरसे आया धातुकी कीलोंसे जैसे अटका दिया जाता है वैसे ही अटक गया विमानकी यह दशा देख विद्याधर विद्युन्मालीको वड़ा क्रोध आया एवं वह विमानको पैरोंसे वार वार चलाता हुआ अपने मनमें इस प्रकार विचारने लगा—

यह मेरा विमान अनेक महा विद्याओंसे रक्षित है। वैरियोंको भय प्रदान करनेवाला है किस वलवान पापीने मेरे विमानको रोक दिया है ॥ ३१—३६ ॥ आश्चर्य है जिस प्रकार हंसको व्याध पकड़ लेता है उसी प्रकार भाई! तुझ किस शत्रुने मेरा विमान पकड़ कर वांध लिया है ॥ ३७ ॥ मैं अभी उस पापी वैरीकी खोज करता हूं। मैं उस दुष्ट वुद्धिको शस्त्रोंके घातोंसे और पत्थरोंसे अभी प्राण रहित कर दूंगा। वस इस प्रकार दृढ विचार कर शीघ्र ही उसने धनुष हाथमें लेलिया एवं मारे क्रोधके सर्पके समान भयङ्कर हो वलवान उस विद्याधरने शीघ्र ही धनुष पर वाण चढ़ा लिया। लक्ष्य वांधकर वह नीचेको फैंकता ही था कि उसकी स्त्रीने उसका हाथ पकड़ लिया एवं वह अपने पति विद्याधरको इस प्रकार समझाने लगी—

॥ ३८ ॥ संधायाशुगतिं यावद्व्योमागे नलोवली । क्षितुमिच्छति तावत्म गृह्णीतो रामया करे ॥ ३९ ॥ शृणुतां मामकं नाथ ! वचः परमपावनं । अविमृश्य विधेयं न कृत्यं सभ्येन धीमता ॥ ४० ॥ स्वकीयं बलमज्ञात्य ये कुर्वन्ति बलं शठाः । त एव निधनं यांति स्वाहानाथे पतंगवत् ॥ ४१ ॥ येनाद्यः स्तंभितं व्योमयानं भर्तस्तवैव सः । स्याच्छ्रो नहिं दुःखेन जीयते फणिनेव धीन्द्र ॥ ४२ ॥ यदा नो जीयते शत्रुस्तदा कीर्तिः प्रणश्यति । तस्या विना जीवितं नृणां गतायां गततेजसां ॥४३॥ नृभिश्चत्वारि कृत्यानि नो विधेयानि वेगतः विमृश्यकारिणं नाथं वृणोति यज्जयाश्रियः ॥ ४४ मामायास्तद्वचः श्रुत्वा विद्वद्भिर्वचं हितं । जगौ प्रेमा नभोभागो कांतां कामप्रियोपमां

प्राणनाथ ! मेरे हितकारी वचन सुनिये जो मनुष्य सभ्य और बुद्धिमान हैं उन्हें विना विचारे कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये ॥ ३७—४१ ॥ जो मनुष्य अपनी शक्तिको न जानकर विना विचारे ही वल कर वेठते हैं वे मूर्ख कहलाते हैं एवं अग्निमें गिरकर जिस प्रकार पतंग खाक हो जाता है उसी प्रकार वे भी मृत्युके कवल वन जाते हैं ॥ ४२ ॥ स्वामिन् ! जरा विचारो तो जिसने तुम्हारा यह विमान रोक दिया है वह यदि तुमसे अधिक वलवान हो तो जिस प्रकार सर्पसे गरुड़का जीता जाना कठिन है उस प्रकार तुमसे उसका जीतना कठिन हो जायगा ॥ ४३ ॥ यदि तुम शत्रुको न जीत सकोगे तो तुम्हारी कीर्ति नष्ट हो जायगी। कीर्तिके नष्ट हो जानेसे मनुष्य तेज रहित हो जाता है फिर उसका जीवन ही विफल माना जाता है ॥ ४४ ॥ बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिये कि वे चार वातोंके करनेमें जल्दी न करें विचार पूर्वक ही हर एक कार्यको करें क्योंकि जो पुरुष विचार शील हैं लक्ष्मी उन्हें आपसे आप आकर वर लेती है ॥ ४५ ॥ विद्वानोंसे भी जल्दी नहीं कहे जानेवाले एवं हितकारी अपने स्त्रीके वचन सुन विद्याधर विद्युन्मालीने कहा—

रतिके समान परम सुन्दरी भ्रमरोंकी पंक्तिके समान काले कटाक्षोंसे शोभायमान मृग लोचनी प्रिये ! तुमने कहा है कि विद्वानोंको चार कार्य जल्दी नहीं करने चाहिये तो वे चार कार्य कौन हैं

।४५। हे प्रिये चञ्चरीकालीकटाक्षे मृगलोचने । कानि चत्वारि कृत्यानि कर्तव्यानि च धीमता ।४६। पुनः प्राह प्रियं धारं धीरवाग्वामलोचना । अकालगमनं चैकं विषमां गोष्ठिकां ततः ।४७। कुमित्रैः सह सांगत्यं कामाभावात् क्रुध' शुभाः । परस्त्रीभिः समं नैव कुर्वंति शर्मकांक्षिणः ॥ ४८ ॥ अथात्र विद्यते नाथ ! प्रवृत्तिः कथ्यते मया । यूयं शृणुत तां रम्यां श्रद्धान्वीतेन चेतसा ॥ ४६ ॥ महाभोटे जनां तेऽभूत् श्रेष्ठो कौमारपालकः । शतपंचाशत्सुकोटीनां दीनाराणां प्रभुर्महान् ॥ ५० ॥ प्रियंगुसुन्दरी तस्य दारायतास्ति गरीयसी । तयोः स्यातां सुतौ द्वौ च रम्यौ चित्रविचित्रकौ ॥ ५१ ॥ चित्रोऽभूद् द्यूतसंसक्तो रायं नीत्वा गृहाद्ददौ । द्यूतकृद्भ्योऽनिशं पितृदुःखदो मत्त-

विद्याधर विद्युन्मालीको स्त्री वड़ी गम्भीर और वुद्धिमती थी अपने स्वामीको उसने इस प्रकार उत्तर दिया—

प्रथम वात तो यह है कि मनुष्योंको जहां कहीं भी जाना चाहिये असमयमें नहीं जाना चाहिये। दूसरी वात यह है कि जो गोष्ठी—संगति विषम हो उसमें सम्मिलित नहीं होना चाहिये सत्सङ्गति हीं करनो चाहिये। तीसरी वात यह है कि जो कुमित्र हैं उनके साथ किसी प्रकारका सहवास नही करना चाहिये और चौथी वात यह है कि जो मनुष्य अपने कल्याणके आकांक्षो हैं उन्हें चाहिये कि वे परस्त्रियोंसे किसो प्रकारका अपना काम न सटता देख रंचमात्र भी उनसे कोध न करें ॥ ४६—४६ ॥ इसी सम्वन्धमें एक कथा प्रसिद्ध है। एकाग्र चित्त हो ध्यान देकर सुनो मैं क्रमसे कहती हूं—

इसी पृथ्वीके महाभोट देशमें एक कुमार पाल नामका सेठ निवास करता था जो कि छप्पन दोनारोंका स्वामो था। उसकी स्त्रीका नाम प्रियंगुसुन्दरी था और उससे चित्र विचित्र नामके दो पुत्र उत्पन्न थे ॥५० ५२॥ दोनों पुत्रोंमें चित्र नामका पुत्र वड़ा ही ज्वारी था। वह ज्वारियोंको प्रतिदिन घरसे निकालकर धन दिया करता था। पिताको वड़ा कष्ट देता था और सदा पागलके

वद्धन् ॥ ५२ ॥ मत्वा पुत्रं विकीर्तिं तं श्रेष्ठो दत्त्वा कियद्धनं । पृथक्कृतो गृहाद्द्यूतं विग्रहाणि तदापि न ॥ ५३ ॥ विचित्राख्यो लघुनत्वा मातरं पितरं शुभः । चचाल सिंहलद्वीपं वाणिज्यार्थे धनप्रियः ॥ ५४ ॥ समुत्तीर्य पयोराशिं तं द्वीपं चाप पुण्यतः । वसु द्वादशकोटीनां व्यापारं कृतवान् सकः ॥ ५५ ॥ अथाग्रजेन चित्रेण भुक्तं सर्वं वसु त्वरा । निःस्वीभूयं समाप्यैव दध्याविति मनोऽन्तरे ॥ ५६ ॥ स्वर्णरूप्यादिधातूनां कर्तुः पार्श्वं यदा लभे । तदैव गुटिकाविद्यां स्वीकरोम्यविलम्बतः ॥ ५७ ॥ ध्यात्वेति मानसे यावत्तिष्ठ तस्तावत्समाकणत् । कापाली प्रेतकांतारे कालन्दाख्योऽगमत्समधूत ॥ ५८ ॥ख्यातं तं योगिनं श्रुत्वा नीत्वा मिष्टान्नमागतः । नत्वाग्रे

समान बड़ २ करता रहता था ॥ ५३ पुत्रको इस प्रकार जूआका व्यसनो देख सेठ कुमारपालने उसे कुछ धन देकर जुदा कर दिया तथापि उस दुष्टने जुआ खेलना नहीं छोड़ा ॥ ५४ ॥ छोटा पुत्र विचित्र बड़ा ही सुशील और अच्छा था और धनमें विशेष प्रेम रखता था इसलिये अपने पिता माताको नमस्कार कर वह एक दिन सिंहल द्वीपकी ओर व्यापारके लिये चल दिया ॥ ५५ ॥ विशाल समुद्रको तर कर वह अपने विशिष्ट पुण्यके उदयसे सिंहलद्वीप जा पहुंचा और बारह करोड़ दीनारोंसे उसने व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ५६ ॥

बड़ा पुत्र चित्र देशमें ही था। उसने धन खा बिगाड़ डाला जब उसका सारा धन नष्ट हो गया उस समय वह अपने मनमें विचारने लगा—जो पुरुष सोना रूपा आदि धातुओंका बनानेवाला हो यदि मैं उसके पास थोड़े दिन रहूं तो मैं गुटिका विद्या(सोना आदि बनानेकी विद्या) शीघ्र सीख लूं बस ऐसा विचार कर वह बैठा ही था कि उसी समय कालन्द नामका एक कापाली श्मसान भूमिमें आ पहुंचा जो कि अङ्गमें भवूति रमाये था। चित्रने भी कापालीके आनेका समाचार सुना। शीघ्र ही मिष्टान्न लेकर वह उसके पास गया। नमस्कार किया एवं वस्त्र पुष्प फल भेंट कर दिये ॥ ५७—६० ॥ चित्रकी यह चेष्टा देख कापालीने भी समझा कि यह बड़ा भक्त है इस

ऽसूमुवचच्चित्र वासःपुष्पफलानि च ॥ ५९ ॥ योगी मत्वा परं भक्तं सन्मानं बहुधा ददौ । स्वार्थाधारोऽस्तु सत्प्रेमा स्वार्थः प्रेम प्रियो हितः ॥ ६० ॥ तद्वासरं सामारस्य चित्रो भस्मांगिनोऽकरोत् । भक्तिं भूरितरां नित्यं दिवानक्तं प्रतिक्षणं ॥ ६१ ॥ षण्मासावधिमास्थित्वा गन्तुकामो बभूव सः । तदा बभाण चित्रस्तमिति प्रेमार्द्र मानसः ॥ ६२ ॥ हे अनङ्गाभ ! दीनेश ! मन्त्राहूनमहासुरः । तथा त्वं देहि मे स्वामिन् भुनज्म्या जीवितं सुखं ॥ ६३ ॥ लिंगी तद्भक्तिभारेण प्रसन्नीभूयमेत्य वै । स्वर्णसंपादिसद्विद्यां दत्त्वोवाचेति तं भृशं ॥ ६४ ॥ मध्यरात्रे त्वया बाल ! विधेयो विधिरुत्तमः । विद्याया गुप्तभावेन सिद्धिः संपद्यते सदा ॥ ६५ ॥ गते तस्मिन्

लिये उसे वड़े चाव आदरसे विठाया ठीक ही है जिससे स्वाथ सटता है वही मनुष्योंका प्यारा होता है क्योंकि स्वार्थ ही प्यारा और हितकारी माना है ॥ ६१ ॥ उस दिनसे लेकर चित्र प्रतिक्षण योगीकी टहल चाकरी करने लगा। वह कापाली छह मास तक वहां ठहरा। छह मासके वाद उसने चलनेका विचार कर लिया। कापालीको इसप्रकार जाते देख चित्रने प्रेमसे गद्गद हो उससे इसप्रकार विनय पूर्वक प्रार्थना की—

प्रभो ! आप कामदेवके समान सुन्दर हो। दीनोंके स्वामी हो एवं मन्त्रसे महासुरको वुला देने वाले हो। स्वामिन् मुझे कोई ऐसा मन्त्र दीजिये जिससे मैं अपना जीवन सुखसे विता सकूं ॥ ६२—६४ ॥ कापाली तो चित्रकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न था ही। उसने शीघ्र ही उसे सुवर्ण वनानेवाली विद्या प्रदान करदी और सेठपुत्र चित्रसे यह कहा—

प्रिय वच्चा ! ठीक आधी रातके समय तुम इस मन्त्रको विधि पूर्वक साधना क्योंकि विद्याकी सिद्धि गुप्त रूपसे ही होती है यह नियम है वस इसप्रकार मत्र देकर कापाली अपने अभीष्ट स्थानको चला गया। सेठ पुत्र चित्रने उसके पीछे अनेक रसोंमें तामे और हंसपाक रसका सोना वनाना प्रारम्भ कर दिया। इस रूपसे उसने पांचवार जाज्वल्यमान और उत्तम सोना वना लिया

महारण्ये{ चितो नानारसैर्व्यधात् ॥ हाटकं ताम्रलोहस्य हंसपाकरसस्य वा ॥ ६६ ॥ पञ्चकृत्वो विधायासौ दीप्रं जम्बूनदं घनं । दृश्य इति निजे चित्ते तृष्णासिधूर्मिमध्यमः ॥ ६७ ॥ यत्र शैलतटे सन्ति बल्लीजालानि वेगतः । तत्र गत्वा घनं पूर्णं कृत्वा तिष्ठामि सद्मनि ॥ ६८ ॥ एकदा धनुरादाय निषङ्गं सशरं पुनः । निशीथे निर्ययौ चित्तो महेंद्रं भूधरं प्रति ॥ ६९ ॥ अस्मिन्नवसरे भ्राता विचित्राख्यो महामतः । अर्जयित्वा घनं प्राज्यं सेवकैर्दशभिः सह ॥ ७० ॥ अदूरवर्ति मत्वा स्वं पत्तनं नगराभिधं । द्वादशे वत्सरे तस्मिन् मार्गं एति समुत्सुकः ॥ ७१ ॥ आयांतं तं समालोक्य प्रजजल्पेऽग्रजोऽनुजं । श्यामायां कः समायाति निशि ब्रूताद्द्रुतं

सोनेंके इस प्रकार तयार होने पर उसका तृष्णा समुद्र बराबर बढ़ने लगा इसलिये एक दिन उसने अपने मनमें यह विचार किया—

जिस पर्वत पर बहुत सी लतायें हों वहांपर जाकर मुझे वहुतसा सोना तयार कर लेना चाहिये एवं पीछे आनन्दसे घरमें रहना चाहिये ॥ ६५—६६ ॥ एक दिन हाथमें उसने बाण चढ़ाया हुआ धनुष लेलिया एवं ठीक रात्रिके समय वह महेंद्र नामक पर्वतकी ओर चल दिया ॥ ७० ॥ वह पहाड़ पर जाकर पहुंचा ही था कि उसी समय उसका छोटा भाई विचित्र जो कि अत्यंत वुद्धिमान था बारह वर्ष बाद लौटकर अपने देश आया एवं अपना नगर नामका पुर बहुत ही समीप समझकर केवल दश सेवकोंके साथ उस मार्गसे अपने पुरकी ओर जाने लगा। जिस समय वह महेंद्र पर्वतके पास आया और चित्रने उसे देखा शीघ्र ही उससे इस प्रकार पूछा—

अत्यन्त अंधियारी रातमें यह कौन जारहा है। शीघ्र उत्तर दो। चित्रके इस प्रकार पूछने पर विचित्रने भयभीत हो इस प्रकार उत्तर दिया—तुम्हीं बतलाओ तुम कौन हो। शीघ्र वतलाओ नहीं अभी चक्रसे तुम्हारे दो खण्ड किये देता हूं ॥७१—७४॥ विचित्रकी इस प्रकार निष्ठुर वाणी सुन चित्र भी भयभीत होगया। एवं अपने भाई विचित्रको अपनी अजानकारीसे बैरी मान उसके

भवान् ॥ ७२ ॥ तन्निशम्य तदा वोचद्विचित्रस्तं च भयारवैः । कोऽसि त्वं ब्रूहि वेगेन चान्यथा हन्मि चक्रतः ॥७३॥ श्रुत्वा तन्निष्ठुरां वाचं ततर्कोत स्वमानसे । चित्राख्यो भीतचित्तः सन् प्रतिकूलजिघांसया ॥ ७४ ॥ विश्वस्तो दुर्जनो नूनं हंति हंत हठोन्नरं । अतो यावदयं शस्त्रं क्षिपेत्तावदहं द्रुतं ॥ ७५ ॥ विचार्येत्थं मुमोचाशु शिलीमुखमहो क्रुधा । विचित्रेण तथा ध्यात्वा वायचक्रं नुनोद तं ॥ ७६ ॥ इषुणा हृदये भिन्नो विचित्रो भूतलेऽपतत् । चक्रेण युगपच्चित्रो द्वावेतौ निधनं गतौ ॥ ७७ ॥ अतो भर्तां निशाभागेऽन्यात्मा लोकाविवेकता । जायते नास्यते जातु शस्त्रं पुन्सा भवादृशा ॥ ७८ ॥ निशीथे गमनं चापि न विधीयेत धीधनैः । येनानिष्टसमु-

मारनेकी इच्छासे उसने यह विचार किया । यदि दुर्जन पर विश्वास कर लिया जाता है तो वह नियमसे पुरुषको मार डालता है मुझे भी इसकी बातपर विश्वास नहीं करना चाहिये इसलिये जब तक वह शस्त्र मेरे ऊपर न छोड़े उसके पहले ही मुझे इस पर शस्त्र छोड़ देना चाहिये बस ऐसा विचार चित्रने शीघ्र ही विचित्र पर बाण छोड़ दिया । विचित्र भी उधर क्रोधायमान था जब चित्रसे उसने कोई जबाब नहीं पाया तो उसने चित्रके समान अपने मनमें दृढ़ विचार कर चित्रपर चक्र छोड़ दिया ॥ ७५—७७ ॥ देखो कर्मोंकी विचित्रता उसी समय चित्रके बाणसे विद्ध होकर तो विचित्र गिरकर मर गया और उसी समय विचित्रके चक्रसे कटकर चित्र जमीन पर गिरकर मर गया इस प्रकार दोनों ही मृत्युके कवल बन गये ॥ ७८ ॥ यह कथा सुनाकर विद्युन्मालीकी स्त्रीने अपने स्वामी विद्युद्वाससे कहा—

इसीलिये मैं कहती हूं कि रात्रिके गाढ़ अन्धकारमें दूसरे मनुष्यका ज्ञान तो होता नहीं इसलिये तुम्हारे सरीखे बुद्धिमान पुरुषको बिना विचारे रात्रिके समय शस्त्र न छोड़ना चाहिये ॥ ७९ ॥ तथा जो पुरुष बुद्धिमान हैं उन्हें रात्रिमें गमन भी नहीं करना चाहिये क्योंकि रत्रिमें गमन करनेसे अनेक प्रकारके अनिष्टोंका सामना करना पड़ता है तथा जिसमें अनिष्ट जान पड़ते हैं बुद्धि-

त्पत्तिस्तत्कृत्यं त्यज्यते ध्रुवं ॥ ७९ ॥ अकुलीनैर्नरैः सार्धं परस्त्र्यादि कथां श्रयेत् । सा चैव विषमा गोष्ठिर्बुधास्तामाचरंति न ॥ ८० ॥ एकदा मानसे हंसो जलकल्लोलराजिते । हंस्यामा क्रीडयन् स्वैरं बभाणेति प्रियां प्रियां ॥८१॥ हे कांते शुक्तिजाहारे ! कोऽप्यस्ति चावयोः प्रभुः । येन सार्धं विधायाशु मैत्रीं दे गीयते स्फुटं ॥८२॥ व्याजहार मराली,तं शृणु त्वमिति मद्वचः । सर्वेषां वयसां मध्ये मान्योऽसि त्वं गुणालयः ॥ ८३ ॥ जले त्वं तिष्ठसि पक्षिन् मकरन्दं भुनक्ष्यपि । तर्हि राजा भवेत्कस्ते ब्रूहि त्वं कारणं विना ॥ ८४ ॥ सितपक्ष स्तदादीत् पशलं वचनं प्रिये ! । सर्वेषां विद्यते नाथस्तत्कथं नावयोः स च ॥ ८५ ॥ ऋते गुरो ऋते राज्ञ ऋत द्रविणतो भुवि । जीवितं च ऋते नार्या ऋते ज्ञानाद्वृथा नृणां ॥ ८६ ॥ विनाधीशं खला लोका वर्तंते न्यायवर्त्मनि । स्तेयकर्मकराः सन्तो न सरन्ति

मान लोग उस कार्यको सर्वथा छोड ही देते हैं ॥ ८० ॥ नीच पुरुषके साथ पर स्त्री आदिकी कथा करना विषम गोष्ठी कही जाती हैं विद्वान लोग ऐसी गोष्ठीका आश्रय नहीं करते ॥ ८१ ॥ कुमित्रकी सङ्गतके विषयमें एक किं वदन्ती कथा है और वह इस प्रकार है—

एक हंस अनेक तरङ्गोंसे शोभायमान मानसरोवरमें क्रीडा करता था एक दिन क्रीडा करते २ उसने अपनी प्यारी हंसिनीसे कहा—मोतियोंसे शोभायमान प्रिये ! अपना ऐसा भो कोई स्वामी है जिसके साथ अपन मित्रता कर सकें ॥ ८१—८३॥ उत्तरमें हंसिनीने कहा—मेरी सुनो समस्त पांचयोंमें तुम मान्य और गुणोंके स्थान हो । जलमें तुम रहते और कमलदंड खाते हो तुम्हीं कहो तुमसे बढ़कर राजा कौन हो सकता है ! ॥ ८४—८५ ॥ उत्तरमें हंसने कहा—

तुमने कहा सो तो ठीक परन्तु जब संसारमें सबोंका कोई न कोई स्वामी माना जाता है तब हमारा भी कोई स्वामी हो सकता है । संसारमें गुरु राजा धन स्त्री और ज्ञानके बिना मनुष्योंका जोवन विफल है । विना स्वामीके समस्त जन न्याय मार्गपर नहीं चलते । चोरी करनेवाले होजाते हैं एवं धर्मायतनोंमें जानेकी लालसा नहीं रखते ॥ ८२—८८ ॥ इस लिये मैं अपने सुखकी आशा

वृषास्पदं ॥८७॥ अतोऽहं निजसौख्याय स्वामिधर्मेत्ततः प्रिये ! । पृच्छामि नृपतिं स्वीयं विनेदय निवेदय ॥८८॥ अत्याग्रहवशेनाह मराली तं शितच्छदं । सह्ये गिरौ तवाधीशः समास्ते निशि संचरन् ॥ ८९ ॥ श्वेतपत्रो गतस्तत्र सायं पत्न्यापि वारित. । अग्रे स्थित्वेक्षते यावत्तावत्सोऽपि समाययौ ॥ ९० ॥ अन्वयुक्तं त्युलूकस्तं कोऽसि कस्मात्समागतः । कास्ति वासस्तव ब्रूहि किमर्थं चागमोऽत्र वा ॥ ९१ ॥ काकारिवचनं हंसो निशम्योवाच वेगतः । तवास्मि किंकरो राजन् ! त्वत्सेवायै समागतः ॥ ९२ ॥ मराळीयं वचः श्रुत्वा तुतो प ध्वांक्षराड् भृशं । सार्धं नीत्वा गिरौ याति दर्यां विभ्रमकानने ॥ ९३ ॥ प कदा ध्वांक्षभिद्धंसं जगादेति विभीकरः । किं भुनक्षि त्वकं येन सुन्दरो दृश्यसे मृदुः ॥ ९४ ॥ तदा प्राहेति तं पत्री स्थानं मे मानसे विभो ! तत्र तामरसानां च मकरंदं भुनज्म्यहं ॥ ९५ ॥ दर्शय

से स्वामीको पहिचानना चाहता हूं हमारा स्वामी कौन है। तुम जल्दी बतलाओ ! ॥ ८९ ॥ अपने स्वामी हंसका जब यह अति आग्रह देखा तो उसने यह उत्तर दिया—सह्य पर्वत पर रात्रिमें घूमता हुआ तुम्हारा स्वामी रहता है ॥ ९० ॥ शामके समय हंस अपने स्वामीको खोजने चला यद्यपि हंसिनीने बहुत मना किया परन्तु उसने एक न सुनी। वह पर्वतके ऊपर पहुंचा ही था कि उसी समय जिसको उसका स्वामी बनाया गया था वह भी वहां आगया ॥ ९१ ॥ उल्लूको हंसका स्वामी हंसिनीने बतलाया था। उल्लूने जिस समय हंसको देखा—इस प्रकार पूछना प्रारम्भ कर दिया—

तुम कौन हो कहांसे आये हो कहां तुम्हारा स्थान है और यहां किस लिये आये हो जल्दी बोलो ! उल्लूके ऐसे वचन सुन हंसने कहा—राजन ! मैं आपका सेवक हूं आपकी सेवाके लिये यहांपर आया हूं। हंसके इस प्रकार वचन सुन उल्लू बड़ा प्रसन्न हुआ और भयङ्कर वनमें पर्वत की गुफामें बड़े आदरसे लिवा गया ॥ ९१—९४ ॥ एक दिन उल्लूने हंससे पूछा भाई तुम बड़े सुन्दर और कोमल जान पड़ते हो कहो तो तुम खाने क्या हो ! उत्तरमें हंसने कहा—

त्वं निजं धाम तथेति प्रतिपद्य सः । नीत्वा काकप्रियं मूढो मानसे त्वरया गतः ॥९६॥ मध्यरात्रे स्थितो लूकः सर्वं पश्यति पापभाक् । हंसा निद्राकुला जातास्तद्देशान्यकथाऽभवत् ॥ ९७ ॥ इन्द्रराजाभिधस्तस्मिन्मार्गे याति धनुर्धरः । रराट दक्षिणे लूकोऽक्षिरद्राणं तद्रा स तं ॥ ९८ ॥ तेनेषुं पश्यता तूर्णमलूकेन पलायितं । तदा तद्बाणघातेन हंसः पञ्चत्वमाप सः ॥ ९९ ॥ कुमित्रेण समं मैत्री धनं धान्यं चतुष्पदं । लज्जां मानं मदं प्रेम जीवितं नाशयिष्यति ॥ १०० ॥ अतो नाथ ! न कर्तव्या कुमित्रस्य च संगतिः । यतो नश्यति सन्नृणां मतिर्विद्या च कौशलं ॥ १०१ ॥ निशां भूरितरां मत्वा खगपत्नी कथां जगौ । परस्त्रीकोपसंभूतां मनोनिर्वेगदां नृणां ॥ १०२ ॥ शृणु नाथ महादेशे गांधारे रुद्रनामकः । व्यवहारी विद्यते दानी परन्तु विषयी महान् ॥ १०३ ॥ तत्रैवास्ते धनी श्रेष्ठी श्रीपालाख्यो

स्वामिन् ! मेरा घर मानस सरोवर है वहां मैं मृणाल दण्ड खाया करता हूं ॥ ९५—९६ ॥ उल्लूने कहा भाई ! तुम्हारा घर मानस सरोवर कैसा है हमें भी दिखा दीजिये भोला हंस उसकी बातोंमें आगया और उसे मानस सरोवर पर ले आया ॥ ९६ ॥ ॥ रात्रिके घोर भी अन्धकारमें उल्लूको तो सब दीखता ही है। जिस समय सारे हंस तो सो रहे थे और उल्लू जग रहा था उस समय यह घटना उपस्थित होगई—

जहांपर हंस रहते थे उसी मार्गसे एक हंसराज नामका धनुर्धारी मनुष्य निकला। धनुर्धारी मनुष्यकी ठीक दाईं ओर उल्लू बैठा था। धनुर्धारीको देखते ही वह चिल्लाने लगा। धनुर्धारीने अपना अपशकुन समझ उसपर बाण छोड़ दिया दुष्ट उल्लू भाग गया। बाणके घावसे हंस बिचारा मर गया इस लिये यह निश्चित है दुष्ट मित्रके साथ को गई मित्रता धन धान्य, पशु आदि, लज्जा मान गौरव प्रेम और जीव सबकी नाशक होती है ॥ ९७—१०२ ॥ हे स्वामिन् ! बुद्धिमान मनुष्योंको कभी भी कुमित्रकी संगति नहीं करनी चाहिये क्योंकि बुद्धि विद्या और कुशलता सभी कुमित्र संगतिसे नष्ट हो जाते हैं ॥ १०३ ॥ उस समय अधिक रात्रि जानकर विद्याधर विद्युन्माली

बहुप्रदः । तत्पत्नी सुन्दरी नाम्ना इति किं चामरप्रिया ॥ १०४ ॥ रुद्रनामैकदा दृष्ट्वा तां चकोरदृशां शठः । नितंबस्तनभारेण मंथरां विह्वलोऽभवत् ॥ १०५ ॥ प्रत्यहं तद्गृहे याति केन चिच्छद्मना स तां । विलोकितुं महामोहमूर्छितः पापपण्डितः ॥ १०६ ॥ एकदा तां हठात्कृत्वा समालिंग्य जगाविति । भो श्यामे मद्वचः सारं प्रमाणीकुरु सादरं ॥ १०७ ॥ यावन्न निर्ग्राहिनो दुष्टो जजल्प तु त्वदं वचः । पश्याहं ते करिष्यामि बह्वनर्थपरंपरां ॥ १०८ ॥ धूर्त्तं मत्वा तदा साह शृणु त्वं मद्वचः प्रभो ! । बिभेमि मत्प्रियान्नून

की छीने पर स्त्रीके क्रोधसे क्या फल प्राप्त होता है यह कथा कहनी प्रारम्भ कर दी जो कि मनुष्योंके चित्तको वैराग्य उत्पन्न करने वाली थी। वह कथा इस प्रकार है—

गान्धार नामके महा देशमें एक रुद्र नामका व्यापारी रहता था जो कि दानी तो था परन्तु महा विषयी था। उसी देशमें एक श्रीपाल नामका भी सेठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम सुन्दरी था जो कि ऐसी जान पड़ती थी कि यह कामदेवकी स्त्री रति है या कोई देवांगना है ॥१०३-१०५॥ एक दिन व्यापारी रुद्रने चकोर नयनी एवं नितम्ब और स्तनके भारसे मन्द २ चलनेवाली सेठानी सुन्दरीको देख लिया। पापी वह मोहसे मूर्छित हो विकल होगया एवं किसी न किसी वहानेसे प्रति दिन उसको देखनेके लिये उसके घर जाने लगा ॥ १०६—१०७ ॥ उसने बहुत चाहा कि सुन्दरी सीधे साधे मेरे काबूमें आजाय परन्तु वह न फसी इसलिये एक दिन रुद्रने उसे जवरन पकड़कर आलिङ्गन कर लिया एवं इस प्रकार अनुनय विनयके वचन कहने लगा—

सुन्दरी ! मेरी बात सुन और उसे स्वीकार करले। मैं तेरा वड़ा कृतज्ञ हूंगा। सुन्दरी बुद्धिमती थी उसने एक भी बात रुद्रकी न सुनी एवं पकड़कर जबरन घरसे निकाल दिया। रुद्र तो दुष्ट था ही। सुन्दरीके द्वारा अपना यह घोर अपमान देख उसे वड़ा रोष आया। सेकड़ों गाली बकी झकीं एवं यह कह कर कि अच्छा तुझे देख लूंगा यदि तेरे सैकड़ों अनर्थ न कर डालूं तो

मन्यथा त्वं पतिर्मम ॥ १०६ ॥ आभाष्येति समानीतः सद्ममध्ये धृतो तया । अत्रांतरे समायातः श्रीपालो द्वारि सद्मनः ॥ ११० ॥ मंजूषायां महार्घायां चित्रायां रत्नराजिभिः । क्षिप्तो भर्तुर्भिया रुद्रो दत्ता मुद्रायसी ततः ॥ १११ ॥ जगादेति पुरो भर्तुः सुन्दरी ललितं वचः । स्वामिन्नात्मगृहे भृत्य. समागत्येति संजगुः ॥ ११२ ॥ मंजूषा विद्यते रम्या युष्माकं कुंकुमारुणा । प्रजापो याचते तां वः प्रेषणीया प्रयत्नतः ॥ ११३ ॥ नीत्वा तां वेगतो भीतः श्रीपालो भूपतेः पुरः । मुक्त्वोवाचेति तां रम्यां स्फुटार्थां गुणगर्भितां ॥ ११४ ॥ देव मे सिंहलद्वीपात्समायाता मनीप्सिता । मंजूषा मणिभारेण भूषिता लोचनप्रिया ॥ ११५ ॥ प्राभृती

मेरा नाम रुद्र नहीं, चलने लगा ॥ १०८—१०६॥ रुद्रके इस दुर्व्यवहारसे सुन्दरीने अपनी कीर्तिपर धब्बा लगता देखा इसलिये शांत हो प्रिय वचनोंमें वह इस प्रकार रुद्रसे कहने लगी—

स्वामिन् ! मेरी बात सुनो । मैं अपने पतिसे डरती हूं । यदि मुझे उनका डर न होता तो मैं नियमसे तुम्हें पति बना लेती । तथा ऐसा कहकर उसने शीघ्रही रुद्रको अपने घरके भीतर बुला लिया । उसी समय उसका पति श्रीपाल भी महलके दरवाजे पर आगया । महलके भीतर रत्नोंकी जड़ी एक बहु मूल्य संदूक थी । अपने स्वामीके भयसे सुन्दरीने रुद्रको उसके भीतर छिपा दिया और बाहिरसे ताला जड़ दिया ॥ १११—११२ ॥ एवं अपने स्वामीके सामने उसने यह शांतिमय वचन कहा—

स्वामिन् ! अपने घर राजाके सेवक आये थे । अपने घरमें जो केसरके समान रंगकी रत्न जड़ी संदूक है राजा उसे मागता है तुम शीघ्र उसे राजाकी सेवामें भेज दो ॥ ११२—११४ ॥ राजाकी आज्ञासे श्रीपाल डर गया वह शीघ्र ही राज सभाकी ओर संदूक लेकर चल दिया एवं राजाके सामने रखकर मनोहर स्पष्ट और गंभीर वचनोंमें उसने इस प्रकार कहा—

स्वामिन् ! मणियोंसे शोभायमान लोचनोंको प्यारी और अभीष्ट यह संदूक मैं सिंहलद्वीपसे

क्रियतेऽस्माभिर्गृहीतां मीनकेतुम । देवागारे नृपागारे युक्तं तद्‌द्वयं पुनः ॥ ११६ ॥ राज्ञा नीत्वा ददौ सिंधुस्वामिने सौहृदात्खलु । स ऽपि नीत्वा निजं धाम गंतुकामो नृपाज्ञया ॥ ११७ ॥ चचाल चतुरंगेण बलेनामा यदा तदा । पलं मत्वाथ भेरुण्डो गृहीत्वैव्रगनांगणे ॥ ११८ ॥ सिंधुराजचरैः सैव मोचिता सागरेऽपतत् । यदा निष्कास्यते भृत्यैस्तन्मध्यस्थो जगाविति ॥ ११९ ॥

कइच्छा तइधण्णा जोइण्णा पण्डिया च सहपवरा । तचण्णारुद्दरहिया इच्छकुडवखेहिं णो भिण्णाः ॥ १ ॥

राजभृत्याश्च भीभीताः गत्वा नरपतेः पुरः । व्याहरंतिस्म भो देव! मंजूषेयं प्रजल्पति ॥ १२० ॥ किं वक्ति ब्रूत वेगेन गाथा ख्याता तदा च तैः । श्रुत्वा धरापतिः प्राह भो भो भृत्या निशम्यतां ॥१२१॥ केन चिद्विदुषा पुंसा वर्ततेऽधिष्ठिता शुभा । अतो वेगेन सा

लाया था उसे मैं आपकी भेंट कर रहा हूं क्योंकि देव मंदिर वा राज मन्दिरमें ही इसका होना युक्त है राजाने उसे सिंधुराज नामक व्यक्तिको देदिया वह भी राजाकी आज्ञासे उसे लेकर चतुरङ्ग सेनाके साथ अपने घरकी ओर चल दिया एवं आगनमें आकर वह संदूक उसने रखवा दी, उस समय भेरुण्ड नामका पक्षी आकाशमें उड़ रहा था उसने वह संदूक मांसका लोदा जाना इसलिये वह चूंचसे उठाकर आकाशमें उड़ा लेगया। सिंधुराजके नोकरोंने बड़ी कठिनतासे उसे छुटाया तथापि वह समुद्रके अन्दर जाकर पड़ गई। सेवक जब उसे निकालने लगे तो उसके भीतरसे यह शब्द निकला—

रुद्रके सिवाय सभी मनुष्य संसारमें कृतार्थ हैं धन्य योगी पंडित बुद्धिमान तत्वोंके जानकार और स्त्रियोंके जालमें नहीं फसनेवाले हैं केवल रुद्रही इनसे विपरीत और दुष्ट हैं" संदूकके भीतरसे इस प्रकार शब्द सुनकर राजाके जितनेभर भी सेवक थे मारे भयके व्याकुल होगये दौड़ते दौड़ते शीघ्र ही वे राजाके पास पहुंचे और इस प्रकार कहने लगे—स्वामिन! जिस संदूकको आपन ले गये थे वह संदूक बोलती है ॥ ११५—१२२ ॥ सेवकोंसे यह समाचार सुन राजाको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। इसलिये शीघ्र ही उसने पूछा—संदूक क्या बोलती है? सेवकोंने जो गाथा

रत्या नीयतां वारिराशितः ॥ १२२ ॥ आदातुं ते यदा यांति मंजूषां रत्नरंजितां । पाठीनोऽजीगिलत्तूर्णं वृथाऽसौ निधनं गतः ॥ १२३ ॥
तथा भर्तः परस्त्रीणां संगं कुर्वंति ये जडाः । त एव निधनं यांति रुद्रश्रेष्ठीव निश्चितं ॥ १२४ ॥ शुभेतरं विचार्यैव विद्वद्भिः कुलखेंदु-
भिः । कार्यं सदान्ने भर्तस्त्वादृक्षैर्नकीर्तिभिः ॥ १२५॥ विद्युन्मालीं खगाधीशः श्रुत्वा जायावचोजगौ । हे प्रिये ते नरा मूढा योषिद्वाक्या
नुगामिनः ॥ १२६ ॥ सामीक्ष्णं तं चमाणेति योषाया यद्धितं वचः । उररीक्रियते सद्भिर्नाहितं विदुषामपि ॥ १२७ ॥ अधिक्षिप्य प्रिया
वाक्यं मुमोचेदृक् वचुस्सु सः । वन्यजीवाश्च तद्भावैः प्रणेशुर्जीविताशयाः ॥१२८ ॥ आशुगाल्या तपोऽम्भोधिर्मे रुमें रुविवापरः । मुनीशो

उसके भीतरसे सुन पड़ी थी कह सुनाई । राजा सुनकर अवाक् रह गया । और तो उससे कुछ नहीं बना । यही उसने सेवकोंको आज्ञा दी—

सुनो भाई ! किसी विद्वान पुरुषका उसपर अधिकार है इसलिये तुम शीघ्र ही समुद्रसे उसे ले आओ । राजाकी आज्ञानुसार भृत्य उसे लेनेके लिये गये वे समुद्रके पास पहुंचे ही थे कि एक विशाल मच्छने उसे लील लिया इस रूपसे विना कारण रुद्र मृत्युका कवल वन गया ॥१२२-१२५॥ इस प्रकार पर स्त्रीके क्रोधसे संवन्ध रखनेवाली कथा सुनाकर विद्याधरीने अपने पति विद्याधरसे कहा—

प्राणनाथ ! जो मूर्ख संसारमें परस्त्रियोंसे संवन्ध रखता है वह रुद्र व्यापारीके समान नियमसे मृत्युका पात्र वनता है । स्वामिन् ! आप बुद्धिमान हो । वंश रूपी आकाशके लिये चन्द्रमा एवं चन्द्रमाके समान निर्मलकीर्त्तिके धारक हो आप सरीखे मनुष्योंको शुभ अशुभ विचार कर ही कार्य करना चाहिये । किसी कार्यको जल्दी नहीं कर डालना चाहिये ॥ १२६—१२७ ॥ विद्याधरोंके स्वामी विद्याधर विद्युन्मालीका होनहार अच्छा न था । हितकारीभी अपनी स्त्रीके वचनोंपर उसने रञ्च मात्रभी ध्यान नहीं दिया उत्तरमें यही कहा—

योगतो धीरो न चचालाद्रिसारवान् ॥ १२९ ॥ तदा विद्याधरो दुष्टो विद्या सस्मार धारिणी । पट्त्रिंशशाखावक्त्रां स तिमिस्त्रायां क्रुधान्वितः ॥ १३० ॥ उत्पाट्य खेचरोमेरुं योगींद्रं खाङ्गणेऽव्रजत् । त्रासयन् दुर्वचोभिश्च कम्पयन् विद्यया शठः ॥ १३१ ॥ तदा वैडूर्यं देवस्य ज्योतिश्चक्रस्थितस्य च । चकम्प विष्टरं भाना चमत्कारस्य करं परं ॥ १३२ ॥ तृतीयावगमात्मत्वा विघ्नं मेरुमहामुनेः । तूर्णं वैडूर्यनामासौ खड्गं नीत्वा समागमत् ॥१३३॥ गर्जंतं घनवद्घोरं वदन्तं दुस्सहं वचः । खड्गपाणिं तमालोक्य वियच्चारी भिया मुनिं

जो पुरुष स्त्रियोंके कहनेमें चलते हैं वे मूढ़ कहलाते हैं मैं तुम्हारी बात कभी भी नहीं मान सकता। अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन फिर भी विद्याधरीने कहा—स्वामिन ! जो पुरुष विद्वान हैं उन्हें यदि हितकारी स्त्रियोंका भी वचन हो तो उसे स्वीकार करलेना चाहिये और यदि अहितकारी विद्वानोंका भी वचन हो तो उसे कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। मेरा यदि वचन युक्त हो तो आपको उसे स्वीकार करनेमें कुछ भी आपत्ति न करनी चाहिये ॥ १२८—१२९ ॥ विद्याधर विद्युन्मालीने अपनी स्त्रीके वचनोंका रंचमात्र भी आदर न किया। शीघ्रही उसने चारों दिशाओंमें बाण छोड दिये जिससे उनके भयङ्कर शब्दोंसे बहुतसे वनके जीव त्रस्त होगये। यद्यपि विद्याधर विद्युन्माली खडी बद्ध बाण छोडता रहा और उनका भयङ्कर शब्द होता रहा परन्तु तपके समुद्र मुनिराज मेरु, मेरुपर्वतके समान निश्चल बने रहे। पर्वतके समान कठिनता धारण कर अपने योगसे कुछ भी चल विचल नहीं हुए ॥ १३०—१३१ ॥ जब विद्याधरकी कुछ भी तीन पांच न चली तो उसने धारिणी नामकी विद्याका स्मरण किया जो कि बत्तीस मुख और बत्तीस भुजाओंसे युक्त थी दुष्ट विद्याधर विद्युन्मालीने उस धारिणी विद्याके बलसे मुनिराज मेरुको उठा लिया एवं अनेक दुर्वचन कहकर उन्हें त्रास देता हुआ और अपनी विद्यासे कंपित करता हुआ आकाशमार्गसे ले चलने लगा। उसी समय वैडूर्य नामक ज्योतिषी देवका आसन कंपायमान हुआ जो कि समस्त

॥ १२४ ॥ मुक्त्वा याति यदा छितिपादेषु तं ववन्ध सः । गाढं शृङ्खलया देव ! तदा क्रोधारुणेक्षणः ॥ १२५ ॥ तदैव केवलोत्पत्तिः प्रादुरासीत् गणेशिनः । लोकालोकामलप्रायदर्शिनी सर्वगा भुवं ॥ १२६ ॥ मत्वा केवलसंभूतिं मेरोराखण्डलादयः । आगत्य चक्रुरानंदादुत्सवं जयराविणः ॥ १२७ ॥ शक्रादेशकृतोत्पीठत्रयस्थं तं सुरासुराः । किन्नराः सन्नरा नेमुर्भूधरस्थं हरिं नु वा ॥१२८॥ गद्यपद्यादिभिः स्तुत्वा नत्वा तत्पादपङ्कजं । स्थितास्ते सर्वतो भांति हंसाः क्षीरांबुधाविव ॥ १२९ ॥ शक्रोऽचलत्वमालोक्य मेरुनाम्नो

ज्योतिषियोंको आश्चर्य करनेवाला था। देव बैडूर्यने शीघ्र ही अवधिज्ञानकी ओर उपयोग लगाया। महामुनि मेरुपर विघ्नका होना जान लिया एवं तत्काल खड्ग लेकर विद्युन्मालीके पास आ झपटा। ॥ ११२—१३५ ॥ मुनिराज पर अत्याचार करते देख देव बैडूर्य विद्युन्मालीके ऊपर मेघके समान गर्जा, अनेक दुस्सह वचनोंको कहकर तर्जा एवं मारनेके लिये हाथमें खड्ग तयार कर लिया। देव बैडूर्यका यह भयङ्कर रूप देख विद्याधर विद्युन्माली डरा। मुनिराजको छोडकर वह दो तीन ही कदम भाग कर गया था कि क्रोधसे लाल २ नेत्रोंके धारक देव बैडूर्यने मजबूत सांकलसे उसे मजबूतीसे बांध लिया ॥१२६—१२७॥ इधर बैडूर्य देवने तो विद्याधर विद्युन्मालीकी यह दशा की उधर मुनिराज मेरुको केवल ज्ञान होगया जो कि लोक अलोकके समस्त पदार्थोंको निर्मल रूपसे प्रकाश करनेवाला था और सर्वगत था ॥ १२८ ॥ मुनिराज मेरुके केवल ज्ञानकी उत्पत्तिका हाल इन्द्र आदि देवोंको भी ज्ञात होगया। जिससे जय जय शब्दोंके साथ उन्होंने सानंद मुनिराजके केवल ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञानुसार तिखने सिंघासनसे शोभायमान गंध कुटीकी रचना कर दीगई। उसमें विराजमान मुनिराज मेरुको सुर असुर किन्नर और राजा आदि महापुरुष नमस्कार करने लगे। महामनोहर गद्य पद्योंमें मुनिराजकी स्तुति की। चरण कमलोंकी वंदना की एवं जिस प्रकार क्षीर समुद्रके चारों ओर हंस आकर विराज जाते हैं उस प्रकार वे मुनिराजके

मुनीशितुः। अष्टोत्तरशतध्यानगुणपर्वसमन्वितां ॥ १४० ॥ मणिमालां समाधाय मेरुनामावधिं गले। मेरूवन्निश्चलत्वेन ममाल स्वर्गभूखगैः ॥ १४१ ॥ उग्रसेनो महीनाथो वंन्दितु तं समाटितः। इक्ष्वाक्वन्ययसंभूतः पल्लवाख्यपुराधिपः ॥ १४१ ॥ वन्दित्वा सादरं श्रुत्वा धर्मं मेरुमुखोद्गतं। पप्रच्छेति नराधीशो ध्यानप्रत्यूहकारणं ॥ १४२ ॥ भो स्वामिन्! किमनेनामा ते वैरं विद्यते पुरा। देवेनाथ कथं बद्धो ब्रूहि त्वं ज्ञानसागर! ॥ १४३ ॥ मेरुस्तं प्राह राजानं श्रृणु त्वं साधुभक्तिभाक। अथैव धातकीद्वीपे वर्षमैरावताभिधं ॥ १४५॥ किष्किंधाख्यं पुरं तत्र विद्यते नागरैर्नरैः। राजमानं नृपस्तत्र शूरः सिंहरथोऽभवत् ॥

चारों ओर वैठ गये॥ १३९—१४० ॥ मुनिराज मेरुके अचलपनेपर ध्यान देकर ध्यानकी सिद्धिकी कारण एकसौ आठ मनकोंकी माला तयार की एवं समस्त देव और विद्याधरोंके सामने मेरुके समान अपनेमें निश्चलता प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इन्द्रने उसे अपने गलेमें पहन लिया—

इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न पल्लव पुरका स्वामी एक उग्रसेन नामका राजा था। मुनिराज मेरुको केवल ज्ञानी सुनकर वह उनको वंदनाके लिये आया। मुनिराजके मुखसे धर्मोपदेश सुना एवं यह उपसर्ग कैसे उपस्थित हुआ यह जाननेको इस प्रकार उसने इच्छा प्रगट की ॥१४१—१४४ ॥

प्रभो! आप ज्ञानके समुद्र हैं कृपाकर कहिये विद्याधर विद्युन्मालीके साथ आपका पूर्वभवमें कैसे वैर बंधा! और देवने इसे कैसे बांधा! उत्तरमें मुनिराज मेरुने कहा— भाई तुम ध्यानपूर्वक सुनो, मैं कहता हूं—

धातुकी खंड द्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें एक किष्किंधापुर नामका नगर है जो कि नगर निवासी लोगोंसे सदा शोभायमान रहता है। किष्किंधापुरका स्वामी राजा सिंहरथ था जो कि शुर वीर था। किष्किंधापुरमें ही उस समय एक माधव नामका सेठ रहता था जो कि विपुल धनका स्वामी था। सेठ माधवके सात पुत्र थे जो कि अत्यंत रूपवान और विद्वान थे। किसी समय वर्षा कालमें भाग्यके उदयसे सेठ माधवको भरा खजाना हाथ लग गया। रात्रिके समय उसने अपने पुत्रोंके साथ

१४८ ॥ तत्र माधवनामाभूत् श्रेष्ठी भूरिधनान्वितः । बभूवुः सप्त तत्पुत्रा रूपवन्तो विदांवराः ॥१४७॥ एकदा गच्छतस्तस्य प्रावृषि श्रेष्ठिनो महत् । निधानं रत्नसंपूर्णं लब्धं दैवोदयादयात् ॥ १४८ ॥ नीत्वा निशि सुतैः साकमाससंज्ञ धरानले । सुत्रीभूयमितः श्रेष्ठी तस्थौ लालापुरंदरः ॥ १४६ ॥ एकदारिंजयो वृद्धपुत्रश्चेति व्यचिंतयत् । व्यापन्ने श्रेष्ठिना तस्य भविता भागसप्तकं ॥ १५० ॥ विचिंतेत्थं च निष्कास्य निधानं तेन पापिना । निक्षेपान्यत्र भूभागे धिग् लोभं दुर्गतिप्रदं ॥ १५१ ॥ दिनेष्वयत्सु कीयत्सु श्रेष्ठी

खजानेको जमीनमें खुदवाकर रखवा दिया एवं इन्द्रके समान सुख भोगता हुआ वह सुखसे रहने लगा ॥१४५—१४६ ॥

माधवके सबसे बडे पुत्रका नाम अरिंजय था। एक दिन उसने अपने मनमें विचार किया कि पिताके मर जानेपर धनके सात भाग होंगे और उंसमेंसे मुझे सातवां भाग मिलेगा। बस ऐसा विचारकर उस पापीने जमीनसे भरे खजानेको निकाला और अन्यत्र जाकर गाड़ दिया। हा! इस लोभके लिये धिक्कार है क्योंकि यह दुर्गतिमें लेजानेवाला है ॥ १५०—१५१ ॥ थोड़े दिन वीत जानेपर सेठ माधवने अपना रत्नभरा खजाना देखा जब उसने वहां उसे न पाया तो उसे सीमांत दुःख हुआ एवं उस तीव्र दुःखसे उसे मूर्छा आगई। जमीनपर गिरकर मर गया एवं मोह कर्मके उदय से मर कर वह उसी खजानेपर सर्प होगया। एक दिन सेठपुत्र अरिंजय धन लेनेके लिये खजानेमें गया जहांपर वह खजाना गड़ा था धीरे धीरे वहांकी उसने पृथ्वो खोदना प्रारंभ कर दो। सर्पने ज्योंही अरिंजयको देखा उसे डस खाया। जिससे वह विषसे मूर्छित हो जमीनपर गिरकर मर गया। सर्पकी यह चेष्टा देख अरिंजयको भी क्रोध आगया था उसने भी सर्पके दो टुकड़े कर दिये इस रूपसे वे दोनों उसी समय मृत्युको प्राप्त होगये।

इसी भरत क्षेत्रकी उत्तर दिशामें एक मथुरा नामकी नगरी है। उसमें एक वणिक रहता था

तल्लोकते यदा। अदृष्ट्वा मोहतो भूमौ मूर्छया पतितो नृप ! ॥१५२॥ मृत्वा जज्ञे भशव्यालो निधाने मोहकर्मतः। एकदा रिंजयस्तूर्णं-मानेतुं याति तद्वसु ॥ १५३ ॥ मंदं मंदं चचालेलां यदा गत्वा तदा फणी। ददंशारिंजयं कोपात् विपांधः सोऽपतद्भुवि ॥ १५४ ॥ तेन सर्पोहतः क्रोधाद्द्वौ युगपन्निधनं गतौ। अथात्र भारते द्वीपे चोत्तरा मथुरा पुरी ॥१५५॥ जज्ञाते तौ वणिक्पूत्रौ तत्र भद्रहराभि-भिधौ। दुर्गतौ विमती दुष्टौ विरूपौ विगतत्रपौ ॥ १५६ ॥ अन्यदा मगधे राष्ट्रे वाणिज्यार्थं च तौ गतौ। तत्रां सर्पचरोभद्रस्ततर्केति

अरिंजय और सर्प दोनोंके जीव उसके दो पुत्र होगये जो कि महा दुष्ट थे मैंले कुचेले थे दरिद्र और निर्लज्ज थे एवं दोनोंका नाम भद्र और हर था ॥ १५२—१५६ ॥ एक दिन वे दोनों मगध राज्यमें व्यापारके लिये गये उस समय पापी और ठग सर्पका जीव भद्र अपने मनमें यह विचारने लगा—

रात्रिके समय जब हर सो जाय उस समय मुझे हरको मार देना चाहिये और सारा धन अपने घर ले जाना चाहिये। बस ऐसा पूर्ण विचार कर वह ठीक आधी रातके समय उठा। हरके धोकेमें एक दूसरे पथिकको मार डाला एवं वह मूर्ख अपने घर चला गया। प्रातः काल होते हर उठा। अपने पासके मनुष्यको मरा देख वह एक दम भयभीत होगया। एवं इस प्रकार मनमें विचारने लगा—

अवश्य मेरे भ्रमसे मेरे भाईने इस पथिकको मारा है, यदि मैं ठहरूंगा तो लोग मुझे ही इसका मारनेवाला समझेंगे जिससे संसारमें मेरा ही अपवाद होगा। यह नियम है कि दुष्टोंके साथ संवन्ध करने पर मनुष्यकी चिरकालसे संचित भी कीर्त्ति नष्ट हो जाती है तथा बन्धन ताड़न विशेष क्या मृत्युका भी सामना करना पडता है। बस ऐसा विचार कर हर शीघ्रही वहांसे चल दिया एवं बुद्धिमान वह इसप्रकार अपने मनमें सोचने लगा—

स्वमानसे ॥ १७॥ मारयित्वा हरं नूनं यामि नीत्वा धनं गृहे । नक्तं सुप्तो विचार्येत्थं पापीयानन्यवंचकः ॥१५८॥ मध्यरात्रे समुत्थाय हरभ्रांत्या जघान सः । अन्यं पांथं ततः सद्म जगाम सत्वरं शठः ॥ १५९ ॥ पाश्चात्यप्रहरे रात्रेर्जजागार हरस्तदा । दृष्ट्वा मृतं नरं स्वांते दृष्ट्वा तं वितर्क सः ॥ १६० ॥ अहो भ्रातेव मद्भ्रांत्या पांथोऽयं मारितो ध्रुवं । तिष्ठेयं चेदहं तर्हि मेऽपवादो भविष्यति ॥ १६१ ॥ संसर्गेण खलस्यैव याति कीर्तिः शिवं धृता । बंधनं ताड़नं चैव पञ्चत्वं सुलभं भवेत् ॥ १६२ ॥ विमृश्येत्थं चचालाशु हरश्चिंतातुरः स च । गत्वेत्र स्वपुरास्यर्णे विचचारेति चेतसि ॥ १६३ ॥ विज्ञापयामि कं सभ्यं धर्माधर्मज्ञमित्यहो । विचार्य मम पार्श्वे

धर्म और अधर्मके जानकार किस महापुरुषसे मैं अपना यह हाल कहूं । वह सीधा मेरे पास आया क्योंकि मैं राजा था और सारा वृतांत उसने मुझसे कह सुनाया । मैंने पापी भद्रको बुलाया कठिन दंड दिया और नगरसे बाहिर निकाल दिया ॥ १५७—१६२ ॥ मेरे द्वारा दिये गये दंडसे भद्रमित्रको बड़ी लज्जा आई। बनमें जाकर किसी मुनिराजके समीप भद्रने दिगंबरी दीक्षा धारण करली । मुनि वन वह क्रोध पूर्वक संयमको आराधने लगा । आयुके अन्तमें वह मरा और विद्याधर विद्युन्माली होगया ॥ १६३ ॥ पहिले भवमें जो उसने मुझे दंड दिया था उसीसे जायमान वैरके संवन्धसे इसने मेरे ऊपर यह उपसर्ग किया है इसलिये वैरका यह भयंकर फल देख किसीको किसीके साथ बर नहीं करना चाहिये ॥ १६४ ॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर दिशामें एक श्रीपुर नामका नगर है जोकि महा मनोहर स्त्रियोंसे शोभायमान और शोभामें गंधर्व नगरकी उपमा धारण करता है। उस पुरका स्वामी भूपाल नामका राजा था जो कि अपने तेजसे शत्रुओंको भयभीत करनेवाला था। उसकी रानीका नाम ललांगी था जो कि उत्तम नेत्रोंसे शोभायमान थी इन दोनों राजा और रानीके एक 'रुवची' नामकी कन्या थी जो कि महा मनोहर थी। तपे सोनेके समान रंगकी धारक, सुवर्णके घड़ोंके समान स्तनोंसे

स समेत्योवाच तं नृप ! ॥ १६४ ॥ तदाहं तं समाहूय भद्रं पापपरं पुरात्। निष्कासयां चकाराशु दत्त्वा दंडं च दुस्सहं ॥ १६५ ॥ लज्जितोऽसौ वने गत्वा संयमं मुनिसन्निधौ । आददे क्रोधभावेन मृत्वायं खेचरोऽजनि ॥ १६६ ॥ पुरा दण्डोत्थवैरेण प्रत्यूहोऽनेन मे कृतः । अतो वैरं न कर्तव्यं केन चिन्मानवाधिप ! ॥ १६७ ॥ आदित्याभभवे यो मे मोचितो धरणात्खगः । विद्युद्दंष्ट्रो महाविद्यो धर्माचारपरांमुखः ॥ १६८ ॥ खेचराद्र्युत्तरश्रेण्यामथास्ते श्रीपुरं पुरं । भामाभूरिविलासैश्च श्रीगन्धर्वपुरोपमं ॥ १६९ ॥ पाति तत्पत्तनं भूपो भूपालाख्योऽरिभीतिदः । तस्यैव भामिनी भाति ललांगी कामलोचना ॥ १७० ॥ तयोर्जज्ञे सुता नाम्नो रुर्वश्री कामकुन्दला ।

शोभायमान और जघनके भारसे मंद मन्द गमन करने वाली थी। विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र जो कि महा विद्याका स्वामी था। धर्माचरणोंसे सर्वथा विमुख था और आदित्याभके भवमें जिसे मैंने धरणेंद्रसे बचाया था कन्या रुर्वश्रीपर मोहित हो गया और उसके पिता राजा भूपालसे उसने हठ पूर्वक मांगा परन्तु भूपालने उसे प्रदान नहीं की। भूपालका यह घमण्ड देख राजा विद्युद्दंष्ट्रने उसके साथ संग्राम ठान दिया। दुर्भाग्यवश संग्राममें विद्युद्दंष्ट्रको हार खाना पड़ी। अपनी हारसे विद्युद्दंष्ट्र लज्जित होगया। राज्य छोड़ तपसी बन मिथ्यातप करने लगा। आयुके अन्तमें मरा एवं ज्योतिर्लोकमें तुम जाकर ज्योतिषी देव हुये हो तुम्हारे ऊपर जो मैंने उपकार किया था उसके बदले प्रत्युपकार करनेके लिये तुमने इस उपसर्गकी शांति की है। इस प्रकार पूर्वभवका संबन्ध सुन राजा उग्रसेन और विद्याधर विद्युन्मालीको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया एवं नमस्कार पूर्वक मुनिराज मेरुसे ही उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण करली। ज्योतिषी देवने भी चित्तमें प्रसन्न हो मुनिराज मेरुकी स्तुतिकी एवं उन्हें नमस्कार कर अपने स्थानपर चला गया। ठीक है सज्जन लोग किये उपकारको भूलते नहीं ॥ १६६—१७६ ॥ पुन्नाग वृक्षको कितना भी पेरा जाय वह विकृत नहीं होता तथा रसीला ईखका वृक्ष अत्यन्त पिडित होनेपर भी

स्वर्णांगी स्वर्णकुम्भाभवक्षोजा जघनमंदगा ॥ १७१ ॥ बहुशो याचितस्तेन विद्युद्दंष्ट्रेण तां हठात्। तत्पिता न ददौ तस्मै तदासौ संगरं व्यधात् ॥ १७२ ॥ जाते महति सङ्ग्रामे भूपालास्येन निर्जितः। लज्जितस्तापसो भूत्वा चकार कुतपश्चिरं ॥ १७४ ॥ तप्त्वा मृत्वा सुपः प्रांते ज्योतिश्चक्रे सुरोऽभवत्। स्मृत्वोपकृतिमायातो मम विघ्नोपशांतये ॥ १७५ ॥ एवं सम्बन्धसङ्कल्पं श्रुत्वा राजा खगोऽपि :सः। दिदीक्षाते विनेयत्वात् नत्वा मेरुं गणाधिपं ॥ १७६ ॥ पीडितोऽप्यविकारी स्यात्पुन्नागो जगतीतले। निष्पीडितोऽपि माधुर्यं क्षर तीक्षुरसाद्रिं त ॥ १७७ ॥ परं न चन्दनः सन्नामकापिचुमन्दकादयः। न श्वेतपत्रिणो घूका वर्तंते भूरयः खलाः। सहस्रैकाब्दपर्यंतं

मधुर ही रस छोड़ता है उसी प्रकार सज्जनको कितनी भी पीड़ा पहुंचाई जाय वह शांत हीं रहता है। संसारमें कपिचु मन्दक आदि नामोंके धारक वहुतसे वृक्ष हैं पर सभी चन्दन नहीं। तथा सभी उल्लू पक्षी सफेद पंखोंके धारक नहीं कोई कोइ ही होते हैं उसी प्रकार संसारमें दुष्ट ही वहुत हैं सज्जन वहुत नहीं। परम पावन उन मुनिराज मेरुने एक हजार वर्ष पर्यंत अनेक देशोंमें विहार किया। अन्तमें उन्होंने मोक्ष सुख प्राप्त कर लिया—

सम्मेदाचल पर्वतके समीपमें एक पद्म कंवल नामका नगर था। उसमें यशोधर नामका सेठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम यशस्विनी था। सेठानी यशस्विनीको एक दिन सर्पने डस लिया उसे मरी समझ श्मसान भूमिमें उसकी दाह क्रियाके लिये लोग लेगये। वहां पर मुनिराज मन्दर विराजमान थे। उनके पवित्र शरीरसे स्पर्शी गई पवनसे सेठानी यशस्विनीका जहर दूर हो गया जिस समय सेठानी जीती जागती उठ बैठी उस समय सवके सव इस प्रकार विचारने लगे—

इस मुर्दाके शरीरमें भूत प्रविष्ट होगया जान पड़ता है वस सवके सव लोग भयसे आकुलित हो गये। उन्हे आकुलित देख करोडों मांसभक्षी राक्षस वहां आगये। राक्षसोंको इसप्रकार देखकर

विहृत्य विषयान् बहून्। समाप शिवसंभूतं शर्म मेरुर्णाधिपः ॥ १७६ ॥ सम्मेदभूधराभ्यर्णेऽस्ति पुरं पद्मकम्बलं। श्रेष्ठी यशोधरस्तत्र यशस्विन्यस्य भामिनी ॥ १८० ॥ सर्पदष्टैकदा नीता भूतारण्यं यशस्विनी। संस्कारार्थं च तदा जज्ञे मंदरांगानिलाच्छुभां ॥ १८१ ॥ असुवंतीं तदा दृष्ट्वा लोका विभ्युर्मनोऽन्तरे। इति प्रेतयुतं भीकृत् पराशु किमु सांप्रतं ॥ १८२ ॥ भीत्याकुलान्मराल्लोक्य क्रव्यादाः कोटिशोऽभवन्। प्रादुस्तद्भयतस्तूर्णं मन्दरमं दरं तके ॥ १८३ ॥ मुनिप्रभावतो देवी वनस्य समचीकरत्। शालत्रयमथोवाचोपसीत्य ध्यक्षमेत्र सा ॥ १८४ ॥ धन्योऽयं मन्दरो नाम विषं यातं यदाश्रयात्। श्रुत्वा समं स्त्रिया श्रेष्ठी प्रवव्राज तदन्तिके ॥ १८५ ॥ मन्दरोऽपि महाकर्म छित्वा ध्यानेन केवलं। समुत्पाद्य ययौ धीरो मरुत्पूज्यः शिवं शिवः ॥ १८६ ॥ उग्रसेनमुनिस्तीव्रं तपस्तप्त्वा चिरं बहु।

वे भयसे कंपायमान हो गये एवं वे सबके सब भयभीत हो मुनिराज मन्दरके चरणोंके पास चले गये। मुनिराजके प्रभावसे बनदेवीने तीन प्राकारोंका कोट रच दिया एवं प्रातःकाल सबोंको लक्ष्य-कर उसने यह कहा—

मुनिराज मंदरके लिये धन्यवाद है। इन्हींके आश्रयसे सेठानी यशस्विनोका विष दूर हुआ है। ज्यों ही सेठ यशोधर और सेठानी यशस्विनीने यह बात सुनी उन्हें संसारसे वैराग्य होगया एक मुनिराज मंदरके समीपमें ही वे संयमसे दीक्षित हो गये ॥ १७७—१८५ ॥ मुनिराज मन्दरने भी महा ध्यानके बलसे घातिया कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया एवं देव पूज्य वे मुनिराज मोक्षके स्वामी बन गये ॥१८६॥ महोदय मुनिराज उग्रसेनने भी घोर तप तपा एवं आयुके अंतमें मरकर वे सर्वार्थ सिद्धि विमानमें अहमिंद्र होगये ॥ १८७ ॥ विद्याधर विद्युन्मालीने भी शक्तिके अनुसार तप किया एवं आयुके अन्तमें मरकर वे पांचवें स्वर्गमें देव होगये। ललित उनका नाम हुआ और अनेक देवांगना उनकी सेवा करने लगी ॥१८८॥ ग्रन्थकार तपकी महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

सर्वार्थसिद्धिमासाद्य तस्थौ पुण्यात्महोदयः ॥ १८७ ॥ खेचरोऽपि यथाशक्ति तपः कृत्वा सुरालये । पद्मपेभूत्सुरः सेव्योरंभाभिर्ललिताभिधः ॥ १८८ ॥ तपः कुर्वंति ये भव्यास्ते लभंतेऽद्भुतो श्रियं। स्वर्गो गृहांगणे तेषां कामधेनुश्च किंकरी ॥ १८९ ॥ वभूवुः पञ्चपञ्चाशद्गणाः श्रीविमलेशिनः । शतोत्तरसहस्रोक्ता मुनयः पूर्वधारिणः ॥ १९० ॥ खद्विपञ्चाष्टत्रिसंख्या आसन् शिष्या गुणोज्वलाः । खद्वयाष्टचतुर्मेयास्त्रिविधावधयः स्फुटं ॥१९१॥ अष्टत्रिसहस्रोक्ताः सर्वसंयमिनः पराः । लिसहस्रै कलक्षोकाः पद्माद्या आर्यिका मताः ॥१९२॥

जो महानुभाव तप आचरण करते हैं उन्हें अद्भुत लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है । स्वर्ग उनके घरके आंगनमें प्राप्त हो जाता है और कामधेनु किंकरी बन जाती है ॥ १८९ ॥

भगवान विमलनाथके पांच सौ तो गणधर थे। ग्यारह सौ पूर्वधारी मुनि थे । अड़तीस हजार पांच सौ शिष्य थे । अडतालीस सौ देशावधि आदि अवधिज्ञानके स्वामी थे । पचपन सौ केवल ज्ञानी, छत्तीस सौ वादी मुनिराज, अड़सठ हजार संयमी मुनि, एक लाख तीन हजार आर्यिका दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविका, नौ हजार बिक्रिया ऋद्धिके धारक, पांच हजार पांच सौ मनःपर्यय ज्ञानी और असंख्याते देव इस प्रकार सबोंसे युक्त भगवान बिमलनाथ अत्यंत शोभायमान जान पडते थे ॥ १९०—१९२ ॥

जो भगवान विमलनाथ बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी हैं । कल्याणके प्रदान करनेवाले हैं जीवोंके हितकारी हैं । कर्मरूपी कीचड़को सुखानेके लिये सूर्य स्वरूप हैं उन भगवान विमलनाथको मैं बार बार नमस्कार करता हूं ॥ १९२ ॥ पद्मसेन नामके जो राजा थे वे बारहवे स्वर्गके देवोंके स्वामी सहस्रारेंद्र होगये ।केवल विभूतिके नायक वे भगवान विमलनाथ हमारी रक्षा करें । जो भगवान विमलनाथ भव्य रूपी कमलोंके लिये सूर्य समान हैं । मोह रूपी हस्तीके लिये सिंह स्वरूप हैं एवं देव इन्द्र स्वरूप चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमा स्वरूप हैं अर्थात् हृदयका

द्विलक्षश्रावकाः प्रोक्ता द्विगुणा श्राविका मताः । खत्रयनवसंख्याश्चः विक्रियर्द्धि विराजिताः ॥ १९३ ॥ खद्वयेंद्रियपञ्चोक्ताः पूर्णतुर्याव बोधनः । असंख्याताऽमरैरर्च्यो रराज विमलो जिनः ॥ १९४ ॥ श्रीमते परमशर्मदायिनेऽनेकजन्तुहितकारिणेऽस्तु नः । कर्मपंकर वये व ते नमः श्रीजिनाय विमलाय निर्दिवं ॥ १९५ ॥ पद्मसेनजगतीपतिस्ततो द्वादशामरनिवासपोऽजनि । यस्तु केवलविभूतिनायकः पातु नः स विमलोऽमलः सदा ॥ १९६ ॥ भव्यपङ्कजदिवामणिं हरिं मोहवारणततौ कलानिधिं । निर्जरेशशिखिभुक्ततौ श्रिये भोजना

उत्ताप मिटानेवाले हैं प्रिय भव्य जीवो ! उन भगवान विमलनाथकी कल्याणकी प्राप्तिकी अभिलाषा से तुम्हें सदा सेवा करनी चाहिये ॥ १९३—१९४ ॥

प्रशस्ति



जो काष्ठासंघ समस्त पृथ्वी पर प्रसिद्ध है तीनोंलोकके स्वामी जिसकी स्तुति करते हैं । जिसमें अगणित मुनि होचुके है एवं जिसमें अनेक विद्याओंका समारोह रहा है उसमें एक रामसेन नामके भट्टारक हुए जो कि आचार्योंमें राजा स्वरूप थे सिद्धान्त रूपी समुद्रके पारगामी थे । चन्द्रमाके समान कीर्त्तिसे शोभायमान थे । ध्यान रूपी जलके प्रवाहसे पाप रूपी संतापके दूर करनेवाले थे और अन्धकारके लिये सूर्य स्वरूप थे ॥ १९५ ॥ उसी काष्ठासंघमें आचार्य रामसेनके बाद भट्टारक सोमकीर्त्ति हुए जो कि मुनि आदिके गण रूपी पर्वतके लिये सूर्य स्वरूप थे ।

मनुष्य रूपी चकोर पक्षियोंके लिये चंद्रमा स्वरूप एवं जिनकी कीर्तिका गान नागकुमारियां करतीं थीं । आचार्य सोमकीर्त्तिके पट्ट पर विजयसेन नामके भट्टारक हुए जो कि समस्त जनोंको वास्तविक ज्ञान प्रदान करनेवाले थे। कीर्त्ति कांति रूपी लक्ष्मीके लिये समुद्र स्वरूप थे और कुबुद्धियोंके विजेता थे ॥ १९७ ॥ भट्टारक विजयसेनके पट्टपर आचार्योंमें प्रधान श्री यशःकीर्ति नामके देव हुए

भजत वैमल' मुदा ॥ १९७ ॥ विख्याते जगतीतले त्रिभुवनस्वामिस्तुतेऽभून्महान् काष्ठासंघसुनामनि प्रमुयतौ विद्यागणे सूरिराट् ! सा गार्णवपारगो विधुयशाः श्रीरामसेनोजिनध्यानार्णो विततिप्रभ्रू तद्वजिनो भानुस्तमोराशिपु ॥ १९८ ॥ तत्क्रमेण गणभृन्नरभानुः सोम कीर्तिरिव शीतमयूखः । संबभूव जनताशिखिभुक्षु नागनाथदयिताकृततेजाः ॥ १९९ ॥ तत्पदे विजयसेनभदन्तो वोधिताखिलजनः कमनीयः । कीर्तिकांतिकमलाजलराशिः संबभूव विजयी कुमतीनां ॥ २०० ॥ तत्पट्ट सूरिराजः सकलगुणनिधिः श्रीयशःकीर्तिदेव स्तत्पादाम्भोजषट्पात्सकलशशिमुखो वादिनगेन्द्रसिंहः । संजज्ञे प्रांतसेनोदय इति वचसां विस्तरे संप्रवीणः, तत्पट्टाब्जालिशकत्रि

जो कि समस्त गुणोंके भण्डार थे । भट्टारक यशःकीर्त्तिके चरण कमलोंमें भ्रमर स्वरूप एवं अखण्ड चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान बादी नागेंन्द्र सिंह नामके भट्टारक हुए । उनके शिष्य उदय सेन नामके भट्टारक हुए जो कि सिद्धांतके पूर्ण ज्ञाता और व्याख्याता थे उनके वाद आर्य उदय- सेनके चरण कमलोंके सेवक एवं तीनों लोकमें जिनकी महिमा गाई जाती थी ऐसे भट्टार त्रिभुवन कीर्त्ति हुए ॥ १९८ ॥ भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्तिके शिष्य भट्टारक रत्नभूषण हुए जो कि पृथ्वी तलपर चन्द्रमाके समान स्वच्छ प्रकाशके धारक थे । भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्तिके पट्टरूपी उदयाचल पर्वतके लिये सूर्य स्वरूप थे । तर्क नाटक आदि शास्त्रोंके रहस्यके पारगामी थे और कवियोंमें राजा स्वरूप थे ॥ १९९ ॥

इसी पृथ्वीपर लोहाकर नामका एक पुर है उसमें एक हर्षनामके महानुभाव रहते थे जो कि पुरवासियोंमें प्रधान माने जाते थे । महानुभाव हर्षकी स्त्रीका नाम वीरिका था जो कि एक सज्जन स्वभावकी थी अनेक गुणोंकी स्थान थी एवं साध्वी थी माता वीरिकाका पुत्र मैं (ग्रन्थकार) कृष्णदास था जो कि सुन्दरतामें कामदेवके समान था । पूर्ण ब्रह्मचारी था सुन्दर किर्तिका धारक था एवं भगवान ऋषभदेवके चरण कमलोंमें भ्रमर स्वरूप था ॥ २०० ॥ मेरे छोटे भाईका नाम मंगल

भुवनमहिमा तन्मुखप्रांतकीर्तिः ॥ २०१ ॥ राजते रजनिनाथयशाः को तत्पदोदयनगाहिमद्दीप्तिः । तनाटककुर्कलागमदक्षो रत्नभूपण महाकविराजः ॥ २०२ ॥ श्रीमल्लोहाकरेऽभूत्परमपुरवरे हर्पनामा वरीयान् तत्पत्नी साधुशीला गुणगणसदनं वीरिकाख्येव साध्वी । पुत्रः श्रीकृष्णदासो रतिप इव तयोर्ब्रह्मचारीश्वरश्च सत्कीर्तौ राजते वै वृपभजिनपदाम्भोजपट्पात्समानः ।२०३। मङ्गलैर्मकरकेतुदीप्तिभिर्वर्णिभिः सह मया कृतोऽयकं । ग्रन्थ एव ! विदुपां सुखप्रदः शोधयन्तु विवुधाः खलेतराः ।२०४। गूजरे जनपदे पुरे कृतः कल्पवल्ल्यभिध एव सादरात् । वर्धमानयशसा मया पुरोः पत्कजाहितसुचेतसा ध्रुवं ॥ २०५ ॥ मेरुभूधरपतिः खतारका सन्ति सागरधरा नभोमणिः । तावदेप विदुपां मनोऽन्तरेऽलंकृतः सततमेव भातु मे ॥ २०६ ॥ खत्रिलंरियतशतान्वितोऽधिको वेदपट्प्रमितकाव्यराजिभिः । पण्डितैर्मतिविकारवर्जितैः संलिखाप्य पठनाय दीयतां ॥ २०७ ॥ देवर्पिपट्चन्द्रमितेऽथ वर्षे पक्षेऽसिते मासि नभस्यलं मे । एकादशीशुक्रमृगर्क्षयोगे ध्रौव्यान्विते निर्मित एप एव ॥ २०८ ॥ इति श्री बिमलनाथपुराणे भ० श्रीरत्नभूपणाम्नायालंकारब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममंगलदाससहाय्यसापेक्षे निर्वाण नाटक मेरुव्यानोपसर्गमेरुमंदरनिर्वाणनिरूपणो नाम दशमः सर्गः समाप्तः ॥१० ॥

दास था जो कि चंद्रमाके समान कांतिसे शोभायमान थे ब्रह्मचारी थे उनकी सहायतासे यह कल्याण प्रदान करनेवाला ग्रन्थ रचा गया है। सज्जन विद्वानोंसे यह प्रार्थना है कि जहां इसमें त्रुटियां रह गई हो उन्हें शुद्धकर पढ़ें और पढ़ावें ॥२०१ ॥ गुजरात देशमें एक कल्पवल्ली नामका नगर है उसी नगरमें बैठकर वढती हुई कीर्तिसे शोभायमान और गुरुके चरण कमलोंके भक्त मैंने इस ग्रन्थका बड़े आदरसे निर्माण किया है ।२०२। जव तक संसारमें मेरुपर्वत नक्षत्र समुद्र तारे समुद्र पृथ्वी सूर्य आदि पदार्थ विद्यमान रहें तव तक यह ग्रन्थ भी विद्वानोंके हृदयका अलंकार वन सदा शोभायमान रहै ॥ २०३ ॥ तीन हजार छयालीस श्लोकोंसे शोभायमास यह ग्रन्थराज विमलनाथ पुराण पूर्णविद्वान पंडितोंको अवश्य लिखाकर देना चाहिये ॥ २०४ ॥ श्रावण वदी एकादशी संवत् १६७४ सोलहसौ चौहत्तर जव कि मृगर्क्ष योग नित्य रूपसे विद्यमान था उससमय यह ग्रन्थ पूरा हुआ था ॥ २०५ ॥

इसप्रकार, भट्टारकरत्नभूषणकी आम्नायके अलङ्कारस्वरूप ब्रह्मचारी मंगलदाकी सहायतापूर्वक ब्रह्मचारी कृष्णदास विरचित वृहत् विमलनाथ पुराणमें भगवान विमलनाथका निर्वाण कल्याण मुनिराज मेरुका ध्यान और उपसर्ग एवं मेरुमंदिरका निर्वाण कल्याण वर्णन करने वाला दशवां सर्ग समाप्त ॥ १

...वायकः । एवं महाविभूत्या — द्रवत् ॥ ५३६ ॥ अथैकदा महावीरो विपुलाचलमस्तके । अगमाण जगत्पूज्यः परमानंददायकः ॥ ५३७ ॥ लेखेशानुमतात् श्रीदश्चकरीतिस्म विष्टरं । मरकतोद्भवसत्पीठं चतुर्गतिविराजितं ॥ ५३८ ॥ (युग्मं) पचसद्विंतिकविंशतिसहस्रदलं । गणैर्द्वादशभिर्युक्तं मानस्तंभैरलंकृतं (५३९) सरांसि यत्र राजंते सपद्मानि पराणि च । हंससारसरावाणि पद्मरागमयानि च ॥ ५३९ ॥ धेनुशावै रमतेऽत्र व्याघ्रशावा मदोत्कटाः । नकुलाः सकला नागैः रंरम्यंते स्वभावतः ॥ ५४० ॥ भुवने सर्वजंतूनां गतं कृतपरस्परं । जन्मादिकं त्रिधा वैरं जगन्नाथप्रभावतः ॥ ५४१ ॥ नकुलाद्यादिजंतूनां गतं कृतपरस्परं । जन्मादिकं त्रिधा वैरं जगन्नाथप्रभावतः ॥ ५४२ ॥ निर्जला वापिकाः सर्वा भांत्यंभो भारपूरिताः । हंससारसचक्रांगपंकजाभरणायिताः ॥ ५४३ ॥ शुष्कवृक्षा विराजंते भ्रमद्भ्रमरसंकुलाः । लतांतकुसुमैर्नम्राः फलैश्च

एवं दो हजार मुकुटवद्धराजा उनके चरणोंकी सेवा करते थे इसप्रकार वे महाराज श्रेणिक देवोंके इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे राज्यका पालन करते थे ॥ ५३२—५३६ ॥

एक दिन विपुलाचल पर्वतके ऊपर समस्त जगतके पूजनीक और परमानंद प्रदान करनेवाले भगवान महावीरका शुभ आगमन हो गया । इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने उनके समवसरणकी रचना की और उस समवसरणकी भूमि नीलमणिकी बनाई जो कि चारों गतिके जीवोंसे शोभायमान थी ॥५३७-५३८॥ वह समवसरण पांच विशाल उत्तमोत्तम भीतियोंसे शोभायमान था । बीस हजार पैंडियोंका धारक था। बारह कोठे और मानस्तंभोंसे शोभायमान था । उस समवसरणके अन्दर पद्मराग मणिके वने हुये सरोवर थे जो कि उत्तमोत्तम कमलोंसे व्याप्त थे और हंस एवं स्यास आदि पक्षियोंके शब्दोंसे शोभायमान थे ॥ ५३९—५४० ॥ उस समय वहां गायोंके बच्चे मदसे मत्त भी सिंहोंके बच्चोंके साथ और नौले सर्पोंके साथ स्वभावसे ही सानंद क्रीड़ा करते थे आपसमें कोई किसीसे वैर नहीं निभाता था ॥ ५४१ ॥ तीन जगतके स्वामी भगवान जिनेंद्रके माहात्म्यसे संसारके समस्त जीवोंका वा नौला सर्प आदि समस्त जीवोंका जन्म आदि तीन प्रकारका आपसी वैर नष्ट हो गया था ॥ ५४२--५४३ ॥ जल रहित समस्त वावडिये जलसे भरी हुई थीं । हंस स्यास चकवा

पिकराविणः ॥ ५४४ ॥ षट्ऋतूनां फलान्येव कुसुमानि विशेषतः। आजग्मुर्युगपत्काले वीतरागप्रभावतः ॥ ५४५ ॥ राजत्यप्सरसो वृंदं वृंदारकसमाश्रितं। नतंत्पयोधरामोगं वृंदं वा हैमवीरुधां ॥ ५४६ ॥ मालाकारः समायातो वाटिकायां विलोकयन्। तदा ददर्श-संभूतां सर्वशोभां फलान्वितां ॥ ५४७ ॥ किमेतदिति चित्ते स स्वकालकुसुमादिकं। व्यतर्कयच्चिरं भ्रांत्या नु माया मृगतृष्णिका ॥ ॥ ५४८ ॥ कियद्दूरं ततो गत्वा यावत्पश्यति कौतुकं। दध्वान दुंदुभीरावः पूरयन् गगनांगणं ॥ ५४९ ॥ कियत्यपि पुनर्गत्वा मार्गे शोभां लुलोक सः। देवदेवकृतां त्रिंशत्सहस्रध्वजराजितां ॥ ५५० ॥ जयारवैर्विमानस्थकंकृद्भिर्भकृतीकृतां। सुरांगनामुखोद्भूतैर्वधि-रीकृतदिङ्मुखां ॥ ५५१ ॥ युग्मं। एवं दृष्ट्वा निवृत्याशु नीत्वा कुसुमसत्फलं। गत्वा राज्ञः पुरस्तात्स मुक्त्वा चानृतुसंभवं ॥ ५५२ ॥

और कमलरूपी भूषणोंसे भूषित थीं। जो वृक्ष सूखे पड़े थे वे सतापर्यंत फूल और फलोंसे नम्री-भूत हो गये। भौंरे घूम घूम कर गुंजार शब्द करने लगे और उनपर बैठकर कोकिला मनोहर और मधुर आलाप आलापने लगीं समस्त ऋतुओंके फल और फूलोंसे समस्त वृक्ष लदबदा गये ॥५४४-५४६॥ देवोंसे व्याप्त जैसी अप्सरायें शोभित होती हैं उसीप्रकार कमलोंसे व्याप्त वहांकी सरोवरी अत्यंत शोभायमान थी तथा विशाल स्तनोंसे कंपित जैसा अप्सराओंका समूह अत्यंत शोभायमान दीख पड़ता है वैसा ही सुवर्णमयी लताओंका समूह भी अत्यंत शोभायमान था। माली जिस समय वनमें आया समस्त शोभा और फलोंसे युक्त जिससमय उसने वहांकी जमीन देखी वह मन ही मन विचार करने लगा कि यह समय तो फूल आदिके आनेका नहीं है फिर ये जो फूल आदि दीख रहे हैं यह क्या है? क्या यह इन्द्रजाल है या मृगतृष्णा है? तथा इसप्रकार तर्क वितर्क करता जिससमय वह थोड़ी दूर और आगे बढ़ा तो क्या देखता है कि दुंदुभि बाजेका उन्नत शब्द हो रहा है जिसने कि अपनी गुंजारसे समस्त आकाशरूपी आंगन पूर रक्खा था ॥ ५४७—५५० ॥ उससे भी आगे जब कुछ बढ़ा तो वह मार्गमें महामनोहर शोभा निरखने लगा जो शोभा देवोंके देव इन्द्रो द्वारा की गई थी। तीस हजार ध्वजाओंसे युक्त थी। विमानमें बैठनेवाले और झंकार करनेवाले देवोंके झंकारों से परिपूर्ण थी एवं देवांगनाओंके मुखोंसे जायमान जय जय शब्दोंसे समस्त दिशाओंको बधिर करने वाली थी ॥५५१-५५२॥ बस भगवान महावीरके प्रभावसे होनेवाले दृश्यको देखकर एवं कुछ

अब्रवीद्वो नराधीश ? नन्द त्वं करुणालय ! महावीरागमेनैव चिरं जीव चिरं जय ॥ ५५३ ॥ श्रुत्वोत्थितो महीपालो गत्वा सप्तपदानि च तां दिशं नंनमीतिस्म परोक्षविनयान्वितः ॥ ५५४ ॥ हर्षितोऽदात्तदा राजा वस्त्रालंकारसद्धनं । मालाकाराय भावेन राजराज इवादरः ॥ ५५५ ॥ वंदितुं गंतुकामः सन्नानंदाख्यं सुदुंदुभिं । दापयामास सद्वत्या पौरसन्नाहसंवृतः ॥ ५५६ ॥ सिंधुरांश्च मदोन्मत्तानंजनाभान् कियत्सतान् । विचित्रांवरितान्नानारंगराजिविचित्रितान् ॥ ५५७ ॥ दानतोयमहावृष्टिपंकाकुलितभूतलान् । स श्रृंगारितवान् राजा वाभ्रविद्युद्घनान् भृशं ॥ ५५८ ॥ षट्त्रिंशज्जातकानश्वान् खांभोभूमिगतीन् द्रुढान् । स्पुटं गामिनो राजा भूषयामास सोऽरि

सुन्दर फूल और उत्तम फल लेकर वह महाराज श्रेणिकको राजसभामें गया। वनके अन्दर जो वेऋतुमें शोभा हुई थी सारी कह सुनाई एवं गद्गद वाणीसे इसप्रकार कहने लगा—

महाराज ! आपके उद्यानमें भगवान महावीर आकर विराजे है। उनके आगमनसे आप नादो चिरकाल तक जीओ और चिरकाल तक जयवंते रहो ? वनपालकी यह आनंद प्रदान करनेवाली बात सुनकर महाराज श्रेणिक एकदम सिंहासनसे उठे। जिस दिशामें भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे उस दिशामें सात पेड़ आगे बढे और बड़े विनयसे उस दिशाको परोक्ष नमस्कार किया। महाराज श्रेणिकके आनंदका उस समय ठिकाना न था इसलिये जिसप्रकार कुबेर निःसंकोचरूपसे दूसरेको धन प्रदान करता है उसप्रकार महाराज श्रेणिकने भी बड़े उत्साहसे मालीको उत्तम वस्त्र अलंकार और विपुल धन प्रदान किया ॥५५३—५५६॥ भगवान जिनेन्द्रकी वंदनाकी अभिलाषा चित्तमें उछलने लगी इसलिये उन्होंने शीघ्र ही वंदनाकी घोषणा करनेके लिये नगरमें आनंद भेरी दिवा दी एवं पुरवासी लोगोंके साथ चलनेके लिये उद्यत हो गये। उससमय महाराज श्रेणिकने कईसौ हाथी सजवाये जो कि मदोन्मत्त थे अन्जन पर्वतके समान काले थे। अनेक प्रकारकी झूलोंसे शोभायमान थे। नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र विचित्र थे एवं झरते हुये मदरूपी जलकी महावृष्टिसे उन्होंने समस्त पृथिवीतल कीचमयकर दिया था इसीलिये वे हाथी आकाशमें

जित् ॥ ५५९ ॥ मासमवसतेः पट्टकूलैर्नावासुरंगभूः । क्षायिकोद्द तत्सद्भावात् श्रेणिकेन च कारिता ॥ ५६० ॥ ध्वनयन् दिङ्मुखान्येव रंजयन् लोकसंघकान् । जयानन्दस्वोपेतान् सपुत्रश्चेलिनीयुतः ॥ ५६१ ॥ चतुरंगबलेनामा छत्रचामरराजितः । निर्ययौ पटहध्वानैर्वंदितुं सन्मतिं जिनं ॥ ५६२ ॥ मानस्तंभं विलोक्याशु दूरतो नरनायकः । गजादुत्तीर्य नौतिस्म साष्टांगं छत्रवर्जितः ॥ ५६३ ॥ निःसहीति पठन् राजा विवेश समवसृतिं । तुंगभित्तीः समुल्लंघ्य पश्यन् शोभां गतोऽतरे ॥ ५६४ ॥ विष्टरस्थमहावीरं तेजसा व्याप्तदिक्चयं । संदृष्ट्वा हि महीपालो जिनं त्रिः प्रक्षिणिकां कृत्वा ननाम काश्यपीपतिः ॥ ५६५ ॥ अर्चयित्वाथ संस्तुत्वा निविष्टो नरकोष्ठके ।

विजलीसे युक्त काले काले मेघ सरीखे जान पड़ते थे। छत्तीस प्रकारकी जातिके घोड़े सजाये गये जो कि अपनी कलाओंसे आकाश जल और स्थलपर चलनेवाले थे। दृढ थे और ओरेवी चाल चलनेवाले थे। महाराज श्रेणिक क्षायिकसम्यग्दृष्टि थे इसलिये उन्होंने समवसरणकी जमीनपर्यंत रंग विरंगे कपड़ोंको बिछाकर चलनेका मार्ग सजाया था ॥ ५५७—५६१ ॥ भगवान महावीर जिनेंद्रकी वंदनाकेलिये महाराज श्रेणिक चल दिये, जिससमय वे चले अपने वाजोंके शब्दोंसे समस्त दिशायें उन्होंने शब्दायमान कर दीं। जीओ नादो इत्यादि शब्दोंसे समस्त लोक उन्होंने आनंदित कर दिया। समस्त पुत्र और रानी चेलिनीको अपने साथमें ले लिया। चारो प्रकारकी सेना उनके साथ चलने लगी। उनके शिरपर छत्र फिरता और चमर दुरते जाते थे एवं दुंदुभि वाजे बजते जाते थे। बनमें पहुंचकर जिससमय राजा श्रेणिकको मान स्तंभ दीख पड़ा वे तत्काल हाथीसे उतर पड़े। छत्र चमर आदि विभूति छोड़ दी एवं दूरसे ही उसे साष्टांग नमस्कार किया ॥ ५६२--५६४ ॥ समवसरणके पास आकर "निःसहि निःसहि निःसहि" इसप्रकार तीनबार निःसहि शब्दका उच्चारण करने लगे। समवसरणके भीतर प्रवेश किया एवं ऊंची ऊंची भीतोंको उलांघकर वे समवसरणकी शोभा निरखने लगे ॥ ५६५ ॥ समवसरणके मध्यभागमें भगवान महावीर जिनेंद्र विराजमान थे जिनके कि प्रचंड तेजसे समस्त दिशायें जगमगा रहीं थीं। राजा श्रेणिकने उनकी

शमप्रदं शिवं ॥ ५६६ ॥ स्वभवावलिकां श्रुत्वा तूष्णीत्वं संस्थितो यदा। अभयाख्यो जिनं नत्वा पप्रच्छ स्वभवावलिं ॥ ५६७ ॥ शृणु वत्स ! भवान् स्वीयान्कथयामि समासतः। द्विज एको याति वेदाभ्यासार्थं श्रावकेण च ॥५६८॥ कियन्मार्गे द्विजो गच्छन् दृष्ट्वा चाभिमुखं वटं। परीत्य भावयुक्तः सन्ननाम विनयान्वितः। ५६९ ॥ श्रावको हि तदा स्मित्वा नीत्वा पत्राणि तत्तरोः। स्वपादं च परिमृज्य क्षिप्तवान् काश्यपीतले ॥ ५७० ॥ दृष्ट्वा द्विजो महाक्रोधादब्रवीत् श्रावकं प्रति। किं करोषि न जानासि देवचित्रं हि कष्टद ॥ ५७१ ॥ श्रावकोऽपि द्विजं प्राह यदीयं शुद्धदेवता। तर्हि मम विनाशं च करिष्यत्येव नान्यथा ॥ ५७२ ॥ द्विजो त्रिशं पुनः प्राह को

तीन प्रदक्षिणा दीं। भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। पूजाकी। पूजाके अंतमें स्तुति की। मनुष्य कोठेमें जाकर विराज गये। अनेक प्रकारसे कल्याणोंको प्रदान करनेवाले और साक्षात् मोक्ष स्वरूप भगवान जिनेंद्रसे अपने पूर्वभव पूछे। भगवानने अपनी दिव्यध्वनिसे उनका वर्णन किया। सुनकर राजा श्रेणिक शांत होकर अपने स्थानपर स्थिर होकर बैठ गये। राजा श्रेणिकके साथमें कुमार अभय भी गये थे उन्होंने भगवान जिनेंद्रको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और विनयपूर्वक अपने पूर्वभवोंको पूछा। भगवान जिनेंद्र भी यह कहकर कि—वत्स ! मैं संक्षेपसे तुम्हारे पूर्वभव कहता हूं। उसके पूर्वभव वर्णन करने लगे—

वेणातड़ागपुरका निवासी एक ब्राह्मण वेदाभ्यास करनेके लिये चला। दैवयोगसे उसके साथ साथ एक श्रावक भी चल दिया। चलते चलते कुछ दूर जब वह विप्र पहुँचा तो मार्गमें उसे एक बड़का वृक्ष दीख पड़ा। ब्राह्मणने भक्तिभावसे उसकी प्रदक्षिणा दी और मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। ब्राह्मणके साथमें जो श्रावक गया था वह जैनधर्मका परम भक्त था। ब्राह्मणने जो कार्य किया था उसे देख वह मुसकराने लगा। वृक्षके थोड़े पत्ते तोड़ लिये। उनसे पैर पोंछे और उन्हें जमीन पर डाल दिया ॥ ५६६—५७१ ॥ श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण अपना क्रोध न संभाल सका शीघ्र ही उसने श्रावकसे कहा—अरे भाई ! तुम क्या करते हो ? क्या तुम नहीं जानते कि देवकी अवज्ञा महा कष्ट प्रदान करने वाली है। उत्तरमें श्रावकने ब्राह्मणसे कहा—भाइ ! यदि तुम्हारा

देवो भवतामिति । अग्रेऽस्ति द्विज ! मे देवः किमर्थं पृच्छसि त्वकं ॥ ५७३ ॥ वसित्वा वाडवोऽत्रोचत् परिभूतिमिदं तव । देवं नेष्याम्यहं तद्वत् परीक्षार्थं न शंसयः ॥ ५७४ ॥ कियत्यपि ततो दूरे गत्वा स श्रावकोत्तमः । कपिकच्छलतां दृष्ट्वा नत्वावोचद्द्विजं प्रति ॥ ५७५ ॥ देवोऽयं सकलो विप्र ! मदीयो भक्तिभिः सदा । इति श्रुत्वा गृहीत्वा तत्पत्रादीनि विनोदतः ॥ ५७६ ॥ स्वकायं परिमृज्यायु चलत्येव यदा तदा । खर्जपीड़ाकुलो भूत्वा पपात धरणीतले ॥ ५७७ ॥ तदासौ श्रावकं प्राहत व प्रत्यक्षदेवता । प्रतिबोधेन विप्रस्य देवमौढ्यं निराकरोत् ॥ ५७८ ॥ मार्गे गच्छंस्ततः प्राप्तं गंगातीर्थं ततो द्विजः । भागीरथी हरिर्विप्राः इत्युक्त्वा पतितांतरे ॥ ५७९ ॥ ततोऽप्राक्षीत्पुनः श्राद्धो द्विजं मिथ्यादृशं भृशं । किमेतस्य महात्म्यं भो तीर्थस्यावगतं वद ॥ ५८० ॥ बभाण श्रावकं विप्राः पवित्रयति

यह देव पवित्र और शक्तिमान होगा तो मेरा विनाश करेगा और यदि यह कुछ न होगा तो कुछ नहीं कर सकता । श्रावककी यह बात सुन वह ब्राह्मण उत्तर तो न दे सका केवल यही उसने पूछा कि भाई ! तुम्हारा देव कौन है ? उत्तरमें श्रावकने कहा—मेरा देव आगे है । तुम मेरे देवको क्यों पूछते हो ? हंसकर ब्राह्मणने उत्तर दिया जिसप्रकार तुमने मेरे देवका तिरस्कार कर उसकी परीक्षा की है उसप्रकार मैं भी तुम्हारे देवका तिरस्कार कर उसकी परीक्षा करूंगा इसमें जरा भी संदेह मत समझो । कुछ दूर चलकर एक कपिकच्छ (खुजली करने वाले) वृक्षकी वेल देखी । उसे देख कर श्रावकने कहा प्रिय विप्र ! मेरा सबसे उत्कृष्ट देव यह है भक्तिपूर्वक सदा इसकी पूजा करनी चाहिये । सुनकर ब्राह्मणने हंसकर उसके पत्ते तोड़ लिये । उनसे अपना शरीर पोंछ डाला और जल्दी जल्दी आगे चल दिया बस आगे थोड़ी ही दूर पहुंचा था कि उसका सारा शरीर खुजलीसे व्याकुल हो गया एवं वह दुखित हो जमीनपर गिर गया तथा श्रावकसे कहने लगा भाई ! तुम्हारा देवता सच्चा है इस प्रकार प्रतिबोध देकर श्रावकने विप्रके अंदर जो देव मूढ़ताका भाव विद्यमान था वह दूर कर दिया और वे दोनों आगे चलने लगे ॥ ५७२—५७९ ॥ आगे चलकर गंगा नदीका तीर्थ पड़ा । भागीरथी हरि और विप्र, ऐसा उच्चारण कर वह ब्राह्मण गंगामें कूद पड़ा । मिथ्यात्वी ब्राह्मणकी यह चेष्टा देखकर श्रावकने पूछा—भाई ! इसतीर्थका

माहूशान् । पुनर्ददाति वैकुंठं पंचहत्याविनाशकं ॥५८१॥ श्रुत्वासौ श्रावको भोक्तुकामो हि तत्तटे स्थितः । भुक्त्वोच्छिष्टं जलैर्मिष्टं कृत्वा तस्मैसमर्पितं ॥५८२॥ तदाकेर्चाद्विजो हा हा भोजनं मे कदर्थितं । श्रावकः प्राह हे विप्र ! कथं नात्ति जवादिति ॥ ५८३ ॥ तदा भूदेवता र इह भोभुनज्मि कथं वद ? । त्वयोच्छिष्टं कदर्य च साक्षाच्छूद्रेण पापिना ॥५८४॥ अब्रवीद्ब्राह्मणं सोऽपि यत्पवित्रयितुं क्षमः । तज्जलैर्मिश्रितं धान्यं न भोक्तव्यं कथं त्वया ॥ ५८५ ॥ इत्यादिहेतुभिः कृत्वा प्रतिबोधं गतो द्विजः । तं गुरुं प्रतिपद्याशु जैनतत्वं पपाठ सः ॥ ५८६ ॥ गच्छंतौ हि ततो मार्गे भ्रांत्वा अप्टवयौ तदा । जातौ गतौ महाटव्यां संभृतायां कुजंतुभिः ॥ ५८७ ॥ तत्र सन्यस्य वणिजा सार्थं विप्रो मृतस्तदा । पूर्वस्वर्गे समुद्भूतः सुरासुरनिषेवितः ॥ ५८८ ॥ ततश्च्युत्वास्य राज्ञश्च पुत्रो जातोऽभयाख्यकः ।

तुमने क्या गहरा माहात्म्य समझ रक्खा है उत्तरमें ब्राह्मणने कहा— भाई श्रावक ! यह तीर्थ हम सरीखे मनुष्योंको तारक है फिर वैकुण्ठको देता है जहांपर कि गौ हत्या आदि पञ्च हत्याओंसे छूटना होता है । ब्राह्मणकी यह वात सुन भोजन करनेकी इच्छासे श्रावक उसके तटपर वैठ गया । जब खा चुका और जो जूठा वच रहा वह जलमें मिलाकर उसे समर्पण कर दिया अर्थात् गंगामें क्षेपण कर दिया । श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण कहने लगा—हा हा तूने मेरा भोजन अपवित्रकर दिया उत्तरमें श्रावकने कहा—भाई विप्र ! तुम जल्दी क्यों नहीं खा लेते ? ब्राह्मणने कहा-बता में खाऊं कैसे साक्षात् शूद्रस्वरूप पापी तूने सबका सब जूठा और अपवित्र कर दिया उत्तरमें श्रावकने कहा भाई ब्राह्मण जो जलसे मिश्रित धान्य तुम्हें पवित्र बना सकता है उसे तुम खाते क्यों नहीं हो । मेरे जूठे और अपवित्र करनेपर वह जूठा और अपवित्र नहीं माना जा सकता । इत्यादि बहुतसी युक्ति प्रयुक्तियोंसे श्रावकने ब्राह्मणका मिथ्यात्व भगा दिया । ब्राह्मणने भी उस श्रावकको अपना गुरु माना और उससे जैनधर्म पढ़ा । वहांसे आगे फिर भी वे दोनों चल दिये आगे जाकर वे रास्ता भूल गये और एक ऐसी महावनीमें जा निकले जो क्रूर जीवोंसे भरी हुई थी । दोनोंने वहांपर सन्यास मरण किया । विप्र मर कर पहिले स्वर्गमें अनेक सुर असुरोंसे सेवित देव हो गया

अस्मिन् भवे तपस्तप्त्वा यास्यसि परमं पदं ॥ ५८६ ॥ अथासौ श्रेणिको धीमान् वर्धमानं जिनं शिवं । नत्वावोचत्तदा नूनं कुड्मलीकृत्य हस्तयोः ॥ ५६० ॥ हे नाथ जगतां त्रातर्गुणाम्भोधे जगत्प्रभो ! । सुरासुरनराधीशसंस्तुतांघ्रे ! शिवप्रद ! ॥ ५६१ ॥ ज्ञानरूप ! तमोहारिन् मोहारे ! कामधक् ! जिन ! किंचित्पृच्छाम्यहं देव ! सादराद्भव्यवांछितं ॥ ५६२ ॥ श्रीमद्विमलनाथस्य पुराणं हृदयंगमं । श्रोतुमिच्छाम्यहं नाथ ! भव्यानां पंकनाशनं ॥ ५६३ ॥ तत्समये वलो जातो धर्माख्यो धर्मतत्परः । स्वयंभूश्चापि संजातः केशवोत्यंतविक्रमः ॥ ५६४ ॥ प्रतिचक्री महान् जज्ञे नाम्ना मधुरिति स्मृतः । एतेषां किं वलं शौर्यं कथयात्र कृपामय ॥ ५६५ ॥ संजयंततपोध्यानं विघ्नो ज्ञानस्य कारणं । तद्गणौ यामिनौ जातौ तेषां वृत्तं वद प्रभो ॥ ५६६॥ मुनीनां दानिनां नाथ ! ध्यानिनां च भवादृशां ।

प्रिय कुमार ! वहांसे चयकर तुम राजा श्रेणिकके अभयकुमार नामके पुत्र हुए हो और तुम इसी भवसे तप तपकर नियमसे परम पद मोक्ष प्राप्त करोगे ॥ ५८०—५६० ॥ जिससमय कुमार अभय के पूर्वभवोंका वर्णन समाप्त हो चुका उससमय राजा श्रेणिकने साक्षात् कल्याण स्वरूप भगवान वर्द्धमानको नमस्कार किया एवं दोनों हाथोंको जोड़कर इसप्रकार भक्तिपूर्वक कहने लगे :—

स्वामिन् ! आप तीनों जगतके रक्षण करता हो । गुणोंके समुद्र हो । तीनों जगतके स्वामी हो आपके चरण कमलोंकी बड़े २ सुर असुर और मनुष्योंके स्वामी स्तुति करते हैं। सेवकोंको मोक्ष प्रदान करने वाले हो । ज्ञानस्वरूप हो । अज्ञान अंधकारको नाश करनेवाले हो । मोहरूपी बैरीको हरानेवाले और कामदेवको भस्म करने वाले हो । भगवान् ! जिस बातके विनयपूर्वक जाननेकी भव्योंको इच्छा है मैं उसे ही पूछना चाहता हूं । प्रभो ! भगवान विमलनाथका पुराण अत्यंत मनोहर है और भव्यजीवोंके पापोंका नाश करनेवाला है इसलिये मैं उसे ही सुनना चाहता हूं। भगवान विमलनाथके समयमें धर्म नामका बलभद्र हुआ है। स्वयंभू नामका नारायण हुआ है और मधु नामका प्रतिनारायण हुआ है इनका कितना बल था कितनी शूरवीरता थी, हे कृपानाथ ! आप कृपाकर कहैं ॥ ५६१—५६६ ॥ मुनिराज संजयंतका तप ध्यान उनपर जो उपसर्ग पड़ा था वह

शूराणां शीलयुक्तानां चक्रिणां प्रतिचक्रिणां ॥ ५६७ ॥ चरमांग मनोजानां कथां कल्याणभाजनं । श्रोतुमिच्छंति ते भव्या रागद्वेष-पराङ्मुखाः ॥ ५६८ ॥ अतः पृच्छाम्यहं देव ! ज्ञानार्थं स्वस्य प्रेमतः । आसन्नभव्यजीवानां सुखार्थं सर्वविज्जिन ! ॥ ५६६ ॥ श्रेणिको याचयित्वेति तूष्णीत्वं स्थितवांस्तदा । सपुत्रश्चेलिनीयुक्तः क्षायिकोत्पन्नभावतः ॥ ६०० ॥

सुरनरपतिपूज्यं वर्धमानं जिनेशं सकलकलजनानां पापहंतारमेव ।
कनकनिषलकांतिं विष्टरे भासमानमिहरविवनितांतं श्रेणिकार्थ्यं नमामि ॥ ६०१ ॥

और उनके ज्ञानका कारण कहें तथा मुनिराज संजयंतके गणमें उन्हींके समान जो दो मुनिराज हुए हैं उनका भी वृत्तांत प्रतिपादन करें क्योंकि हे भगवान् ! जो महानुभाव मुनि हैं। दोनो हैं आपके समान ध्यानी हैं शीलवान शूरवीर हैं। चक्री (चक्रवर्ती और नारायण) प्रतिनारायण चरम शरीरी और कामदेव हैं उनकी कथा कल्याणोंकी करनेवाली है जो महानुभाव इनकी कथाको सुनना चाहते हैं वे भव्यजीव हैं और रागद्वेषसे विमुख हैं ॥ ५६७—५६६ ॥ इसलिये हे देव ! हे सर्वज्ञ जिनेंद्र ! मैंने अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिये और जितने भी आसन्न भव्यजीव हैं उन्हें आनंद उपजानेके लिये भगवान विमलनाथ आदिके चारित्र पूछनेकी इच्छा प्रगटकी है बस इसप्रकार अपनी जिज्ञासा प्रगट कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि महाराज श्रेणिक अपने पुत्र और महारानी चेलिनीके साथ शांत होकर अपने स्थानपर बैठ गये ॥ ६००—६०१ ॥

ग्रन्थकार अंतमंगलकी कामना करते हुए कहते हैं कि जो वर्द्धमान भगवान सुरेंद्र और नरेंद्रों से पूजित हैं। कर्मोंके जीतनेवाले महानुभावोंमें मुख्य हैं। समस्त प्राणियोंके पापोंको नष्ट करने वाले हैं सुवर्णके समान मनोहर प्रभाके धारक है। सिंहासनपर देदीप्यमान है। अपनी उत्कट प्रभासे रविविनेता—सूर्यकी प्रभाको भी फीकी करनेवाले हैं और राजा श्रेणिककी प्रार्थनाको पूरी करने वाले हैं उन श्रीवर्द्धमान स्वामीको मैं नमस्कार करता हूं।

इति श्रीविमलनाथपुराणे ब्रह्मकृष्णदासविरचितेऽनुजब्र० श्रीमंगलदास सापेक्षे साहाय्य महाराजश्रीश्रेणिककृत प्रश्नो नाम प्रथमः सर्गः॥१॥

इसप्रकार अपने छोटे भाई ब्रह्म श्रीमंगलदासकी सहायतासे कृष्णदास द्वारा विरचित श्रीविमलनाथ पुराणमें महाराज श्रेणिक द्वारा किये गये प्रश्नका वर्णन करनेवाला पहिला सर्ग समाप्त हुआ।

दूसरा सर्ग।

पुराण पुरुषो जीयाज्जगच्छास्ता शिवप्रदः। मोहांधकार मार्तंडः कोटिसूर्याधिकः प्रभः॥१॥ अथैवं भगवान् दिव्यध्वनिक्षीरार्णवस्तदा। जगर्ज भगवद्वक्त्रपूर्णरात्रीशसंहितः॥२॥ सुख्यनसतरंगात्मा दर्शनज्ञानसेतुवान्। चारित्रांभो भवध्वंसी महाघन इवापरः॥३॥

तीनों लोकके शासन करने वाले. जीवोंको कल्याणके कर्ता मोहरूपी अन्धकारके लिये सूर्य स्वरूप एवं करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे भी अधिक प्रभा धारण करनेवाले पुराण पुरुष भगवान तीर्थंकर सदा जयवंते रहें॥१॥ जिसप्रकार चंद्रमाके संवंधसे समुद्र उछलता और गर्जता है उस प्रकार भगवानके मुखरूपी पूर्ण चंद्रमाके संवंधसे उनका दिव्य ध्वनिरूपी क्षीर समुद्र गर्जने लगा ॥२॥ वह दिव्य ध्वनि साक्षात् महामेघ सरीखी जान पड़ती थी क्योंकि जिसप्रकार मेघ जलों की नाना प्रकारकी तरंग स्वरूप होता है उसीप्रकार वह दिव्य ध्वनि भी स्याद्स्ति स्यान्नास्ति आदि सप्त भंग स्वरूप थी अर्थात् दिव्य ध्वनिसे जो भी उपदेश होता था वह सप्तभंगी वाणीके अनुसार ही होता था। महामेघ जिसप्रकार सेतु (पुल) विशिष्ट होता है अर्थात् नदी आदि स्थानों को पार करनेके लिये महामेघके समय खास कर पुलोंका उपयोग किया जाता है उसीप्रकार भगवान महावीरकी दिव्य ध्वनि भी दर्शन ज्ञानरूपी सेतुसे युक्त थी अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्य-

साधु पृष्टं त्वया भूप ! सज्जनानां सुखं प्रदं । यस्य श्रवणतो भव्या सद्व्रता यांति मोक्षतां ॥ ४ ॥ चेच्छ्रीविमलनाथस्य पुराण श्रवणोत्सुकः । तर्हि चंद्रे चकोरो वा भूत्वा त्वं सादरं शृणु ॥ ५ ॥ अथैव धातकीखंडो वर्ततेऽनेकवस्तुभृत् । पद्मवैडूर्यनीलाभरत्न स्वर्णादि खानिकः ॥ ६ ॥ चतुर्लक्षप्रमैर्योजनकैर्विस्तारतां गतः । कुण्डलाकृति कालाब्धि वेष्टितोऽनेकचित्रभृत् ॥ ७ ॥ तस्य पश्चिमका

ज्ञानके स्वरूपके वर्णनका उसमें विशेष संबंध था। महामेघमें जिसप्रकार जल रहता है भगवानकी दिव्यध्वनि भी चारित्ररूपी जलसे परिपूर्ण थी अर्थात् दिव्यध्वनि द्वारा वर्णन करनेका खास लक्ष्य सम्यक्चारित्र था। एवं महामेघके समय जिसप्रकार संसार उलट पुलट हो जाता है उस प्रकार वह दिव्य.ध्वनि भी संसारको उलट पुलट—विच्छेद करानेवाली थी उसके संबंधसे लोग संसार के नाश करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं ॥ ३ ॥ महाराज श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें भगवान महावीरने अपनी दिव्य ध्वनिसे कहा—

हे राजन् ! तुम सज्जन पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले हो इसलिये तुमने जो प्रश्न किया है वह बहुत ही उत्तम किया है क्यों कि तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें जो भी कहा जायगा उसके सुननेसे भव्य जीव समीचीन व्रतोंसे भूषित होंगे और उन व्रतोंके संबंधसे मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥४॥ नरपाल ! यदि तुम्हें भगवान विमलनाथके चारित्र सुननेकी विशेष उत्कंठा है तो चकोर पक्षी जिस प्रकार चंद्रमाकी ओर इकटक दृष्टि लगाता है उसी प्रकार तुम भी विमलनाथके चरित्रकी ओर दृष्टि लगाकर उसे ध्यानपूर्वक सुनो मैं उसका वर्णन स्पष्टरूपसे करता हूं:—

इस पृथ्वीपर एक धातुकी खंड नामका द्वीप है जो कि अनेक मनोज्ञ वस्तुओंका भंडार है। नीलकमल और वैडूर्य मणियोंकी प्रभाका धारक है। रत्न और सुवर्णकी अनेक खानियोंसे शोभायमान है। चार लाख योजन प्रमाण चौड़ा है। कुण्डलके समान गोलाकार है। कालोदधि समुद्र चारों ओरसे उसे घेरे हैं एवं वह अनेक क्षेत्रोंका धारण करने वाला है

च्छायां मेरुर्जंबूनदप्रभः । चतुरशीतिसहस्रैश्च योजनैरुन्नतः स्फुटं ॥ ८ ॥ गगनं जिगमिषुः स्वर्गं नु धरित्री स्तनोऽथवा । शातकुम्भमयस्तंभो गगनोद्धार हेतुनः ॥९॥ चतुर्वनात्मको लेख कदंबकनिषेवितः । सुरस्त्रीणां कुचाघात कठिनीकृतसत्तटः ॥ १० ॥ अमरो रतिसौगंध्युद्गारसंलीनषट्पदः । सुरजातैर्जिनेंद्राणां नानर्द्धचैत्य मण्डितः ॥११॥ चतुर्भिःकलापकं तस्य पश्चिमदिग्भागे नद्याः सुदक्षिणे तटे । महापद्माख्यदेशस्य मध्ये तृतीय खंडकः ॥१२॥ तन्मध्ये वर्तते रम्यो विषयो रम्यकावती । नानाशोभाकरःपुंसां दृष्टव्यो मरुतामपि ॥ १३ ॥ गोपुरोद्भासिशालानि यत्र भांति पुराणिच स्वर्णहर्म्याणि प्रौढ़ानि विद्वज्जन कुलानि च ॥ १४ ॥ यत्र खेटा विराजंते सरित्पर्वत...

इसी धातुकी खंडकी पश्चिम दिशामें मेरु पर्वत है जो कि सुवर्णके समान प्रभाका धारक और चौरासी हजार योजन ऊंचा उठा हुआ है सो ऐसा जान पड़ता है मानो यह स्वर्ग जानेका इच्छुक है अथवा पृथिवीरूपी स्त्रीका उन्नत कुच है वा निराधार आकाश नीचे गिर न पड़े इसलिये उसे रोक कर रखनेवाला सुवर्णमयी स्तंभ है। यह मेरु पर्वत नंदन वन आदि चारों वनस्वरूप है। देवों के समूहके समूह यहांपर विहार करते हैं। इसके तटभाग देवांगनाओंके धक्कोंसे अत्यंत कठिन है। देवांगनाओंकी रतिसमयकी सुगंधिमें मत्त होकर सदा भौरें उसपर भुन भुनाट करते रहते है, अनेक देवोंसे नाना प्रकार पूजनीक है और भगवान जिनेंद्रोंकी प्रतिमाओंसे मंडित है ॥ ५-११ ॥ उसी मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें नदीके दक्षिण तटपर महापद्म देशके ठीक मध्यभागमें तीसरा खंड है उस तीसरे खंडके मध्यभागमें एक रम्यावती देश है जो कि महामनोहर है। अनेक प्रकार की शोभाओंका स्थान है एवं मनुष्य और देव सबोंके लिये एक दर्शनीय पदार्थ है ॥ १२—१३॥ इस रम्यकावती देशके गोपुर—सदर दरवाजोंसे चम चमाते हुए प्राकार और पुर अत्यंत शोभायमान जान पड़ते हैं। धनिकोंके घर सुवर्णमयी बने हुए हैं और वहांके विद्वान लोग अनेक प्रकारको विद्या और कलाओंमें प्रौढ़ हैं ॥ १४ ॥ इस रम्यकावती देशके खेट चारों ओरसे नदी और पर्वतोंसे वेष्टित महामनोहर जान पड़ते हैं और कर्वट चारों ओरसे पर्वतोंसे अत्यंत रमणीक दीख

र्वतवेष्टिताः । कर्वटानि विभांत्येव परितः पर्वतैरपि ॥ १५ ॥ वृत्येव वेष्टिता यत्र ग्रामा भांति पदे पदे । पर्वतोपरि संस्थानि वाहनानि विभांति च ॥ १६ ॥ यत्र राजंतके द्रोणा धनद्रोणा इवापरे । पयोराशिश्रिता वाढं विद्रुमावलिरंजिता ॥ १७ ॥ शुकचंचुहरित्यंगशीर्षैः कर्बुरितानि च । शालिवप्राणि राजंते कामस्य सद्गृहा इव ॥ १८ ॥ इक्षुशोभा हि यत्रैव लोचनोद्भासिनी परा । पदे पदे लसत्येव स्वर्गिणामपि दुर्लभाः ॥ १९ ॥ हंससारचकोराणि पक्षितानि सरांसि च । स्वच्छतोयानि राजंते नानावृक्षतटानि वै ॥ २० ॥

पड़ते हैं ॥ १५ ॥ जिनके चारों ओर बाड़—परकोट खिचे हुए हैं ऐसे गांव जगह जगह वहांपर सुंदरतासे बसे हुए हैं जो कि नेत्रोंको अत्यंत प्यारे जान पड़ते हैं तथा पर्वतोंसे भी ऊंचे रथ आदि वाहन उस देशकी अत्यंत शोभा बढ़ाते हैं ॥ १६ ॥ उस देशके द्रोण--जलके भरे तालाव धनके खजाने सरीखे जान पड़ते थे क्योंकि जिसप्रकार तालाव "पयोराशिश्रिताः" पय--जलकी राशिसे शोभायमान थे उसीप्रकार धनके खजाने भी पय -रत्न आदिकी राशिसे शोभायमान थे । जिस प्रकार तालाव 'विद्रुमाबलिरंजिताः' विद्रुम--वृक्षोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान थे उसीप्रकार धनके खजाने भी विद्रुम--मूगोंके समूहसे शोभायमान थे ॥ १७ ॥ उस देशके पके हुए धान्योंके खेतोंमें शुक-तोते पड़ते थे इसलिये शुकोंके लालवर्ण और अपने हरे वर्णसे रंग विरंगे वे अत्यंत शोभायमान जान पड़ते थे अतएव लोग उन धान्योंके खेतोंको कामदेवके साक्षात् उत्तम घर समझते थे ॥ १८ ॥ वहांपर जगह २ नेत्रोंको प्रफुल्लित करनेवाली ईखके वृक्षोंकी शोभा अत्यंत शोभायमान जान पड़ती थी जिस शोभाका निरखना देवोंको भी अत्यंत दुर्लभ था ॥१९॥ वहांके तालावों पर हंस सारस और चकोर पक्षी विचरते फिरते थे निर्मल जलसे वे परिपूर्ण थे और उनके तट भागोंकी भांति भांतिके वृक्ष विचित्र शोभा बढ़ा रहे थे इसलिये वे तालाव नेत्रोंको परमानंद प्रदान करते थे ॥ २० ॥ वहांके आम्र वृक्षोंके बनोंमें जगह जगह भ्रमण करते हुए भौंरोंके भुनभुनाट शब्द सुन पड़ते थे । कोकिल हंस और भोंरोंके महा मनोहर शब्द होते थे इसलिये वहांकी

भ्रमद्भ्रमरझंकाराः पिकहंसशिखंडिनां । आरावाश्च तवृक्षेषु विराजंते पदे पदे ॥ २१ ॥ गोपभामा विलोक्याशु पीनवक्षोजमंडिताः । स्वभामाः कोपयंत्येव स्थूलवक्षोत्रवल्लभाः ॥ २२ ॥ मकरंदभरेणैव लसत्यंगकपोलकाः । अमराः सस्मिता यत्र चुंबनाश्लेषरागिणः ॥२३॥ यत्र नद्यो विराजन्ते कुटिला विभ्रमान्विताः । हृदयास्याः सपद्माश्च सर्वसेव्यपयोधराः ॥ २४ ॥ तटोन्नितंबधारिण्यः पक्षिशब्द-

शोभा बड़ी ही मनको हरण करने वाली थी ॥ २१ ॥ वहांके ग्वालोंकी स्त्रियोंके स्तन स्वभावसे ही स्थूल थे इसलिये स्थूल स्तनोंकी अभिलाषा रखने वाली अन्य स्त्रियां रात दिन इस बातका डाह कर कि हमारे ऐसे स्थूल स्तन क्यों नहीं ? क्रोधमें भभलतीं रहतीं थीं । वह देश सुगंधित पदार्थों की सुगंधिसे सदा महकता रहता था अतएव वहांपर भ्रमण करनेवाले देवोंकी देवांगनाओंके शरीर और कपोल भी उत्कट सुगंधिसे सदा महकते रहते थे इसलिये देव गण वहांपर देवांगनाओं के कपोलोंके चुम्बन करनेमें और शरीरोंसे आलिंगन करनेमें ही सदा उत्सुक बने रहते थे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ वहांकी नदियां संभोगकालमें रसास्वादन करने वाली वेश्या सरीखी जान पड़तीं थीं क्योंकि जिसप्रकार वेश्या कुटिल होती हैं उनका चित्त कभी भी सीधा साधा सरल नहीं दीख पड़ता उसी प्रकार वहांकी नदियां भी कुटिल थीं उनका बहाव सीधा न होकर सदा चक्करदार होता था । जिस प्रकार वेश्या "विभ्रमान्विताः" विलासप्रिय होती हैं नदियां भी जलके भ्रमरोंसे व्याप्त थीं । वेश्या जिसप्रकार हृदयकी गूढ़ होतीं हैं—कोई भी उनके मनका भाव नहीं पहिचान सकता उसप्रकार वे नदियां भी अपने हृदयभागमें अत्यंत गहरीं थीं । वेश्या जिसप्रकार शरीरपर कमल धारण किये रहतीं हैं उसप्रकार वे नदियां भी कमलोंसे अत्यंत शोभायमान थीं । जिसप्रकार वेश्याओंके पयो-धर स्तनोंका हर एक उपभोग कर सकता है उसीप्रकार उन नदियोंके जलका भी हर एक उपयोग करता था । जिसप्रकार वेश्यायें उन्नत नितंबोंको धारण करने वालीं होती हैं उसीप्रकार वे नदियां उन्नत तटरूपी नितंबोंको धारण करनेवालीं थीं । वेश्या जिसप्रकार बोल चालमें बड़ी चतुर रहतीं

विचक्षणाः। निर्गमद्वाभगा रस्या वेश्या वा रसरा जिताः ॥ २५ ॥ मुमुक्षवो विराजंते ध्यानस्था यत्र सत्पथाः। शैलारण्यसरित्सानुनिवासाः साम्यधारिणः ॥ २६ ॥ यत्र सिद्धान्तवाणीभिः पंडितं शक्रःसमं। महापुराभिधं सर्वेशोभाभारभृतं भृशं ॥ २७ ॥ सप्तैकविंशतिभूका रत्नसंरब्ध सत्पथाः। हेमस्तंभा विराजंते गृहा यत्रैव चित्रिताः ॥ २८ ॥ उत्तुंगतोरणोपेता.स्वर्ण सोपानसत्विषः। रत्नचैत्याश्च यत्रैव प्रसादाः संति भूदिशः ॥२९॥ वृत्तलं यत्र भातीव शिखरं रत्नगर्भितं। नु भानुश्चन्द्रमा किंतु कामाब्ज शेषसन्मणिः

ह उसीप्रकार नदियां भी पक्षियोंके महामनोहर शब्दोंसे व्याप्त थीं। वेश्यायें जिसप्रकार आर्द्र मूत्र मार्गकी धारक होतीं हैं उसप्रकार उन नदियोंमें भी जल निकलनेके अनेक स्थान विद्यमान थे एवं वेश्या जिसप्रकार अत्यंत मनोहर जान पड़तीं हैं उसीप्रकार वे नदियां भी अत्यंत मनोहर जान पड़तीं थीं ॥ २४—२५ ॥ जहांपर मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मुनिगण सदा ध्यानमें लीन रहते थे। उत्तम मार्ग जैनमार्गके अनुगामी थे। पर्वत वन नदी और पहाड़ोंकी चोटियोंपर निवास करनेवाले थे और परम समरसी भावके धारक थे इसलिये वे उस देशकी अनुपम शोभा स्वरूप थे ॥ २६ ॥

उस रम्यकावती देशके अंदर एक महापुर नामका नगर है जिसमें कि विद्वान् लोग सदा जैन सिद्धांतका प्रचार करते रहते हैं इसलिये वह साक्षात् पंडित स्वरूप है। शोभामें इन्द्रपुरीकी तुलना करता है एवं सदा अनेक प्रकारकी शोभाओंसे हरा भरा रहता है ॥ २७ ॥ महापुर नगरके घर सात खने वा इकवीस खने तकके बने हुए हैं। लोगोंके प्रवेश करनेके मार्ग—रत्नमयी हैं। सुवर्णमयी स्तंभोंके धारक हैं एवं जगह जगह अनेक प्रकारके चित्रोंसे शोभायमान हैं ॥२८॥ महापुरके निवासी धनियोंके घर ऊंचे ऊंचे तोरणोंसे व्याप्त थे। सुवर्णमयी सोपान—झीनोंसे देदीप्यमान थे और रत्नमयी स्तंभोंसे चम चमाने वाले थे ॥ २९ ॥ इन प्रासादोंकी गोलाकार और और रत्नोंकी बनीं शिखरें अत्यंत शोभायमान थीं सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो ये साक्षात् सूर्य हैं वा चंद्रमा है अथवा कामदेवके कमल हैं वा शेष नागके मस्तककी उत्तम मणि हैं ॥ ३० ॥ उन प्रासादोंके ऊपर

॥ ३० ॥ लसंति वायुना यत्र पताका हृदयंगमाः । आह्वयंतीव भव्यानां सुराणां धर्महेतवे ॥ ३१ ॥ यत्राभिषेकमहीभिः पटहैर्दुंदुभिः स्वनैः । गाननृत्यैः सुबालायैर्यो पितामुत्सवो महान् ॥ ३२ ॥ ललिता भांति यत्रैव कामलोलाः कजदृशः । कठिनोन्नत-नितंबाश्च पीनस्थूल पयोधराः ॥ ३३ ॥ गतागतस्तनोत्पीत्तु त्यत्कंचु कवंधनाः । हावभावविलासैश्च रंजयंति सुरानपि ॥ ३४ ॥ यत्रैव दानिनो लोका वर्तंते धनशालिनः । तपस्यंति नराः केचिद्धर्मार्थं शीलसंयुताः ॥ ३५ ॥ तत्रैव निर्धना मूढा निर्विवेका गत-

पवनसे फर फरातीं हुईं महामनोहर पताकाएं अत्यंत शोभा धारण करतीं हैं मानों भव्य देवोंको वे यह कह कर बुलातीं हैं कि आओ भाई देवो ! यहां आकर धर्म सेवन करो ॥ ३१ ॥ इस महापुर नगरमें सदा भगवान जिनेंद्रका अभिषेक हुआ करता है सदा पूजा हुआ करती है । पटह जाति के बाजे और नगाड़े वजते रहते हैं । रमणियोंके गान नृत्य और प्रेमपूर्वक संभाषण होते रहते हैं इसलिये सदा अनेक प्रकारके उत्सवोंसे वह नगर जगमगाता बना रहता है ॥ ३२ ॥ महापुर की स्त्रियां उसकी विचित्र ही शोभा बढ़ातीं हैं क्योंकि वे महा सुन्दरी होतीं हैं । अत्यंत कामिनी होतीं हैं । कमलके समान नेत्रवालीं कठिन और उन्नत नितंबोंकी धारक एवं पीन और स्थूल स्तनोंसे शोभायमान रहतीं हैं । जिससमय वे आती जाती हैं उससमय आपसमें एक दूसरोंके स्तनोंके भिड़ावसे उनके चोलियोंके बंधन टूट जाते हैं एवं अपने हाव भाव और विलासोंसे देवोंके भी चित्तोंको हरण करतीं हैं ॥ ३३—३४ ॥ महापुर नगरके लोग धन पाकर उसे भोग विलासोंमें ही व्यय करने वाले नहीं हैं किंतु उत्तम आदि पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देनेवाले हैं इसलिये वहांके धनी परम दानी हैं तथा वहांके शीलवान भव्यजीव धर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे सदा मुनिलिंग धारण कर उत्तम तप तपने वाले हैं ॥ ३५ ॥ उस नगरमें सब लोग धनी ही दीख पड़ते हैं कोई भी निर्धन नहीं दीख पड़ता । सब चतुर ही हैं मूढ नहीं । सब विवेकी ही हैं विवेक रहित नहीं । सब उद्योगी सज्जन और प्रशंसा करने वाले ही हैं आलसी दुष्ट और निंदा करनेवाले नहीं तथा सब

क्रियाः। खला निंदाकृतो रूपा विद्यन्ते नैव हस्वकाः ॥ ३६ ॥ तत्रैवास्ति महीपालो हेलानिर्जितशात्रवः। पद्मसेनाभिधो धीमान् प्रतापाक्रान्तभूतलः ॥ ३७ ॥ धीक्षो गंभीर सत्वसन् नागदो सिंहविक्रमी। कमलापीनसत्स्कन्धः शास्त्रवान् धर्मवत्सलः ॥ ३८ ॥ रणोत्साही भियस्त्राता सौम्यः क्रूरो यथायर्थं। दाता प्रियंवदःकामक्रीड़ाज्ञः कमलेक्षणः ॥ ३६ ॥ पाति तत्परमानन्दी षड्वर्गी चन्द्रसद्यशाः। इन्द्रो वा नागदेवश्च स्वर्गलोकरसातलं ॥ ४० ॥ वृषस्कन्धो रणोत्साहो गूढसत्वं महोद्यमः। क्रूर- सौम्ये च दातृत्वं महाराजस्य लक्षणं ॥ ४१ ॥ राज्यं पालयति यस्मिन् भयं नो विद्यते क्वचित्। दंडनं कुप्रवादश्च दुःखं नैव परा-

ही अमीर हैं कोई छोटा नहीं ॥ ३६ ॥ उस महापुर नगरका स्वामी राजा पद्मसेन था जिसके लिये बलवान भी शत्रुओंका जीतना खेल सरीखा था। जो अत्यंत बुद्धिमान था। अपने प्रचंड पराक्रमसे समस्त पृथ्वीतलको बश करने वाला था। धीर गंभीर बलवान और सज्जन था। नागके समान उसकी दोनों भुजायें थीं। सिंहके समान जो पराक्रमी था। लक्ष्मीके समान स्थूल स्कंधों का धारक था। शास्त्रोंका ज्ञाता, युद्ध करनेके लिये सदा उत्साही भयसे रक्षा करने वाला सौम्य समयानुसार क्रूर दाता प्रियवादी काम क्रीड़ाका जानकार कमलके समान प्रफुल्लित नेत्रोंका धारण करनेवाला षड्वर्गी अर्थात् समयानुसार काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्यरूप छह वर्गोंका धारण करने वाला और चंद्रमाके समान निर्मल यशका धारण करनेवाला था। तथा जिसप्रकार इन्द्र स्वर्गलोकको रक्षा करता है और नागदेव अधोलोकका पालन करने वाला है उसीप्रकार वह राजा पद्मसेन महापुरकी रक्षाका करनेवाला था। ॥ ३७—४० ॥ बैलके समान उन्नत स्कंधोंका होना रणमें उत्साह रखना गुप्तरूपसे बलका धारण करना महान उद्योगी रहना क्रूर और सौम्यपना एवं दातापना ये महाराजके लक्षण हैं राजा पद्मसेन इन समस्त लक्षणोंका धारक था ॥ ४१ ॥ राजा पद्मसेनके राज्य पालन करते समय न तो कहीं भी किसी प्रकारका प्रजाको भय था। न दंडकी शंका थी। न किसीकी निंदा सुन पड़ती थी। न किसी प्रकारका दुःख था और न कहीं किसीका

भवः ॥४२॥ आक्रमंति हि नोन्यायं लोका धर्मपरायणाः । नाकामति च तान् भूपो नीतिशास्त्रार्थ दक्षिणः ॥ ४३ ॥ धर्मार्थकामशास्त्राणां वेत्तासौ काश्यपीपतिः । सर्वसामंतसंसेव्यपादसत्कमलः कलः ॥ ४४ ॥ तस्य राज्ञी महास्नेहा पद्मा पद्मविलोचना । पद्ममृदुकरा पद्मवक्षोजा पद्मिनीव नु ॥ ४५ ॥ ललंती लीलया लोल लसनालालिता तनुः । इवोदपतिमो ज्योत्स्ना भोगांबोधिप्रवर्द्धिनी ॥ ४६ ॥ अनया रमते राजा नानाकामकुतूहलैः । आश्लेषै श्चुंबनैर्लैरासनैरौपरीपकैः ॥ ४७ ॥ कामाकुला महादेवी सेवते तं निरं-

तिरस्कार ही सुन पड़ता था। यह नियम है कि जोलोग धर्मात्मा होते हैं वे न्याय मार्गका उल्लंघन नहीं करते एवं जो मनुष्य नीति और शास्त्रमें कुशल होता है—धर्मात्मा होता है वह भी धर्मात्माओंको कभी पीड़ा नहीं देता। महापुर नगरमें राजा प्रजा दोनों धर्मात्मा थे इसलिये वहां कोई उपद्रव न था ॥ ४२—४३ ॥ वह राजा पद्मसेन धर्म अर्थ और काम शास्त्रोंका परिपूर्ण जानकार था। समस्त सामंत गण उसके चरण कमलोंकी बड़े प्रेमसे सेवा करते थे और वह महा मनोज्ञ था ॥ ४४ ॥ राजा पद्मसेनकी रानीका नाम पद्मा था। रानी पद्मा अत्यंत स्नेह करने वाली थी कमलके समान नेत्रोंवाली थी। उसके दोनों हाथ कमलके समान कोमल थे। स्तनोंका खिलाव भी कमल सरीखा था इसलिये वह साक्षात् पद्मिनी सरीखी थी ॥४५॥ वह रानी लीलापूर्वक चलने वाली थी। चंचल नेत्रोंकी धारक थी। सारा शरीर उसका अच्छी तरह लालित था। दुःखरूपी अंधकारको नाश करने वाली ज्योत्स्ना—चांदनी थी अतएव भोगरूपी समुद्रको बढ़ानेवाली थी ॥ ४५—४६ ॥ इस रानी पद्माके साथ वह राजा पद्मसेन मनमानी रतिक्रीड़ा करता था कभी वह उस रानीके साथ अनेक प्रकारके काम जनित कौतूहलोंको करता था कभी आलिंगन करता था कभी चुंबन करता तो कभी हास्यमिश्रित वचनोंका उपभोग करता था तथा भोग विलास करते समय कभी कभी अनेक आसनोंको काममें लाता था ॥४७॥ वह रानी पद्मा भी अत्यंत कामिनी थ इसलिये वह भी बेधड़क हो सदा राजाके साथ विषयभोग भोगती थी। राजा पद्मसेन भी इतना

तरं । ज्ञातस्वादोऽपि राजा तां सेवते मोहतो ध्रुवं ॥ ४८ ॥ पूरमल्लेव श्रीकृष्ण कत्रीशमंगलाग्रजं । श्रीकृष्णोपी दुवक्त्रां तामिव
कृष्णश्च राधिकां ॥ ४६ ॥ (युग्म) सा रामा हावभावैश्च प्रोल्लासैभोगकंपनैः । मणितैः स्खलितैर्हास्यैश्चपने रंजयेद्दृत्रं ॥ ५० ॥ स
कामी भगलस्पर्शीमर्दनैश्चुम्बनैर्दृढं । स्तंभनैर्दन्तघातैस्तां लिंगास्यादैस्त्वतोपयत् ॥ ५१ ॥ एवं विषयसंयोगे तयोरासीत्सुतं परः ।
पद्मनाभाह्वयः सर्वलक्षणांकितविग्रहः ॥ ५२ ॥ भुंजानो विविधान् भोगान् निमग्नः सुखसागरे । गतं कालं न जानाति स्त्रीश्चादी

अधिक रानी पद्मापर स्नेह रखता था कि सदा उसके साथ वह विषय भोगोंमें मग्न बना रहता था एक क्षणके लिये भी उससे विमुख नहीं होना चाहता था । ग्रन्थकार श्रीब्रह्मकृष्णदास भी अपने नामकी छाप लगाते हुए कहते हैं कि जिसप्रकार पूरमल्ला मंगलदासके बड़े भाई श्रीकृष्णदासके साथ सदा विषय भोगती थी एवं चंद्र वदनी उस पूरमल्लाको कृष्णदास भी एक क्षणकेलिये भी नहीं छोड़ना चाहते थे तथा जिसप्रकार नवमे नारायण कृष्णकी स्त्री राधिका सदा कृष्णके साथ विषय भोगती थीं एवं कृष्ण भी क्षणभरके लिये भी उससे विमुख नहीं होना चाहते थे उसीप्रकार राजा पद्मसेन और रानी पद्माकी दशा थी दोनोंमें अधिक प्रेम होनेसे एक दूसरेको छोड़ना नहीं चाहता था ॥ ४८—४६ ॥ वह रानी पद्मा हाव भाव चित्तके उल्लास भोग समयमें कंपना भूषणोंके शब्द अर्ध स्खलित वचन हास्य और शरीरकी कांतिसे सदा राजा पद्मसेनको प्रसन्न रखती तथा कामाकुल वह राजा भी मर्दन, चुम्बन, आलिंगन और दंतच्छेदन आदि रतिकालीन क्रियाओंसे सदा उस रानीको संतुष्ट रखता था । इसप्रकार मनमानी भोगक्रीड़ा करते करते उन दोनों दंपती के पद्मनाभ नामका पुत्र हुआ जो कि समस्त राज लक्षणोंसे युक्त शरीरका धारक था ॥ ५०-५२ ॥ वह राजा इच्छानुसार विषय भोगोंको भोगता भोगता सदा सुख सागरमें मग्न रहता था । समय कहां चला जा रहा है इस बातका उसे पता तक नहीं लगता था । ठीक ही है जो लोग स्त्रियोंका रस चख चुके हैं उनसे वह स्वाद जल्दी नहीं छूटता ॥ ५३ ॥

दुस्त्यजो नृणां ॥ ५३ ॥ प्रीतिंकरमहारण्ये समायातोऽथ केवली । सर्वगुप्ताभिधः सर्वजंतुरक्षा तत्परः ॥ ५४ ॥ तत्प्रभावा न्महा-वृक्षाः कुसुमाढ्याः फलान्विताः । पिकषट्चरणारावै रेजुरुत्क्षीणछायकाः ॥ ५५ ॥ तदा मालाकरो दृष्ट्वा छायां वृक्षसमुद्भवां । व्यतीतर्कन्निजे चित्ते किं स्वप्नः शंबरीनु वा ॥ ५६ ॥ त्रिचतुरेषु यदा पश्यन् पदेषु गतवांस्तदा । पर्यंकासनमारूढं ध्याना स्तिमिता लोचनं ॥ ५७ ॥ निश्चलं वृषभं देवं ध्यायंतं करुणानिधिं । सौम्यं च मृग व्याघ्रादिसेव्यमानं शशिप्रभं ॥ ५८ ॥ अद्राक्षीत्तेजसां पुंजं मिहिरं वा तपोनिधिं । क्षीरार्णवे सुखासीनं हंसं चंद्रसमं तु वा ॥ ५९ ॥ (त्रिभिर्विशेषकं) हर्षकंचुकितांगा सन्जगाम नृपसन्निधौ ।

महापुर नगरके समीपमें एक प्रीतिंकर नामका महा वन था । एक दिन सर्वगुप्त नामके केवली जोकिसमस्त जीवोंकी रक्षा करनेमें सदा तत्पर रहते थे आकर उसमें विराज गये। भगवान केवलीके प्रभावसे प्रीतिंकर वनके समस्त वृक्ष फूल और फलोंसे लदबदा गये। कोकिला अपनी मधुर ध्वनि अलापने लगीं और भौंरे भुनभुनाट शब्द करने लगे इस लिये समस्त वन उस समय अत्यंत सोभायमान दीख पड़ने लगा ॥ ५४।५५ ॥ बनकी इस प्रकार वृक्षोंसे जायमान विचित्र शोभा देखकर उस बनका रक्षक माली चकित रह गया और उसके मनमें यह विचार उठने लगा कि क्या यह स्वप्न है अथवा देव कृत माया जाल है ? तीन चार पैड़ आगे बढ़कर जब उसने देखा तो केवली भगवान सर्वगुप्त उसे दीख पड़े वे भगवान पर्यंकास (पलौती) से विराजमान थे। ध्यान करनेके कारण उनके नेत्र इकटक निश्चल थे। निश्चल रूपसे भगवन ऋषभदेवका वे ध्यान कर रहे थे। दयाके सागर थे। सौम्यमूर्तिके धारक थे। क्रूर भी मृग व्याघ्र आदि उनकी सेवा करते थे। चंद्रमाके समान उज्ज्वल प्रभाके धारक थे। कांतिके पुंजस्वरूप थे । जाज्वल्यमान सूर्यके समान थे। तपके खजाने थे। एवं क्षीरोदधि समुद्रमें सुखसे बैठनेवाला जिसप्रकार हंस और चन्द्रमा दीख पड़ता है उसके समान विराजमान थे ॥ ५६--५९ ॥ भगवान केवलीको देख कर वनपालका शरीर आनंदसे पुलकित हो गया वह शीघ्र ही राजा पद्मसेनके पास गया एवं छहों ऋतुओंके पुष्प और फल भेंटकर इसप्रकार निवेदन करने लगाः—

मुक्त्वा पुष्पफलव्रातं पुरस्तादब्रवीदिति ॥ ६० ॥ प्रभो ! प्रीतिंकरेऽरण्ये सर्वगुप्ताख्यकेवली। समस्ति: प्रभो: पुण्यादेवेन्द्रार्चितपत्कज: ॥ ६१ ॥ पद्मसेनो नराधीश: श्रुत्वा सामंतसंयुत:। चचाल वंदितुं भक्त्या मुनिं राज्ञीसुतान्वित: ॥ ६२ ॥ अर्हच्चरणयोर्येऽत्र चारण रुचिचंचुरा:। लयीभावं समेत्यांशु कुर्वंति साधुवंदनां ॥ ६३ ॥ गत्वा नत्वा प्रपूज्याशु स्वष्टद्रव्यैर्मनोरमै:। गद्यपद्यै: सुखं स्तुत्वा निविष्ट: कलभासने ॥ ६४ ॥ मुनिर्मत्वा नराधीशं भव्यं तं मृदुचेतसं। शचीकथत्परं धर्मं तत्वगर्भं कृपामयं ॥ ६५ ॥ राजन् भ्रमत्ययं जीव: संसारे दु:खसंकटे। अनादिनिधन:केन कृतो नास्ते चिदात्मक: ॥ ६६ ॥ नरत्वं दुर्लभं लोके तत्रापि सत्कुलंपुन:।

स्वामिन! आपके पुण्यके उदयसे प्रीतिंकर वनमें सर्वगुप्त नामके केवली जिनके कि चरण कमलों को बड़े बड़े इन्द्र आकर पूजते हैं, आकर विराजे हैं। वनपालकी यह आनंद प्रदान करने वाली बात सुन कर राजा पद्मसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और भक्तिपूर्वक मुनिराजकी वंदनाके लिये अनेक सामंत महारानी और पुत्रोंके साथ शीघ्र ही चल दिया ठीक भी है जो महानुभाव भगवान अर-हंतके चरणोंमें पूर्णभक्ति रखनेवाले हैं वे अवसर प्राप्त होनेपर उसी भक्तिमें लीन होकर भगवान अर्हंतके मार्गके अनुगामी मुनिराजोंकी वंदनाके लिये प्रतिसमय तैयार रहते हैं। वह राजा पद्म-सेन मुनिराजके पास पहुंच कर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। महामनोहर अष्ट द्रव्योंसे उनकी पूजा की। पूजाके अंतमें गद्य और पद्योंसे उनकी स्तुति की एवं अपने बैठने योग्य स्थान पर अपने योग्य आसनसे बैठ गया ॥ ६०—६४ ॥ पद्मसेनकी इसप्रकार पवित्रभक्ति देखकर मुनि-राजने अपने दिव्यज्ञानसे उसे भव्य और सरलस्वभावी समझा इसलिये वे तात्त्विक और दयापूर्ण इसप्रकार धर्मोपदेश देने लगे :—

राजन्! यह संसार नाना प्रकारके दु:खोंसे व्याप्त है उसमें यह जीव सदा यहांसे वहां और वहांसे यहां चक्कर लगाया करता है यह जीव अनादि निधन है—इसके आदि अन्तका कोई निश्चय नहीं। न इसे किसीने बनाया है तथा यह चैतन्य स्वरूप है ॥ ६५—६६ ॥ इस संसारमें [illegible] अपेक्षा मनुष्यपना अत्यंत दुर्लभ है। यदि दैवयोगसे मनुष्यपना

दुस्त्यजो नृणां ॥ ५३ ॥ प्रीतिं

वृक्षाः कुसुमाढ्याः फलान्विताः ॥ ६७ ॥ [illegible] तत्वं सुखाः। सुपुत्रा वस्तु सद्बुद्धी रामा पीन-[illegible] तत्वमार्यत्वं सुरनाथता। कामत्वं रूपसंपन्नं तीर्थकृत्वं यतो भवेत् ॥ ६९ ॥ ये नरा धर्मरिक्तास्तु ते भवंति विबुद्धयः। विपुत्रा निर्धना मूकाः पराशाः स्त्रीविवर्जिताः ॥ ७० ॥ विरूपास्तस्करा नीचाः किंकरा भारपीड़िताः। आजन्म-व्यथिकाः क्रांता धर्महीना भवन्ति ते ॥ ७१ ॥ स च धर्मो द्विधा प्रोक्तो मुनिश्रावकभेदतः। मुनिधर्माद्भवेन्मोक्षश्चान्यस्मात्संपदादिकं ॥ ७२ ॥ नक्तभोज्यं न कर्तव्यं मांसदोषकरं सतां। निशादने कृते नूनं व्रतभंगो हि जायते ॥ ७३ ॥ पूजा स्नानं च दानं वा तर्पणं

प्राप्त भी हो जाय तो उत्तम कुलका मिलना कठिन है यदि प्रबलभावसे उत्तम कुल भी प्राप्त हो जाय तो जिसमें दया और दान प्रधान है ऐसा उत्तम धर्म प्राप्त नहीं होता। धर्म संसारमें चिंता-मणि रत्न है क्योंकि धर्मसे राज्य प्राप्त होता है एवं धर्मसे ही स्वर्ग, बल, सुख, यश, उत्तमपुत्र धन उत्तम बुद्धि पीन स्तनवालीं स्त्रियां विद्वत्ता चक्रवर्तीपना आर्यपना देवेंद्रपना इच्छानुसार भोग उत्तम रूप और तीर्थंकरपना भी प्राप्त होता है ॥ ६७—६९ ॥ जो मनुष्य धर्मका सेवन करनेवाले नहीं—धर्मरहित हैं वे बुद्धि रहित मूर्ख होते हैं। पुत्रहीन होते हैं निर्धन गूंगे अभागे और स्त्रियोंसे रहित होते हैं तथा उस परम पावन धर्मसे रहित पुरुष विरूप बदसूरत होते हैं चोर होते हैं नीच किंकर रात दिन भार लादनेवाले जन्मपर्यंन्त दुखी और अपमानित होते हैं ॥ ७०—७१ ॥ जिस धर्मका यह फल बतलाया गया है वह धर्म मुनि और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका बतलाया गया है उनमें मुनिधर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और श्रावक धर्मकी कृपासे संसारकी अनेक विभूतियां आकर मिलतीं हैं ॥ ७२ ॥ रात्रिमें भोजन करनेसे अनेक जीवोंका कलेवर भक्षण करना पड़ता है और व्रतोंका भी भलेप्रकार पालन नहीं होता इसलिये व्रतियोंको कभी रात्रिमें भोजन नहीं करना चाहिये। रात्रिमें किये जानेवाले पूजा स्नान दान और तर्पण आदि भी किसीप्रकारकी शुद्धिप्रदान नहीं कर सकते। पक्षीगण जिनके कि अंदर किसी प्रकारका धर्मज्ञान नहीं होता जब वे भी रात्रिमें नहीं खाते तब आश्चर्य है मनुष्य क्यों रात्रिमें खाते हैं ? जब दो घड़ी दिन बाकी रह जाय तब

नैव शुद्ध्यति । पक्षिणोऽपि न भक्षंति कथं भुंजंति मानवाः ॥ ७४ ॥ वटीद्वये स्थिते शेष वासरेऽदति मानुषाः । अन्यथा राक्षसा एव पलास्वादनतत्पराः ॥ ७५ ॥ त्रिसंध्यं येतु भुंजंति निर्धना रोगिणो नराः । अल्पायुषो भवंत्येव कालदंष्ट्रा हताः खलु ॥ ७६ ॥ महापाप कृतां पुंसां निंदा नैव विधीयते । तया चैनांसि वध्यंते परत्र दुर्गतिं व्रजेत् ॥ ७७ ॥ निंदाकारी व्रतध्वंसी परछिद्रप्रकाशकः । निद्राछेद्यंतरापी च चाण्डालाः पंच भाषिताः ॥ ७८ ॥ धर्मस्थाने नरा नार्यो निंदा कुर्वंति ये रसात् । वल्गुलीघूकमार्जारस्खलज्जिह्वा भवंति ते ॥ ७९ ॥ असारे खलु संसारे कस्य चिद्वल्लभो न कः । स्वार्थ एव परः पुंसां न रामास्वजनादिकं ॥ ८० । एक एव सुखी

मनुष्योंको भोजन करना चाहिये क्योंकि यही आगममें विधान है किन्तु जो मनुष्य उसके वाद भी भोजन करते हैं वे मनुष्य नहीं किंतु मांस खानेके लोलुपी राक्षस हैं विशेष क्या जो मनुष्य प्रातः-काल दुपहर और सायंकाल तीनोंकाल भोजन करनेवाले हैं वे मनुष्य निर्धन होते हैं रोगी थोड़ी आयुवाले और यमराजके मुखमें प्रवेश करनेवाले होते हैं ॥ ७३—७६ ॥ सज्जनपुरुषोंकी तो बात ही क्या है किंतु जो पुरुष घोर पाप करनेवाले महापापी हैं उनकी भी निंदा नहीं करनी चाहिये । क्योंकि उससे अनेक पाप कर्मोंका वंध होता है और पर भवमें दुर्गतिके अन्दर जाना पड़ता है ॥ ७७ ॥ निंदा करनेवाले, व्रत ग्रहण कर उसे नष्ट करनेवाले, पराये दोषोंके प्रकाश करनेवाले, निद्रा छेदनेवाले और अंतराय (विघ्न) पहुंचाने वाले ये पांच प्रकारके चांडाल माने जाते हैं ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य वा स्त्रियां प्रेमपूर्वक धर्मके स्थानोंमें अर्थात् धर्मायतनोकी निंदा करनेवाले हैं—निंदा करनेमें आनंद माननेवाले हैं वे संसारमें उस निंदाके करनेसे बगली उल्लू और विल्ली होते हैं एवं उनकी जीभके खंड २ हो जाते हैं ॥ ७८—७९ ॥ यह संसार असार है इसमें किसका कौन प्यारा नहीं है अर्थात् जो एक पुरुष किसीका द्वेषी होता है वही दूसरेका प्यारा होता है वास्तवमें प्यारा स्वार्थ है जिसका जिससे स्वार्थ सटता है वही उस का प्यारा कहा जाता है स्त्री और कुटुम्ब आदि कोई किसीका प्यारा नहीं ॥ ८० ॥ इससंसारमें जो पुरुष पुण्य और पापका उपार्जन करने वाला है वही अकेला सुखी दुःखी और स्वर्गका सुख

दुःखी स्वर्गी भवति निश्चितं। पुण्ये पापे विभागोन रामादीनां कदाचन ॥ ८१ ॥ पंचधा नारकं दुःखं स्वयं तत्सहते स्फुटं। तत्रैव सुखिनं कर्तुं क्षणं शक्नोति कोऽपि न ॥ ८२ ॥ दर्शनज्ञानचारित्रभावना च विचीयते। विभावं जन्मपर्यंतं तपो भवति निष्फलं ॥ ८३ ॥ अत्युग्रं जन्मपर्यंतं तपोऽकारि च यत्क्रुधा। भस्मसात्तद्भवेद्राजन् वह्निना हि यथा वनं ॥ ८४ ॥ अनेन जंतुना राज्यं भुक्तं जन्मविवर्जितं। अनेकशस्तथाप्यस्य संतोषो नैव जायते ॥ ८५ ॥ भोगाश्च दारुणाः सर्पदेहा इव मता जिनैः। तिर्यंचस्ते भवंत्येव ये रामाधनमो-

भोगने वाला होता है। पुण्य और पापमें स्त्री पुत्र आदिका विभाग नहीं। अपने कियेका आप ही फल भोगना पड़ता है दूसरा स्त्रीपुत्र आदि उसमें हिस्सा नहीं बटा सकता ॥ ८१ ॥ यह जीव शरीर आदि संबंधी पांच प्रकारके दुःखको स्वयं अकेला ही सहता है नरकमें उसे क्षण भरके लिये भी सुखी करनेको कोई समर्थ नहीं ॥ ८२ ॥ जो पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं उनके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी भावना नहीं बन सकती तथा उनका जन्मपर्यंत भी तपा हुआ मिथ्यादृष्टि तप निष्फल होता है ॥ ८३ ॥ जो तप क्रोधपूर्वक किया जाता है वह तप कैसा भी उत्कट क्यों न हो तथा जन्मपर्यंत भी क्यों न तपा गया हो परंतु वह जिसप्रकार दावाग्निसे क्षणभरमें वन भस्म हो जाता है उसीप्रकार उस क्रोधके द्वारा भस्म हो जाता है उसका कोई भी फल नहीं होता ॥ ८४ ॥ इस जीवने अनेक वार निष्कंटक राज्यका भोग किया है तब भी उस राज्यसे इसे संतोष नहीं हुआ है ॥ ८५ ॥ जिसप्रकार सर्प अत्यंत भयंकर होते हैं उसीप्रकार भगवान जिनेंद्रने इन भोगोंको कहा है इनके जालमें फँसकर प्राणिगण अपने स्वस्वरूपसे च्युत हो जाते है और संसारमें भ्रमण करते फिरते हैं तथा जो पुरुष स्त्री और धनमें मोह रखते हैं उन्हें ही अपने जीवनका सर्वस्व समझते हैं वे तिर्यंच गतिके अन्दर उत्पन्न हो अनक क्लेश भोगते हैं॥ ८६ ॥ स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले बहुत प्रकारके भोगोंको चिरकाल भोगकर भी जो महानुभाव अंत में धर्मका आचरण नहीं करते—उन भोगोंमें लिपटे रहते हैं वे संसारमें महामूर्ख माने जाते हैं

हिनः ॥ ८६ ॥ चिरं भुक्त्वा वहून योगान् पंचेंद्रियसुखप्रदान् । त्यक्त्वा प्रांते न ये धर्मं कुर्वंति ते महा जड़ाः ॥ ८७ ॥ चक्रिणोऽपि गताः काले चलंति स्वर्गिणोऽपि च । मरणं विद्यतेऽवश्यमतो धर्मो विधीयते ॥ ८८ ॥ पश्यजन्मद्वये राजन्! भावी त्वं देव पूजितः । तीर्थकृद्विमलो नाम्ना वै मलज्ञानलोचनः ॥ ८६ ॥ श्रुत्वा केवलिनो वाक्यं जहर्ष मानसे निजे । तीर्थकृज्जात एवासौ पद्मसेनो नराधिपः ॥ ६० ॥ बांधवान् बंधनैस्तुल्यान् रामाः श्वभ्रप्रतोलिकाः । स्वार्थं मुल्यं विचिंत्याशु नृपो वैराग्यमाश्रितः ॥ ६१ ॥ सर्वं सामंत सामक्ष्यं दत्वा राज्यं स्वसूनवे । पद्मनाभाय सतांगं प्रव्राज धराधिपः ॥ ६२ ॥ पपाठैकादशांगानि तेषामर्थान्विशेषतः । नानातपः प्रभेदेन विजहार महीतलं ॥ ६३ ॥ षोड़शानां निजे चित्ते भावनानां सुभावनं । चकार सिंहवन्निर्भीरसौ सारंग लोचनः ॥ ६४ ॥ सत्तालोचनमात्रं

॥ ८७ ॥ संसारमें सबसे बढ़कर विभूतिका धारक चक्रवर्ती होता है और सर्वोंसे अधिक सुखी देव गिने जाते हैं परंतु आयुके अंतमें उन्हें भी मृत्युके अन्दर प्रवेश करना पड़ता है इसलिये धर्मात्माओंको अवश्य धर्मका आचरण करना चाहिये ॥ ८८ ॥ राजन्! इससे आगेके दो भवोंमें तुम्हारे बड़े २ ऋद्धिधारी देव भी पूजा भक्ति करेंगे एवं तुम निर्मल ज्ञानरूपी लोचनके धारक तेरवें तीर्थंकर विमलनाथ होनेवाले हो ॥ ८६ ॥ केवली सर्वगुप्तके इसप्रकार आनंद प्रदान करनेवाले वचन सुन राजा पद्मसेनको बड़ा आनंद हुआ एवं तीर्थंकर प्रकृतिसे जायमान सुखका उसीसमय अनुभव होने लगा। उनके हृदयमें उससमय वैराग्य भावनाका उदय हो गया वह अपने समस्त बांधवोंको साचात् बंधनके समान समझने लगे । स्त्रियोंको महादुःख देनेवालीं नरककी गलियां समझने लगे एवं अपने आत्मकल्याणका विचार कर वह समस्त विभूतिसे एकदम विरक्त हो गये ॥ ६०—६१ ॥ राजा पद्मसेनके पुत्रका नाम पद्मनाभ था । समस्त सामंतोंके समत्तमें शीघ्र ही उनने अपने पुत्र पद्मनाभको सारा राज्य संभला दिया और दिगंबरी दीचा धारणकर ली ॥६२॥ आचारांग आदि ग्यारह अंगोंका उनने अच्छी तरह अध्ययन किया। भलेप्रकार उसके अर्थका विचार किया एवं अनेक प्रकार तपोंका आचरण करने वाला वह निर्द्वन्द्व होकर पृथ्वीपर विहार करने लगा ॥ ६३ ॥ वे कमलोंके समान फूले हुए नेत्रोंके धारक मुनिराज पद्मसेन दर्शन विशुद्धि

य दर्शनं तन्निगद्यते । जीवोऽयं निश्चलो मूर्तिश्चिद्रूपं वेत्ति दर्शनं ॥ ६५ ॥ तस्यैव निरतीचारो विशुद्धिः सा मता जिनैः । मुनीनां देवशास्त्राणां विनयश्च विधीयते ॥ ६६ ॥ अष्टादशसहस्रेषु शीलभेदेषु प्रत्यहं । अतीचारं त्यजेद्ध्यानी चेतोभाव प्रकल्पितं ॥ ६७ ॥ आत्मनि नित्यताज्ञानं श्रुतस्यैवावगाहनं । ज्ञानोपयोग इत्युक्तः पूर्वैश्च पूर्वसूरिभिः ॥ ६८ ॥ रामाकांचन पुत्रेषु यौवने विषयेषु च । अथिपत्येत्व

आदि सोलह भावनाओंको सिंहके समान निर्भीक हो अच्छी तरह मानने लगे।' मुनिराज पद्मसेनने जिन सोलह भावनाओंको भाया था उनका संक्षेपमें स्वरूप इसप्रकार है :—

१ भगवान जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट मोक्ष मार्गमें जो निर्मल रूचिका होना है उसका नाम दर्शन है निश्चल मूर्ति यह जीव उस चैतन्य स्वरूप दर्शनको जानने वाला है उसी दर्शनका जो अतिचार रहित विशुद्धि है उसे भगवान जिनेन्द्रने दर्शन विशुद्धि भावना मानी है। देव शास्त्र गुरुओंमें विनय भावका रखना विनय सम्पन्नता नामकी भावना है। २। शीलके अठारह हजार भेद माने हैं उन शीलोंका जो चित्तकी भावनासे कल्पना किये अतीचारोंसे रहित होकर पालन करना है वह शील व्रतेष्वनतिचार नामकी भावना है। ३। आत्मा नित्य है इस प्रकारका सदा विशुद्ध ज्ञान रखना श्रुतका अवगाहन करना वह पूर्व आचार्यों ने अभी एक ज्ञानोपयोग नामकी भावना बतलाई है।४। स्त्री सुवर्ण पुत्र यौवन विषय और स्वामीपनाको सदा अनित्य समझना उनसे उदास रहना भगवान जिनेन्द्रने संवेग नामकी भावना कही है। ५। जो धर्मात्मा पुरुष भावसे शक्ति पूर्वक दान देनेवाले हैं उनके शक्तितस्त्याग नामकी भावना होती है तथा वह दिया हुआ दान निरर्थक नहीं जाता किंतु उससे उत्तम बुद्धिकी प्राप्ती होती है उस उत्तम बुद्धिसे पुण्य और पश्चात् भी स्वसुख मिलता है। ६। अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्योंको सदा उत्तम तप आचरण करना चाहिये जो महानुभाव ऐसा करते हैं उनके शक्तितस्तप नामकी भावना होती है किन्तु जो ऐसा नहीं करते वे आर्त ध्यानसे व्यंतर जातिके नीच देव वा म्लेच्छ होते हैं और अनेक प्रकारके क्लेश भोगते हैं

नित्यत्वं सवेगो गद्यते जिनैः ॥ ६६ ॥ यथाशक्ति ददत्येव दानं धर्मविदो नराः । भावतस्तेन सद्बुद्धिस्तया पुण्यं ततः शिवं ॥ १०० ॥ स्वसामर्थ्यानुसारेण विधेयं सुनरैस्तपः । अन्यथा व्यंतरा मर्त्या भवंति चार्तध्यानतः ॥ १०१ ॥ येन केनाप्युपायेन मनः याति लयं मतां । तदेव तप आचार्यैराख्यातं मुक्तिसाधनं ॥ १०२ ॥ अकृत्वा मनसो रोधं कुर्वंत्युग्रं महत्तपः । देवावासाधिपत्यादि सिद्धिस्तेषां हि नो शिवः ॥ १०३ ॥ साधूनां क्षुध प्रशनो यः स समाधिर्निरूप्यते । धर्मध्यानार्थचिंता स समाधिरथोच्यते ॥ १०४ ॥ वैयावृत्त्यं

जिस उपायसे मनुष्योंका मन पदार्थोंसे हटकर आत्म स्वरूपमें लीन हो आचार्योंने उसी तपको उत्तम तप कहा है और वही तप मोक्षके प्राप्त करानेवाला है किन्तु जो महानुभाव मनका तो निरोध करते नहीं और तप उग्र और महान तपते ही हैं उन्हें उस तपकी फल स्वरूप राज्य आदि विभूतियां तो प्राप्त हो जातीं हैं परन्तु वे मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते। ७। मुनियोंका सुख प्रश्न अर्थात् किसी कारणसे विघ्नके उपस्थित हो जानेपर उस विघ्नको नाशकर उनके तपकी रक्षा करना साधु समाधि है। अथवा धर्म ध्यानकी प्राप्तिके लिये उत्तम चिन्ता आत्म स्वरूपका चिंतवन करना, साधु समाधि है। ८। मुनि आदि गुणियोंके किसी कारण दुःख उपस्थित हो जानेपर उत्तमउपायसे उसे दूर करना उनकी सेवा चाकरी करना वैयावृत्य कहा जाता है वह वैयावृत्य आचार्य उपाध्याय आदि दशप्रकारके साधुओंके भेदसे दश प्रकारका है। इस वैयावृत्यस्वरूप भावनाके भानेसे जिसप्रकार स्वामीके न रहनेपर सैन्य तितर बितर कर नष्ट हो जाती है उसीप्रकार अधर्म भी नष्ट हो जाता है। ६। छियालिस गुण युक्त और ज्ञानसे सर्वत्र विद्यमान अर्थात् ज्ञानसे लोक और अलोकको जाननेवाले भगवान अर्हंतकी जो स्तोत्र आदिसे भक्ति करना हैवह शास्त्रमें अर्ह-

---

१ तत्वार्थराजवार्तिकमें जिनोपदिष्टे निर्ग्रन्थे मोक्षवर्त्मनि रुचिः, निःशंकितत्वाद्यष्टांगा दर्शनविशुद्धिः अर्थात् अर्हन्त भगवान जिनेन्द्र द्वारा कहे गये निर्ग्रंथ स्वरूप मोक्षमार्गमें जो रुचि प्रीतिका होना है उसका नाम दर्शनविशुद्धि है और उसके निःशंकितांग निःकांक्षितांग आदि अष्टअंग हैं। उस दर्शनकी जो विशुद्धि है। यह दर्शन विशुद्धि है यही अर्थ माना है । ग्रन्थकारने यहांपर दर्शनसे सत्तालोचन रूप दर्शन ग्रहण किया है वह ठीक नहीं जान पड़ता। पृ० सं० २६२

बुधैः प्रोक्तं दशधा धर्मसाधनं । बैयावृत्ये कृतेऽधर्मो भ्रश्यते नाथसैन्यवत् ॥ १०५ ॥ अर्हतो गुणमुक्तस्य ज्ञानसर्वगतस्य च । भक्तिः स्तोत्रादिभिर्या तु सार्हद्भक्तिर्मता श्रुते ॥ १०६ ॥ षट्त्रिंशद्गुणमुख्यस्य ध्यानिनश्च तपोनिधेः । भावतो भक्तिराख्याता सूरिभक्तिर्जिनागमे ॥ १०७ ॥ शास्त्राणां बहुसंख्यानां ज्ञातुः पूर्वांग धारिणः । भक्तिश्च नैगमें प्रोक्ता भूरिसारंग भक्तिका ॥ १०८ ॥ राद्धांतस्य च सद्वाक्यं सत्यं मत्वार्चयेत्सुधीः । अकाले तन्न पठ्येत ह्यभ्रांतं प्रवचो मतं ॥ १०९ ॥ षड़ावश्यकस्याचारविधिर्नैवोपलंघयेत् । आवश्यकं हि तत्प्रोक्तं कालनयनियोजितं ॥ ११० ॥ जैनधर्मस्य माहात्म्यं प्रकाशयति कोटिधा । मार्गप्रभावना सैव प्रोक्ता चिद्रूपचिंतिभिः ॥ १११ धर्मिणां व्रतिनां नूनं शीलयुक्त तपोभृतां । दानिनां मृदुचिंतानां संशा वात्सल्य मुच्यते ॥ ११२ ॥ तपस्वी पद्मसेनाख्य एताः सद्भावनाः

भक्ति कही गई है ॥ १० ॥ छियालीस गुणोंके धारक तपके भंडार और ध्यान करनेवाले आचार्यकी जो भावपूर्वक भक्ति करना है वह आगममें आचार्य भक्ति मानी गई है ॥ ११ ॥ बहुत शास्त्रोंके जानकार, ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके धारक महात्माकी जो भक्ति करना है वह बहुश्रुत भक्ति आगममें कही गई है ॥ १२ ॥ सिद्धांत वाक्योंको सर्वथा सत्यमान कर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करना और आगमके पढ़नेका जो समय बताया गया है उसी समय उसे पढ़ना असमयमें न पढ़ना एवं किसी प्रकारका उसमें भूस न रखना प्रवचन भक्ति है ॥ १३ ॥ सामायिक चतुर्विंशतिस्तव बंदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह प्रकारके आवश्यक माने हैं इन छह प्रकारके आचरणोंका उल्लंघन न करना एवं तीनों काल उनका यथायोग्य आचरण करना आवश्यकापरिहाणि नामकी भावना है । १४ । करोड़ों उपायोंसे जैनधर्मके माहात्म्यका जो चिंतवन करना है वह चैतन्य स्वरूपकी चिंता करनेवाले आचार्योंने मार्गप्रभावना नामकी भावना मानी है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य धर्मात्मा हैं । व्रती हैं । शील और तपके भण्डार हैं । दानी हैं और कोमल चित्तके धारक साधर्मी हैं उनकी प्रशंसा करना प्रवचन वत्सलत्व नामकी भावना है ॥ १६ ॥ ९५—११२ ॥ वे तपके भण्डार मुनिराज पद्मसेन समस्त प्रकारकी परिग्रहसे रहित हो दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंको

परा: । भावयामास चित्ते स्वे विधिना ग्रंथ वर्जितः ॥ ११३ ॥ ततो ववंध तीर्थेशगोत्रं संसारतारकं । मास द्वित्रिचतुःसंख्यप्रोषधक्षीण-सद्वपुः ॥ ११४ ॥ सरित्तटे स हैमंते भ्रश्यद्द्रुमकदंबके । देहदुःखाकरीभूते कायोत्सर्गं चकार वै ॥ ११५ ॥ ग्रीष्मे शैलतटे भोगी सूर्यस्या-भिमुखं स्थितः । मध्याह्नतापसंदग्ध कृष्णकायः परं जपन् ॥ ११६ ॥ प्रावृषि चपलागर्जिरुद्राया भूरुहस्तले । वल्लीपिहितगात्रः सन् विदधे सत्तपश्चिरं ॥ ११७ ॥ रागद्वेषाच्च्युतो मौनी निद्रालस्यविवर्जितः । चिद्रूपध्यान संसक्तो मेरुर्वा स्थैर्यमाश्रितः ॥ ११८ ॥ तस्य सौम्यं समालोक्य समंतान्मृगराजयः । सेवंतेस्म महाव्याघ्र दंष्ट्रि पक्षि मतंगमाः ॥ ११९ ॥ कर्णयोर्नीडकारम्भः कृतो हारीत राशिभिः । जटानां

अपने चित्तमें सदा भाते रहते थे ॥ ११३ ॥ सोलह भवनाओंके भानेसे उन्होंने संसारसे पार करने वाला तीर्थंकर गोत्रका बंध कर लिया । कभी एक मास तो कभी दो तीन चार मास पर्यंत उप-वास धारण करनेके कारण उनका शरीर कृश होता गया ॥ ११४ ॥ जिसमें तीव्र हिमके कारण वृक्षोंके समूहके समूह खाख हो जाते हैं और जो शरीरको तीव्रसे तीव्र वेदना करने वाला है ऐसे शीत कालमें वे पूज्य मुनिराज नदीके तटपर बैठकर कायोत्सर्ग मुद्रा धारण करते थे ॥ ११५ ॥ ग्रीष्मकालमें वे योगिराज परमात्माके स्वरूपको ध्याते हुए सूर्यके सन्मुख मुखकर विराजमान होते थे एवं मध्याह्नकालके तापसे दग्ध होनेके कारण उनका सारा शरीर काला पड़जाता था ॥ ११६ ॥ बिजलीकी तड़कनसे जो महाभयंकर जान पड़ता है ऐसे वर्षाकालमें वे मुनिराज वृक्षके तलमें बैठ कर उत्तम तपका आचरण करते थे एवं लताओंके समूहसे सारा शरीर उनका ढक जाता था ॥ ११७ ॥ वे मुनिराज राग और द्वेष से सर्वथा परांगमुख थे । मौनी थे निद्रा और आलस्य उनके पासतक नहीं फटकता था । सदा चैतन्य स्वरूपके ध्यानमें तत्पर रहते थे एवं जिसप्रकार मेरु पर्वत स्थिर है उसीप्रकार वे भी ध्यानकालमें स्थिर रहते थे ॥ ११८ ॥ मुनिराज पद्मसेनकी अलौकिक समता देखकर मृगगण उनके आस पास किलोल करते थे एवं सिंह बाघ पक्षी और हाथी सदा उनके पास निर्वैर रूपसे रहते थे ॥११९॥ मुनिराज पद्मसेनके कानोंको छोटे छोटे पक्षियोंने अपना

पंचकेनैव शरीरं नैव लक्ष्यते ॥ १२० ॥ धन्यास्ते स्त्रीकुटुंबादि त्यक्त्वा संगपराङ्मुखाः । रागद्वेष विनिःक्रांता वैराग्येण वनं गताः ॥ १२१ ॥ दुस्तरं सुतपस्तप्त्वा शेषपुण्येन धीधनः । उच्चैर्गोत्रशुभायुःसद्वेद्येना सत्मुमोच सः ॥ १२२ ॥ सहस्रारे शुभे स्वर्गे गतो भावशान्मुनिः । सहस्रारेंद्रनामा च बिभूवामर सेवितः ॥ १२३ ॥ अंतर्मुहूर्तमात्रेण संपुटाख्यशिलातलात् । उत्थितो यौवनाढ्यः स रूपद्योति तद्दिङ्मुखः ॥ १२४ ॥ उत्थितं तंसमालोक्य कलानिधिमुखं परं । रूपसीमानमित्याहु स्थूलस्तन सुरांगनाः ॥ १२५ ॥ अयि नाथत्वया

घोंसला बना लिया था एवं जटा उनकी कभी कभी ऐसी बढ़ जाती थी कि उनका सारा शरीर ढक जाता था—दीख नहीं पड़ता था ॥ १२० ॥ ग्रन्थकार विरक्त महात्माओंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि—वे महानुभाव संसारके अंदर धन्य और भाग्यशाली हैं जो कि स्त्री और कुटुम्ब आदिसे मोह तोड़ कर परिग्रहसे विरक्त हो गये हैं। राग और द्वेष जिनके पास तक नहीं फटकने पाता एवं बैराग्य भावनाका सदा चिंतवन करते हुए जो सदा बनके अंदर निवास करने वाले हैं। ॥ १२१ ॥ दिव्यज्ञानी मुनिराज पद्मसेनने घोर तप तपा एवं पुण्यकी कृपासे उन्होंने उच्चगोत्र शुभ आयु और साता वेदनीय कर्मके साथ साथ उन्होंने शरीरका परित्याग कर दिया ॥ १२२ ॥ वे मुनिराज विशुद्ध भावोंकी कृपासे सहस्रार नामक बारहवे स्वर्गमें सहस्रारेंद्र हुए एवं अनेक देवगण उनकी सेवा करने लगे ॥ १२३ ॥ वह मुनिराज पद्मसेनका जीव सहस्रारेंद्र अन्तर्मुहूर्तमात्रमें ही संपुट नामकी शिलासे उठकर पूर्ण युवा हो गया एवं अपने देदीप्यमान रूपसे समस्त दिशाओंको जगमगाने लगा ॥ १२४ ॥ चंद्रमाके समान मनोहर मुखसे शोभायमान और अत्यंत रूपवान सहस्रारेंद्र देव ज्यों ही संपुट शिलासे उठकर खड़ा हुआ कि पीन स्तनोंकी धारक देवांगना उनके पास आईं और इसप्रकार विनयपूर्वक निवेदन करने लगीं—

हे स्वामिन्! आपने ऐसा कौनसा बहुतसा दिव्य पुण्य उपार्जन किया जिससे आपका जन्म यहां आकर हुआ क्योंकि यह नियम है कि सारी सिद्धियां पुण्यबलसे प्राप्त होतीं हैं विना पुण्यके एक भी विभूति प्राप्त नहीं हो सकती ॥ १२५ । १२६ ॥ क्या आपने पहिले श्रीमान जिनेंद्र भगवान

रम्यं किं कृतं सुकृतं बहु । यत्र त्वं समायातः पुण्यलब्धा हि सिद्धयः ॥ १२६ ॥ श्रीमत्पुरुजिनेंद्रस्यार्चितं चरणपंकजं । किंवा चिरं :तपस्तप्तं षट्कायावन पूर्वकं ॥ १२७ ॥ दानं चतुर्विधं दत्तं पात्रेभ्यः परमादरात । त्रयोदशविधं चारुचारित्रं पालितं नु ते ॥ १२८ ॥ स्तु-त्वेति मधुरालापैर्नम्रांग्यः संस्थिता यदा । तदा वितर्कयामास देवेंद्रो मानसे निजे ॥ १२६ ॥ मुक्ताकदंबकलक्षमाला मणिनियंत्रिताः । विमानाः सूक्ष्मसंदर्भसंयुक्ताः किममी ननु ॥ १३० ॥ नानर्द्धि संभृत स्थानमेतत्कौतस्कुतं ध्रुवं । ब्रुवंति मधुरालापाः का एता घनश्री-रुभा. ॥ १३१ ॥ कोऽहं कस्मात्समायातः संशये चेति तस्य वै । तृतीयावगमः साक्षात्प्रादुरासीद्गतभ्रमः ॥ १३२ ॥ संबंधं स्वस्य

के चरण कमलोंकी पूजाकी थी वा चिरकाल तक घोर तप तपा था अथवा छह कायके जीवोंकी प्रतिपालना की थी वा उत्तम मध्यम जघन्य तीनों प्रकारके पात्रोंको अत्यंत आदरसे आहार औषधि शास्त्र अभय ऐसा चार प्रकारका दान दिया था अथवा तेरह प्रकारके परमोत्तम चारित्रको धारण किया था ? बस इसप्रकार मधुर वचनोंमें स्तुति कर देवांगना नम्रीभूत हो जब यथास्थान बैठगईं उससमय वह सहस्रारेंद्र देव भी सहस्रार स्वर्गकी दिव्य विभूति देख इसप्रकार, अपने मनमें विचार करने लगा—

मोतियोंकी लाखों मालायें और भांति भांतिकी मणियोंसे रचे गये एवं जिनकी रचना अत्यंत कारीगरीके लिये हुए हैं ऐसे ये विमान मुझे क्या दीख पड़ते हैं। नाना प्रकारकी अनेक ऋद्धियोंसे व्याप्त यह मनोज्ञ स्थान क्या है ? एवं बिजलीके समान चमचमाती हुई प्रभाकी धारक एवं अत्यंत मधुर बोलने वालीं ये देवांगनाएं कौन हैं। मैं कौन था और यहां कैसे आगया ? बस इस प्रकारका संशय हो ही रहा था कि उसीसमय उसे तीसरा ज्ञान—अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया जिससे उसका सारा भ्रम एक ओर किनारा कर गया ॥ १२७ । १३२ ॥ अवधिज्ञानकी ओर उप-योग लगा कर सहस्रारेंद्र देवने अपना सारा पूर्वभवका संबंध जान लिया एवं उसका हृदय आनंद से पुलकित हो गया। उसे उस प्रकार आनन्दायमान देखकर देवांगनाओंके हर्षका भी पारावार नहीं रहा। उनमें कोई देवांगना उसके मस्तक पर महामनोहर मुकुट लगाने लगी। कोई कोई

ज्ञानेन ज्ञात्वानंदमयोऽभवत्। तथाभूतं विलोक्याशु त्वलं चक्रुः सुरांगनाः॥१३३॥ काचिन्मुकुटसंदर्भं चर्करीतिस्म सादरात् । क्षौमवासांसि काचिद्वा रोपयामास तत्तनौ ॥ १३४ ॥ आरुरोपांगदं काचित्काचिन्मुक्तागुणं गले । काश्चिद्विलेपनं चक्रे चंदनद्रुम संभवं ॥१३५॥ भाले विशेषकं काचित्पद्मराग सुदर्शिनां । रत्नलोहितमध्यांकां चकार मेखला कटौ ॥ १३६ ॥ काचित्सुरावला:तस्य दर्पणं चित्ततर्पणं । दर्शयामास कामाढ्या सहासा रूपरजिता ॥ १३७ ॥ काचित्तं पूरमल्लाभा मंडलाग्रजसन्निभं । चामरांदोलनैरुच्चै सुखयामास सादरं ॥ १३८ ॥ एवमादिक श्रृंगारैर्भूषितो देवराड् बभौ । दृष्ट्वा नाकसमुद्भूता मिंदिरामित्यचिंतयत् ॥ १३९ ॥ इदं धर्मफलं नूनं स्वर्गराज्य-

महा मनोहर सुगंधित वस्त्र उसे पहिनाने लगीं । किसीने उसे अङ्गद (बाजू बंध) पहिनाया । कोई गलेमें हार पहिनाने लगी । किसी किसीने मलयागिरि चन्दनसे उस देवके शरीरका उवटन किया कोई कोई ललाटपर तिलक लगाने लगी । किसी किसीने पद्मराग मणिकी बनी हुई एवं मध्यभागमें रत्नोंकी लालिमा से अङ्कित करधनी उस देवके कटिभागमें पहिनाई । कोई कोई कामसे आकुलित और हंसने वाली देवांगना उस देवके दिव्य रूपपर मुग्ध हो चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाला दर्पण दिखाने लगी तथा कोई कोई देवांगना जिसप्रकार मंगलदासके बड़े भाई कृष्णदासको पूरमल्ला नामकी स्त्री चमर ढार कर सुखी बनाती थी उसीप्रकार उस देवको भी चमर ढार ढार कर बड़े आदरसे सुखी बनाने लगी ॥ १३३—१३८ ॥ इसप्रकार अनेक श्रृंगार जनक वस्तुओंसे सजा गया वह देवराज अत्यंत शोभायमान जान पड़ने लगा तथा सहस्रार स्वर्गमें होनेवाली दिव्य लक्ष्मीको देखकर वह देव इसप्रकार विचारने लगा—

अनेक देवोंसे सेवित यह स्वर्गका राज्य धर्मका फल है । यह दिव्य राज्य मुझे उत्तम पुण्यकी कृपासे मिला है क्योंकि धर्मसे संसारमें सब कुछ प्राप्त हो सकता है ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो धर्मकी कृपासे न मिलती हो । बस इस प्रकार अपने मनमें विचार कर वह सहस्रार स्वर्गका स्वामी देव अनेक देवीं और देवोंसे वेष्ठित हो तीर्थ यात्राके लिये मेरु पर्वतपर गया नन्दीश्वर आदि द्वीपोंमें भी जिन चैत्यालयोंकी बंदनाके लिये भ्रमण करने लगा इस प्रकार असंख्याते द्वीप और समुद्रों

सुरार्चितं । प्राप्तं मया सुपुण्येन धर्मात्किं न भवेदिति ॥ १४० ॥ वितर्क्य मानसे स्वीये देवीदेवसमन्वितः । मेरौ जगाम यात्रार्थं तथा नंदीश्वरादिषु ॥ १४१ ॥ असंख्यद्वीप वाराशीन् गत्वा दृष्ट्वा समागतः । रेमे सुरांगनाभिश्च क्रीडा शैलेषु प्रत्यहं ॥ १४२ ॥ दीर्घिका स्वच्छतोयेन पंकजावलिनालिना । चुंवितेन सुखं स्नात्वा पूजयामास श्रीजिनान् ॥ १४३ ॥ शब्दसंभोग संजीनो देवी निकरमध्यगः । हाहा हूहू कृतं नाट्यं पश्यतिस्म निरंकुशः ॥ १४४ ॥ अष्टादशसमुद्रायुरेक चापतनूच्छ्रितिः । वर्तते देवनाथस्य वज्रांकितकरस्य च ॥ १४५ ॥ द्रव्यभावप्रभेदेन शुक्ललेश्या द्वयेन च । जघन्येन युतः पद्मलेश्योत्कृष्टनया पुनः ॥ १४६ ॥ तृप्तो रूपप्रवीचाराच्चातुर्यं नरकावधिः

में जाकर और उन्हें देखकर वह अपने स्थान लौट आया एवं प्रतिदिन अनेक देवांगनाओंके साथ साथ क्रीड़ा पर्वतोंमें अनेक प्रकारकी क्रीड़ायें करने लगा। वह पुण्यात्मा देवराज कमलोंकी वेलोंसे व्याप्त एवं जिसका आस्वाद सुगन्धिसे मतवाले भौंरे सदा लेते रहते थे ऐसे वावड़ियोंके स्वच्छ जलमें वह स्नान कर, भगवान जिनेन्द्रोंकी पूजा करने लगा ॥१३९—१४३॥ सहस्रार नामक वारहवें स्वर्गमें देवांगनाओंके भूषणोंके शब्द सुनने मात्रसे ही देवोंकी मैथुन अभिलाषा तृप्त हो जाती है इसलिये वह सहस्रारेंद्र सदा शब्द जनित भोगोंमें लीन रहता था। अनेक देवांगनाओंके मध्यमें बैठकर आनन्द किलोल करता था एवं हा हा हूं हूं आदि शब्दोंसे जायमान नृत्यको सदा निर्द्वंद्व हो देखता रहता था ॥ १४४ ॥ उस पुण्यात्मा देवेंद्रकी अठारह सागर प्रमाण आयु थी। एक धनुष प्रमाण शरीरकी ऊंचाई थी और उसके हाथ बज्रसे अंकित थे ॥ १४५ ॥ सहस्रार स्वर्गमें पद्म और शुक्लके भेदसे दो लेश्यायें मानी हैं उनमें शुक्ल लेश्या जघन्य रूपसे और पद्म लेश्या उत्कृष्ट रूपसे मानी है। वह देवेन्द्र द्रव्य और भाव स्वरूप जघन्य शुक्ल लेश्या और उत्कृष्ट पद्म लेश्या इस प्रकार दो लेश्याओंसे मंडित था ॥१४६॥ प्रवीचारका अर्थ मैथुनाभिलाष है। वह देवेंद्र शब्द प्रवीचारसे तृप्त था। अपने अवधि ज्ञानसे चौथे नरक तककी वातें जान सकता था। अवधि ज्ञानका विषयभूत जितना क्षेत्र वतलाया गया है वहां पर्यंत विक्रिया करनेकी वह सामर्थ्य रखता था और अणिमा महिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्योंसे शोभायमान था ॥ १४७ ॥

आक्षेत्र विक्रिया तेजा अणिमाद्यष्टको वमौ ॥ १४७ ॥ अष्टादश सहस्राब्दैर्मनसाहारमाहरन् । गतेषु नवमासेषु निःश्वसंह्लेखनावकः॥ १४८ ॥ गीतैर्वादित्रनिर्घोषैर्यत्र नाट्यरसान्वितैः । रंभारूपावलोकेन युगांतः समयायते ॥ १४६ ॥ सप्त धातुविहीनांगः काममूर्तिः सुराधिपः । असंख्यातसमुद्रेषु द्वीपेषु क्रीड़यन् स्थितः ॥ १५० ॥ धर्मात्स्वर्गीशलक्ष्मीमनुभवति सुरैः सेव्यमानां नितांतं । गंगाकल्लोलमाला धवलकरिवरैर्भासमानां सुरेन्द्रः । क्रीडाशैलैर्विमानैर्मरकतमणिभिर्गर्मितैरम्यरूपां । धर्मात्किं किं दुराप्यं भवति हि भुवने भूरिधाम्ना नराणां ॥ १५१ ॥ रम्या मोक्षसुता सुराज्यविभवं कीर्तिः कला कौशलं गांभीर्यं वनिता त्रिलोचनमुखं रूपं च देवेंद्रता । धीधान्यं

अठारह हजार वर्षोंके बाद वह मनसे आहार ग्रहण करता था और नौ महीनोंके बाद उश्वास लेता था ॥ १४८ ॥ सदा होने वाले गानोंसे वाजोंके शब्दोंसे नृत्यकलाके रसोंके अनुभवोंसे और देवांगनाओंके महा मनोहर रूपोंके देखनेसे सदा उसके लिये सतयुग विद्यमान रहता था ॥१४६॥ हड्डी मज्जा शुक्र आदि सात धातुओंसे रहित उसका शरीर था । कामदेवके समान वह सुंदर था । समस्त देवोंका स्वामी था एवं असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें सदा क्रीड़ा करने वाला था॥१५०॥

वह सहस्रार स्वर्गका स्वामी देवेंद्र जिसकी बड़े बड़े देव सेवा करने वाले हैं, जो गङ्गा नदीकी तरंगोंके समान सफेद हाथियोंसे शोभायमान हैं बड़े बड़े क्रीड़ा पर्वत, दिव्य विमान और मरकत मणियां जिसकी दिव्य शोभा बढ़ा रहे हैं ऐसी इन्द्र सम्बंधी सम्पदा सानंद भोग करने लगा। ठीक ही है जो मनुष्य भाग्यवान हैं उनके लिये ऐसी कोई भी चीजें नहीं जो धर्मसे प्राप्त न हो जाती हों ॥ १५१ ॥ धर्म संसारमें ऐसा अद्वितीय चिन्तामणि रत्न है कि उससे महा मनोज्ञ विभूतियाँ मिलतीं हैं सुन्दर राज्य, ऐश्वर्य, कीर्त्ति, कला, कौशल, गम्भीरता स्त्रियां नेत्रोंको आनन्द प्रदान करने वाला रूप, देवोंका स्वामीपना, उत्तम बुद्धि धान्य उत्कृष्ट और विवेक परिपूर्ण वचन, चक्रवर्ती पना और तीर्थ करपना सब कुछ प्राप्त होते हैं। विशेष क्या संसारमें ऐसा कोइ भी गुणोंका समूह नहीं जो कि धर्मकी कृपासे प्राप्त न हो ॥ १५२ ॥

परमं विवेक वचनं चकेश्वरत्वं वृषात् । श्रोतोर्थंकरता क्रमाद् गुणगणो न स्यादहो किं नृणां ॥ १५२ ॥ ॥

इति श्रीविमलनाथपुराणे भट्टारकश्रीरत्नभूषणाम्नायालंकार ब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममंगलदाससाहाय्य सापेक्षे पद्मसेनचरसहस्रारेंद्रविभूतिवर्णनोनाम द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥ २ ॥

इस प्रकार अपने छोटे भाई ब्रह्म मंगलदासकी सहायता पूर्वक भट्टारक श्रीरत्नभूषणकी आम्नायके अलंकार स्वरूप ब्रह्म कृष्णदास द्वारा विरचित श्रीविमलनाथ पुराणमें पद्मसेन राजाके जीव सहस्रारेंद्रका विभूति वर्णन करनेवाला दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥



तीसरा सर्ग ।

वायेऽहं चर्चितं स्वस्थैः काश्यपं गैरिकत्विषं । जटा स्वर्ण लताभाभिस्तिरस्कृतरविप्रभं ॥ १ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे विख्यातेऽ नेकवस्तुभिः । समास्ति भारतं वर्षं मेरोर्दक्षिणभागभाक् ॥ २ ॥ तत्रैव कंपिला नाम्ना विद्यते परमा पुरी । दोषैर्मुक्ता गुणैर्युक्ता धनाढ्या स्वर्ण

जो भगवान देवोंके द्वारा भलेप्रकार पूजित हैं । काश्यप गोत्रके तिलक हैं । गरुआ रंगकी प्रभाके धारक हैं एवं जटास्वरूप सुवर्ण की लताओंकी प्रभासे जिन्होंने सूर्यकी प्रभाको भी नीचा कर दिया है उन विमलनाथ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ इसी संसारमें एक जंबूद्वीप है जो कि अनेक प्रसिद्ध २ चीजोंसे विख्यात है । जम्बूद्वीपके ठीक मध्यभागमें मेरु पर्वत है और उसकी दक्षिणदिशामें प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है ॥ २ ॥ भरतक्षेत्रके अन्दर एक कंपिला नामकी नगरी है जो कि अपनी शोभासे महा मनोहर है । समस्त प्रकारके दोषोंसे रहित है । नाना प्रकारके गुणोंसे अलंकृत है । धनसे व्याप्त और सुवर्णमयी महलोंकी शोभासे जाज्वल्यमान है ॥ ३ ॥ किसी समय उसका रक्षण करने वाला राजा कृतवर्म्मा था जो कि पुरुदेव वंशसे उत्पन्न था । राजा

सगृहा ॥ ३ ॥ पुरुदेवान्वये राजा जातो राजमुखो वली । कृतवर्माभिधस्तत्र प्रतापाक्रांतभूतलः ॥ ४ ॥ सर्वसामंत संसेव्यपादो रत्नैरिवार्णवः । क्रूरसौम्यैर्गुणैर्भाति प्रभामार रविः प्रभः ॥ ५ ॥ सुदानार्णोधिनिर्याता भुवं संश्रित्य रोहति । ब्रह्मलोकं समुल्लंध्य स्वर्धुनीव शिवं नभः । ६ । निर्जरैरप्सरोभिश्च लोकिता सादरं सदा । यत्कीर्तिः कुंदशीतांशु विशुभ्रादम्ररजिताः ॥७॥ (युग्मं) चंद्रस्याचंद्रभा चांद्री

समस्त राजाओंने प्रधान था । बलवान था एवं अपने प्रचंड प्रतापसे समस्त पृथ्वीतलको वश करने वाला था ॥ ४ ॥ जिसप्रकार नाना प्रकारके रत्नोंसे समुद्र सेवित—व्याप्त रहता है उसीप्रकार वह समस्त सामंतोंसे सेवित था । समयानुसार क्रूरता और सौम्य गुणोंसे शोभायमान था एवं सूर्यके समान चमचमाती हुई प्रभाका धारक था ॥ ५ ॥ जिसप्रकार ब्रह्मलोकको उल्लंघनकर गंगानदीका प्रवाह बहता है एवं मोक्षको अतिक्रमण कर आकाश—अलोकाकाशकी विद्यमानता है उसीप्रकार उत्तम दानरूपी समुद्रसे निकली हुई पृथ्वीको आश्चर्यकर वह उदयको प्राप्त थी अर्थात् इच्छानुसार दान देनेके कारण वह संसारमें सबोंमें चढ़बढ़ कर था—राजा कृतवर्मासे बढ़कर उससमय कोई भी दानी नहीं था । वह राजा इतना सुंदर था कि देव और देवांगनायें उसे बड़ी आदरकी दृष्टि से देखते थे । उसका यश कुन्द पुष्प और चंद्रमाके समान उज्वल था और अत्यंत शोभायमान था ॥ ६—७ ॥

राजा कृतवर्माकी महाराणीका नाम जयश्यामा था जो कि चंद्रमाके समान मुखसे सोभायमान थी । चंद्रमाके समान कांतिकी धारक थी । साक्षात् चंद्रमाकी कला जान पड़ती थी । मिष्ट और मधुर बोलने वाली थी । राजहंसके समान मनोहर चाल चलने वाली थी । श्यमा थी एवं कानोंतक विशाल नेत्रोंकी धारक थी लोग जिस समय उसे देखते थे उस समय वे यही समझते थे कि यह साक्षात् कामदेवकी स्त्री रति है कि लक्ष्मी है कि पद्मावती देवी है वा चन्द्रमाकी स्त्री रोहिणी वा सूर्यकी स्त्री है ॥ ८ ॥ वह महाराणी जय श्यामा पीन स्थनोंसे शोभायमान थी उसका

कलेव कलभाषिणी । राजहंसगतिः श्यामास्वाकर्णायतलोचना ॥ ८ ॥ राजतेस्म महादेवी जयश्यामाऽभिधा रतिः । पद्मा पद्मवती रम्भा रोहिणी वा रविप्रिया ॥ ९ ॥ पूरमल्लेव रूपेण पीनवक्षोजराजिता । करग्राह्यकरी स्थूलनितंवपरिमंडला ॥ १० ॥ परस्परमतःप्रेम बद्धचित्तौ सुखं भृशं । रतिक्रीड़ासमुद्भूतं भोजयामासतुस्तदां ॥ ११ ॥ एकदा श्रीदमाहूय शक्र इत्यगदीद्वचः । त्रयोदशमतीर्थेशः कांपिल्येऽवतरिष्यति ॥ १२ ॥ अतस्त्वया विधातव्या शोभा श्रीपत्तनस्य च । गृहांगणे महावृष्टी रत्नानां जिनभक्तिनः ॥१३॥ जिनावतरणादर्वाक् षण्मासावधि श्रीधनेट् । वसुधारां पातयामास रंगराजिविराजितः ॥ १४ ॥ एकदा मृदुसत्तल्पे हंसतूलान्विते युते । पुष्पव्रातैः

कटिभाग अत्यन्त पतला मुष्टिग्राह्य था स्थूल नितंवोंसे युक्त थी एवं अत्यन्त रूपवती थी ॥ १० ॥ उन दिनों दंपतियोंमें वड़ा भारी आपसमें प्रेम था इसलिये वे रतिक्रीड़ासे जायमान सुखका वड़े आनन्दसे अनुभव करते थे ॥ ११ ॥

भगवान विमलनाथकी उत्पत्तिका समय निकट जान एक दिन इन्द्रने कुवेरको अपने पास बुलाया एवं यह कहा—तेरहवें तीर्थंकर भगवान विमलनाथ कपिला नगरीमें माता जयश्यामाके गर्भमें अवतरेंगे इसलिये तुम्हें कंपिला नगरीको हर एक प्रकारसे शोभायमान कर देना चाहिये एवं भगवान जिनेन्द्रमें प्रचण्ड भक्ति रखकर उनके महलके आगनमें रत्नोंकी वर्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥ बस इन्द्रकी आज्ञासे भगवान जिनेंद्रकी उत्पत्तिके छह मास पहिले ही कुवेरने नानाप्रकारके रत्नोंकी वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी ॥ १३ ॥

एक दिन नितंवरूपी तटोंसे शोभायमान, कठिन और पीन स्तनोंकी धारक वह माता जयश्यामा गर्भ ग्रहके अन्दर नानाप्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे व्याप्त एवं हंसोंकी पंखोंकी ऊलके समान अत्यंत कोमल शय्यापर सो रही थी कि अचानक ही उसे रात्रिके पिछले पहरमें सोलह स्वप्ने दीख पड़े जो कि भगवान जिनेन्द्र स्वरूप कल्याणके सूचन करनेवाले थे और महामनोहर थे, सवसे पहले स्वप्नमें उसने हाथी देखा जो कि पूर्ण चन्द्रमाके समान शुभ्र था। कुंभस्थलोंसे

पृथूरस्का सुप्ता गर्भगृहे मुदा ॥१५॥ षोडशप्रमितान् स्वप्नान् ददर्शेति घनस्तनी। कल्याणसूचकान् सौम्यान् नितंबतटशोभिनी ॥ १६॥ सिंधुरं पूर्णचंद्राभं लसत्कुंभतटं वृतं। मदच्युतं महाशैलकैलाशमिवोन्नतं ॥ १७ ॥ वृषभं प्रांशुलस्कंधं ह्रस्वग्रीवं मृगद्दृशं। चपलं तारकाभं च स्वल्पोन्नतविषाणकं ॥ १८ ॥ कंठीरवं महाशुभ्रं बलिनं भीविवर्जितं। लसंत सुंदराकारमूर्ध्वशुंडं ततं ध्रुवं ॥ १९ ॥ पद्मासनस्थितां पद्मां पद्महस्तां हसन्मुखीं। मुक्ताकलापसद्ग्रीवां रूपलोचनसौख्यदां ॥ २० ॥ पुष्पदाम्नी सुविन्यासे कुंदमंदारगर्भिते। पारिजातकसंताननमेरुकुसुमान्विते ॥ २१ ॥ चंद्रं पूर्णकलं ध्वांतं क्षिपतं किरणाकुलं। विकलंकं सुखायंतं तापघ्नं लोचनप्रियं ॥ २२ ॥

शोभायमान था। चौकोर सुन्दर था। झरता हुआ मद उसकी अपूर्व शोभा प्रगट कर रहा था एवं महा पर्वत कैलाशके समान ऊंचा था ॥ १४—१६ ॥ दूसरे स्वप्नमें बैल देखा जो कि उन्नत स्कन्धोंका धारक था। छोटी ग्रीवासे शोभायमान था। हिरणके समान विशाल नेत्रोंका धारक था। चंचल था। तारागणोंकी प्रभाके समान शुभ्र था एवं उठते हुये छोटे छोटे सींगोंसे शोभायमान था तीसरे स्वप्नमें सिंह देखा जो कि अत्यन्त सफेद था बलिष्ठ निर्भय और महामनोहर था सुन्दर आकारका धारक था उसकी सटायें ऊपर थीं एवं वह विस्तृत रूपसे खड़ा हुआ और निश्चल था ॥ १७—१८ ॥ चौथे स्वप्नमें लक्ष्मी देखी जो कि पद्मासनरूपसे विद्यमान थी। उसके हाथमें कमल शोभायमान था। प्रसन्न मुखकी वह धारक थी उसका वक्षस्थल मोतियोंके हारसे जगमगाता था एवं अपने मनोज्ञ रूपसे वह नेत्रोंको आनन्द प्रदान करने वाली थी ॥ १९ ॥ पांचवें स्वप्नमें दो मालायें देखीं जो बड़ी मनोहरतासे गुथी हुईं थी। उनके बीचभागमें कुन्द और मन्दार जातिके पुष्प गुथे हुए थे एवं पारिजात संतान और नमेरू जातिके कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे वह बनी हुई थी ॥ २० ॥ छठें स्वप्नमें चंद्रमा देखा जो कि समस्त कलाओंका धारक था अंधकारका नाश करने वाला था। किरणोंके समूहसे व्याप्त था कलंक रहित था मुखके समान सुन्दर था संतापका नाशकर शीतल प्रदान करने वाला था और नेत्रोंको अत्यंत प्यारा था ॥ २१ ॥ सातवें स्वप्नमें चमचमता हुआ सूर्य देखा जो कि अंधकारकी जड़से दूर करनेवाला

मार्तंडं तर्जितध्वांतं लोहिताभं प्रतापिनं । मार्गामार्गं दिशंतं वा सद्गुरुं ज्ञानलोचनं ॥ २३ ॥ रमल्लसन्मनोहारि तिमियुग्मं तथाद्दि च । पंकजाच्छादितं पूर्णं पानीयैर्घटयुग्मकं ॥ २४ ॥ तड़ागं जलगंभीरं फुल्लतामरसांचितं । लोलकल्लोलमालाभिर्गर्जंतं जलधिं परं ॥ २५ ॥ रत्नस्वर्णात्मकं चित्रं विष्टरं दैवतं पुनः । व्योमयानं क्वणंतं वै किंकिणीभिः समुद्रवत् ॥ २६ ॥ नागलोकं महादीप्तं भृतां नागकुमारकैः । रत्नपुंजं ज्वलंतं च निर्धूमं ज्वलनं ततः ॥ २७ ॥ ददर्शैतान् महास्वप्नान् प्रांते रात्री मुखे गजं । विशंतं पर्वतोत्तुंगं यामे पाश्चात्यके

था । जलती हुई अग्निकी ज्वालाके समान ललाईका धारक था । एवं जिसप्रकार ज्ञानरूपी लोचन के धारक उत्तम गुरु यह उत्तम मार्ग है और यह कुमार्ग है इसप्रकारका उपदेश देनेवाले होते हैं उसीप्रकार वह सूर्य भी अच्छे और बुरे मार्गका बताने वाला था अर्थात् सूर्यके उदयकालमें ही यह ज्ञान होता है कि यह मार्ग जाने योग्य है और यह मार्ग नहीं जाने योग्य है । अंधकारमें अच्छे बुरे मार्गका ज्ञान नहीं होता । इसलिये अज्ञानतासे खड्डेमें भी गिर जाना पड़ता है ॥ २३ ॥ आठवें स्वप्नमें माताने मीनोंका युगल देखा जो कि जलमें किलोल करने वाला था सुंदर था और अपनी चाल ढालसे मनको हरण करता था नवमें स्वप्नमें सुवर्णमयी दो घड़े देखे जिनके मुख कमलोंसे ढके हुए थे और वे जलसे भरे हुए थे ॥२४॥ दशवें स्वप्नमें एक महामनोहर तालाब देखा जो कि जलसे लवालव भरा था एवं फूले हुये कमलोंसे व्याप्त था । ग्यारहवें स्वप्नमें एक विस्तीर्ण समुद्र देखा जो कि चंचल तरंगोंकी मालाओंसे गर्जता था । बारहवें स्वप्नमें एक महा मनोज्ञ सिंहासन देखा जो कि रत्न और सुवर्णोंसे रचा हुआ था और देवमयी था । तेरहवें स्वप्नमें विमान देखा जो कि छोटी छोटी घंटरियोंसे शब्दायमान था एवं शब्द करने और विस्तीर्णतामें समुद्रकी उपमा धारण करता था ॥ २५—२६ ॥ चौदहवें स्वप्नमें नाग कुमारोंका भवन देखा जो कि अत्यंत देदीप्यमान था एवं नाग कुमार जातिके देवोंसे व्याप्त था । पंद्रहवें स्वप्नमें रत्नोंकी राशि देखी जो कि अत्यंत देदीप्यमान थी । एवं सोलहवें स्वप्नमें जलती हुई निर्धूम अग्नि देखी ॥ २७ ॥ रात्रिके शुभ पश्चिम भागमें जिससमय माता जय श्यामा सोलह स्वप्न

शुभे ॥ २८ ॥ जगरामास सद्ध्यानलीना ललितलक्षणा । उत्थिता तल्पतो नूनं स्नात्वा सामायिकं व्यधात् ॥ २९ ॥ प्रातर्वादित्रनिर्घोषै वंदिनां शुभसूचनैः । रंजिता गतवती भर्तुः समीपे प्रश्नहेतवे ॥ ३० ॥ शृंगारितलसद्देहा स्थूलपीनपयोधरा । नम्रांगी तप्तस्वर्णाभा पपातांघ्र्योः पतेर्ध्रुवं ॥ ३१ ॥ तां चकोरदृशं दृष्ट्वा जगादेति विशांपतिः । प्रेमाकृतो महादेवि ! यदत्र त्वं समागता ॥ ३२ ॥ इत्यु क्त्वावामके भागे स्थापयामास सादरात् । स्वकरेण समादाय जयश्यामां च कोविदां ॥ ३३ ॥ सापि भर्तुः परं मानं लब्ध्वा सुप्र-

देख चुकी उस समय सबसे अंतमें अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ हाथी देखा जो कि सफेद रंगका था और पर्वतके समान उन्नत था ॥ २८ ॥ समीचीन ध्यानमें लीन एवं सुन्दर लक्षणोंकी धारण करने वाली वह माता जग गई । शीघ्र ही उसने शैय्या छोड़ दी एवं स्नानकर सामायिक करने बैठ गई । महाराज और महाराणीके जगानेके लिये प्रातःकालमें महा मनोहर वाजोंके शब्द होते हैं एवं बंदीगण विरुद बखानते हैं। महाराणीके जगते समय भी उत्तमोत्तम वाजोंके शब्द होने लगे एवं बंदीगण विरुद बखानने लगे इसलिये वह माता अत्यंत प्रसन्न थी । सामायिकके अंतमें वह माता उठी और अपने स्वप्नोंका फल पूछनेके लिये प्रसन्नचित्त हो अपने स्वामीके पास चल दी ॥ २९—३० ॥ जिससमय माता जयश्यामा राजा कृतवर्माके पास चली उससमय उसका सारा शरीर अनेक प्रकारके शृगारोंसे देदीप्यमान था उसके कठिन और पीन दोनों स्तन विचित्र शोभा बढ़ा रहे थे । उसके शरीरसे तपे हुये सुवर्णकी कांति फूट रही थी एवं उसका अंग नम्रीभूत था बस सभामें पहुंचते ही वह अपने स्वामीके चरण कमलोंमें जाकर गिर गई । अपनी महाराणी को इसप्रकार पूर्ण विनययुक्त देखकर राजा कृतवर्माको बड़ा आनंद हुआ एवं हर्षसे गद्गद हो वह इसप्रकार अपना स्नेह व्यक्त करने लगा :—

हे महादेवि ! आप जो यहांपर पधारी हैं उससे मैं अत्यंत आभारी हूं बस ऐसा कहकर आधा सिंहासन छोड़ दिया एवं अपने हाथसे माता जयश्यामाका हाथ पकड़कर उसे अपनी बाईं और बड़े आदरसे बैठा लिया ॥३१—३३॥ माता जयश्यामा भी अपने स्वामी राजा कृतवर्मासे

लिता सती। स्त्रीणां स्नेह विकासाय भर्तुर्मान्यं भवेदिति ॥ ३४ ॥ व्यक्तीकृत्य परं प्रेम जगाद निजस्वामिनं । हे नाथ पश्चिमे यामे स्वप्ना दृष्टास्तु षोडश ॥ ३५ ॥ गजादिज्वलनातान् प्रोक्त्वा प्रोवाच सद्गिरं । एतेषां किं फलं स्वामिन् ? वदत्वं करुणालय।।३६॥ तां जगाद नराधीशः श्रृणु त्वं तत्फलं मुदा। अंभोजलोचनेबाले नितंबभरमंथिरे ॥ ३७ ॥ दृष्टो गजो यतः शुभ्रस्तव पुत्रो भविष्यति। कुलानंदकरो गौश्च सर्वभारधुरंधरः ॥ ३८ ॥ सिंहदर्शनतो नूनं विक्रमी च त्रिलोकजित्। रमादर्शनतो देवि त्रैलोक्यरमयाश्रितः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार सन्मान पाकर बड़ी खुश हुई और आनन्दका अनुभव करने लगी। बात भी ठीक है अपने स्वामी द्वारा किया गया सन्मान ही स्त्रियोंके लिये विशेष आनन्दका कारण होता है ॥३४॥ कुछ समय तक आनंदानुभवनके बाद महारानी जयश्यामाने उत्कट स्नेह व्यक्तकर इसप्रकार अपने स्वामीसे कहा :—

प्राणनाथ! रात्रिके पश्चिम भागमें मैंने सोलह स्वप्न देखे हैं एवं पहिले स्वप्न हाथीसे लेकर अंतिम स्वप्न अग्निपर्यंत समस्त स्वप्न कह भी सुनाये एवं यह प्रार्थनाकी कि इन स्वप्नोंका फल क्या होना चाहिये? हे कृपाके सागर स्वामी आप कृपाकर कहें ॥ ३५—३६ ॥ रानी जयश्यामाके सोलह स्वप्नोंको सुनकर महाराज कृतवर्मा बड़े प्रसन्न हुए और वे यह कहने लगे—हे कमल नयनी और नितंबोंके भारसे मंद चालसे चलनेवाली प्रिये! मैं अनुक्रमसे स्वप्नोंका फल कहता हूं तुम आनंदपूर्वक सुनो—तुमने जो स्वप्नमें हाथी देखा है उसका फल यह है कि समस्त कुटुंबको आनंद प्रदान करनेवाला तुम्हारे पुत्र होगा। बैल जो देखा है उसका फल यह है कि वह समस्त भारको धारण करनेवाला होगा। स्वप्नमें सिंहके देखनेका यह फल है कि वह सिंहके समान पराक्रमी और तीनों लोकोंका विजय करनेवाला होगा। लक्ष्मीके देखनेका यह फल है कि वह तीनों लोककी लक्ष्मीका स्वामी होगा। पुष्पमालायें जो दो देखी हैं उनका फल यह है कि वह पुत्र शुक्ल लेश्याका धारक अत्यंत कोमल चित्तवाला होगा। चंद्रमाके देखनेका फल

पुष्पदामविलोकाच्च शुक्लेश्यो मृदुत्वतः। चंद्रान्वेषणतः कांते शांतः परमतत्त्ववित् ॥ ४० ॥ नभोमणिसमालोकात्प्रतापाक्रांत विष्टपः। मीनदर्शनतः प्राज्यराज्यभागी सुरार्चितः ॥ ४१ ॥ द्विघटालोकतो मेरौ स्नानं लप्स्यति शक्रतः। तडाग.दर्शनाद्गामे सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ४२ ॥ समुद्रालोकतो धीरध्वानो गंभीरशासनः। अगाधो भोगिदेवानामवाङ्मानसगोचरः ॥ ४३ ॥ सिंहासनसमालोकाद्भूलोकेषु समर्हितः। विमानदर्शनात्स्वर्गादागामिष्यति हे प्रिये ॥ ४४ ॥ फणीन्द्रसदनालोकान्नागलोक समर्हितः। रत्नपुंजसम-

यह है कि वह चंद्रमाके समान लोगोंको आनंद प्रदान करनेवाली शांतिका धारक होगा और परमतत्त्वका जानकार होगा। सूर्यके देखनेका फल यह है कि वह पुत्र अपने प्रतापसे समस्तलोक को वश करेगा। मछलियोंके देखनेसे वह उत्तम राज्यका भोगनेवाला होगा और देवगण उसकी पूजा करेंगे। दो घड़ोंको जो स्वप्नमें देखा है उसका फल यह है कि उसपुत्रका अभिषेक स्वयं इन्द्र मेरु पर्वतपर करेगा। तालाबके देखनेका यह फल है कि वह समस्त शुभलक्षणोंसे शोभायमान होगा समुद्रके देखनेसे वह पुत्र दिव्य ध्वनिका स्वामी होगा। उसकी आज्ञा गंभीर होगी योगी होगा और देवगण उसके गुणोंका पता न पा सकेंगे एवं उसका चिदानंदस्वरूप वचन और मनके अगोचर होगा अर्थात् न वचनसे कहा जायगा और न मनसे विचारा जा सकेगा। स्वप्नमें जो सिंहासन देखा है उसका फल यह है भूलोकमें सब लोग उसकी पूजा करेंगे। विमान देखनेका यह फल है कि वह स्वर्गसे चयकर तुम्हारे गर्भमें आवेगा। नागकुमारोंका जो भवन देखा है उसका फल यह है कि समस्त नाग कुमारगण उसकी पूजा करेंगे। रत्नोंका पुंज देखनेसे वह करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे भी अधिक प्रभाका धारक होगा एवं स्वप्नमें जो सूर्य देखनेमें आया है उसका फल यह है कि वह तुम्हारा पुत्र समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला होगा। चिदानंद चैतन्यस्वरूप होगा मोक्षलक्ष्मीका स्वामी होगा एवं अत्यंत बुद्धिमान होगा अपने स्वामी राजा कृतवर्मासे इसप्रकार स्वप्नों का फल सुनकर माता जयश्यामाका हृदय आनंदसे उछलने लगा। एवं उस समय पुत्रकी उत्पत्ति

न्वेषात्कोटिसूर्याधिकप्रभः ॥ ४५ ॥ विभावसुसमालोकात्कर्मध्वंसी च चिन्मयः । मुक्तिसामाज्यो राज्ञि ! भविता ते, सुतः सुधीः ॥ ॥ ४६ ॥ एवं श्रुत्वा महादेवी हृदयानंद माय सा । तुजं लब्ध्वेव सन्माना त्सानंदा संययौ गृहं ॥ ४७ ॥ ज्येष्टे कृष्णदशम्यां च। ऋक्षे भाद्रपदे ध्रुवं । उत्तरादिभके स्वर्गात्सहस्रारेंद्र नामभाक् ॥ ४८ ॥ च्युत्वावतरितो गर्भे राज्ञ्या देवो विरोचिते । देवाश्चतुर्णिकायाश्च ज्ञात्वा स्यासनकंपनात् ॥ ४९ ॥ गर्भायानं सुराधीशं गर्भ कल्याण मा दिशं । चक्रुरानंदतः सर्वे सोत्सवाः संययुः पदं ॥ ५० ॥ षट्पञ्चाशत्कुमार्यश्च सेवते शक शासनात् । जिनांवां जगदानंद दायिनी वै यथा यथं ॥ ५१ ॥ काचित् शृंगारयामास पट्टकूलादि वस्तु-

के समाचार सुनते ही उसे यह जान पड़ने लगा मानो साक्षात् पुत्र ही प्राप्त होगया है। वह बड़े आदरसे अपने मंदिरमें आ गई एवं अत्यंत आनन्दका अनुभव करने लगी ॥ ३७—४७ ॥

कदाचित् जेठ कृष्णा दशमीके दिन जब कि उत्तर भाद्रपद नामका शुभ नक्षत्र विद्यमान था वह सहस्रारेंद्र नामका देव अपने निवासस्थान स्वर्गसे चला एवं देवांगनाओं द्वारा भलेप्रकार संशोधित माता जयश्यामाके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया। वह सहस्रारेंद्र भगवान विमलनाथका जीव था इसलिये उसके गर्भमें आते ही चारों प्रकारके देवोंके आसन कंपायमान हो गये जिससे उन्हें मालूम होगया कि भगवान विमलनाथ माता जयश्यामाके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गये हैं इसलिये वे सानंद उनके गर्भकल्याणकका उत्सव मनानेके लिये चल दिये एवं आनंदपूर्वक उत्सव मनाकर अपने अपने स्थान लौट गये ॥ ४८—५० ॥ सौधर्म इन्द्रकी आज्ञासे छप्पन कुमारियां तीनों लोकके जीवोंको आनन्द प्रदान करनेवाली माता जयश्यामाकी यथावसर भक्तिपूर्वक सेवा करने लगीं ॥ ५१ ॥ उनमें कोई कोई कुमारी नाना प्रकारके वस्त्र आदि पदार्थोंसे माताका शृंगार करने लगीं। कोई कोई कुमारी स्नान विलेपन आदिसे माताके शरीरको सुगंधित करने लगीं। कोई कोई प्रतिसमय माताके पैर दवाने लगीं। कोई माताको हिंडोलेमें बैठाकर झुलाने लगीं। कोई नाना प्रकारके व्यंजनोंसे व्याप्त एवं रूप और लावण्यका बढ़ाने वाला महा स्वादिष्ट

स्ते ग्रम्निकेब भाः । रवे रम्भा च दाक्षिण्यरूपलावण्यतोयधिः ॥ २६ ॥ पीवरस्तनभारेण दरनम्रा कृशोदरी । स्थूलगौरनितम्बेन मन्थरा
मृगलोचना ॥ २७ ॥ (युग्मं) तयोर्भुं जानयोः सौख्यं पुलोमापुरहूतयोः । इवाभूतां सुतौ रम्यौ कामाभौ कमलेक्षणौ ॥ २८ ॥ संज
यं ताभिध: सर्वलक्षणांकितविग्रहः । जयन्ताख्योऽपरः ख्यातः शुक्रो वाङ्मी च ताविव ॥ २९ ॥ एधेतां प्रत्यहं बालचन्द्रवद्दं दितान्वयौ
बालत्वेऽभ्यस्तविद्यौ तौ बाहुनारोपती ततः ॥ ३० ॥ पुत्राभ्यां सहितो राजा वैजयंतोऽतिदुर्जयः । भुनक्तिस्माधिपत्यं च प्रतापोष्ण

सरीखी जान पड़ती थी। एवं वह चतुरता रूप और लावण्यकी समुद्रस्वरूप थी। वह स्थूल स्तनोंके भारसे आगेको कुछ झुकी हुई थी, कृशोदरी थी। स्थूल और भारी नितम्बोंके कारण धीरे २ चलने वाली थी एवं हरिणीके समान चंचल नेत्रोंसे शोभायमान थी। इन्द्र और इंद्राणीके समान इच्छानुसार सुख भोगनेवाले राजा वैजयन्त और रानी सर्वश्रीके दो पुत्र हुए जो कि अत्यन्त मनोहर थे कामदेवके समान सुन्दर थे। कमलके समान विशाल नेत्रोंके धारक थे ॥ २५—२८ ॥ प्रथम पुत्र का नाम संजयत था जो कि समस्त उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त शरीरका धारक था तथा दूसरा पुत्र जयंत था जो कि अपने गुणोंसे समस्त पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध था। दोनों ही पुत्र विद्वत्तामें शुक्र और बृहस्पतिकी शोभा धारण करते थे। वे दोनों कुमार बाल चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढते रहते थे। बाल अवस्थामें ही उन्होंने समस्त विद्याओंका अभ्यास कर लिया था एवं वे शस्त्र विद्या-रूपी स्त्रीके पति थे—पूर्ण शस्त्र कलाके जानकार थे ॥ २९—३०॥ प्रतापी दोनों पुत्रोंके साथ राजा वैजयंत दुर्जय शत्रुओंका अगम्य था। एवं प्रतापी सूर्यके समान देदीप्यमान प्रभाका धारक वह अपने राज्यका पूर्णरूपसे भोग करता था ॥ ३१ ॥

वीतशोक नगरके समीपमें एक अशोक नामका विशाल उद्यान था जो कि भांति २ के वृक्षों से व्याप्त था। अनेक देवोंके साथ जहां तहां विहार कर भगवान् विमलनाथ उस उद्यानमें आकर

करप्रभः ॥ ३१ ॥ अथैकदा समायातस्तत्पुरस्य वने जिनः अशोकाख्ये द्रुमाकीर्णे स्वयमूर्निर्जरावृत ॥ ३२ ॥ बन्दितुं जग्मतुस्तं तौ सोदरौ सोदराविव । महाभूत्या गजारूढौ छत्रछन्नार्कदीधिती ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा स्वयंभुवं दूरादुत्तीर्य गजाग्रतः । गत्वा भक्त्या परीत्याशु नत्वा स्तुत्वा च तस्थतुः ॥ ३४ ॥ जिनोक्तं दशधा धर्मं संसारानित्यतां च तौ । श्रुत्वा वैराग्यमापन्नौ कौशलं हि सतामिति ॥ ३५ ॥ वैजयंतोऽवनीनाथो दृष्ट्वा पुत्रविरक्तता । ततकं मनसि स्वीये मोहशैथिल्यतो महान् ॥ ३६ ॥ युवानोऽपि तपस्यंति ते धन्या

विराज गये । कुमार संजयत और जयंतको भगवान जिनेंद्रके आनेका समाचार मिल गया । शीघ्र ही लक्ष्मीके समुद्र स्वरूप वे दोनों भाई हाथियोंपर सवार हो गये और बड़े ठाट वाटके साथ भगवान जिनेंद्रकी वंदनाके लिये चल दिये । दोनों कुमारोंके ऊपर छत्र ढुलते जाते थे जो कि अपनी उग्र दीप्तिसे सूर्यकी दीप्तिको दवानेवाले थे ॥ ३२—३३ ॥ भगवान स्वयम्भूको दूरसे ही देखकर वे दोनों राजकुमार हाथीसे उतर गये । पासमें जाकर भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दीं । नमस्कार किया। मनोहर गद्य पद्योंमें स्तुति की और अपने योग्य स्थानपर जाकर वैठ गये ॥ ३४ ॥ भगवान जिनेंद्र उस समय उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंका स्वरूप निरूपण कर रहे थे और संसारकी अनित्यताका उपदेश दे रहे थे जिसे सुनकर सञ्जयन्त और जयंत दोनो ही संसारसे विरक्त हो गये ठीक ही है सज्जनोंकी कुशलता यही कहलाती है। राजा वैजयंतने जव अपने पुत्रोंको संसारसे विरक्त देखा तो उसका भी मोह संसारमें शिथिल पड़ गया और वह अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगा—

युवा होकर भी जो विषय भोगोंसे विरक्त हो तप आचरण करते हैं संसारमें वे ही धन्य है । मुझ सरीखे पापियोंके लिये धिक्कार है जो कि अपनी वृद्ध अवस्थाको युवावस्था मान रहे हैं अर्थात् यह अवस्था धर्म साधनकी है उसे भोग विलासोंमें विता रहे हैं। इन्द्रके पुत्रके समान और का-

…तलेऽखिले । मादृक्षाणां महार्घानां वृद्धत्वं तरुणायते ॥ ३८ ॥ तिष्ठेयं किमहं राज्ये जराक्रांतो विषण्णधीः । दीक्षेते चेत्कुमारौ द्व…
…मौ वा शक्रनंदनौ ॥ ३७ ॥ एवमादि चिरं चिंत्य जज्ञे निर्वेदमानसः । संजयंतस्य पुत्राय वैजयंताय धीमते ॥ ३९ ॥ दत्त्वा राज्यं
…मायातं पुत्राभ्यां सहितो नृपः । दिदीक्षे सकलं संगं त्यक्त्वा मगधनायक ! ॥ ४० ॥ वैजयंताख्ययोगींद्रः सप्तमे निःप्रमादवान् ।
क्रियाकांडं भृशं शुद्धिं कर्तुं प्रोद्यमवान्भूत ॥ ४१ ॥ द्वादशे चाकषायाख्ये क्षीणाशेषकषायकः । तीर्थंकरत्वमापासौ वैजयंतस्तपो…
…लात् ॥ ४२ ॥ तदानीमेव देवेंद्राः कर्तुं तत्केवलोत्सवं । समायाता जयध्वानवादिनः परमभक्तिकाः ॥ ४३ ॥ तत्क्षणे तौ गुणाम्बोधी

…मके समान सुन्दर ये दोनों कुमार तो दिगंबरी दीक्षा धारण करें और मैं वृद्धावस्थामें भी राज्यके फासे में फसा रहूं मुझसे बढकर संसारमें कोई मूर्ख नहीं । बस इस प्रकार बहुत देरतक अपने मनमें विचार कर राजा वैजयंतका चित्त संसारसे विरक्त हो गया । कुल परम्परासे प्राप्त राज्यको राजा वैजयन्तने अपने पोते कुमार संजयन्तके पुत्र वैजयन्तको प्रदान कर दिया और वह समस्त परिग्रह का सर्वथा त्यागकर दोनों पुत्रोंके साथ शीघ्र ही दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥३५—४०॥ मुनिराज वैजयन्तने अप्रमत्त नामक सातवें गुण स्थानमें प्राप्त होकर समस्त प्रमादोंका सर्वथा नाश कर दिया एवं अपने चारित्रकी शुद्धिका वे विशेष रूपसे प्रयत्न करने लगे । क्षीण कषाय नामक बारहवें गुणस्थानमें उन्होंने समस्त कषायोंका सर्वथा नाश कर दिया । विशिष्ट तपके बलसे उन्होंने तीर्थंकर गोत्रका बंध कर लिया और उन्हें अन्तमुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त हो गया । मुनिराज वैजयन्तको केवल ज्ञानकी प्राप्तिका ज्ञान होते ही उनके केवलज्ञानका उत्सव मनानेके लिये शीघ्र ही इन्द्र आ गये । उस समय समस्त इन्द्रोंके मुखोंसे जय जयकार शब्द निकलता था और सबके सब प्रबलभक्तिके स्रोतमें मग्न थे ॥ ४१—४३ ॥ गुणोंके समुद्र परम तपस्वी प्रबलकांतिके धारक वस्तु स्वरूपके जानकार क्षमारूपी भूषणसे शोभायमान एवं शास्त्ररूपी समुद्रके पारगामी उन संज

तपोभारभगौ मुनी । संजयंत जयंताख्यौ श्रुत्वा तातस्य केवलं ॥ ४४॥ वन्दितुं भूरितेजस्की तत्वज्ञौ शांतिभूषणौ । समायातौ स्तुवंतौ तौ श्रु तांबोधितरौ परौ । ४५ ॥ धरणेंद्रस्तदायासीदुत्सवार्थं जिनस्य च । द्विसप्तकोटिभिर्देवै रावृतः कमताव्धि ॥ ४६ ॥ जयंताख्यो मु नस्तत दृष्ट्वा रूपं धरापतेः । विह्वलांगो वभूवाशु भोगोदयविधेर्वशात् ॥ ४७ ॥ तपो घोरतरं तप्त्वा साशङ्कं दरिकादिषु । सोऽकार्षोन्नितरां प्रान्ते निदानमिति शल्यवत् ॥ ४८ ॥ फलं चेत्तपसो मेऽस्त चिरं तप्तस्य सादरात् । भूयान्मे नागनाथत्व मावश्यक महोदयं ॥ ४६ ॥ मृत्वा निदानतो जज्ञे धरणेंद्रः शुभाशयः । महर्द्धिः फणिमङ्गोभारकिरीटः पुष्पदन्तभः ॥ ५० ॥ तपसोग्रेण दुःप्राप्यं

यंतओर जयंत नामके मुनियोंने भी अपने पिताको केवलज्ञान हुआ सुना इसलिये वे भी तत्काल मुनिराज वैजयन्तकी वन्दनाके लिये आ गये। चौदह करोड़ देवोंसे व्याप्त अतिशय मनोहर शरीरका धारक धरणेंद्र भी जिनराज वैजयंतके केवलज्ञान उत्सवमें शामिल हुआ था। धरणेंद्रके मनोहर रूपको देखकर मुनिराज जयंत एकदम निर्बुद्धि हो गये। मोहनीय कर्मके तीव्र उदयसे उनकी स्त्री आदिमें लालसा फटकने लगी इसलिये तीव्र तपके तपनेके वाद यह उन्होंने निदान नामकी शल्य बांध ली—

'चिरकाल पर्यंत तपे गये तपका यदि आदरपूर्वक मुझे फल प्राप्त हो तो मैं महान अभ्युदयका स्वामी धरणेंद्र वनूं' वस आयुके अन्तमें मरकर वे महान ऋद्धिके स्वामी और शुभ चित्तके धारक धरणेंद्र हुए। उनका मुकुट नागके भारसे शोभायमान था और सूर्य चन्द्रमाके समान उनकी अद्वितीय प्रभा थी ॥ ४४—५० ॥ ग्रन्थकार निदान शल्यकी निंदा करते हुए कहते हैं कि जब उग्र तपके प्रभावसे मोक्ष तक प्राप्त हो जाती है तब उससे धरणेंद्र पदका मिलना कठिन नहीं क्योंकि यह संसार प्रसिद्ध वात है कि बहुमूल्यकी वस्तुसे थोड़े मूल्यकी वस्तुका मिलना कठिन नहीं है। उग्रतपका तपना वहुमूल्य वस्तु है और धरणेंद्र पदकी प्राप्ति थोड़े मूल्यकी वस्तु है। इसलिये मुनिराज जयन्तका उस प्रकारका निदान एक निंदित निदान था।

धरणत्वं कदापि न । अत्यल्पं बहुमूल्येन सौख्यं विद्यते ननु ॥ ५१ ॥ अथासौ संजयंताख्यो योगींद्रो व्यवहरद्भुवि । तपस्यन् भूधरप्रस्थे ऽभिसूर्यं ब्रह्म संजपन् ॥ ५२ ॥ त्रिधासङ्गादिनिर्मुक्तो निश्चलो मेरुवत्परः । निःक्रियो ध्यानसंरुद्धचेताः परमतत्त्ववित् ॥ ५३ ॥ तत्त्वे ह्यवगते नूनं संसृतिः कियती यते । क्षैणिकध्यानलेशेन वज्रवत्कर्मभूधरः ॥ ५४ ॥ अन्येद्युः पर्वतारूढो ध्यानास्तिमितलोचनः । ब्रह्मण्या त्मानमायोज्य स्थितो यावन्महीं मुनिः । ५५ । मनोहरपुराभ्यर्णे भीमारण्यांतरे यतिं । प्रतिमायोगसंलीनं ध्यायंतं परमं महः ॥ ५६ ॥ विद्युद्दंष्ट्रः खगो दृष्ट्वा तं मार्गं वेगतो व्रजन् । पूर्ववैरानुसंबन्धाज्जातिस्मरणवानभूत् ॥ ५७ ॥ महाक्रोधेन दुष्टात्मा ताडयामास प्रस्तरैः । मुष्टिभिर्लकुटैर्घातैस्तं मुनिं ब्रह्मचिंतिनं ॥ ५८ ॥ समुद्धृत्य मुनिं वैरान्नीत्वाकाशे जिघांसया । यायौ विद्यावलेनाशु खगस्तं

मुनिराज जयन्तके धरणेंद्र हो जानेके वाद वे योगिराज संजयंत पृथ्वीमण्डल पर विहार करने लगे । सूर्यकी ओर मुखकर परमात्माके स्वरूपका ध्यान करते हुए पर्वतोंकी शिलाओंपर स्थिर हो कर घोर तप तपने लगे ॥ ५१—५२ ॥ वे मुनिराज संजयंत चेतन अचेतन एवं चेतनाचेतन तीनों प्रकारकी परिग्रहसे रहित थे जिस समय वे ध्यानारूढ निश्चल होते थे उस समय वे निश्चल मेरु पर्वतके समान जान पड़ते थे । समस्त प्रकारकी वाह्य क्रियाओंसे रहित थे। वे सदा परमात्माका ध्यान करते रहते थे इसलिये उनके चित्तकी वृत्ति रुकी रहती थी और वे पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपके पूर्ण जानकार थे । यह निश्चय है कि जहांपर वस्तुके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो जाता है वहां पर विशेष संसारमें नहीं रुलना पड़ता किंतु जिस प्रकार वज्रसे विशाल भी पर्वत चूर चूर हो जाता है उसीप्रकार शुक्ल ध्यानके द्वारा वलवान भी कर्मरूपी पर्वत खण्ड २ हो जाता है ॥५३-५४॥

एक दिनकी वात है कि वे मुनिराज संजयंत पर्वतके अग्र भागपर विराजमान थे । ध्यानकी कृपासे उनके दोनों नेत्र निश्चल थे,चित्तमें परमात्माका चिंतवन कर रहे थे । मनोहर पुरके उद्यान में एक भीमारण्य नामका वन था उसमें प्रतिमा योगसे वे ध्यानारूढ थे उसी समय एक विद्यु-

मेरुनिभृतं ॥ ५९ ॥ अथ जम्बूमति द्वीपे भारते क्षेत्रमुत्तमं । विद्याधराचलस्तत्र राजते राजतोपमः ॥ ६० ॥ तस्य पूर्वदिशायां च सरित्पंचसमागमः । आद्या कुसुमवत्याख्या हरिवत्यभिधाऽपरा ॥ ६१ ॥ सुवर्णगजवत्यौ च चन्द्रवेगा च पञ्चमो । न्यक्षिपत्संगमे तासामगाधे सलिले खलः ॥ ६२ ॥ क्षिप्त्वायं पुरमध्ये स समायातोऽपकारकः । पटहेन खगान् सर्वान् पिण्डीकृत्य जगाविति ॥ ६३ ॥ अयं पापी महाकायो दानको मानवाशनः । सर्वान् विद्याधरानस्मान् पृथक्कृत्यात्तु मास्थितः ॥ ६४॥ बाणखड्गादिशस्त्रौघैनिष्कृपं सर्वभक्षणं ।

दंष्ट्र नामका विद्याधर विमानमें बैठकर उनके ऊपरसे निकला। मुनिराज संजयन्तके साथ उसका पूर्व भवका वैर था इसलिये पूर्व भवके वैरके सम्बन्धसे उसे शीघ्र ही जाति स्मरण हो गया। पूर्व भवके बैरसे मारे क्रोधके वह भवल गया एवं परम ध्यानी उन मुनिराजको वह पत्थर मुक्क लाठी और धक्कोंसे मारने लगा। मेरु पर्वतके समान निश्चल उन मुनिराजको मारनेकी इच्छासे दुष्ट विद्याधरने अपने विद्यावलसे आकाशमें उठा लिया और शीघ्र ही लेकर चल दिया।

इसी जंबू द्विपके भरत क्षेत्रमें एक विजयार्घ नामका विद्याधर पर्वत है जो कि चांदीके समान सफेद वर्णका है। विजयार्ध पर्वतकी पूर्व दिशामें कुसुमवती, हरिवती, सुवर्णवती, गजवती और चंद्रवेगा नामकी पांच नदियोंका समागम है। दुष्ट विद्याधरने उन्हीं पांचों नदियोंके समागमके आगाथ जलमें परम पवित्र मुनिराज संजयंतको लेजाकर पटक दिया। वह निर्दयी मुनिराजको पटक कर अपने नगरमें आ गया। भेरी बजाकर समस्त विद्याधरोंको इकट्ठाकर लिया और उनसे इसप्रकार कहने लगा—

विशाल शरीरका धारक मनुष्योंका खानेवाला राक्षस यह महा पापी है। हम सव विद्याधरोंको एक एक कर खानेके लिये यहां पर स्थित है। निर्दयी सर्व भक्षी और हम सबोंको खानेकी अभिलाषा रखनेवाले इस दुष्टको बाण खड्ग आदि शस्त्रोंसे हम सबोंको मिलकर मार डालना चा-

वयं सर्वेऽपि संभूय हनामोऽखिलघातिनं ॥ ६५ ॥ माकुरुतास्य विश्वासं मन्यध्वं मद्वचो ध्रुवं । अयं रात्रौ स्त्रियो वालान् पशून् वा भक्षयिष्यति ॥६६॥ तस्मात्सद्वचनं यूयं प्रतीत किमहं वृथा । मृषा भाषे किमेतेन वैरमस्त्यत्र मे पृथक् ॥ ६७ ॥ इति विद्याधराः सर्वे मुग्धास्तेन प्रतारिताः । सायुधा निर्ययुस्तूर्णं मृत्युभीत्रस्तमानसाः ॥ ६८ ॥ गत्वा ते शस्त्रघातैस्त युगपज्जघ्नुरादरात् । दृषद्दण्डकराघातैर्गगलान्मुनिपुङ्गवं ॥ ६९ ॥ रोहिणीभचतुर्दश्या चतुर्दशमिते ध्रुवं । गुणस्योद्भावभावायां श्रितायां भुवनेश्वरैः ॥ ७० ॥ शमाल

हिये । इसका तुम रञ्चमात्र भी विश्वास मत करो मैं जो कहूं उसे ठीक समझो तुम निश्चय समझो रात्रिमें यह स्त्री बालक और पशुओंको नियमसे खा लेगा । मेरे हितकारी वचनों पर तुम सब लोगोंको पूर्ण विश्वास करना चाहिये मैं मिथ्या नहीं बोल सकता क्योंकि इसके साथ मेरा कोई खास बैर नहीं है ॥५५-६७॥ दुष्ट विद्युदंष्ट्रके वचनोंका मूर्ख विद्याधरों पर प्रभाव पड़ गया मृत्युके भयसे जिनका चित्त चल विचल है ऐसे वे समस्त विद्याधर अपने २ शस्त्रोंको लेकर शीघ्र नगरसे निकल दिये । वे दुष्ट पास जाकर मुनिराज संजयन्तको एक साथ बड़े उत्साहसे नीचेसे ऊपर तक पत्थर लाठी मुक्के और अनेक शास्त्रोंसे एक साथ मारने लगे ॥ ६८—६९ ॥ रोहिणी (भाद्रपद मासकी ?) कृष्ण चतुर्दशी जो कि अनेक गुणोंके विकासका स्थान है और तीनों लोकके इन्द्र जिसकी पूजा करते हैं उस दिन मुनिराज संजयन्तने अपने परिणामोंमें उत्कृष्ट सीमाकी समता धारण कर ली एवं अनेक प्रकारके कष्टोंको अनेक प्रकारका आनन्द मान वे आनन्दमय हो गये ठीक ही है जिन पुरुषोंका चित्त धीर वीर है उनके लिये घोर आपत्ति भी उत्सव स्वरूप हो जाती है । परम पवित्र मुनिराज संजयन्तने जिसप्रकार काष्ठसे अग्नि जुदी कर दी जाती है कोषखोलसे तलवार और दूधसे घी पृथक् कर दिया जाता है उस प्रकार अपनी आत्माको देहसे सर्वथा जुदा समझ लिया । दुष्ट विद्युद्दंष्ट्र द्वारा किये गये सारे उपसर्गको उन्होंने सह लिया । उपसर्गोंके

व्य समुत्पत्त्यानेकानन्दमयोऽभवत् । विघ्ना अप्युत्सवायंते सतां निभृतचेतसां ॥ ७१ ॥ पृथग्भूतं चकाराशु स्वात्मानं देहतो मुनिः काष्ठादग्निमसिं कोषाद्ध्यात्तपरिवामलं ॥ ७२ ॥ तत्कृतं स सहिष्णुः सन् वज्रदेहो नगाकृतिः । निश्चलो निर्वृतिं यातः शुक्लध्यानेन शुद्धधीः ॥ ७३ ॥ अतींद्रियं परं पाप मायाकाय विवर्जितं । धर्मभावादयोनित्यं कर्माभावादगोचरं ॥ ७४ ॥ यत्रैकस्मिन्ननन्तानि निष्ठंति सिद्धराशयः । सूक्ष्मादिगुणयोगेनात्मसूक्ष्मसूक्ष्मातिसूक्ष्मतः ॥ ७५ ॥ सूच्यग्रेऽनन्तजीवानां कंदे स्थितिरुदाहृता । नेऽनन्तानतभेदेन यदा स्थूलीभवंत्यहो ॥ ७६ ॥ पूरयित्वा तदा लोकाकाशं यांत्यग्रतो ध्रुवं । अतः सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च जीवतत्त्व निगद्यते ॥ ७७ ॥

समय उन्होंने अपना शरीर वज्रके समान कठोर बना लिया । पर्वतके समान वे निश्चल बने रहे जिससे विशुद्ध बुद्धिके धारक वे मुनिराज शुक्लध्यानके बलसे मोक्ष सुखके पात्र बन गये । उन पूज्य मुनिराजने ममता और शरीरसे रहित अतींद्रिय—मोक्ष पद प्राप्त कर लिया । पवित्र धर्मकी कृपासे वे जन्म जरा मरण रहित हो गये एवं कर्मोंके सर्वथा नष्ट होजानेसे वे तत्क्षण सिद्धालयमें जाकर विराज गये इसलिये सब लोगोंके नेत्रोंके अगोचर हो गये ॥ ७०—७४ ॥ सिद्धगण सूक्ष्म अव्याबाध जो निजी गुण हैं उनके स्थान एवं सूक्ष्म २ जो पुद्गलोंका भेद होता है उससे भी अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं इसलिये जहां पर एक सिद्ध आत्मा रहता है वहीं पर अनंतानंत सिद्ध रहते हैं । सुईकी अणीके समान कन्दमें अनन्तानन्त जीव रहते हैं ऐसा शास्त्रका उपदेश है । यदि वे अनन्तानन्त जीव स्थूल शरीर धारण करलें तो असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशमें भी न समाकर वे अलोकाकाश तक चले जा सकते हैं इसलिये जीव तत्त्वको सूक्ष्मातिसूक्ष्म बतलाया गया है । यदि जीव तत्त्वको सूक्ष्मातिसूक्ष्म न माना जायगा तब सिद्ध जीवोंको भी संख्यात मानना होगा । उससे मोक्ष स्थानके भर जानेसे मोक्षकी ही समाप्ति हो जायगी—किसीको भी मोक्ष न होगी एवं मोक्षको कारण स्वरूप धार्मिक क्रियाओंका सर्वथा नाश हो जायगा इसलिये कर्मोंके सर्वथा नष्ट हो

वेदन्यथा तदा सिद्धा भवेयुः संख्यिता यतः । तदा मुक्तिसमाप्तिः स्यात्प्रांतोऽभूद्धर्मकर्मणोः ॥७८॥ अतः सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च जीवतत्वं क्षयाद्विधेः । स्वभावादथ संप्राप्यं शिवं सूक्ष्मं न जायते ॥ ७६ ॥ अथो निर्वाणकल्याणपूजां कर्तुं सुराधिपाः । समागुर्वे गतः स्वस्व वाहनारूढमूर्तयः ॥ ८० ॥ चतुर्विधामरा नैद्युर्यं गायंति सन्मुनेः । नमन्नागेन्द्र तदा स्वस्य भ्रात्राकृतिमचिंतयत् ॥ ८१ ॥ स्वाग्रजांगे क्षणोद्भूततृतीयावगमः क्रुधा । अर्हीद्रो नागपाशेन ताश्चबन्धाखिलान् खगान् । ८२ । महाक्रोधारुणीभूतलोचनो धरणो जगौ । तान् दुःस्थानिति वाणोग्रैर्वचोभिस्तत्त्रयप्रदैः ॥ ८३ ॥ भो भो गतधियः खेटा युष्माभिर्मत्सहोदरः । निर्मदो निर्मलः शान्तो ध्यानस्थो हि कथं

जानेसे स्वभावसे ही जीवतत्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म है परन्तु मोक्ष स्थान छोटा नहीं हो सकता किंतु कितने भी मुक्त जीव क्यों न जाय उन सबोंका उसमें समावेश हो जाता है ॥ ७५—७६ ॥

मुनिराज संजयन्तने घोर उपसर्ग सहकर जब मोक्ष प्राप्त कर ली उस समय अपने २ वाहनों पर चढ़कर शीघ्र ही समस्त देव उनके निर्वाण कल्याणकी पूजाके लिये आ गये। मुनिराज संजयन्त-के निर्वाण कल्याणकी खुशीमें चारो निकायोंके देव आनन्द नृत्य करने लगे। मुनिराज संजयन्तके गुणोंका गान करने लगे। मुनिराज सञ्जयन्तके निर्वाण उत्सवमें उनके छोटे भाई मुनिराज जयंतका जीव नाग कुमारोंका इन्द्र भी आया था वह वार २ अपने वड़े भाईकी मूर्तिका स्मरण करने लगा। अवधि ज्ञानके वलसे उसे इस वातका भी पता लग गया कि विद्युद्दंष्ट्र आदि दुष्ट विद्या-धरोंने मुनिराज सञ्जयन्तको विशेष त्रास दिया है जिससे उसका हृदय मारे क्रोधके भवल गया। शीघ्र ही उसने नाग पाशसे समस्त विद्याधरोंको बांध लिया। प्रवल क्रोधसे उसके दोनों नेत्र लाल हो गये एवं महा भयप्रद वाण स्वरूप वचनोंसे समस्त विद्याधरोंको ताड़ता हुआ वह इस प्रकार कहने लगा—

रे दुष्ट विद्याधरो! मेरे वड़े भाई संजयन्त मुनि अहङ्कार रहित निर्मल शांत और दृढ ध्यानी थे तुम सबोंने मिलकर उन्हें क्यों मारा! तुम लोग शीघ्र कहो तुम्हारा उन्होंने क्या अपराध किया

हतः ॥ ८४॥ कोऽपराधः कृतस्तेन युष्माकं वदत त्वरा। यूयं कृतापराधा मे रे रे विद्याधराधमाः ।८५। इदानीं मारयिष्यामि मत्सहोदरघातकान्। सर्वान् वियद्गतान् नागपाशवज्रप्रहारतः ॥ ८६ ॥ ध्वांक्षहन्तृनरं ध्वांक्षाश्चञ्चुभिर्हंति कारवाः। प्रभवो मत्समा ये तु ते सहंते कथं द्विषः ॥ ८७ ॥ त्रासयन् विश्वभृन्नाथस्तान् कुकर्मकरान् शठान्। ततर्केति चिरं चित्ते क्षिपामि क्षारतोयधौ ॥ ८८॥ एतानधो विभागे वा पर्वतस्य क्षिपामि स्वित्। अपिपुरीमाशु वज्रेण दिक्षु दद्यां वलिं बलात् ॥८९॥अन्यथा हि यथा भ्राता हतः शस्त्रैर्दुरात्मभिः तथाहं शस्त्रजालेन खण्डं खण्डं करोम्यमीन् ॥ ९० ॥ विक्लवाङ्गास्तदा खेटा अब्रुवन् लेलिहानपं। स्वस्थीभूत्वा कृपानाथ ! शृणुताद्वृत्त

था। दुष्टो ! तुम लोगोंने मेरे भाईको मारकर मेरा घोर अपराध किया है। तुम समस्त विद्याधर मेरे पूज्य भाईके मारनेवाले दुष्ट हो। तुम्हें नागपाशके वज्र प्रहारसे शीघ्र ही मारूंगा इसमें कोई संशय नहीं॥ ८०—८६ ॥ एक काकका यदि कोई पुरुष मार देता है तो उस मारनेवालेको अन्य काक पूर्ण कोलाहल मचाकर अपनी चोचोंके घातोंसे जब मार डालते हैं तब जो पुरुष मेरे समान समर्थ हैं वे कैसे वैरियोंको सह सकते हैं ! वे तो कभी वैरियोंसे बदला चुकाये विना मान नहीं सकते। बस इस प्रकार उन दुष्ट कार्यके करनेवाले समस्त विद्याधरोंको नाग कुमारोंके इन्द्रने वेहद डाटा एवं उन दुष्टोंके विषयमें वह इसप्रकार विचार करने लगा—

इन दुष्टोंने अकारण मुनिराज संजयन्तको दुखाकर तीव्र अपराध किया है ऐसे दुष्टोंको क्षमा कर देना महा पाप है इसलिये उस अपराधके बदलेमें इन्हें क्या मैं किसी खारे समुद्रमें जाकर फैंक दूं। वा वज्र शस्त्रसे चारो दिशाओंमें इनकी वलि प्रदान कर दूं। अथवा इन दुष्टोंने जिसप्रकार मेरे भाईको शस्त्रोंसे मारा है मैं भी उसी प्रकार शस्त्रोंसे इनके खण्ड खण्ड कर दूं। नागेंद्र कुमारका यह प्रवल क्रोध देखकर समस्त अपराधी विद्याधर थर थर कांपने लगे एवं चाटुमय वचनोंमें इसप्रकार उन्होंने नगेन्द्र कुमारसे कहा—

माद्दितः ॥ ६१ ॥ अयं दोषोऽस्ति नास्माकं मृदूनां धर्मशालिनां । प्रतारिता वयं मुग्धा विद्युद्दंष्ट्रेण पापिना ॥ ६२ ॥ पुरस्तात्तव की यंतो वयं क्षुद्राः खचारिणः । गण्डशैला यथा मेरोः पतंगस्योडुवत्प्रभो ! ६३ ॥ देवधिष्ण्यं विशार्दं वा विकदल्यथ बाटिका । कदली हीना न भात्येव न्यायहीना नरस्तथा ॥ ६४॥ अतो देव विचार्याशु न्यायमार्गेण धर्मवित् । सद्दोषो हन्यतां हन्त न्यायवन्तो हि पण्डिताः

कृपानाथ ! आप शांत हुजिये और आदिसे अन्त तक सारा यथार्थ वृत्तांत सुन लीजिये ॥८७-॥ ९१ ॥ हम लोग धर्म मार्गके अनुयायी और कोमल परिणामी हैं। यह जो बलवान अनर्थ बन पड़ा है इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है। हम लोगोमेंसे एक विद्युद्दंष्ट्र नामका महा पापी विद्याधर है उसीकी यह करतूत है--उसीके बचनों पर विश्वास कर हमसे यह निंदित कार्य बन गया है। स्वामिन् ! जिस प्रकार विशाल मेरु पर्वतके सामने गण्डशैल--स्थूल पत्थरोंके धारक पर्वत कोई चीज नहीं। तथा सूर्य और चन्द्रमाके सामने नक्षत्र कोई चीज नहीं उसी प्रकार हम क्षुद्र विद्याधर आपके सामने क्या चीज हैं ? प्रभो ! जिस प्रकार शिखरके विना मन्दिर शोभा नहीं पाता कदली (केला) के वृक्षोंसे रहित बगीचा जिस प्रकार कदली वृक्षोंके विना शोभा नहीं धारण करता उसी प्रकार जो मनुष्य न्यायहीन है-न्याय पूर्वक कार्य नहीं करता वह भी शोभित नहीं होता ॥ ९२—९४ ॥ अतएव हे देव ! आप धर्म मार्गके अनुयायी हैं आपको चाहिये कि आप न्याय—पूर्वक विचार कर जो दोषी हो उसे ही मारें और दण्ड दें क्योंकि आप पूर्ण विज्ञ हैं और विज्ञ पुरुष जितना भी कार्य करते हैं न्याय पूर्वक कार्य ही करते हैं। जो मनुष्य मदोन्मत्त हो अपनी इच्छानुसार न्यायमार्गके प्रतिकूल कार्य करते हैं संसारमें उनके विशिष्ट बलकी प्रशंसा नहीं होती ठीक ही है कर्मोंकी निर्जरा जो भी होती है वह निरंकुश होती है अर्थात् उत्तम बल प्राप्त कर जो न्याय पूर्वक कार्य करते हैं उन्हींको बलवान माना जाता है किंन्तु बलवान होकर भी अन्याय पूर्वक

॥ ९५ ॥ यथारुचि ततः कुर्याः प्रोन्मत्तत्व.दमार्गतः । नैवास्य सद्बलं चात्र निर्जरा हि निरंकुशाः ॥ ९६ ॥ तुष्णीभूयमितो नागराजस्तेषां वचोरमैः । मुमोच खेचरान्नार्यान् विद्युद्दंष्ट्रमबन्धयत् ॥ ९७ ॥ पुत्रकलत्र तृदायादसयुतं तं पयोधरे । सक्षितु घतोऽहीद्रस्तावदन्य कथांतर ॥ ९८ ॥ आदित्याभः सुरोत्तिः प्राहेति सात्त्विकं वचः । अनेनाकारि यो दोषः क्षम्यतामाग्रहान्मम ॥ ९९ ॥ त्वादृशां महतां नागेंद्र क्षुद्रे कोपा न शस्यते । गोमायु हन्त न क्रूरः कृतेर्ष्यं चापि केसरी ॥ १०० ॥ पुरा पुरुजिनेंद्रस्य काले विद्याधरेशिनां । विद्या

कार्य करनेवालोंको वलवान नहीं माना जाता ॥ ९५—९६ ॥ विद्याधरोंके इसप्रकार शांतिमय दीन वचन सुन नागेन्द्र कुमार क्रोधरहित संतुष्ट हो गया। जितने भी निरपराध आर्य विद्याधर थे नागेन्द्र कुमारने उन्हें क्षमा कर छोड़ दिया। अपराधी विद्युद्दंष्ट्रको कसकर बांध लिया एवं पुत्र स्त्री भाई और कुटम्बियोंके साथ उसे समुद्रमें डालनेके लिये उद्यत हो गया। नागेन्द्रकुमार जिस समय यह कार्य करनेकी चेष्टा कर रहा था उस समय आदित्याभ नामके नागकुमारको दया आगई और वह शांत वचनोंमें इसप्रकार कहने लगा—

यद्यपि इस विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरने आपको घोर अपराध किया है तथापि मेरे आग्रहसे तुम्हें इसे क्षमा कर देना चाहिये। प्रिय नागेंद्र! आप एक महान पुरुष हो आप सरीखे महान पुरुषोंको क्षुद्र पुरुषों पर कोप करना शोभा नहीं पाता यह तुम अच्छीतरह जानते हो कि क्षुद्र शृगाल क्रूर केसरीसे कितनी भी ईर्षा क्यों न करे तो भी वह क्रूर सिंह उसे कभी नहीं मारता। भाई! भगवान ऋषभ देवके समयमें तुम्हारे वंशजोंने विद्याधर राजाओंको अनेक प्रकारकी विद्यायें दीं थीं उसी समय विद्याधर वंशका संसारमें उदय हुआ था। प्रिय नागेंद्र! यह संसार प्रसिद्ध वात है कि जिस मनुष्यने विष वृक्षको भी अच्छी तरह दूधसे सींचकर बढाया है वह चाहें वज्र मूढ भी हो तो भी उसे स्वयं नहीं छेद सकता तुम तो एक महान और विद्वान पुरुष हो तुम अपने वंशजों द्वारा नि-

'द्रा ... ऽस्य निः मे मुदा ॥१०१॥ पूर्वं दुर्घैः प्रसिंच्यैव सम्वर्ध्यं विषभूरुहं । उपक्रमेत को मूढः छेत्तुं भो लेलिहानप ! ॥ ॥ १०२ ॥ इत्युक्तस्तेन नागेन्द्रः प्रत्युवाच रविप्रभ । पापीयसोऽस्य दुर्वृत्तं त्वया ज्ञातं न विद्यते ॥ १०३ ॥ मदग्रजं तपोभारभूषितांगं दयानिधिं । अयं विनापराधेन संजयंतममीमरत् १०४ ॥ अतोऽयं मम हंतव्यो न निषेध्यं त्वयामर । मुमुक्षेद्भ्रातृहंतारं यः स स्यात्पाप भाजनं ॥ १०५ ॥ आदित्याभस्तदा प्राह वैयर्थ्यं याचितो मया याञ्चाभंगे गतो मानो मानभङ्गे तृणं पुमान् ॥ १०६ ॥ मानहीना नरा लोके निंदनीयाः पदे पदे । किञ्चित्कर्तुमशक्तत्वादलोकपुरुषोपमाः ॥ १०७ ॥ त्रिमानमानवं पद्मा विजहात्येव दूरतः । शांतार्चिर्वं प्रदीपं

मोपित वंशका कैसे संहार कर सकोगे ? सूर्यके समान देदीप्यमान आदित्याभ नामक नाग कुमार की यह बात सूनकर मुनिराज जयंतके जीव नागेंद्रने कहा—

भाई ! तुम इस अतिशय पापी विद्युद्दंष्ट्रका क्रूर कर्म जानते नहीं हो इसलिये इसे दयाका पात्र समझ रहे हो मेरे बड़े भाई संजयन्त परम तपस्वी थे और दयाके सागर निरपराध थे इस दुष्टने विना अपराध उन्हें मार डाला है इसलिये अपना भाईका वदला चुकानेके लिये मुझे इसे मार डालना ही ठीक होगा तुम्हें इस वातमें किसी प्रकारकी वाधा नहीं डालना चाहिये क्योंकि यह नीति है कि जो अपने भाईके मारने वालेको क्षमा कर देता है—उससे वदला नहीं लेता वह संसारमें पापी माना जाता है ॥ ९७—१०५ ॥ जयंतके जीव नागेन्द्रकी यह बात सुन आदित्याभ नामका नागकुमार अपने मनमें विचारने लगा—

मैंने जो विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरकी रक्षाके लिये याचना की वह ठीक नहीं हुआ क्योंकि मुनिराज जयंतके जीव नागेंद्रने वह मेरी याचना स्वीकार नहीं की। यह नियम है जहांपर याचनाका भंग है वहां पर सन्मानका भी भङ्ग है और जिस मनुष्यका सन्मान नहीं वह मनुष्य तृणके वरावर है। संसारमें यह बात स्पष्टरूपसे दीख पड़ती है कि जिन पुरुषोंका सन्मान नहीं होता वे पद २ पर

वा प्रकाशोऽतितरां गुरुः ॥ १०८ ॥ अतिरेको हि दर्पस्य गतमानं नरं त्यजेत् । प्रतिमेवाधियं नागेंद्र योशं मङ्गलदेवता ॥ १०९ ॥ वृणुते मानिनं मा च संभ्रमेण गुरुं गुरुं । विनेयः कुलजारामा सस्नेहाजिह्मितं गुरुं ॥ ११० ॥ पुरस्तात्तव नागेंद्र ! याञ्चाभंगोऽपि मे सुखः । अधमे लब्धकामा नु वरं शिष्टे विपर्ययः ॥ १११ ॥ इति शासदहिपतिमाशु स्तकरकोतिनामकः । अम्बरगफणिपयोः परममयिष्यति

निंदा जन्य दुःख भोगते रहते हैं। वे संसारमें कुछ महत्त्व पूर्ण कार्य भी नहीं कर सकते इसलिये वे मिट्टी आदिके बने पुरुषके समान गिने जाते हैं। जिस प्रकार लो रहित दीपकको प्रकाश छोड़ देता है उसी प्रकार जो पुरुष सन्मान रहित हैं लक्ष्मी उन्हें छोड़ देती है मानहीन पुरुषोंपर उसका प्रेम नहीं होता ॥ १०६—१०८ ॥ जिस प्रकार निर्बुद्धि पुरुषोंको प्रतिभा-उत्तम बुद्धि छोड़ देती है और भाग्यहीन पुरुषोंको मङ्गल देवता—लक्ष्मी आदि छोड़कर चली जाती हैं उसी प्रकार मानहीन पुरुषोंको अभिमान भी छोड़ देता है। क्रोधी भी सन्माननीय गुरुको जिस प्रकार शिष्य मानता है। संमाननीय पतिको जिस प्रकार स्त्री मानती है उसी प्रकार सम्माननीय महत्त्वशाली पुरुषको लक्ष्मी वरती है। क्षण एक इस प्रकार विचार कर आदित्याभ नामक कुमारने अपने स्वामी नागेंद्रसे कहा-

प्रिय नागेंद्र ! यद्यपि तुम्हारे सामने मेरी याचनाका भङ्ग हुआ है तथापि वह मेरे लिये सुखदायी है क्योंकि जो अधम पुरुष हैं उनमें यदि याचना पूरी भी हो जाय तब भी ठीक नहीं किन्तु जो पुरुष महान हैं उनसे वह निष्फल भी चली जाय तब भी ठीक है आप एक उत्तम पुरुष हो मेरी याचना आपने स्वीकार नहीं की तब भी वह मेरे लिये कल्याणकारी है॥१०८-११०॥इसप्रकार जिस आदित्याभ नामके नागकुमारने जयन्तके जीव नागेन्द्रके वचनोंकी पुष्टिकी वही आदित्याभ नागकुमार अपने उत्तम उपदेशसे विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र और धरणेंद्रके कल्याणोंके करनेवाला होगा ।१११।

विधाय शत्करं ॥ ११२ ॥ महातपा यः परमेण तेजसा । जगाम सिद्धिं सुदृतोदयान्मुनिः । सुरासुरैर्गार्चितपदकञ्जः सदा । स पातु भव्यान् जिनराजसेवितः ॥ ११३ ॥

इत्यार्षे श्रीवृहद्विमलनाथपुराणे भ० रत्नभूषणाम्नायालङ्कारविद्वज्जनचातुरीसमुद्रचन्द्राग्रतारोभयभाषाचक्रवर्तिहर्षवीरकातनूजब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममंगलदाससाहाय्यसापेक्षे वैजयंतसंजयन्तजयंतदीक्षाग्रहणसंजयंतोपसर्गशिवप्राप्तिजयंतधरणत्वप्राप्तितदागमादित्याभदेवसमागमो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

जो मुनिराज संजयन्त दिव्य तेजके धारक परम तपस्वी थे । तीव्र दुश्यके उदयसे जो मोक्ष लक्ष्मीके पात्र बने जिनके चरणोंको बड़े २ इन्द्र पूजते हैं और बड़े २ मुनि जिनकी आराधना करते हैं वे मुनिराज भव्य जीवोंकी रक्षा करें ॥ ११ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकार स्वरूप विद्वानोंके विद्वत्तारूपी समुद्रके लिये चंद्रमा समान उभय भाषाके चक्रवर्ती हर्षवारिकाके पुत्र भाई ब्रह्ममंगल दासकी सहायता पूर्वक ब्रह्म कृष्णदास विरचित बृहत् विमलनाथ पुराणमें वैजयंत संजयंत और जयतका दीक्षा ग्रहण संजयंतको घोर उपसर्ग और मोक्ष प्राप्ति जयतका धरणेंद्र होना और आदित्याभ नाग कुमारका समागम वर्णन करनेवाला छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवां सर्ग ।

श्रीमज्जिनं जगन्नाथं मादं पापच्छिदं शदं । यं स्तौतिस्म देवालिस्तं वाये परमेश्वरं ॥ १ ॥ अथादित्यप्रभोऽहीशं प्रोवाचेति

जो भगवान जिनेन्द्र जगतके नाथ हैं । लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं । पापोंके नाशक और कल्याणके देनेवाले हैं और जिनकी स्तुति बड़े २ इन्द्र करते हैं उन भगवान जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ महान ऋद्धिके धारक आदित्याभ नागकुमारने अपने मित्र नागेंद्रसे कहा—

महर्द्धिकं । शृणु नागाधिराज ! त्वं मद्वचो रीतिसंयुतं ॥ २ ॥ किं करोषि वृथा वैरं शल्यवद्भवदुःखदं । तस्मान्नश्यन्ति जीवाश्च स्यंति किं नो परस्परं ॥ ३ ॥ विद्युद्दंष्ट्रो हि ते भ्राता न जातः संसृतौ भ्रमन् । को बन्धुः को न वा बन्धुः को हितश्चाहितो हि कः ॥ ४ ॥ कस्तातः को न वा तातः सवित्री का मता न का । कः स्वीयः को न वा स्वीयः जातौ जातौ वदाहिराट् ॥५॥ सर्वे परस्परं जीवाः सगोत्राः सन्ति वस्तुतः । शत्रवोऽपि तथा सर्वे मातृपितृसहोदराः ॥ ६ ॥ पूर्वजन्मनि ते भ्राता संजयंतो महामुनिः । अदण्डयन्महाक्रोधाद्विद्युद्दंष्ट्रं कृतागसं ॥ ७ ॥ ततो वैराद्वयं खेटो भूत्वा जातिस्मरोऽधुना । महादुःखं चकारोच्चैः संजयंतस्य सन्मुनेः ॥ ८ ॥ भ्रातरं तव

प्रिय नागेंद्र ! तुम मेरे न्यायपूर्वक वचनोंको सुनो तुम जो विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रके साथ वैर बांध रहे हो वह वृथा है क्योंकि वैर भव भवमें शल्यके समान दुःख देनेवाला है। इसी वैरके कारण जीव नष्ट होते रहते हैं और आपसमें एक दूसरेको छेदनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। संसारमें भ्रमण करता हुआ यह विद्युद्दंष्ट्र क्या तुम्हारा भाई किसी भवमें नहीं हुआ ? अनेक वार हो चुका है, क्योंकि संसारमें भ्रमण करते हुए इस जीवका जन्म जन्ममें कौन तो वंधु नहीं हुआ और कौन अवंधु, वैरी-नहीं हुआ। कौन हितकारी नहीं हुआ और कौन अहितकारी नहीं हुआ । कौन तात नहीं हुआ और कौन वेतात नहीं हुआ। कौन माता नहीं हुई और कौन अमाता-स्त्री आदि नहीं हुई। एवं कौन अपना नहीं हुआ और कौन पराया नहीं हुआ ?। भाई नागेंद्र ! संसारमें भ्रमण करते हुए ये सब जीव नियमसे अपने सगे हो चुके हैं। तथा जो इस समय शत्रु दीख पड़ते हैं वे भी माता पिता और भाई हो चुके हैं ॥ २—६ ॥ पूर्व जन्ममें तुम्हारे भाई संजयन्त मुनिराजने अपराधी विद्युद्दंष्ट्र-को क्रुद्ध हो दण्ड दिया था उसी वैरसे मरकर यह विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर हुआ। मुनिराज सञ्जयन्तको देखकर इसे पूर्व जन्मका स्मरण हो गया उसीसे इसने मुनिराज सञ्जयन्तको विशेष कष्ट पहुंचाया ॥ ७—८ ॥ यह पापी विद्युद्दंष्ट्र चार जन्मोंसे वार वार तुम्हारे भाईका वैरी चला आया है उसी

पापोऽयं प्राक्जन्मचतुष्टये । महावैरानुबंधेन लोकांतरमजीगमत् ॥ ९ ॥ अस्मिन्भवे शुभं मन्ये विद्युद्दंष्ट्रं खरं यतः । सुसोढं तत्कृतं विघ्नं मुक्तिं यातो महामुनिः ॥ १० ॥ केनचित्सांहसापायोऽकारि तेन गुणोऽजनि । तं गुणं धीधनाः सन्तो मन्यंते नापकारकं ॥११। परिभूतिमितो धीमान् विकृतिं नैव गच्छति । चन्दनो वा भिदां प्राप्तश्चंदते पुरतः स्थितान् । १२ । खलो विध्याध यं साधुं जिह्मोभवति सोऽपि न । दह्यमानोऽ गुरुः साधु प्रकाशयति सद्गुणं ॥ १३ ॥ कोविदानां मनिर्जातु प्राणांते विकार न । इक्षुर्निष्पीड्यमानोऽपि

महा वैरके सम्बन्धसे इसने तुम्हारे भाईको मारा है ॥ ९ ॥ मैं तो इस भवमें विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रको मुनिराज सञ्जयन्तका परममित्र मानता हूं क्योंकि इसके द्वारा किये गये उपसर्गको सहकर मुनिराज सञ्जयन्तने मोक्ष स्थान प्राप्त कर लिया ॥ १० ॥ जिस किसी भी पापीने किसीको कष्ट पहुंचाया है वह कष्ट उसके लिये गुणस्वरूप ही हुआ है इसलिये विद्वान लोग उस कष्टको गुण ही मानते हैं दुःख नहीं मानते ॥ ११ ॥ जो पुरुष विद्वान हैं संसारकी वास्तविक स्थितिके जानकार हैं उन्हें कितना भी कष्ट क्यों न पहुंचाया जाय वे उस कष्टसे कष्टायमान नहीं होते—विकृत न होकर उनका स्वभाव ज्योंका त्यों बना रहता है। जिस तरह कि चंदनको कितना भी काटा छेदा जाय तब भी वह अपना सुगन्धित स्वभाव नहीं छोड़ता-जैसा उसे छेदा जाता है वैसा ही वह पासमें खड़े रहनेवालोंके लिये महकता चला जाता है। सज्जनोंका स्वभावभी चन्दन सरीखा होता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अगरको कितना भी जलाया जाय वह सुगन्धि ही छोड़ता जाता है उसी प्रकार दुष्ट पुरुष मुनियोंको भले ही मार डाले तथापि वे मारनेवाले पर क्रोध नहीं करते वे अपने परिणामोंमें समता भाव ही रखते हैं ॥ १३ ॥ जिस प्रकार ईखके पेडको जितना२ पेरा जाता है वह मिठास ही छोड़ता चला जाता है—उसमें कोई विकार नही उत्पन्न होता उसी प्रकार जो पुरुष विद्वान हैं दुष्टोंसे दुःखित होनेपर भी उनकी बुद्धिमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता वे

माधुर्यं क्षरति ध्रुवं ॥ १४ ॥ अहो आस्तांमतो नागेद्र वैरेण गुणवारिधे ! । पूर्ववैरोत्थदुःखस्य वद केन प्रतिक्रिया ॥ १५ ॥ इत्याकर्ण्यो रगाधीशः प्राहादित्यप्रभं सुरं । कथ्यतां सा कथा देव । वैरसंबन्धवादिनो ॥ १६ ॥ तदोवाचेति सूर्याभः शृणु त्वं फणिशेखर ! । अमुष्मिन् वैरमुत्सृज्य तत्प्रपंचं वदाम्यहं ॥ १७ ॥ अथ जंवूमति द्वीपे विशाले लक्षयोजने. । भारतं वर्षमाभाति कार्मुकाकृतिमादधत् ॥ १८ ॥ राराजीति पुरं तत्र नानाशोभासमन्वितं । पद्ममालयसुराधीशेरिष्टं सिंहपुरं पुरं ॥ १९ ॥ सतभूमिगृहा यत्र सविलासाश्च योषितः । रक्तोष्ठ्यः पीवरस्तन्यः सहासा भांति भूरिशः ॥२०॥ यत्र दंडोऽस्ति चेत्येषु भ्रांतिरर्हत्प्रदक्षिणे । काठिन्यं हृदये स्त्रीणां

शांत ही वने रहते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये भाई नागेन्द्र ! तुम्हारे लिये मेरा यही हितकारी कहना है कि संसारमें तुम एक गुणशाली व्यक्ति कहे जाते हो। विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र के साथ तुम्हें वैर न बांधना चाहिये। भाई ! तुम्हीं सोच लो पूर्व भवमें जो वैर वन्धहो चुका है उसका क्या प्रतीकार हो सकता है ? वह तो वँध गया सो वंध ही गया ॥ १५ ॥ नागकुमार आदित्याभकी यह वात सुन धरणेंद्रका क्रोध कुछ शांत पड़ गया और विद्युद्दंष्ट्र का मुनिराज सञ्जयंतके साथ कैसे वैर वंधा यह कथा जाननेकी उसके मनमें लालसा होगई इसलिये वह आदित्याभसे इसप्रकार कहने लगा—

मुनिराज सञ्जयन्त और विद्युद्दंष्ट्र के आपसो वैरसे संवन्ध रखनेवाली कथा कृपाकर कहिये ! उत्तरमें देव आदित्याभने कहा प्रिय नागराज ! मैं सारी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूं। विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र के साथ वैर छोड़कर तुम आनन्द पूर्वक सुनो—

एक लाख योजनके चौड़े इसी जम्बू द्वीपमें एक भरत नामका क्षेत्र है जो कि धनुषकी आकृतिको धारण करने वाला महा शोभायमान जान पड़ता है। प्रसिद्ध भरतक्षेत्रके अन्दर एक सिंहपुर नामका नगर है जोकि अनेक प्रकारकी शोभाओंसे व्याप्त अत्यन्त शोभायमान है। लक्ष्मीके स्थान बड़े २ देवेंद्रोंको प्यारा है और उत्तम है ॥१६-१९॥ सिंहपुर नगरके अन्दर उस समय सतखंडे

ताडनं कर्मपंकजे ॥ २१॥ नास्तिक्यं सौगतागारे विरोधोऽधरपल्लवे । जघने चापि दन्तैर्वा करजैर्विद्यते क्वनः ॥ २२ ॥ तत्र राजा बभूवारिभामालोचनतोयकृत् । सिंहसेनो महासैन्यः सिंहभूरिपराक्रमः ॥ २३ ॥ चित्रभानुसुधाभानुचन्द्रभानुप्रभाधिकः । सासिभ्रभे रवे नैव कातरः करवालयः ॥ २४ । युग्म । अत्रोकरत्परं धर्ममपोपूज्जगद्गुरुं । अदीदहद्द्विषां देशानथिभ्योऽ दोदिशद्वसु ॥ २५ ॥

मकान शोभायमान थे एवं लाल२ओठोंकी धारक स्थूल स्तनोंसे व्याप्त सदा हंसनेवाली और विलासरस परिपूर्ण स्त्रियां थीं । सिंहपुर नगरमें सारी प्रजा सदाचारिणी थी इसलिये राजाकी ओरसे किसी प्रकारके दण्डका विधान न था । यदि दण्ड था तो चैत्यालयोंके शिखिर भागोपर था जिसपर कि ध्वजा फहराती थीं । वहांपर किसी वातमें भ्रांति न थी—सब लोगोंको ठीकरूपसे पदार्थों का निश्चय था । यदि भ्रांति थी तो भगवानकी प्रदक्षिणाओंमें थी—लोग घूम २ कर भगवान जिनेन्द्रकी प्रदक्षिणा करते थे । कठिनता वहांपर स्त्रियोंके स्तनोंमें ही थी अन्य कहीं किसी मनुष्यके हृदयमें कठिनता न थी—सब लोग सरलपरिणामी थे । कर्मपंकजके सिवाय वहांपर किसीको मारने पीटने-की प्रथा न थी । उस सिंह पुरमें नास्तिकता बौद्धमन्दिरोंकी थी—कोई भी बौद्धधर्मका अनुयायी न होनेके कारण किसी भी बुद्ध मन्दिरकी वहांपर सत्ता न थी परन्तु वहांपर लोग नास्तिक न थे--- पर लोक आदि पदार्थों पर पूर्ण विश्वास रखनेवाले थे । वहांपर दांत वा नखोंका जघन और अधर पल्लवोंके ही साथ विरोध था आपसमें किसीके साथ कोई विरोध नहीं रखता था ॥ २०—२२ ॥ सिंहपुरका रक्षण करने वाला राजा सिंहसेन था जो कि शत्रुओंकी स्त्रियोंके नेत्रोंसे आंसू वहाने वाला था । विशाल सेनाका स्वामी था और सिंहके समान प्रबल पराक्रमी था । वह राजा सिंहसेन चित्र भानु सुधा भानु और चन्द्रमाओंसे भी अधिक प्रभाका धारक था । संग्राममें शत्रुओंको पीठ न दिखानेके कारण वह बलवान खड्गधारी था । धर्मका आचरण करता था । तीन जगतके गुरुकी पूजा

जज्ञे तस्य महादेवी रामदत्तेति विश्रुता। भोगप्रिया समांगत्वान्नानाभोगासनोत्सुका॥ २६॥ सती प्रियानुकूलत्वात्कामिनीव मनोभुवः। रूपरंभोन्नतस्थूलवृत्तनैतंबमंथरा॥२७॥ युग्मं। मंत्री तस्य गुणागारो वेदविद्ब्राह्मणोत्तमः। श्रीभूतीत्यभिधो मान्यो लोकानां सत्यवाद्यया॥ २८॥ अन्यदा स चकारेमां प्रतिज्ञां कैतवादिव। अवक्ष्यं चेदलीकं तदकरिष्यं गलच्छिदां॥ २९॥ लोकेऽथाभूत्तदाख्यातः पत्तने राजसंसदि। कंठासिपुत्रको भूत्वा स्वल्पभाषी च तिष्ठति।३०। नामधेयं तदा दत्तं द्वितीयं तस्य हर्षतः। सिंहसेनेन सेनेन

करता था शत्रुओंके देशोंको राखमें मिलाता था और याचकोंको विशिष्ट धन प्रदान करता था ॥ २३—२५ ॥ राजा सिंहसेनकी स्त्रीका नाम रामदत्ता था जो कि अपने गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध थी। भोगोंको प्यारा मानती थी और भोग भोगनेके जो भी आसन हैं उनमें सदा लालायित रहती थी। वह रानी रामदत्ता अपने पतिके अनुकूल चेष्टा करनेवाली थी इसलिये सती थी। सुन्दरतामें कामदेवकी स्त्री रति थी। रूपसे रम्भाकी उपमा धारण करती थी एवं उन्नत स्थूल और गोलाकार नितम्बोंसे शोभायमान होनेके कारण मन्द मंदरूपसे गमन करने वाली थी ॥ २६—२७ ॥ राजा सिंहसेनके मन्त्रीका नाम श्रीभूति था जो कि अनेक गुणोंका भण्डार था। वेदोंका जानकार था। जातिका ब्राह्मण था और सत्य वोलनेके कारण समस्त लोकका आदरणीय था ॥ २८ ॥ एक दिन श्रीभूतिने छलसे यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं झूठ वोलूंगा तो अपना गला छेद डालूंगा ॥ २८—२९ ॥ अपने सत्यवक्तापनेके कारण वह श्रीभूति समस्तलोक नगर और राजसभामें प्रख्यात था एवं वह अपनी की हुई प्रतिज्ञाकी दृढ़ता बतलाकर बहुत थोड़ा वोलने वाला होकर रहने लगा ॥ ३० ॥ श्रीभूतिकी यह कड़ी प्रतिज्ञा सुन राजा सिंहसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और लक्ष्मीके भण्डार राजा सिंहसेनने हर्ष पूर्वक मन्त्री श्रीभूतिका नाम सत्यघोष रखदिया ॥ ३१ ॥

सत्यघोष इति ध्रुवं ।३१। अथास्ते पद्मखंडाख्यं पुरुहूतपुरोपमं । पत्तनं नयनानंदि सदानन्दभरैभृतं ॥ ३२॥ तत्रोवास महाश्रेष्ठी सुदत्तो गुणाधिकः । धार्मिकाणां धुरि स्थायी विनेयानां यथा गुरुः॥ ३३ ॥ सुमित्रा भामिनी तस्य भामिनीव मनोभुवः । भ्रूभङ्गकार्मुककृष्टिबाणाहतसुरान् व्यधात् ॥ ३४ ॥ भद्रमित्रस्तयोरासीत् सुतः शक्रसुतोपमः । अधीताखिलसद्विद्यो युवा भोगपुरन्दरः ॥ ३५ ॥ एकदा स्वपुरोद्याने रन्तुमिभ्यसुता ययुः । तदासौ भद्रमित्राख्यस्तैरमा तद्वनं गतः ॥ ३६ ॥ समयं प्राप्य ते प्रोचुर्भद्रमित्रमिति स्फुटं । मित्र ! यस्तु वणिक्पुत्रो व्यवसायेन जीवति ॥ ३७ ॥ उपायेन विनागारे त्वं किं तिष्ठसि सर्वदा । साकमस्माभिरेतो हि रत्नद्वीपं यियासुभिः ॥ ३८ ॥ जातेनानर्जिना मित्र ! पुत्रेणार्थक्षयकृता । किं भवेन्मुक्तिा भूमनपसा सकुचेन च ॥ ३९ ॥ जहासोच्चैस्तदा

इसी पृथ्वीपर एक पद्मखण्ड नामका नगर है जो कि अपनी शोभासे इन्द्रपुरीकी समता धारण करता है। सदा नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है और सदा नाना प्रकारके आनन्दोंसे व्याप्त रहता है। पद्मखण्ड नगरमें एक सुदत्त नामका सेठ रहता था जो कि विपुल संपत्तिका स्वामी था। अनेक गुणोंका भण्डार था। एवं जिसप्रकार शिष्योंके लिये शिक्षा देनेवाला गुरु होता है उसीप्रकार वह धर्मात्मा पुरुषोंका गुरु स्वरूप था ॥ ३२—३३ ॥ सेठ सुदत्तकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था जोकि अपनी अद्वितीय सुन्दरतामें कामदेवकी स्त्री रतिके समान जान पड़ती थी और भृकुटीरूपी धनुष पर कटाक्ष रूपी वाण चढ़ाकर वह बड़े २ देवोंके चित्त व्यथित करनेवाली थी॥३४॥ सेठ सुदत्तके सेठानी सुमित्रासे उत्पन्न पुत्र भद्रमित्र था जो कि सुन्दरतामें इन्द्रपुत्रके समान जान पड़ता था, समस्त विद्याओंका पारगामी था। युवा और पूर्णरूपसे भोग भोगने वाला था। एक दिनकी बात है कि नगर निवासी समस्त सेठोंके पुत्र सिंहपुरके उद्यानमें क्रीडा करनेके लिये गये। कुमार भद्रमित्र भी उनके साथ क्रीड़ा करनेके लिये वनमें गया। अवसर पाकर अन्य सेठ पुत्रोंने भद्रमित्रसे कहा—

मित्र ! अपन वणिक्पुत्र कहलाते हैं। वणिक्पुत्रोंका जीवन व्यवसायके आधीन है। व्यवसाय केलिये तुम कोई भी उपाय न कर निरर्थक घरमें रहते हो। हम लोग व्यवसायके लिये रत्नद्वीप

भद्रमित्रो दत्त्वा सुतालिकां। अहो मुनिः कथं तेन दरिद्रेणोपमीयते ॥ ४० ॥ तदोचुस्तेऽथ मुनिमत्रं कथ्यमानां कथां शृणु । श्रुता मुनिमुखाम्भोजान्निश्चयोत्पादिनीं सुहृत् ॥ ४१ ॥ अथास्ति स्तवकग्लुंछपत्तनं सागरांतिके। हेमरूप्यायसां दुर्गैर्वेष्टितं त्रिभिरूर्मिगं। ॥ ४२ ॥ रामाणां पुरुषाणां वा चातुर्याः सद्मनां पुरः। शोभायाः सरसः केन वर्ण्यते गुरुणापि न ॥ ४३ ॥ तत्र चैरावणो राजा राज-

जाना चाहते हैं तुम्हें भी चाहिये कि हमारे साथ तुम भी व्यापारके लिये रत्नद्वीप चलो। मित्र ! जिसप्रकार प्रवल तप तपनेवाले क्रोधी मुनिका विपुल भी तप निरर्थक माना जाता है उसीप्रकार पुत्र भी उत्पन्न हो परन्तु वह धनका उपार्जन करने वाला न होकर उसका क्षय करने वाला हो तो उसका होना भी निरर्थक है। अन्य धनिक पुत्रोंकी यह वात सुन भद्रमित्र ताली देकर हंसने लगा और हंसते हंसते उसने यह कहा—

भाई ! तुमने जो मुनिके साथ दरिद्रकी तुलना की है वह वड़ी हास्य जनक है। उत्तम मुनिके साथ दरिद्रकी तुलना कैसी ! भद्रमित्रकी यह वात सुन सेठ पुत्रोंने कहा—प्रिय भद्रमित्र ! इसी विषयमें हमने मुनिराजके मुखसे कथा सुनी है जो कि सर्वथा निश्चय करने योग्य है हम वह कथा तुम्हें सुनाते हैं तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

इसी पृथ्वीपर एक स्तवकग्लुंछ नामका नगर है जो कि सोना चांदी और लोहेके वने तीन परकोटोंसे शोभायमान है इसी लिये तीन तरङ्गोंसे व्याप्त वह समुद्र सरीखा जान पड़ता है ॥ ३५—४१ ॥ वह स्तवकग्लुंछ नगर चतुरता और शोभाकी स्थान स्वरूप स्त्री और पुरुषोंसे सरसरूप था इसलिये वह ब्रह्मा और वृहस्पतिकी भी वर्णनाके अगोचर था ॥ ४२ स्तवकग्लुंछ नगरका स्वामी राजा ऐरावण था जो कि कुवेरके समान दानी था। और चन्द्रमाके समान स्वच्छ यशका धारक था। शत्रुओंके लिये शल्यस्वरूप था और समृद्ध था ॥४३॥ उस समय राजा ऐरावणके राज्यकालमें

राजवद्दूर्जितः । राजते रजनीशांशुयशाः शल्यं द्विषां महान् ॥ ४४ ॥ राजधान्यश्च पीलूनां वीराणामुग्रतेजसां । औत्कट्यं विद्यते भूमौ
वाहुवल्यादिवद्भृशं ॥ ४५ ॥ षट्सहस्रप्रमा रामाः संति ग्लौमुखपंकजाः । पृथुस्तनतला मध्ये क्षामास्तस्य रतिप्रभाः ॥ ४६ ॥ सुनाः
पंचशतान्यस्य वीरसेनादयो बभुः । मृगयासक्तचेतस्का योद्धारो रणकोविदाः ॥ ४७ ॥ प्रयाणसमये यस्य रारटन्ति महानकाः ।
एकलक्षप्रमा नूनं तावंतः पटहा हठात् ॥ ४८ ॥ विष्टरासीन आभाति घर्मतेजाः पुरन्दरः । शेषो वा शैलराजः किं स राजा दुर्जयो

प्रचण्ड तेजके धारक अगणित वीरोंकी राज धानियां वाहुवलि आदिकी राज धानियोंके समान पृथ्वीपर विद्यमान थीं । राजा ऐरावणके छह हजार रानियां थीं जो कि चन्द्रमाके समान मुखकमल की धारक थीं विशाल स्तनोंसे शोभायमान कृशोदरी और रतिके समान परम सुन्दरी थीं ॥ ४४—४५ ॥ राजा ऐरावणके वीरसेन आदि पांचसौ पुत्र थे जो कि शिकार खेलनेके बड़े शौकीन थे योद्धा थे अत एव संग्राम सम्बन्धी अनेक कलाओंके जानकार थे ॥ ४६ ॥ जिससमय राजा ऐरावणका किसी शत्रु आदिके प्रति प्रयाण होता था उससमय उसके आगे आगे एक लाख नगाड़े वजते थे तथा जिसप्रकार एक लाख नगाड़े वजते थे उसीप्रकार एक लाख ही पटह जातिके वाजे वजते थे । वह ऐरावण नामका राजा जिस समय सिंहानपर वैठता था उससमय ऐसा जान पड़ता था कि सूर्यके समान तेजका धारक यह साक्षात् इन्द्र है वा शेषनाग और मेरुपर्वत है विशेष क्या वह राजा समस्त शत्रुओंके लिये दुर्जय था—कोई भी शत्रु उसे जीतनेके लिये समर्थ न था ॥ ४७—४९ ॥

विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणिमें एक अलकपुर नामका नगर विद्यमान है । इस नगरका रक्षण करने वाला राजा महाकच्छ था और उसकी पटरानीका नाम दामिनी था । राजा महाकच्छके रानी दामिनीसे उत्पन्न एक प्रियंगुश्री नामकी कन्या थी जो कि सुन्दर रूपकी सीमास्वरूप थी—उससे

द्विरां ॥ ४६ ॥ विजयार्धोत्तरश्रेण्यामथाभात्यलकं पुरं। तत्र राजा महाकच्छो भामिनी तस्य दामिनी ॥ ५० ॥ तयोः पुत्री प्रियंगुश्री रूपसीमा वभौतरां। दृष्ट्वैकदा स तां राजा यौवनाक्रांतशैशवी ॥ ५१ ॥ इति चित्ते समादध्यौ कस्मा-एषा प्रदीयते। राज्ञे यो ग्याय रूपेण जितचेतोजतेजसे ॥ ५२ ॥ नैमित्तिकाद्वरं मत्वा स्तवकग्लुंछस्वामिन। कन्याया अकरोच्चिन्तां तदानयन एव सः ॥ ॥ ५३ ॥ मायासप्तिं पृथूरस्कं ह्रस्वकर्णं विधाय सः। जगाम स्तवकग्लुंछे मुक्तास्तवकमंडिते ॥ ५४ ॥ दुर्गं हि दूरतो दृष्ट्वा दुर्निरीक्ष्यं ततर्क नु। श्वेतांगः शैलराजो नु हैमशैलो नु देवपूः ॥ ५५ ॥ संभावयन्निति द्वारं सहस्रस्तंभतोरणं। पूर्वकाष्ठोदयं योऽन्दलक्षद्वादश

बढ़कर संसारमें कोई भी रूपवती उससमय कन्या न थी जिससमय कन्या प्रियंगुश्रीको यौवनसे मंडित देखा राजा महाकच्छके मनमें यह चिंता होने लगी—

अपने सुन्दर रूपसे कामदेवकी कांतिको फीके करनेवाले किस योग्य राजाके लिये यह कन्या प्रदान करनी चाहिये ? बस राजा महाकच्छने शीघ्र हा नैमित्तिकको बुलाया और उससे यह जानकर कि इस कन्याका स्वामी स्तवकग्लुंछ नगरका राजा ऐरावण होगा, शीघ्र ही वह उसको अपने नगरमें ले आनेकी चिन्ता करने लगा ॥ ५०—५२ ॥ अच्छी तरह सोच विचार कर राजा महाकच्छने शीघ्र ही विशाल वक्षस्थल और छोटे छोटे कानोंसे शोभायमान एक माया मयी घोड़ा बनाया एवं मुक्ताओंकी मालाओंसे शोभायमान स्तवकग्लुंछ नगरकी ओर प्रयाण कर दिया। स्तवकग्लुंछ नगरका किला एक विशाल किला था। राजा महाकच्छ उसे देखकर विचार करने लगा कि क्या यह कैलाश पर्वत वा मेरुपर्वत वा अन्य सुवर्ण मयी पर्वत अथवा कोई देवनगर है ऐसा विचार करता २ राजा महाकच्छ किलेके दरवाजेके पास पहुंच गया जो दरवाजा हजार स्तंभोपर लटकते हुए तोरणोंसे शोभायमान था। जिसका मुख पूर्वको ओर था एवं वीस लाख वीर योधाओंसे सदा रक्षित रहता था ॥ ५३—५५ ॥ इसप्रकार किलेको देखकर वह विद्याधर

रक्षितं ॥ ५६ ॥ विलोक्य दुर्गमं गत्वा वने व्याघुट्य वेगतः । अधिरुह्य हरिं रेमे नानाकौतुककृत्खगः ॥ ५७ ॥ राजपुत्रास्तदा रन्तु वीरसेनादयोऽखिलाः । आफेणुस्तद्वने दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तं सकौतुकं ॥ ५८ ॥ कोऽसि त्वं कुत आयातः कस्याश्वोऽयं निरूप्यतां । अलका दागत खेटोऽस्म्यहं मेऽश्वोऽतिदुर्धरः ॥ ५९ ॥ घोटकं दुर्धरं घण्टामालारावचलीकृतं । देहि तत्पाटवं लोक्य मूल्यं दत्वा ततः परं ॥ ६० ॥ गृण्हामीत्यगदीद्वीरसेनाख्यस्तं च खेचरं । आरूढं तं समावेद्य हरिर्वीरमपातयत् ॥ ६१॥ अश्वारोहेण ते जाता नष्टपाद करास्तदा । महापूत्कारमाकर्ण्यापफाणैरावणो नृपः ॥ ६२ ॥ घोटकं दुर्धरं मत्वा संस्थाप्योच्चैः सकधरं । आरुरोह महातेजास्तेजः

राजा महाकच्छ शीघ्र ही वनको लोट आया और घोड़ेपर सवार हो अनेक प्रकारके कौतूहल करने लगा । ५६ । राजा ऐरावणके वीरसेन आदि कुमार भी उसी वनमें क्रीड़ा करनेके लिये आये । घोड़े पर चढ़े विद्याधर महाकच्छको देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे इसप्रकार पूछने लगे—

भाई ! तुम कौन हो ? कहांसे आये हो और जिस घोड़ेपर तुम चढ़े हो वह किसका घोड़ा है ? उत्तरमें विद्याधर राजा महाकच्छने कहा-मैं अलकपुरसे यहां आया हूं । मैं विद्याधर हूं और यह वलवान घोड़ा मेरा है ।५७-५८। भाई ! घंटरियोके शब्दोंसे शोभयमान और चंचल तुम्हारा यह घोड़ा वड़ा दुर्घट जान पड़ता है । कृपाकर दीजिये हम इसकी चाल ढाल देखलें । यदि हमें जच गया तो हम मूल्य देकर इसे खरीद लेंगे । जब ऐसा कुमार वीरसेनने कहा तो विद्याधर महाकच्छने उसे घोड़ा देदिया । वीरसेन धोड़ेपर चढ भी लिया ज्यों ही घोड़ेने उसे अपने ऊपर चढ़ा देखा देखते २ शीघ्र नीचे पटक दिया । ५६।६०। और भी कुमार घोड़ेपर चढ़े परन्तु घोड़ेने एकको भी सवारी नहीं झेली, क्रम क्रम कर सबोंको नीचे पटक दिया जिससे हाथ पैरोंमें चोट आनेसे उन समस्त राजाकुमारोंमें हाहाकार मच गया । अपने पुत्रोका इसप्रकार हाहाकार सुन राजा ऐरावण शीघ्र वहांपर आया एवं अपने तेजसे चन्द्रमाको फीका वनाने वाला महातेजस्वी वह राजा ऐरावण

स्थगितचन्द्रमाः ॥ ६३ ॥ साष्टांगाष्टसहस्रं च नमस्कारं पुरा पुरोः । पुरस्तात् श्वेतशैले स चकारेतिहम प्रत्यह ॥ ६४ ॥ तत्पुण्योदयतस्तस्य पद्भ्यामश्वो हि कीलितः ! इवोत्पाटयितुं शक्तो न वभूव धरापतिं ॥ ६४ ॥ महोजसं नृपं मत्वा महाकच्छः खगाधिपः नत्वा कन्योद्भवां वार्तां चकार विनयान्वितः ॥ ६५ ॥ निशम्यरावणो राजा रराणेति खगेश्वरं । अहं नैमि रुचिस्ते चेद्रानय त्वं च कन्यकां ॥ ६६ ॥ इक्ष्वाकन्वयसंभूतनृपाणा स्त्र्यर्थमागमः । सञ्जाघटीति नो जातु लंघ्यते न कुलक्रमः ॥ ६७ ॥ सांप्र तं स

उत्तम गर्दनसे शोभायमान एवं अतिशय भयङ्कर उस घोड़े पर तत्काल सवार होलिया ।६१।६२। वह राजा ऐरावण प्रति दिन कैलाश पर्वतके आगे उस घोड़ेके साथ साष्टांग नमस्कार करता था । राजा ऐरावणके पुण्यके उदयसे उसके पैरोंसे वह घोड़ा कीलित हो गया था । अत एव वह राजा ऐरावणको कभी भी डाल नहीं सका था । ६३—६४ । विद्याधर महाकच्छकी यह इच्छा थी कि मैं घोड़ेके द्वारा राजा ऐरावणको अपनी राजधानी ले जाऊंगा और वहां ले जाकर अपनी कन्याके साथ उसका विवाह कर दूंगा परन्तु जब घोड़ा राजा ऐरावणके पैरोंसे कीलित हो गया तब उसकी कुछ भी तीन पांच न चली इसलिये राजा ऐरावणको प्रबल पराक्रमी जान विद्याधर महाकच्छने उसे नमस्कार किया एवं कन्या सम्बन्धी जो कुछ भी बात थी विनय पूर्वक सारी कह सुनाई ॥ ६५ ॥ विद्याधर महाकच्छकी यह बात सुन राजा ऐरावणने कहा—

मैं तुम्हारी राजधानी जाकर उस कन्याके साथ अपना विवाह नहीं कर सकता यदि मेरे साथ उस कन्याके विवाह करनेको तुम्हारी इच्छा है तो तुम उस कन्याको यहां ला सकते हो । क्योंकि जो राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए हैं स्त्रीके लिये वे कहीं भी नहीं जासकते, मैं भी तुम्हारे यहां जाकर अपनी कुल मर्यादाका लोप नहीं करना चाहता । ६६।६७ । राजा ऐरावणके ऐसे वचन सुन विद्याधर महाकच्छ अपने घर लोट आया और राजा ऐरावणके कहे अनुसार वह कन्याको ले ही जारहा था कि उसी समय यह घटना आकर उपस्थित हो गई ।

वचस्तस्य श्रुत्वा सदनमाययौ। नीत्वा सुतां समायाति तावदन्यकथाऽभवत् ॥ ६८ ॥ तत्रान्यो वज्रसेनाख्यः खगचक्री निशम्य तां। रूपसीमानमायात आहर्तुं पृष्ठतो वली ॥ ६९ ॥ ऐरावणपुराभ्यर्णे रणध्वानं निशम्य सः । ऐरावणोऽथ तं जित्वा परिणीय सुखं स्थितः ॥ ७० ॥ दिदीक्षे लज्जितो वज्रसेनाख्यस्तत्र आकरोत्। जाते वर्षसहस्रे स स्तवककलुंछमाययौ ॥ ७१ ॥ एकदा तं मुनिं दृष्ट्वा

विद्याधर नगर अलकपुरमें ही विद्याधरोंका चक्रवर्ती एक वज्रसेन नामका भी राजा रहता था कन्या प्रियंगुश्रीको परम रूपवती देख वह उसपर आसक्त होगया एवं राजा महाकच्छ जैसे ही उसे राजा ऐरावणके साथ विवाह करनेके लिये लेजारहा था वैसे ही वह कन्या प्रियंगुश्रीको हरण करनेके लिये राजा महा कच्छके पीछे २ चल दिया ॥ ६८—६९ ॥ राजा ऐरावणकी राजधानीके पास पहुंचते २ विद्याधर वज्रसेन और महाकच्छकी मुठ भेंट होगई। दोनों सेनाओंमें रणवाजा वजने लगा और युद्ध होने लगा। रण वाजोंका शब्द राजा ऐरावणके कानतक भी पहुंच गया। वह शीघ्र ही रण क्षेत्रमें आ पहुंचा। विद्याधर वज्रसेनको जीतकर कन्या प्रियंगुश्रीको व्याह लिया और विषय जनित सुखोंको भोगता हुआ सानन्द रहने लगा।

अपमान वड़ा दुख दायी होता है। राजा ऐरावणसे जब विद्याधर वज्रसेन हार गया तो उसे वड़ी लज्जा आई। लज्जित हो समस्त राज्यका उसने परित्याग कर दिया एवं दिगम्वरी दीक्षा धारण कर वे घोर तप तपने लगे। तप करते २ जब पूरे हजार वर्ष वीत गये तव विहार करते २ वे मुनिराज एक दिन राजा ऐरावणकी राजधानी स्तवककलुंछ नगरकी ओर आये और नगरके वाहिर किसी वगीचेमें आकर विराज गये ॥ ७० । ७१ ॥ किसी दिन वे मुनिराज पूर्ण ध्यानमें लीन थे कि जहा तहां वनमें क्रीडा करने वाले राजा ऐरावणके पुत्रोंने उन्हें देखा और वे मूर्ख मुनिमुद्राका कुछ भी महत्त्व न समझ हंसी उड़ाते हुये आपसमें इसप्रकार कहने लगे—

ध्यानस्थं च वने सुताः । ऐरावणस्य हास्येन भेणुरेवं परस्परं ॥ ७२ ॥ वराकोऽयं पुरा पिता वलिनामाऽकरोद्रणं । क्व यास्यत्यधुनेत्युक्त्वा चकपुस्तं तपोधनं ॥७३॥ मुनेः कर्मवशाज्जज्ञे क्रोधः प्रलयकारकः । तेन क्रोधेन तद्वामात्स्कंधाद्ग्निरुत्थितः ॥७४॥ पुरं जज्वाल सर्वत्र सलोकं सनृपं सखे ! । महापापभरेणाशु मुनिर्नरकमाविशत् ।७५। अतो नर्जकगोधस्य सक्रोधस्य मुनेरपि । साम्यमुक्तं मया मित्र ! तौ स्यातामर्थहारिणौ ॥७६॥ प्रतिपद्य तथागारमागत्य पितरं जगौ । प्रभोऽहं रत्नसद्वीपे यामि मित्रैः समं धने ॥७७॥ सुदत्तस्तं तदेत्याह

यह वही दुष्ट वज्रसेन नामका विद्याधर राजा है जिसने कि प्रियंगुश्रीके विवाहके समय अतिशय पराक्रमी भी हमारे पिताके साथ युद्ध किया था । रे दुष्ट ! अव तू कहाँ वचकर जायगा ऐसा कहकर उन तपस्वी मुनिराजको उन्होंने जकड़ कर पकड़ लिया और उन्हें मारने ताड़ने लगे । कर्मके प्रवल उदयसे मुनिराज वज्रसेनके प्रलय करनेवाला क्रोध उत्पन्न होगया । क्रोधके कारण उनकी वाईं भुजासे अग्निका फुलिंगा निकला जिससे मय प्रजा राजाके समस्त रत्नकम्लुछ्र नगर जलकर खाख हो गया एवं पापके तीव्रभारसे वह मुनि भी नरकमें गया । इसप्रकार क्रोधी मुनिराजकी कथा सुनाकर श्रेष्ठि पुत्र भद्रमित्रसे उसके मित्र अन्य श्रेष्ठिपुत्रोंने कहा—भाई भद्रमित्र ! इसीलिये हमने धन नहीं उपार्जन करनेवाले पुरुषकी और क्रोधी मुनिकी तुलनाकी थी क्योंकि धन न उपार्जन करनेवाला पुरुष और क्रोधी मुनि दोनों ही सञ्चित धनके नाश करनेवाले हैं अर्थात् जो हजारो वर्ष तप कर क्रोध कर लेता है उसका समस्त तप व्यर्थ चला जाता है और जो पुरुष कुछ भी धन न कमा कर संचित धनको बैठा २ खाता रहता है उसका भी धन समय आनेपर समस्त चला जाता है ॥ ७२—७६ ॥ अपने मित्रोंसे इसप्रकार धन न उपार्जन करने वालेकी निन्दा सुन भद्रमित्र अपने घर लौट आया और अपने पिता सेठ सुदत्तसे इसप्रकार कहने लगा—

पूज्य पिता ! मैं अपने मित्रोंके साथ धन कमानेके लिये रत्नद्वीप जा रहा हूं । अपने प्रिय पुत्र की यह बात सुन मोही सुदत्तने कहा—प्रियपुत्र ! हमारे बहुतसा धन विद्यमान है तुम क्यों धन

इत्य भूरितर सुत ! । विद्यतेऽस्माकमेतर्हि किमर्थं गम्यते त्वया ॥ ७८ ॥ एक एव सुतोऽस्माकं त्वं लघुर्ललितविग्रहः । प्रेषयित्वाथ तं पश्चात् योगी भूत्वा भ्रमाम्यहं ॥ ७९ ॥ तिरस्कृत्य पितुर्वाक्यमत्याग्रहतया गतः । रत्नद्वीपे समुत्तीर्य ललत्कल्लोलसागरं ॥ ८० ॥ तत्र स्थित्वाऽगमत्सिंहपत्तने भद्रमित्रवाक् ॥ ८१ ॥ सङ्गत्य सत्यघोषाख्यं मन्त्रिणं परमादरात् ॥ प्राचुर्य प्राभृतं मुक्त्वा पप्रच्छेति वणिक् सुतः ॥ ८२ ॥ युष्मत्प्रेम भवेत्तर्हि ममोपरि यदा विभो ! । निवासार्थं समायामि पत्तनेऽथ सुखाप्तये ॥ ८३ ॥ सत्यघोषेण सन्मान्य जगदे

कमानेकी इच्छासे परदेश जा रहे हो ! पुत्र ! तुम मेरे एक ही पुत्र हो तिसपर भी तुम सुन्दर शरीर के धारक छोटी उम्रके हो तुम्हें परदेश भेजकर क्या मैं योगी होकर पृथ्वीपर घूमूंगा ? ॥ ७८-७९ ॥ कुमार भद्रमित्रने अपने पिताके वचनोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया वह मोह तोड़ शीघ्र ही चल दिया एवं जिसमें प्रबल तरङ्गे उठ रही हैं ऐसे गम्भीर समुद्रको पारकर रत्नद्वीपमें जा पहुंचा ॥ ८० ॥ बराबर बारहवर्ष तक रत्नद्वीपमें रहा । रत्न आदि बहुतसा धन उपार्जन किया और घूमता २ वह कुमार भद्रमित्र एक दिन सिंहपुर नामक नगरमें आ पहुंचा । सिंहपुर नामका नगर उस समय अद्वितीय सुन्दरताका स्थान थाँ और उसमें सत्यघोष नामका राजमंत्री निवास करता था । कुमार भद्रमित्र ! आदर पूर्वक मन्त्री सत्यघोषसे मिला । बहुतसी उसे भेंट दी और उससे इस प्रकार पूछा—

स्वामिन् ! यदि आपका मेरे ऊपर प्रेम हो तौ मैं सुख भोगनेकी आशासे इस महामनोज्ञ नगरमें कुछ दिन निवास करूं ! कुमार भद्रमित्रकी यह बात सुन मन्त्री सत्यघोष बड़ा प्रसन्न हुआ । कुमारको उसने बड़े सन्मानकी दृष्टिसे देखा और बडे आदरसे यह कहा—

भाई ! तुम्हारे यहां रहनेसे मैं बड़ा प्रसन्न हूं । शीघ्र ही तुम अपने माता पिताको लेकर यहां आइये और रहिये । मन्त्री सत्यघोषकी बातसे कुमार भद्रमित्र बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ । कुमार भद्र

चेति सादरात् । आनय त्वं द्रुतं बंधो ! मातृपित्रादिसत्कुलं ॥ ८४ ॥ मन्त्रिवाक्यात्तदा तुष्टः सप्तरत्नानि तत्करे । स्थापयित्वा गतः पद्मखण्डाख्यं पत्तनं द्रुतं ॥ ८५ ॥ मातरं पितरं बन्धून पशूंश्चापि धनादिकं । नीत्वा समागतो भद्रमित्रः सिंहपुरे जवात् ॥ ८६ ॥ सत्यघोषं समेत्याशु ययाचे रत्नसप्तकं । तदा क्रोधारुणो भूत्वा प्रोवाचेति वणिक्सुतं ॥ ८७ ॥ रे रे दुर्गत ! रत्नानि कदाऽदायिषत त्वया मद्धस्ते ब्रूहि पापीयान् नाशोऽद्य भविता तव ॥ ८८ ॥ भद्रमितस्तदा प्राह द्वीपे रत्नादिनानि । गत्वा रत्नानि चानीथ त्वत्करे स्थापितानि भो ॥ ८९ ॥ तदा तत्सेवका भेणुर्येषा याति धनं महत् । तएव ग्रथिला नूनं भवेयुश्चिलमत किं ॥ ९० ॥ अर्धचन्द्रं तदा वाणं

मित्रके पास उससमय सात रत्न बहुमूल्यके थे। कुमारने उन्हें मन्त्री सत्यघोषको सौंप दिया और वह अपनी जन्मभूमि पद्मखण्ड नगरमें शीघ्र ही आगया। पद्मखण्ड नगरमें आकर भद्रमित्रने माता पिता भाई पशुगण और धन आदिक सबोंको साथ ले लिया और शीघ्र ही सिंहपुरमें आगया। ८१—८६ ॥ सिंहपुरमें आकर कुमार भद्रमित्र मन्त्री सत्यघोषसे मिला और जो सात रत्न उसे सोंपकर गया था वे उससे मांगे। बहुमूल्य सात रत्नोंके मिलनेसे मन्त्री सत्यघोषकी नीयति पहिले ही से बिगड़ चुकी थी। जिस समय कुमारने सात रत्न मागे मारे क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये एवं अनेक प्रकारकी ताडना करता हुआ वह भद्रमित्रको इसप्रकार दुर्वाक्य कहने लगा—

रे दरिद्रो ! तू महा पापी है। कह तो तूने मेरे हाथमें कब रत्न दिये थे ! याद रख इस प्रकार झूठ बोलनेसे तेरा काल तेरे शिरपर मड़रा रहा है ॥ ८७—८८ ॥ उत्तरमें भद्रमित्रने कहा—रत्नद्वीपमें जाकर मैं रत्न लाया था वे रत्न मैंने तुम्हें सोंपे थे तुम क्यों भूल रहे हो !। सत्यघोष और भद्रमित्रका यह आपसी झगड़ा देख सत्यघोषके सेवक कहने लगे—जिन मनुष्योंका विपुल धन चला जाता है वे ही संसारमें पागल सरीखे हो जाते हैं इसमें किसी बातका आश्चर्य नहीं। ॥ ८९—९० ॥ परदेशी भद्रमित्रको दुष्ट मंत्रीने एक बात भी न सुनी। बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रके

कण्ठे दत्त्वास्य धीमतः। मुष्टिघातैर्दृढं ताड्य स निष्कासित एव तैः॥ ९१॥ स्वद्रव्यहरणोद्भूतशोकव्याकुलिताशयः। चकार पूत्कृतिं गाढं राजद्वारे पुरेऽखिले॥ ९२॥ सत्यघोषोपि राजाग्रे लोकाग्रे सर्वतोपि च। ॥९३॥ चकार शपथं सैनाः शुद्ध्यर्थं स्वस्य दुष्टधीः। नृपस्याग्रेऽधमो गृध्नुरधीतोऽपि भृशं शठः॥ ९४॥ भद्रमित्रो निशाप्रांते रोरौत्या रुह्य भूरुहं। प्रत्यहं चेति पूत्कारं कुर्वन् कातरचेतसा॥ ९५॥ द्विजेनानेन दुष्टेन वंचितोऽहं विनागसा। किं करोमि क्व गच्छामि

एवं निरूपयामास निःस्वाः स्युर्ग्रथिला ध्रुवं॥

गलेमें अर्ध चन्द्र-अर्ध चन्द्रमाके आकार वाण गिरवा दिया। और मुक्कोंकी मार मार कर उसे नगर से वाहिर निकाल दिया॥ ९१॥ अपने द्रव्यके इस प्रकार अपहरण हो जानेसे भद्रमित्रका चित्त भयंकर शोकसे व्याकुल हो गया। उससे और तो कुछ नहीं वना समस्त पुर और राजाकी ड्योढी पर वह रोता चिल्लाता घूमने लगा॥ ९१-९२॥ मन्त्री सत्यघोषने भी राजा और पुरवासियों के सामने सब जगह यही वात स्वीकार की कि जिन मनुष्योंका धन चला जाता है वे निश्चयरूप से पागल हो ही जाते हैं॥ ९३॥ दुष्ट वुद्धि सत्य घोषसे जव यह पूछा गया कि क्या तुमने इसके रत्न लिये हैं? तो समस्त शास्त्रोंको पढ़कर भी वज्र मूर्ख महा लालची और नीच उस दुष्टने अपनी शुद्धिके लिये राजाके भी आगे न लेनेकी कसम खाई॥९४॥ जिसका धन चला जाता है उसका दुख वही जानता है विचारे भद्रमित्रको धनके चले जानेसे कल कहां थी उसने प्रति दिनका यह कार्य हाथमें ले लिया कि वह प्रति दिन प्रातः कालके समय वृक्ष पर चढ जाय और दीन चित्तसे इस प्रकार करुणा जनक चिल्लावे—

बिना अपराधके इस दुष्ट ब्राह्मण मन्त्रीने मेरे रत्न अपहरण कर मुझे ठग लिया है। मैं क्या करू कहां जाऊ और किसके सामने अपना रोना रोऊं॥ ९५-९६॥ रे मन्त्री! महाराज सिंहसेनकी प्रसन्नतासे तुम्हारे सब कुछ है। यह तुम निश्चय समझो छत्र और सिंहासनके विना सारा राज्य

कल्याग्रे च वदाम्यहं ॥ ९६ ॥ सिंहसेनमहाराजप्रसादेन न तेऽस्ति किं । छत्रसिंहासने मुक्त्वा ध्रुवं राज्यमिदं तव ॥ ९७ ॥ धर्मो यशो महत्त्वं च यात्यपहववदोषतः । विद्वानपि महाद्दोषं करोति त्वं कथं द्विज ! ॥ ९८ ॥ भवाम्यहं न शत्रुस्ते तथापि मम सद्धनं । अप हनुषे कथं मूढ ! द्विजाचारपराङ्मुख ! ॥९९॥ एकदा-रात्रिपाश्चात्ययामे पूत्कृतिमाकरोत् । तदा राज्ञी स्वके चित्ते ततर्केति गुणोज्वला ॥ १०० ॥ जानेऽहं नायमुन्मत्तः सर्वदानुगतं वदन् । अतोऽहमस्य विन्यायं न्यायं पश्यामि निश्चित ॥ १०१ ॥ इत्थमुक्तवतो राज्ञी

तुम्हारा है—तुझे इस प्रकार पर धन नहीं अपहरण करना चाहिये ॥ ९७ ॥ यह बात बिलकुल सत्य है कि जो मनुष्य किसोकी कुछ वस्तु हरण कर लेता है उसके उस अपहरण करने रूप बलवान दोषसे धर्म यश और उच्चपन सब गुण एक ओर किनारा कर जाते हैं अर्थात् अपहरण करने वाला मनुष्य धर्मात्मा यशस्वी और महान् कुछ भी नहीं माना जाता। रे ब्राह्मण मन्त्री ! विद्वान हो कर भी तू यह घोर पातक क्यों कर रहा है। भाई ! मैं तुम्हारा किसी प्रकारका शत्रु भी नहीं हूं तथापि न मालूम तुम मेरा क्यों इस क्रूरताके साथ धन अपहरण कर रहे हो । ब्राह्मणों का जो आचार विचार है नीच कर्मकर तुम क्यों उससे विमुख होते हो ॥ ९८—९९ ॥ एक दिनकी बात है कि वह रात्रिके पिछले पहरमें प्रति दिनकी तरह बडे जोरसे रो रहा था । राजा सिंहसेनकी रानी जो कि अनेक गुणोंकी भण्डार थी उसके कानमें भद्रमित्रके रोनेकी भनक पड़ी वह भद्रमित्रका इसप्रकार दुःख जनक रोना सुन मन हो मन इस प्रकार विचार करने लगी—

यह जो भद्रमित्र प्रतिदिन मन्त्रीको अपने धनका ठगनेवाला कह कर रोता चिल्लाता रहता है इसे लोग पागल कहते हैं, किन्तु यह पागल नहीं कहा जा सकता। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि राज दरवारमें जो कुछ भी न्याय किया गया है वह सर्वथा अन्याय है-मुख देखकर ही न्याय किया गया है ॥ १००—१०१ ॥ बस ऐसा अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर रानीने राजा सिंहसेनसे यह कहा

राजाग्रे भो नराधिप ! त्वयार्थांत:पुरे स्थैयं करोम्येतत्परीक्षणं ॥ १०२ ॥ प्रातरुत्थाय सा राज्ञी त्रिदशी संस्थिता रहः। तत्क्षणे स समायातः सत्यघोषो द्विजाग्रमः ॥ १०३ ॥ तत्रैव स्थापितो राज्ञ्या सन्मान्यासनदानतः। ततो द्यूतं समारेभे सार्कं तेन द्विजातिना ॥ १०४॥ प्राहेत्यमात्यमानन्दाद्रामदत्ता द्विजोत्तम ! । मया त्वं जीयसे चेत्तत् किं दद्या वद सांप्रतं ॥ १०५ ॥ अश्वं धनं गजं भूयो वस्त्रालङ्कारसंचयं । दद्यां च हारितस्तुभ्यं सत्यं जानीहि सर्वथा ॥ १०६ ॥ श्रुत्वाथ तद्वचो राज्ञी रराणेति रतिप्रभा । तत्सर्वं भवता प्रोक्तं समस्ति मम सौलभं ॥ १०७ ॥ मुद्रिकां नामसंयुक्तां संबद्धछुरिकां पुनः। यज्ञोपवीतमस्मभ्यं देयं देव ! द्विजांवर ! ॥ १०८ ॥

राजन् ! परदेशी भद्रमित्रका जो न्याय हुआ है वह मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ता। आज आप रणवासके अन्दर रहें, मैं स्वयं इस न्यायकी जांच करूंगी। दूसरे दिन प्रातः काल उठकर बुद्धिमती वह रानी एकांतमें बैठ गई। उसी समय ब्राह्मण मन्त्री सत्यघोष भी वहीं आ पहुंचा। भोजन आदिके द्वारा उसका रानीने भले प्रकार सन्मान किया। वहीं पर बिठा लिया और उसके साथ जूआ खेलना प्रारम्भ कर दिया ॥ १०२—१०४ ॥ रानी रामदत्ता बडी ही चतुर थी उसने आनन्दमय मीठे वचनोंसे इसप्रकार सत्यघोष मन्त्रीसे कहा—

हे विप्रोंके सरदार ! यदि इस जूआमें मैं तुम्हें जीत लूंगी तो कृपाकर कहिये तुम मुझे क्या दोगे ! शीघ्र कहो ! उत्तरमें मन्त्री सत्यघोषने कहा— यदि मैं आपके साथ हार गया तो आप निश्चय समझें मैं घोडा धन हाथी और नानाप्रकारके वस्त्र सभी कुछ आपको प्रदान कर दूंगा ॥१०५ ॥ १०६ ॥ मन्त्री सत्यघोषकी यह बात सुनकर रतिके समान सुन्दरी रानी रामदत्ताने कहा—

भद्र ! हारने पर जिन चीजोंके देनेका आपने वायदा किया है वे सारी चीज मेरे यहां विद्यमान हैं। मैं इन चीजोंकी लालसा नहीं रखती मुझे कुछ अपूर्व ही चीज तुम्हें देनी होगी और वह यह है कि हारने पर आप मुझे अपने नामकी मुद्रिका कटारी और यज्ञोपवीत प्रदान कर दें।

तथेति प्रतिपद्याशु रेमे द्यूतं निरंकुशः । अभाग्यवशतो मन्त्री निर्जितो रामदत्तया ॥ १०९ ॥ तदा तद्वितयं नीत्वा सानन्दांभोजलोचना । दत्त्वा निपुणमत्याख्यधात्री करतले शनैः ॥ ११० ॥ अत्रवोदीति हे धात्रि ! याहि शीघ्रं द्विजगृहे । एतत्पत्न्यै च दत्त्वैतद्भद्रमित्रकरण्डकं ॥ १११ ॥ याचयित्वा जवाद्देहि सागता प्रियभाषिणी । अभिज्ञानेन तन्नीत्वा रत्नसप्तकरंडकं ॥११२॥ आगत्यैव ददौ राज्ञ्यै तदादायि नृपाय वा । सिंहसेनोऽपि तन्नीत्वा सभायामागतो ध्रुवं ॥ ११३ ॥ कियद्भिः स्वीयरत्नैश्च मिश्रितानि विधाय सः । तानि प्राहेति हे वैश्य ! गृहाणैतत्स्वकं धनं ॥ ११४ ॥ भद्रमित्रः स्वरत्नानि जग्राह गुणगौरवः । विहायान्यानि रत्नानि तदा राज्ञेति तर्कितं ॥ ११५ ॥

ब्राह्मण सत्यघोषकी निर्मल भी बुद्धिपर उस समय बलवान मूढ़ताका आवरण पड़ा हुआ था। रानी-के कहे अनुसार उसने सब चीज देनी स्वीकार कर लीं। वह निरंकुश हो सानन्द जूआ खेलने लगा। दुर्भाग्य वश उस मन्त्रीको अपनी चतुरतासे रानी रामदत्ताने जीत लिया। कमलनयनी रानी रामदत्ताने मुद्रिका और कटार दोनों चीजे लेकर धीरेसे निपुणमती नामकी धायके हाथमें दे दीं और उससे यह कहा—

तू शीघ्र ही ब्राह्मण सत्यघोषके घर जा। इसकी पत्नीसे सात रत्नोंवाली पिटारी मांगला और मुझे जल्दी लाकर देदे। धात्री निपुणमती बड़ी ही प्रियवादिनी थी वह शीघ्र ही मन्त्री सत्यघोषके घर चली गई। अपनी चतुरतासे उसने सात रत्नोंकी पिटारी लेली। लाकर रानी रामदत्ताको दे दी। रानीने राजाके हाथमें वह पिटारी दे दी। राजा लेकर शीघ्र ही राज सभामें आ गया। वहां आकर उसने कुछ अपने रत्नोंके साथ मिलाकर वे सातो रत्न रख दिये। वैश्यपुत्र कुमार भद्रमित्रको राज-सभामें बुलाया और यह कहा—

भाई ! तुम अपने रत्नोंको पहिचान कर लो ॥ १०७—११४ ॥ वैश्य पुत्र भद्रमित्र एक ईमानदार व्यक्ति था। अनेक रत्नोंमेंसे उसने अपने सात रत्न चुनकर ले लिये एवं गुणशाली उस

अहो अयं महान् कोऽपि सत्यवाक् सुकृती नरः । निर्लोभः स्वकुलाचारे विदग्धो वञ्चितोऽमुना ॥ ११६ ॥ सत्यघोषो महापापी स्वधर्माचारदूरगः । असत्योक्तिः कृपाहीनो दण्डनीयो महाशठः ॥११७॥ प्राहेत्याकार्य भूमीशः स्वीयभृत्यान् प्रति क्रुधा । त्रिधा दण्डो विधातव्यो वाडवस्यास्य दुर्मतेः ॥ ११८ ॥ सर्वस्वहरणं पूर्वं विधेयं पूर्वरीतिभिः । चपेटा वज्रमुष्ट्याख्यमल्लस्य त्रिंशदूर्जिताः ॥ ११६ ॥ कांस्यपात्रत्रयापूर्णनवगोमयभक्षणं । कारितव्यमिति त्रेधा दण्डोदेयोऽविलम्बत. ॥ १२० ॥ तथाकारि भृशं भृत्यैर्यमसन्निभविग्रहैः ।

कुमारने अन्य रत्न वहींपर छोड़ दिये । वैश्यपुत्र भद्रमित्रकी यह लोकोत्तर निर्लोभता देख राजा सिंहसेन बड़ा ही प्रसन्न हुआ और मन ही मन इसप्रकार विचार करने लगा—

यह भद्रमित्र कोई सामान्य पुरुष नहीं किन्तु महान् सत्यवक्ता पुण्यवान निर्लोभ और कुलाचारमें चतुर पुरुष रत्न है अवश्य इस पापी सत्यघोषने इस महापुरुषको ठगा है । यह सत्यघोष महापापी धर्माचारणोंसे विमुख झूठा निर्दयी और वज्र मूर्ख है इसे अवश्य दण्ड देना उचित है ॥ ११५—११७ ॥ राजा सिंहसेनने शीघ्र ही मन्त्री सत्यघोषको राजसभामें बुलाया और क्रोधसे आगबबूला हो इसप्रकार सेवकोंको आज्ञा दी—

यह ब्राह्मण बड़ा भारी दुष्ट है इसके लिये तीन दण्ड मैं निश्चित करता हूं । प्रथम दण्ड यह है कि प्राचीन प्रथाके अनुसार इसका सारा धन हरण कर लिया जाय १ । दूसरा यह है कि वज्रमुष्टि नामक मल्लके तीस मुक्के इस पर पड़ें एवं तीसरा दण्ड यह है कि कांसेके तीन बर्तन ताजे गोबरसे भराये जांय और वह समस्त गोबर इसे खवाया जाय । इन तीन बातोंका प्रबन्ध बहुत शीघ्र कर देना चाहिये और इसे बहुत जल्दी दण्ड देना चाहिये ॥ ११८—११६ ॥ राजाकी आज्ञा पाते ही यमराजसरीखे क्रूरभृत्योंने शीघ्र ही अपना कार्य पूरा कर दिया । ठीक ही है जो भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा मानने वाले हैं बहुत शीघ्र वे अपने पर सोंपे हुये कार्यको कर डालते हैं ॥ १२० ॥ अप-

संजायन्त्यहो भृत्याः स्वनाथोक्तविधायिनः ॥ १२१ ॥ नृपे सम्बद्धवैरः सन् मृत्वार्तध्यानदूषितः । द्विजिह्वो गन्धनो नाम भांडागारे ऽजनिष्ट सः ॥ १२२ ॥ अतश्चौर्यं न कर्तव्यं तेन कीर्तिर्न जायते । अन्यायेनान्यवित्तस्य स्वीकारश्चौर्यमुच्यते ॥ १२३ ॥ सौजन्यं हन्यते भ्रंशो विस्रंभस्य धनादिषु । विपत्तिः प्राणपर्यंता मित्रबंध्वादिभिः सह ॥ १२४ ॥ गुणप्रसवसंदृब्धा कीर्तिरम्लानमालिका । लतेव दावसंप्लुष्टा सद्यश्चौर्येण हन्यते ॥ १२५ ॥ इतीदं जानता सर्वं सत्यघोषेण दुर्धिया । नैसर्गिकेण चौर्येण तद्रत्नापहृतिः कृता ॥१२६॥

राधी सत्यघोषको जब राजाने यह दण्ड दिया तो उसकी आत्माको अपमान जनित नितांत कष्ट हुआ । परिणामोंकी क्रूरतासे राजाके साथ उसने तीव्र वैर बांध लिया एवं आर्त ध्यानसे मर कर वह राजाके भण्डारमें सर्प हो गया ॥ २२१ ॥ ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि सत्यघोषकी यह दुर्दशा देख कर किसी मनुष्यको चोरी पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि चोरीका कार्य करनेसे संसारमें किसी प्रकारकी कीर्ति नहीं होती तथा अन्याय पूर्वक दूसरेका धन हरण कर लेना चोरी कहलाता है यह चोरी काम इतना निकृष्ट है कि इससे मनुष्योंकी सज्जनता नष्ट हो जाती है । धन आदिके सम्बन्धमें चोरी करनेवालेका विश्वास नष्ट हो जाता है । चोरी करनेवालेको जब तक वह जीता है तब तक मित्र बन्धु आदिके साथ सदा उसे आपत्तिका सामना करना पड़ता है। जिस प्रकार सुन्दर फूलोंसे शोभायमान और विकसित लता अग्निसे झुलस जाने पर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार चोरीका कार्य करनेसे अनेक गुणोंको उत्पन्न करनेवाली निर्मल कीर्ति भी नष्ट हो जाती है । यह सब जानकर भी दुर्बुद्धि सत्यघोषने स्वभावसे ही चोरी कर भद्रमित्रके रत्नोंका अपहरण किया था ।१२२—१२४। इस चोरी रूप पापके ही कारण उसे मंत्रिपदसे हाथ धोना पड़ा । उस प्रकारका तीव्र अपमान सहना पड़ा । १२५ । तथा राजा सिंहसेनने संतुष्ट होकर बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रको राजसेठ पद प्रदान किया ठीक ही है जब शुभका उदय होता है तब कौन सी दुर्लभ भी वात

सद्यो मन्त्रिपदाद्भ्रष्टो निग्रहं तादृशं गतः। दुर्गतिं च पुनः प्राप्तो महापापानुबंधिनीं ॥ १२७ ॥ संतुष्य नृपतिस्तस्मै भद्रमित्राय सद्धिये ज्येष्ठं श्रेष्ठिपदं भाग्यात् ददौ किं न शुभोदयात् ॥ १२८ ॥ इत्यमात्यस्य दुर्वृत्तं राजात्मनि व्यचिंतयत् । धम्मिल्लाख्याय विप्राय तत्साचिव्यपदं ददौ ॥ १२९ ॥ अथासनाटवी दुर्गा मृगजातिसमाकुला । नानादरीदरोद्गच्छद्दर्भांकुरविरोमधुः ॥ १३० ॥ तत्रास्ते विमलाद्युक्ति कांतारं तारभूतलं । कांतारं तत्र तन्नामा भूधरो विद्यते महान् ॥ १३१ ॥ तत्रैकदा समायासीद्वरधर्मो मुमुक्षुकः । वंदितुं तं गतो

नहीं प्राप्त हो जाती । १२६ । राजा सिंहसेनने मंत्री सत्यघोषके दुश्चरित्रपर बहुत समय तक विचार किया एवं उसकी जगह धम्मिल्ल नामके विप्रको मंत्रि पद प्रदान कर दिया ॥ १२७ ॥

इसो पृथ्वीपर एक भयंकर आसनानामकी अटवी विद्यमान थी जोकि अनेक प्रकारके मृगोंसे व्याप्त थी एवं अनेक गुफाओंके दरवाजोंपर ऊगे हुए दर्भके अंकूरोंसे शोभायमान थी । उस अटवीके अंदर विमल कांतार नामका वन था जो कि बिस्तीर्ण पृथ्वीतलसे शोभायमान था और कांतार नामका ही उसके अंदर एक विशाल पर्वत था । उसके अंदर एक बरधर्म नामके मुनिराज आये और उनका आगमन सुन भद्रमित्र नामका सेठ पुत्र उनकी वन्दनाके लिये गया । १२२— १३१ । मुनिराज वरधर्मने धर्मका उपदेश दिया । बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रने धनकी असारता जान बहुत सा दान करना प्रारम्भ कर दिया । पुत्रको इस प्रकार धारा प्रवाह दान देते देख उसकी माताको बड़ा क्रोध हुआ । यद्यपि उसने भद्रमित्रको बहुत रोका परंतु उस समय भद्रमित्रके चित्तमें दान देनेका पूरा उत्साह था इसलिये उसने अपनी माकी एक नहीं सुनी । भद्रमित्रकी उस समयको इस प्रकार दान परायणता देख भाट लोग इस प्रकार उसकी प्रशंसा करने लगे—

जो मनुष्य दानी है उसके लिये धन कोई चीज नहीं । जिनके चित्तमें राग भाव नहीं मोह उनका कुछभी नहीं कर सकता । जो शूरवीर हैं उनके लिये रण क्या चीज हैं वे निर्भय

भद्रमित्रनामा वणिक्सुतः ॥१३२॥ श्रुत्वा धर्मं ततः प्राज्यं ददौ दानं स धीधनः । व्ययीकुर्वंतमालोक्य तस्मै माता चुकोप च ॥१३३॥ सविवृत्या वार्यमाणोऽपि दानं दातुं समुत्सुकः । बभूव च तदा कीर्तिर्वैतालिकमुखोद्गता ॥ १३४ ॥ दातॄणां कोधनोऽ रागचित्तानां मोह एव कः । शूराणां कातराणां च रणौत्सुक्याटनं च किं।१३५। कोपादसहमाना सा तद्दानं दुर्मतिप्रिया । काले मृत्वासनाटव्यां व्याघ्री जज्ञे विधेर्वशात् ॥१३६॥ रौद्रध्यानाद्भवेज्जीवो व्याघ्रमार्जारयोनिषु । प्रयाति पन्नगीभूय बुधोऽतस्तत्परित्यजेत् ॥१३७॥ एकदा भद्रमित्राख्यः क्रीडार्थं तद्वनं गतः । दृष्ट्वा तं सा महाकोपादखादत्स्वसुतं त्वरा ॥ १३८ ॥ यतः क्रोधो यतो माया यतो धर्मार्थनाशनं यतो वैरं यतो हिंसा धिक्तं लोभं च नाचरेत् ॥ १३९ ॥ स मृत्वा स्नेहतो भव्यो रामदत्तोदरेऽभवत् । सिंहचन्द्रः सुतो धीमान् मोन

होकर रणमें जाकर युद्ध करते हैं। भद्रमित्रकी मा अत्यन्त दुर्बुद्धि थी भद्रमित्रके द्वारा दिये गये दानको मारे क्रोधके उसने अच्छा नहीं कहा मरकर वह कर्मके उदयसे उसी आसना नामकी अटवीमें व्याघ्री हो गई। ठीक ही है रौद्रध्यान ऐसी बुरी चीज है कि उससे जीवको व्याघ्री और बिल्ली आदिकी योनियोंमें जन्म धारण करना पड़ता है। सर्प हो जाना पड़ता है इसलिये जो बुद्धिमान हैं उन्हें चाहिये कि वे रौद्रध्यानका सर्वथा त्यागकर दें--कभी उसके जालमें न फसें॥१३२—१३९॥ एक दिनकी बात है कि सेठ भद्रमित्र क्रीड़ार्थ वनमें गया। उसकी पूर्वभवकी मा व्याघ्रीकी दृष्टि उसपर पड़ी और उसने पूर्वभवके बैरके कारण भद्रमित्रको खा डाला। यह निश्चय है कि इस दुष्ट लोभके ही कारण क्रोध, माया, धर्म और धनका नाश एवं बैर होता है इसलिये ग्रन्थकार कहते हैं कि ऐसे दुष्ट लोभके लिये धिक्कार है॥१३७।१३८॥ राजा सिंहसेनकी रानी रामदत्ताने भद्रमित्रकी पूर्ण प्रतिष्ठा रक्खी थी इसलिये भद्रमित्र रानी रामदत्तासे विशेष स्नेह रखते थे और उसे अपनी मासे भी अधिक मानते थे।

जिस समय व्याघ्रीके खानेके बाद सेठ भद्रमित्रकी मृत्यु हुई वह पूर्व भवके स्नेहके संबंधसे

बे तुरिवापरः ॥ १४० ॥ पुत्रोऽह्नजस्ततो जज्ञे पूर्णचन्द्रो विशालदृक् । सिंहसेनस्य भूपस्य बल्लभौ तौ बभूवतुः ॥ १४१ ॥ रामापुत्राधिपत्योत्थं सुखं राजा बुभोज सः । लोकोत्तरं सुखं प्राप्य के न स्युर्मग्नमंथराः ॥ १४२ ॥ भाण्डागारानलोकार्थमेकदा काश्यपीपतिः । गतो रत्नादिसद्वस्तु दृष्ट्वा निर्यात्यसौ यदा ॥ १४३ ॥ दृशानिलस्तदा क्रोधाग्रसुः श्रुतिरगंधनः । धराधीशं महावैरानुरूपणोऽरुणलोचनः ॥ १४४ ॥ पपात परिणीनागो भूमन्ते पविनादिन. ।

रानी रामदत्ताके गर्भसें आकर अवतीर्ण हो गया । उत्पन्न होनेपर सिंहचन्द्र उसका नाम रक्खा गया जो कि एक उत्तम बुद्धिका धारक था । कुमार सिंह चन्द्रका छोटा भाई एक दूसरा कुमार था जिसका कि नाम पूर्णचन्द्र था एवं वह अपने विशाल नेत्रोंसे अत्यन्त शोभायमान था । सिंहचन्द्र और पूर्णचन्द्र दोनों ही कुमार राजा सिंहसेनको बड़े ही प्यारे थे ॥ १३९—१४० ॥ इस प्रकार आज्ञाकारी स्त्री और दोनों पुत्रोंको पाकर राजा सिंहसेन लोकोत्तर संसारीक सुखका अनुभव करते थे । ठीक ही है लोकमें अद्वितीय सुख पाकर सभी आनन्दमें मग्न हो जाते हैं ॥ १४१ ॥ एक दिन राजा सिंहसेन अपने भण्डारके देखनेके लिये गये । उसमें रहनेवाली रत्न आदि वस्तु देखकर वे लोटते ही थे कि मन्त्री सत्यघोषके पूर्व भवके जीव अगन्धन सर्पकी दृष्टि उनपर पड़ गई । पूर्व वैरके सम्बन्धसे वह दुष्ट क्रोधसे आग बबूला हो गया । फणां ऊंचेको कर लिया । क्रोधसे दोनों नेत्र लाल कर लिये और सिंहसेनको डस लिया ॥१४२—१४३॥ वह सर्प एक अत्यन्त विषमय सर्प था इसलिये जिस प्रकार वज्रसे पर्वत नीचे गिर जाता है । पवनके तीव्र आघातसे वृक्ष उखड़ कर जमीन पर गिर पड़ता है उसी प्रकार राजा सिंहसेन भी सर्पके डसते ही नीचे जमीन पर गिर गये । महा राजकी यह दशा देखकर उसी समय अनेक वैद्य बुलाये गये और उनसे विषके नाश करनेके लिये कहा गया परन्तु उनमेंसे एक भी विषके नाश करनेके लिये समर्थ न होसका । अन्तमें गारुड़

उर्वीधरोऽथ वा वृक्षो वायुवेगाकुलीकृतः ॥ १४५ ॥ नानावैद्याः समाहूता विपनाशार्थमंजसा । ते सर्वे तद्विषं हर्तुं शक्नुवंतिस्म नो यदा ॥ १४६ ॥ तदा गारुडदण्डाख्यो विषवैद्योऽहिमर्दकः । आहूतो मन्त्रवित्प्राज्ञः ,पन्नगाकर्षणोत्कटः ॥१४७॥ मन्त्रं स्मृत्वा तदा तेन समाहूताश्च पन्नगाः । दिग्विदिक्संस्थिताः सर्वे समायाता भयार्दिताः ॥ १४८ ॥ उवाच विपवैद्यस्तान् दन्दशूकानिति स्फुटं । अग्नि कुंडं प्रविश्याशु निर्दोषा यांतु शुद्धितां ॥ १४६ ॥ मन्यथा निगृह्णिष्यामि तेनेत्युक्तास्तु पन्नगाः । जलाश्रयादिवाक्लेशान्निर्यांतिस्म

दंड नामके विष वैद्यको वुलाया गया जो कि सर्पोंकेमानको मर्दन करने वाला था मंत्रोंका जानकर विद्वान और सर्पोंको अपने पास खींचलानेमें बड़ा चतुर था ॥१४४—१४६॥ वस वहां आकर उसने अपने मंत्रका स्मरण किया। जिससे भयसे व्याकुल हो दिशा विदिशाओंमें रहनेवाले समस्त सर्प उसने अपने पास वुला लिये और वे सबके सव आगये ॥ १४७ ॥ जिस समय वे समस्त सर्प आ पहुंचे गारुड़दण्डने उनसे कहा—

तुम लोग इस अग्निकुण्डमें प्रवेशकर शुद्ध हो और निर्दोष होकर अपने अपने स्थानोंपर चले जाओ। यदि तुम लोग यह कार्य न करोगे तो याद रक्खो मैं तुम्हें कठोर दण्ड दूंगा। वस उस विषवैद्यके कहते ही चट पट समस्त सर्प अग्निकुण्डमें गिर गये एवं जिस प्रकार जलसे निकलकर बाहिर आजाते हैं और किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता उसी प्रकार वे समस्त सर्प अग्निसे निकल आये उन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। अगंधन नामका सर्प जो कि बिजलीके समान चंचल जीभका धारक था एवं क्रोधसे उसके दोनों नेत्र जाज्वल्यमान थे ज्योका त्यों खड़ा रहा। उसने बिषवैद्यकी कुछ भीनहीं सुनी। विषवैद्यको मालूम पड़ गया कि यही अपराधी हैं इसलिये उसने इस प्रकार कड़ककर कहा—

या तो तू इस राजाका विष पीकर इसे उज्जीवित करदे यदि तुझे यह वात मंजूर न हो तो

हुताशनात् ॥ १५० ॥ अगंधनः स्थितस्तत्र विमुजिह्वोऽग्निदृक्कुधा । तत्रा प्राहेति न वैद्यो मुंचैनं वानलं विश ॥ १५१ ॥ महावैरोत्थ क्रोधेन भक्षितोऽग्नावगंधनः । कोलकाख्ये वने जज्ञे सलोभश्चमरोमृगः ॥ १५२ ॥ सिंहसेनो नरो मृत्वा कालेन सल्लकीवने । स.मजोऽभूत्मदोन्मत्तोऽशनिघोषाभिधः परः ॥ १५३ ॥ तच्छोचनादिसंप्लुष्टवपुर्यष्टिर्विचक्षणा । रामदत्ता महामोहाद्विललाप कृपारवैः ॥ १५४ ॥ कराघातैश्च सा वक्षस्ताडयन्ती पुनः पुनः । पतंती भूतले भूषां विक्षेपाम्लानलोचना ॥ १५५ ॥ हा नाथ ! मदनावास ! मम प्राणाधिकप्रिय ! ॥ शत्रुपुराग्निजीमूत ! पूर्णे पांकस्य दीर्घदृक् ।१५६। विलासिनीमुखाम्भाजपुष्पप्रिय ! रतिप्रिय ! । मुक्त्वैकां मां महारा-

इस अग्निकुण्डमें प्रवेशकर। दोनों मार्गोंमेंसे एक मार्गका तुझे अनुसरण करना होगा। सर्प अगंधनकी आत्मा पूर्वभवके महाबैरसे पजली हुई थी उसने राजा का विष पीना स्वीकार नहीं किया। वह अग्निकुण्डमें प्रवेश कर खाख होगया एवं वह लोभी मरकर कीलक बनमें चमर नामका मृग हो गया। १४८—१५१। राजा सिंहसेन भी मरकर सल्लकीवनमें अशनिघोष नामका मदोन्मत्त हाथी हो गया॥ १५२ ॥ राजा सिंहसेनके मरजाने से रानी रामदत्ताका शरीर शोकाग्निसे दग्ध होगया। वह करुणा जनक रोना रोने लगी। मारे शोकसे वह हाथोंसे वक्षःस्थल कूटने लगी। जमीनपर पड़ गई। समस्त भूषण बसन उतारकर उसने फेंक दिये। एवं रोते रोते उसके नेत्र फीके पड़ गये। वह इस प्रकार चिल्लाकर रोने लगीं—

कृपानाथ.? तुम कामदेवके समान सुन्दर थे। प्राणोंसे भी अधिक प्यारे थे। शत्रुरूपी अग्नि-के लिये मेघ थे। पूर्णमासोके चन्द्रमाके समान विशाल नेत्रोंके धारक थे। स्त्रियोंके मुख रूपी कमलोंके भ्रमर थे और रतिकलामें प्रेम करने वाले थे। प्राण प्यारे। अभागिनी मुझ अकेलीको छोड़ कर आप कहां चले गये। १५३—१५६। मैं क्या करू कहां रहूं और तुम्हारे बिना प्राणोंको कैसे राखूं। नाथ। तुम्हारे बिना यह समस्त राज्य मुझे विषको ज्वालाके समान भयंकर ,जान पड़ रहा

जन् ! सांप्रतं क गतोऽसि हा ॥१५७॥ किं करोमि क तिष्ठामि कथं प्राणान् दधाम्यहं । विना त्वां भूतले राज्यं विषज्वालोपमं मम ।१५८। विद्यमाने धवे स्त्रीणां तन्नयद्दुष्कर' वत । तदभावे हि राज्यादि पराधीनत्वतोऽरिवत् ॥ १५६ ॥ विलाप भूरि कृत्वेव विरराम नृपप्रिया तदा तत्र समायाते द्वे आर्ये प्रतिबोधने ॥ १६० ॥ एका दांतमती ख्याता हिरण्यादिमती परा । एताभ्यां रामदत्ता सा बोधिताख्याय सद्वृष' ॥ १६१ ॥ द्रव्यक्षेत्रादिसद्भावं ज्ञात्वाभ्यर्णे तयोस्तदा । जग्राह संयमं शुद्धं रामदत्ता पवित्रधीः ॥ १६२ ॥ सिंहचन्द्रोऽभवद्राजा सिंहोऽरातिगजोत्करे । पूर्णचन्द्रोलघुभ्राता यौवराज्ये बभूव च ॥ १६३ ॥ तयोर्भुजानयो राज्यमिवाभूद्वत्सरः क्षण' । एकदा सिंहचन्द्रस्य पित्रोर्दुःखं द्रुतागतं ॥ १६४ ॥ तदानीमागतं श्रुत्वा पूर्णचन्द्राभिधं मुनिं । गत्वा नत्वा द्विधाधर्मं श्रुत्वा वैराग्यमाप सः

है । स्वामिन् ! पतिके विद्यमान रहते ही राज्य आदि समस्त पदार्थ सुखकर होते हैं किंतु उसके मरते ही पराधीन हो जानेके कारण वे सब शत्रुके समान दुःखदायी हो जाते है ॥ १५७ ॥ १५८ । इस प्रकार वहुतसा बिलापकर बड़ी कठिनतासे रानी रामदत्ता शांत हो पाई थी कि उस समय उसे प्रति बोध देनेके लिये दो आर्यिकाये आईं । दांतमती और हिरण्मती दोनों आर्यिकाओंके ये दो नाम थे । रानी रामदत्ताको धर्मका उपदेश दे संबोधा । रानी रामदत्ता भी पूर्ण-पंडिता थो । द्रव्य चेत्र आदिका स्वरूप समझकर उसने उन्हीं दोनों आर्यिकाओंके समीपमें संयम धारण कर लिया ॥ १५६—१६१॥ राजा सिंहसेनके मर जाने पर कुमार सिंहचन्द्र राजा बने जो कि शत्रुरूप हाथियोंका मान मर्दन करने वाले थे;एवं उनके छोटे भाई कुमार पूर्ण चन्द्रको युव-राज पद प्रदान किया गया । १६२। राजा सिंहचन्द्रको राज्य करते करते एक हो वर्ष व्यतीत. हुआ था कि अकस्मात् उनके;चित्तमें पिताका दुःख उत्पन्न हो गया । उसी समय एक पूर्णचन्द्र नामके मुनिराज भी वहां पर पधारे थे । राजा सिंहसेन उनका आगमन सुन उनके पास गये । भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । मुनिराजके मुखसे यती और श्रावकका धर्म सुना जिससे उन्हे संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया ॥ १६३—१६४॥ राजा सिंहचन्द्रने कुल परंपरासे प्राप्त राज्य अपने छोटे

२६६

॥ १६५ ॥ लघवे पूर्णचन्द्राय दात्वा राज्यं क्रमागतं । सिंहचन्द्रोहि तत्पार्श्वे गृहीतसंयमो मुनिः ॥ १६६ ॥ सिंहचन्द्रोऽप्रमादः सन्नप्रमादगुणस्थितः । स तपोनानाविधं कुर्वन् चारणपदं समैत् ॥ १६७ ॥ तुर्यावगमोत्कर्षं पुनः प्राप तपोबलात् । सार्धद्वीपसूक्ष्मादि-पदार्थविषयं गतः ॥ १६८ ॥ मनोहरवनोद्याने रामदत्तेकदा मुदा । सिंहचन्द्रं तपःसंस्थं दृष्ट्वा तं वदितुं गता ॥ १६९ ॥ नत्वेति तं

भाईको प्रदान किया एवं मुनिराज पूर्ण चन्द्रके चरणकमलोंमें दिगम्बरी दीक्षा धारण करली २६५ मुनिराज सिंहचन्द्रने जिस समय विक था कषाय आदि प्रमादोंका नाश किया उससमय वे अप्रमत्त गुणस्थानके पात्र बनगये । वे अनेक प्रकारके तपोंका आचरण करने लगे जिससे तपोंके प्रभावसे उन्हें चारण ऋद्धि प्राप्त हो जानेके कारण वे चारण ऋद्धिधारी मुनिराज बन गये । तपके बलसे उन्हें मनः पर्यय नामका चौथा ज्ञान प्राप्त हो गया जिससे ढाई द्वीपके अंदर रहनेवाले शुभ पदार्थोंको वे अच्छी तरह जानने लगे ॥ १६५—१६७ आर्यिका रामदत्ताने मनोहर नामके बनमें तप करते हुए मुनिराज सिंहचन्द्रको देखा इसलिये प्रेम पूर्वक वन्दना करनेके लिये वह उनके पास गई भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया मुनिराज सिंहचन्द्र आर्यिका रामदत्ताके उसीभवके बड़े पुत्र थे इसलिये उन्हें देख पुत्रस्नेहसे उसका हृदय उमड़ आया । एवं मोहसे गद्गद हो वह इसप्रकार स्तुति करने लगी—

मुने ! युवा अवस्थामें राज्यका त्याग कर आपने यह मुनि मुद्रा धारण की है इसलिये आपके लिये धन्यवाद है तुम राजा सिंहसेनके बश रूपी कमलके लिये सूर्य समान हो । विद्वान भव्यरूपी चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमाके समान हो और संसारसे पार होने वाले महापुरुष हो । बस इस प्रकार स्तुतिकर आर्यिका रामदत्ता मुनिराज सिंहचन्द्रके समीप बैठ गई एवं बार बार आदर पूर्वक उनके तपकी कुशल पूछने लगी तथा उसने इसप्रकार मुनिराजसे कहा—

सुतं स्नेहाद्रामदत्ता नयत्स्तुतिं। धन्यस्त्वं यौवने साधो ! राज्यं त्यक्त्वा भवेद्यतिः ॥ १७० ॥ सिंहसेनान्वयाम्भोजकर्मसाक्षी कलानिधिः। भव्यविद्वन्मकोरेषु त्वं संसारतरस्तरां ॥ १७१ ॥ स्तुत्वा स्थित्वा तदभ्यर्णे कुशलं तत्तपोविधौ । अन्वयुक्तादराद्दिव्या राम दत्ता मुहुर्मुहुः ॥ १७२ ॥ पप्रच्छेति मुनिं भूयः सा साधो ! तव बांधवः । पूर्णचन्द्राभिधो राज्यं धर्मं त्यक्त्वा भुनक्त्यरं ॥ १७३ ॥ सुखाकाक्षी स किं धर्मं गृही [illegible] वा नहि। ब्रूहि त्वं ज्ञानमार्गेण याथातथ्यं तपोनिधे ! ॥ १७४ ॥ सिंहचन्द्रो मुनिः प्राह युष्मद्धर्मं गृहीष्यति। रामदत्ता पुनः प्राह कथं साधो ! निगद्यतां ।१७५।मुनिः प्राह भवास्तस्य श्रुत्वा तान्मन्निरूपितान्। तदग्रे ज्ञानमार्गेण कथ

मुनिनाथ ! तुम्हारा वन्धु राजा पूर्णचन्द्र धर्मकी कुछ भी पर्वा न कर राज्य सुख भोग रहा है वह मुझे विषय सुखोंका प्रेमी जान पड़ता है कृपाकर कहिये कि वह पवित्र धर्मको धारण करेगा या नहीं क्योंकि तुम दिव्य ज्ञाननेत्रके धारक महापुरुष हो इसलिये अपने दिव्य ज्ञानके द्वारा यह बात मुझे समझा दीजिये ॥१६८—१७३॥ उत्तरमें मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा वह नियमसे जैन धर्मको धारण करेगा इस बातमें कोई सन्देह नहीं। रामदत्ताने फिर पूछा—प्रभो। किस उपायसे वह जैनधर्म धारण करेगा कृपाकर कहिये। उत्तरमें पुनः मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा—

मैं अपने अवधिज्ञानसे पूर्णचन्द्रके भवोंका वर्णन करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो और पूर्णचन्द्रको जाकर कह दो। तुम निश्चय समझो जिससमय वह अपने पूर्व भवोंको सुनेगा राज्य सुखमें अतिशय मग्न रहने पर भी वह नियमसे संसारसे विरक्त हो जायगा और दिगंबरी दीक्षा धारण करेगा। मुनिराज सिंहचन्द्रसे यह राजा पूर्णचन्द्रके वैराग्यका उपाय सुन आर्यिका रामदत्ता वडी प्रसन्न हुई और बड़े आदरसे उसने मुनिराजसे यह कहा—कृपाकर राजा पूर्णचन्द्र के पूर्वभवोंको आप कहिये मैं सुननेके लिये तयार हूं। उत्तरमें मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा—मैं खुला सा रूपसे राजा पूर्णचन्द्रके पूर्वभवोंको कहता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

यन्तु सुभावतः ।१७६। श्रुत्वा स्वभवसम्बन्धं निर्विण्णो भवसागरे । अधिगम्याधिपत्ये स वैराग्यं प्रव्रजिष्यति ।१७७।न् ध्वं तद्भवसंबंधं शृणोमि सादरं यतः । तदा प्राह मुनिः सुष्ठु शृणुतास्य भवस्थिति'।१७८।जंबूद्वीपेत विख्याते भारते विषयो महान् । कोशलः कुशलैर्लोकैः संपूर्णः सम्पदा भृतः ॥ १७६ ॥ वृद्धपौरैः समाकीर्णो वृद्धग्रामो मनोहरः। मृगायणाभिधस्तत्र विद्यते वाड़वाग्रिमः ।१८०। धर्मपत्नी च तस्यै व बभूव मधुराह्वया । स्वर्गचम्पकसद्वर्णा भर्तुः स्वेच्छानुचारिणी ।।१८१।। बभूव वारुणीनाम्ना तयोः पुत्री विशालधीः । मृगायणो ऽथ कालांते मृतो भोगप्रियो ध्रुवं ॥ १८२ ॥ अथ प्राक् पुरुदेवस्य भक्त्ये निर्मितामरैः । साकेता द्विरसैस्त्रियुक् योजनैर्भाति भूतले ॥ १८३ ॥ तत्र राजारिसन्तानध्वंसी सामन्तसेवितः । रराजातिवलो नाम्ना तिमीशवदनो महान् ॥ १८४ ॥ तस्य रामा रमेवासीत्सुम-

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कोशल नामका महादेश है जो कि विद्वान लोगोंसे परिपूर्ण है और संपदाका खजाना है। कोशल देशमें एक वृद्धग्राम नामका महामनोहर नगर है जो कि सब बातोंमें वृद्ध पुरवासी जनोंसे भरा था। वृद्धगाम नगरमें एक मृगायण नामका ब्राह्मणोंका सरदार रहता था। उसकी धर्मपत्नीका नाम मधुरा था जो कि सोना और चंपाके रङ्गके समान महामनोहर वर्णकी धारक थी और पतिकी अतिशय आज्ञाकारिणी थी ॥१७४—१८०॥ उन दोनों ब्राह्मण और ब्राह्मणीके एक वारुणी नामकी पुत्री थी जो कि अत्यन्त बुद्धिमती थी कदाचित् काल पाकर उसका पिता मृगायण मर गया ॥ १८१—१८२ ॥

इसी पृथ्वीपर एक साकेता नामकी नगरी है जिसका कि निर्माण भगवान ऋषभ देवके समयमें उनकी भक्ति प्रगट करनेके लिये देवोंने किया था और जो बारह योजन पर्यन्त पृथ्वीपर विस्तीर्ण है। साकेता नगरीका स्वामी राजा अतिबल था जोकि अपने शत्रु राजाओंके वंशका नाश करनेवाला था। अनेक सामंतोंसे सेवित था। चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान और महान था ॥ १८३ । १८४ ॥ राजा अतिवलकी रानीका नाम सुमति था जो कि लक्ष्मीके समान परम सुन्दरी

त्याख्या पिकस्वना । श्यामा रक्ताधरा हंसगतिर्गंभीरगीर्वरं ॥ १८५ ॥ तयोर्हिरण्यवत्याख्या पुत्री जाता मृगायणः । भोगोदयविपाकेन स्त्रीत्वं प्राप्नोति मानवः ॥ १८६ ॥ विवादिनो वदंतीत्थं नास्तिकैकांतदृष्टयः । गोधूमादिसुजातीनां प्रादुर्भावो हि नान्यथा ॥ १८७ ॥ नरत्वं स्त्री नरः स्त्रीत्वं पशुर्नृत्वं नरस्तथा । प्राप्नुयान्नविचारेण क्षेत्रधान्यादिवद्गतिः ॥१८८॥ वादिनो भो भवद्भिश्च यदुक्तं सत्यमेव तत् । यद्धान्यमुप्यते क्षेत्रे तद्धान्योत्पत्तिरेव हि ॥ १८९ ॥ जैनाः कर्मप्रधानीयाः नानाकर्माणि संत्यहो । अभुक्त्वा तत्क्षयो नास्ति कल्पकोटिशताधिकैः १९० ॥ आत्मक्षेत्रं समादिष्टं तत्त्वज्ञानादसंशयं । कर्मबीजोदयो यादृक् समुत्पत्तिस्तु तादृशी ॥ १९१ ॥

थी। कोकिलाके समान वचन बोलने वाली थी। श्यामा थी। लाल २ होंठोंकी धारक हंसके समान मनोहर गतिसे चलनेवाली गम्भीर वचन बोलनेवाली और प्रशस्त थी ॥ १८५ ॥ मृगायण का जीव ब्राह्मण, रानी सुमतिके गर्भसे हिरणवती नामकी पुत्री हुआ ठीक ही है। अति रूपसे भोग विलास करनेवाला पुरुष भी स्त्री हो जाता है ॥ १८६ ॥ जो पुरुष एकांत मिथ्यादृष्टि और नास्तिक है उनका कहना यह है कि गेंहू आदि पदार्थोंके समानही जीव पदार्थकी उत्पत्ति होती है, जीव पदार्थ अनादिनिधन नहीं क्योंकि वे यह मानते हैं कि चेत्रमें जिस प्रकार धान्यसे दूसरा धान्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार स्त्रीसे पुरुष पुरुषसे स्त्री पशुसे पुरुष पुरुषसे पशु स्वभावसेही उत्पन्न हो जाता है ॥१८७--१८९॥ ग्रन्थकार इसका उत्तर देते हैं कि तुम्हारा एकान्त मिथ्यादृष्टि वादियोंका कहना कथंचित ठीक है क्योंकि चेत्रमें जो धान्य बोया जाता है उसी धान्यकी उत्पत्ति होती है जैन सिद्धांतके अनुयायी पुरुष कर्मको प्रधान मानते है। वे कर्म अनेक प्रकारके हैं। विना उनका फल भोगे करोड़ों कल्पकाल क्यों न वीत जाय उनका चय नहीं हो सकता ॥१९०॥ यह निश्चय है तत्त्व ज्ञानियोंने अपने तत्त्व ज्ञानसे आत्माको चेत्र कहा हैं उसमें जैसा कर्म रूपी बीज पड़ता है वैसी ही उत्पत्ति होती है अर्थात् पुरुषपनेका कारण यदि कर्म उत्पन्न होगा तो पुरुष उत्पन्न होगा।

अतः कर्मविपाकेन नानायोनित्वमाश्रयेत् । तत्सम्बन्धक्षये मोक्षो जीवःस्यात्परमं महः ॥ १६२ इत्यलं कुविवादेन धर्मध्वंसो यतो भवेत् तत्त्वज्ञानश्रया ये तु वादं कुर्वंति जातु न ॥ १६३ ॥ सत्यज्ञानं विवादे भो मानवानां भवत्यरं। तत्क्षये ज्ञानसंसिद्धिर्विनिर्धूमप्रदीपवत् ॥ १६४ ॥ सा क्रमाद्यौवनं प्राप्ता ललितांगी ललद्गतिः । लोलदृक् पीवरस्थूलनितम्बोद्धारशालिनी ॥ १६५ ॥ सुरम्यो विषयोऽस्ति

और स्त्री पनेका कारण कर्म होगा तो स्त्री होगी इसलिये यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जाती है कि जब तक इस जीवके साथ कर्मका संबंध रहता है तब तक यह अनेक प्रकारकी योनियोंमें घूमता फिरता हैं किन्तु जिस समय उस कर्मकेसंबन्धका सर्वथा नाश हो जाता है उस समय जीवको मोक्षकी प्राप्ति होजाती है जो मोक्ष एक उत्कृष्ट तेज कहा जाता है ॥ १६१—१६२ ॥ बस विशेष कुविवादके करनेकी कोई आवश्यता नहीं क्योंकि खोटे विवादसे वास्तविक धर्मका नाश हो जाता है। जो पुरुष तत्त्व ज्ञानी हैं वे कभी भी किसी प्रकारका विवाद नहीं करते ॥ १६३ ॥ जिस प्रकार धूंवाके रहते दीपकका प्रकाश भदमेला रहता है किन्तु जिस समय धूंआ नष्ट हो जाता है उस समय दीपकका प्रकाश उज्ज्वल हो जाता है उसी प्रकार विवाद करनेसे मनुष्योंमें अज्ञानकी वृद्धि होती है और विवाद न करनेसे ज्ञानकी भले प्रकार सिद्धि होती है ॥ १६४ ॥ मृगायणाका जीव कन्या हिरणवती क्रमसे युवति होगई। उसका समस्त अङ्ग सुडौल मनोहर था। लीला पूर्वक वह गमन करने वाली थी। चंचल नेत्रोंकी धारक थी एवं स्थूल स्तन और नितंबोंके भारसे शोभायमान थी ॥ १६५ ॥

इसी पृथ्वीपर एक सुरम्य नामका देश है जो कि यथार्थ नामका धारक हैं। सुरम्य देशके अन्दर एक पोदन नामका नगर है जो कि अपनी सुन्दरतासे राजराजपुर—कुवेरपुरी अलकाकी शोभा धारण करता है ॥ १६५ ॥ पोदन पुरका स्वामी राजा पूर्ण चन्द्र था जो कि यशस्वी था। पूर्ण

नामान्वर्थं समुद्वहन्। पोदनाख्यं पुरं तत्र राजराजपुरोपमं ॥ १९६ ॥ तत्र राजा यशःसंत्रः पूर्णचन्द्राभिधोऽजनि। पूर्णचन्द्रमुखः पूर्ण रामाभोगपुरंदरः ॥ १९७ ॥ ददावतिवलो राजा पूर्णचन्द्रनृपाय तां। हिरण्यादिव्रतीमाशु पङ्कजारुणपत्तलां ॥ १९८ ॥ प्रगल्भया तया सार्कं रेमे राजा चिरं सुखं। भोगावच्छिन्नभावेन कजमृद्वयारवर्णया ॥ १९९ ॥ भुञ्जानयोस्तयोः सोऽयं सुता जाता विधेर्वशात्। मधुरा ब्राह्मणी सैव रामदत्ता त्वमुत्तमा ॥ २००॥ भर्ता मातृत्वमायाति जाया पुत्री भवेद्ध्रुवो। पुत्री पुत्रत्वमाप्नोति धिक् धिक् संसार-चित्रतां ॥ २०१ ॥ भद्रमित्रवणिक् योऽहं सिंहचन्द्राभिधस्तव। पुत्रो भूत्वातिमोहेन मुनीन्द्रपदमाश्रितः ॥ २०२ ॥ तवैव प्राग्भवे याऽभूत् वारुणी पुत्रिका शुभा। सा मृत्वा पूर्णचन्द्राख्यो मेऽनुजोऽभूत्तवोदरे ॥ २०३॥ त्वत्पिमता पूर्णचन्द्रो यः पोदनाधीश्वरो हि मः। त्यक्त्वा

चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था ॥ २९६ ॥ राजा अतिवलने कमलके समान लाल-२ चरणोंसे शोभायमान कन्या हिरणवतीका विवाह राजा पूर्णचन्द्रके साथ कर दिया ॥ २९७।२९८ ॥ कन्या हिरणवती अपनी प्रौढ अवस्थासे शोभायमान थी। कमलके समान कोमल और सुन्दर वर्ण की धारक थी इस लिये राजा पूर्णचन्द्रने चिर काल तक उसके साथ मनमाना सुख भोगा ॥२९९॥ वहुत दिनतक भोग विलास करते २ उन दोनोंके एक पुत्री हुई जो कि मधुरा ब्राह्मणीका जीव था वही मधुरा ब्राह्मणीका जीव तू रामदत्ता है ॥ २०० ॥ यह संसारको वड़ी भारी विचित्रता है कि इसमें जो अपना पति है वह तो माता हो जाता है। स्त्री पुत्री हो जाती है और पुत्री पुत्र वन जाता है इसलिये ऐसे दुःखप्रद संसारके लिये सहस्र वार धिक्कार है ॥ २०१ ॥ मेरा तेरे ऊपर विशेष मोह था इसलिये भद्रमित्र नामका जो मैं सेठ पुत्र था वह तेरा सिंहचन्द्र नामका मैं पुत्र हुआ हूं जो कि मैं इस संसारसे विरक्त हो मुनि वन गया हूं ॥ २०२ ॥ पहिले भवमें जो तुम्हारे वारुणी नामकी कन्या थी वही मरकर तुम्हारे उदरसे उत्पन्न मेरा छोटा भाई पूर्णचन्द्र हुआ है। ॥ २०३ ॥ तुम्हारा पिता राजा पूर्णचन्द्र जो कि पोदन पुरका स्वामी था समस्त राजपाटको छोड़

राज्यं प्रवव्राज भद्रबाहुसमीपके ॥ २०४ ॥ आवयोः स गुरुर्जज्ञे सर्वावधिविलोचनः । आर्यिकादांतमत्यन्ते तव मातापि दीक्षिता ॥
२०५ ॥ [illegible] सिंहसेनाख्यो मृत्वा दष्टोऽहिना नृपः । करींद्रोऽशनिघोषाख्यः प्रौढो घन इवापरः ॥ २०६ ॥ भूत्वारण्ये भ्रमन् मत्तो
[illegible] जिघांसया । धावतिस्म मयाकाशे स्थित्वाऽसौ प्रतिबोधितः ॥२०७॥ मयोक्तं पूर्वसंबंधं श्रुत्वा सम्यक् प्रबुद्धवान् । संयमा
संयमं भव्यः कुम्भी सद्यः समग्रहीत् ॥ २०८ ॥ स्थिरचित्तः सनिर्वेगो ज्ञात्वा देहाद्यसारतां । कृत्वा मासोपवासादीन् शुष्कपत्राणि भक्ष
यन् ॥ २०६ ॥ कुर्वन्नेव महासत्वश्चिरं घोरतरं तपः । कृशोऽभूच्छक्तिहीनत्वात्पयोधिरिव निर्जलः ॥ २११ ॥ अथो यः पूर्वद्विट् सर्पो

कर मुनिराज भद्रबाहुके समीप दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगया था वही अवधि ज्ञानसे शोभायमान हमारा गुरु हुआ है। तुम्हारी माताने भी आर्यिका दांत मतिके समीपमें आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये हैं। तुम्हारा पति सिंहसेन जो कि सर्पने डस लिया था अशनिघोष नामका विशाल हाथी हुआ जो कि साक्षात् काला मेघ सरीखा जान पड़ता था। वह इसी वनमें एक दिन मदोन्मत्त हो घूम रहा था कि उसने मुझे देखा एवं एकदम वह मुझपर मारनेके लिये टूट पड़ा। मैं चारण ऋद्धिका धारक था इसलिये मैं आकाशमें अधर स्थित होगया एवं मैंने उसे सुन्दर वाक्योंमे पूर्व जन्मका वृतान्त सुनाकर प्रतिबोध दिया। जिस समय उसने मुझसे अपने पूर्व भवका वृतान्त सुना तो वह एक दम प्रतिबुद्ध होगया और मेरे उपदेशानुसार उसने शीघ्रही संयमासंयम-देश चरित्र धारण कर लिया ॥ २०४—२०८ ॥ वह अशनिघोष हाथी उस दिनसे स्थिर चित्त होगया। शरीर आदिको असार जानकर वह एक दम विरक्त होगया। एकमास तो कभी एक पक्ष आदिका उपवास करने लगा। जीव हिंसाके भयसे सूखे पत्ते खाने लगा इस प्रकार अत्यन्त बलवान भी वह चिर काल तक घोर तप तपनेके कारण एकदम कृश होगया इसीलिये जिस प्रकार जल रहित समुद्र शोभा नहीं पाता उसी प्रकार शक्तिहीन वह हाथी भी शोभायमान नहीं जान पड़ता था ॥ २०६—२१० ॥

मृत्वाऽभूच्चमरो मृगः। पुनर्मृत्वा स संजज्ञे कुर्कुटाहिः क्रुधान्वितः॥ २११ ॥अन्यदा स गजस्तोयं पातुं मासोपवासवान्। यूपकेसरिणी नाम सरित्तीर्थं प्रविष्टवान्॥ २१२ ॥ क्षामकायोऽपतत्तत्र कर्दमे कुञ्जराधिपः। सर्पस्तं पतितं दृष्ट्वा पूर्ववैराच्चुकोप सः॥ २१३ ॥ आरुह्य मस्तकं तस्य पीलोः परमधर्मिणः। दन्दशीतिस्म स व्यालः सांहास्तद्धिजहाति न॥ २१४ ॥ तारङ्गस्तद्विषेणैव समाधिमरणादभूत्। विमाने श्रीधरोदेवः सहस्रारे रविप्रभे॥ २१५ ॥ सचिवः सिंहसेनस्य धम्मिल्लाख्यश्च स मृतः। तत्रैव कानने सोऽभूत

मन्त्री सत्यघोषका जीव जो मर कर सर्प हुआ था और राजा सिंहसेनको काटनेसे वह उनका वेरी होचुका था अपनी सर्पकी पर्यायसे मरकर वह चमर मृग हुआ था एवं पुनः वहांसे मरकर क्रोधके कारण वह कुर्कुट जातिका सर्प होगया॥ २११ ॥

एक दिनकी बात है कि एक मासका उपवासी वह अशनिघोष हाथी यूपकेसरिणी नामक नदीके किनारे जल पीनेकी अभिलाषासे गया। वह एकदम कृशशरीरका धारक था इसलिये उसके गाढ़े कीचड़में फसकर गिर गया। उसके पूर्वभवका वैरी वह सर्प भी वहीं पर उत्पन्न हो गया बस हाथी अशनिघोषको देखते ही पूर्वभवके वैरसे उसका क्रोध उमड़ गया। परम धर्मात्मा उस हाथीके मस्तकपर वह चढ़ गया एवं उसे डसलिया ठीक ही है जो पापी होते हैं वे अपने पापकर्मोंको छोड़ते नहीं॥ २१२—२१४ ॥ हाथी अशनिघोषने सर्पके तीव्र बिषके कारण समाधिमरण पूर्वक अपने प्राण छोड़े एवं वह सूर्यके समान देदीप्यमान सहस्रारविमानमें श्रीधर नामका देव हो गया॥ २१५ ॥ राजा सिंहसेनका जो धम्मिल्ल नामका मन्त्री था वह मरकर उसी वनमें जिसमें कि हाथी अशनिघोष उत्पन्न हुआ था वन्दर हो गया एवं हाथी और उसकी आपसमें गहरी मित्रता हो गई॥ २१६ ॥ जिससमय बन्दरने अपने मित्र हाथीको सर्पसे डसा देखा मारे

वानगो गजमत्तस्तदा ॥ २१६ ॥ दृष्ट्वा मित्रं गजं दष्टं तेनाहिर्वानरेण सः । हतोऽगात्तृतीये श्वभ्रे कुर्कुटः पापभाजनं ॥ २१७ ॥ अन्त मुहूर्तमात्रेण सूपपादशिलानलात् । समुत्थाय लुलोकासौ विरं स्वर्गश्रियं सुरः ॥ २१८ ॥ कौतस्कुतऽप्सरःपंक्तिर्विमानाश्च कुतस्तरां श्वभ्रक्रीडागसौधालिह्वे श्यरे शंबरो नु वा ॥ २१६ ॥ देवं भ्रांतिगतं दृष्ट्वा समूचुस्तं सुरांगनाः । भो भो नाथ ! वयं रम्भाः समस्तवैव सुयाबिताः ॥ २२० ॥ भावनोऽथ सुरावासो यद्वत्यं तवैव तत् । अतः किं तर्कयैश्चित्ते मागास्त्वं भ्रांतिमन्दिरं ॥ २२१ ॥ श्रुत्वा देवांगना वाक्यं स दध्याविति चनसि । अश्भ्रं किं कृतं पुण्यं यदत्रं वागतोऽस्म्यहे ॥ २२२ ॥ एवं चिंतयतस्तस्य प्रादुरासीत्तृतीयदृक् । तदैव

क्रोधके उसका हृदय पजल गया। उसने अपने मित्रका बदला लेनेके लिये उस कुर्कुट सर्पको मार डाला जिससे वह पापी मर कर तीसरे नरकमें गया एवं राजा सिंहसेनका जोव श्रीधर देव अचरज भरी दृष्टिसे स्वर्गको लक्ष्मीको देखकर मनही मन यह विचारने लगा—

कहांसे तो ये देवांगनाओंकी कतार आई। कहांसे ये विमान आये और अपनी ऊंचाईसे आकाशको स्पर्शनेवाले ये बड़े २ महल कहांसे आये? यह इन्द्रजालका खेल तो नहीं है। देव श्रीधर को स्वर्गकी विभूतिसे इसप्रकार आश्चर्यमय देखकर उसकी नियोगिनी देवियोंने कहा—

प्राणनाथ! हम जो देवांगना दीख रहीं हैं वे आपकी ही स्त्रियां हैं। यह महल आपका ही है तथा और भी जो चीजें आप देख रहे हैं सब आपकी ही हैं। आप यहांकी विभूति देख कर जो आश्चर्य कर रहे हैं वह व्यर्थ है। आपको इसविभूतिको देखकर किसी प्रकारका भ्रम नहीं करना चाहिये ॥ २१७—२२१ ॥ देवांगनाओंके इसप्रकार वचन सुन देव श्रीधरको बड़ा आश्चर्य हुआ एवं वह अपने मनमें इसप्रकार विचार करने लगा—

मैंने ऐसा कौनसा ठोस पुण्य किया था जिसके कारण मैं यहां आकर उत्पन्न हुआ हूं! उसीसमय उसके अवधिज्ञान उदित होगया एवं उसके द्वारा उसने समझ लिया कि मैं जो हाथी था वह कीचड़में फस जानेके कारण मरकर देव हुआ हूं ॥ २२२—२२३ ॥ बस वह अपने मनमें

पतितं नागं ददर्शावधिलोचनः ॥ २२३ ॥ तदा संभावयामास चेतसीति मुहुर्मुहुः । धन्यं व्रतं यतोजीवस्तिर्यगपि सुरोभवेत् ॥ २२४ ॥ धन्यास्ते गुरवो भूमौ ज्ञानसारङ्गमध्यमाः । तरन्ति तारयंत्येव नौका इव व्रतं यतः ॥ २२५ ॥ आरभ्य तद्दिनं देवो बुभोज स्वर्गसंपदं असंख्यातसमुद्रेषु द्वीपेषु क्रीडयन् स्थितः ॥ २२६ ॥ क्रीडाशैलेषु देवीभिः शब्दभोगो महर्द्धिकः । रेमे तपः समुद्भूतं फलं लब्ध्वा लसद्द्युतिं ॥ २२७ ॥ चतुर्हस्तोन्नतांगं स सप्तधातुविवर्जितं । हैमगंधिवभारैव चन्द्रभं पुण्यसंचयं ॥ २२८ ॥अष्टादशसमुद्रायुर्मनसा हारमाहरन् । अष्टादशसहस्रैश्च वत्सरैः पुण्यतोऽमरः ॥ २२९ ॥ तावत्पक्षैः समुच्छ्वासं सुगंधीकृतदिक्चयं । कुर्वन् स्वर्गगपुष्पौघ-

बड़ा ही प्रसन्न हुआ और बार बार इसप्रकार विचारने लगा—व्रताचरणको धन्यवाद है जिसके कारण तिर्यंच भी जीव देव हो जाता है ॥ २२४ ॥ संसारमें वे गुरु धन्यवादके पात्र हैं जो ज्ञानरूपी समुद्रके अन्दर विद्यमान हैं एवं नावके समान जीवोंको संसारसमुद्रसे पार करते हैं और स्वयं भी पार होते हैं एवं जिनके द्वारा व्रतोंकी प्राप्ति होती है ॥ २२५ ॥ श्रीधर देवको जब अच्छी तरह ज्ञान होगया तब वह उसदिनसे स्वर्गकी सम्पदाको भोगने लगा । असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें जाकर क्रीडा करने लगा । वह विपुल ऋद्धिका धारक श्रीधर देव अनेक क्रीडा पर्वतोंपर शब्द जनित भोग भोगने लगा । एवं सुन्दर कांतिका धारक वह तपसे जायमान उत्तम फलको पाकर सानन्द क्रीडा करने लगा ॥ २२७ ॥ देव श्रीधरका शरीर चार हाथ प्रमाण था जो कि मलमूत्र आदि सात धातुओंसे रहित था । चन्दनके समान महकने वाला चन्द्रमाके समान कांति वाला और पुण्यका समूह स्वरूप था । देव श्रीधरकी आयु अठारह सागर प्रमाण थी । अपने तीव्र पुण्य की कृपासे वह अठारह हजार वषबाद एक बार मनसे आहार ग्रहण करता था । अठारह पक्षोंके बाद ही वह उच्छ्वास लेता था जो कि अपनी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको महकानेवाला था एवं वह देव सदा कल्पवृक्षोंके सुगंधित पुष्पोंसे बनी पुष्पमालाओंको धारण करता रहता था । उसके पद्म नामकी लेश्या थी । सदा भगवान जिनेंद्रका वह ध्यान करता रहता था । मेरु आदिकी

भूषितः श्रीधरो मरुत् ॥ २३० ॥ पद्मलेश्यो जिनं ध्यायन् यात्रार्थं मेरुषु व्रजन् । नानानाट्यरसान् पश्यन् गतं कालं विवेद न ॥२३१॥

यतो भवति लेखपोऽमरवधूमुखांभोजलिट् । निकायकलरूपवान् बहुविलासिनीभोगभाक् ॥

व्रतादखिलभूमिपः परमधामसौख्यालयः । अगम्यमिव किं यतस्त्रिभुवने विधीयेत तत् ॥ २३२ ॥

इत्यार्षे श्रीवृहद्विमलनाथपुराणे भव्वरत्नभूषणाम्नायालङ्कारब्रह्मचारिकृष्णदास
विरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे सिंहसेनचरश्रीधरदेवो
त्पत्तिवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

यात्रा करता था । नाना प्रकारके नाट्य रसोंको देखता था इसलिये उस दिव्य सुखमें इस वातका पता ही नहीं लगता था कि मेरा काल कहां वीत रहा है ॥ २२८—२३१॥ ग्रन्थकार व्रतकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस व्रत ही की कृपासे जीव देवांगनाओंके मुखकमलका आस्वादनेवाला देव हो जाता है। सुन्दर शरीर कलायें और रूपका धारक होता है । भांति भांतिकी सुन्दर स्त्रियों-का भोक्ता होता है । समस्त पृथ्वीका स्वामी मोक्षसुखका स्थान होता है विशेष क्या तीनों लोकमें ऐसी कोई चीज नहीं जो इस व्रतके अगम्य हो अर्थात् व्रताचरणकी कृपासे जीवोंको सव वातें सुलभ रूपसे मिल जाती हैं। धर्मात्माओंको चाहिये कि वे व्रताचरणसे एक क्षण भी अपने चित्तको विमुख न करें ॥ २३२ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलकारस्वरूप ब्रह्मगलदासकी सहायतासे
ब्रह्मकृष्णदास विरचित वृहत् विमलनाथपुराणमें सिंहसेनके जीव श्रीधर
देवकी विभूतिका वर्णनकरनेवाला सातवां सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

आठवां सर्ग ।



आदिदेवं परं ज्योतिः सिद्धं सर्वार्थगोचरं । शिक्षोद्धारं जगत्कारं गोपार्च्यं संस्मराम्यहं ॥ १ ॥ अथंवात वने व्याधो नाम्ना शृंगालवानिति । दृष्ट्वा तं पतितं नागं तुतोष हृदये निजे ॥ २ ॥ शुक्तिजानि रदौ तस्य भूरितेजांसि चोन्नतौ । आदाय गतवान् सिंहपत्तने शबराग्रणीः ॥ ३ ॥ धनमित्रोऽस्ति तत्रैव राजश्रेष्ठी शुभाशयः । ददौ तस्मै स तौ तानि बहुमूल्यानि चादरात् ॥ ४ ॥ पूर्णचन्द्रमहीशाय सोऽपि श्रेष्ठी ददौ मुदा । शुक्तिजानि च दन्तौ द्वौ शुक्रतेजांसि सुन्दरौ ॥ ५ ॥ पूर्णचंद्रोऽपि तद्व्यया व्यधात्यादचतुष्टयं

जो भगवान ऋषभदेव उत्कृष्ट ज्योतीस्वरूप हैं । समस्त कर्म्मों से रहित सिद्धस्वरूप हैं । समस्त पदार्थोंके जानकार सर्वज्ञ हैं । जगतमें वास्तविक शिक्षाके प्रदान करनेवाले हैं और गोप-बड़े २ मुनियोंसे स्तुत है उन भगवान ऋषभदेवको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ जिस वनमें हाथी अशनिघोष मरा था उसी वनमें शृंगालवान नामका एक भील रहता था । हाथीको इसप्रकार मरा देख उसे बड़ा हर्ष हुआ । अत्यन्त देदीप्यमान गजमोती और दांत उसने ले लिये और वह राजा पूर्णचन्द्रकी राजधानी सिंहपुरकी ओर चल दिया ॥ २—३ ॥ सिंहपुरमें उससमय एक धनमित्र नामका सेठ रहता था जो कि राज सेठ था और उत्तम हृदयका था । भीलने दोनों दांत और गजमोती जो कि बहुमूल्य थे उस सेठको जाकर दे दिये ॥ ४ ॥ राजसेठ धनमित्रने भी उसे बहुमूल्य वस्तु समझ राजा पूर्णचन्द्रकी भेंट कर दिये उन्हें देखकर पूर्णचन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ क्योंकि वे गजमोती शुक्र विमानके समान देदीप्यमान थे और दोनों दांत परम सुन्दर थे ॥ ५ ॥ रति प्रेमी और शोभामें कुवेरकी उपमा धारण करनेवाले राजा पूर्णचन्द्रने उन दोनों दांतों

पल्यंकस्य रतिप्रेमा राजराजाधिकक्रमः ॥ ६ ॥ शुक्तिजानां विधायाशु हारं चेतोहरं निजे। आससंजोरसि प्रीत्या संसारस्येदृशी गतिः ॥ ७ ॥ अतो मातर्भवे तोषं को विदध्या इतीच्छया। धनं धान्यं सुतस्त्र्यादि कस्याभूद्भुवने वद ॥ ८ ॥ वल्लभः कस्यचित्कोऽपि नास्ति स्वार्थादृते ध्रुवं। असारः खलु संसारो जन्मनाशादिदुःखदः ॥ ९ ॥ उक्त्वेत्थं संसृतेर्भावं योगमाश्रितवान्मुनिः। रामदत्तापि तच्छ्रुत्वा त्रिधावैराग्यसंगता ॥ १० ॥ जगामानुजपुत्रस्य प्रतिबोधाय वेगतः। स्नेहतस्तत्र गत्वाशु बोधयामास तं सुतं ॥ ११ ॥ नाना भेदैर्यदा सोऽपि प्रतिबोधं हि नागतः। तदास्य मुनिना प्रोक्तां कथां सा समचीकथत् ॥ १२ ॥ वृत्तिं श्रुत्वा भवोद्भूतां भव्यत्वान्नृप

के तो पलङ्गके चार पाये बनवालिये और गजमोतियोंका महामनोहर हार बनवालिया जोकि प्रीति पूर्वक अपने गलेमें पहिना ठीक ही है संसारकी यही दशा है ॥ ६—७ ॥ माता! तुम्हीं कहो संसार की यह भयंकर दशा देख कौन वुद्धिमान इसमें सन्तोष धारण कर सकता है। एवं धन धान्य पुत्र स्त्री आदि किसके संसारमें हुए हैं! तुम निश्चय समझो विना स्वार्थके कोई भी किसीसे संसारमें प्रेम करना नहीं चाहता क्योंकि यह संसार असार है और जन्म मृत्यु आदि दुखोंका देनेवाला है ॥ ८—९ ॥ मुनिराज सिंहसेन सबोंकी पूर्वभवावलि सुनाकर चुप होगये आर्यिका रामदत्ता भी उसे सुनकर मन वचन कायसे एकदम विरक्त हो गई ॥ १० ॥ मोहसे मोहित हो आर्यिका रामदत्ता अपने छोटे पुत्र पूर्णचन्द्रके प्रतिवोधनेके लिये शीघ्र ही सिंहपुरकी ओर चल दी और राजा पूर्णचन्द्रको अनेक प्रकारसे प्रतिवोधने लगी परन्तु राजा पूर्णचन्द्र संसारमें एकदम लिप्त था इस लिये आर्यिका रामदत्ताके वचनोंका उसपर रंचमात्र भी असर नहीं पड़ा। जब आर्यिका रामदत्ता ने यह समझ लिया कि—

यह किसी प्रकारसे प्रतिवुद्ध होना नहीं चाहता तब उसने जो मुनिराज सिंहचन्द्रने राजा पूर्णचन्द्रके पूर्व भवका वृतांत कहा था कह सुनाया ॥ ११—१२ ॥ राजा पूर्णचन्द्र भी भव्य पुरुष

पुङ्गवः । संसारानित्यतां चिंत्य विरागत्वमुपागतः ॥ १३ ॥ गृहीतधर्मतत्त्वोऽसौ चिरं राज्यमपालयत् । सम्यक्त्वालंकृतांगः सन् कामिनीवल्लभोभृशं ॥ १४ ॥ रामदत्तापि कालांते निदानमकरोदिति। एतेषां मे पुनर्भूयात्संयोगः स्नेहतो ध्रुवं ॥ १५ ॥ महाशुक्रे विमानेऽभूद्भास्करे भास्कराह्वयः । ऋतुचन्द्रसमुद्रायुः पद्मलेश्यो हिमद्युतिः ॥ १६ ॥ षोडशायुतवर्षेश्च मानसाहारमाहरन् । पक्षैः षोडशभिर्देवः श्वसन् विक्रियभूषितः ॥ १७ चतुर्बाहुप्रमाणांगोऽसंख्यद्वीपाब्धिषु व्रजन् । यातार्थमप्सरोव्रातपरिगीतोऽरुणप्रभः ॥ १८ ॥ पूर्णचन्द्रोऽपि तत्रैव लेखलोके नृपोदयात् । वैडूर्ये व्योमयाने च वैडूर्याख्योऽमरोऽभवत् ॥ १९ ॥ सिंहचन्द्रमुनींद्रोऽपि तपस्तप्त्वातिदुष्करं । प्रीतिंकरविमानेऽभूदूर्ध्वग्रैवेयकोर्ध्वके ॥ २० ॥ एकविंशत्सरित्पायुः षष्ठमः श्वभ्रकावधिः । शुक्ललेश्यस्तुपाराभो बाहुसार्धैकदेहभाक् ॥२१॥

थे जिस समय उन्होंने अपने पूर्व भवका वृतांत सुना वे एक दम संसारसे भयभीत होगये। उसी समय अपने मनमें संसारकी अनित्यता विचारने लगे एवं परिणामोंमे सदा वैराग्य धारण कर ही राज्य करते रहे ॥ १३ ॥ धर्मात्मा होकर उन्होंने वहुत काल तक राज्यका पालन किया एवं अनेक स्त्रियोंके प्यारे होकर भी उन्होंने अपनी आत्मा सम्यग्दर्शनसे ही अलंकृत रक्खी ॥ १४ ॥ मृत्युके समय आर्यिका रामदत्ताने मोहवश यह निदान बांध लिया कि इन पुत्रोंके साथ फिर भी मेरा सम्बन्ध हो। वह मरकर महाशुक्र स्वर्गके भास्कर नामक विमानमें भास्कर नामका देव होगया जो कि सोलह सागरकी आयुका धारक था। पद्म लेश्यासे शोभायमान था। चन्द्रमाके समान मनोहर था। सोलह हजार वर्षोंके वाद वह एकवार मनसे आहार ग्रहण करता था। सोलह पक्षोंके वाद उसास लेता था। विक्रिया शक्तिका धारक था। चार हाथ प्रमाण शरीरका धारक था। अनेक मंगलाओंसे मण्डित हो असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें यात्रा करता था एवं सूर्यके समान देदीप्यमान था। ॥ १५—१८ ॥ राजा पूर्णचन्द्र भी पुण्यके उदयसे उसी स्वर्गके वैडूर्य नामक विमानमें वैडूर्य नामका देव हुआ था। मुनिराज सिंहचन्द्रने भी घोर तप तपा और आयुके अन्तमें मर कर वे उर्ध्व ग्रैवेयकके प्रीतिंकर विमानमें जाकर अहमिंद्र होगये जो कि इक्कीस सागरकी आयुके

अहमिंद्रत्वमपन्नो भुनक्तिस्म शिवाच्छिवं। किंचिदूनं जिनध्यानध्यायी प्रीतिंकरोऽपरः ॥ २२ ॥ रूप्याद्रिदक्षिणश्रेण्यां विद्यतेऽथ पुरं परं। धरणीतिलकाख्यं वै धारिण्यास्तिलकोऽनुस्वित् ॥ २३ ॥ तत्रैव नायकोऽत्यादिवेगाख्यः खेचराधिपः। समास्ते बहुविद्येनस्त स्य भार्या सुलक्षणा ॥ २४ ॥ महाशुक्रविमानात्स रामदत्ताचरोऽजनि। भासुराख्यः सुरश्च्युत्वा श्रीधराख्या सुता तयोः ॥ २५ ॥ समस्त्यन्या पुरी तत्र बहुरत्नालकाभिधा। दर्शकाख्यः पतिस्तस्या बभूव स्मरविग्रहः ॥२६॥ तस्मै दत्ता सुता पिता श्रीधराख्या दृढस्तनी

धारक थे। छठे नरक तकके पदार्थोंको जाननेकी शक्ति रखनेवाले अवधिज्ञानसे शोभायमान थे। शुक्ल लेश्याके धारक थे। तुषार—बरफके समान उज्ज्वल थे। डेढ़ हाथ प्रमाण उनका शरीर था एवं वे मुनिराज सिंह चन्द्रके जीव प्रीतिंकर देव अहमिन्द्र हो मोक्षसे कुछ ही कम उर्ध्व ग्रैवेयकके सुखका आस्वादन करने लगे और हृदयमें सदा भगवान जिनेंद्रका ध्यान करते २ सुखसे वहां रहने लगे ॥ १६—२२ ॥

इसी पृथ्वीके रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें धरणी तिलक नामका मनोहर पुर है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे पृथ्वीका तिलक ही जान पड़ता है ॥ २३ ॥ धरिणी तिलकपुरका स्वामी राजा अतिवेग था जो कि अनेक विद्याओंका पारगामी था। राजा अतिवेगकी स्त्रीका नाम सुलक्षणा था। महाशुक्र विमानसे आर्यिका रामदत्ताका जीव वह भास्कर देव चया और उसके गर्भमें आकर श्रीधरा नामकी पुत्री हुआ ॥ २४। २५ ॥

उसी रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक अलका नामकी दूसरी पुरी है जो कि नाना प्रकारके रत्नोंका स्थान है। उस पुरीका रक्षण करने बाला राजा दर्शक था जो कि कामदेवके समान परम सुन्दर था ॥ २६ ॥ जिस समय कन्या श्रीधरा दृढ स्तनी पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान स्थूल नितम्ब और कृश कटिकी धारक पूर्ण युवती होगई राजा अतिवेगने उसका

। पूर्णचन्द्रानना स्थूलनितंबा क्षामकोदरी॥२७॥भुंजानयोस्तयोः सौख्यं वैडूर्याधिपतिस्ततः। च्युत्वा पुत्री बभूवेति ख्याता नाम्ना यशोधरा ॥ २८ ॥ नवयौवनसंपन्ना मध्यक्षामा विशालदृक्। विततोरोनितम्बाभ्यां मथराभूद्धपानना ॥ २९ ॥ भास्करास्यंपुरं देवपुराभं वर्तते महत्। सूर्यावर्ताभिधो राजा तत्रासीत्स्मरसुन्दरः ॥ ३० ॥ पितृभ्यां यौवनगाभ्यां तस्मै दत्ता यशोधरा। सोऽपि रेमे तया साकं रोहिण्येव कलानिधिः ॥ ३१ ॥ गर्भे श्रीधरदेवोऽथ भुक्त्वा नाकसुखं ततः। च्युत्वा तयोः सुनोऽजनि रश्मिवेगाधिपः सुधीः ॥ ३२ ॥ कदा

विवाह अलकापुरीके स्वामी राजा दर्शकके साथ कर दिया ॥ २७॥ राजा दर्शक और रानी श्रीधरा दोनोंही सानन्द विषय सुखोंका अनुभव करने लगे। राजा पूर्णचन्द्रका जीव वैडूर्य देव वहांसे चया। रानी श्रीधराके गर्भमें आकर यशोधरा नामकी पुत्री हुआ। जो पुत्री खिलते हुए नवीन यौवनसे शोभायमान थी। पतली कटिकी धारक थी। उसके दोनों नेत्र विशाल थे। विशाल स्तन और नितम्बोंके कारण वह मंद मंद रूपसे गमन करनेवाली थी और चन्द्रमाके समान अतिशय शोभायमान थी ॥ २८—२९॥

इसी पृथ्वी पर एक भास्कर नामका पुर है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे स्वर्गपुरकी समानता धारण करता है। उस भास्कर पुरका रक्षण करनेवाला उस समय राजा सूर्यावर्त्त था जो कि कामदेवके समान परम सुन्दर था॥ ३० ॥ जिससमय कन्या यशोधराके पिताको यह ज्ञात हो चुका कि कन्या यशोधरा पूर्ण युवती होगई है तो उन्होंने उसका विवाह राजा सूर्यावर्तके साथ कर दिया एवं राजा सूर्यावर्त भी जिस प्रकार चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण क्रीडा करता है उसी प्रकार युवती यशोधराके साथ मनमानी रमण क्रीडा करने लगा ॥ ३१ ॥ राजा सिंहसेनका जीव वह श्रीधर देव स्वर्गोंके अनुपम सुख भोगकर वहांसे आयुके अन्तमें चया और रानी यशोधराके गर्भमें अवतीर्ण हो रश्मिवेग नामका पुत्र होगया ॥ ३२ ॥ एक दिन राजा सूर्यावर्तको मुनिचन्द्र

चित्मुनिचन्द्राख्यो मुनिधर्मानुशासनात् । सूर्यावर्तो नृपस्त्यक्त्वा राज्यं संयममग्रहीत् ॥ ३३ ॥ तद्वियोगोत्थदुःखेन विक्लवा सा यशोधरा । दीक्षां समग्रहीद्भावाद्भवभोगांगनिस्पृहा ॥ ३४ ॥ श्रुत्वा जामातृपुत्र्योश्च दीक्षाग्रहणमुत्तमं । श्रीधरा संयमं प्रापद्गुणवत्यार्यिकांतिके ॥ ३५ ॥ रश्मिवेगोऽधिगम्याशु राज्यं कामाधिको बभौ । भुंजन् पुराकृतं पुण्यं पुण्यचेताः प्रसन्नधीः ॥ ३६ ॥ अन्यदा रश्मिवेगोऽगात्सिद्धकूटजिनालयं । वंदितुं क्रीडितुं चैव भव्याःस्युः पुण्यबुद्धयः ॥ ३७ ॥ हरिचन्द्राह्वयं तत्र दृष्ट्वा चारणसंयमं । पुरस्तात्सं

नामके मुनिराजके दर्शन होगये । उनसे मुनिधर्मका उपदेश सुनकर उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया । राज्यका सर्वथा परित्याग कर दिया और दिगम्बरी दीक्षा धारण करली ॥ ३३ ॥ राजा सूर्यावर्त जब मुनि बन गये तो रानी यशोधराको बड़ा कष्ट हुआ । उसे भी संसारकी असारतासे वैराग्य होगया एवं संसारके भोग और उनके कारणोंसे विमुख हो उसने आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ३४ ॥ जमाई और पुत्रीकी दीक्षाका समाचार सुन यशोधराकी मा रानी श्रीधरा भी एक दिन संसारसे विरक्त होगई और गुणवती आर्यिकाके पास जाकर उसने आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ३५ ॥ पिता माताके दीक्षा ले जाने पर कुमार रश्मिवेग राजा बन गये । कामदेवके समान उनकी उस समयकी अद्वितीय शोभा थी । पहिले उपार्जन किये गये पुण्यके फलको भोगने वाले थे । पुण्यात्मा और प्रसन्न चित्तके धारक थे ॥ ३६ ॥

एक दिनकी बात है कि राजा रश्मिवेग सिद्धकूटके जिन मन्दिरोंकी वंदनाके लिये और उनके बनोंमें क्रीड़ा करनेके लिये गये ठीक ही है भव्य जीवोंकी बुद्धि पवित्र हुआ ही करती है । वहां पर एक हरिचन्द्र नामके चारण ऋद्धि धारी मुनि विद्यमान थे उन्हें देखकर राजा रश्मिवेगने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया ॥ ३७ । ३८ ॥ प्रणामके बदलेमें मुनिराज हरिचन्द्रने राजा रश्मिवेगको धर्म वृद्धि दी एवं वे यह कहने लगे—

स्थितो नम्य प्रांजलिः परमोदयात् ॥ ३८ ॥ धर्मवृद्धिं प्रदायास्मै मुनिः प्राहेति तद्धितं । शृणु दत्तावधानस्त्वं राजन्! धर्मं जिनोदितं ॥ ३९ ॥ श्वभ्रतिर्यग्गतिभ्यां यः समुद्धरति देहिनः । तं धर्मं मुनयः प्राहूरज्जुः कूपादिव स्फुटं ॥ ४० ॥ सांप्रतं दृश्यते यच्च तत्सायं नेव दृश्यते । अतोऽनित्यो भवो विद्धि समाख्यातो व्यलीकदः ॥ ४१ ॥ संयोगविप्रयोगोत्थं भवे दुःखं भृशायते । तेन दुःखेन तल्लब्धिर्न स्यादश्वविषाणवत् ॥ ४२ ॥ सयोगे विप्रयोगे च नानाकर्म दृढी भवेत् । कर्मणायाति पातालं संसृतो भ्रमणं पुनः ॥ ४३ ॥ कस्य स्त्रीसुतदायादिराज्यं प्राज्यं वपुः सुखं । किं न धनेऽनुयात्येव स्नेहाद्व्यर्थमतोऽखिलं ॥ ४४ ॥ ते धीराः सुखिनस्तेपि विदग्धास्ते

राजन! मैं भगवान जिनेंद्रके द्वारा प्रतिपादित, अतिशय हितकारी धर्मका उपदेश देता हूं, तुम ध्यान पूर्वक सुनो जिस प्रकार रस्सी कूवेमेंसे घड़ा आदि चीजको बाहर खींच लेती है उसी प्रकार जो धर्म जीवोंको नरक और तिर्यंच गतिसे छूटा दे उसे ही वास्तविक धर्म कहते हैं। ३९। ॥ ४० ॥ जो चीज सवेरे देखनेमें आती है वह शामको देखनेमें नहीं आती इसीलिये विद्वानोंने संसारको अनित्य और दुःखोंका देनेवाला ठहराया है ॥ ४१ ॥ संसारमें रहकर संयोग और वियोगोंसे जायमान प्रचुर दुःख भोगने पड़ते हैं एवं उन दुःखोंसे जिस प्रकार घोड़ेके सींगोंमें धर्मकी प्राप्ति नहीं होती उस प्रकार धर्मको प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ४२ ॥ राजन्! संसारमें अनेक संयोग और वियोगोंके कारण दृढ रूपसे कर्म बंधते रहते हैं । उन कर्मोंके कारण नरक जाना पड़ता है। समस्त संसारमें घूमना पड़ता है ॥ ४३ ॥ स्त्री पुत्र कुटुम्बी राज्य शरीर सुख ये सब बातें मृत्युके समय साथ नहीं चलतीं इसलिये इनके साथ स्नेह करना वृथा है ॥ ४४ ॥ संसार में वे ही पुरुष धीर वीर हैं वे ही सुखी विद्वान और सुन्दर हैं जो कि दश प्रकार भोगोंका सर्वथा परित्याग कर मोक्षकी इच्छासे दिगम्बरी दीक्षा धारते हैं ।४५। जो मूढ पुरुष सदा स्त्रियोंमें आसक्त रहते हैं महा लोभी और महा मानी होते हैं वे शुद्रोंके समान महा निंद्य कीचड़से व्याप्त संसार

च सुंदराः। भोगान् दशविधान् भुक्त्वा प्रव्रजंति शिवेच्छया ॥ ४५ ॥ सद्भिः स्त्रीसुखासक्ता लोभिनो मानिनो नराः । अमेध्यकर्दम कीर्णकूपे ते शूकरा इव ॥ ४६ ॥ स्वार्थमुख्यं सुखं त्यक्त्वा ये ध्यायति परं महः। अन्तर्मुहूर्ततस्तेऽपि कर्माणि त्व क्षणुवंत्यहो ॥ ४७ ॥ इत्यादितत्त्वसद्बीजं ध्यानवुद्ध्या मुनीरितं । श्रुत्वासौ चिंतयामास मानसे रश्मिवेगकः ॥ ४८ ॥ आधिपत्ये सति प्राज्ये भूरिभोगेषु सत्सु वा । समासीन्मरणं नूनं तर्हि किं तैः क्षुभगुरैः ॥ ४९ ॥ साधयामीदृशं धर्मं यतो न स्यात्पुनर्भवः । विचिंत्येत्थं स जग्राह सम्यक्त्वं सुसंयमं ॥ ५० ॥ परिणामविशुद्धं स तपस्तप्त्वाऽगरोधसि । चारणत्वं च संप्राप्तः सद्यो गगनगोचरं ॥ ५१ ॥ विहरन्नेकदा सोऽपि रश्मिवेगो यमीश्वरः। कांचनाख्यगुहां दृष्ट्वा तस्थौ तत्र समाधये ॥ ५२ ॥ पर्यंकासनमारूढं ध्यानस्तिमितलोचनं । ध्यायंतं

रूपी कूपमें पड़े रहते हैं। किन्तु जो महापुरुष स्वार्थ परिपूर्ण सुखका सर्वथा परित्याग कर चिदानन्द चैतन्य स्वरूप आत्माका ध्यान करते हैं देखते २ वे अन्तर्मुहुर्तमें समस्त कर्मोंको खिपा देते हैं ॥ ॥ ४६—४७ ॥ राजा रश्मिवेगने मुनिराज हरिचंद्रसे जब यह धर्मका स्वरूप सुना तो वह मन ही मन ऐसा बिचारने लगा—

बिशाल राज्य और विपुल भोगोंके रहते भी जब संसारमें मरण है तब क्षण भरमें विनश जानेवाले राज्य भोग आदिको अपनाना व्यर्थ है। मैं अब उस परम पावन धर्मका आराधन करूंगा जिससे मुझे फिर संसारमें न घूमना पड़े बस उसने यह दृढ विचार कर शीघ्र ही सम्यग्दर्शनके साथ संयम धारण कर लिया दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ ४८—५० ॥ परिणामों की विशेष विशुद्धिसे उन्होंने उग्र तप तपा। तपके प्रभावसे चारण ऋद्धि प्राप्त होगई जिससे वे आकाशमें भ्रमण करने लगे ॥ ५१ ॥ एक दिनकी बात है कि विहार करते करते वे मुनिराज रश्मिवेग कांचन नामकी गुफाके पास जा पहुंचे और उसे समाधिके उचित जानकर उसमें विराज गये। वहांपर उन्होंने पर्यंक आसन मार लिया। ध्यानसे दोनों नेत्र निश्चल कर लिये एवं वाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी आकुलतासे रहित वे चिदानन्द चैतन्य स्वरूप परमात्माका ध्यान करने

परमात्मानं द्विधा द्वंद्वविवर्जितं ॥ ५३ ॥ तं विलोक्य समायाते द्वे आर्ये वंदितुं मुदा । वन्दित्वा तिष्ठतां तत्र श्रीधरा च यशोधरा ॥ ५४ ॥ श्वाभ्रोऽथ प्राक्तनस्तस्मात्प्रच्युत्वाघविपाकतः । चिरं भ्रांत्वा स संसारे महानजगरोऽभवत् ॥ ५५ ॥ पूर्ववैरानुबंधेन तत्रागत्य मुनिं च ते । आर्यिके क्रोधतः पापी वेरं त्याज्यमतोऽगिलत् ॥ ५६ ॥ आराध्याराधनाः प्रांतेरश्मिवेगोऽमरोऽभवत् । कापिष्ठेऽर्कप्रभाख्ये च विमाने तत्कृताह्वयः ॥ ५७ ॥ मृत्वा ते आर्यिके तत्र विमाने रुचकाभिधे । अभूताममरौ रम्यावणिमादिविभूषितौ ॥ ५८ ॥ चतुर्दश समुद्रायुरायुर्ययोः प्रकीर्तितं । पञ्चपाणिप्रमाणानां रूपभोगवतां भृशं ॥ ५९ ॥ प्रांते पङ्कप्रभां प्रापत्पापादजगरोहि सः । भुनक्तिस्म कृतं

लगे ॥ ५२—५३ ॥ मुनिराज रश्मिवेगको कांचन गुफामें इस प्रकार ध्याना रूढ सुन श्रीधरा और यशोधरा नामको दो आर्यिकायें उनके पास आईं और भक्तिपूर्वक वंदना कर उनके पास वैठ गईं ॥ ५४॥ मंत्री सत्यघोषका जोव जो कि अपने प्रवल पापसे नरक गया था वहांके दुःखोंको भोगकर वह वहांसे निकल आया । प्रवल पापके उदयसे वह संसारमें जहां तहां बहुत घूमा और कांचन गुफामें एक विशाल अजगर होगया ॥ ५५ ॥ पूर्व वैरके संवन्धसे वह अजगर मुनिराज रश्मिवेगके पास आया और क्रोधसे भवल कर मय दोनों आर्यिकाओंके मुनिराज रश्मिवेगको निगल गया । ॥ ५६ ॥ मुनिराज रश्मिवेगने अन्त समयमें अच्छी तरह आराधनाओंको आराधा जिससे कापिष्ठ स्वर्गके सूर्यप्रभ नामक विमानमें वह सूर्यप्रभ नामका देव होगया ॥ ५७ ॥ श्रीधरा और यशोधरा नामकी दोनों आर्यिकायें भो कापिष्ठ स्वर्गके रुचक विमानमें जाकर देव होगईं, दोनों आर्यिकाओं के जीव वे दोनों देव अत्यन्त मनोहर थे । अणिमा आदि विभूतियोंसे विभूषित थे । चौदह सागर प्रमाण आयु थी एवं मनोहर रूप और अनेक भागोंके खजाने स्वरूप वे पांच हाथ प्रमाण शरीरसे शोभायमान थे ॥ ५८—५९ ॥ मुनिराज और दोनों आर्यिकाओंके निगलनेसे उस अज-गरने तीव्र पापका बंध किया था इसलिये आयुके अन्तमें उस तीव्र पापके उदयसे वह अजगर

पापं तत्र वाचामगोचरं ॥ ६० ॥ नारकास्तं विलोक्याशु परस्परममीमरत् । छेदनैर्भेदनैः शूलारोपणैर्दुःप्रवादनैः ॥ ६१ ॥ ध्वांक्षोलूक विडालाश्व व्याघ्रवृश्चिकरूपिभिः ! नारकैस्त्रुटितैर्सांहा लंघ्यते न गतिर्विधेः ॥ ६२ ॥ अथ जम्बूमति द्वीपे विख्याते त्वत्र भारते । । विद्यते चक्रपूरस्या पौरहतीव पूः परा ॥ ६३ ॥ राजापराजितस्तत्र शत्रुभिः कृतशासनः । अस्यास्ति सुन्दरी नाम्ना रामा रम्भानुकारिणी ॥ ६४ ॥ ऊर्ध्वग्रैवेयकाद्देव सिंहचन्द्रचरस्तयोः । च्युत्वा प्रांते बभूवैव पुत्रश्चक्रायुधो महान् ॥ ६५ ॥ महाराजसुताः पञ्चसहस्रप्रमिताः पराः । उपयम्य सुखं तस्थौ पुत्रश्चक्रायुधोबली ॥६६॥ अर्कप्रभोऽपि कापिष्ठाच्च्युत्वा चक्रायुधस्य तु रु । 'संजातश्चित्रमालायां

पङ्क प्रभा नामके नरकमें जाकर नारकी होगया और अपना किया हुआ पापोंका फल जोकि बचनों से कहा नहीं जा सकता भोगने लगा ॥ ६० ॥ अन्य नारकियोंने जिस समय उस अजगरके जीव नारकीको देखा तो उनका एक दम क्रोध उबल उठा एवं वे आपसमें छेदना भेदना शूलीपर चढ़ा देना और गाली गलौज करना आदि कारणोंसे उसे मारने ताड़ने लगे। उस पापी अजगरके जीव नारकीको काक उल्लू बिल्ली घोड़ा बाघ वीछूके स्वरूपके धारक नारकियोंने अनेक प्रकारसे मारना पीटना प्रारम्भ कर दिया। ठीक ही हैं कर्मकी गति रोकी नहीं जा सकती ॥ ६१—६२ ॥

इसी जम्बूद्वीपके प्रसिद्ध भरत क्षेत्रमें एक चक्रपुरी नामकी नगरी है जो कि उत्कृष्ट है और शोभामें इन्द्रपुरीकी उपमा धारण करती है ॥ ६३ ॥ चक्रपुरीका स्वामी राजा अपराजित था। जिसका कि शासन शत्रुओंपर पूर्ण रूपसे चलता था और उसकी सुन्दरी नामकी रानी थी जो कि शोभामें इन्द्राणीका अनुकरण करती थी ॥ ६४ ॥ मुनिराज सिंहचन्द्रका जीव वह अहमिंद्र ऊर्ध्व ग्रैवेयकसे चया और रानी सुन्दरीके गर्भमें अवतीर्ण हो चक्रायुध नामका पुत्र होगया ॥ ॥ ६५ ॥ अपनी युवावस्थामें कुमार चक्रायुधने पांचसौ राज कन्याओंके साथ विवाह किया और वह सानन्द विषय भोगोंका अनुभव करने लगा ॥ ६६ ॥ मुनिराज रश्मिवेगका जीव अर्कप्रभ देव

नाम्ना वज्रायुधः सुधीः ॥ ६७ ॥ पृथिवीतिलकं नाम्ना पत्तनं तिलको भुवः । रराज नररत्नाढ्यं सोत्सवं चैत्यमंडितं ॥ ६८ ॥ अतिवेग महीपालस्तताभूद्राजलक्षणः । प्रियकारिणिका तस्य बभूवेवामरप्रिया ॥ ६९ ॥ कापिष्ठात् श्रीधराजीवश्च्युत्वासौ रुचकाभिधः । सुता ऽभवत्तयोरम्या रत्नमालाभिधा शुभा ॥ ७० ॥ एकदा तां पिता दृष्ट्वा यौवनश्रीविराजितां । वज्रायुधकुमाराय ददौ भानुप्रियामिव ॥ ७१ ॥ वज्रायुधस्तयामेव रेमे रात्रिदिवं सुखं । रम्भापो रम्भयाहोशः पद्मया तमसोडुपः ॥ ७२ ॥ यशोधरापि कापिष्ठाच्च्युत्वा रत्नायुध

भी अपनी आयुके अन्तमें कापिष्ठ स्वर्गसे चया और राजा चक्रायुधकी चित्रमाला नामकी रानीसे वज्रायुध नामका पुत्र होगया ॥ ६७ ॥

इसी पृथ्वी पर एक पृथिवी तिलक नामका नगर है जो कि अपनी शोभासे साक्षात् पृथिवीका तिलक स्वरूप जान पड़ता है। सदा वह उत्तमोत्तम पुरुष रत्नोंसे भरा रहता है और उसके चैत्यालय और मन्दिर सदा अनेक उत्सवोंसे जग मगाते रहते हैं ॥ ६८ ॥ पृथिवी तिलक पुरका स्वामी राजा अतिवल था जो कि समस्त राज लक्षणोंसे शोभायमान था। उसकी रानीका नाम प्रिय कारिणी था जो कि अपनी अनुपम शोभासे देवांगना सरीखी जान पडती थी ॥ ६९ ॥ श्रीधरा नामक आर्यिकाका जीव रुचक देव कापिष्ठ स्वर्गसे चया और रानी प्रिय कारिणीके गर्भमें अवतीर्ण हो कन्या होगया जिसका कि नाम रत्न माला था ॥ ७० ॥ एक दिन राजा अतिबेगने पूर्ण यौवनसे शोभायमान राजपुत्री रत्नमालाको देखा। उसे विवाहके योग्य समझकर कुमार वज्रायुधको प्रदान करदी एवं सूर्यको जिस प्रकार अपनी स्त्री प्यारी है उसी प्रकार वह रत्नमाला कुमार वज्रायुधको परम प्यारी बन गई ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार रंभाका स्वामी रंभाके साथ रमण करता है नागेन्द्र लक्ष्मीके साथ और चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण करता है उसी प्रकार कुमार वज्रायुध भी सुन्दरी रत्नमालाके साथ रात दिन रमण करने लगा और भोग जन्य सुख भोगने लगा ॥ ७२ ॥

स्तयोः। सुतोजज्ञे मनोऽम्भोजःपूर्णचन्द्राननोऽरिजित् ॥ ७२ ॥ एवं संयोगमापन्ना एते पुण्यफलं महत् । भुंजंतिस्म महाप्रीत्या दुर्लभं किमयोदयात् ॥ ७४ ॥ गंधेभाश्वोत्कटामात्यरतिरामासमुद्भवं । सुखं ते भोजयामासुर्धर्मकल्पद्रुमार्पितं ॥ ७५ ॥ श्रुत्वापराजितो धर्ममन्येद्युः पिहितास्रवात् । चक्रायुधाय साम्राज्यं दत्वादीक्षिष्ट धीरधीः ॥ ७६ ॥ चक्रायुधोऽपि तद्राज्यं प्राप्याधिकतरं बभौ । चिंदन् कुवलय राजा राजवत्पालयन् प्रजाः ॥ ७७ ॥ अन्यदा विष्टरासीनो लोकयन् विष्टरे सुखं । पलितं काशसंकाशं मस्तके दृष्टवान्नृपः ।

आर्यिका यशोधराका जीव देव भी कापिष्ठ स्वर्गसे चया और रानी रत्नमालाके गर्भसे रत्नायुध नामका पुत्र हुआ जो कि मन रूपी कमलको विकास करने वाले पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था। इस प्रकार आपसमें संबंधके रखनेवाले वे सिंहसेन आदिके जीव बड़े प्रेमसे पुण्यके महाफल स्वरूप सुखका भोग करने लगे ठीक ही है पुण्यके उदयसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है ॥ ७२—७४ ॥ वे सबके सब उत्तम धर्मरूपी कल्पवृक्षके द्वारा समर्पित उत्तम हाथी घोड़े मंत्री रतिके समान स्त्रियोंसे जाय मान सुखको सानन्द भोगने लगे ॥ ७५ ॥

एक दिनकी बात है कि राजा अपराजितने पिहितास्रव नामके मुनिराजसे धर्मका उपदेश सुना जिससे उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया। धीर वीर राजा अपराजितने अपने पुत्र चक्रायुधको समस्त राज्य प्रदान कर दिया और वह तत्काल दिगंबरी दीक्षासे दीक्षित होगया। ॥ ७६ ॥ अपने कुल परम्परासे प्राप्त राज्यको पाकर कुमार चक्रायुध अतिशय शोभायमान जान पड़ने लगा। उसने समस्त पृथ्वीको अपने वश कर लिया और वह पूर्ण रूपसे प्रजाका पालन करने लगा ॥ ७७ ॥

एक दिनकी बात है कि राजा चक्रायुध सानन्द राजसिंहासन पर विराजमान थे और सिंहासनमें लगे हुए दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे अचानक ही उन्हें अपने मस्तकमें एक कासके

७८। तदेति चिन्तयामास मानसे स विशुद्धधीः। आगतो यमदूतोऽयं मामाकारयितुं ध्रुवं ॥ ७९ ॥ अहो आयुर्गतं सर्वं वैयर्थ्यं मामकं वने। मल्लिकापुष्पवद्धर्मं विना स्वर्गापवर्गदं ॥८०॥ त्रिधा वैराग्यमापन्नश्चक्रायुधनराधिपः। वज्रायुधे सुते राज्यं समारोप्य वनेऽगमत् ॥ ८१ ॥ प्राव्राजीत् स्वपितुःपार्श्वे राद्धांताऽम्भोधिपारगः। नद्यास्तीरे महारण्ये नगसानौ तपोऽकरोत् ॥ ८२ ॥ वज्रायुधोऽपि तद्राज्यं दत्त्वा रत्नायुधाय च। पितुःपार्श्वेऽग्रहीद्दीक्षां किं न कुर्वंति सात्त्विकाः ॥८३॥ मुनिश्चक्रायुधो ध्यात्वा स्वात्मानं परमं पदं। प्राप्य जज्ञे

फूलके समान सफेद केश दीख पड़ा ॥ ७८ ॥ विशुद्ध बुद्धिका धारक वह राजा अपने मस्तकका सफेद केश देख इस प्रकार विचारने लगा—

मुझे बुलानेके लिये यह महाराज यमराजका दूत आपहुंचा है। नियमसे अब मुझे मृत्युका सामना करना पडेगा। जिस प्रकार वनमें मालती लताके पुष्पका होना व्यर्थ है क्योंकि वहां उसका आदर करनेवाला कोई नहीं होता उसी प्रकार स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाले धर्मके विना मेरा भी समस्त जीवन विफल ही चला गया ॥ ७९—८० ॥ वह राजा चक्रायुध मन वचन काय तीनो योगोंसे संसारसे विरक्त होगया। अपने पुत्र वज्रायुधको उसने राज्य प्रदान कर दिया और वह सीधा वनकी ओर चल दिया ॥ ८१ ॥ अपने पिता मुनिराज अपराजितसे उन्होंने दिगंवरी दीक्षा धारण कर ली। अभ्यासकर सिद्धांतरूपी समुद्रके पारको पहूंच गये। किसी नदीके पास एक विशाल वन था उसके पहाड़की चोटी पर घोर तप तपने लगे ॥ ८२ ॥ अपने पिताके दीक्षित होजानेके वाद कुछ दिन कुमार वज्रायुधने राज्य किया। कदाचित उन्हें भी संसारसे वैराग्य हो गया शीघ्र ही उन्होंने अपने पुत्र रत्नायुधको राज्य दे दिया और वे दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये। ठीक ही है सज्जन प्रकृतिके मनुष्य जो भी उत्तम कार्य कर डालें थोड़ा है ॥८३॥ जिस प्रकार धूपसे व्याकुल पुरुष वृक्षकी छाया पाकर शांतिका अनुभव करने लगता है उसी प्रकार

सुखी घर्मततश्छायातरुं यथा ॥ ८४ ॥ वज्रायुधो गिरौ ग्रीष्मे हेमन्ते सरितस्तटे । प्रावृषि भूरुहां कण्ठे तपस्यन् पुरुमस्मरत् ॥ ८५ ॥ अथ रत्नायुधो राजा शक्तो भोगेषु प्रत्यहं । धर्मं त्यक्त्वानिगृह्णुतशत्सुखानि चिरमन्वभूत् ॥८६॥ पट्टहस्त्येकश्च तस्य दानवर्षी पयोदवत् । कुम्भसानुर्दरीभृद्वा मनोहरवने गतः ॥ ८७ ॥ तत्रारण्ये मुनिर्वज्रदन्ताख्योऽपि समागतः । लोकानुयोगमूचे स नानाधर्मात्मकं यतिः ॥ ८८ ॥ तदा शास्त्रं गजः श्रुत्वा मेघादिविजयाह्वयः । पूर्वजन्मस्मृतिं प्रापन्निनिंदात्मानमञ्जसा ॥ ८९ ॥ तिर्यक्त्वं च मया प्राप्तं

मुनिराज चक्रायुधने भी पूर्ण रूपसे अपनी आत्माका ध्यान किया जिससे उन्होंने परमपद मोक्ष पदको पा लिया और वे अविनाशी सुखके भोगनेवाले वन गये ॥ ८४ ॥ मुनिराज वज्रायुध भी ग्रीष्म ऋतुमें पर्वतोंके अग्रभागपर तप तपने लगे। शीत ऋतुमें नदियोंके तटोंपर और वर्षा ऋतुमें बृक्षोंके नीचे वैठकर उन्होंने तप तपना प्रारम्भ कर दिया तथा वे प्रति समय भगवान ऋषभ देवके गुणोंका स्मरण करने लगे ॥ ८५ ॥

वज्रायुधका पुत्र कुमार रत्नाययुध जिस समय राजा बन गया तो धर्मका सर्वथा परित्याग कर वह प्रति समय भोगोंमे मग्न होने लगा और भोगोंका अति लोलुपी हो उनके सुखोंको भोगने लगा ॥ ८६ ॥ राजा रत्नायुधका एक मत्त हस्ती था जिसके कि गंडस्थलोंसे सदा मद झरता था अतएव वह साक्षात् मेघ सरीखा जान पड़ता था। उसके दोनों कुम्भस्थल पहाड़की चोटी सरीखे थे जिससे वह साक्षात् पर्वत सरीखा जान पड़ता था। एक दिन वह मनोहर नामके वन में गया वहांपर उस समय एक वज्रदन्त नामके मुनिराज आये थे और वे अनेक धर्म स्वरूप लोकानुयोगका वर्णन कर रहे थे। हाथी मेघ विजयको भी धर्मोपदेश सुननेका अवसर मिल गया धर्मोपदेश सुनते ही उसे पूर्व जन्मका स्मरण होगया और वह इस प्रकार अपनी निन्दा करने लगा ॥ ८७—८९ ॥

पूर्वपापोदयादिति । मुहुर्मुहुर्विनिंद्य स्वं नात्त्यदलफलं तथा ॥६० ॥ संसृतेर्दुःस्थितिं ध्यायन् सामजो न भ्रमन्वने । पिपासुः क्षुधितस्त स्थौ श्रुततत्त्वश्च होद्गशः ॥ ६१ ॥ सत्संगः पाफलीत्येवाचिराद्भव्यात्मनां भुवि । मधुमत्याशु सद्रावा भवेच्छयामापि कोकिला ॥ ६२ ॥ यथा पुरुपदस्पर्शाद्दर्भ इन्द्रशिरःस्थितः । सव्यापसव्यसंस्थायि पक्षादीनां वचोऽर्हतां ॥ ६३ ॥ तादृक्ष' तं गजं दृष्ट्वा दुःस्थितं भेषजं नृपः ॥ व्याकुलीभूयमापन्नः पृष्टवान् मन्त्रिवैद्यकान् ॥ ६४ ॥ ब्रूत वैद्या गजस्यास्य को विकारोऽस्ति सांप्रतं । विकाराभावतः प्रोचुस्ते वैद्याः श्रुतवार्तिकाः ॥ ६५॥ अनुभा श्रूयतां राजन्! कुञ्जरोऽयं कृपामयः । धर्मं श्रुत्वा कुतश्चिच्च मुनेर्जातिस्मरोऽभवत् ॥

पूर्व पापके उदयसे मैंने यह तिर्यंच गति पाई है। मुझसे वढ़कर पापी कौन है वस इसप्रकार अपनी प्रतिक्षण निन्दा करने लगा। वनके साजे फलोंका भी उसने खाना छोड़ दिया ॥ ६० ॥ धर्म तत्त्वका यथार्थ रूपसे श्रवण करने वाला वह हाथी मेघ विजय रातदिन संसारकी असारता मानने लगा। वनमें घूमना उसने सर्वथा छोड़ दिया जिससे वह चाहे भूखा हो चाहे प्यासा हो एक ही जगह वह निश्चल खड़ा रहने लगा ॥६१॥ जो पुरुष भव्यजीव हैं उन्हें सत्सङ्गति अवश्य फल के देनेबाली होती है क्योंकि यह वात स्पष्ट रूपसे दीख पड़ती है कि काली भी कोयल वसंत ऋतुके संसर्गसे मीठे और मनोहर शब्द करने वाली हो जाती है एवं जिस दर्भ घासका भगवान जिनेंद्रके पैरसे स्पर्श हो जाता है वह इन्द्रके मस्तकका भूषण वन जाता है तथा भगवान अर्हंतके संसर्गसे उनका बचन भी पक्ष दिन मास आदिके भले बुरेका सूचक होजाता है। इसलिये सत्संगतिका प्रभाव अचिन्त्य है ॥६१—६३॥ मेघ विजय हाथीकी इस प्रकार दुःखित अवस्था देख कर राजा रत्नायुध एक दम व्याकुल होगया और उसने शीघ्र ही मंत्री और वैद्योंको बुलाकर इस प्रकार पूछा—

वैद्यो! शीघ्र वताओ हाथी मेघ विजयको यह क्या विकार उत्पन्न होगया है जिससे यह एक

९६ ॥ अतः सत्पात्रनिष्पन्नं शुद्धाहारं घृतादिभिः । निश्चितं भक्षयेन्नागो नान्यत्फलफलादिकं ॥ ९७ ॥ कृत्वाहारं तथाभूतं न्यक्षिपत् कुंजराग्रतः । कुंजरोऽपि जघासैव आहारं मिश्रितं घृतैः ॥ ९८ ॥ यदा रत्नायुधो राजा विस्मयीभूयमागतः । जगाम सामजारूढो मनोहरवनेऽवनः ॥ ९९ ॥ वज्रदन्तं मुनिं तत्र नत्वावधिविलोचनं । गजवृत्तं समाख्याय तद्धेतुं पृच्छतिस्म सः ॥ १०० ॥ मुनिः प्राह तदा भव्यपंकजालिदिवाकरः । सादरं शृणु राजेन्द्र प्रोच्यमानां मया कथां ॥ १०१ ॥ अत्र जम्बूमति द्वीपे भारते भारते--रतं । भारते भाति

दम निर्बुद्धि दीख पड़ता हैं ?। वैद्योंको इस बातका पता लग चुका था कि वनमें मुनिराज वज्रदंत को देखनेसे इसकी यह दशा हुई है इस लिये उन्होंने कोई भी विकार न बतलाकर यह कहा—

राजन् ! कृपाकर हमारी बात सुनिये । यह हाथी मेघ विजय अत्यन्त दयालु है । बनमें जाकर इसने किसी मुनिसे धर्मोपदेश सुना है इसलिये इसे जाति स्मरण होगया है अब यह शुद्ध मनुष्य से बनाये गये और घृत आदिसे तयार किये गये भोजनको ही खा सकेगां अब यह पहिलेके समान फल फूल आदि नहीं भक्षण कर सकेगा ॥ ९४—९७ ॥ राजा रत्नायुधकी आज्ञासे शीघ्रही वैसा आहार तयार होगया । तयार हो जाने पर हाथीके सामने रख दिया गया । हाथी भी उसे शुद्ध जानकर चट खागया ॥ ९८ ॥ हाथीकी यह विलक्षण चेष्टा देख राजा रत्नायुधको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मुनिराज वज्रदंतसे सब हाल जाननेके लिये शीघ्र ही हाथी पर चढ़कर वनकी ओर चल दिया ॥ ९९ ॥ वनमें जाकर उसने अवधिज्ञानी मुनिराज वज्रदंतको नमस्कार किया । हाथीका सब हाल कहा एवं इस बातकी प्रार्थना की कि हाथीकी ऐसी दशाका कारण क्या है ? मुनिराज वज्रदंत भव्यरूपी कमलोंके लिये सूर्य स्वरूप थे इसलिये उन्होंने यह कहा— राजन् ! मैं सब हाल कहे देता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

इसी जंवूद्वीपके सूर्यकी कांतिके समान देदीप्यमान भरत क्षेत्रमें एक छत्रपुर नामका उत्तम

छलाति पुरं रत्नालिसुन्दरं ॥ १०२ ॥ प्रीतिभद्रो नृपस्तत्र शत्रुभ्योऽत्रस्तमानसः। राजतेऽमरराजो वा विशालोरा गुणार्णवः ॥ १०३ ॥ तस्यासीत्सुन्दरी नाम्ना प्रिया मधुरभाषिणी। सुन्दरीव सती रम्या सुन्दरी च मनोभुवः ॥ १०४ ॥ तयोर्मुनयोः सौख्यं नाम्ना प्रीतिंकरः सुतः। संबभूव गरीयांश्च चातुर्यैरंजितामरः ॥ १०५ ॥ मन्त्री चित्रमतिस्तस्य कमला कमलोपमा। भामिनी भूरिवर्णांगी जातास्येव सुरांगना ॥ १०६ ॥ तुग्विचित्रमतिर्नाम्ना नानाविज्ञानपारगः। कलासु कुशलः केतुरम्यांगो मेरराननः ॥ १०७ ॥ अन्यदा मन्त्रिपुत्रेण सार्कं राजात्मजोवने। क्रीडितुं गतवांस्तत्र दृष्ट्वा धर्मरुचिं मुनिं ॥ १०८ ॥ नत्वा तत्पुरतो धीमान् निविष्टः कालमासने

नगर है जो कि रत्नोंकी पंक्तियोंसे सदा शोभायमान रहता है ॥ १००—१०२ ॥ छत्रपुरका स्वामी राजा प्रीतिभद्र था जो कि शत्रुओंसे सदा निर्भय रहता था। शोभामें इन्द्रके समान शोभायमान था। विशाल वक्षस्थलका धारक था और अनेक गुणोंका समुद्र था ॥ १०३ ॥ राजा प्रीतिभद्र की स्त्रीका नाम सुन्दरी था जो कि अत्यन्त मीठा बोलने वाली थी। पतिव्रतापनमें सती सुन्दरीके समान थी और सुन्दरतामें कामदेवकी सुन्दरी रतिकी उपमा धारण करती थी ॥ १०४ ॥ राजा प्रीतिभद्रके रानी सुन्दरीसे उत्पन्न प्रीतिङ्कर नामका पुत्र था जो कि गुणोंमें महान था और अपनी पांडित्य पूर्ण चतुरतासे देवोंकोभी रंजायमान करनेवाला था ॥ १०५ ॥ राजा प्रीतिभद्रके मंत्रीका नाम चित्रमति था। उसकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि कमला लक्ष्मीके समान परम सुन्दर वर्णके धारक शरीरसे शोभायमान थी अतएव वह देवांगना सरीखी परमसुन्दरी थी ।१०६। मन्त्री चित्रमतिका पुत्र विचित्रमति था जो कि ज्ञान विज्ञानोंका पारगामी था। अनेक कलाओंमें कुशल था। कामदेवके समान परम सुन्दर था और चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था ॥ १०७ ॥

एक दिनकी बात है कि मंत्रिपुत्र विचित्रमतिके साथ राजपुत्र प्रीतिंकर वनमें क्रीड़ा करनेके

। पप्रच्छेति पुनर्नत्वा कुमारः प्रीतिङ्करतिं ॥१०९॥ भो स्वामिन् सर्वधर्माणां व्रतानां च विशक्तिभिः। किं कर्तव्यं व्रतं ब्रूहि सद्मस्थैः सादरं सदा ॥ ११० ॥ धर्मरुची रराणेति कुमारं भव्यमानसं। तिथिपंचसु कर्तव्यः प्रोषधो धर्मवेदिभिः ॥ १११ ॥ गृहाचारोऽमलः कार्यः स्त्रीपुष्पौ चेष्ट्य इर्जितः। सुखाय क्षेत्रशुद्धयर्थमन्यथाचारहीनता: ॥ ११२ ॥ स्त्रीपुष्पौ चेष्ट्य धर्मेण नरा यांति दरिद्रतां। रोगत्वं विश्रुतत्वं च विधर्मत्वं ततः परं ॥ ११३ ॥ देवार्चा च गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः। दानं च गृहिभिर्देयं धर्मसोपानसिद्धये ॥ ११४ ॥ तथाभूता न शक्तिश्चेत्तर्हि मौनं विधीयते। सप्तभेदं जिनैः प्रोक्तं तद्वैधं पुनरुच्यते ॥११५॥ वमने मैथुने स्नाने भोजने मलमोचने

लिये गया। वहांपर उस समय एक धर्मरुचि नामके मुनिराज विद्यमान थे। कुमार प्रीतिकरने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। सिंहाकार आसनसे उनके सामने बैठ गया एवं पुनः नमस्कार कर वह इस प्रकार पूछने लगा—

भगवन्! जो मनुष्य गृहस्थ हैं और व्रतोंके धारण करनेकी परिपूर्ण शक्ति नहीं रखते उन्हें धर्म स्वरूप संपूर्ण व्रतोंमेंसे कौनसा व्रत आचरण करना चाहिये! ॥ १०८—११० ॥ मुनिराज धर्मरुचिने कुमार प्रीतिङ्करको आसन्न भव्य समझ कर यह कहा—प्रिय कुमार? जो मनुष्य धर्मके स्वरूपके जानकार हैं उन्हें चाहिये कि वे पांचों तिथियोंमें निर्मल रूपसे प्रोषधोपवास व्रतको धारण करें और स्त्रियोंके अंगका सर्वथा परित्याग करदें क्योंकि ऐसा करनेसे सुख प्राप्त होता है और आत्माकी विशुद्धि होती है यदि प्रोषधोपवासके समय स्त्रियोंकी लालसा रक्खी जायगी तो अनाचार माना जायगा ॥ १११—११२ ॥ यह निश्चय है जो पुरुष उत्कृष्ट रूपसे स्त्रियोंके अभिलाषी हैं वे दरिद्री रोगी मूर्ख और धर्मरहित पापी माने जाते हैं ॥ ११३ ॥ देव पूजा गुरुओंकी सेवा स्वाध्याय संयम तप और दान ये गृहस्थोंके छह आवश्यक कर्म बतलाये हैं इनके करनेसे मोक्षकी सीढी स्वरूप धर्मकी सिद्धि होती है ॥ ११४ ॥ यदि किसी पुरुषमें इतनी बातकी करनेकी

सामायिके जिनार्चादाविति स्यान्मौनसप्तकं ॥ ११६ ॥ नित्यमेतत्समाख्यातं मौनं सर्वजनैर्ध्रुवं । इत्यनेन न जायेत ज्ञानावर्णादिकोदयः ॥ ११७ ॥ अन्यन्नैमित्तिकं प्रोक्तं विधिना तत्समाचरेत् । तेन मौनेन मुक्तिः स्यादितोऽपि साध्यते द्वयी ॥११८॥ पुनस्तं प्राह धर्मात्मा कुमारो मारविग्रहः । हे स्वामिन् प्राक्कृतं केन फलं लब्धं ततश्च किं ॥११९॥ तदा प्राह यमी वत्स ! शृणु त्वं सादरं व्रतं । मयोच्यते तथाभूतं धर्मशीला हि साधवः ॥ १२० ॥ इह जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भारतनामनि । जनांतः कौशलस्तत्र कौशांबी विद्यते पुरी ॥

भी शक्ति न हो तो भगवान जिनेंद्रने बाह्य अभ्यन्तर रूप सात प्रकारका मौन बतलाया है उसे धारण करना चाहिये ॥ ११५ ॥ वह मौन इस प्रकार है—

वमिके समय मौन रखना मैथुन स्नान भोजन मल (मूत्र विष्ठा) का मोचन सामायिक भगवान जिनेंन्द्रकी पूजा वंदना आदिमें मौन रखना । समस्त मनुष्योंको चाहिये कि वे प्रतिदिन इस सात प्रकारके मौनको धारण करें ऐसा करनेसे उनके ज्ञानावरण आदि कर्मोंका बंध नहीं हो सकता ॥ ११६-११७ ॥ तथा इस नित्य मौनके सिवाय नैमित्तिक—किसी खास समयका भी मौन बतलाया है उसका भी विधि पूर्वक आचरण करना चाहिये। उस नैमित्तिक मौनके धारण करनेसे भी परम्परासे मोक्ष मिलती है और इह लोक परलोक दोनों लोकोंका सुधार होता है। मुनिराजसे इस प्रकार गृहस्थके योग्य धर्मका स्वरूप सुनकर धर्मात्मा कुमार प्रीतिङ्करने पुनः उनसे यह पूछा—भगवन् ! पूर्व जन्ममें मैंने कौनसा घोर तप तपा था जिससे मुझे यह विभूति इस भवमें प्राप्त हुई है। उत्तरमें मुनिराज धर्मरुचिने कहा—वत्स ! मैं यथार्थ रूपसे तुम्हारे पूर्व भवका वृतान्त सुनाता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो ठीक ही है मुनिगण धर्म शील हुआ ही करते हैं ॥ ११८—१२० ॥

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कोशल नामका देश है और उसमें कौशांबी नामकी प्रसिद्ध

१२१ ॥ हरिवाहननामाभूदिलापः पालितप्रजः । शशिप्रभा प्रिया तस्य तयोः पुत्रः सुकोशलः ॥ १२२ ॥ गुरोर्विनयनः स्वल्पकालेनापी पठच्छ्रुतं । समग्रमार्हतं धीमान् पूर्वपुण्यात्सुकोशलः ॥ १२३ ॥ समाप्तयौवनो जज्ञे सत्कन्यापरिणायिनः । विद्याभ्यासेन रामाणां संगं चक्रे न राजतुक् ॥ १२३ ॥ तदा तत्पितरौ चित्ते तर्कयामासतुस्तरां । दुःखिनौ च कथं तस्य वंशवृद्धिर्भविष्यति ॥ १२४ ॥ अन्यदा तत्पुरोद्याने सोमप्रभयमीश्वरं । आगतं बनपालात्स श्रुत्वैनं वंदितुं ययौ ॥ १२५ ॥ गत्वा नत्वा वृषं श्रुत्वा प्रागदोदिति तं नृपः । हे

नगरी है। कौशांवी पुरीका स्वामी उस समय राजा हरिवाहन था जो कि न्याय मार्गके अनुसार प्रजाका पालन करनेवाला था। उसकी स्त्रीका नाम शशिप्रभा था और उन दोनोंसे उत्पन्न पुत्र सुकोशल था ॥ १२१—१२२ ॥ कुमार सुकोशल गुरुका अतिशय विनयी था इसलिये पूर्व पुण्यके उदयसे भगवान जिनेन्द्र प्रति पादित समस्त सिद्धान्तको वह थोड़े ही दिनोंमें पढ़ गया था। जिस समय वह पूर्ण युवा होगया उसके साथ अनेक कन्याओंका विवाह होगया परन्तु कुमार सुकोशलके चित्तपर विद्याभ्यासका पूर्ण प्रभाव जमा हुआ था इस लिये परिणामोंमें सदा विरक्ति के कारण वह उनके संग रंचमात्र भी भोग विलास करना नहीं पसन्द करता था। कुमार सुकौशल की यह लोकोत्तर विरक्ति देख उसके माता पिताको बड़ी चिन्ता होगई। दुःखित हो वे इसप्रकार विचारने लगे—

यदि कुमारकी यही वैराग्यमय चेष्टा रही तो यह निश्चय है इसके कोई भी संतान नहीं हो सकती और विना संतानके इसके वंशकी बृद्धि भी असम्भव है ॥ १२३—१२४ ॥ एक दिन कौशांवी पुरीके उद्यानमें मुनिराज सोमप्रभ आकर विराजे। वनपालके मुखसे उनका आना सुना इसलिये उनकी वंदनाके लिये वह चल दिया। १२५। मुनिराजके पास पहुंचकर राजा हरिवाहनने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। उन्होंने जो धर्मोपदेश दिया वह सुना एवं इसप्रकार मुनिराजसे कहा

स्वामिन्! मामकः पुत्रो राजनीतिं च वेद न ॥ १२६ ॥ विद्याभ्यासेन रामाणां सांगत्यं प्रकरोति न। तत्किं देव द्रुतं ब्रूहि संतो हि भ्रांतिवेदिनः ॥ १२७ ॥ नृप भ्रांतिगतं मत्वा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः। देशेऽस्मिन् पत्तन भाति नरकूटाभिधं महत् ॥ १२८ ॥ तत्पती राणको नाम्ना प्रतापी रणजित्सुधीः। तत्रैव पत्तने श्रीलः कुटुम्बी तुंगिलाह्वयः ॥ १२९ ॥ तस्यास्ति तुङ्गिला रामा सती भर्त्तानुगामिनी। दुहिताभूत्तयोस्तुंगभद्राख्या मूलभे शुभे ॥ १३० ॥ पूर्वपापोदयात्तस्याः पिता माता सहोदराः। क्षय प्राप्तास्तदा सापि भिक्षयावीवृधद्धात् ॥ १३१ ॥ कालेन साष्टवर्षीया जज्ञे दुःखभरार्दिता। एधभारं वहंती वै चक्रे स्वोदरपूरणं ॥ १३२ ॥ एकस्मिन्वासरे काष्ठानय

भगवन्! मेरा पुत्र सुकोशल राजनीतिका रञ्चमात्र भी जानकार नहीं है। अनेक सुन्दरी स्त्रियां उसके मौजूद हैं तथापि वह उनके साथ भोग विलास करना नहीं चाहता यह क्या वात है? मुझे इस बातकी वड़ी भारी चिन्ता है आप मेरी इस भ्रांतिको शीघ्र दूर करें क्योंकि भ्रांतिका दूर करना सज्जनोंका स्वभाव होता है ॥ १२६—१२७ ॥ राजा हरिवाहनको इसप्रकार चिन्तित देख मुनिराज इस प्रकार कहने लगे—

इसी कोशल देशमें एक नरकूट नामका विशाल नगर है। उसका स्वामी राजा राणक था जो कि अत्यन्त प्रतापी था और रणमें सदा विजय पानेवाला था। उसी नगरमें एक तुङ्गिल नामका गृहस्थ सेठ भी निवास करता था ॥१२८—१२९॥ सेठ तुङ्गिलकी स्त्रीका नाम तुङ्गिला था जो कि सती साध्वी और अपने स्वामीकी आज्ञाकारिणी थी। उन दोनोंसे उत्पन्न तुंगभद्रा नामकी पुत्री थी जो कि मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुई थी ॥ १३० ॥ पूर्व जन्मके तीव्र पापके उदयसे उसके बाप मा भाई सभी मर गये। धन भी सब किनारा कर गया जिससे वह भीख मांगकर अपना पेट भरने लगी ॥ १३२ ॥ जब वह आठ वर्षकी होगई तब वह दुखित होकर ईंधन ढोने लगी और बड़े कष्टसे अपना पेट भरने लगी ॥ १३२ ॥

नाथं वने गता। तत्रायातोऽवधिज्ञानी पिहितास्रवनामभाक् ॥ १३३ ॥ जनतापरिवीतं तं तेजःपुंजं विलोक्य सा। आगता वन्दितुं दीना दीनानाथं यमीश्वरं ॥ १३४ ॥ ननाम कुड्मलीकृत्य करयोः संयताग्रिमं। समीपे संस्थिता पुण्याद्धर्मं श्रुत्वाऽवदन्मुनिं ॥ १३५ ॥ हे स्वामिन्! किं कृतं पापं मया प्राक् येन दुर्भगा। दुर्वधा ईदृशो नाथ! वभूवाहं च दुःखिनी ।१३६। मुनीरराण हे पुत्रि! दुःखं माकुरु माकुरु। जीवः पापं करोत्येव तद्विपाको हि दुःसहः ॥ १३७ ॥ ततोऽवदत्तुङ्गभद्रा सा सत्यं देव मया चितं। एनो विलीयते येन तद्व्रतं

एक दिनकी बात है कि वह लकड़ी लानेके लिये वनको गई। वहांपर एक पिहितास्रव नामके अवधिज्ञानी मुनिराज विराजमान थे। उनके चारो ओर अनेक जन विद्यमान थे इसलिये उनके मध्यमें वे तेजपुंज सरीखे जान पड़ते थे। दीन कन्या तुंगभद्रा भी उनके पास आई। मुनिराज की भक्ति पूर्वक बंदना की। नमस्कार किया। हाथ जोड़कर उनके समीप बैठ गई। पुण्यके उदयसे धर्मोपदेश सुना। और विनय पूर्वक मुनिराजसे यह पूछा—

स्वामिन्! पूर्व जन्ममें मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था जिससे मैं महा बद सूरत निंद्य कार्य करनेवाली और दुःखिनी हुई हूं। उत्तरमें मुनिराजने कहा—

पुत्रि! तू किसी बातका अपने चित्तमें दुःख न कर। यह जीव सदा अनेक प्रकारके पाप करता ही रहता है और उनका दुःखदायी फल भोगता रहता है ॥ १३३—१३७ ॥ प्रीतिंकरके ये वचन सुन तुंगभद्राने कहा—कृपानाथ इसमें कोई संदेह नहीं मैंने अवश्य दुष्कर्मोंका उपार्जन किया है। अब यह वतलाइये कि किस उपायसे मेरे इन सब पापोंका नाश होवे। उत्तरमें ध्यानशील अवधिज्ञानी मुनिराजने कहा—

पुत्री! तुम स्वर्ग और मोक्ष सुखके देने वाले मौन व्रतको धारण करो। मौन व्रतके धारण करनेसे तुम्हारा यह सब संकट कट जायगा। मुनिराजके मुखसे यह बात सुनकर तुंगभद्राने

ब्रूहि तत्त्ववित् ॥ १३८ ॥ सदयोऽलीलपद्मध्यानी तामेवावधिलोचनः । पुत्रि ! मौनव्रतं धेहि लेखावासशिवप्रदं ॥१३९॥ तत्कथं क्रियते ध्यानिन् ! कस्मिन् मास्यस्य को विधिः । कथ्यते शृणु सानन्दाद्विधिं मौनद्वयस्य च ॥ १४० ॥ भोजने वमने स्नाने मैथुने मलमोचने नित्यमेतेषु कुर्यास्त्व मौनं पुत्रि स्वसिद्धये ॥१४१॥ नैमित्तिकं पुनर्योषं कर्तव्यं शृणु तद्विधिं । पौषे मास्यसिते पक्षे ध्रुवं चैकादशीदिने ॥ १४२ ॥ आयामषोडशान्मौनसंयुतः प्रौषधः परः । कर्तव्यस्तद्दिने पुत्रि ! हस्तसंज्ञादिवर्जनं ॥ १४३ ॥ हुङ्कारो न विधातव्यो मुखसंज्ञा तथैव च । कासः खंखारवो हुं हुं दन्तबद्धेन जल्पनं ॥ १४४ ॥ हसनं दृष्टिविक्षेपः शरीरस्य विधूननं । शयनं नैव कुर्वीत दिवानक्तं जिनालये ॥ १४५ ॥ सुकरं व्रतमेतत्ते कर्तव्यं कर्महानये । प्रमाणीकृत्य सा नीत्वा व्रतं याता निजास्पदं ॥१४६॥ विधिना तद्व्रतं कृत्वा

पूछा—प्रभो ! मौन व्रत कैसे और किस मासमें किया जाता है और उसके करनेकी क्या विधि है ! कृपाकर आप बतलाइये उत्तरमें मुनिराजने कहा—नित्य और नैमित्तिकके भेदसे मौनव्रत दो प्रकारका है। तुम सुनो हम उसका स्वरूप वर्णन करते हैं—

पुत्री ! अपने आत्माकी विशुद्धिके लिये तुझे भोजन वमि स्नान मैथुन और मलमोचनमें सदा मौन व्रत धारण करना चाहिये यह नित्य मौन व्रत है। तथा पूस मासकी वदी एकादशीके दिन खासकर तुझे मौन धारण करना चाहिये यह नैमित्तिक मौन व्रत है। नैमित्तिक मौनव्रतकी विधि इस प्रकार है—

पूस बदी एकादशीके दिन सोलह प्रहर पर्यन्त मौन सहित तुम्हें प्रोषध व्रत करना चाहिये। उस दिन मौन व्रतके समय तुम्हें हाथसे किसी प्रकारका इशारा न करना होगा। हुङ्कार भी न करना होगा। मुखसे भी किसी प्रकारका इशारा न करना होगा। खासी खखारका शब्द हुंहू शब्द दांत मीचकर बोलना हंसना आंखोंसे इशारा करना शरीरका कपाना और जिनालयके अंदर बैठकर दिनरात सोना भी न होगा। पुत्री ! यह व्रत अत्यंत सरल है। तुझे अपने कर्मोंके

स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां । मृत्वा काले बभूवायं तव पुत्रः सुकोशलः ॥१४७॥ अस्मिन् भवे तपस्तप्त्वा मुक्तिं यास्यति भूपते ! । नृपोऽपि तद्वचः श्रुत्वा ययौ धामविरक्तधीः ।। १४८ ॥ निजं राज्यं तुजे तस्मै दत्त्वासौ हरिवाहनः । पिहितास्रवमादाय दीक्षां 'दैगम्बरीमितः ॥ १४९ ॥ तद्धीरत्वं समालोक्य शतं राज्ञां च धीमतां । प्राव्राजोज्जितशत्रूणां धीराणां चेष्टितं ह्यदः ॥१५०॥ राजा सुकोशलो राज्यं चक्रे रीत्यथ नोदनात् । सचिवस्य श्रुताभ्यासी नीरागी कामिनीषु च ॥ १५१ ॥ सविवेनैकदा प्रोक्तः स्वकीयो देहजः सुधीः । श्रुतसागर

खिपानेके लिये यह व्रत अवश्य करना चाहिये । तुंगभद्राने मुनिराजके वचन प्रमाणीक मान लिये और वह व्रत लेकर अपने घर चली आई । जब तक वह जीती रही विधि पूर्वक उस व्रतका आचरण उसने किया आयुके अंत समयमें पंचपरमेष्ठिका स्मरण कर उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया वही तुंगभद्राका जीव यह कुमार सुकोशल हुआ है ॥ १३८—१४७ ॥ राजन् ! यह कुमार सुकोशल तीव्र तपोंको तपकर नियमसे इसी भवसे मोक्ष जायगा । इस वातमें किसी प्रकारका संदेह मत समझो । मुनिराजके मुखसे इस प्रकार सुकोशल कुमारका पूर्व भव सुनकर राजा हरिवाहनको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया । वह मुनिराजके पाससे सीधा राज महल लौट आया । अपने पुत्र सुकोशलको राज्य प्रदान किया एवं मुनिराज पिहितास्रवके चरणोंमें दिगम्बर दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ १४८—१४९ ॥ राजा हरिवाहनकी इसप्रकार धीर वीरता देख सौ राजा उसके साथ और भी दीक्षित होगये। ठीक ही है शत्रुओं पर सदा विजय पाने वाले धीर वीर पुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा हुआ करती हैं ॥ १५० ॥ कुमार सुकोशल अपने पिताके मुनि हो जानेपर यद्यपि राजा वन गये परन्तु परिणामोंमें वैराग्य रहनेके कारण उनका चित्त राजकी ओर कम झुकता था तथापि वे मंत्रीकी प्रेरणासे वरावर राज्यका कार्य सम्हालते थे किन्तु उनका शास्त्रोंका अभ्यास सदा चलता रहता था । और स्त्रियोंके अन्दर उनकी सदा अनिच्छा रहती थी ॥ १५१ ॥

मेव रहस्याकार्यं पापिना ॥ १५२ ॥ राजायं बालकः पुत्रः । राजनीतिं न वेत्त्यतः । कुतश्चित्कारणान्नूनं मारणीयस्त्वयाचिरात् ॥१५३॥ तुभ्यं प्रौढ़ाय पुत्राय राज्यं दास्यामि निश्चितं । अहं मन्त्री भवेयं ते स्वीयं राज्यं हि सौख्यदं ॥१५४॥ श्रुत्वेति तत्पितुर्वाक्यं स्वामिद्रोहकरं सुतः । शिरोविधूननं कुर्वन् भूपाभ्यासं समाययौ ॥ १५५ ॥ राजानं स समाहूय निःशलाके सुप्रीतिमान् । पित्र्युक्तं सकलं तस्मै नृपाय समबूबुधत् ॥ १५६ ॥ विचार्य वचनं तस्य राज्ञा मन्त्री निराकृतः । देशात्स्वपुरतो वेगाद्राजद्वाराच्च दुर्मतिः ॥ १५७ ॥ विद्युत्पातान्मृतं दृष्ट्वा मरालद्वयमेकदा । सद्यो वैराग्यमापन्नो विरक्तोऽभून्मुनीन्द्रवत् ॥ १५८ ॥ राज्यभारं ददौ तस्मै श्रुतसागरमंत्रिणे

राजा सुकोशलका मंत्री बड़ा दुष्ट था एक दिन उसने अपने पुत्र श्रुतसागरको एकांतमें बुलाया और उस पापीने इस प्रकार उससे कहा—पुत्र ! राजा सुकोशल अभी बालक हैं। किसी प्रकारकी राजनीतिका जानकार नहीं तुम्हें चाहिये कि तुम किसी भी उपायसे इसे मार डालो ॥१५२।१५३॥ तुम युवा और राजके योग्य हो तुम निश्चय समझो यह सारा राज्य मैं तुम्हें दूंगा और मैं तुम्हारा मंत्री बनकर रहूंगा बस फिर राज्य हमारा ही हो जायगा ॥ १५४ ॥ मंत्रिपुत्र श्रुत सागर अपने पिताके इस प्रकार स्वामी द्रोह सूचक वचन सुनकर चित्तमें बड़ा दुःखित हुआ। उसने अपने पिता भी मंत्रीकी कुछ भी पर्वा न की शिर पटकता हुआ वह शीघ्रही राजाके पास चला गया। सज्जन पुरुषोंपर सदा प्रेम रखनेवाले मंत्रीपुत्र श्रुत सागरने शीघ्रही राजाको बुलाया और जो उसके पिता मंत्रीने कहा था सब ज्यों का त्यों राजाको कह सुनाया ॥ १५५—१५६ ॥ श्रुतसागरके वचनोंपर राजा सुकोशलने पूर्ण ध्यान दिया। दुर्बुद्धिके धारक उस मंत्रीको तिरस्कार पूर्वक देश नगर और राज दरबारसे तत्काल बाहिर निकाल दिया ॥ १५७ ॥ एक दिन राजा सुकोशलने क्या देखा कि बिजलीके गिरनेसे दो हंस मर गये हैं बस एक दम उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया और मुनिके समान राज वैभवको उन्होंने मंत्री श्रुत सागरको समझा दिया ॥ १५८ ॥ राज्य भारके योग्य

जग्राह संयमं सारं पितुः पार्श्वे कृती स च ॥ १५६ ॥ मतिसागरनामा यो मंत्री निष्कासितः पुरात्। निदानं कृतवानेव स सांहाः स्वामिद्रुट् शठः ॥ १६० ॥ यद्यहं वारितोऽनेन कोशलेन महीभुजा। अहं प्रमाणं तर्ह्यग्रे हन्म्येनं कष्टतो ध्रुवं ॥ १६१ ॥ निदानमिति कृत्वासौ मंत्री निधनमासदत्। मौद्गल्यपर्वते सिंहो बभूवारुणकेसरः ॥ १६२ ॥ अथैकदा मुनी तौ द्वौ मौद्गल्यगिरिमापतुः। धृत्वा योगं स्थितौ तत्र तावत्सिंहः समागतः ॥ १६३ ॥ पूर्ववैरानुबंधेन क्रोधारुणितलोचनः। नखैर्दंतैः खरैः पापी भक्षयामास तौ मुनी। ॥ १६४ ॥ शुद्धध्यानेन तौ वीरौ क्षपकश्रेणिमाश्रितौ। केवलज्ञानमुत्पाद्य प्रापतुः परमं पदं ॥ १६५ ॥ अतो वत्स! विधातव्यं मौनं द्वैधं

उन्होंने मंत्री श्रुत सागरको समझा इसलिये समस्त राजपाट उसे सौंप दिया एवं पुण्यवान वे राजा सुकोशल अपने पिताके पास दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १५८—१५९ ॥ मंत्री मतिसागर जिसे कि राजा सुकोशलने उसके दुष्ट भावोंके कारण राज्यसे तिरस्कार पूर्वक निकाल दिया था वह जहां तहां पृथ्वी पर घूमता फिरा एवं अन्त समयमें उस स्वामीद्रोही मूर्ख और दुष्ट ने यह निदान बांधा—

मैं जो इस राजा सुकोशलने अनादर पूर्वक निकाला हूं उससे मैं ऐसा हूं जो इसे कष्ट पूर्वक मारूं बस ऐसा महादुष्ट निदान बांधकर वह मंत्री मरा और मुद्गल पर्वत पर वह लाल २ आल वालोंका धारक सिंह होगया ॥ १६०—१६२ ॥ एक दिनकी वात हैं कि पिता पुत्र वे दोनों मुनि जहां तहां विहार करते २ मुद्गल पर्वत पर आये और उसकी विस्तीर्ण शिलापर योग धारण कर स्थित होगये। जहांपर ये योग धारण कर विराजे थे वह सिंह भी वहांपर आया। पूर्व जन्मके तीव्र वैरके कारण मारे क्रोधके उसके नेत्र लाल होगये एवं तीव्र नख और दांतोंसे दोनों मुनियों का शरीर विदारण कर वह दुष्ट भक्षण कर गया ॥ १६३—१६४ ॥ वे दोनों ही मुनिराज परम धीर वीर थे अपने परिणामोंकी विशुद्धिसे वे क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ होगये एवं केवलज्ञानको प्राप्त

समाप्तये । महत्पुण्यं व्रतं स्तोकं तत्सद्देव विधीयते ॥ १६६ ॥ तद्व्रतं मन्त्रिपुत्रेण साकं जग्राह प्रीतिकृत् । गंतुकामो यथाभूतां नत्वा तौ मुनिपुङ्गवं ॥ १६७ ॥ तदा च हरिणं मृग्या कुर्वंतं सुरतक्रियां । सिंहेन प्रहतं वीक्ष्य तौ च वैराग्यमापतुः ॥ १६८ ॥ यथैणं हतवान् सिंहो सतृष्णं कांतया सह । तथा कालोऽपि नो हत हनिष्यति हठादिति ॥ १६९ ॥ तत्क्षणे वै द्विधा संगं त्यक्त्वा मार्दवमानसौ

कर मोक्ष शिलापर जा विराजे ॥ १६५ ॥ मौनव्रतका माहात्म्य बतलानेवाली यह कथा सुनाकर मुनिराज धर्मरुचिने कुमार प्रीतिङ्करसे कहा—

कुमार ! मौनव्रतका यह विशिष्ट फल है इसलिये नित्य नैमित्तिकके भेदसे जो दो प्रकारका मौन बतलाया गया है वह अवश्य आचरण करना चाहिये । यद्यपि यह व्रत देखनेमें अति सुलभ जान पड़ता है तथापि वह महान् पुण्यका कारण है इसलिये यह अवश्य आचरण करने योग्य है । ॥ १६६ ॥ मुनिराज धर्मरुचिसे यह मौनव्रतका विशेष माहात्म्य सुन राजपुत्र प्रीतिंकरने मन्त्रीपुत्रके साथ शीघ्र ही मौनव्रतकी प्रतिज्ञा लेली । भक्ति पूर्वक दोनोंने मुनिराजको नमस्कार किया और वे अपने नगरकी ओर चल दिये ॥ १६७ ॥ जिस समय वे अपने नगरकी ओर लौट रहे थे उस समय मार्गमें क्या देखते हैं कि अपनी हिरणीके साथ सानन्द विषय भोग करते हिरणको सिंहने मार डाला है । बस हिरणकी वैसी दशा देखकर उन्हें संसारसे वैराग्य होगया और वे मनही मन यह विचारने लगे—

जिस प्रकार अपनी स्त्रीमें तीव्र तृष्णा रखनेवाले इस हिरणको इस सिंहने मार डाला है उसी प्रकार काल रूपी सिंह भी हमें नियमसे हनेगा—उसके भी पंजेसे बचना हमारा अत्यन्त कठिन है बस शीघ्र ही उन दोनों कुमारोंने बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर दिया । परिणामोंमें अत्यन्त कोमलता धारण कर ली एवं वनमें मुनिराज धर्मरुचिके पास जाकर शीघ्रही

धर्मादिरुचिसामीप्ये तौ प्रवव्रजतुर्वने ॥ १७० ॥ क्षीरस्राविर्द्धिरुत्पन्ना प्रीतिंकरमहामुनेः । अत्युग्रतपसा क्षामशरीरस्य दयानिधेः ॥ १७१ ॥ एकदा जग्मतुः शुद्धौ साकेतस्य वनांतरे । विहरन्तौ मुनी सौम्यौ तौ विद्वांसौ हतांहसौ ॥१७२॥ गणिका बुद्धिषेणाख्या दृष्ट्वा स्वगृहसन्निधौ । चर्यायंतं मुनिं नत्वा जगादेति कृतांजलिः ॥१७३॥ मुनेऽहं कुत्सिता निंद्या दानयोग्यकुलातिगा । अस्मिन् मन्ये विधा ग्राह्या न त्वेव तपोनिधेः ॥ १७४ ॥ कादंबरी पलं यत्र कुले स्वप्ने न दृश्यते । नानाचारोऽपि योगीन्द्रैस्तत्र ग्राह्या विधान्यथा ॥ १७५ ॥ आश्रमद्वयभ्रष्टास्ते मुनयो मांसभक्षिणः । अनाचारप्रसक्तत्वाद्भवंति व्याधसन्निभा ॥ १७६ ॥ इत्यप्राक्षीन्मुनिं क्षुद्रा प्रोच्चैर्गोत्रकुलादिकं ।

दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १६८—१७० ॥ अत्यन्त कृश शरीरके धारक दयाके समुद्र महामुनि प्रीतिंकरके घोर तपके कारण क्षीरस्राव नामकी ऋद्धि प्राप्त होगई ॥ १७१ ॥

विद्वान समस्त पापोंके नाश करनेवाले एवं शुद्ध मुनिराज प्रीतिङ्कर विहार करते २ एक दिन साकेत नगरके वनमें जा पहुंचे। किसी दिन जब वे आहारके लिये नगरमें गये और बुद्धिषेणा नामकी वेश्याने जब उन्हें चर्या पूर्वक अपने मकानके समीपसे निकलता देखा तो वह शीघ्र ही उनके पास आई और इस प्रकार विनय पूर्वक निवेदन करने लगी—

भगवन्! मैं हीन निन्दनीक और दानके योग्य कुलसे रहित हूं इसलिये तपके भंडार आप मेरा दिया आहार तो ग्रहण कर ही नहीं सकते? उत्तरमें मुनिराजने कहा जिस कुलमें शराब और मांसका स्पर्श स्वप्नमें भी न होगा और जहांपर किसी प्रकारका अनाचार न दीख पड़ेगा योगीन्द्र लोग उसी कुलका आहार ग्रहण कर सकते हैं ॥ १७२—१७५ ॥ जो मुनि मांसका भक्षण करते हैं वे दोनों ही आश्रमोंसे भ्रष्ट हैं अर्थात् न वे गृहस्थ ही कहे जाते हैं और न मुनिही ही कहे जाते हैं क्योंकि वे अनाचारी हैं। अतएव वे भीलोंके समान निन्दनीक हैं ॥ १७६ ॥ मुनिराजके ऐसे वचन सुनकर बुद्धिषेणाने पुनः यह पूछा—प्रभो? जीवोंको उच्च गोत्र उच्चकुल सुन्दर

देहिनां स्यात्कथं ब्रूहि रूपं कीर्तिश्च भो मुने ! ॥ १७७ ॥ पुनस्तां स मुनिः प्राह मद्यमांसादिवर्जनात्। ब्रह्मचर्याच्च तत्प्राप्तिर्नान्यथा देहिना सुने ! ॥ १७८ ॥ उदीर्येति गतोऽरण्ये मुनिः प्रीतिंकरो महान्। तदा तमगदीत्साधुं विचित्रमतिरित्यहो ॥ १७९ ॥ एतावत्काल पर्यंतं क स्थितं भवता पदे। संजायते सदा देव ! मुमुक्षूणां स्थितिर्वने ॥ १८० ॥ तदा प्रीतिंकरः क्षुद्रावृत्तांतं सर्वमादितः। तस्मै न्यवेदयत्सोऽपि श्रुत्वा चानंदमागतः ॥ १८१ ॥ विचित्रमतिरन्येद्युर्भुक्त्यै प्राविशद्गृहं। क्षुद्रायाः सापि तं दृष्ट्वा ववंदे पूर्ववन्मुनिं

रूप और कीर्ति किस प्रकार प्राप्त होती है कृपाकर आप खुलासा रूपसे यह बतलाइये। उत्तरमें मुनिराजने कहा—

जो मनुष्य मद्य मांस और मधुके त्यागी हैं और अपनी आत्मामें ब्रह्मचर्यका बल रखते हैं उन्हींके उच्च गोत्र वा उच्च कुल आदिकी प्राप्ति होती है अन्यको नहीं ॥ १७७—१७८ ॥ बस इस प्रकार बुद्धिसेनाको समझा कर मुनिराज प्रीतिंकर वनमें लौट आये उन्हें कुछ विलम्बसे लौटते देख मुनिराज विचित्र मतिने कहा—

मुने ! इतनी देर तक आप किस स्थान पर ठहरे रहे थे। देव ! जो पुरुष मुमुक्षु है—मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिये सदा वनमें ही रहना उचित बतलाया गया है। मुनिराज विचित्र मतिकी यह बात सुन मुनिराज प्रीतिंकरने आदिसे अंत तक वेश्या बुद्धिसेनाका समस्त वृत्तांत कह डाला जिसे सुनकर मुनिराज विचित्र मतिको अति आनन्द हुआ ॥ १७९—१८१ ॥ दूसरे दिन मुनिराज विचित्र मतिभी आहारके लिये गये एवं दुर्भाग्यवश वे वेश्या क्षुद्राके घरमें प्रवेश कर गये वेश्याने उन्हें भी मुनिराज प्रीतिङ्करके समान जानकर वंदना की। और धर्मोपदेश सुननेकी लालसा प्रगट की परन्तु उसे देख मुनिराजका चित्त चंचल होगया इसलिये वे धर्मकथाकी चर्चा न कर दुर्बुद्धि हो इसप्रकार काम कथा कहने लगे—

॥ १८२ ॥ अन्वयुक्त यथा धर्मं रूपाजीवा मुनिं प्रति। कामरागकथामेव व्याजहार स दुर्मतिः ॥ १८३ ॥ सुन्दरि ! स्थूल वक्षोजे ! गौरांगि । मृगलोचने ! रुवंकास्ये ! प्रगल्भे ! त्वं धर्मं पृच्छसि किं पुनः ॥ १८४ ॥ यौवनं यास्यति नूनं वार्धक्यं च समेष्यति। कस्मै कृत्याय देहोऽयं तव स्यात्सुरतं विना ॥ १८५ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं क्षुद्रा तं जगौ विहितस्मिता। काचार्थं सन्मणिं पोलुं गर्दभार्थं च कस्त्यजेत् ॥ १८६ ॥ मुनिस्तद्वचनं श्रुत्वा भृश कामाकुलोऽभवत्। रत्नरम्भोत्तमेऽस्माकं त्वमेवासि गजेश्वरः ॥१८७॥ पुनस्तं वुद्धिपेणाह स्तोकसौख्यार्थमंजसा। भो नैकश्यागतं शर्म शेवं कस्त्यजति शिव ॥ १८८ ॥ स्वत्संपर्कोत्थं शर्म मह्यं रोचेत नायके !

सुन्दरी ! तुम उन्नत स्तनोंसे शोभायमान हो। गोरे अंगकी धारक हो । तुम्हारे दोनों नेत्र हिरणोंके समान मनोहर हैं तुम चंद्रमुखी और प्रौढ़ उम्रकी हो धर्मके विषयमें तुम क्या पूछना चाहती हो ? देखो यह यौवन चला जाता हैं और बुढापा आ धमकता है। तुम्हारा यह सुन्दर शरीर भोग विलासोंके लिये है सो तुम भोग विलास न कर क्यों इस महा मनोहर शरीरको निरर्थक खो रही हो और किस कार्यके लिये इसका लालन पालन कर रहीं हो ॥ १८२—१८५ ॥ मुनिराज विचित्रमतिकी यह बात सुनकर वेश्या बुद्धिषेणा मुस्कराने लगी एवं मुस्कराते हुए उसने यह उत्तर दिया—मुने ? काचके लिये उत्तम मणि और गधाके लिये हाथीको छोड़ता मैंने कोई नहीं देखा है। भोग विलास काच और गधाके समान हैं एवं धर्माचरण उत्तम मणि और हाथीके समान हैं। धर्माचरण छोड़कर भोग विलासोंसे शरीरको नष्ट करना व्यर्थ है। मुनि विचित्र मतिकी काम वासना प्रज्वलित हो चुकी थी। वेश्याको बातका उनके चित्तपर जरा भी असर नहीं पड़ा एवं कामसे अत्यन्त पीडित हो वे इस प्रकार कहने लगे—

सुन्दरी ! तुम देवांगनाके समान मनोहर रूपसे शोभायमान हो इसलिये मेरे लिये तो तुम्हीं उत्तम मणि और उत्तम हाथी हो तुम्हें देखकर धर्माचरणकी ओर चित्त नहीं जा सकता ॥१८६॥

करणागोचरं शर्म शाश्वतं नापि तत्तथा। सा तं भृष्टं परिज्ञाय तिरश्चक्रेऽतिवेगतः। तदा लब्धापमानः सः, वने गत्वा तपोऽकरोत् ॥ १९० ॥ मासे मासद्वये याते पारणामकरोन्मुनिः। तत्तपो दुष्करं मत्वा राजा तद्वशमागतः ॥ १९१ ॥ बुद्धिषेणा तदा स्वाते तत- र्कति मुहुर्मुहुः। अस्याधीनो वशो राजा तर्हि कोऽप्यस्त्ययं महान् ॥ १९२ ॥ वशीभूयमिता तस्य बुद्धिषेणापि लज्जिका। ततलांगत्यं

१८७ ॥ बुद्धिषेणाका कार्य यद्यपि वेश्याका था परन्तु वह धर्मको कुछ समझती थी इसलिये वह पुनः मुनि विचित्रमतिको समझाने लगी—

मुने ! विषय जनित थोड़ेसे सुखकी लालसासे विलकुल पासमें आये हुए मोक्ष सुखको कोई छोड़ता नहीं सुना। मोक्षका प्रधान कारण तुमने दिगंबर लिंग धारण कर रक्खा है मोक्षका सुख विलकुल तुम्हारे समीप है तुम्हें निन्दित विषय भोगोंकी लालसा कर उसे न छोड़ देना चाहिये ॥ १८८ ॥ मूढ़ मुनिपर उसके वचनोंका कब प्रभाव पड़ सकता था। विचित्रमतिने अपने मुनिलिंग की कुछ भी पर्वा न की वह एक दम मूढ़ बनकर इसप्रकार कहने लगा—

सुन्दरी ! मुझे इस समय तो तुम्हारे संसर्गसे जगमान सुख ही रुच रहा है। जो सुख इंद्रियोंके गोचर नहीं वह नित्य हो चाहे अनित्य वह वैसा ही रहे। मुनिके इन निर्लज्ज वचनोंसे वेश्या बुद्धिषेणाको यह मालुम पड़ चुका कि यह धर्माचरणसे भ्रष्ट है इसलिये उसे वडा क्रोध आया और उसका घोर तिरस्कार किया जिससे मुनि विचित्रमतिको गाढ अपमान मान वड़ा कष्ट हुआ। सीधा वह वनको चला गया एवं मनमें किसी प्रकारका धर्माचरण न रख ढोंगसे वह एक एक वा दो २ मासके वाद पारणा करने लगा जिससे राजा पर भी उसका प्रभाव पड़ गया और वह विचित्रमतिका अनन्य भक्त वन गया ॥ १८६—१६१ ॥ जिस समय विचित्रमतिका अनन्य भक्त राजा होगया उस समय बुद्धिषेणा अपने मनमें बार २ विचारने लगी जब इस मुनिके वश राजा होगया

मुनिः प्राप्य मोहांधोऽभूत्तपश्च्युतः ॥ १९३ ॥ पूर्ववैरेण वैरं स्यात्पूर्वस्नेहेन भोगता । न दोषोऽस्त्यत्र कस्यापि तन्निंदी नरकं व्रजेत् ॥ १९४ ॥ तिर्यग्योनिश्च मोहाद्धि निर्बंधो भवति स्फुटं । मृत्वा स कुंजरो जज्ञे तवायं मानवाधिप ! ॥ १९५ ॥ अस्य त्रिलोकप्रगतिश्रवणा जातिसंस्मृतिः बभूवातो गजोऽयं तैः नाग्रहीद्रवणं शुना ॥ १९६ ॥ इत्याकर्ण्य नृपशिखरो चिंतयामास धिग्धनं । राज्यं रामा सुखं चेति निर्विण्णोऽभूत्तदा नरेट् ॥ १९७ ॥ साधिपत्यं तुजे दत्वा स्वभ्राता रत्नमालया । साकं संयममापेदे रत्नायुधनराधिपः ॥ १९८ ॥ योग्याश्रमाद्वृते व्यर्थं तपो भवति निश्चितं । यत्राश्रमे मनो याति विलयं तत्तपो विदुः ॥ १९९ ॥ तपासि चिद्रूपे शैले फल्गाग्रे तिग्मरो

है तब अवश्य ही यह कोई महान पुरुष है बस सारे भयके बुद्धिषेणा भी मुनिके वश गई । मोहसे अन्ध हो मुनिराजने भी उसकी संगति करनी प्रारम्भ करदी और तपसे अपना मुंह मोड़ लिया ॥ १९२—१९३ ॥ जिस किसी मनुष्यका जिस किसीके साथ वैर वा स्नेह होता है वह पूर्व भवके वैरके संबंधसे होता है इससें किसीका दोष नहीं इसलिये किसीको बुरा भला कहना व्यर्थ है ॥ १९४ ॥ मोहकी प्रबलतासे जीवको तिर्यंच योनिके अन्दर तिर्यंच होना पड़ता है।

राजन वज्रायुध ! वह विचित्रमति मुनिका जीव मरकर तुम्हारा यह हाथी हुआ है । तीनलोक का स्वरूप सुनकर इसे अपना जाति स्मरण होगया था इस लिये मारे शोकके इसने खाना पीना छोड दिया ॥ १९५—१९६ ॥ राजा रत्नायुधने मुनिराज वज्रदन्तके मुखसे जब इसप्रकार हाथीके पूर्व भवका वृतांत सुना तो उसने लक्ष्मी राज्य स्त्री जनितसुख आदिको बहुत धिक्कारा । वह उनसे विरक्त होगया। राज्य भार अपने पुत्रको प्रदान किया एवं अपनी माता रत्नमालाके साथ संयम धार लिया ॥ १९७—१९८ ॥ तपके आचरणका जो आश्रम बतलाया गया है यदि उस आश्रमकी कुछ भी पर्वा न की जाय तो वह तपा हुआ तप भी व्यर्थ चला जाता है । यदि तप करते भी चित्त

विन् । प्रांते समाधिना मृत्वा सोऽभूदच्युते दिवि ॥ २०० ॥ तपसा रत्नमालापि स्त्रीत्वं छित्वाऽच्युताभिधः । देवोऽभूदच्युते स्वर्गे सुखार्णोधौ पनङ्गमः ॥ २०१ ॥ द्वाविंशत्यब्धिमानायुः सुखं तौ प्रापतुः परं । तावद्भिश्च सहस्रैस्तौ मनसाहारमापतुः ॥ २०२ ॥ तावत्पक्षैः समुच्छ्वासं सुगंधीकृतदिक्चयं । कुर्वंतौ सेव्यमानौ च रम्भाराज्यामरालिभिः ॥ २०३ ॥ भोजयामासतुस्तौ शं निमिषा च्युतनामिधौ । शुक्ललेश्यौ करत्र्यंगौ पद्मरागमणिप्रभौ ॥ २०४ ॥ अथ यः प्राक्तनः श्वाभ्रो निर्गतः पङ्कश्वभ्रतः । नानायोनिषु दुःखानि तानि भुक्तानि तेन वै ॥ २०५ ॥ नाम्ना छत्रपुरे व्याधो वर्तते कज्जलप्रभः । दारुणाख्यो महापापी पापपुंज इवाद्भुतः ॥ २०६ ॥ तस्य

गृहस्थाश्रममें ही फसा रहे तो वह तप नाशक बन जाता है ॥ १९९ ॥ वे मुनिराज रत्नायुध सूर्यकी ओर टकटकी लगाकर घोर तप तपने लगे और अंतमें समाधिपूर्वक प्राणोंको त्याग कर अच्युत स्वर्गमें जाकर देव होगये ।२००। आर्यिका रत्नमालाने भी घोर तपके भावसे स्त्रीलिंगको छेद दिया। अच्युत स्वर्गमें जाकर वह अच्युत नामका देव होगई जो कि देव सुखरूपी समुद्रकी वृद्धिके लिये चंद्रमा स्वरूप था। वे दोनों देव वाईस सागर प्रमाण आयुके धारक थे। परम सुखी थे। वाईस हजार वर्षोंके बाद एकवार मनसे आहार ग्रहण करते थे। वाईस पक्षोंके वाद अपनी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको महकानेवाला सुगंधित उसास लेते थे और अनेक देवांगना और देव उनकी सेवा करते थे ॥२०१-२०३। शुक्ललेश्याके धारक थे। तीन हाथके शरीरसे शोभायमान थे और पद्मराग मणिके समान प्रभाके धारक थे ॥ २०४ ॥

मंत्री सत्यघोषका जीव जो अजगरकी पर्यायसे चौथे नरकमें गया था। वह वहांसे अपनी आयुके समाप्त होजानेके वाद निकला एवं अनेक योनियोंमें घूमनेके कारण उसने बहुत दुःख भोगा।२०५। पद्मपुर नगरमें एक दारुण नामका भील रहता था जो कि काजलके समान काला था और साक्षात् पाप स्वरूप था ॥ २०६ ॥ उसकी स्त्रीका नाम मंगिका था जो कि काजलका पिंड स्वरूप थी एवं

स्त्री मंगिका नाम्ना कज्जलालिश्च वेधसा। रचिता तमसां माला जगत्स्थानमिव ध्रुवं ॥ २०७ ॥ तयोः पुत्रोऽभवत्सोऽपि भीषणो भीरुभीप्रदः । नाम्नातिदारुणोदुष्टो मृगादीनां विनाशकृत् ॥ २०८ ॥ वने प्रियंगुखण्डाख्ये वज्रायुधमुनीश्वरः । आययावेकदा हिंस्रैर्भीषणे विहरन्नसौ ॥ २०९ ॥ गहनं विपिनं स्थानं दृष्ट्वा तत्र स्थितो मुनिः । कायोत्सर्गं विधायाशु संस्मरन् परमं महः ॥ २१० ॥ तपसा क्षामगात्रं तमर्धदग्धशवस्तुवत् । गतच्छायं मुनिं दृष्ट्वा समेत्तत्रातिदारुणः ॥ २११ ॥ अब्रवीदिति कोपेन समारूढं विधाय सः । कार्मुकं दुर्वचोभिस्तं द्रुपद्धस्तो भ्रमन्नपि ॥ २२ ॥ कोऽसि त्वं कुत आयातो मद्वने जनवर्जिते । किमर्थं कस्य पुत्रोऽसि किंनामा

ऐसी जान पड़ती थी मानों यह जगतमें ब्रह्माने अंधकारकी माला रच दी है भीलिनी संगीके मंत्री सत्यघोषका जीव वह नारकी अतिदारुण नामका पुत्र हुआ जो कि महाभयंकर था। डरपोकोंको भय प्रदान करनेवाला था दुष्ट था और मृग आदि दीन पशुओंका नाशक था। छत्रपुरका एक प्रियंगुखंड नामका वन था जो कि हिंसक जीवोंसे महा भयंकर था। जहां तहां विहार करते २ मुनिराज वज्रायुध वहांपर आये। गहन निर्जन स्थानमें कायोत्सर्ग मुद्रा धारणकर वे विराज गये और सिद्धोंके स्वरूपका चिंतवन करने लगे। मुनिराज वज्रायुधका शरीर घोर तपोंके तपनेके कारण एकदम कृश था इसलिये वे आधे जले मुर्दे सरीखे जान पड़ते थे एवं उनके शरीरकी प्रभा एकदम नष्ट होगई थी। मृगोंके पकड़नेकी खोजमें भीलपुत्र अतिदारुण भी घूमता २ वहां आ पहुंचा एवं मुनिको देखकर पूर्व वैरके संबन्धसे उस दुष्टने बाण धनुष पर चढ़ा लिया। हाथमें मारनेके लिये पत्थर ले लिये। एवं मारनेके लिये घुमाता हुआ वह इसप्रकार दुर्वचन कहने लगा—

तू कौन है! और इस जनशून्य मेरे बनमें तू कहांसे और क्यों आया है? किसका पुत्र और तेरा क्या नाम है? जल्दी बता यदि तू जल्दी न बतायेगा तो बाण पत्थर और मुक्कोंसे तुझे अभी यमराजके मन्दिरमें पहुंचा दूंगा ॥ २०७—२१३ ॥ परम ध्यानी मुनिराज ऐसें कब भय

वद वेगतः ॥ २१३ ॥ ब्रूयास्त्वं यदि:नो तूष्णीं तर्हि कीनाशमन्दिरं । नेष्याम्यहं:धनुर्घातैस्त्वां पाषाणैश्च मुष्टिभिः ॥ २१४ ॥ निश्चलो मेरुवद्धीरः सिंहवद्वारिराशिवत् । गम्भीरः सत्वमाश्रित्य न चचाल स योगतः ॥ २१५ ॥ तदासौ दुर्मतिर्व्याधस्तताडोपलराशिभिः पूर्ववैरोदयाद्गाढं तस्य क्रोधोऽमृशायत ॥ २१६ ॥ आकण्ठं ताड्यमानोऽपि तेन पापीयसा मुनिः । नापतद्भूतले भव्यो ध्यानभित्त्यबलंवतात् ॥ २१७ ॥ यदा भिल्लो मुनेः कण्ठे चापमारोप्य वेगतः । आचकर्ष बलाद्दोर्भ्यां न चचाल तदापि सः ॥ २१८ ॥ दोर्दण्डीकृत्य चापं स्वं किरातो मुनिमस्तके । जघान घन घातैश्च तद्विघ्नो दुर्वचो विदां ॥२१९॥ द्वादशेति मुनिर्दध्यावनुप्रेक्षाः स्वमानसे । तद्ध्यानं

भीत होनेवाले थे वे मेरुपर्वतके समान निश्चल सिंहके समान धीरवीर समुद्रके समान गंभीर होगये। चित्तमें उत्तम कोटिकी शांति धारण कर वे रञ्चमात्र भी ध्यानसे न चिगे। मुनिराजका इसप्रकार का मौन देख उस दुष्टका क्रोध एकदम उबल उठा एवं पूर्वबैरके सम्बन्धसे वह उन्हें पत्थरोंसे मारने लगा ॥ २१४—२१५ ॥ कण्ठपर्यन्त उस पापीने मुनिराजको पत्थरोंकी मार मारी परन्तु वे ध्यानरूपी मजबूत भीतिके सहारे खड़े थे इसलिये वे जमीनपर न गिरपाये ॥ २१६ ॥ मुनिके गलेमें दुष्टने धनुष डाल दिया और दोनों भुजाओंसे उन्हें खींचने लगा तथापि वे मुनिराज रञ्च-मात्र भी चल विचल न हुए ॥ २१७ ॥ अन्तमें दुष्टने क्या किया दोनों भुजाओंसे धनुषको पकड़ लिया एवं तीक्ष्ण बाणोंसे मुनिराजका मस्तक छेदने लगा। यह विघ्न वास्तवमें विद्वानोंके वचनके अगोचर था। मुनिराज वज्रायुधने अपने ऊपर तीव्र उपसर्ग समझकर बारह भावनाओंका चिन्तवन करना प्रारम्भ कर दिया। वे रञ्चमात्रभी उस विघ्नसे विचलित न हुये ठीक ही है ध्यान और तप वही प्रशस्त माना गया है जो विघ्नके उपस्थित हो जानेपर मनुष्यको विचलित न होने दे ॥ २१८—२१९ ॥ वे मुनिराज चित्तके अन्दर इसप्रकार भावना भाने लगे—

संसारमें जितने भी धन धान्य आदि पदार्थ दीख पड़ते हैं सब अनित्य हैं तथा पिता पुत्र

तत्पः ख्यातं यद्विन्ने शक्तिमद्भवेत् ॥२२०॥ अनित्यं दृश्यते सर्वं धनधान्यादिकं भवे। पितृपुत्रकुटुम्बानां नित्यत्वं नैव दृश्यते ॥२२१॥ चक्रवर्त्यादयो भूपाः षट्खण्डधराविनः। मृतास्ते कालसर्पेण दृष्टा देवनमस्कृताः ॥२२२॥ देवार्यखण्डभूभूपा दृश्यार्था पन्नगेशिनः। भूधरा भूरुहस्तारा ग्रहा दैत्याः सुराधिपाः ॥ इष्टानिष्टानि वस्तूनि पुद्गलाः पापकारिणः। सर्वे कालेन नश्यंति नास्ति कालप्रतिक्रिया ॥ २२४ ॥ संसारकानने जीववृषंतं कालपीलुमित्। अत्त्येव कोपतः श्वेतः कस्तं शक्नोति रक्षितुं ॥ २२५ ॥ पिता पुत्रं सवित्री च पुत्रश्च पितरावपि। अलन्न रक्षितुं कालगृह्यमाणमये मनः! ॥ २२६ ॥ असारेऽत्र भवे चेतः! कः कस्यापि न विद्यते। स्वार्थभूतं

कुटुम्ब आदि पदार्थोंमें भी कोई अविनाशी नहीं दीख पड़ता ॥ २२० ॥ छह खण्डके स्वामी अनेक देवोंसे सेवित चक्रवर्ती आदि राजा भी कालरूपी सर्पके द्वारा डसे जानेके कारण मृत्युके मुखमें प्रविष्ट होगये हैं ॥२२१॥ देव, आर्यखण्डकी पृथ्वीके स्वामी, दृष्टि गोचर उत्तमोत्तम पदार्थ, धरणेंद्र पर्वत, वृक्ष तारा ग्रह दैत्य देवेन्द्र इष्ट और अनिष्ट रूप चीजें और पापके कारण पुद्गल सभी कालके द्वारा नष्ट हो जाते हैं ॥ कालका प्रतीकार किसीके पास नहीं—उसे कोई वश नहीं कर सकता ॥ २२२—२२३ ॥ इस प्रकार संसारमें समस्त पदार्थ अनित्य हैं इस संसार रूपी वनमें जीव रूपी मृगको कालरूपी सिंह नियमसे खाता ही है। जिस समय इस जीव पर कालरूपी सिंह कुपित हो जाता है उस समय इसकी कोई भी उससे रक्षा नहीं कर सकता ॥ २२३ ॥ विशेष क्या! रे मन! इस संसारमें जिस समय इस जीवको कालरूपी सिंह जिकड़कर पकड़ लेता है उस समय पिता और माता, पुत्रकी रक्षा नहीं कर सकते एवं पुत्र, पिता माताको नही बचा सकता ॥ २२४-२२५ ॥ इस प्रकार इस जीवका संसारमें कोई अपना नहीं है। इस संसारमें कोई किसीका नहीं है समस्त जगत मतलबी है स्वार्थ रहने पर एक दूसरेको चाहता है ॥ २२६ ॥ इस प्रकार संसार बड़ा ही स्वार्थी है। निश्चय नयसे यह जीव नित्य है। सिद्ध बुद्ध और निरंजन है। किसीके द्वारा छेदा

जगत्सर्वं नित्यं जानीहि वस्तुतः ॥ २२७ ॥ जीवोऽयं नित्य एवास्ति सिद्धोबुद्धो निरंजनः । मच्छद्योऽनादिचिद्रूपो ध्येयो निर्द्वंद्वता मितः ॥ २२८ ॥ भिन्नोऽयं पुद्गलः ख्यातो जीवाज्जीवोऽपि तन्मनः । अतोऽस्मिन् मित्रता कैव कर्मरूपे विनश्वरे ॥ २२६ ॥ सप्तधातुमयो देहो विण्मूत्रैर्निचितोऽशुचिः । अस्थिसन्तानसंबद्धो रोगोरगपदं शठः ॥ २३० ॥ चर्मावृतः कदर्यैश्च दुर्गंधैः पूरितो घनं ध्यानं मुक्त्वार्थकेनायं पोष्यते कर्मभाजनं ॥ २३१ ॥ मिथ्यात्वाविरतित्रासैः कषायविषयादिभिः । कर्मास्रवति यत्तेन निरयं याति

जानेवाला न होनेके कारण अछेद्य हैं। अनादि है। चैतन्य स्वरूप है। ध्यान करने योग्य है और समस्त प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित निर्द्वन्द्व है ॥ २२७ ॥ इस प्रकार यह जीव अकेला ही है। पुत्र स्त्री आदि इसका कोई भी नहीं। जीवसे यह पुद्गल भिन्न है। पुद्गलसे जीव भिन्न है मन भी जीवसे भिन्न है इसलिये विनाशीक कर्मके साथ अविनाशीक जीवकी कोई भी मित्रता नहीं है ॥२२८॥ इस प्रकार यह जीव कर्मसे अन्य हैं। यह देह मेद मज्जा आदि सप्त धातु स्वरूप है। विष्टा और मूत्रसे व्याप्त है। अपवित्र हैं। हड्डियोंसे व्याप्त है। रोग रूपी सर्पोंका विल है और अनेक प्रकारसे पोषा जानेपर भी नष्ट ही होता चला जाता है इसलिये कृतघ्नी है ॥ २२६ ॥ यह शरीर चारों ओरसे चामसे वेष्टित है। महानिन्द्य दुर्गन्धिका खजाना है इसलिये कर्मोंके कारण इस शरीरका विद्वान लोग ध्यानके लिये ही पोषण करते हैं विषय भोगके लिये नहीं ॥ २३० ॥ इस प्रकार यह शरीर अपवित्र है। मिथ्यात्व अविरति त्रास प्रमाद कषाय और विषय आदिके द्वारा इस जीवके सदा कर्मोंका आस्रव होता रहता है उससे यह जीव नरकमें जाकर अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहता है ॥ २३१ ॥ इस प्रकार इस जीवके मिथ्यात्व आदिके द्वारा सदा कर्मोंका आस्रव होता रहता है। आस्रवके दो भेद माने हैं एक द्रव्यास्रव दूसरा भावास्रव। जिसके द्वारा दोनों प्रकारके कर्मोंका निरोध हो वह संवर कहा जाता है इस संवर तत्वकी प्राप्ति गुप्ति समिति धर्म व्रत आदि

मामनः ॥ २३२ ॥ द्रव्यभावास्रवौ येन रोध्येते सम्वरोहि सः । व्रतधर्मादिवान् जीवं हतो नयति [संत्पदं ॥ २३३ ॥ द्वौ भेदौ निर्जराया: स्तः सविपाकोऽविपाककः । मुनीनामविपाकः स्यादन्यस्त्व सर्वदेहिनां ॥ २३४ ॥ अनादिनिधनो लोकः षट्द्रव्यादिचितो महान् केनाकारि न मूर्द्धोन्नतनराकारमल' दधत् ॥ २३५ ॥ चिंत्यते ध्यानसिद्धयर्थं योगिना लोकसंस्थितिः । स्थैर्यं यतो मनो याति तस्मिन्नेव

के द्वारा होती है इस लिये व्रत और धर्म आदिका करनेवाला जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥२३२॥ इस प्रकार दोनों प्रकारके आस्रवका रुक जाना संवर कहा जाता है और संवर तत्त्वका चिंतवन संवरानुप्रेक्षा कही जाती है। सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जराके भेदसे निर्जराके दो भेद माने हैं। स्थितिके पूरे होनेपर प्रति समय कर्मोंका खिरता रहना सविपाक निर्जरा है और तप आदिके द्वारा जबरन कर्मोंका खिपा देना अविपाक निर्जरा है। व्रतियोंके अविपाक निर्जरा होती है क्योंकि वे तप आदिके द्वारा जबरन कर्म खिपाते हैं और अन्य सबोंके सविपाक निर्जरा होती है ॥ २३३ ॥ इस प्रकार एक देश रूपसे कर्मोंका खिपना निर्जरा है। यह समस्त लोक अनादि निधन है न इसकी आदि है और न इसका अन्त है। यह जीव अजीव आदि द्रव्य स्वरूप है। विशाल है। किसीके द्वारा वनाया हुआ नहीं है तथा यह उन्नत पुरुषाकार है ॥ २३४ ॥ ध्यानकी सिद्धिके लिये योगी लोग लोकके आकारका चिंतवन करते हैं क्योंकि मनके स्थिर करनेसे ध्यान हो सकता है तथा लोकका आकार चिन्तवन करनेसे मन स्थिर होता है और मनकी स्थिरतासे परम पद मोक्ष पदकी प्राप्ति होती है ॥ २३५ ॥ इस प्रकार लोकके स्वरूपका चिन्तवन करना लोकानुप्रेक्षा है। समस्त पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति संसारमें बड़ी कठिन है क्योंकि इस सम्यग्ज्ञानके द्वारा जीवोंको आत्मरूपी तेजका स्पष्ट रूपसे ज्ञान हो जाता है। तथा वह सम्यग्ज्ञान कर्मरूपी वृक्षके लिये फरसा है। मनरूपी पर्वतके भेदनेमें वज्र है और अज्ञानरूपी

परंपदे ॥ २३६ ॥ संसारे दुर्लभो बोधो दीपो वस्तुप्रदर्शने । आत्मज्योतिर्यतः स्पष्टीभूयमायाति कायिनां ॥ २३७ ॥ कर्मागे परशुर्वज्रं चेतोजागे गरीयसि । तमोऽरिस्तमसि स्वांतध्यातव्यो बोध एव ते ॥ २३८ ॥ जगन्नाथेन यः ख्यातो धर्मो भावव्रतान्वितः । दुःप्राप्यः प्राणिनां मत्वा चिंतनीयः प्रयत्नतः ॥ २३९ ॥ चिंतयन्निति सद्ध्यानं वज्रायुधमुनीश्वरः । प्रत्यूहं तत्कृतं जित्वा मुमोचासून जितेन्द्रियः ॥ २४० ॥ सर्वार्थसिद्धिमाराशु धर्मध्यानपरोमुनिः । अहमिंद्रो महासौख्यं भुंजन् तस्थौ स निर्मलः ॥ २४१ ॥ शुक्ल लेश्योऽथ शुक्लांगहस्तमात्रो महोनिधिः । त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुर्निरुपाधिर्भ्रमातिगः ॥ २४२ ॥ ईदृक्षा तत्र देवस्य विद्यते शक्तिरुत्तमा ।

अन्धकारके नाशके लिये सूर्य है इसलिये सम्यग्ज्ञानका हृदयसे ध्यान करना आवश्यक है। इस प्रकार संसारमें सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति बड़ी दुलभ है ॥ २३६—२३७ ॥ भगवान जिनेंद्रने जो भावव्रत आदि स्वरूप धर्म बतलाया हैं वह बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है इसलिये धर्मात्माओंको चाहिये कि वे प्रयत्न पूर्वक धर्मका चिंतवन करते रहें ॥ २३८ ॥ इस प्रकार धर्मके स्वरूपका चिन्तवन करना धर्मानुप्रेक्षा है। इस प्रकार बारह भावनाओंके चिंतवन करनेवाले मुनिराज वज्रायुधने दुष्ट अति दारुण भोल द्वारा किया गया समस्त उपसर्ग बड़ी शांतिसे सह लिया। जितेन्द्रिय मुनिराज धर्म ध्यानमें लीन होगये। प्राणोंका परित्याग कर सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाकर अहमिन्द्र होगये। एवं वहांका सानन्द सुख भोगने लगे ॥ २३९—२४०॥ मुनिराज वज्रायुधके जीवके शुक्ल लेश्या थो। एक हाथका सुन्दर शरीर था। वह तेजका खजाना था। तेतीस सागरकी आयु थी। किसो प्रकारकी उनके साथ विशेष उपाधि न थी एवं भ्रांत ज्ञानसे वे रहित थे ॥ २४१ ॥ शास्त्रमें सर्वार्थ सिद्धिके देवोंके अन्दर इतनो अद्भुत शक्ति बतलाई है कि यदि वह चाहे तो निमेषका जितना प्रमाण बतलाया है उसके अठारहवे भागमें ही अर्थात् देखते देखते वह लोकाकाशको उलटा कर सकता है ॥ २४२ ॥ मुनिराज वज्रायुधको कष्ट देनेवाला वह अति दारुण भील पापके तीव्र उदयसे

लोकाकाशं करे कृत्वा काष्ठया विपरीतयेत् ॥ २४३ ॥ व्याघोसौ पापतो मृत्वा न्यविशत् सप्तमीं भुवं तद्दुःखं गदितुं तत्र कः शक्तो ति जिनं विना ॥ २४४ ॥ मुनौ जज्ञे लीना सकलसुखसंताननननी । दुराप्या सर्वार्थाप्तिरिव च वशतामेति ननु न । जगत्स्यामा रामा परमपदमायाति जयतो यतो धैर्यध्यानात्किमिति वत चित्तं शमवतां ॥ २४५ ॥ जितेन्द्रियाणां न भवेद राज्यं परं पदं स्वर्ग नरेंद्रसौख्यं । जितेंद्रियाणां न भवेद् राज्यं परं पदं स्वर्गनरेन्द्रसौख्यं ॥ २४६ ॥

इति श्रीविमलनाथपुराणे भट्टारक श्रीरत्नभूषणाम्नायालङ्कारविद्र० हर्षवीरिकान्वयोदारमानसराजहंस ब्रह्मचारीश्वरकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे रामदत्ताचररत्नमालाच्युतदेव पूर्णचन्द्रचररत्नायुधाच्युतदेवसिंहसेनवरवज्रायुधसर्वार्थसिद्धिगमनवर्णनो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

मरकर सातवे नरक गया । सातवें नरकका इतना भयङ्कर दुःख है कि उसे भगवान जिनेंद्रके सिवाय कोई नहीं कह सकता ॥ २४३ ॥

मुनिराज वज्रायुध पर जब समस्त सुखोंकी स्थान और कठिनतासे प्राप्त होनेवाली सर्वार्थ सिद्धिरूपी स्त्री भी आसक्त होगई तब संसारकी स्त्रियोंका मुग्ध होना कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि जो शांति स्वरूप संयमी हैं उनको स्थिर ध्यानसे मोक्ष सुख भी प्राप्त हो जाता है तब अन्य सुखोंका प्राप्त होना आश्चर्य कारी नहीं ॥२४४॥ जिन महा पुरुषोंने इन्द्रियोंका विजय कर लिया है उनके मोक्ष स्थान स्वर्ग और नरेन्द्रोंका सुख दुर्लभ नहीं किन्तु जिन्हें इन्द्रियोंने ही जीत लिया है उनके लिये मोक्ष सुख और नरेंद्र सुख सभी कुछ दुर्लभ हैं ॥ २४५ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकारस्वरूप हर्षवीरिकाके पुत्र उत्तम ब्रह्मचारी कृष्णदासद्वारा विरचित वृहत् विमलनाथपुराणमें रानी रामदत्ताके जीव रत्नमाला और अच्युतदेव, पूर्णचन्द्रका जीव रत्नायुध और अच्युतदेव एवं सिंहसेनका जीव वज्रायुधका सर्वार्थसिद्धि गमन वर्णन करनेवाला आठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नवमां सर्ग



नौम्यहं शिवकर्त्तारं गोरक्षं वृषभं जिनं। आद्यन्तवर्जितं सारं सारङ्गामं च शर्मणे ॥ १ ॥ अथैव धातकीखण्डप्राग्भागे विस्तृतो महान्। विदेहः पश्चिमो भाति मरुद्वास इवापरः ॥ २ ॥ तन्मध्ये गंधिलो नाम्ना समस्ति विषयोऽद्भुतः। धार्मिकैर्धनधान्यैश्च विद्वन्मुनिपदांकितः ॥ ३ ॥ अयोध्या विद्यते तत्र पुरी स्वर्धामसन्निभा। अर्हद्दासोऽभवद्राजा तत्र लीलापुरंदरः ॥ ४ ॥ सुव्रताख्या प्रिया तस्य विलसन्ती रतेच्छया। विद्युन्मालेव संजज्ञे कुंकुमारुणदेहिका ॥ ५ ॥ रत्नमालावरश्च्युत्वा स्वर्गादच्युतात्तयोः। जज्ञे

जो भगवान ऋषभदेव मोक्षके प्रदान करनेवाले हैं। पृथ्वीके रक्षक है। आदि अन्तसे रहित है सार स्वरूप है और कल्याण स्वरूप हैं उन भगवान ऋषभ देवको मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ इसी पृथ्वीपर धातुकी खंड द्वीपके पूर्व भागमें विदेह नामका क्षेत्र है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे उत्तम और स्वर्ग नगर सरीखा जान पड़ता है ॥ २ ॥ विदेह क्षेत्रमें एक गंधिल नामका प्रसिद्ध नगर देश है जो कि धर्मात्मा पुरुष और धन धान्य आदिसे सदा व्याप्त बना रहता है और विद्वान मुनियोंके चरण चिह्नोंसे सदा अंकित रहता है ॥ ३ ॥ गन्धिल देशमें एक अयोध्या नामकी नगरी हैं जो कि शोभामें स्वर्ग पुरीकी उपमा धारण करती है। अयोध्या नगरी का संरक्षक उस समय राजा अर्हदास था जो कि शोभा और क्रीड़ाओंमें इन्द्रके समान जान पड़ता था ॥ ४ ॥ राजा अर्हदासकी रानीका नाम सुब्रता था जो कि रति संबंधी अनेक प्रकारके विलासोंकी करनेवाली थी एवं उसका शरीर केसरके रङ्गका सदा शोभायमान रहता था इसलिये वह वीजलीके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥ ५ ॥ रानी रामदत्ताका जीव जो कि रत्नमाला होकर

धीमान् महातेजाः सुतो वीतभयाह्वयः ॥ ६ ॥ रत्नायुधोऽपि तन्नाकाच्च्युत्वा तस्यैव भूपतेः । प्रियायां जिनदत्तायां सुनोऽजनि विभीषणः ॥ ७ ॥ बलदेवकेशवौ तौ च वीतभीकविभूषणौ । अज्ञाते पुण्यतो राज्यं भोजयामासतुश्चिरं ॥ ८ ॥ मृत्वा विभीषणे राजा केशवत्वाद्गतः क्षितिं । द्वितीयांयां महैनोभिरारम्भोत्थैश्च दुस्त्यजैः ॥९॥ बलदेवोऽपि तद्दुःखं चिरं कृत्वातिमोहतः । त्यक्त्वा राज्यं निवृत्यंते संयमं प्राप पुण्यधीः ॥ १० ॥ दुष्करं स तपस्तप्त्वा लांतवाख्यं दिवं ययौ । आदित्यामे विमानेऽभूदादित्याभः सुरोत्तमः ॥ ११ ॥

अच्युत स्वर्गमें जाकर देव हुआ था राजा अर्हद्दासके रानी सुव्रतासे उत्पन्न वीतभय नामका कुमार हुआ जो कि बुद्धिमान था उग्र तेजका धारक था। राजा पूर्णचन्द्रका जीव रत्नायुध जो कि मरकर अच्युत स्वर्गमें ही देव हुआ था आयुके अन्तमें वहांसे चयकर उसी राजा अर्हद्दासके जिनदत्ता नामकी रानीसे उत्पन्न विभीषण नामका पुत्र हुआ था ॥ ६—७ ॥ इन दोनों कुमारोंमें कुमार वीतभय बलदेव था और विभीषण नारायण था। ये दोनों ही बलदेव और केशव पदवियोंके धारक कुमार समस्त भयोंसे रहित थे। कवियोंके भूषण थे और पूर्व पुण्यके उदयसे सानन्द राज्य का भोग करते थे ॥ ८ ॥ राजा विभीषण जो कि नारायण पदका धारक था मरकर अनेक प्रकारके आरम्भोंसे जायमान घोर पापोंके द्वारा दूसरे नरकमें जाकर नारकी होगया ॥ ९ ॥ नारायण विभीषणके मरनेसे बलदेव वीतभयको बड़ा दुःख हुआ। मोहके तीव्र उदयसे भाईके मर जानेके बाद उसने राज्यका परित्याग कर दिया और संयम धारण कर लिया ॥ ९—१० ॥ पुण्यात्मा वीतभय बलदेव ने घोर तप तपा जिससे वह लांतव स्वर्गके आदित्याभ नामक विमानमें आदित्याभ नामका उत्तम देव होगया ॥ ११ ॥ प्रिय जयन्त मुनिके जीव नागेंद्र वही मैं आदित्याभ नामका इस समय देव हूं। अपने पूर्व जन्मके भाई नारायण विभीषणको नरकमें अवधिज्ञानके द्वारा दुःखो देख एक दिन मैंने यह विचार किया—

नागनाथ स एवाहमादित्याभोऽस्मि सांप्रतं। बांधवं दुःखिनं श्वभ्रे ऽत्रधेद्दृष्ट्वा व्यचिंतयं ॥ १२ ॥ अहं स्वर्गेऽमरो जातो लीलावान् सुखभाजनं। मत्सोदरो महादुःखं भुनक्ति श्वभ्रसागरे ॥ १३ ॥ निष्कासयाम्यहं तूर्णं बांधवं प्राणतोऽधिकं। असुरान् वज्रघातेन प्रहत्याशिषति चिंत्य च ॥ १४ ॥ अगमं मोहतस्तत्राबोधयं बांधवं निजं। त्रासयित्वा सुरान्पापान् प्रकृत्या दुःखदायिनः ॥ १५ ॥ निष्कासितुं मयोपाया अकारिषत हे महीट्। जज्ञे तस्य महादुःखं तैरुपायैर्यदा तदा ॥ १६ ॥ निर्गतेन ततः पृष्टः श्रीमंधरजिनाधिपः। त्वद्भवालिकां नूनं तत्प्रोक्तं मेऽखिलं श्रुतं ॥ १७ ॥ तत् श्रोतव्यं त्वया नागेट् ब्रवीमि भ्रांतिहानये। जंबूद्वीपेऽत्र विख्याते वर्षे चैरावताभिधे

मैं तो स्वर्गमें आकर अनेक क्रीड़ाओंका स्थान देव होगया हूं और अनेक प्रकारके सुख भोग रहा हूं परन्तु मेरा भाई विभीषण नरकमें पड़ा २ महा दुःख भोग रहा है मुझे चाहिये कि मैं समस्त असुरोंको बज्रसे छिन्न भिन्न कर शीघ्र ही अपने प्राण प्यारे भाईको नरकसे निकाल ले आऊं बश मैं ऐसा विचार कर मोहसे व्याकुल हो शीघ्र हो दूसरे नरक गया। अपने भाईको पूर्व भवका वृत्तांत सुना संबोधा एवं जो असुर कुमार जातिके देव स्वभावसे ही नारकियोंको पीड़ा पहुंचानेवाले थे उन्हें शक्तिभर धमकाया डराया ॥ १२—१६ ॥ प्रिय नागेन्द्र! अपने भाईको नरकसे निकालनेके लिये मैंने बहुत उपाय किये परन्तु उनसे उसे उल्टा घोर दुःख होने लगा। जब मैंने देखा कि इसके निकालनेके लिये जो उपाय किये जाते हैं उनसे इसे दुःख ही होता है, तो मैंने उसके निकालनेका विचार स्थगित कर दिया। सीधा मैं भगवान श्री मन्धरके पास गया। मैंने उनसे सब बात पूछी। उन्होंने तुम्हारे पूर्व भवोंका वर्णन किया जिसे मैंने रुचिपूर्वक सुना। प्रिय नागेंद्र! भगवान श्रीमन्धरके द्वारा सुना गया तुम्हारे पूर्व भवका वृत्तांत मैं तुम्हारे सामने वर्णन करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें एक अयोध्या नामकी पुरी है जो कि खाई और किलोसे

॥ १८ ॥ अयोध्यास्ते पुरीरम्या परिखादुर्गवेष्टिता । श्रीधर्मा तत्र राजाऽभूत्सुसीमा तस्य भामिनी ॥ १९ ॥ श्वभ्राद्विभीषणः प्रेते निर्गत्याभूत्तयोः सुतः । सुधर्माख्यो गुणाम्भोधिर्भामिनीभोगचंचुरः ॥ २० ॥ एकदाऽनंतयोगींद्रात् श्रुत्वा धर्मं विरक्तधीः । तत्पार्श्वे संयमं नीत्वा तप्त्वागाद्ब्रह्मनामनि ॥ २१ ॥ आश्लेषैश्चुम्बनैस्तत्र रम्भाणां सुखमन्वभूत् । गतं कालं न जानाति गीतनाट्यरसैरसौ ॥ २२ ॥ सर्वार्थसिद्धिजोदेवो वज्रायुधचरस्ततः । च्युत्वाभूत्सञ्जयंताख्यो बलीयान् योगरोधकः ॥ २३ ॥ स ब्रह्मेशोऽपि तत्रत्यं सुखं भुक्त्वायुषः क्षये । च्युत्वा जयंतनामाभूत्सजयंतानुजः सुधीः ॥ २४ ॥ निदानेन मृतः सोऽपि त्वं फणीशोऽभवन्महान् । मोहाद्विलुप्त :

महा शोभायमान जान पड़ती है। अयोध्यापुरीका स्वामी उस समय श्री धर्मा था और उसकी रानीका नाम सुशीला था ॥ १७—२० ॥ नारायण विभीषणका जीव नारकी अपनी आयुके अन्तमें नरकसे निकला एवं राजा श्रीधर्माके रानी सुसीमासे उत्पन्न सुधर्म नामका पुत्र हुआ जो कि अनेक गुणोंका समुद्र था और स्त्रियोंके भोगोंमें प्रेम रखनेवाला था ॥ २१ ॥ एक दिन मुनिराज अनंतसे उसने धर्मका स्वरूप सुना जिससे उसे संसारसे वैराग्य होगया। शीघ्र ही उसने मुनिराज अनंतके पासमें संयम धारणकर लिया। घोर तप तपा जिससे तपके प्रभावसे वह ब्रह्म स्वर्गमें उत्तम ऋद्धि का धारक देव होगया ॥ २२ ॥ वहांपर पुण्यके उदयसे उसे सब सामग्री प्राप्त हुई वह देवांगनाओं के साथ आलिंगन चुम्बन आदि क्रियाओंमें एवं उत्तमोत्तम गायन और नाटकोंके देखनेमें इतना मग्न होने लगा कि उसे यह भी नहो जान पड़ने लगा कि उसकी आयुके दिन वहां वीत रहे हैं। ॥ २३ ॥ राजा वज्रायुधका जीव अहमिन्द्र जो सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाकर देव हुआ था वह अपनी आयुके अन्तमें वहांसे चया एवं महाशक्तिका धारक और योगोंका निरोध करनेवाला संजयंत नामका महापुरुष हुआ जो कि तुम्हारा भाई था। मेरे भाई नारायण स्वयंभूका जीव जो ब्रह्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ था उसने वहांके बहुत काल पर्यंत दिव्य सुख भोगे। आयुके अन्तमें वहांसे चया

डिव । गतं कालं न जानाति श्रेणिकः शेषविक्रमी ॥ ५२६ ॥ प्रतापजितमार्तंडो वक्त्रनिर्जितचंद्रमाः । बुद्ध्या चातिगुरु राजा राजते जितशात्रवः ॥ ५३० ॥ स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषदेशदुर्गबलान्वितः । सप्तांगमिव सद्राज्यं भुनक्ति मगधाधिपः ॥ ५३१ ॥ स्वर्णसद्वर्ण काश्मीरललामललभालकः । स्वर्णानुविद्धमुक्तानां हारान्वितगलः कलः ॥ ५३२ ॥ स्वर्णाभः स्वर्णदो स्वर्णविभूषितगजाश्वकः । स्वर्णग्राही च शत्रुभ्यः स्वर्णकुंडलमंडितः ॥ ५३३ ॥ मुक्ताफलरदोन्मुक्तालीनोमुक्तानखप्रभः । मुक्ताकांक्षी मुमुक्षूणां गुणग्राही सुद-र्शनः ॥ ५३४ ॥ ददिर्द्दानं सुपात्रेभ्यः पपिर्धर्मामृतं परं । सज्जनौघान् समाजह्रिश्चक्रिश्चाहितखंडनां ॥ ५३५ ॥ सहस्रद्वयभूपालकिरीटा-

और उत्तमोत्तम क्रीडाओंसे इन्द्रके समान थे और जाते हुए कालको तनिक भी नहीं जानते थे। महाराज श्रेणिकने अपने दीप्त प्रतापसे सूर्यको जीत लिया था। मुखकी सुंदरतासे चंद्रमा नीचा कर दिया था। बुद्धिसे इन्द्रके गुरु वृहस्पतिको हरा दिया था एवं समस्त वैरियोंको जीत लिया था इसलिये वे अत्यंत शोभायमान थे। तथा मगध देशके स्वामी वे महाराज श्रेणिक, राजा मन्त्री मित्र खजाना देश किला और सेना रूप राज्यके सात अङ्गोंसे वेष्टित हो उत्तम राज्यका इच्छानुसार भोग करते थे ॥ ५२८—५३१ ॥ वे महाराज श्रेणिक ललाटपर सुवर्णके समान उत्तम वर्णके काश्मीरी चंदनका तिलक लगाते थे। गलेमें सुवर्णके तारमें पिरोए हुए मोतियोंका हार पहिने थे। मनोहर थे। सुवर्णके समान कांतिवाले थे। याचकोंको सुवर्णका दान देनेवाले थे। उनके हाथी और घोड़े सुवर्णके भूषणोंसे भूषित थे। शत्रुओंसे वे न्यायानुकूल ऋण लेते थे। सुवर्ण कुण्डलोंसे भूषित थे। उनके दांत मोती सरीखे थे। जिस चीजको छोड़ देते थे—दान कर देते थे फिर उसकी लालसा नहीं रखते थे। मोतियोंके समान नखोंकी कांतिसे शोभायमान थे। मोक्ष की सदा अभिलाषा रखते थे। जो महानुभाव मोक्षाभिलाषी थे उनके गुणोंको ग्रहण करनेवाले थे सम्यग्दृष्टि थे। सुपात्रोंको अच्छी तरह दान देनेवाले थे। धर्मरूपी अमृतको सदा पीनेवाले थे। सज्जनोंको सदा प्रसन्न करने वाले थे। जो बात अहितकारी होती थी उसका सदा खंडन करते थे

नीत्वा मंत्रं जजापाशु दृढध्यानासनोद्यात् । अभयस्य महाविद्या सिषेधाचिरकालतः ॥ ५२१ ॥ तत्प्रभावात् खगस्यापि विद्यासिद्धिरभूत्तरां । तयोस्तदा सुमित्रत्वाचान्योन्यं नेमतुस्तरां ॥ ५२२ ॥ मृगाक्षीं-द्रव्यपुत्रादिविद्याराज्ययशांसि च । स्वर्गमोक्षसुखान्येव भवंत्यद्भुतपुण्यतः ॥ ५२३ ॥ गत्वागारेऽभयो धीमांश्चक्रे मेघं वलान्वितं । राज्ञ्याशां पूरयित्वा स ह्यौजिड्नमंदिरस्य तां ॥५२४॥ कियत्यपि गते काले राज्ञी पुत्रमजीजनत् । दोहदकानुसारेण नाम्ना मेघकुमारकं ॥ ५२५ ॥ श्रेणिकस्य सुतो धीमानभयाख्यो विचक्षणः । बुद्ध्या गुरुरिवोद्भूतो देवराडिव लीलया ॥ ५२६ ॥ पूरमल्लापतिः कृष्ण इवार्हच्चरणप्रियः । मंगलो वा महाप्राज्ञो धैर्यगांभीर्यगौरवः ॥ ५२७॥ पट्टराज्ञ्याः सुताः सप्त बभुवुः सप्त सागराः । गंभीरा इव सद्बुद्धिपारगाः परमोदयाः ॥५२८॥ एवं पुनादिमत्सौख्यलीलया देवरा-

दिया । दृढ ध्यान और दृढ आसन माढकर कुमार अभय बैठ गये और मन्त्र जपने लगे । पुण्यकी प्रबलतासे थोड़ी ही देरमें उन्हें महाविद्या सिद्ध हो गई । उनके प्रभावसे विद्याधर वायुवेगको भी विद्या सिद्ध हो गई । दोनों आपसमें मित्र हुए और प्रेमपूर्वक दोनोंने आपसमें नमस्कार किया । ठीक ही है पुण्यके उदयसे संसारमें स्त्री द्रव्य पुत्र विद्या राज्य यश स्वर्ग और मोक्षके सुख सभी कुछ प्राप्त होते हैं ॥ ५१९—५२३ ॥ मन्त्र सिद्धकर कुमार अभय घर लौट आये । विद्याबलसे मेघकी रचना की उसमें रानीको घुमाकर उसकी आशा पूरी की। एवं घुमा फिराकर उसे राजमन्दिर में लौटा लाये । कुछ दिनबाद रानी चेलिनीके पुत्र हुआ और दोहलेके अनुसार उसका नाम मेघ कुमार रक्खा गया ॥५२४—५२५॥ महाराज श्रेणिकका पुत्र कुमार अभय बड़ा भारी बुद्धिमान और चतुर था । बुद्धिमें वृहस्पतिके समान था और इन्द्रसरीखी लीला करनेवाला था ॥ ५२६॥ तथा वह पूरमल्लाके स्वामी मुझ कृष्णदासके समान भगवान अर्हतके चरणोंका प्रेमी था। मेरे छटे भाइ मंगलदास वा मंगल ताराके समान महा विद्वान एवं धीरता गंभीरता और गौरवका खजाना था ॥५२७॥ महाराणी चेलिनीके सात पुत्र थे जो कि साक्षात् सात समुद्र थे। महागंभीर थे। उत्तम बुद्धिके पारगामी थे और परम उपमाके धारक थे । शेष नागके समान पराक्रमी वे राजा श्रेणिक उत्तम पुत्र दिव्य सुख

राजेव सद्गुणः । एकदा मंदिरे नंतुं गतश्चैत्यालयान् ध्रुवं ॥५१४॥ यदा विजयार्धस्थस्य वालकाख्यस्य पुत्रिका। नाम्ना सुभद्रिका दृष्टा तदाहं विस्मयं गतः ॥ ५१५ ॥ कामेषुनिहितेनाशु हृता सा हृदयेश्वरा। तया साकं मया देव ! मातुष्यं सफलीकृतं ॥ ५१६ ॥ खग-चक्री हृतां ज्ञात्वा तनूजां पूरयन्नभः । आजगाम महाक्रोधाज्ञानाविद्याविशारदः ॥ ५१७ ॥ सोऽपि मां संगरे जित्वा मम विद्या निहत्य च। नीत्वा सुतां गतो गेहे वभूवाहं च भूचरः ॥ ५१८ ॥ द्वादशाब्दसुपर्यंतं मंत्रजाप्यं करोमि च। विद्यार्थं भो तथाप्यत्र सिद्धिर्नाभूद्गुणप्रिय ! ॥ ५१९ ॥ सांप्रतं तु गृहे गंतुं कामोऽस्मि गृहमायया। श्रुत्वा जगाद मंत्रीशस्तन्मंत्रं मे समर्पय ॥ ५२० ॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गगन प्रिय नामका नगर है मैं वहांका वायुवेग नामका विद्याधर राजा हूं। जो कि चन्द्रमाके समान शोभायमान और उत्तम धनसे मंडित हूं। मैं एक दिन (मेरुवा विजयार्ध) पर्वतके चैत्यालयोंकी वंदना करने गया था वहींपर विजयार्ध श्रेणिके स्वामी राजा वालककी सुभद्रा नामकी पुत्री भी आई थी जो कि परम सुन्दरी थी। उसे देखते ही मैं चकित हो गया। कामवाण मुझे बुरी तरह वेधने लगे इसलिये वह मैंने बलपूर्वक हरण कर ली। अपनी प्राणप्यारी बनाई और उसके साथ मैंने अपना मनुष्यजन्म सफल बनाया ॥ ५१३-५१६ ॥ विद्याधरोंके स्वामी उसके पिता राजा वालकको यह पता लग गया कि मैं सुभद्राको हर लाया हूं, वह मारे क्रोधके पजल गया और समस्त आकाशको आच्छादता हुआ मेरी नगरीकी ओर चल दिया। वह अनेक विद्याओंका धनी था इसलिये मेरी और उसकी जिससमय मुठ भेंट हुई संग्राममें उसने मुझे जीत लिया। मेरी विद्याओंको नष्ट कर दिया। अपनी पुत्री सुभद्राको घर ले गया और मुझे विद्यारहित भूमिगोचरी बना दिया ॥ ५१७-५१८ ॥ गुणप्रिय कुमार ! विद्यासिद्ध करनेके लिये बराबर वारह वर्षोंसे मंत्रोंकी जाप कर रहा है तो भी मुझे विद्यासिद्ध नहीं हुई है। बस अब मैं हताश होकर घरकी चिंतासे अपने घर जारहा हूं। वायुवेगकी यह बात सुनकर मंत्रीश अभयकुमारने कहा—भाई ! यदि तुम जाते हो तो उस मंत्रको मुझे बता दो। वायुवेगने मन्त्र बता

म्मरीकृतभीस्वनाः ॥ ५०८ ॥ तमिस्रा तामसी यत्र रुद्धालोका प्रवर्तते। भक्षयित्वाखिलं विश्वं तारिकास्थिविभूषणा ॥ ५०६ ॥ रात्रि धूंकारसंरावा पर्वतस्तनमंडिता। ज्वलच्छवादना नूनं राक्षसीव विराजते ॥ ५१० ॥ (युग्मं) ईदृक्षे कानने विद्वानभयो भीतिवर्जितः। दीपाकुले वटे चैकं विभीकं दृष्टवान्नरं ॥ ५११ ॥ गत्वा पप्रच्छ कोऽसि त्वं कस्मात्त्वं च समागतः। मालया जपसि किं भो किं नाम वद मंक्षु मे ॥ ५१२ ॥ अरीरणद्वटस्थस्तं शृणु भ्रातर्निगद्यते। विजयार्धोत्तरश्रेण्यां गगनप्रियपत्तनं ॥ ५१३ ॥ तत्राहं वायुवेगाख्यो राजे

जलतीं थीं। व्यंतर जातिके भूत पिशाच आदि देव जोरसे कोलाहल करते थे शाकिनी डाकिनी भूतिनी और किन्नरियोंके भयंकर शब्द होते थे ॥ ५०८ ॥ उससमय उस श्मसान भूमिमें विपुल अन्धकारको धारण करनेवाली रात्रि सां सां शब्द कर रही थी। चांदनीका प्रकाश एकदम रुका हुआ था इसलिये वह रात्रि उससमय ऐसी जान पड़ती थी मानो इसने समस्त जगत्को भक्षण कर लिया है और यह तारा रूपी हड्डियोंके भूषणोंको धारण किए हैं। वह श्मसानभूमि साक्षात् राक्षसी थी क्योंकि राक्षसी जिसप्रकार धुंकार शब्द करती है उसीप्रकार वह श्मसान भूमि भी धुंकार शब्दोंसे व्याप्त थी। राक्षसीके जिसप्रकार स्तन होते हैं। श्मसान भूमिके भी पर्वत रूपी स्तन विद्यमान थे। एवं राक्षसी जिसप्रकार मुर्दोंको खाने वाली होती है उसीप्रकार वह श्मसान भूमि भी मुर्दोंको भस्म करनेवाली थी। इसप्रकारके भयंकर वनमें निर्भीक एवं चतुर कुमार अभय एक बट वृक्षकी ओर चला जिसपर कि एक दीपक टिमटिमा रहा था एवं वहांपर एक निर्भीक मनुष्य दीख पड़ा। कुमार अभय शीघ्र ही उसके पास पहुंचा एवं इसप्रकार बात चीत करने लगा-

भाई! तुम कौन हो? कहांसे यहांपर आये हो? यह जो हाथमें माला लिये बैठे हो इससे क्या जपना चाहते हो और तुम्हारा नाम क्या है? मुझे शीघ्र कहो ॥ ५०६—५०१२ ॥ वटवृक्षपर बैठा हुआ पुरुष कहने लगा—सुनो भाई! मैं अपना सारा वृत्तांत सुनाता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

स्यहं । कुधेरं तं परिज्ञाय सचिंतोऽस्थान्नराधिपः ॥ ५०१ ॥ एकदा दुर्बलां वीक्ष्य योषं धृत्वा स्थितस्ततः ॥ ५०२ ॥ दुःखितं वीक्ष्य राजानमभयः पृष्टवान्स्थितः ! । कुतो दुर्बलता देहे त्वदीये स्वर्णसन्निभे ॥ ५०३ ॥ तदा प्रोक्तं समाकर्ण्य प्रागदीत्सरसं वचः । मा चिंतां कुरु हे तात ! करिष्येऽदोऽविलंबतः ॥ ५०४ ॥ एवमुक्त्वा गतो रात्रौ श्मसानेऽतिभयंकरे । विलोकनाय प्रेतस्य खड्गहस्तो महाभुजः ॥ ५०५ ॥ फणिफूत्कारसंदग्धकुंजवृक्षे परस्परे । व्यंतरारावसंग्रामहकारावमहाकुले ॥ ५०६ ॥ युग्मं । अंजनाभाद्दयो यत्र दंदश्यंते दृढ-द्विजाः । व्याघ्रभल्लकगृध्रादिधृतमांसा विवलिगताः ॥ ५०७ ॥ ज्वलंतोऽनलसंघाता रारटन्त्येव व्यंतराः । शाकिनी डाकिनी सिद्धो कि

जिससमय कुमार मेघ रानी चेलिनीके गर्भमें था उससमय उसे यह दोहला हुआ कि "मैं हाथीपर बैठकर वर्षा कालमें आकाशमें घूमूं" एवं वह उस दोहलेकी चिंतासे दिनों दिन दुर्बल होती चली गई । तथा महाराज श्रेणिकके पूछे जानेपर उसने सारा दोहलेका समाचार कह सुनाया जिससमय महाराज श्रेणिकने यह दोहला सुना उन्होंने उसकी पूर्ति अत्यंत कठिन समझी इसलिये उन्हें बड़ी चिंता हो गई वे चुप होकर घरमें रहने तो लगे परंतु उस तीव्र चिंतासे उनका शरीर दिनों दिन कृश होता चला गया ॥ ४९९—५०२ ॥ महाराज श्रेणिकको अत्यंत दुःखित देख कुमार अभयने पूछा—पूज्य पिता ? तुम्हारा शरीर सुवर्णके समान कांतिमान और पुष्ट था सो वह दुर्बल और फीका क्यों पड़ता चला जाता है । कुमारके ये वचन सुन उत्तरमें महाराज श्रेणिकने सारा किस्सा कह सुनाया । कुमार अभय बड़े चतुर और गंभीर थे शीघ्र ही उन्होंने मनोहर वचनों में कहा—पिताजी ! आप रंचमात्र भी चिंता न करें मैं बहुत जल्दी इस कामको करूंगा बस ऐसा कह कर रातके समय वह विशाल भुजाओंका धारक कुमार हाथमें खड्ग लेकर प्रेतोंके देखनेके लिये उस श्मसान भूमिकी ओर चल दिया जो श्मसान भूमि सर्पोंके फूत्कारोंकी गर्मीसे जले हुए वृक्षोंकी धारक थी एवं आपसमें लड़नेवाले व्यंतरोंके महाभयंकर शब्दोंसे व्याप्त थी ॥५०३-५०६॥ जिनके दांत दृढ़ थे जो अन्जन पर्वतके समान महाकाले थे वाघ भालू और गीध आदिको मांसोंको ग्रहण किये थे एवं फुंगरते थे ऐसे महाभयंकर वहांपर सर्प थे ॥ ५०७ ॥ जगह जगह वहां अग्निकी [illegible]

सिंधुरं नीत्वा सांकुशं तं यदाकरोत् । तदा पलाय्य गंगायास्तीरमागतवान् गजः ॥४६३ ॥ निवारितो यदा हस्ती तापसं तममीमरत् । एतद्युक्तमयुक्तं वा भो मुने ! वद संप्रति ॥ ४६४ ॥ इत्यादिविवादसंघातैर्दुष्टभावं पितुश्च सः । ज्ञात्वा कुवेरदत्तो हि न्यक्षिपदग्रतो घटं ॥ ४६५ ॥ धिग् द्रव्यं पापदं नीचं मुनिश्चौरायते यतः । विचार्य पितृपुत्राभ्यामिति दीक्षां समाश्रितौ ॥ ४६६ ॥ हे श्रेणिक नराधीश ! कायगुप्तिः स्थिता न मे । अतो व्याघुट्य त्वद्गेहादागतोऽहं वनांतरे ॥ ४६७ ॥ चेलिन्या सह भूपोऽपि ससम्यक्त्वो गृहागतः । जैनधर्ममयो भूत्वा भुनक्तिस्म सुखं सुखं ॥४६८॥ बभूवुः सप्तपुत्राश्च चेलिन्या वेंद्रसूनवः । कुणिको वारिषेणश्च शिवहल्लौ विहल्लकः ॥४६६ जितशत्रुः षष्ठमो जातः सप्तमश्च निगद्यते । गर्भे सप्तमके राज्ञ्या एवं दोहलकोऽजनि ॥ ५०० ॥ आरुह्य सिंधुरं मत्तं प्रावृषि च भ्रमा

साथ वर्ताव किया वह युक्त था वा अयुक्त ? ॥ ४६१ । ४६४ ॥ इत्यादि रूपसे जिससमय सेठ जिनदत्त और मुनिराजका आपसमें वाद विवाद हो रहा था। जिनदत्तका पुत्र कुवेरदत्त भी वहां वैठा था। मुनिराजके विषयमें अपने पिताके दुष्ट भाव जान शीघ्र ही उसने रत्नोंका घड़ा लाकर रख दिया एवं यह विचार कर कि—"यह द्रव्य पापोंका प्रदान करने वाला है महानीच है क्योंकि इसके संबंधसे मुनिराजको भी चोर होना पड़ता है इसलिये इसे धिक्कार है, दोनों पिता पुत्रोंको संसारसे वैराग्य हो गया एवं दोनोंने दिगंबरी दीक्षा धारण कर ली। इसी कारण हे राजन् श्रेणिक मेरे कायगुप्ति न थी इसलिये मैं तुम्हारे मन्दिरमें आहार न लेकर सीधा वनको चला आया॥४६५-४६७ ॥ तीनों मुनिराजोंके मुखसे ये वचन सुन महाराज श्रेणिकका सम्यक्त्व दृढ़ हो गया वे अपनी रानी चेलनाके साथ घर लौट आये एवं साक्षात् जैनधर्म स्वरूप होकर अनेक प्रकारके सुख भोगने लगे ॥ ४६८ ॥ महाराज श्रेणिकके रानी चेलिनीसे सात पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि साक्षात् इन्द्रके पुत्र समान थे उनमें पहिला पुत्र कुणिक था दूसरा वारिषेण तीसरा शिव चौथा हल्लक पांचवां विहल्लक और छठा जितशत्रु था। सातवां पुत्र मेघकुमार था और उसका वर्णन इस प्रकारहै—

फलं नीत्वा स मालिकः । भूपालं दत्तवांस्तावद्भूपस्तस्मै ददौ धनं ॥ ४८६ ॥ पुत्राय मोहतो दत्तं तत्फलं तेन भक्षितं । विषेण पतितो भूमौ वृक्षं छेदयतिस्म सः ॥ ४८७ ॥ भिषगाकारितो राजा तेन ज्ञाता विषोद्भवा । विक्रिया तत्फलं नीत्वा तदा दत्तं विषं गतं ॥४८८॥ तदा राजा महादुःखं चकारीतिस्म मानसे । अहो वृक्षो विषघ्नोऽयं व्यर्थं छेदपितो मया ॥ ४८६ ॥ अविमृश्य न कर्तव्यमतो गुणिजनैः स्फुटं । अपरीक्ष्य न वक्तव्यं विमृश्यकारिभिर्नरैः ॥ ४६० ॥ पुनः श्रेष्ठी मुनिं प्राह कथामेकां शृणु प्रभो ! गंगातटेऽतिविख्यातो विश्वभूतोऽस्ति तापसः ॥ ४६१ ॥ तत्तटे कुंजरं दृष्ट्वा वहंतं लघुकं स च । निष्कास्य मठमानीतो वर्धितस्तेन भावतः ॥ ४६२ ॥ राजा तं

कर वह फल उसने अपने पुत्रको खानेके लिये दे दिया ज्यों ही उसने खाया तीव्र जहरके प्रभावसे वह मूर्छित हो जमीनपर गिर गया । राजाको बड़ा कष्ट हुआ शीघ्र ही उसने वृक्ष कटवाकर फिकवा दिया । पुत्रकी चिकित्साके लिये शीघ्र ही वैद्य बुलवाया । उसने वह मूर्छा विषजन्य जानली । तत्काल उसी आमका फल मगाया और उससे विषकी वेदना दूर करदी ॥ ४८३—४८८ ॥ आम्र फलका यह विचित्र प्रभाव जान राजाको बड़ा कष्ट हुआ एवं वह अपने मनमें इसप्रकार क्लेश करने लगा । हाय विषको दूर करने वाला वृक्ष मैंने वृथा खोद डाला । गुणीजनोंको विना विचारे कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये और जो मनुष्य विचार शील हैं उन्हें किसी बातकी विना जांच किये कुछ कहना भी नहीं चाहिये ॥ ४८६—४६० ॥ मुनिराजकी यह कथा सुन फिर भी सेठ जिनदत्तने यह कथा कहनी प्रारंभ कर दी—

गंगा नदीके तटपर एक विश्वभूत नामका तपस्वी रहता था । एक दिन एक हाथीका बच्चा नदीमें बहता चला जाता था । दयालु तपसीने उसे निकाला और अपने मठमें लाकर प्रेमपूर्वक पालन पोषण कर बढ़ाया । जब वह बढ़कर सवारीके योग्य होगया तब उसे नगरका राजा ले आया और उसे शिक्षित करनेके लिये अंकुशसे वश करने लगा । हाथीको यह बात दुःखदायी जान पड़ी । वह तत्काल भागकर गंगाके तटपर आ गया । तपस्वीने उसे वहां न रहने दिया । दुष्ट हाथीने क्रोध कर अपने पोषण करने वाले तपस्वीको मार डाला । भगवन् ! कृपाकर बताइये हाथीने जो तपस्वीके

कारसहस्रकं ॥ ४७८ ॥ एवं श्रुत्वा मुनिः प्राह श्रेष्ठिनं भ्रमिताशयं । विश्वासहेतवे नूनं श्रोतव्या कथिका त्वया ॥ ४७९ ॥ हास्तिनागपुरे राजा विश्वसेनोऽस्य भामिनी । वसुकांता तयोः पुत्रो वसुदत्तो गुणप्रियः ॥४८०॥ एकदा केन चिद्राज्ञे सार्थवाहेन प्राभृतं । रसाल-फलमाचक्रे पृष्टं राज्ञा तदेति किं ॥ ४८१ ॥ तदोवाच महीशं स आमप्रभृतिरोगहृत् । सुधासमंफलं चैतत् नीत्वा राजा प्रिये ददौ ॥ ४८२ ॥ सा पुत्राय ददौ मोहात् पुत्रो राज्ञे ददौ नृपः । वल्लभत्वात्फलं सेव्यं मालिने वपने ददौ ॥ ४८३ ॥ उप्तं च मालिना बीजं तदा तरुरजायत । कियद्भिर्वासरैः श्रेष्ठिन्! प्रादुर्भूतफलं क्रमात् ॥ ४८४ ॥ किमेन इति पाठः

खे गृध्रे सर्पमास्ये च गृहीत्वा सति गच्छति । फलस्योपरि सद्बिन्दु विषस्य पतितं तदा ॥४८५ ॥ (इति पाठः) विषोष्मपाकं जातं

सेठ जिनदत्तकी यह बात सुनकर और उसे अपनेमें भ्रांत समझ कर विश्वास उपजानेके लिये मैंने कहा—मैं भी एक कथा कहता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

हस्तिनागपुरमें एक राजा विश्वसेन था। उसकी स्त्रीका नाम भामिनी था और उससे वसुदत्त नामका पुत्र उत्पन्न था जो कि गुणोंमें प्रेम करने वाला था ॥ ४७८—४८० ॥ एकदिन किसी यात्रीने आकर राजाको भेंटमें आमका फल दिया। नवीन किंतु सुन्दर चीज जानकर राजाने पूछा—भाई यह क्या है ? उत्तरमें व्यपारीने कहा—राजन्! यह आम आदि रोगोंका हरने वाला अमृतके समान आमका फल है। राजाने उसे ग्रहण कर लिया और अपनी प्यारी स्त्रीको दे दिया ॥ ४८१—४८२ ॥ माताका पुत्रपर विशेष स्नेह होता है इसलिये राजरानीने वह अपने पुत्रको दे दिया। पुत्र पिताको बहुत मानता था इसलिये उसने उठाकर राजाको दे दिया राजाने उसफल को चाकूसे बनाया खाया एवं उसे अत्यंत मनोज्ञ जान मालीको बुलाकर उसे बोनेके लिये दे दिया। मालीने बीज लेकर बगीचेमें उसे बोदिया। कुछ दिन बाद वह वृक्ष होगया और फल भी लग आये। एक गीध पक्षी मुखमें सर्प लेकर आकाशमें जा रहा था दैवयोगसे एक फलपर विषकी बूंद पड़ गई। विषकी गरमीसे फल पक गया। मालीने उसे पका जान राजाको आकर भेंट किया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसे धन देकर राजी कर दिया। पुत्रपर अत्यंत स्नेह

दीति सद्वचः ॥ ४७० ॥ त्वमेव कंथयानंदात् शृणोमि जिनदत्तक ! । तदोवाच निजं भावं शृणु त्वं मुनिपावन ! ॥ ४७१ ॥ वाराणस्यां नृपो नाम्ना जितशत्रुर्जितारिकः । तद्वैद्यो धनदत्ताख्यस्तस्य भामा धनार्पणा ॥ ४७२ ॥ राजदत्तां निजां वृत्तिं भुनक्त्येव सुखं तयोः धनमित्रधनेन्द्राख्यौ पुत्रौ स्तोऽपि जडौ स्थितौ ॥ ४७३ ॥ कियत्काले मृतस्तातस्तदा वृत्तिं नृपोऽगृहीत् । अन्यवैद्याय तां वृत्तिं ददौ शास्त्रविदे मुदा ॥ ४७४ ॥ तदा तौ भ्रातरौ चंपायां च गत्वा चिकित्सितं । पठित्वा शिवभूतेश्च पार्श्वे सद्मागमोत्सुकौ ॥ ४७५ ॥ आगच्छंतौ तदारण्ये व्याघ्रमेतौ विलोचनं । विलोक्य धनमित्राख्यः प्रोवाचेति लघुं प्रति ॥ ४७६ ॥ भेषजैरंधव्याघ्रं मो करोमि निर्मल-दृशं । निषिद्धोऽपि कनिष्ठेन भेषजं कृतवांस्तदा ॥ ४७७ ॥ गतपीडेन व्याघ्रेण भक्षितो धनमित्रवाक् । कृतघ्ना नैव जानंति ह्युप-

किसी समय बनारसमें एक जितशत्रु नामका राजा था जो कि वैरियोंको जीतनेवाला था, उसका राजवैद्य धनदत्त था और उसकी स्त्री धनदत्ता थी । राज्यकी ओरसे जो उसे वृत्ति मिलती थी उससे वह सानंद भोग भोगता था । राजवैद्य धनदत्तके धनमित्र और धनचंद्र नामके दो पुत्र थे, दोनों ही महामूर्ख थे और मस्त पड़े रहते थे ॥ ४६६—४७३ ॥ कुछ कालके बाद वैद्य धनदत्तका अंतकाल हो गया । पुत्रोंको मूर्ख जान राजाने उनकी वृत्ति छीन ली एवं वैद्य शास्त्रके जानकार किसी अन्य वैद्यको दे दी । आजीविकाके छूट जानेसे दोनों भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ । वे दोनों घरसे निकल दिये । चंपापुरीमें जाकर शिवभूति नामक प्रसिद्ध वैद्यके पास वैद्यशास्त्रका अभ्यास किया । वे पूर्ण विद्वान हो गये तब उन्होंने अपने घर आनेका विचार कर लिया । वहांसे चलकर वे एक जङ्गलसे होकर आ रहे थे कि मार्गमें उन्हें अंधा बाघ दीख पड़ा । दयालु धनमित्रने उसे दुःखी जान अपने छोटे भाई धनचन्द्रसे कहा—भाई ! यह अंधा बाघ बड़ा दुःख पाता है अपनी दवासे मैं इसे सूझता बना दूं ऐसी इच्छा है । छोटे भाई धनचंद्रने मना की तो भी धनमित्रने नहीं माना और उसे अपनी औषधसे सूझता कर दिया ॥ ४७४—४७७ ॥ जब बाघ सूझता हो गया तो उस कृतघ्नी दुष्ट बाघने अपने उपकारी धनदत्तको खा डाला, ठीक ही है जो मनुष्य कृतघ्नी होते हैं उनके हजारों उपकार किये जाय तो भी वे उपकारोंको नहीं मानते-अपकार ही करते हैं ।

समायाता तत्राहं प्रावृषि स्थितः। एकदा जिनदत्तोपि चिंतयित्वा स्वचेतसि ॥ ४६४ ॥ द्यूतरकस्य पुत्रस्य भयाद्रत्नभृतं घटं। समीपे यमिनो भूमिं खनित्वा चाक्षिपत्तदा ॥ ४६५ ॥ (युग्मं) तं घटं दृष्टवान् पुत्रो निष्कास्यान्यत्र क्षिप्तवान्। मुनिर्ददर्श तत्सर्वं विचित्रं लोभसंभवं ॥ ४६६ ॥ चातुर्मासे गते ध्यानी विजहार महीतलं। पश्चात्स श्रेष्ठिना तत्र न दृष्टो रत्नसद्घटः ॥ ४६७ ॥ तदा विचारयामास मुनिश्चौरोऽथ वा न च। तदा भ्रांत्या स्वभृत्यान् स प्रेषयामास सर्वतः ॥ ४६८ ॥ एकमार्श्वगतः सोऽपि मां दृष्ट्वा हर्षतो भृशं। नीत्वा गेहे समायातोऽलीलपन्मां पूतीति सः ॥ ४६९ ॥ कथामेकां शुभां नाथ! कथय त्वं ममाग्रतः। मया ज्ञाताभिप्रायेण प्रत्यपा-

कर जिनदत्तने मेरे समीपमें जमीनके अन्दर एक गढ़ा खोदा एवं ज्वारी पुत्रके भयसे रत्नोंका भरा घड़ा उसने लाकर रख दिया ॥४६४-४६५॥ जिनदत्तजिससमय यह घड़ा रख रहा था उसका पुत्र देख रहा था। जिनदत्त जब चला गया उसके पुत्रने वह घड़ा वहांसे उखाड़ कर अन्यत्र गाढ़ दिया। मैं उस लोभसे जायमान समस्त विचित्र कार्यको चुप चाप देखता रहा था ॥ ४६६ ॥ चौमासेके समाप्त हो जानेपर मैं वहांसे चल दिया और पृथ्वीतलपर विहार करने लगा। मेरे पीछे सेठ जिनदत्तने जब जमीन खोदी और वह घड़ा न मिला तो वह विचारने लगा—

मेरे रत्नोंके घटको चुराने वाले मुनि हैं या नहीं ? क्योंकि सिवा मुनिराजके अन्य किसीने भी वह घड़ा नहीं देखा था खैर पता लगाकर उनसे पूछनेमें कोई हानि नहीं बस उसने चारो ओर मेरे खोजनेके लिये सेवक भेज दिये। एक मार्गपर स्वयं भी मुझे खोजनेके लिये चल दिया। भाग्य से मैं मिल गया मुझे देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। भक्तिपूर्वक मुझे घर लेगया एवं मुझसे विनय पूर्वक इसप्रकार कहने लगा—स्वामिन्! मेरे सामने कोई शुभ कथा कहिये। मैं उसका अभिप्राय समझ गया था इसलिये मैंने गंभीरता पूर्वक यह कहा—भाई जिनदत्त! तुम्हीं कोई कथा कहो मैं आनंदपूर्वक उसे सुनूंगा मेरे ये वचन सुन अपने मनके भावोंको व्यक्त करता हुआ जिनदत्त कहने लगा—अच्छा भगवन्! आप सुनें मैं कहता हूं—

णितेन पापोऽसौ कंबलानां हि रंजनं । कुरुते कृमिसूत्राणां रंजनं च विशेषतः ॥ ४५७ ॥ लक्ष्यमूल्याभिधं तैलं कृत्वा मे देहजां व्यथां । निवारयत्यसौ दुःखात्तत्र तिष्ठामि भीयुता ॥ ४५८ ॥ तदेव चिंतितं स्वांते गृहे त्वं सोढुमक्षमा । एवं दुखं सहेत्राहं विचित्रा कर्मणां गतिः ॥ ४५९ ॥ अथैव धनदेवाख्यो भ्रातर्मे प्रेषितः कृते । विशालपतिना पारासुरभूपसमीपकं ॥ ४६० ॥ तदा मां वीक्ष्य नीत्वैव गृहमागत्य सत्वरं । पश्चान्मज्जनको नूनमदाच्छ्रीसोमशर्मणे ॥ ४६१ ॥ एकदा मुनिमासाद्य गृहीतं कोपसत्कृतं । अतः करोमि नो कोपं भूरिदुःखप्रदायकं ॥ ४६२ ॥ तैलं नीत्वा गतो गेहे जिनदत्तो दयापरः । तैलाभ्यंगेन जातोऽह निर्व्याधिर्मगधाधिप ! ॥ ४६३॥ तदा प्रावृट्

खवाता था हर एक पक्षमें मेरी नसोंसे रक्त निकलता था । उस रक्तसे कंबलोंको रंगता था एवं विशेषकर रेशमको रंगता था । जिससमय नसोंसे रक्त निकलता था उस समय मुझे भयंकर कष्ट होता था उसके पास यही लाक्षामूल नामका तेल था इसलिये मेरे शरीरके कष्टको वह दूर करता था । मैं भी परवश हो सदा भयभीत होकर उसके घर रहती थी । उससमय प्रतिक्षण मुझे इस बातका विचार उठता था कि घरमें मैं "तू" शब्द भी नहीं सह सकती थी और यहां मैं यह भयंकर कष्ट भोग रही हूं । हा कर्मोंकी गति विचित्र है ॥ ४५६—४५९ ॥

मेरे भाईका नाम धनदेव है । विशालापुरीके स्वामीने किसी कार्यके लिये उसे पारासर राजाके पास भेजा दैवयोगसे वहांपर मैं रहती थी उसी मार्गसे वह निकला । मैं उसे दीख पडी । मुझे वह घर ले आया और मेरे पिताने मेरे पति सोमशर्माको बुलाकर दे दी ॥ ४६० । ४६१ ॥ एकदिन मुनिराजका पधारना यहां पर होगया और मैंने कोपके त्यागका व्रत ले लिया । भाई जिनदत्त ! क्रोधको इसप्रकार दुःखदायी जान मैंने सर्वथा उसका त्याग कर दिया है ॥४६२॥ रमणी तुंकारी की यह बात सुन दयालु जिनदत्त तेल लेकर अपने घर लौट आया और हे राजन् श्रेणिक ! उस तेलके लगानेसे मैं नीरोग हो गया ॥ ४६३ ॥ उससमय वर्षाकाल चौमासा लग गया था । चौमासे में मैं वहीं ठहर गया । जिनदत्तका पुत्र पक्का ज्वारी था इसलिये एकदिन अच्छी तरह सोच विचार

॥ ४४८ ॥ अतिक्रम्यार्धरात्रं स मंदिरं च समाययौ । द्वाराग्रेऽवीभणत्कांतां भो भो कमललोचने ! ॥ ४४९ ॥ उद्घाटयत सद्द्वारं यूयं नोद्घाटितं यदा । रे उद्घाटय द्वारं त्वं तदाहं निर्गता गृहात् ॥४५०॥ सभूषां मां समालोक्य चौरैर्नीत्वार्धरात्रके । भीमभिल्लाय दत्ता हं स्वामिने परमादरात् ॥ ४५१ ॥ तेन प्रोक्तं त्वकं बाले ! मे पत्नी भव निश्चितं । मयेत्युक्तं तदा भीम ! युक्तं न कुलयोषितां ॥ ४५२ । तदा कामाकुलो भूत्वा समागत्य खुवल्गति । वनदेव्या तदाताडि सेवका अपि ताडिता ॥ ४५३ ॥ देवाः शीलं प्रशंसंति वाठमत्र स्फुरत्यतः । चक्रवर्तित्वं स्वर्गत्वं शिवत्वं दुर्लभं न च ॥ ४५४ ॥ तदा कोपाकुलो भिल्लो मूल्यं लात्वा हि मां ददौ । सार्थवाहस्य दुष्टस्य पापपंकनिमज्जिनः ॥ ४५५ ॥ सोऽपि मे भोजयत्येव मिष्टान्नं शर्करायुतं । पक्षे पक्षे शिरायाश्च मोचनं कुरुते मम ॥ ४५६ ॥ तच्छो-

प्रियकमलनयनी ! कृपाकर आप द्वार खोलें । परंतु मैंने दरवाजा नहीं खोला । मेरे स्वामीको क्रोध आगया इसलिये वे यह कहने लगे-अरी ! तू दरवजा खोल । बस मैं मारे क्रोधके भवक गई । और कुछ भी न बोलकर एकदम घरसे वाहिर होगई ॥ ४४८—४५० ॥ वह समय ठीक आधीरात का था और मैं भूषण पहिने थी इसलिये चोरोंने मुझे देख लिया । मुझे पकड़कर वे अपने स्वामी भीम नामक भीलके पास ले गये और बड़े आदरसे भैंट कर दी ॥ ४५१ ॥ मेरे सौंदर्यपर मुग्ध होकर भीमने कहा—बाले ? तू मेरी पत्नी हो । उत्तरमें मैंने कहा-भीम ! मैं कुल स्त्री हूं कुलस्त्रियोंके लिये यह कार्य करना युक्त नहीं । भीम कामसे अत्यंत व्याकुल था उसने मेरी नहीं सुनी । वह बल पूर्वक कामसेवन करनेके लिये मेरे पास आ गया और डाट डपट करने लगा । शीलके माहात्म्यसे वन देवता प्रगट हुई । उसने भीमको और उसके सेवकोंको फटकार डाला क्योंकि देवगण शीलकी प्रशंसा करते हैं । इस संसारमें शीलसे वढ़प्पन होता है तथा इस शीलसे चक्रवर्तीपना स्वर्गपना मोक्षपना भी दुर्लभ नहीं ॥ ४५२—४५४ ॥ जब भील भीमकी कुछ भी नहीं चली तब वह बड़ा क्रोधित हुआ एवं एक ऐसे व्यापारीके साथ जो कि निरंतर पापरूपी कीचड़में फसा रहता था और अत्यंत दुष्ट था मुझे मूल्य लेकर वेच दिया ॥ ४५५ ॥ वह दुष्ट प्रतिदिन मुझे शक्कर आदि मिष्टान्न

गृहीतं तैर्वृतं संसारतारकं। मयापोर्ष्या विना ब्रह्मवृत नीतं मनोहरं ॥ ४४२ ॥ तद्दिनप्रभृति भ्रातः! भ्रातृभिः सह संस्थिता। मच्छीलं च परिज्ञाय कोऽपि मां भो वृणोति न ॥ ४४३ ॥ पितरावेकदा वीक्ष्य यौवनाढ्यां लसद्द्युतिं। चिंतयामासतुश्चित्ते वरान्वेषणहेतवे ॥ ४४४ ॥ एकदा सोमशर्माख्यो द्यूते द्रव्यं जहार च। द्यूतकारैस्तदा बध्वा ताड्यते मुष्टिभिस्तरा ॥ ४४५ ॥ तदैव मत्पिता गत्वा कैतव प्रत्यवीभणत्। वृणुया यदि मे कन्यां तदा त्वां मोचयाम्यहं ॥ ४४६ ॥ स्वीकृतं भूमिदेवेन तदा तातेन मोचित। पश्चात्तोक्तं च मन्तुन्याल्लंकारोनैव दीयतां ॥ ४४७ ॥ उद्वाहिता सुखं प्राप्ता भोगजं च यदा तदा। एकदा नाट्यशालायां लोकनार्थं स्थितः पतिः

सागर पधारे। राजा आदि सब लोग उनकी वंदनाके लिये गये। मैं भी गई। उपदेशके अन्तमें सबोंने अपनी अपनी शक्तिके अनुसार संसारसे पार करनेवाले व्रत नियम लिये, मैंने भी शीलव्रत का नियम लेलिया ॥४४१-४४२॥ भाई जिनदत्त! मैं उस दिनसे लेकर भाइयोंके साथ रहने लगी। मेरे क्रूर स्वभावको जानकर कोई भी मेरे साथ विवाह करनेको राजी नहीं होता था। एक दिन मुझे पूर्ण युव[...] माता पिता मेरे योग्य वर ढूंढनेके लिये चिंता करने लगे। सोमशर्मा नाम का ब्राह्म[...] [...]य मेरा स्वामी है ज्वारियोंके अड्डेमें जुआ खेल रहा था। दैवयोगसे वह [...] आप[...] [...]र गया जिससे अन्य ज्वारी उसे बांधकर मुक्कोंकी मार मारने लगे। मेरा पिता [...] [...] आ निकला और वरके योग्य सुंदर जान सोमशर्मासे यह कहने लगा— यदि [...] [...]के साथ विवाह करना पसंद करो तो मैं तुम्हें छुड़ा लूं, परवश हो सोमशर्मा[...] [...]आ पड़ा एवं मेरे पिताने उसे छुडाकर यह प्रतिज्ञा कराली कि मेरी पुत्रीसे तू कहकर [...] [...]गा ॥ ४४३—४४७ ॥ बस सोमशर्माने मेरे साथ विवाह कर लिया और समय ल[...] [...]गोंसे जायमान सुख भोगे। एक दिन मेरा स्वामी नाट्यशालामें नाटक देखने के लिये ग[...] [...]खते देखते आधीरात हो गई इसलिये आधीरातपर वह अपने घर लौटा एवं दरवाजेपर [...]र इसप्रकार कहने लगा—

सः ॥ ४३५ ॥ (षट्पदी) शृण्वानन्दपुरे भ्रातः शिवशर्मा नृपो धनी । नाम्ना श्रेष्ठी वसत्यत्र कजश्रीस्तस्य भामिनी ॥ ४३६ ॥ तयोरष्टौ महापुत्रा बभूवुः सधनोन्मदाः । अहं भट्टेति नाम्नी वै पुत्री जाता विचक्षणा ॥ ४३७ ॥ अथैकदा पिता भूपं विज्ञापयति सादरं । भवद्भिः स्त्रीति पौरैश्च मत्पुत्र्या वल्लभत्वतः । त्वंकारो नैव दातव्यः प्रमाणं कृतवान्नृपः ॥ ४३८ ॥ (षट्पदी) नृपादेशं समाप्याह मैवं प्राह समक्षकं । यो मां प्रति त्वकं दत्ते तस्यानर्थं करोम्यहं ॥ ४३९ ॥ तदाप्रभृति मन्नाम तुंकारीति कृतं जनैः । इत्थं तातादिसन्मान्या स्थिता धाम्नि सकोपिका ॥ ४४० ॥ अथैकदा समायातं मुनिं श्रीगुणसागरं राजाद्या वंदितुं जग्मुस्तत्रैवाहं गता मुदा ॥ ४४१ ॥ यथायथं

भी क्रोध नहीं आया। जिनदत्तके ये वचन सुन तुंकारीने कहा—भाई ! क्रोधका मैं भयंकर फल भोग चुकी हूं इसलिये मैंने क्रोध एकदम करना छोड़ दिया है। तुंकारीके ये वचन सुन जिनदत्तने कहा सो कैसे ? उत्तरमें तुंकारी इस प्रकार कहने लगी—

आनन्दपुर नगरमें एक शिवशर्मा नामका सेठ है जो कि धनमें राजाकी तुलना करता है। उसकी स्त्रीका नाम कमलश्री है। सेठ शिवशर्माके आठ पुत्र हैं जो कि धनी और निर्भय हैं। मैं एक पुत्री हूं और मेरा नाम भट्टा है ॥४३०—४३७॥ मैं इतनी घमंडिन थी कि मुझसे जो तू कह कर बोलता था वह मुझे विषसरीखा जान पड़ता था। मेरे पिताका मुझपर गाढ़ स्नेह था। वे मुझे सुखी बनानेके लिये एक दिन राजाके पास गये और यह कहा— मेरी भट्टापुत्री मुझे अत्यंत प्यारी है और तुंकारसे चिढ़ती है इसलिये आप तथा कोई भी पुरवासी लोग उससे तू न कहें। राजाने भी सेठ शिवशर्माका वचन स्वीकार कर लिया ॥ ४३८ ॥ जब राजाकी वैसी आज्ञा मिल गई तब मेरा और भी अधिक साहस बढ़ गया और मैंने सबोंके सामने खुले शब्दोंमें यह कह दिया कि जो कोई भी मुझसे तू कह कर बोलेगा मैं उसका अनर्थ कर डालूंगी। बस लोगोंने उस दिनसे मेरा नाम तुंकारी रख दिया। यद्यपि मेरे पिता आदि मेरा पूरा आदर करते थे तथापि मैं सदा गुस्सा ही होकर घरमें रहती थी ॥ ४३९—४४० ॥ आनन्दपुरमें एकदिन मुनिराज गुण-

स्त्वं गुणागारा कौशलान्वितविग्रहा ॥ ४२८ ॥ मुमुक्षुदाघनाशार्थं देहि तैलं सुमूल्यतः । तदा तु प्राह तुंकारी मूल्यं गृह्णाम्यहं नहि ॥
४२६ ॥ विद्यतेऽट्टालिकायां भो कांचकुंभा ममैव हि । यावत्प्रयोजनं कुंभं गृहाण त्वं तदंतरात् ॥ ४३० ॥ गत्वा गृह्णाति भग्नः स कांच
कुंभो मनोहरः । तदागत्य भिया प्राह भगिनि ? भग्नो हि कुम्भकः ॥ ४३१ ॥ तदा सा प्राह हे भ्रातर्गृहाण त्वं द्वितीयकं । यदा जिघृ-
क्षति नूनं तदा भग्नो द्वितीयकः ॥४३२ ॥ एवं कुंभाश्च सप्तैव भग्नास्तस्या न क्रुदभूत् । तदाश्चर्यं समाप्याशु तां पप्रच्छेति कारणं ॥४३३॥
हे मातरीदृशी शांतिर्मुनावपि न दृश्यते । सावीवददहं भ्रातरभोजं तत्फलं यतः ॥ ४३४ ॥ अशीशममतः क्रोधं प्राह सोऽपि कथं स्व

भीतरकी अटारीमें बहुतसी तेलकी भरी शीशियां रक्खी हैं तुम्हें जितने तेलकी आवश्यकता हो उसके भीतरसे उठाकर ले जाओ ॥ ४२३—४२६ ॥ तुंकारीका यह सज्जन स्वभाव जान जिनदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ। वह ऊपर अटारीमें चढ़ गया। ज्यों ही उसने एक शीशी तेलकी भरी उठाई दिनारी होनेके कारण वह तत्काल छूट गई। शीशीको टूटी देख जिनदत्त भयसे कंपित होगया। डरता २ वह तुंकारीके पास आया और कहने लगा—बहिन ! वह शीशी तो फूट गई ? उत्तरमें तुंकारी ने कहा—भाई ! यदि वह फूट गई तो और दूसरी ले जाओ। जिनदत्तने दूसरी भी उठाई परंतु वह भी फूट गई। जिनदत्तने फिर तुंकारीसे उसके फूटनेका समाचार कहा। उत्तरमें तुंकारीने फिर भी अपने सज्जन स्वभावसे यही कहा अच्छा भाई ! यदि वह दूसरी शीशी फूट गई तो तुम तीसरी ले जाओ। जिनदत्तने फिर भी तीसरी शीशी उठाई परंतु फिर भी वह फूट गई इसप्रकार बराबर सात शीशी तक फूटती चली गई एवं वह तुंकारी बराबर दूसरी दूसरी ग्रहण करनेकी आज्ञा देती गई। उसे रंचमात्र भी क्रोध नहीं आया। तुंकारीकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर सेठ जिनदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ इसलिये प्रेमसे गद्गद हो वह इसप्रकार कहने लगा—हे माता ! जैसी अद्वितीय क्षमा तुम्हारे अन्दर विद्यमान है वैसी किसी मुनिके अन्दर भी जल्दी नहीं दीख पड़ती। सात शीशियोंके फूटनेसे तुम्हारी बहुत हानि हुई है तथापि तुम्हें तनिक

मालाकुछिलोक्य च मामरं । दग्धमूर्धानमापत्स्थं जिनदत्तानचीकथत् ॥ ४२३ ॥ हाहा चक्रुस्तदा सर्वे संभूयागत्य नम्य च । उद्धृत्य मां करैः धुर्यामानयन् श्रावकाः शुभाः ॥ ४२४ ॥ जिनदत्तालये भक्त्या स्थापयामास मां नृप ! । जिनदत्तो भिषजं भव्यं पप्रच्छौषधमादरात् ॥ ४२५ ॥ वैद्योप्यलीलपत्सत्यं लक्षमूलाद्वते चरित् । तैलाच्छांतिर्भविन्नी न तत् क्वास्ते कथयेति मां ॥ ४२६ ॥ इति पृष्टः प्रागदीद्वैद्य. सोमशर्मा गृहेऽस्ति तत् । तदा नेतुं गतस्तस्य गेहे गहनकार्यवित् ॥४२७॥ तद्भार्यामब्रवीदेवं नाम्ना तुंकारिकां प्रति । हे स्वस-

उस वनके मालीने मुझे देखा मुझे महा दुःखित जान शीघ्रही उस नगर निवासी जैनियोंके पास पहुंचा और सारा हाल कह सुनाया । मेरी यह भयंकर अवस्था सुन वे सबके सब हा हा करने लगे । सबके सब मिलकर श्मसान भूमिमें आये । मुझे नमस्कार किया । अपने हाथोंसे उठाकर वे भव्य श्रावक मुझे उज्जयिनी ले आये । जिनदत्त नामक सेठके घरमें मुझे लाकर रख दिया । जिनदत्तने एक वैद्यसे मेरी नीरोगताकी आशासे औषध पूछी । उत्तरमें वैद्यने भी बड़े प्रेमसे यह कहा कि—प्रिय वैश्य सरदार ! लाक्षामूल तेलके विना इस दाहकी शांति नहीं हो सकती इसलिये तुम्हें लाक्षामूल तेल लाना चाहिये । वैद्यराजकी यह वात सुन जिनदत्तने कहा—लाक्षामूल तेल तो यहांपर है नहीं कहिये कहां वह मिलेगा जिससे मैं उसे ले आऊं ? उत्तरमें वैद्यराजने कहा-- यहां एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता है उसके घरमें लाक्षामूल तेल मिल सकता है । भव्य जिनदत्त लाक्षामूल तेलके विना दाहकी आगका मिटना अति कठिन जान वह शीघ्र ही सोमशर्माके घर गया । उसकी स्त्रीका नाम तुंकारी था उससे जाकर इसप्रकार कहने लगा--

बहिन ! तुम अनेक गुणोंकी भंडार और अनेक कला कौशलोंकी खजाना हो ? मुनिराजका सारा मस्तक किसी दुष्टने जला दिया है । दाहकी बड़ी भारी आग भेरा रही है । उसको नाश करने वाला तुम्हारे यहां लाक्षामूल तेल सुना है इसलिये कृपाकर जितना उसका मूल्य हो वह लेकर मुझे दे दो वड़ा उपकार होगा । उत्तरमें तुंकारीने कहा—भाइ जिनदत्त ! मैं मूल्य नहीं ले सकती

सागरं। अधिगम्य गुरुं वेगाद् दिदीक्षाहं नराधिप! ॥४१६॥ तपस्यन्नेकदा भूप! चोज्जयिन्याः श्मसानके। ध्यानसिद्ध्यै स्थितस्तावन्मंत्रसिद्धः समागतः ॥ ४१७ ॥ कौलिकोऽस्थिभराभूपाभूपितो भूतसेवकः। वैतालीयमहाविद्यासिद्ध्यर्थं नग्नरूपकः ॥ ४१८ ॥ (युग्मं) मद्देहं कुणपं मत्वा द्वितीयं चौरमस्तकं। आनीयायोजयत्पश्चान्मम मूर्ध्नि च कौलिकः ॥ ४१६ ॥ चुल्लीं शीर्ष ममैव तां कृत्वैव रंधनाय च। पायसस्य ततो मंत्री संजज्वाल धनंजयं ॥ ४२० ॥ यथाग्निर्ज्वलते तत्र शीर्ष मे व्यथते तथा। तदाहं नारकोद्भूतदुःखं संस्मृत्य ध्यानवान् ॥ ४२१ ॥ शिरासंकोचयोगेनोर्द्ध्वीभूय च करौ मम। दंडवत्संस्थितौ मूर्ध्नि दुग्धपाते पलायितः ॥ ४२२ ॥ दिनरात्रोदये

के ऐसे वचन सुन मैंने ज्ञानके भंडार अपने पुत्रको शीघ्र राज्य प्रदान कर दिया। शीघ्र अपने गुरु के पास चला गया और मैंने दिगंबरी दीक्षा धारण करली ॥ ४१६ ॥ राजन्! विहार करता करता मैं एक दिन उज्जयिनी नगरी जा पहुंचा और उसकी श्मसान भूमिमें ध्यानकी सिद्धिके लिये निश्चलरूपसे स्थिर हो गया। उसीसमय एक कौलिक (कोरिया) मन्त्रवादी जो कि हड्डियोंके भूषणोंसे भूषित था। भूतोंका सेवक था और नग्नरूपका धारक था। महावैतालीय विद्या सिद्ध करनेके लिये वहां आया। मेरे शरीरको उसने मुर्देका शरीर समझा। कहींसे वह एक दूसरा मस्तक उठा लाया और उसने पीछेसे मेरे मस्तकके साथ जोड़ दिया। खीर पकानेके लिये उसने मेरे मस्तकको ही चूल बनाई और उसने अग्नि जलानी प्रारंभ कर दी ॥ ४१७--४२० ॥

जैसी जैसी वह भयंकर अग्नि जलने लगी मेरे मस्तककी पीड़ा भी बढती चली गई। वह दाहका दुःख मुझे नरकका दुःख जान पड़ने लगा इसलिये उसकी ओरसे हटकर मैंने अपने चित्तको आत्मस्वरूपके चिन्तवनमें लगाया ॥ ४२१ ॥ अग्निके सम्बन्धसे नसोंके संकुचित हो जानेसे मेरे दोनों हाथ ऊपरको उठकर दंडाकार सीधे खडे हो गये। मेरे मस्तकपर जो रांधनेका पात्र रक्खा था नीचे गिर गया उसका दूध फैल गया, यह देख वह मंत्रवादी कौलिक भयसे भाग गया ॥ ४२२ ॥ मेरा सारा मस्तक दग्ध हो चुका था। प्रातःकाल होते ही

त्यवधिलोचनं । तेनैव ज्ञायते सर्वमन्येषां तद्धि नो भवेत् ॥४०६॥ श्रुत्वा प्रशस्य धर्मं वै जैनं स कांतया सह । गत्वा पप्रच्छ वृत्तांतं नत्वा श्रीमणिमालिनं ॥ ४१० ॥ मद्गृहागत्य कथंकारं निःसृतो भोजनादृते । मुमुक्षुर्वचनं प्राह राजानं राजपाजितं ॥४११॥ चेलिन्या विहितं मत्वा कायगुप्तिन मे यतः । अतः स्थितं न राजेंद्र ! शृणु तद्व् समादरात् ॥४१२॥ मणिवद्विषये रम्ये मणिवत्पत्तने त्वथ । मणिमाल्यहकं राजा गुणमाला प्रिया मम ॥ ४१३ ॥ मणिशेखरपुत्रोऽभूत् राजराज इवार्पणात् । एवं भोगान् प्रभुंजानो गतं कालं न वेद्म्यहं ॥ ४१४॥ एकदा कांतया केशान् विरलयंत्या ममोदितं । यमदूतः समायातः आरादात्महितं कुरु ॥ ४१५ ॥ तदा राज्ये नियोज्याशु पुत्रं च ज्ञान-

वे अवधिज्ञानके विषयभूत पदार्थोंको जानते हैं किंतु जिनके तीन गुप्तियां नहीं होतीं उनके अवधि ज्ञान भी नहीं होता ॥ ४०१—४०६ ॥ मुनिराज जिनपालके ये वचन सुन महाराज श्रेणिकने जैन धर्मकी बड़ी भारी प्रशंसा की। वे रानी चेलिनीके साथ वहांसे उठकर मुनिराज मणिमालीके पास गये और उनसे इसप्रकार पूछने लगे--

पूज्य मुनिराज ! राजमन्दिरमें आप आहारके लिये पधारे थे परंतु आहार विना ही लिये आप क्यों चले आये ? उत्तरमें मुनिराज मणिमालिनीने कहा-- रानी चेलिनीने तीन अङ्गुलियां उठा कर यह प्रकट किया था कि तीन गुप्तियोंके धारक मुनिराज मेरे मन्दिरमें आहारके लिए विराजें मेरे कायगुप्ति थी नहीं इसलिए हे राजेन्द्र ! मैं राजमन्दिरमें आहारके लिए न ठहर सका। मेरे कायगुप्ति क्यों नहीं थी इसका खुलासा इसप्रकार है—

इसी पृथिवीपर एक मणिवत नामका देश है। उसमें एक मणिवत ही नामका नगर है। वहांका मैं मणिमाली नामका राजा था। मेरी स्त्रीका नाम गुणमाला था और मेरे पुत्रका नाम मणिशेखर था जो कि कुवेरकी उपमा धारण करता था इसप्रकार मैं सुखपूर्वक भोगोंको भोगता था और काल कहां चला जा रहा है ? यह मुझे तनिक भी नहीं सूझ पड़ता था ॥४१०--४१४॥ मेरी स्त्री गुणमाला एक दिन मेरे केश संभाल रही थी। एक सफेद केश देख कर उसने कहा— यमराजका दूत आ पहुंचा है अब शीघ्र आत्माका हित करना उचित होगा ॥ ४१५ ॥ अपनी रानी

स्वामिना जिनपालेनाभयं दत्तं तवैव भो ॥४०२॥ चंडः प्राहेति हे कांते ! मुनीनां छिपता कुतः । रागो हि विद्यते कुत्र साम्यत्वात्तु त्य-
त्पता ॥ ४०३ ॥ यद्येवं विद्यते चित्ते वैहि नंतुं गतौ तदा । जिनपं वीक्ष्य नत्वैवं पप्रच्छेति मनोगतं ॥ ४०४ ॥ हे नाथ ! योगिनां
कस्याभयचिंतनमादरात् । कस्य विनाशनत्वं हि युक्तं प्रोक्तं जिनागमे ॥ ४०५ ॥ मुनियंगं समाश्रित्य स्थितो ध्याने यदा तदा ।
कांता प्राह न तद्युक्तं परंतु गगनध्वनिः ॥ ४०६ ॥ भ्रांतिं चित्तस्थितां तौ च विनाश्य सदने गतौ । अहं तदालये राजन्नागतो भोजन-
कृते ॥४०७॥ तदोक्तमिति चेलिन्या त्रिगुप्तिर्भवतां यदि । तिष्ठंतु चान्यथा नैव तदभावान्न स्थिता वयं ॥४०८॥ त्रिगुप्तीनां मुनीनां हि भव-

किसीसे राग कर सकते हैं। तुम जो कह रही हो यदि वह वात सत्य ही है तो चलो अपने मुनि
राजके पास चलें और यथार्थ वात उनसे पूछें बस वे दोनों मुझ जिनपालको वंदनेके लिये चल
दिये। मुझे देख कर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं अपने हृदयका भाव राजा चंडप्रद्योतन इस
प्रकार व्यक्त करने लगा—

भगवन्! योगी लोग किसीका तो अभय चिंतवन करें और किसीका नाश चिंतवन करें
क्या यह वात जैनसिद्धांतमें ठीक मानी गई है ? मैंने इस वातका कोई उत्तर नहीं दिया। मौन
धारण कर ध्यान करने लगा। रानी मृगांकाने कुछ भी उत्तर न देते जब मुझे ध्यान लीन देखा
तो उसने राजा चंडप्रद्योतनसे कहा—नाथ ! मुनिराजने अभय दानका सूचक वचन नहीं कहा था
किंतु उस प्रकारकी आकाश ध्वनि हुई थी। रमणी मृगांकाके ऐसे वचन सुन दोनोंकी भ्रांति मिट
गई और वे दोनों अपने राजमहल लौट आये। मैं भी उस उपसर्गसे अपनेको मुक्त जान राज
मंदिरमें आहारके लिये गया। रानी चेलिनीने तीन अङ्गुली उठाकर यह वात प्रगट की थी कि--
यदि आप तीन गुप्तियोंके धारक हों तो मेरे मन्दिरमें आहारके लिये ठहरें वीच नहीं। राजन् !
हमारे तीन गुप्तियां थीं नहीं इसलिये हम राजमन्दिरमें आहारके लिये स्थित न हो सके क्योंकि
यह नियम है जो मुनि तीन गुप्तियोंके धारक होते हैं वे नियमसे अवधिज्ञानी होते हैं और उससे

जयत्वं भाविता तत्र ॥ ध्वनिं मुनेर्वचो मत्वा सत्यं मौनीश्वरं वचः । इति कृत्वा गतो गेहे रणतो समागतः ॥ ३९६ ॥ चंडस्तदा समाकर्ण्य जयत्व तस्य भूपतेः । जैनं मत्वा यदायाति स्वगृहेषु रणान्वितः ॥ ३९७ ॥ प्रजापालाभिधो राजा प्रेषयामास सद्भटान् । ते गत्वा प्रोचुरित्येवं कथं यासि रणाद्विना ॥ ३९८ ॥ चंडप्रद्योतनोऽवादीच्छ्रुत्वा तेषां वचः स्फुटं । जैना मे बांधवा मित्रं कथं योत्स्यते मया ॥ ३९९ ॥ गत्वान्ववेदयन्वीराश्चण्डप्रद्योतनोदितं । तथा श्रुत्वा ददौ प्रीत्या मृगाक्षी मारमंजरी ॥ ४०० ॥ एकदा तौ च रेमाते तदा चंडो जगाद भो । कांते ! ते पितरं जैनं मत्वा मुक्तो रणांगणे ॥ ४०१ ॥ श्रुत्वा मृगाक्षिका प्राह शृणु त्वं नाथ ! मद्वचः ।

रणभूमिमें आ धमका ॥ ३९३—३९६ ॥ राजा चंडप्रद्योतनको किसी कारणसे यह भ्यास गई कि राजा प्रजापालका ही विजय है इसलिये वह उसे जैनी मान अपने घर जाने लगा। रणके लिये सर्वथा तयार राजा प्रजापालने अपने कुछ सुभट राजा चंडप्रद्योतनके पास भेजे और वे कहने लगे कि भाई रणको छोड़कर तुम क्यों जा रहे हो ? उत्तरमें राजा चंडप्रद्योतनने गंभीर वचनोंमें कहा—समस्त जैनी मेरे वंधु हैं और मित्र हैं मुझे उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। राजा प्रजापालके सुभटोंने चंडप्रद्योतनका संदेशा उससे जाकर कह दिया। चंडप्रद्योतनके ये वचन सुन राजा प्रजापाल प्रसन्न हो गया एवं कामकी मन्जरी स्वरूप अपनी मृगनयनी कन्याका उसके साथ विवाह कर दिया ॥ ३९७—४०० ॥

रमणी मृगांका और चंडप्रद्योतन एक दिन आपसमें रमण क्रीड़ा कर रहे थे उससमय चंडप्रद्योतनने कहा--प्रिये तुम्हारा पिता जैनी था इसलिये मैंने उसे रणसंग्राममें छोड़ दिया था यदि कोई दूसरा होता तो मैं उसे नहीं क्षमा करता। अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन रमणी मृगांकाने कहा--प्राणनाथ ! मुनिराज जिनपालने उन्हें अभय दान दिया था इसलिये वे आपसे नहीं जीते जा सके। अपनी रानीके ऐसे वचन सुन चंडप्रद्योतनको वडा आश्चर्य हुआ वह कहने लगा--मुनियोंकी तो शत्रु मित्रमें समान वृत्ति रहती है इसलिये न तो वे किसीसे द्वेष कर सकते हैं और न

भूमितिलकपुरे राजा प्रजापालोऽस्ति धीधनः ॥ ३८६ ॥ तस्यैव धारिणी जाया मृगांकाख्या सुनाभवत् । वृत्तोन्नतनितंबा च म... क्षोणोरसि पृथुः ॥ ३८७॥ चंडप्रद्योतनो राजा श्रुत्वा तामतिरूपिणीं । ययाचे सादरं पित्रा नो दत्ता दर्पधारिणा ॥३८८॥ चतुरंगवला-न्वीतो दुर्दमार्थं चचाल सः । क्रमेण तत्पुरं प्राप्य वेवेष्टि वलिभिर्बलैः ॥३८६॥ घस्रे घस्रे तयोर्जातो रणो रणविदोः पुनः ॥३६०॥(षट्पदी) कुंतकृंतितमूर्धानो योयुध्यंते नरास्तदा । महारणसमुद्रे स्मिन् पतद् तिमहाशिले ॥ ३६१ ॥ वहुवीरक्षये युद्धे हारितो हि प्रजापनाक् । ३६२॥(षट्पदी)विषण्णस्तिष्ठते यावत्तावन्मां च वनागतं। जिनपं वनपालाच्च श्रुत्वा वंदितुमाययौ ॥३६३॥ इत्थं जगाद नत्वा मां त्राहि त्वं शरणागतं । सेवकं दुःखितं मत्वा ध्रुवं चिंतां निवारय ॥ ३६४ ॥ तदाकाशध्वनिर्जज्ञे वनदेवतया कृतः । प्रजापाल ? भय मागाः

चंडप्रद्योतन क्रोधसे भबक गया । राजा वसुपालको वश करनेके लिये वह चतुरंग सेनासे व्याप्त हो भूमितिलक पुरकी ओर चलदिया एवं अपनी बलवान सेनासे चारो ओरसे पुर घेरलिया ॥ ३८४-३८६ ॥ दोनों ही राजा रणकुशल थे । दोनोंका आपसमें प्रतिदिन युद्ध होने लगा । उस महारण रूपी समुद्रमें जिनके मस्तक भालोंसे कटे हुये हैं ऐसे पुरुष युद्ध करने लगे । शस्त्रोंके कठोर प्रहारों से बड़ी बड़ी हाथीरूपी महाशिलायें पड़ने लगीं । वहुतसे वीरोंका जय होने लगा ऐसे भयंकर संग्राममें राजा प्रजापालको हार खानी पड़ी ॥ ३६०—३६२ ॥ हारकर प्रजापाल खिन्न हो घरमें बैठा हो था कि बनपालके मुखसे उसने मुझ जिनपालका वनमें आना सुना और मेरी वंदनाके लिये चल दिया एवं मेरे पास आकर और नमस्कार कर वह इसप्रकार विनयपूर्वक कहने लगा—

भगवन् ! मैं आपके शरणमें आया हुआ हूं आप मेरी रक्षा कीजिये । सेवकको दुःखी जान उसकी शीघ्र चिंता मेटिये मैं तो उससमय कुछ भी नहीं बोला परंतु वनदेवताकी ओरसे यह आकाश ध्वनि हुई कि—प्रजापाल ! तुम किसी प्रकारका भय मत करो विजय तुम्हारा ही होगा । राजा प्रजापालने वन देवताकी इस ध्वनिको मुनिका वचन जानकर और यह पक्का श्रद्धान कर कि मुनियोंका वचन सत्य होता है, वह अपने राजमहल लौट गया एवं तयारी कर

भार्या गरुडदत्ताख्या तयाऽहं स्थापितोऽद्भुते । यदैव शोधने लेपस्तदा स्वैरं ममैव हि ॥३८१॥ तदा मत्करतः स्निग्धं पतितं वीक्ष्य वेगतः दृष्टिर्गता यदा निकटे तदंगुष्ठो विलोकितः ॥ ३८२ ॥ तदा सस्मार मन्नार्या अंगुष्ठं कर्मपाकतः । अतो मे मानसो गुप्तिर्न स्थिता नर नायक ! ॥ ३८३ ॥ श्रुत्वोत्तस्थौ तदा राजा गत्वा नत्वा मुहुर्मुहुः । जिनपालं पप्रच्छेति ध्यायन्तं वृषभं प्रभुं ॥३८४॥ हे मुने ! मद्गृहा-च्छीघ्र कथमत्रागतो वद । वाग्गोप्तिर्न ममास्ते नो अतो न स्थितवान्नृप ! ॥ ३८५ ॥ कथं तदा मुनिः प्राह शृणु त्वं काश्यपीपते ! ।

अङ्गूठेके देखनेसे मुझे अपनी स्त्रीके अङ्गूठेका स्मरण उठ आया एवं सहसा मेरे मनमें यह भावना खड़ी हो गई कि अहा, ऐसा ही सुन्दर अङ्गूठा मेरी रानीका था। बस राजन् ! उसदिन से आज तक मेरे मनोगुप्तिका उदय नहीं हुआ इसलिये तीनो गुप्तियोंके न रहनेके कारण मैं राज मंदिरमें आहारके लिये न ठहर सका ॥ ३७५—३८३ ॥ मुनिराज धर्मघोषकी कथा सुन राजा श्रेणिक उन्हें नमस्कार कर वहांसे उठे। जिनपाल नामक मुनिराजके पास गये वे भगवान उस समय भगवान ऋषभदेवका ध्यानकर रहे थे राजाने पास जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और यह पूछा—

पूज्य मुनिराज ! आप मेरे राजमन्दिरमें आहारके लिये गये थे परंतु आहार विना ही लिये आप चले आये इसका कारण क्या? उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन् मेरे काययुप्ति न थी इसलिये मैं राजमंदिरमें आहारके लिये नहीं ठहरा। राजाने पुनः पूछा--महाराज ! आपके काययुप्तिका उदय क्यों नहीं हुआ ? उत्तरमें मुनिराज अपना सारा हाल खुलासारूपसे इसप्रकार कहने लगे।

भूमितिलक पुरका स्वामी राजा प्रजापाल है। उसकी पटरानीका नाम धारिणी और उससे उत्पन्न एक मृगांका नामकी कन्या है। जो कि गोल और उन्नत नितंबोंसे शोभायमान है। सूक्ष्मकटिभागकी धारक है और उसका वक्षःस्थल विशाल है। अत्यंतरूपवती जान चंडप्रद्योतन नामके राजाने उसे वसुपालसे सरलता पूर्वक मांगी थी परंतु अभिमानी वसुपालने उसे नहीं दी।

नत्वा पप्रच्छेति नृपो गुरुं। चर्यार्थं मद्गृहे स्वामिन्नागतो निर्वृतः कथं ॥३७५॥ जगाद मुनिराड् भूपं शृणु श्रेणिक! धीधनः। इत्युक्तं कांतयास्माकं ये तु गुप्तित्रयात्मकाः ॥ ३७६ ॥ तिष्ठंतु भोजनार्थं ते नापरे ह्यत्र भूशं ॥ ३७७ ॥ (पद्धटी) नो गुप्तित्रितयं नास्ति नास्माभिश्च स्थितं ततः। का गुप्तिर्नास्ति युष्माकं मानसीति कथं वद ॥ ३७८ ॥ धर्मघोषस्तदा प्राह शृणु राजन्निगद्यते। कलिंग विषये दंतपुरे राजाहकं महान् ॥ ३७९ ॥ विहरन् भोजनार्थं वै कौशाम्ब्यामगमं नृप!। तत्रैव गरुडदत्तो राजमंत्री प्रवर्तते ॥३८०॥

नामक मुनिराजके पास गये। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं राजाने इसप्रकार उनसे पूछा स्वामिन्! आहारके लिये आप राजमंदिर पधारे थे परंतु आहार विना ही ग्रहण किये आप वापिस क्यों चले आये। उत्तरमें मुनिराजने कहा—सुनो राजा जिससमय हम राजमंदिरमें आहारके लिये गये थे उससमय रानी चेलिनीने तीन अङ्गुली उठाकर यह प्रगट किया था कि तीन गुप्तियोंके पालक मुनिराज मेरे यहां आहारके लिये तिष्ठें। जिनके तीनों गुप्तियां न हों वे न तिष्ठें। हमारे तीनों गुप्तियां थीं नहीं इसलिये हम वहां आहारके लिये नहीं ठहरे। न ठहरनेका अन्य कोई कारण न था। मुनिराजके ये वचन सुन राजा श्रेणिकने पूछा—महाराज! तीनों गुप्तियोंमें आपके कौनसी गुप्ति नहीं है? मुनिराजने कहा—हमारे मनोगुप्ति नहीं है। राजाने फिर पूछा महाराज! आपके मनोगुप्ति क्यों नहीं है। उत्तरमें मुनिराजने अपने मनोगुप्ति न होनेका कारण इस प्रकार खुलासारूपसे वर्णन किया—

कलिंगदेशमें एक दंतपुर नामका नगर है। मैं वहांका एक बहुत बड़ा राजा था। भोजनके लिये विहार करता करता मैं एक दिन कौशांवी नगरीमें जा निकला। वहांके राजाके मंत्रीका नाम गरुड़दत्त था और उसकी स्त्री गरुड़दत्ता थी। गरुड़दत्ताने मुझे आहारके लिये ठहरा लिया और विधिपूर्वक वह मुझे आहार देने लगी। जिससमय वह केवल मुझे ही आहार दे रही थी प्रबल कर्मके उदयसे एक ग्रास मेरे हाथसे नीचे जमीन पर गिर गया। ग्रासके गिरते ही मेरी दृष्टि भी उस ग्रासपर पड़ी। रमणी गरुड़दत्ताका पैरका अंगूठा मुझे दीख पड़ा कर्मकी प्रबलतासे उस

समस्या विहिता तया ॥ ३६९ ॥ त्रिगुप्तिगुप्ताहितिष्ठंतु लेशार्थं मम मंदिरे । अंगुलिद्वितयं तेऽपि दर्शयित्वा वनं ययुः ॥३७०॥ गुणसागरनामानं दृष्ट्वा यातं तथाऽकरोत् । प्रतिपद्य मुनिस्तत्रो राजप्रक्षालितांघ्रिणः ॥ ३७१ ॥ मध्ये गृहं यदा योगी गत्वा तिष्ठति भावतः । ज्ञात्वावधिवशाच्चर्मास्थ्यशुद्धिं गतवांस्तदा ॥३७२। अथाचख्यौ नृपो राज्ञीं ते त्रयो हि कथं गताः । लेशार्थमागताः पूर्वं ब्रूहि त्वं तच्च कारणं ॥३७३॥ अवीवदत्तदा राज्ञी नो वेद्मीति नराधिप ! । आवां यावश्च पृच्छावो वाहनाज्जग्मतुर्वनं ॥३७४॥ धर्मघोषमुनिं

किया कि मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति तीनों गुप्तियोंके धारक मुनिराज मेरे मंदिरमें आहारके लिये ठहरें। तीनों मुनियोंमें तीनों गुप्तियोंका धारक एक भी मुनि न था इसलिये वे अपनी दो २ अङ्गुलियां दिखा कर वनको चले गये। उनके वाद एक गुणसागर नामके मुनि-राज आये। रानीने उनको भी तीन अङ्गुली उठाकर अपने हृदयका भाव प्रकट किया, वे मुनि तीनों गुप्तिओंके धारक थे एवं तीन गुप्तिओंका धारक नियमसे अवधिज्ञानी होता है इसलिये वे अवधिज्ञानी भी थे बस रानीके वचनानुसार उन्होंने अपनेको उपर्युक्त समझा। वे खड़े रहगये राजाने उनके चरणोंका प्रक्षाल किया। घरके मध्यभागमें आहारके लिये वे भावपूर्वक जाकर स्थित ही हुए थे कि उन्होंने अवधिज्ञानकी ओर अपना उपयोग लगाया एवं अवधिज्ञानके बलसे चाम हड्डी आदि अपवित्र पदार्थोंको उन्होंने जान लिया। वे अपना अन्तराय समझ वनकी ओर चले गये। गुणसागरके विषयमें तो राजाने कुछ भी नहीं कहा किंतु उनसे पहिले जो तीन मुनिराज आहार विना ही लिये वन चले गए उनके विषयमें यह पूछा—

प्रिय रानी ! तीन मुनि जो आहारके लिए राजमंदिरमें आये थे वे विना ही आहारके राज मंदिरसे क्यों लौट गए ? उत्तरमें रानीने कहा—प्राणनाथ ! मैं भी कुछ नहीं समझ सकी चल अपन दोनों उनके पास चलें और उनसे विना आहार लिए लौट आनेका कारण पूछें। वस दोनों ही सवारियोंपर चढ़कर वनकी ओर चल दिये ॥ ३६९—३७४ ॥ सवसे पहिले वे धर्मघोष

त्वा त्वभूस्त्वकं । त्वद्वक्षोरुधिराकांक्षी चेलिन्या उदरे हि सः ॥ ३६४ ॥ सुषेणचरदेवोऽभूत् कुणिकाख्यो निदानतः । एतस्मात्त्वं निजं नाशं पंजरे विद्धि निश्चयात् ॥ ३६५ ॥ श्रुत्वा जातिस्मरो जज्ञे तदा श्रेणिकभूमिपः । जैनधर्मं समाधाय श्रद्दधत् स्वगृहं ययौ ॥३६६॥ जैनधर्मरतं मत्वा नृपं बौद्धाः समागताः ।;राजन्! करोषि चेज्जैनं धर्मं कुर्याः परीक्ष्य भो ॥ ३६७ ॥ सद्ममध्येऽस्थिसंतानं क्षिप्त्वा राज्ञीं नृपो जगौ । भोजयेति मुनीन् जैनान् ज्ञातवृत्तोन्नतस्तनी ॥ ३६८ ॥ एकदा त्रय आयाता मुनयो नृपसद्मनि । तदांगुलीमिरित्येवं

राजका इसप्रकार मरण सुन बड़ा दुःखित हुआ एवं उसी दुःखमें राजकाज त्यागि वह मिथ्या तपस्वी हो गया। कुतपके प्रभावसे वह मिथ्यादृष्टि देव हुआ एवं वहांसे चयकर तुम राजा श्रेणिक हुए हो। तुम्हारे वक्षस्थलके रुधिरका आकांक्षी वह सुषेणका जीव देव अपने निंदित निदानसे रानी चेलिनीके गर्भमें अवतीर्ण हो गया है उसका नाम कुणिक होगा वह तुम्हें कठहरेके अन्दर बन्द रक्खेगा एवं उसके निमित्तसे उस कठहरेके अन्दर ही नियमसे तुम्हारा मरण होगा ॥ ३६३—३६५ ॥ मुनिराजके मुखसे अपने पूर्वभवका वृत्तांत सुन राजा श्रेणिकको भी अपने पूर्व भवका स्मरण हो गया एवं जैनधर्मका श्रद्धानी हो वह अपने राजमहल लौट आया ॥ ३६६ ॥ बौद्ध साधुओंने सुना कि राजाने बौद्धधर्मका आचरण छोड़ दिया है और वह जैनधर्मका सेवक बन गया है। वे सबके सब राजाके पास आये, बहुतसी तर्क वितर्क हुई। अन्तमें जब उनकी एक भी न चली तो उन्होंने यही कहा--राजन्! तुम जैनधर्मको धारण तो करते हैं परंतु ठीक समझ सोचकर धारण करना जिससे पीछे पश्चाताप न करना पडे ॥ ३६७ ॥ बौद्धगुरुओंके वचनोंका राजा पर कुछ असर पड़ गया। जैनधर्मकी परीक्षाका कौतूहल उसके शिरपर सवार हो गया। एक दिन उसने आहारके स्थानपर रानीसे छिपाकर कुछ हड्डी आदि अपवित्र पदार्थ गड़वा दिये और रानीसे यह कह दिया कि तुम जैन मुनियोंको आहार दान दिया करो। रानी चेलिनी बड़ी चतुर थी उसने राजाका अभिप्राय पहिचान लिया और वह चौकन्नी हो गई ॥ ३६८ ॥ एक दिन तीन मुनिराज मंदिरमें आहारके लिये आये। रानीने तीन अंगुली उठाकर यह भाव प्रगट

गतः। पुनः राज्ञो गजो दुष्टः स्तंभमुत्क्षेप्य निर्ययौ ॥ ३५७ ॥ तदा सह निशांतेन राज्ञा नावगतो मुनिः। द्विपक्षांतं तपो नीत्वा पुनः कांतारमाप सः ॥ ३५८ ॥ तृतीयपारणायां स क्षीणमात्रो जटान्वितः। राजधान्यां तदा दाहो बभूव लयकालवत् ॥ ३५९ ॥ तदा भूपादिभिर्नैव दृष्टः श्रीमुनिपुङ्गवः। प्रत्यूहं वै यदा हत्वा याति लोकास्तदा जगु ॥३६०॥ अयं राजा महापापी भोजनं नैव यच्छति। दातारं वारयत्येव श्रुत्वा राज्ञे चुकोप सः ॥ ३६१ ॥ क्रोधस्खलितपादोऽयोगी पतद्भूमौ निदानकं। अचीकरन्महादुष्टं हन्मीदृक्षो भवाम्यहं ॥ ३६२ ॥ मृत्वा व्यंतरतां यातो धिक्निदानमनर्थदं। तमावेद्य मृतं राजा तद्दुःखात्तापसोऽजनि ॥३६३॥ कुतपःस्थः सुरो जज्ञे ततश्च्यु-

गजने अपने बंधनेका खूंटा तोड़ डाला। सारे महल और नगरमें खलबली पड़ गई बस उसदिन भी मय अपने रणवासके राजा मुनिराजको न देख सका एवं दो पखांका और भी आहारका नियम लेकर वे मुनिराज वनको चले गये ॥ ३५७—३५८ ॥ तीन मासके उपवासके बाद वे पुनः पारणाके लिये नगरमें आये। आहारके विना उस समय उनका शरीर एकदम क्षीण हो गया था और बड़ी बडी जटायें बढ़ गईं थीं परंतु जिससमय मुनिराजने नगरमें प्रवेश किया उसी समय प्रलय कालके समान नगरमें आग लग गई इसलिये किसी राजाआदिकी दृष्टि मुनिराजपर न पड़ी। वे अपना अंतराय समझ वनको लौट दिये। उनकी दुःखदायी क्षीण दशा देख कुछ लोग आपसमें कहने लगे—

यह राजा बड़ा भारी पापी है न तो स्वयं मुनिराजको भोजन देता है और यदि कोई अन्य दाता देता है तो उसे देने नहीं देता। बस पुरवासी लोगोंके ये शब्द सुन मुनिराज अशुभ कर्मके उदयसे राजापर आग बबूला हो गये। चलते चलते तीव्र क्रोधसे उनके पैर लटपटाने लगे। असमर्थतासे जमीनपर गिर गये एवं तीव्र क्रोधसे अज्ञानी बन यह महादुष्ट निदान किया-कि मैं आगे ऐसा होऊं जो इसदुष्टको मार सकूं ॥ ३५९—३६२ ॥ निदानके तीव्र पापसे वे व्यंतर जातिके देव हुए। हा इसप्रकारके अनर्थके कारण निदानके लिये धिक्कार है। राजा सुमित्र भी मुनि-

३५१ ॥ मुनिराहेति राजानं यदैमि भोजनाय वै । अनुमोदनं तदा दोषोऽव्रततो जीवनं च धिक् ॥ ३५२ ॥ श्रुत्वा नत्वा ययौ राजाऽरंजयत्स्वप्रजाः प्रजा । एकदा दायितस्तेन पटहो हि पुरेऽखिले ॥ ३५३ ॥ भो लोकाः ! योगिने यो हि दास्यत्याहारमात्रकं । राजग्राह्यो भवेत्सोऽपि भोजयिष्याम्यहं खलु ॥ ३५४ ॥ एकदा मुनिराजोऽसावागतो भोजनकृते । मासोपवासिको ध्यानी नैव केनापि रक्षितः राजद्वारे यदा यातो वैरिदूतस्तदागतः । मुनीराज्ञा हि न ज्ञातो विग्रहत्वान्मुनिर्गतः ॥ ३५६ ॥ मासद्वयोपवासी स पारणार्थं समा

मोदन करना ये प्रायः एक समान ही हैं तथा इस अनुमोदन दोषसे व्रत भंग होगा और व्रतके विन। संसारमें जीना व्यर्थ है। मुनिराजका यह उत्तर सुन राजा सुमित्र और अधिक कुछ न बोल सका वस मुनिराजके वचन सुन और उन्हें नमस्कार कर राजमहल लौट आया एवं अपने पुत्रके समान प्रजाको रंजन करने लगा। एकदिन वैठे ही वैठे उसके मनमें उचंग उठ खड़ी हुई। उसने समस्त नगरमें ड्योढी पिटवा दी और यह घोषणा कर दी—

समस्त प्रजाको सूचित किया जाता है कि मुनिराज सुषेणको कोई भी आहार न दे। मेरी आज्ञा न मानकर जो उन्हें आहार देगा वह राजाकी ओरसे दण्डित किया जायगा क्योंकि उन्हें आहार देनेका पूरा संकल्प मैंने कर लिया है। केवल मैं ही उन्हें आहार दूंगा ॥ ३५०—३५४ ॥ एक मासके उपवासके वाद ध्यान शील वे मुनिराज सुषेण एक दिन आहारकेलिये नगरमें आये मुनि चर्याके अनुकूल वे जहां तहां घरोंमें घूम परंतु राजाके भयसे किसीने भी उन्हें आहार दान न दिया ॥ ३५५ ॥ जिससमय वे राजमहलमें आहारकेलिये गये तो उस समय राजा सुमित्रके किसी वैरीका दूत राजसभामें आ गया। उसकी गड़बड़में राजा उन्हें न देख सका। वे मुनिराज अंतराय कर्मका प्रबल उदय जान वनको चले गये ॥ ३५६ ॥ दो मासके उपवासके वाद वे पुनः पारणाके लिये नगरमें आये। मुनिचर्यानुसार सर्वत्र घूमकर वे आहारके लिये राजमहलमें गये। जिससमय मुनिराज राजमहलमें प्रविष्ट हुए उसीसमय राजा सुमित्रके किसी दुष्ट

सुमित्रो हि निजं मित्रमदृष्ट्वा तद्गृहं गतः। विलोकनाय श्रुत्वा तं दीक्षितं दुःखवानभूत् ॥ ३४६ ॥ एकदा स्ववने राजा समायातं मुनीश्वरं। श्रुत्वा जगाम संप्रीत्या वंदनाय बहुश्रुतं ॥ ३४७ ॥ वंदित्वा प्राह हे मित्र! त्वमेहि सदनं प्रति। अर्धराज्यं ददामीति श्रुत्वा प्राह मुनिर्वचः ॥ ३४८ ॥ तपसा प्राप्यते राज्यं स्वर्गो दिव्यं शिवं सुखं। रत्याभभामिनीवृंदं दुष्प्राप्यं तेन किं भवेत् ॥ ३४९ ॥ श्रुत्वा मौनीश्वरं वाक्यमवोचत्सादरादिदं। नागच्छसि यदा त्वं भो गृहं संसारवर्धके ॥ ३५० ॥ एहि मे मंदिरे नूनं भोजनाय सुखेन च ॥

था। दिगंबरी दीक्षा ले लेनेके कारण जब सुमित्रका सुषेणसे मिलाप न हो सका तो वह स्नेह-से प्रेरित हो सुषेणको देखनेके लिये उसके घर गया परंतु वहांपर उसे मालूम हुआ कि वह मुनि हो गया है इसलिये वह बहुत दुःख मानने लगा ॥ ३४६ ॥ एक दिन राजा सुमित्रने सुनी कि सूरपुरके वनमें मुनिराज सुषेण पधारे हैं, वह बड़े प्रेमसे बहुश्रुतके जानकार मुनिराज सुषेण-की वंदनाके लिये चल दिया ॥ ३४७ ॥ पास जाकर भक्तिपूर्वक मुनिराजको प्रणाम किया एवं स्नेहसे विह्वल हो इसप्रकार कहने लगा—

हे मित्र! तुम घर चलो। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दूंगा--किसी बातका तुम्हें क्लेश न होगा। उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन्! संसारमें तप सर्वोत्तम पदार्थ है, इसीसे राज्य प्राप्त होता है इसीसे स्वर्ग इच्छानुसार द्रव्य मोक्ष एवं संसारके अन्य सुख भी प्राप्त होते हैं। रतिके समान सुन्दरी स्त्रियां भी इससे प्राप्त होती हैं विशेष क्या, संसारमें कोई भी ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं जो तपसे न मिलती हो ॥ ३४८—३४९ ॥ मुनिराजके ऐसे गंभीर वचन सुन राजा सुमित्रसे अन्य उत्तर तो न बना किंतु बडे आदरसे वह यह कहने लगा—महाराज! संसारको बढ़ाने वाले घरमें आनेकी यदि आपकी इच्छा नहीं है तो आप सुख पूर्वक भोजनके लिये मेरे मंदिरमें तो अवश्य पधारें इसका उत्तर भी मुनिराजने यह दिया—यदि मैं इसरूपसे भी तुम्हारे मंदिरमें भोजनके लिये आऊंगा तो अनुमोदना दोष लगेगा क्योंकि करना कराना और अनु-

भो। पृच्छय त्वं भवान् स्वीयाँस्तत्वऽथाक्षीद्व्रशान् मुनिं ॥ ३३ - ॥ तदा गंभीरघोषेण मुनिराजो अंगाद तं। श्रृणु राजन्! समादाय जंबूद्वीपेऽत्र भारते ॥ ३३६ ॥ आर्यखंडे सूरकांतदेशे सूरपुरे पुरे। मित्रनामा महाराजा श्रीमती तस्य भामिनी ॥ ३४० ॥ तयोः पुत्रः सुमित्राख्यः प्रधानो मतिसागरः। तस्यैव रूपिणी कांता सुषेणस्तनुजोऽजनि ॥ ३४१ ॥ सुमित्रो मंत्रिपुत्रेण सार्धं क्रीडति सर्वदा। संतापयति तं नित्यं भूमौ पात्य च मुष्टिभिः ॥ ३४२ ॥ एकदा जलकेल्यर्थं दीर्घिकायां ममज्जतुः। पद्मवृंदसमाकीर्णौ निमग्नौ जलमध्यतः ॥ ३४३ ॥ सविवेको विशालाक्ष. सुमित्रो राज्यमाप वै। अतर्कयत्तदा स्वांते सुषेणः संभ्रमादिदं ॥ ३४४ ॥ कौमारत्वेऽप्ययं राजा मे-संतापितवाँस्तरां। नुदिष्यत्यधिकं नूनं संप्रतीत्थं विचिंत्य सः। मुनिं नत्वा वने गत्वा प्रवव्राज पपाठ सः ॥ ३४५ ॥ (षट्पदी)

था और उन दोनोंके सुमित्र नामका पुत्र था। राजा मित्रके प्रधान मंत्रीका नाम मतिसागर था उसकी स्त्रीका नाम रूपिणी था और उससे सुषेण नामका पुत्र उत्पन्न था। राजपुत्र सुमित्र मंत्रिपुत्र सुषेणके साथ सदा क्रीड़ा करता था। सरलचित्त मंत्रिपुत्रको वह खेलते समय सदा संताप दिया करता था एवं जमीन पर डालकर खूब मुक्कोंकी मार मारता था ॥ ३३७—३४२ ॥ एक दिन वे दोनों बावड़ीपर जलक्रीड़ा करनेके लिये गये एवं कमलके पत्तोंसे मुंह ढांककर जलके भीतर पैठ गये ॥ ३४३ ॥ कदाचित् विवेकशाली और विशाल नेत्रोंके धारक राजपुत्र सुमित्रको राज्यकी प्राप्ति हो गई। उसे राजा जान मंत्रिपुत्र सुषेण मन ही मन भ्रमसे यह विचार करने लगा—

यह राजा सुमित्र जिससमय कुमार था उस समय भी मुझे मर्यादासे अधिक सन्ताप देता था। अब यह राजा होगया है इसलिये यह अब और भी संताप देगा, बस ऐसा मनमें पक्का विचार कर वह सीधा वनमें मुनिराजके पास चला गया। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया दिगंबरीदीक्षा धारण कर ली एवं सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगा ॥ ३४४—३४५ ॥ सुमित्र खिलाड़ी स्वभावका मनुष्य था सुषेणसे वह किसीप्रकारका द्वेष नहीं रखता था किंतु उसे बड़े प्रेमसे देखता

॥ ३३३ ॥ द्वाभ्यामदायि सद्धर्मवृद्धिः श्रीमुनिनाऽमुना । तदा राजा निजे चित्ते दुःखं चक्रे महोत्कटं ॥ ३३४ ॥ अहो मया कृतं नूनं पापं श्रीमुनिघातजं । तदाऽवोचद्यतीराजन् ! मा दुःखं कुरु चेतसि ॥ ३३५ ॥ आवश्यकं हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं ॥३३६॥ (षट्पदी) श्रुत्वा राजा तदाऽवोचत् चेलिनीं प्राणवल्लभां । हे रामेऽयं कथं वेद ममांतर्गतभावनां ॥३३७॥ अवीभणत्तदा राज्ञी का कथात्र [illegible]

भावना भाते रहते थे। जिससमय "तुम्हारी धर्मवृद्धिहो" यह मुनिराजने आशीर्वाद दिया-अपनी भक्त रानी और द्वेषी राजामें कुछ भी भेदभाव न रख दोनोंको समान रूपसे समझा। उससमय मुनिराजकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर महाराज श्रेणिक बड़े लज्जित हुए एवं अपने मनमें उग्र दुःख करने लगे ॥ ३३४ ॥ मुनिराजके शिष्ट वर्तावसे वे मन ही मन यह विचारने लगे हाय मैंने श्रीमुनिराजके मारनेका घोर पाप किया है, मुझे धिक्कार है। मुनिराज दिव्य ज्ञानी थे अपने ज्ञानसे उन्होंने राजाके मनकी बात जान ली इसलिये वे यही कहने लगे कि--राजन् ! तुम्हें अपने चित्तमें किसी प्रकारका दुःख नहीं करना चाहिये जो शुभ और अशुभ कर्म किया गया है उसका अच्छा बुरा फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥ ३३६ ॥ मुनिराजके ये अचरजभरे वचन सुन महाराज श्रेणिकने चेलिनीसे कहा--प्रिये ! मेरे मनके भीतरकी बात मुनिराजने कैसे पहिचान ली ? उत्तरमें चेलिनीने कहा--प्राणनाथ ! इस बातके लिये आप क्या अचरज कर रहे हैं मुनिराजने जो आपके मनका भाव पहिचान लिया यह तो बहुत ही तुच्छ बात है यदि आप पूछना चाहें तो अपने पूर्वभवोंका भी हाल पूछ सकते हैं। चेलिनीकी यह बात सुनकर महाराज श्रेणिकने अपने पूर्वभवोंकी पूछने की मुनिराजसे लालसा प्रगट की। मुनिराज भी अपनी गंभीर ध्वनिसे इस प्रकार कहने लगे—

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्र संबंधी आर्यखंडमें एक सूरकांत नामका देश है। इस सूरकांत देश में एक सूरपुर नामका नगर है उसका स्वामी राजा मित्र था। उसकी पटरानीका नाम भामिनी

तदोत्फणमहानागं मार्य कण्ठे ससर्ज सः ॥ ३२८ ॥ चतुर्थदिवसे राज्ञा मध्यरात्रे निवेदितं । चेलिन्याश्च तदा श्रुत्वा शोकं कृतवती च सा ॥ ३२६ ॥ अत्रोचन्महिषीं राजा मा त्वं दुःखय सुन्दरि ! । मंत्रवादी च पाखंडी गतो नूनं भविष्यति ॥ ३३० ॥ राज्ञी वभाण राजेंद्र यद्ययं मम सद्गुरुः । अभविष्यत्तदा नूनं नागमिष्यन्महायमी ॥ ३३१ ॥ इत्युक्त्वा चेलिनी राज्ञी नृपेण सहमागता । ध्यानारूढं मुनिं दृष्ट्वा हाहेति वचनं जगौ ॥ ३३२ ॥ संध्या चोत्तार्य वेगेन पिपीलीश्च द्विजिह्वकं । पश्चान्ननाम सद्भतया धर्मध्यानस्थितं मुनिं

क्रोध और भी अधिक भबक गया वे कहने लगे इस दुष्ट पाखंडीने मन्त्रोंसे कुत्तोंको कील डाला बस स्वयं वह मूर्ख राजा मुनिराजकी ओर झपटा और भयंकर महानागको मार कर उनके गलेमें छोड़ दिया ॥ ३२८ ॥ राजा श्रेणिक राजगृह नगर लोट आये । राजकाजकी विशेष झंझटसे तीन दिन तक तो वे रानी चेलिनोके महलमें न जा सके । चौथे दिन वहां गये और ठीक आधी-रातके समय मुनिराजके साथ जो दुर्व्यवहार उन्होंने किया था सारा रानी चेलनासे कह सुनाया धर्म भक्त रानी चेलनाने जिससमय भयंकर समाचार सुना वह एकदम कप गई और अनेक प्रकारसे शोक करने लगी । उसकी यह दुःखित अवस्था देख महराज श्रेणिकका भी हृदय पसी-जने लगा वे वार वार महाराणीसे यही कहने लगे--सुन्दरी ? तू रंचमात्र भी शोक न कर । वह मंत्रवादी पाखंडी साधु था । गलेसे सर्प फैंककर वह अवश्य कहीं चला गया होगा । महाराजके ये वचन सुन चेलिनीने कहा—राजन् ! यदि वह मेरा पवित्र गुरु होगा तो वह महामुनि वहांका वहीं विराजमान--होगा वहांसे कहीं भी न जा सकेगा । ऐसा कहकर वह रानी चेलिनी उसी समय राजाके साथ मुनिराज यशोधरके स्थानपर पहुंच । मुनिराज एकदम ध्यानारूढ़ थे--मुझे क्या कष्ट दिया जा रहा है इस बातका उन्हें रंचमात्र भी विचार न था । मुनिराजको ध्यानारूढ़ देख धर्म-भक्त चेलना हाय हाय कहने लगी । जल्दीसे पासमें जाकर सड़सीसे सर्प खींच कर नीचे डाल दिया । चिउंटी भी पोंछकर साफ करदी । पीछे धर्म्मध्यानमें स्थित उन मुनिको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ३२६—३३३ ॥ वे मुनिराज परम वीतरागी थे । सदा शत्रु और मित्रोंमें समानताकी

मौद्धाः सिद्धाः स्थिता मोक्षे किमेतैश्च कलेवरैः ॥ ३२१ ॥ श्रुत्वा राजा गतस्तस्या दातुं प्रत्युत्तरं स वै । असत्कत्वान्मनोऽभीष्टं कुरु प्रोक्त्वेति सद्वचः ॥ ३२२ ॥ अन्यदा मृगयार्थं स गतो राजा वनांतरे । यशोधरं मुनिं दृष्ट्वा पप्रच्छेति भटान्प्रति ॥ ३२३ ॥ कोऽयं नग्नो जटाधारी निश्चलो तेजसान्वितः । तैः प्रोक्तं च नराधीश ! । चेलिनीगुरुरित्यलं ॥ ३२४ ॥ तदा राजा महाकोपाच्चिंतयामास मानसे । राज्ञ्या चोपद्रवं नीता गुरवो मम सप्रति ॥ ३२५ ॥ पृच्छामि गौरवं वैरं मत्वेति पापसंचयं ॥ ३२६ ॥ (षट्पदी) कुर्कुरान् यमदंष्ट्राभान् शतपंचमितांस्तदा । मुमोच योगिनं गत्वा नेमुस्तत्पादपंकजं ॥ ३२७ ॥ कीलिताः शुनका नून मंत्रैः पाखंडिनाऽमुना ।

को धारण करना पडेगा और दुःख सहना होगा ॥ ३१८--३२१ ॥ महाराणी चेलनाके ये वचन सुन महाराज कुछ भी प्रत्युत्तर न दे सके किंतु असमर्थ हो यही कहने लगे बाबा ! तुझे सूझे सो कर. तुझसे कुछ कहना व्यर्थ है ॥ ३२२ ॥

एक दिन महाराज श्रेणिक अनेक सुभटोंके साथ शिकारके लिये गये। वनके मध्यभागमें उन्हें यशोधर नामके मुनिराज दीख पड़े। उन्हें देख अपने साथी सुभटोंसे उन्होंने पूछा—नग्न जटाधारी निश्चल और अपने शरीरकी प्रभामंडलसे व्याप्त यह कौन है ? उत्तरमें सुभटोंने कहा कृपानाथ ! यही तो महाराणी चेलिनीका गुरु है। राजा श्रेणिक तो महाराणी चेलिनीसे अपने गुरुओंका वदला लेनेके लिये लालायित थे ही। "यह चेलिनीका गुरु है" यह वात सुनते ही मारे क्रोधके उनकी आत्मा भवक उठी व मन ही मन विचारने लगे—रानीने अनेक प्रकारके उपद्रव कर इससमय मेरे गुरु व्याकुल कर रक्खे हैं। इससमय रानीसे गुरुओंका वदला लेनेका मुझे अवसर मिला है वस इसप्रकार पापोंका संचय करनेवाला विचारकर यमराजके समान राजा श्रेणिकने दाढ़ोंके धारक शीघ्र ही पांचसौ कुत्ते मुनिके ऊपर छोड़ दिये परंतु जैसे ही वे मुनिराजके पास पहुंचे उनके प्रभावसे कुत्तोंका क्रोध शांत हो गया एवं वे सरलस्वभावसे मुनिराजके चरणकमलों को नमस्कार करने लगे ॥ ३२३—३२७ ॥ कुत्तोंकी यह विचित्रदशा देखकर राजा श्रेणिकका

नागदत्तिका । पप्रच्छ कारणं मातः ? कथं रोदिषि संप्रति ॥ ३१६ ॥ सुतामवीवदन्माता त्वं मृगाक्षी घनस्तनी । भर्ता ते सर्परूपोऽतो रौमीति रात्रिपानने ! ॥३१७॥ सुतेत्यूचे च हे अंब ! मा दुःखं कुरु सर्वथा । रात्रौ भूत्वा नरः सोऽपि मुक्त्वा सर्पकलेवरं ॥३१८॥ रमतेऽमा मयाऽशुभ्रं प्रातर्गृह्णाति तद्वपुः । एतच्छ्रुत्वाऽवदन्माता प्रेषितव्योऽस्तु पुद्गलः ॥ ३१९ ॥ (युग्मं) एकदा समयं प्राप्य प्रेषितः पुद्गलस्तया । जनन्या ज्वालितः सोऽपि नरो भूत्वा स्थितस्तदा ॥ ३२० ॥ एवं ज्ञात्वा महाराजन्! मया च ज्वालितं गृहं ।

अछिदत्ता अपनी पुत्रीके दुःखका स्मरण कर रो रही थी कि उसपर नागदत्ताकी दृष्टि जा पडी एवं अपनी माताको रोती देखकर वह इसप्रकार कहने लगी—

मा ! विना कारण तू इससमय क्यों रो रही है ? उत्तरमें अछिदत्ताने कहा-पुत्री ! तू तो मृग लोचनी और कठिन स्तनोंसे शोभायमान परम सुन्दरी है और तुझे पति सर्पके अकारका मिला है। प्रियपुत्री ! मैं इसी दुःखका स्मरण कर रो रही हूं ॥ ३१६—३१७ ॥ माताके ये वचन सुन नागदत्ताने कहा-मा ! तू किसी प्रकारका दुःख मत करे, मेरा पति रातमें सर्पका शरीर छोड़कर मनुष्यका रूप धारण कर लेता है। समस्त रात्रि मनुष्य रूपसे ही मेरे साथ रमण क्रिया करता है किंतु जब प्रातः काल होता है उस समय पुनः सर्पका शरीर धारण कर लेता है और सारे दिन सर्पाकारसे रहता है। पुत्रीके ये वचन सुन अछिदत्ताने कहा यदि यह बात सत्य है तब वह सर्पका शरीर मेरे पास भेज देना जिससे मुझे भी निश्चय हो जाय। नागदत्ताने अपनी माकी बात मान ली। अवसर पाकर एक दिन वह सर्पका शरीर उसने अपनी माके पास भेज दिया। उसकी माने उसे अग्निमें जला दिया बस उस दिनसे वह नागदत्ताका पति मनुष्यरूपसे ही रह गया। प्रिय महाराज ! यही समझ कर मैंने बौद्ध सन्यासियोंके मठमें आग लगवा दी थी क्योंकि मुझे निश्चय हो गया था कि समस्त बौद्ध साधु तो सिद्ध होकर मोक्षमें जा बिराजे हैं। ये जो इनके कलेवर रह गये हैं वे व्यर्थ पड़े हैं। इनका जला देना ही अच्छा अन्यथा फिर उन्हें आकर इन कलेवरों

च यशस्विनी । यशस्विनी सुविख्याता तस्याभून्मृगलोचना ॥ ३१० ॥ श्रेष्ठी सागरदत्ताख्य आस्ते सगरवद्धनी । गंभीरो गुणवान् वीर्यो राजमान्यो विदांवरः ॥ ३११ ॥ भार्या वसुमती तस्य तन्मनःपद्मचंद्रिका । चंद्रवक्त्रा विचारज्ञा तन्वंगी कठिनस्तनी ॥ ३१२ ॥ तत्रैवास्ते धनी चान्यः श्रेष्ठी श्रेष्ठक्रियाग्रणीः । समुद्रदत्त इत्याख्योः धर्मकार्यविदांवरः । अछिद्दत्ताभिधा रामा वर्तते विमलानना ॥ ३१२ ॥ (षट्पदी) ताभ्यामेषा कृता नूनं प्रतिज्ञा-मम चेत्सुतः । तवैव पुत्रिका भावी भाविनी वा यदा तदा । तयोः पाणिग्रहो नूनं भविता नात्र संशयः ॥ ३१३ ॥ (षट्पदी) एवं गते कियत्काले सिंधुदत्तात्सुतोऽजनि । वसुमत्याः सुमित्राख्यः सर्परूपधरो हि सः ॥ ३१४ ॥ सुता समुद्रदत्ताच्च तस्या नागार्पणाऽभवत् । सा च रूपकलारंभा तयोः पाणिग्रहः कृतः ॥३१५॥ एकदा मातरं दृष्ट्वा रुदंतीं

जो कि सागरके समान अपरिमित धनका स्वामी था, गंभीर था, पराक्रमी था एवं राज्यमान्य और विद्वानोंमें श्रेष्ठ था ॥ ३१० ॥ उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था और वह सेठ सागरदत्तके मनरूपी (रात्रिविकासी) कमलके प्रसन्न करनेमें चांदनी सरीखी थी। चन्द्रमाके समान मुख वाली थी। विचारशील तन्वंगी और कठिन स्तनोंसे शोभायमान थी ॥ ३११ ॥ उसी नगरीमें एक सुभद्रदत्त नामका और भी सेठ निवास करता था जो कि उत्तम क्रियाओंके करनेमें प्रधान था और धर्मकार्योंके करनेमें अत्यंत बुद्धिमान समझा जाता था। उसकी स्त्रीका नाम अछिदत्ता था जो कि निर्मल मुखसे शोभायमान थी ॥ ३१२ ॥ दोनों सेठोंने आपसमें प्रतिज्ञा करली थी कि यदि मेरे पुत्र होगा और तुम्हारे पुत्री होगी अथवा मेरे पुत्री होगी और तुम्हारे पुत्र होगा तो उन दोनों का आपसमें विवाह कर दिया जायगा इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रतिज्ञाके बाद बहुत कालके वीत जानेपर सेठ सागरदत्तके सेठानी सुमित्रासे एक पुत्र हुआ जिसका नाम सुमित्र रक्खा गया और उसका स्वरूप सर्प सरीखा था। तथा सेठ समुद्रदत्तके सेठानी अछिदत्तासे उत्पन्न एक पुत्री हुई जो कि रूप और कलाकी खानि थी और नागदत्ता उसका नाम था। प्रतिज्ञाके अनुसार उन दोनोंका विवाह हो गया और वे अपने भाग्यानुसार रहने लगे ॥ ३१३—३१५ ॥ नागदत्ताकी मा

३०४ ॥ राज्ञया कृतं नृपः श्रुत्वारीरपञ्चात्रिपाननां । इदं कर्म न कर्तव्यं त्वया निंद्यं च दुःखदं ॥ ३०५ ॥ चेरवं धर्मवती जैनी कृपापालन-पडिता । ज्वालयेस्त्वं कथं जीवान् करभोरु ! विचारय ॥ ३०६ ॥ तदा स्मित्वाऽवदद्राज्ञी शृणु गंभीरशासन ! मयेत्यवगतं मोक्षं गताः संति प्रबोधकाः ॥ ३०७ ॥ कलेवरात् यदेष्यंति तदा संसारवर्तिनः । संसारे वर्तते दुःखं यतो ज्वालयितं गृहं ॥३०८॥ (युग्मं) एतस्योपरि वृत्तांतं गदामि शृणु भूपते ! । वत्सदेशेऽस्ति विख्याता कौशांबी नगरी शुभा ॥ ३०९ ॥ वसुपालोऽस्ति तद्राजा भामिनी

आगको देखते ही वे समस्त साधु मठ छोड़कर एकदम भाग गये । रानी चेलिनीके इस कृत्यका पता महाराज श्रेणिकको लग गया वे शीघ्र रानीके पास आये और इसप्रकार उससे कहने लगे—

रानी ! साधुओंके मठमें जो तूने आग लगाई है यह बड़ा ही निंदनीक और दुःखदायी कार्य किया है ऐसा निंदनीक और दुःखदायी कार्य तुझे नहीं करना चाहिये । तू तो जैनधर्मकी पालन करने वाली और दया करनेमें पंडिता समझी जाती है जरा बता तो सही तूने मठको जलाकर जीवोंके विध्वंस करनेका कार्य कैसे कर डाला ? महाराजके ये वचन सुन मुस्कराकर रानी चेलिनीने कहा

नरनायक प्राणनाथ ! एक मनुष्यके कहे अनुसार मैंने यह समझा था कि ये समस्त साधुगण मोक्षमें चले गए हैं । तथा यह निश्चित बात है कि जबतक शरीरोंके अन्दर लालसा रहती है तब तक संसारमें घूमना पड़ता है और संसारमें अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं । उनका यह समस्त दुःख नष्ट हो जाय इस आशासे मैंने उनके मठमें आग लगवा दी थी । मैं इसी विषय को लेकर एक कथा सुनाती हूं आप ध्यान पूर्वक सुनें—

वत्सदेशमें एक कौशांबी नामकी नगरी है जो कि पृथिवीपर प्रसिद्ध और शुभ है । किसी समय उसका पालन करने वाला राजा वसुपाल था और उसकी रानीका नाम यशस्विनी था जिस की कि कीर्त्ति अनुपम गुणोंसे सर्वत्र व्याप्त थी एवं वह संसारमें प्रसिद्ध और हरिणीके समान मनोहर नेत्रवाली थी ॥ ३०२—३०६ ॥ उस नगरीमें एक सागरदत्त नामका सेठ भी रहता था

तदा निर्गत्य बौद्धौघानुपानत्सदीया तथा। क्षिप्ता नीरनेऽथ भुज्ये च ततो वांतं हठादिति ॥ ३०१ ॥ बौद्धसंघात्ततः श्रुत्वा राज्ञोपालंभिता च सा। श्रृणु राज्ञि ! महाधर्मादन्यो धर्मो न विद्यते ॥ ३०२॥ ततो जगाद सा भामा परीक्ष्य ध्यानसंस्थितान्। क्षणिकत्वाद्गुरून् बौद्धान् करिष्ये तावकं वृषं ॥ ३०३ ॥ अन्यदा सा गता तेषां ध्यानकाले कलान्विता। सख्या संज्वालयामास तद्गृहं तैः पलायितं ॥

कहा; कि बौद्धगुरु तो सर्वज्ञ हैं वे अपने दिव्य ज्ञानसे समझें कि उनके जूते कहां है? रानीके ये वचन सुन बौद्धगुरु अवाक् रह गये। झक मार उन्हें यही कहना पड़ा कि हमारा ज्ञान ऐसा नहीं जो यह बात जान सके। थोड़ी देर बाद निकृष्ट छाछ खानेके कारण उन्हें वमि हो गई। वमिमें जूतोंके छिलके निकले इसलिये वे बड़े लज्जित हुए और चुप चाप अपने मठोंको चले गये॥३०१॥ रानीने बौद्धगुरुओंका जो अपमान किया था सारा महाराजसे जाकर सुनाया गया। अपने गुरुओंकी यह अवज्ञा सुन उन्हें भी बड़ा क्रोध आया वे रानीके पास आये और उलहनोंके साथ उल्टी सीधी सुना कर यही कहने लगे देखो रानी! बौद्धधर्महो महाधर्म है उससे भिन्न अन्य कोई भी संसारके अन्दर उत्तम धर्म नहीं। तुम्हें उसकी इसरूपसे अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। महाराजको कुपित देख रानी विशेष कुछ न कह कर यही कहने लगी—महाराज! यदि आप बौद्धधर्मको ही सर्व श्रेष्ठ धर्म मानते हैं तो अच्छी बात है 'क्षणिक धर्मके अनुयायी बौद्ध गुरु जिससमय ध्यानमें लीन होंगे उस समय मैं उनकी परीक्षाकर आपका धर्म धारण करूंगी आप विश्वास रक्खें।

एक दिन जब कि समस्त बौद्धसाधु ध्यानमें लीन थे उस समय रानी चेलनी उनके मठमें गई। पासमें खड़े रहने वाले किसी मनुष्यसे यह सुनकर कि "यद्यपि इन साधुओंके शरीर यहां पड़े दीखते हैं परंतु इनकी आत्मा ध्यानके योगसे इससमय सिद्धालयमें विराजमान है" उनकी असली परीक्षा करनेके लिये रानीने सखीके हाथसे मठमें आग लगवादी। ढोंग कबतक चल सकता है?

भूपती राज्ञि ! कुरु पूजादिकं सदा । दुःखं मुक्त्वोन्मनी भूत्वा कुरु धर्मं यथारुचि ॥ २६७ ॥ श्रेणिकाद्बौद्धमंत्री हि श्रुत्वा राज्ञ्या-ग्रहं तदा । प्रतिबोधनहेतुत्वादागमच्चेलिनीगृहे ॥ २६८ ॥ प्रोवाच शृणु भो बाले ! जैनाः कुगुरवो मताः । नग्नाः पशवोऽपि स्यु-र्वयं ज्ञानाब्धिपारगाः ॥ २६६ ॥ तदा बभाण राज्ञी तं तावको धर्म ईदृशः । चेद्भवेद्भोजयित्वाऽहं गृहीष्यामि न संशयः ॥ १०० ॥

कुछ भी न कह कर यही कहा प्रियरानी ! तुम इच्छानुसार अपने देव जिनेंद्रकी पूजा आदि करो दुःख छोड़ो एवं जिसरूपसे तुम्हें रुचे एकाग्रचित्त हो अपने धर्मका आराधन करो ॥ २६७ ॥ राजा श्रेणिकसे बौद्धगुरुओंने सुना कि महारानी चेलनीको जैनधर्मके अन्दर बड़ा आग्रह है इस लिये वे चेलनीके महलमें उसे समझानेके लिये आये और अपनी गुरुता प्रगट करते हुए यह कहने लगे--

अरे मूर्ख लड़की ! तू जो जैन गुरुओंकी प्रशंसा करती है यह तेरा अज्ञान है । जैनियोंके गुरु कुगुरु हैं । यदि उन्हें नग्न मानकर ही गुरु माना जाय तो नग्न तो पशु भी हैं उन्हें भी गुरु मानना चाहिये । देख हमलोग ज्ञानरूपी समुद्रकी पारपर पहुँचे हुए हैं--परम ज्ञानी हैं इसलिये हमको ही तुझे गुरु समझना चाहिये । बौद्धगुरुओंके वचन सुन बुद्धिमती रानी चेलनीने विशेष विवाद करना उचित नहीं समझा बस यही उत्तर दिया कि यदि आपका धर्म इतना उत्तम है तो मैं आप लोगोंको भोजन कराकर आपका धर्म ग्रहण करूंगी इस बातमें जरा भी संदेह नहीं ॥ २६६—३०० ॥ दूसरे दिन रानीने बौद्धसाधुओंको निमन्त्रण दे भोजनके लिये बुलाया । उन्हें भोजनके लिये बिठा दिया। एक एक जूता उनका उठवा मगाया । खूब पीसकर उसे निकृष्ट छाछ में डाल मसाला मिला दिया और थोड़ा थोड़ा कर सबोंको परोस दिया गया । वे भी कोई स्वादिष्ट चीज जान खा गये । जब बाहिर आकर अपने मठको जाने लगे तो जूते खोजने लगे । गुरुओंके जूतोंकी चोरीका राजमहलमें हुल्लड़ मच गया । रानी चेलनीने भी वह हुल्लड़ सुना । उसने यही

श्रुत्वा रराण राजेंद्रः शृणु सर्वज्ञे ! मद्वचः । जाठराग्निर्महाधर्मों यस्माद्राज्यं सुखं धनं ॥ २६३ ॥ प्रोवाच चेलिनी दक्षा जिनः स्याद्वादनायकः । रागद्वेषविनिर्मुक्तो ध्यानलीनो निरंजनः ॥ २६४ ॥ केवलज्ञानसर्वज्ञः ततुं तारयितुं क्षमः । तत्समो न भवेदन्यो देवः शौद्धोधनादिकः ॥ २६५ ॥ निर्ग्रंथगुरुभिस्तुल्या नापरे गुरवो मताः । संस्थाप्य सुमतं बौद्धमतं निर्भर्त्स्य सा स्थिता ॥ २६६ ॥ प्रोवाच

उसकी स्त्री रोहिणी विधवा ही मानी जाती है अर्थात् परमतमें राहुको केवल शिरस्वरूप ही माना है इसलिये रोहिणीके लिये उसका रहना न रहना एकसा है उसीप्रकार विना धर्मके मेरा महाराणीपद भी व्यर्थ है। तथा जो शूद्र पतित हैं उनकेलिये वेद पढ़नेका अधिकार नहीं यदि वे पढ़ें तो उनका पढ़ना निकृष्ट माना जाता है उसीप्रकार मैं पवित्र वेदस्वरूप हूं यह घर पतित शूद्रस्वरूप है इसलिये मेरा यहां रहना अयुक्त है अतः राजगृहमें आना मेरा बड़ा दुःखदायी हुआ। महाराणी चेलिनीके ऐसे वचन सुन उत्तरमें महाराजने कहा—

हिरणीके समान नेत्रवाली महाराणी। जिसतरह तुम जैनधर्मको ही धर्म समझ रही हो उस प्रकार मेरा भी यह दृढ़ सिद्धांत है कि संसारमें बौद्धधर्म ही महाधर्म है। उससे बढ़कर कोई धर्म नहीं क्योंकि राज्य सुख धन जितने भी उत्तम पदार्थ हैं इस बौद्धधर्मकी ही कृपासे प्राप्त होते हैं। महाराणी चेलिनीको जैनधर्मका परिपूर्ण श्रद्धान था महाराजको बात उसे सहन न हो सकी इस लिये उसने शीघ्र ही उत्तर दिया—राजन् ! भगवान जिनेंद्र स्याद्वाद-अनेकांत वादके स्वामी हैं। राग द्वेषसे रहित हैं। ध्यानमें लीन हैं। केवल ज्ञानसे युक्त होनेसे सर्वज्ञ हैं। स्वयं तरनेवाले और दूसरोंको भी तारनेवाले हैं। भगवान जिनेंद्रके समान बौद्धधर्मके शौद्धोधन आदि देव नहीं हो सकते ॥ २६०—२६५ ॥ तथा जैनधर्मके अन्दर परिग्रहरहित निर्ग्रंथ गुरु माने जाते हैं। निर्ग्रंथ गुरुओंके समान संसारमें अन्य गुरु नहीं हो सकते बस इसप्रकार अपने मत-जैनमतका स्थापन कर और बौद्धमतका खंडनकर महाराणी चेलनी शांत रह गई ॥ २६६ ॥ महाराज श्रेणिकने भी

जिनमत्यभिधागारे चोपयम्य सुखं स्थितः ॥ २८७ ॥ अथैकदा नृपस्यैवं दृष्ट्वाऽऽचारविवर्जितं । धर्मं बौद्धमयं चित्ते रुरोद गद्गदस्वरा ॥ २८८ ॥ पंडितैरभयैर्नूनं वंचिता मारमर्दिता । किंकरोम्यधुना धर्माद्विना व्यर्थं हि जीवितं ॥ २८९॥ नो भुनक्ति न वक्ति सा कृशीभूत-मुपागता । दृष्ट्वा पप्रच्छ राजेंद्रः कस्मात्त्वं दुर्बलासि भो ॥ २९० ॥ चेलिनी प्राह हे नाथ ! कुस्थाने पतितास्म्यहं । जैनधर्मं विना-न्यो धर्मो नैवास्ति भूतले ॥ २९१ ॥ त्वद्गृहेऽहं समायाता गंगांभश्च श्वचर्मणि । मूर्निश्च वैधवी राहौ पतञ्छूद्रेषु सुश्रुतिः ॥ २९२ ॥

चेलिनीके साथ कुमार अभयका आना सुन महाराज श्रेणिक अनेक सामंतोंसे वेष्टित हो उनके सन्मुख आये। जिनमती नामके मंदिरमें चेलिनीके साथ उनका पाणिग्रहण हो गया जिससे वे सुख पूर्वक रहने लगे ॥ २८७ ॥

एक दिन महाराणी चेलिनी गृहस्थोंके आचारसे रहित बौद्धधर्मको आचरण करते महाराज श्रेणिकको देखकर चित्तमें बड़ी दुःखित हुई एवं गद्गद स्वरसे इसप्रकार रोने लगी—हा काम की व्यथासे पीडित मुझे चतुर अभय कुमारने ठग लिया। बातोंमें फुसलाकर विधर्मी राजा के साथ मेरा विवाह करा दिया। धर्मकी यहां कुछ भी मर्यादा नहीं सूझ पड़ती इसलिये मैं इस समय क्या करूं? क्योंकि विना धर्मके जीवन विफल है ॥ २८८—२८९ ॥ बस अत्यंत दुःखित हो उसने खाना बोलना सब छोड़ दिया जिससे वह एकदम दूर्बल हो गई। उसकी ऐसी दुःख-दायी अवस्था देख महाराज श्रेणिकने पूछा-- प्रिये! क्या कारण है जो तुम दिनों दिन दुर्बल होती चली जाती हो? उत्तरमें चेलनीने कहा—प्राणनाथ! मेरा विवाह तो हुआ परंतु मैं निकृष्ट स्थानमें लाकर डाल दी गई क्योंकि सिवाय जैनधर्मके संसारमें अन्य कोई भी धर्म नहीं सब धर्माभास हैं। राजन्! जिसप्रकार महानिकृष्ट कुत्तेके चमड़ेमें गंगाजल सरीखा पवित्र जल भर दिया जाता है, कौन पदार्थ कैसा है? तनिक भी विचार नहीं किया जाता उसीप्रकार कुत्तेके चाम के समान आपके घरमें मैं गंगाजल सरीखी आगई हूं तथा जिसप्रकार राहुके विद्यमान रहने भी

पचितीं कर्तुं खिन्नस्तावद्विलोकने। तिस्रः कन्याः समायाताः पप्रच्छुस्तं विशांवरं ॥ २८२॥ भो मकरध्वजाकाराश्चागतिर्भवतां कुतः। राजगृहात्समायातास्तत्र श्रेणिकभूमिपः ॥ २८३ ॥ कीदृशो भूपतिः सोऽस्ति तदा पट्टं प्रसार्य सः। अदर्शयत्तदा दृष्ट्वा कन्यकाः कीलिता इव ॥ २८४ ॥ प्रोचुर्भो जैनसद्धर्मश्चेदृक्षो हि वरः कुतः। तदीयमिंगितं मत्वा सुरंगायां मिषं व्यधात् ॥ २८५ ॥ हारमौद्रिकमेषेण ज्येष्ठा वै चंदना गता। तामादाय तदा विद्धां चेलनां स्वपुरं ययौ ॥ २८६ ॥ सन्मुखं श्रेणिको भूपो गत्वा सामंतसंयुतः।

पूजा कर रहे थे। राज महलके समीप होनेसे बराबर शब्द रणवासतक पहुंचता था। पूजाकी ध्वनि सुन ज्येष्ठा चन्दना और चेलनी तीन कन्यायें चलीं आईं और कुमार अभयसे इसप्रकार पूछने लगीं—

कामदेवके समान आकृतिके धारक महानुभाव। आपका यहांपर आना किस देशसे हुआ है? उत्तरमें कुमारने कहा-हम लोग राजगृह नगरसे आये हुए हैं जहांपर कि महाराज श्रेणिक न्यायपूर्वक प्रजाका अच्छीतरह पालन करते हैं। कन्याओंने फिर पूछा-महाराज श्रेणिक कैसे राजा हैं? कुमार अभयने उनके सामने महाराज श्रेणिकका चित्रपट फैला दिया एवं स्पष्टरूपसे उनका स्वरूप दिखा दिया जिसे देख तीनों कन्यायें इसरूपसे निश्चल खड़ी रहगईं मानों कील दी हैं एवं इसप्रकार खेद प्रगट करतीं बोलीं—हे परम जिनधर्मी महानुभाव! हमें इसप्रकारके उत्तम वरकी प्राप्ति कहां हो सकती है। बुद्धिमान कुमार अभय उनके मनका भाव पहिचान गये एवं "मैं महाराज श्रेणिकसे मिला सकता हूं" ऐसा वायदा कर पहिले ही से अपने मकानसे राज महलतक जो सुरंग खुदवा रक्खी थी उससे आनेका इशारा कर दिया। रूपकी लोलुपी वे कन्यायें सुरंगमें होकर अभय कुमारके मकानकी ओर चलदीं परंतु आते आते ज्येष्ठा और चन्दनाको कुछ संदेह होगया इसलिये ज्येष्ठा हार लेनेके बहाने और चन्दना अपनी मुद्री लेनेके बहानेसे पीछे लौटगईं। अकेली विचारी चेलना रह गई। कुमार अभयने उसे अपनी ओर खींच लिया एवं उसे साथ लेकर राजगृह

र्यथा वै रोचते तुभ्यं करिष्यामि तथाहकं ॥ २७५ ॥ श्रुत्वाऽभयवचो राजा रराणेति सुतं प्रति । हे सन् ! देहज ? सोऽप्यस्ति जैन-
धर्मेण रंजितः ॥ २७६ । अतो दास्यति नो मह्यं बौद्धधर्माय केवलं । ततोऽब्रवीत्सुतो धीरः करिष्येऽहमुपायकं ॥ २७७ ॥ सार्थवाहा-
धिपो भूत्वा जैनधर्मधुरंधरः । जैनलोकैः समं शुभ्रो विशालायां ययौ मिपात् ॥ २७८ ॥ सरत्नं प्राभृतं नीत्वा मिलितं चेटकस्य
सः । सन्मान्य चेटको भूपो व्याजहार गिरं वरं ॥ २७६ ॥ स्थीयतामत्र पुर्यां भो भवद्भिः परमार्थिभिः । अस्माकं वल्लभा जैना
मित्राणि धनबांधवाः ॥ २८० ॥ अत्याग्रहं नृपस्यैव मत्वा मंदिरसंन्नधौ । गृहं संप्रार्थयामास तत्र सस्थितवांस्तदा ॥ २८१ ॥ एकदा

रुचेगी मैं उसे पूरी करदूंगा । कुमार अभयके ये वचन सुन पुनः महाराजने कहा-प्यारे पुत्र ! तुम अवश्य बुद्धिमान हो और हरएक कार्य कर सकते हो परंतु तुम्हारे लिये यह कार्य करना कठिन होगा क्योंकि राजा चेटक जैनधर्मका भक्त है और मैं बौद्ध धर्मका सेवक हूं इसलिये विधर्मी जान मुझे वह अपनी कन्या न दे सकेगा । धीर वीर कुमारने उत्तर दिया आप चिंता न कीजिये जिस रूपसे बनेगा मैं चेलनीकी प्राप्तिका ठीक उपाय करूंगा ॥२७३—२७७॥ बस परम जिनधर्मी उस कुमारने क्या काम किया कि अनेक व्यापारियोंका स्वामी बन और कुछ जैनलोगोंको साथ लेकर छलसे विशाला पुरीमें जा पहुंचा । रत्नमयी भैंट लेकर वह राजा चेटकसे मिला । राजा चेटकने भी कुमारका पूर्ण सन्मान किया एवं इसप्रकार मनोहर वचनोंमें बात चीत की—

आप महानुभाव मोक्षप्राप्तिके अभिलाषी धर्मात्मा हैं । मेरी इस पुरीमें आप ठहरें क्योंकि जो महानुभाव जैनी हैं । जैनधर्मका पालन करते हैं वे हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं । मित्र हैं और धन एवं बांधव भी वे ही हैं । कुमार अभय अत्यंत चतुर व्यक्ति थे राजा चेटकका जब उन्होंने यह आग्रह देखा तो उन्होंने राजमहलके पास ही ठहरनेके लिये मकान लेनेकी प्रार्थना की । राजा चेटकने धर्मात्मा जान उनकी प्रार्थना स्वीकार करली एवं वे सानंद वहां ठहर गये ॥२७८-२८१॥ एक दिन कुमार अभय अपने साथियोंके साथ उत्साह पूर्वक बड़े उच्चस्वरसे भगवान जिनेंद्रकी

विशालायां चेटकस्य सुभद्रिका । तत्पुत्री चेलिनी नाम्ना निम्ननाभिः कृशोदरी । २७० । प्रौढोन्नतनितंवा च विम्बोष्ठी माररंजिनी । विशालहृदया चन्द्रवक्त्रा वचनभारती ॥ २७१ ॥ इत्यादिवर्णनोपेतां श्रुत्वा श्रेणिकभूपतिः । चिंतयामास चित्ते स्वे चित्रं शल्यायते नृणां ॥ २७२ ॥ समायातस्तदा तत्र सभायामभयाह्वयः । दृष्ट्वा तातं सदुःखं च तन्निरूपय वेगतः ॥ २७३ ॥ मनोगतं तदा राज्ञा प्रोक्तं च दुस्तरं वचः । श्रुत्वाभयकुमारो हि प्रावोचन्नरनायकं ॥ २७४ ॥ शृणु नाथ ! कृपाधार ! मा चिंतां कुरु सर्वथा ।

होनेपर उन्होंने भरतसे पूछा—कहो भाई ! चित्रमें अङ्कित यह मनोहर रूप किसका है ? महाराजको अपने अनुकूल समझ भरतने बड़े आदरसे कहा--राजन् ! आप सुनिये मैं समस्त वृत्तांत कहता हूं— 22689

सिंधुदेशकी विशाला नगरीके स्वामी राजा चेटक हैं उनकी पटरानीका नाम सुभद्रा है उससे उत्पन्न एक चेलिनी नामकी कन्या है जो कि गंभीर नाभिकी धारक है । कृशोदरी है । प्रौढ़ और उन्नत नितंबवाली है। विंबाफलके समान ओष्ठवाली, कामदेवके आनंदकी भूमि, विशाल हृदयको धारण करनेवाली चन्द्रमुखी एवं साक्षात् सरस्वती सरीखी है उसीका चित्र यह आपके सामने विद्यमान है । चित्रकार भरतसे इस दिव्य वर्णन युक्त कन्याको सुनकर महाराज श्रेणिक मन ही मन गहरी चिंतामें लीन हो गये । ठीक ही है चित्र भी मनुष्योंको शल्य (कील) के समान दुःख देता है अर्थात् कीलके गढ़ जानेपर जिसप्रकार गहरी वेदनाका अनुभव होता है उसीप्रकार चित्र भी हृदयमें चुभ जानेपर विशेष दुःख भुगाता है ॥ २६९—२७२ ॥ जिस समय महाराज चिंतामें लीन थे उसी समय कुमार अभय राज सभामें आये एवं अपने पूज्य पिता महाराजको दुःखित और चिंतित देख जल्दी उस दुःख और चिंताका कारण पूछने लगे—महाराजके मनमें जो बात थी उन्होंने कह दी एवं यह भी कहा कि यह बात होनी कठिन है । धीर वीर कुमार अभयने नरोत्तम महाराजको उत्तर दिया--दयालु पिता ! तुम्हें तनिक भी चिंता न करनी चाहिये जो बात आपको

सुलक्षणं । दर्शयामास भूपाय दृष्ट्वा भूपो ननंद तत् ॥ २६३ ॥ अन्यदा कन्यकास्तिस्रः संप्राप्य चित्रकारकं । विचित्रत्वाद्धिहस्यैव प्राहुरेवं वचोवरं ॥ २६४ ॥ भो भो त्वं चेलिनीरूपं नग्नं चित्रय शीघ्रतः । चित्रितं तेन सद्रूपं गुह्यस्थैस्तिलकैर्युतं ॥ २६५ ॥ कर्णेजपं केनापि प्रोक्तं चेटकसन्निधौ । देवानामपि दुर्लक्ष्यं गुप्तं जानात्ययं कुतः ॥ २६६ ॥ श्रुत्वा महेर्ष्यया राजा चुकाप भ्रमसंगतः । तदा राज्ञः प्रकोपेण नष्टोऽसौ चित्रकृद्भयात् ॥ २६७ ॥ गत्वा राजगृहे रम्येऽदर्शयत् श्रेणिकाय तत् । दृष्ट्वा रूपं तदा राजा चित्रार्पित इवाभवत् ॥ २६८ ॥ स्वस्थो भूत्वा पप्रच्छेति कस्य रूपमिदं वद । अनुकूलं नृपं ज्ञात्वाऽचीकथत् शृणु चादरात् ॥ २६९ ॥ सिंधुदेशे

जो कि चित्रकलाके गुणोंसे युक्त थी तथा महाराज चेटकको दिखाई जिसे देख राजा चेटक भरत की चित्रकलाकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ २६१—२६३ ॥ किसी दिन ज्येष्ठा आदि तीनों कन्याएं मिलकर चित्रकार भरतके पास गईं एवं एक विचित्रप्रकारकी हंसी हँसकर इसप्रकार उससे कहने लगीं—

चित्रकार ! हम जब तुम्हारी चित्रकलादिकी निपुणता समझें जब तुम कुमारी चेलनीका नग्नरूप शीघ्र चित्रित कर दो। चित्रकार भरतको यह बात कोई कठिन न थी, देखते देखते उसने चित्र बनाकर तयार कर दिया एवं महाविद्याके प्रभावसे जो भी चेलनीके गुह्यस्थानोंमें तिल आदि चिह्न थे सब उस चित्रमें अङ्कित करदिये ॥ २६४—२६५ ॥ संसारमें चुगलखोरोंकी कमी नहीं चेलनीका वह नग्नचित्र देखकर एक चुगुलखोर शीघ्र राजा चेटकके पास पहुंचा और यह कहने लगा—राजन् ! चेलनीके गुह्य स्थानोंके चिह्नोंको देव भी नहीं देख सकते उन्हें यह आपका चित्रकार कैसे जानता है ! यह बड़ी विचित्र बात है ॥ २६६ ॥ चुगुलखोरकी यह बात सुन राजा चेटकको भी भरतपर संदेह हो गया इसलिये वह विनाही विचारे प्रबल ईर्षासे कुपित हो गया । राजाके क्रोधका पता चित्रकार भरतको भी लग गया । मारे भयके वह एकदम कपगया और शीघ्र ही राजगृह नगरके लिये रवाना हो गया । राजगृहमें जाकर कन्या चेलिनीका चित्र महाराज श्रेणिक को दिखाया जिसे देख वे चित्राम सरीखे निश्चल हो गये ॥ २६७--२६८ ॥ कुछ देर वाद स्वस्थ

यतः ॥ २५७ ॥ भरतो देशमध्ये हि प्रसिद्धीभूयमागतः । चित्रसत्कलया लोकान् रंजयन् सदने स्थितः ॥ २५८ ॥ सद्युक्ते सिंधुदेशे वै विशाला नगरी मता । चटकाख्यः पतिस्तस्य सुभद्रा महिषी मता ॥ २५९ ॥ तस्यैव सत्सत्पुन्यो विश्रोष्ठ्यः स्मरवल्लभाः । यासां मध्ये प्रियादत्ता सिद्धार्थाय सुभूभुजे ॥ २६० ॥ द्वितीया च पिनाकाय तृतीया दशरथाय च । प्रभावती चतुर्थी तु महानुदयिने तथा ॥ २६१ ॥ कुमारिका हि विद्यन्ते तिस्रः कन्याः प्रभास्वराः । एकदा तत्र चायातश्चित्रकृद्भरताभिधः ॥ २६२ ॥ रूपं यत्सप्तपुत्रीणां पट्टे कृत्वा

प्रिय वत्स ! जिस वरके मागनेके लिये तुम्हारी रुचि हो उस वरको मागो मैं तुमसे प्रसन्न हूं। उत्तरमें भरतने कहा महामाता ! मुझे इसप्रकारकी चित्र शुद्धि प्रदान करिये जिस चित्रशुद्धिकी कृपासे विना देखे हुए पदार्थको भी पटपर अङ्कित कर सकूं। तथास्तु, कह कर महाविद्या सिद्धि हो गई। उस महाविद्याके प्रभावसे चित्रकार भरतकी सारे देशमें ख्याति हो गई एवं अपनी चित्रकलासे समस्त लोकको आनंदित करता हुआ वह सानंद अपने घर रहने लगा ॥ २५५—२५८ ॥

अनेक सज्जनोंसे व्याप्त सिंधु देशमें एक विशाला नामकी नगरी है। उस समय उसका पालन करनेवाला राजा चेटक था और उसकी मुख्य पटरानी सुभद्रा थी। महाराणी सुभद्रासे उत्पन्न सात पुत्रियां थीं जो कि बिंबाफलके समान लाल ओठोंकी धारक थीं और कामदेवकी परम प्यारी थीं। सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियादत्ता था और उसका कुण्डलपुरके स्वामी नाथवंशीय राजा सिद्धार्थके साथ विवाह हुआ था ॥ २५९—२६० ॥ दूसरी कन्या मृगावतीका विवाह वत्स देशके कौशांबीपुरके स्वामी महाराज पिनाकके साथ हुआ था। तीसरी कन्या वसुप्रभा थी और उसका विवाह दशार्ण देशके हेरकच्छपुरके स्वामी राजा दशरथके साथ हुआ था तथा चतुर्थ कन्या प्रभावतीका विवाह कच्छदेशके रोरुकपुरके स्वामी महाराज महानुदयीके साथ हुआ था। बाकी ज्येष्ठा चन्दना और चेलना ये तीन कन्या अभीतक अविवाहित थीं। प्रसिद्ध चित्रकार भरत घूमता २ एक दिन विशाला नगरीमें आ पहुंचा। एक पट्टपर उसने सातो कन्याओंकी तसवीर अंकित की

न्यायार्थमंजसा ॥ २५० ॥ मनःप्रसन्नतां कृत्वा जगादाभयपंडितः । उद्दालकस्य रंध्रे यो द्वयोर्मध्ये ,सुनिःसरेत् ॥ २५१ ॥ स स्याद्भद्रा पतिर्नूनं निर्गतं तं व्यताड़यत् ॥ २५२ ॥ (षट्पदी) पूर्वस्मै हलिने दत्वा भद्रामभयपंडितः । तद्दिनादिप्रसिद्धोऽभूत् न्यायी सप्रतिभः प्रदः ॥ २५३ ॥ श्रेणिकोक्तं समाकर्ण्य कूपांतपतितां शुभां । निष्कास्य मुद्रिकां बुद्धया प्रसिद्धोऽभूद्विशेषतः ॥ २५४ ॥ अथैकदाऽमरावत्यां चित्रकृद्भरताभिध । पद्मावतीं महाविद्यां साधयामास तद्वने ॥ २५५ ॥ प्रसिद्धीभूयमागत्य प्रावोचत्फणिशेखरा । याचस्व त्वं वरं वत्स ! मनोऽभीष्टं यथारुचि ॥ २५६ ॥ श्रुत्वाऽवोचन्महामातर्देहि मे चित्रशुद्धतां । यया (थ) शुद्धया भवेत्सिद्धिर्दृष्टं लिख्यते

समान रूपके धारक थे इसलिये दोनोंका आपसमें झगड़ा होने लगा इसलिये अपना न्याय कराने के लिये चलते चलते वे राजगृह नगर आ गये ॥ २४८ ॥—२५० ॥ सब झगड़ोंका निबटेरा प्रायः कुमार अभय ही करते थे जिससमय वे दोनों कुमारके पास आये, उनको प्रसन्नकर कुमारने कहा देखो भाई । तुम दोनोंमेंसे जो इस तूंबीके छेदमें होकर बाहर निकल जायगा वही भद्राका पति समझा जायगा । यह काम करना असली बलभद्रकी शक्तिके तो बाहिर था कुमारकी बात सुनते ही नकली बलभद्र वसन्त देखते देखते छेदमें घुसकर बाहिर निकल गया बस कुमारने उसे ही अपराधी समझ पकड़ लिया और दण्ड दिया ॥ २५१—२५२ ॥ कुमार अभयने अपनी बुद्धिकी चतुरतासे असली बलभद्रको भद्रा दे दी । इस न्यायके बाद कुमार अभय,अत्यंत बुद्धिमान प्रसिद्ध न्यायी माने गये ॥ २५३ ॥ किसी दिन जलरहित कूवेमें एक अङ्गूठी गिर गई महाराज श्रेणिकने बिना किसी लागके कुमारको निकालनेके लिये आज्ञा दी कुमारने अपनी बुद्धिमानीसे बिना किसी लागके उसे बाहिर निकाल दिया इसलिये कुमारकी उस दिनसे और भी विशेष प्रसिद्धि हो गई॥२५४॥

अमरावतीमें उस समय एक भरत नामका चित्रकार भी रहता था एक दिन जंगलमें जाकर उसने महाविद्या सिद्ध करनेके लिये पद्मावती देवीकी आराधना की । जिससमय वह विद्या सिद्ध हो गई तो नागोंका मुकुट धारणकर वह प्रत्यक्ष हुई और स्नेहमय वचनोंमें इसप्रकार कहने लगी

विमल० ४७

मानसे ॥ १४२ ॥ एकदा तत्र दुष्टस्त्रैव समायातं कपालिनं । लोकैः सुपूजितं वंद्यं स्वकामेन ननाम सः ॥ १४३ ॥ भक्त्या तं तोषयन्नि-
त्यमोदनैर्व्यंजनै रसैः । मोदकैः खज्जकैः पूपैः कार्यार्थी किं करोति न ॥ २४५ ॥ दृष्ट्वा संतुष्टमानं तं याचते स्वमनोप्सितं । बहुरूपि-
[illegible]
॥ २४७ ॥ बलभद्रस्तदा प्रातर्ज्ञात्वा क्षेत्रं ययौ यदा । चतुष्पाद्वारणार्थं वै तत्र यं धृतवान् मधुः ॥ २४८ ॥ मध्ये सद्म गतो धृष्टो ज्ञातो
[illegible]

भद्रा उसके हाथ न आई इसलिये वह अपने मनमें बड़ी चिंता करने लगा ॥ २४३ ॥
[illegible] अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये भक्तिपूर्वक उसे नमस्कार किया [illegible] शीघ्र ही उसके पास गया । [illegible] तुष्ट हो गया [illegible] कि सवेरा हो [illegible]
घरके भीतर घुस गया । चतुर भद्राने चाल ढालसे निश्चय कर उस दुष्टको पहिचान लिया इस
लिये उसने चिल्लाना प्रारंभ कर दिया । विशेष हुल्लड़ सुन बलभद्र वापिस लौट आया । दोनों ही

पुराण ४७

विमल० ४६ पुराण

लुरूपिणं दृष्ट्वा कामवाक्यैर्मुनिं जगौ। भो भो रूपकलागार! स्त्रीणामाशां प्रपूरय ॥२३७॥ किं ध्यानेन व्रतेनैव लेक्षि त्वं स्मरमंदिरं।
श्रुत्वैवं कटुकं वाक्यं बभाण मुनिरात्मवान् ॥ २३८ ॥ रे रे रण्डेऽबले! बाले! कथं वदसि दुर्वचः। भर्तारं बलिनं मुक्त्वा रमसे त्वं

[illegible]

त्पापं तस्मात्त्व नरकं व्रजेत्। [illegible] ॥ २४१ ॥ [illegible]
विचार्य सद्व्रतं गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥ २४२ ॥ पुनस्तेन तथा [illegible]

अरी रांड मूर्ख अबला! ऐसे कडुवे वचन क्यों तू अपने मुखसे निकालती है। तुझे लज्जा नहीं आती कि शक्तिमान भी अपने स्वामीको छोड़कर तू दूसरोंके साथ रमण किया करती फिरती है। [illegible]

विचारने लगी कि यह मुनि हमारे पापकी बात कैसे जानता है? बस उसी समय उसने शीलव्रत धारण कर लिया और अपने घर चली आई ॥ २४२ ॥ वसंत रोजकी तरह भद्राके घर गया परंतु उसने

४६

मगधमध्यात्कुतं तथा ज्ञात्वा तस्मै ददौ मुदा । परीक्ष्यान्यायकर्तारं मत्वा न्यायं ददौ तुजे ॥ २३३ ॥ अथैकदामरावत्यां कुटुंबी वलभद्राख्यः । प्रिया तस्यास्ति भद्राख्या पीनस्थूलपयोधरा ॥ २३४ ॥ तत्र पुर्यां वसत्येव क्षत्रियो हि वसंतकः । भद्रां दृष्ट्वैकदा कामवाणव्याप्तो हितोऽभवत् ॥ २३५ ॥ दूत्यानुरक्तां नीत्वा रेमे साकं मुदा तया । एकदा सा वन याता तत्र दृष्टो मुनीश्वरः ॥ २३६ ॥ भद्रा-

उस बालकको दयालु वसुमित्राका ही पुत्र जान उसे ही सुपुर्द कर दिया और अन्याय करनेवाली नागदत्ताको अपराधके अनुकूल दंड दिया इसप्रकार पुत्रकेलिये जो झगड़ा था न्यायकर कुनारने उसका निवटेरा कर दिया ॥ २३३ ॥

मगध देशकी अमरावती नगरीमें एक वलभद्र नामका कुटुम्बी रहता था। उसकी स्त्रीका नाम भद्रा था जो कि वलभद्रको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी और पीन किंतु स्थूल स्तनोंसे शोभायमान थी। उसी नगरीमें एक वसंत नामका क्षत्रिय पुरुष भी रहता था एक दिन रमणी भद्रा उसके देखनेमें आगई जिससे वह उसके सौंदर्यपर मुग्ध हो कामवाणोंसे व्याकुल हो गया ॥ २३४—२३५ ॥ शीघ्र ही उसने भद्राके पास अपनी दूती भेजी। भद्रा भी वसंत पर पूर्ण आसक्त हो गई जिससे वसंत मनमानी उसके साथ आनंद रमण क्रीडा करने लगा। एक दिन भद्राको वाहिर जंगलमें जानेका अवसर मिल गया वह वनमें गइ। दैवयोगसे एक मुनिराजसे उसकी भेंट हो गई। वे मुनिराज परम सुन्दर थे उन्हें देख भद्राका चित्त चलित हो गया एवं कामको सूचित करने वाले वाक्योंमें वह इसप्रकार मुनिराजसे कहने लगी—

प्रिय साधो ! तुम सौंदर्य और कलाओंके स्थान हो तुम्हें स्त्रियोंकी अभिलाषा पूरण करनी चाहिये। तुम जो यह ध्यान व्रत आचरण कर रहे हो यह तुम्हारा व्यर्थ है इसमें कुछ भी आनंद नहीं प्राप्त हो सकता तुम्हें विषय भोगोंको आस्वादना चाहिये। भद्राके ये कड़वे वचन सुन उत्तर में आत्मध्यानी मुनिराजने कहा—

दत्तोऽत्र वसत्येव गुणालयः ॥ २२६ ॥ तस्यास्ति भामिनीयुग्मं रैमित्रायां सुतोऽजनि। कदाकाले मृतः श्रेष्ठी तयोर्जातोऽतिविड्वरः ॥२२७॥(२२८)अछिदत्ता वदत्येवं पुत्रोऽयं मामको भृशं। वसुमित्रा तथाऽवादीत् खलेयं मामकः सुतः ॥२२९॥ विवदंत्यौ तदा ते द्वे गते श्रेणिकसन्निधौ। न्यायं कर्तुमशक्तत्वादभयाय समर्पिते ॥ २३० ॥ अभयोऽपि चिरं ध्यात्वा शिशुं भूमौ निक्षिप्तवान्। स नीत्वा छुरिकां प्राह ह्यर्धमर्धं प्रगृह्यतां ॥ २३१ ॥ वसुमित्रा तथा दृष्ट्वा दयार्द्राः समुवाच तं। एतस्मै देहि पुत्रं भो न मे पुत्रः कदाचन ॥ २३२ ॥

राजगृह नगरमें उससमय एक सागरदत्त नामका वैश्य रहता था। अत्यंत धनाढ्य और अनेक गुणोंका मंदिर था, उसकी दो स्त्रियां थीं, एक वसुमित्रा और दूसरी अछिदत्ता (वसुदत्ता) उनमें वसुमित्राके एक पुत्र था वसुदत्ताके कोई संतान न थी। किसी समय सेठ सागरदत्तका मरण हो गया और उससमय उन दोनों स्त्रियोंमें रात दिन कलह होने लगी। वसुदत्ताका कहना था कि यह पुत्र मेरा है और वसुमित्रा यह कहती थी कि यह झूठी है। यह पुत्र मेरा है। जब दोनोंका विवाद इतना बढ़ गया कि वे आपसमें अपना निवटेरा न कर सकीं तो वे महाराज श्रेणिकके समीप राजसभामें अपना न्याय करानेके लिये गईं। उनका विवाद सुन महाराज श्रेणिक भी अवाक् रह गये—कुछ भी न्याय न कर सके इसलिये कुमार अभयको बुलाकर उन्हें न्याय करनेकी आज्ञा दे दी ॥ २२५—२३० ॥ अभयकुमार भी बहुत देर तक तो यह विचार करते रहे कि इसका निवटेरा किस प्रकार किया जाय अंतमें उन्हें एक बुद्धि सूझ गई। बालकको शीघ्र ही उन्होंने जमीनपर लिटालिया एवं हाथमें छुरी लेकर वे यह कहने लगे कि अच्छा भाई! जब तुम दोनों हीं इसे अपना अपना पुत्र बतलाती हो तो आधा आधा दोनों ले लो ॥ २३१ ॥ कुमारका यह न्याय देख पुत्रकी असली माता वसुमित्रा एकदम कप गई एवं दयासे आर्द्र हो वह इसप्रकार नम्र वचनोंमें कहने लगी—कुमार! कृपाकर यह पुत्र वसुदत्ताको ही प्रदान करिये मेरे पुत्र कभी भी नहीं हुआ इस लिये मेरा पुत्र यह नहीं ॥ २३२ ॥ वसुदत्ताके अंदर किसी प्रकार दयाकी झलक न थी। कुमारने

विमल
४३

...प्रश्नः कृतो राज्ञा दिवारात्रं विवर्ज्य भो । मार्गं नैव कुमार्गे च समागंतव्यमेव च ॥ २२१ ॥ अभयाख्योपदेशेन शकटाक्षेषु यंत्रणं ।
वध्वा तत्र स्थिताः सर्वे आर्द्रचाणकपारकाः ॥ २२२ ॥ अभयेन समं सर्वे गतास्ते राजसन्निधौ । ननाम स्वसुतस्तस्य चरणौ वाडवैः
सह ॥ २२३ ॥ समालिंग्य निजं पुत्रं सवयं प्राशशंस सः । मोकनं ब्राह्मणानां हि कृत्वा तत्र सुखं स्थितः ॥ २२४ ॥ पदे नंदश्रियं कृत्वा

[illegible]

वे महाराज श्रेणिक बौद्धधर्मके परम भक्त बन सानंद राज्य करने लगे ।

१ श्रेणिक चरित्र १०६ पृष्ठसे यह वर्णन विस्तारसे लिखा है ग्रंथके विस्तार भयसे यहां उसे उद्धृत नहीं किया गया है ।

पुराण
४३

कुमारो हि दृष्ट्वा चाकुलवाडवान् । जगादेवं वचस्तथ्यं कुतो विग्रहचेतसः ॥ २१५ ॥ तैश्च प्रोक्तं समाकर्ण्य प्रोवाच वचनं सुधीः ।
माकुला भवतो यूयं शृणुतोपायमित्यलं ॥ २१६ ॥ व्याघ्रयोरंतरे स्थाप्यो मेषो मिष्टान्नभक्षणैः । भयाद्वलतां चैव पुष्टतां नैव यास्यति ॥
[illegible]
[illegible] व्याघ्रयोरंतरे स्थाप्यो मेषो मिष्टान्नभक्षणैः । भयाद्वलतां चैव पुष्टतां नैव यास्यति ॥
२१७ ॥ तथाकृतैर्द्विजैस्तूर्णं मासार्धे प्रेषितो [illegible] ॥२१८॥ इत्यादि दश संप्रश्नाः कृता
राज्ञा विवेकिना । नंदिग्रामीणकैर्विप्रैः प्रोक्ता [illegible] दिवानिशावर्जसमागमश्च ॥ २२० ॥

मेषश्च वापी करिकाष्ठतैलं क्षीराण्डजं वालुकवेष्टनं च ।
घटस्थकूष्माण्डफलं शिशूनां दिवानिशावर्जसमागमश्च ॥ २१९ ॥

अत्यंत चिंतित और दुःखित देख कुमार अभयने पूछा—भाई ! तुम लोग चित्तमें इतने दुःखित
क्यों हो । उत्तरमें विप्रोंने महाराज श्रेणिककी सारी आज्ञा कह सुनाई । सुनकर कुमारने धीरज
बंधाते हुए मिष्ट वचनोंसे कहा—तुम्हें कोई बात नहीं है मैं तुम्हें एक
क्यों हो । उत्तरमें विप्रोंने महाराज श्रेणिककी सारी आज्ञा कह सुनाई । सुनकर कुमारने धीरज
बंधाते हुए बाघके बीचमें बकराको बांध दो और खूब उसे मिष्टान्न भोजन खवाओ। मिष्टान्नके
सामने तो वह न पतला होगा और न मोटा होगा । कुमारकी आज्ञानुसार विप्रोंने वैसा ही किया
अर्धमास—पंद्रह दिन रखकर उसे महाराजके पास भेज दिया। जैसा बकरा भेजा था वैसा ही
देखकर महाराज श्रेणिक चकित रह गये एवं नंदिग्रामके विप्रोंकी चतुरताकी मन ही मन सराहना
करने लगे ॥ २१९ ॥ इसीतरह महाराज श्रेणिकने नंदिग्रामके विप्रोंसे राजगृह नगरकी
बावड़ी समानेको कहा। हाथीका वजन मांगा, काठका नीचे ऊपरका भाग पूछा, तिलके बराबर
तेल मांगा, गाय भैंस आदिके दूधसे अन्य दूध मंगाया, एक ही मुर्गा लड़ानेको कहा, बालूकी
रस्सी मांगी, घड़ामें भीतर ही भीतर बढ़ा हुआ कूष्मांडफल मांगा शिशुओंकी बुद्धि परीक्षा की और
रात दिन आदिके विभागको छोड़कर बुद्धिमान मनुष्यको राजगृह नगर बुलाया वह सब कुमार अभ-
रस्सी मांगी, घड़ामें भीतर ही भीतर बढ़ा हुआ कूष्मांडफल मांगा शिशुओंकी बुद्धि परीक्षा की और
रात दिन आदिके विभागको छोड़कर बुद्धिमान मनुष्यको राजगृह नगर बुलाया वह सब कुमार अभ-

इतो राजा ... ।रात्रं विवर्ज्य भो । मार्गे नैव कुमार्गे च समागंतव्यमेव च ॥ २२१ ॥ अभयास्योपदेशेन शकटाक्षेषु यंत्रणं ।
अथैकदा विशांनाथो दुष्टतां ब्रिय मानसे । नंदिग्रामद्विजानां ... ॥ अनेन समं सर्वे गतास्ते राजसन्निधौ । ननाम स्वसुतस्तस्य चरणौ वाक्यैः
युज्यते । विद्यमाने तनौ छिद्रे न्यायश्च नाथो भवेत् ॥ २१० ॥ साधु साधु तथा कृत्वा मेषं च प्राह्निणोचरैः । नो पुष्टो दुर्बलो नैव
कर्तव्यो मम मेषकः ॥ २११ ॥ अन्यथा निगमं नीत्वा निर्गमयामि देशतः ॥ २१२ ॥ (षट्पदी) इति श्रुत्वा द्विजाः सर्वे व्याकुलीभूत-
मानसाः । इंद्रदत्तस्तदायातो नंदिग्रामाभयेन च ॥ २१३ ॥ पट्टस्थितं नृपं मत्वा मिलनाय विशेषतः ॥ २१४ ॥ (षट्पदी) तदाभय-

महाराज श्रेणिक सानंद राज्य भोग कर रहे थे कि उन्हें नंदिग्रामके विप्रोंकी दुष्टताका स्मरण उठ आया और उन्हें खुटवानेके लिये कुछ मनुष्योंका शीघ्र ही वे प्रबंध करने लगे ॥२०६॥ मंत्री आदिने आकर महाराजको समझाया राजन्! नंदिग्रामके विप्रोंका छिद्र-दोष, बिना प्रगट किये आपका यह कार्य अच्छा नहीं माना जा सकता इसलिये आप पहिले उनका कोई दोष प्रगट करिये, पीछे उन्हें दंडित कीजिये क्योंकि यह कहावत है कि जब अपने शरीरमें छिद्र होता है अर्थात् दंड देने-वाला स्वयं दोषी ठहरता है तब न्याय नहीं माना जाता-सब लोग उसे अन्याय कहते हैं ॥ २१० ॥ ठीक, ठीक कहकर महाराजने मंत्री आदिकी बात मान ली । शीघ्र ही एक बकरा मंगाकर सेवकों-के साथ उसे नंदिग्राम भेज दिया और यह आज्ञा कर दी कि नंदिग्रामके विप्र इसे खूब खिलावें पिलावें परंतु यह ध्यान रक्खें कि न तो यह बकरा पुष्ट हो और न कृश हो । यदि मेरी इस आज्ञा-का पालन नहीं किया गया तो मैं तुम्हारा सर्वस्व लुटवा लूंगा और देशसे बाहिर निकलवा दूंगा ॥ २११—२१२ ॥ महाराजकी यह घोषणा सुन नंदिग्रामके समस्त ब्राह्मण भयसे कंप गये, महा-राजकी आज्ञाका किस प्रकार पालन करें यह कुछ भी उन्हें न सूझ पड़ा ।

वेणातट नगरके निवासी सेठ इन्द्रदत्तने जब यह सुना कि श्रेणिक राजगृह नगरके राजा बन गये हैं तो वह अपनी पुत्री नंदश्री और अभयकुमारको साथ ले उनसे विशेष रूपसे मिलने आया और नंदिग्राममें ही दैवयोगसे आकर ठहर गया ॥ २१३—२१४ ॥ नंदिग्रामके समस्त ब्राह्मणोंको

यथा वै रोचते तुभ्यं कर्तव्यं च तथा त्वया ॥ २०२ ॥ श्रुत्वा स्थितो महाराजा श्रेणिकः कोपमानसः । भूमिगानां गतिर्नास्ति तत्र गंतुं यतो ध्रुवं ॥ २०३ ॥ तदा चिंताप्रपन्नः स तूष्णीभावमुपागतः । जंबूर्नत्वा गतस्तेन सार्धं विद्याधरेण वै ॥ २०४ ॥ गत्वा व्याजीभद्वृत्तेन रत्नचूडेन पापिना । आष्टसाहस्रिकान् वारांस्तस्यामीमरदुत्कटान् ॥ २०५ ॥ बंधयित्वा क्षिप्रं दुष्टं मृगांकेण समं सुखं । कृत्वा कन्यां समादाय यावदायाति तैः सह ॥ २०६ ॥ तावद्राजगृहाधीशं विंध्याटव्यां हि केरले । पर्वते संस्थितं मत्वा तैर्नेनाम महायशाः ॥ २०७ ॥ उपयम्य तयोः प्रीतिं विधायाशु विशांपति. । गत्वा निजपत्तने कत्रे तया साकं सुखं स्थितः ॥ २०८ ॥

समाचार कहनेके लिये आपके पास आया हूं अब जैसा आप उचित समझें शीघ्र करें ॥ १९८—२०२॥ विद्याधर आकाशगतिकी यह बात सुन महाराज श्रेणिक बड़े कुपित हुए परंतु "वहांपर भूमिगोचरियोंकी गति नहीं इसलिये जा नहीं सकते" ऐसा विचारकर वे सचिंत हो चुप रह गये महाराजको इसप्रकार सचिंत देख एक जंबूकुमार नामके व्यक्तिने महाराजको नमस्कार किया और वह विद्याधर आकाशगतिके साथ शीघ्र केरला नगरीको चल दिया ॥२०३—२०४॥ केरला नगरीमें जाकर पापी रत्नचूड़के साथ उसने झगड़ा करना प्रारंभ कर दिया । उसके महा उत्कट आठ हजार योधाओंको मार भगाया । दुष्ट रत्नचूड़को बांध लिया । उसे, मृगांकको और उसकी कन्याको साथ ले राजगृह नगरकी ओर चल दिया । जिससमय जंबूकुमार केरला नगरीकी ओर गया था महाराज श्रेणिकने भी अपने जानेकी तयारी कर ली थी और वे चलते चलते विंध्याचलकी वनीमें केरल नामके पर्वतपर जाकर ठहर गये थे । यशस्वी जंबूकुमार सबोंको साथ ले जिस समय विंध्याचल पर्वतके पास आया उसे मालूम पड़ गया कि महाराज श्रेणिक यहीं ठहरे हैं । वह शीघ्र उनके पास गया और उन्हें नमस्कार किया । कन्या विलासवतीके साथ महाराज श्रेणिकका विवाह हो गया । मृगांक आदिके साथ उन्होंने बहुत स्नेह जनया । वहांसे अपनी राजधानी राजगृह नगर लौट आये और रमणी विलासवतीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ २०५—२०८ ॥

खिलान् देशान् सुखं राज्यं भुनक्ति सः ॥ १६४ ॥ अथैकदा सभामध्ये समागत्यैकखेचरः । नाम्नाऽऽकाशगतिर्नत्वा राजानं च व्यजिज्ञपत् ॥ १६५ ॥ हे राजन् विजयार्धस्य दक्षिणश्रेणिका मता । तत्रैव केरला पूश्च तत्र राजा मृगांककः ॥ १६६ ॥ तस्य राज्ञी गुणागारं मद्भगिनी मालतीलता । विलासवतिका पुत्री रूपरंभा सयौवना ॥ १६७ ॥ मृगांकोऽपि तथाभूतां सुतां दृष्ट्वा पप्रच्छ सः । मुनिं सुमतिनामानमस्याः को भविता पतिः ॥ १६८ ॥ श्रेणिकोऽस्या भवो राजन् ! भविता भूरिविक्रमः । श्रुत्वैवं निश्चयं कृत्वा स्थितः श्रीकेरलापतिः ॥ १६६ ॥ तदा मरालद्वीपस्य रत्नचूडो नराधिपः । दृष्ट्वा तां रतिभां भूरिसद्वर्णां याचते स्म सः ॥ २०० ॥ नो ददौ तस्मकै राजा रत्नचूडाख्यभूपतिः । तदागत्य पुरं क्रोधाद्वेष्टयित्वा स्थितो हि सः ॥२०१॥ तवाभ्यर्णं समायातोऽहं कथनाय वेगतः ।

राजधानी राजगृह नगरमें प्रविष्ट हो गये ॥ १६३ ॥ राजलक्षणोंसे मंडित महाराज श्रेणिकने राजसिंहासन अलंकृत किया एवं समस्त देशोंको जीतकर वे सुखपूर्वक राज्य भोगने लगे ॥ १६४ ॥

महाराज श्रेणिक सानन्द सिंहासनपर विराजमान थे कि उससमय एक आकाशगति नामका विद्याधर राजसभामें आया और राजाको नमस्कार कर यह संदेशा कहने लगा—विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणिमें एक केरला नामकी नगरी है। उसका स्वामी राजा मृगांक है। राजा मृगांककी पटरानीका नाम मालतीलता है जो कि अनेक गुणोंकी मंदिर है और नातेमें मेरी भगिनी लगती है एवं उन दोनोंके विलासवती नामकी अत्यंत सुन्दरी और यौवनसे मंडित पुत्री है ॥१६५-१६७॥ विवाह योग्य अपनी युवति पुत्रीको देखकर राजा मृगांकने सुमति नामके मुनिराजसे पूछा था कि भगवन् ! मेरी पुत्रीका पति कौन होगा ? उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि राजगृह नगरके स्वामी राजा श्रेणिक इसके पति होंगे जो कि संसारमें एक प्रवल पराक्रमी राजा हैं । मुनिराजके ऐसे वचन सुन राजा मृगांक पुत्रीकी ओरसे निश्चिन्त हो रहने लगे । किसी समय मराल द्वीपके स्वामी राजा रत्नचूड़ने रतिके समान सुन्दरी और कमनीय वर्णसे शोभित वह पुत्री देख ली और उसे मांग बैठा परंतु मुनिवचनके गाढ़ श्रद्धानी राजा मृगांकने रत्नचूड़को पुत्री नहीं दी । रत्नचूड़को यह बात सहन न हो सकी और उसने जलकर अपने सैन्यमंडलसे केरला नगरी घेर ली । मैं यह

चलातिने ॥ १८७ ॥ मृते राज्ञि स्वयं राजा भूत्वा पालयति प्रजाः । इंद्राणीप्रमुखाराज्ञ्यो दुखं तिष्ठंति चौरवत् ॥१८८॥ दुष्टान् संस्थापयामास शिष्टान्नाशयतिस्म सः । तदा संचिंत्य मंत्रीशो गूढपत्रमलीलिखत् ॥ १८९ ॥ दत्त्वा दूतकरे पत्रं प्राहिणोत् श्रेणिकं प्रति । गत्वा दत्तं शुभं पत्रं वाचयित्वा शमाप सः ॥ १९० ॥ आज्ञां श्री इंद्रदत्तस्य नीत्वा मुक्त्वा प्रियां सुतं । गूढैः पंचसहस्रैश्च सुभटैः सहितो ययौ ॥ १९१ ॥ ससैन्यं श्रेणिकं मत्वा नीत्वा द्रव्यव्रजं भयात् । निःसृत्य नगरात्सोऽपि पल्लीमाश्रितवांस्तदा ॥ १९२ ॥ गजारूढो महाराजा वृषस्कंधः प्रतापवान् । छत्रचामरसंयुक्तो विवेश निजपत्तनं ॥१९३॥ शुभयोगेऽधितस्थौ यो विष्टरं राजलक्षणः । साधयित्वा

समक्षमें चलाती पुत्रको राज्य प्रदान कर दिया ॥ १८७ ॥ आयुके अन्तमें महाराज उपश्रेणिकका मरण हो गया । वह राजा होकर प्रजाका पालन करने लगा । उसके राज्यकालमें इंद्राणी आदिक जो रानियां थी वे चोरोंके समान बड़े दुःखसे रहने लगी । राजा चलाती तनिक भी उनके दुःख सुखपर ध्यान नहीं देता था ॥ १८८ ॥ वह दुष्ट राजा अपने राज्यमें दुष्टोंकी बढ़वारी करता था और शिष्ट—भले आदमियोंका विनाश करता था । समस्त प्रजा उसके शासनसे दुःखित थी । मंत्री मतिसागरको बड़ी चिंता हुई । अच्छी तरह विचारकर उसने कुमार श्रेणिकको एक गूढ़ पत्र लिखा एवं दूतके हाथमें देकर उसे कुमार श्रेणिकके पास भेज दिया । जहांपर कुमार श्रेणिक रहते थे दूत सीधा वहां पहुंचा । कुमारके हाथमें पत्र दे दिया, जिसे वांचकर कुमारके चित्तको बड़ी भारी शांति मिली ॥ १८९—१९० ॥ उन्होंने शीघ्र ही अपने श्वसुर इन्द्रदत्तसे राजगृह नगर जानेकी आज्ञा मागी । प्रियतमा नंदश्री और पुत्र अभयकुमारको वहीं छोड़ा एवं पांच हजार गूढ़ वेषधारी सुभटोंके साथ शीघ्र ही राजगृह नगरकी ओर प्रस्थान कर दिया ॥ १९१ ॥ राजा चलातीने जिस समय कुमार श्रेणिकको सैन्यसे मंडित आया सुना साथमें बहुतसा द्रव्य लेकर वह शीघ्र ही नगर से वाहिर निकल गया एवं अपने नानाके पास जाकर भीलोंकी पल्लीमें रहने लगा ॥ १९२ ॥ कुमार श्रेणिक उसी समय राजगृह नगरके महाराज बन गये एवं बैलके समान पुष्ट स्कंधोंके धारक महा प्रतापी एवं छत्र और चमरोंसे शोभायमान वे महाराज श्रेणिक विशाल हाथीपर सवार हो अपनी

तं क्षामं संविधाय करोहसः । दृष्ट्वा लोकास्तथाभूतं शंसयामासुरेव तं॥ १८२॥ वसुपालोऽवदद्वाक्यं प्रार्थय त्वं मनोगतं । सप्तवासरपर्यंतं देहि देशेऽभयं व्रत ॥ १८३ ॥ प्रतिपद्य तथा राजा तस्थौ राज्ये सुखान्वितः । शुभे लग्ने महायोगेऽजीजनन्नंदनं च सा ॥ १८४ ॥ दोहदाकांक्षया नाम्ना चक्रेऽभयकुमारकं । अनुक्रमेण संप्राप्तो यौवनं विद्ययान्वितः ॥ १८५ ॥ नंदश्रिया समं क्रीडन् श्रेणिकश्चतुरांगकः । कर्मपंकजसंसक्तो गतं कालं न वेत्त्यसौ ॥१८६ ॥ अथोपश्रेणिको राजा क्षयं ज्ञात्वायुषो ध्रुव । सर्वसामंतसामक्ष्यं ददौ राज्यं

करना चाहिये बस चित्तमें क्रोधकर तत्काल उठ बैठे और मुष्टियोंके प्रहारोंसे उस मदोन्मत्त भी हाथीको देखते देखते वश कर डाला ॥ १७८—१८१ ॥ हाथी जिससमय मदरहित शांत और सीधा हो गया कुमार उसके ऊपर चढ़ लिये उनका यह लोकोत्तर प्रभाव देख सारा लोक उनकी प्रशंसा करने लगा ॥ १८२ ॥ राजा वसुपालके कानतक भी यह समाचार पहुंचा वह आकर कुमारसे मिला और कहने लगा—कुमार ! तुमने वडे साहसका कार्य किया है मैं तुमसे प्रसन्न हूं जो तुम्हें मांगना हो सानंद मांग सकते हो। कुमार श्रेणिक सातदिन तक अभय दानकी चिंतामें थे इसलिये राजासे उन्होंने यही कहा कि कृपाकर आप सात दिनतक अपने देशमें अभय दानकी घोषणा कर दें। राजा वसुपालने कुमारकी वात स्वीकार कर ली और वह सुख पूर्वक अपना राज्य करने लगा। शुभ लग्न और शुभ योगमें रमणी नंदश्रीके पुत्र हुआ। दोहलेके अनुसार उसका अभय कुमार नाम रक्खा गया। क्रमसे वह युवा हो गया एवं अनेक विद्याओंका भंडार बन गया ॥ १८२—१८५ ॥ चतुर अंगके धारक कुमार श्रेणिक रमणी नंदश्रीके साथ सानंद क्रीड़ा करने लगे एवं रतिक्रीड़ारूपी कमलमें इतने आसक्त हो गये कि जाता हुआ काल भी उन्हें नहीं जान पड़ने लगा ॥ १८६ ॥

कुमार श्रेणिक तो उधर इन्द्रदत्तके घर रहने लगे इधर महाराज उपश्रेणिकको जब यह मालूम हो गया कि मेरी आयु विलकुल समीप है तो उन्होंनें समस्त सामन्तोंको इकट्ठा किया और सबोंके

तदुत्तरं ॥१६९॥ नंदश्रीरंजिता तेन गत्या वाचा स्मरेक्षणैः। ददर्श व्याकुली भूत्वा कामवाणादि ता हि तं ॥१७०॥ स्वांगं सा दर्शयत्येव कपोलौ दर्पणाविव। ईषद्धास्येन दंताश्च मुक्तामणिचयानि च ॥ १७१ ॥ अन्योन्यं तौ च कामांगो परं प्रेम प्रजग्मतुः। इंद्रदत्तोऽनुरक्तां तां ज्ञात्वा तस्मै ददौ मुदा ॥ १७२ ॥ श्रेणिकोऽपि तया साकं रेमे राजसुतः सुखं। रोहिण्या सीतया नाम्या चंद्रामधरेशवत् ॥

शीघ्र ही उत्तम व्यंजन तयार कर दिये। कुमारको उनकी इच्छानुसार भोजन करा दिया एवं भोजनके वाद तांबुल देकर उन्हें संतुष्ट कर दिया ॥ १६९ ॥ कुमार श्रेणिकने अपनी मनोहर गतिसे मिष्ट वचनोंसे और तिरछी चितवनसे कुमारी नंदश्रीको अपनेमें अनुरक्त कर लिया। कामवाणोंसे व्याकुल हो वह उनकी ओर लालसा दृष्टिसे देखने लगी। कामके वशी भूत वह कुमारी कभी अपना मनोहर अंग कुमारको दिखाने लगी कभी दर्पणके समान अपने कपोलोंको तो कभी कभी मंद मंद मुसकानेसे मोतियोंके समान अपने दातोंके दिखलानेकी चेष्टा करने लगी॥१७०--१७१॥ अपने आपसी व्यवहारसे वे दोनों कुमार कुमारी कामवाणोंसे पीड़ित हो अपना अपना प्रेम व्यक्त करने लगे। सेठ इंद्रदत्तको भी कुमारमें कन्याके अनुरागका पता लग गया, उन्होंने वड़ी खुशीसे दोनोंका आपसमें विवाह कर दिया ॥ १७२ ॥ युवा कुमार श्रेणिक भी जिसप्रकार चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण करता है रामचन्द्र सीताके साथ रमते थे और नागेन्द्र नागकुमारीके साथ रमण क्रियासे उपयुक्त रहता है उसप्रकार रमणी नंदश्रीके साथ रमण क्रीडा करने लगे ॥ १७३ ॥

कुछ कालके वाद रमण क्रीडा करते करते कुमारी नंदश्रीके गर्भ रह गया उस समय उसके एक दोहला भी हुआ जिसकी सिद्धि कठिन जान वह दिनों दिन कृश होने लगी। किसी दिन एकांतमें आलिंगन चुम्वनके वाद वड़े प्रेमसे कुमारने नन्दश्रीसे यह पूछा—प्रिये! मैं देखता हूं दिनों दिन तुम कृश होती चलीं जातीं हो। नहीं जान पडता तुम्हारी कृशताकी कारण कौन चिंता है? तुम्हें उसे प्रगट करना चाहिये। कुमारका इसप्रकार विशेष आग्रह देख नंदश्रीने कहा—कृपा-

१७३ ॥ गर्भं बभार सा वाला कियत्काले गते सति । दोहदेन कृशीभूता दृष्ट्वा श्रीश्रेणिकेन च ॥ १७४ ॥ पप्रच्छालिंग्य संचुंब्य रहस्ये रतिविह्वलां । कृशत्वकारणं कांतः साग्रहादगदीदिति ॥ १७५ ॥ शृणु नाथ ! कृपाधार ! प्राणजीवन ! मद्वचः । सप्तवासरपर्यंतं देशेऽस्मिन्नभयं यदा ॥ १७६ ॥ भवेन्नूनं तदा सौख्यं श्रुत्वासौ दुष्करं वचः । समाश्वास्य निजां रामां नद्यास्तीरं गतस्तदा ॥ १७७ ॥ उपायं चिंतयन् यावत्तावदन्यकथांतरं । वसुपालनरेंद्रस्य कृत्वा चालानभंजनं ॥ १७८ ॥ पुरमाकुलयन् लोकांस्त्रासयन् पुष्करीं हठात् । धुरीज्यन्निव तिग्मांशुं पातयिष्यन् धरातलं ॥ १७९ ॥ गमिष्यन्निव चाकाशे निर्ययौ मदनोद्धुरः । अन्यायं तं गजं दृष्ट्वा चिंतयामास श्रेणिकः ॥ १८० ॥ अयं दुष्टो गजः केन वशीकर्तुं हि शक्यते । इति मत्वोत्थितः कोपाज्जघानैनं प्रमुष्टिभिः ॥१८१॥ निर्मदं गलिधार !

प्राणजीवन प्राणनाथ ! सुनिये मुझे यह दोहला हुआ है कि इस देशमें सर्वत्र सात दिन तक अभयदानकी प्रवृत्ति हो, कोई भी जीव किसीको न सतावे। यदि मेरा यह दोहला पूर्ण हो जाय तव मुझे सुख मिले इसका पूर्ण होना कठिन जान पड़ता है इसीलिये मैं सदा कृश होती चली जाती हूं मेरी कृशताका अन्य कोई कारण नहीं। प्राणप्यारी नंदश्रीका यह दोहला सुन कुमार श्रेणिकको भी उसकी सिद्धिमें कठिनता सूझने लगी परंतु अपनी निर्वलता न प्रगट कर अपने धीर वीर स्वभावसे उन्होंने उसे समझा दिया एवं कुछ उपाय खोजनेके लिये वे नदीके तटकी ओर चल दिये ॥ १७४—१७७ ॥

नदीके किनारे बैठकर कुमार दोहलेकी सिद्धिका उपाय सोच ही रहे थे कि उस समय एक नवीन ही घटना उपस्थित हो गई। उसी नगरका स्वामी एक वसुपाल नामका राजा था उसके किसी मदोन्मत्त हाथीने आलान—अपने बंधनेका खूंटा तोड़ डाला। वह दुष्ट गज समस्त लोगोंको व्याकुल करता, हथिनियोंको त्रास देता, अपनी उछल कूदसे सूर्यको ग्रहण करता, समस्त पृथ्वीतलको कपाता एवं अपनी ऊंचाईसे आकाशमें चलता हुआ जिस जगह कुमार बैठे थे उसी जगह आया उस दुष्ट गजको अपने पास आता देख कुमार श्रेणिक मन ही मन सोचने लगे—यह गज बड़ा दुष्ट मालूम पड़ता है। इसे वश करनेकी किसीकी हिम्मत नहीं जान पड़ती इसे अवश्य वश

यिता भोज्यं सर्पिःशाकादिपूरितं । तदा भुनज्मि गौरांगि ! तप्तजांबूनदप्रभे ॥ १६३ ॥ भर्तृस्खलितया वाण्या श्रुत्वा तद्वांछितं सका अवोचद् हि तान् रम्यान् कुर्वेऽहं भोजनं वरं ॥ १६४ ॥ आदाय चूर्णकं कृत्वा पूपं कृत्वा ददौ करे । आलिकायास्तदा सापि नीत्वा द्यूतगृहं ययौ ॥ १६५ ॥ भाजनं द्यूतकारैश्च पट्टकूलं प्रसारितं । विलोक्य जगदे साहि श्रूयतां सद्वचो मम ॥ १६६ ॥ दैवताधिष्ठितं पूपं यो गृह्णाति वराक्षिकः । लाभं मनीप्सितं सोऽपि लभेतालं न संशयः ॥ १६७ ॥ अत्याग्रहं विधायाशु दत्वा द्रव्यं घनं धनी । नाम्ना जग्राह पूपं तं धनं नीत्वा गृहं ययौ ॥ १६८ ॥ स्वामिन्या तेन द्रव्येण पूपापायसव्यंजनं । निर्माप्य भोजयामास तांबूलं च

रांगी ! संसारमें तुम बडी चतुर सुनी जाती हो मैं भी कुछ चतुरताका अभ्यास रखता हूं मैंने आज यह प्रतिज्ञा की है कि मेरे पास वत्तीस चावल हैं यदि केवल उन्हीसे घी और शाक आदिसे परिपूर्ण मेरे लिये भोजन तयार किया जायगा तो मैं उसे खाऊंगा वीच नहीं खा सकता। सुवर्णके समान प्रभावाली गौरांगी ! यदि तुम इसरूपसे भोजन तयार कर सको तो मैं खा सकता हूं। कुमार श्रेणिक जिससमय यह कह रहे थे विशिष्ट आनंदसे उनकी वाणी कुछ कुछ स्खलित निकलती थी चतुर नंदश्री स्खलितवाणीसे उनके मनका अभिप्राय समझ कहने लगी—कृपाकर उन वत्तीस चावलोंको दीजिये मैं अभी आपके लिये मिष्ट और मनोहर भोजन तयार करती हूं ॥ १६१—१६५॥ कुमारने उसी समय वत्तीस चावल दे दिये । कुमारी नंदश्रीने शीघ्र उन्हें पीसकर पूवे बनाये। सखीको वुलाकर उन्हें बजार वेचनेके लिये भेज दिया। वह सखी भी वडी चतुर थी जहां ज्वारियों का अड्डा था वहां पहुंची। ज्वारी लोग कपडा विछाकर जिससमय जूआ खेलना प्रारंभ करने लगे उस समय उस सखीने इसप्रकार मनोहर वचनोंमें कहा—

देखो भाइयो ! ये पूवे जो मैं लाई हूं देवमयी हैं। जो महानुभाव इन पूवोंको खावेगा वही उत्तम ज्वारी इच्छानुसार धन उपार्जन करेगा इसमें किसी वातका संदेह नहीं। ज्वारियोंको कल कहां ? बड़े आग्रहसे शीघ्र ही उन्होंने पूवे खरीद लिये। मुंहमागा धन दिया एवं उस धनको लेकर वह सखी शीघ्र ही अपने घर आ गई ॥ १६६—१६८ ॥ कुमारी नंदश्रीने उस द्रव्यसे पूवा खीर आदि

दृश्यते पंकः समस्यात कथं ननु ॥ १५३ ॥ यामि प्रस्तरपंक्त्याऽहं पतिष्यामि यदा तदा । हसिष्यंत्यखिला लोका अतः पंके प्रयास्यहं ॥
चिंत्वेत्थं गतवान् सद्मद्वारे नंदश्रिया तदा । कौशलं चिंतयामासे (स) सन्नरस्य सकौतुकं ॥ १५५ ॥ सख्या संप्रेषयामास पादक्षा
लनहेतवे । अंजलिप्रमितं तोयं दृष्ट्वासौ तदुव्यचिंतयत् ॥ १५६ ॥ इयं धूर्ता समीक्ष्येत कौतुकं यत्करोत्यदः । वेणुचीर्यांत्तदुत्तार्य
क्षालयामास पत्कजं १५७ ॥ नंदश्रीश्च तदा स्वांते चतुरं तं व्यचितयत् । मुदं गत्वालिकां प्राहाकारयेति सुभोजने ॥ १५८ ॥ आका-
रितस्तदा तत्र रम्यांगो राजलक्षणः । आगतो लीलया युक्तः प्राघूर्णक इव स्थितः ॥ १५९ ॥ आगतस्वागतं कृत्वा नंदश्रीर्वचनं जगौ ।
तिष्ठ तिष्ठासने साधो ! कुरु भोज्यं मनीप्सितं ॥१६०॥ तदाकर्ण्य कुमारोऽसावब्रवीत्तां शुभाशयां । श्रूयसे चतुरा लोके त्वं ललांगि !
चकोरदृक् ॥ १६१ ॥ प्रतिज्ञाय कृता बाले ! मया विज्ञानशालिना । द्वात्रिंशत्तंदुला रम्या विद्यंते मम पार्श्वके ॥ १६२ ॥ तेषां चेद्व

धाके लिये नंदश्रीने अंजुलीप्रमाण जल उनके पैर धोनेके लिये सखीके हाथ भेजा। कुमार उस थोड़े से जलको देखकर मन ही मन विचारने लगे कि मेरे साथमें जो दिल्लगी हो रही है वह इसी धूर्त नंदश्री द्वारा की जा रही है खैर, उन्होंने बांसकी फच्चट लेकर शीघ्र ही सारी कीचड़ उतार डाली और उस थोड़ेसे जलसे अपने पैर धो डाले। कुमारकी इसप्रकार बुद्धिमानी देख नंदश्रीने मन ही मन उन्हें अत्यंत चतुर समझ लिया। बड़ी खुश हुई एवं अपनी सखीसे यह कहा कि कुमारको भोजनके लिये लिवा लाओ। नंदश्रीके कहे अनुसार सखीने कुमारको भोजनके लिये बुलाया। मनोहर अंगके धारक एवं राजलक्षणोंसे शोभायमान वह कुमार भी क्रीडापूर्वक नंदश्रीके पास आ गया एवं जिसप्रकार अतिथि आकर बैठ जाता है उसप्रकार आकर बैठ गया ॥ १५२—१५९ ॥ अतिथिका जिसरूपसे स्वागत करना चाहिये नंदश्रीने बड़े उत्साहके साथ उनका स्वागत किया एवं मनोहर वचनोंमें वह इसप्रकार कहने लगी—

महानुभाव ! आइये इस आसनपर विराजिये और इच्छानुसार भोजन कीजिये ॥ १६० ॥ अति-शुद्ध हृदयवाली नंदश्रीके ये मनोहर वचन सुन कुमारने कहा—चकोरके समान नेत्रवाली मनोह-

याति सदनं प्रति ॥ १५० ॥ तावन्नंदश्रिया द्वारं कारितं कर्दमाकुलं । जानुपंगं द्रुपद्वं गं स्थिना पश्यति कौतुकं ॥ १५१ ॥ ताडचिह्नेन मत्वा स द्वारे समागतस्तदा । दृष्ट्वा कर्दमसंतानं चिंतयामास मानसे ॥ १५२ ॥ पुरमध्ये पुराभ्यर्णे प्रतोल्यां प्रतिसद्म च नो दरी-

चाप अपने घरको चली गई। बुद्धिमान कुमारने अपनी चतुरतासे उसका इशारा समझ लिया एवं जिस घरमें तालवृक्ष हो वही कुमारी नंदश्रीका घर है ऐसा विचारकर वह कुमार स्नानकर उसी घरकी ओर सीधा रवाना हो गया ॥ १४७--१५० ॥ विपुलमतीके मुखसे कुमारका आना सुन नंदश्रीने अपने दरवाजेके सामने घोंटू पर्यंत कीचड़ भरवा दी। ठीक दरवाजेके सामने पत्थर रखवा दिये जिससे यह जान पड़े कि भीतर जानेका रास्ता इन पत्थरोंके टुकड़ोंके ऊपरसे है एवं कुमारका कौतूहल देखनेके लिये वह सामने खिड़कीमें बैठ गई ॥ १५१ ॥ नंदश्रीके घरमें ताड़का वृक्ष था ताड़के चिह्नसे उसी घरको नंदश्रीका घर जान कुमार उसके दरवाजेपर आ गये एवं दरवाजेके आगेका भाग कीचड़से भरा हुआ देख वे इसप्रकार मन ही मन विचारने लगे--

न तो नगरके मध्यभागमें कीचड़ दीख पड़ती है न नगरके पास कहीं कीचड़ दीख पड़ती है। किसी गली वा किसी मकानमें भी कीचड़ नहीं दीख पड़ती परंतु इस मकानके सामने कीचड़ दीख पड़ती है इसलिये इस कीचड़के होनेमें अवश्य कोई न कोई रहस्य छिपा हुआ है—क्या बात है सो कुछ जान नहीं पड़ती घरके भीतर जानेके लिये जो यह पत्थरके टुकड़ोंका मार्ग बनाया गया है जान पड़ता है मेरी बुद्धिकी परीक्षाके लिये यह धोखाबाजी की गई है यदि मैं इन पत्थरके टुकड़ोंके बने मार्गसे घरके भीतर जाऊंगा तो अवश्य नीचे कीचड़में गिर जाऊंगा तो सारा लोक मेरी हँसी करेगा इसलिये मुझे कीचड़में होकर ही जाना चाहिये बस इसप्रकार विचारकर वे कीचड़के भीतरसे जाकर—नंदश्रीके दरवाजेपर पहुंच गये। कुमारके इस तीव्र कौशलको देखकर नंदश्रीने मन ही मन उनके कौशलकी सराहना की एवं दिल्लगीसे फिर भी कुमारकी बुद्धिकी परी-

तत्र वृत्तांतं प्रतिपादितं । तैलेन मज्जनं कृत्वा गंतव्यं मम सद्गृहे । श्रुत्वाथ चिंतयित्वासौ तोये तैलं क्षिपाह तं ॥ १४७ ॥ (षट्पदी) किमर्थं सा जगौ रम्या येन सार्धं समागतः । तस्यास्ति रूपसद्भारभूषिताकन्यका शुभा ॥ १४८ ॥ तया नंदश्रिया त्वं भो आकारित इव ध्रुवं । तदा प्राह कुमारोऽसौ कुत्रास्ते सदनं तव ॥ १४९ ॥ दर्शयित्वा तदा कर्णतालं सैव ययौ गृहं । स्नात्वा विज्ञानतो यावदा-

वह कुमार इससमय तालावके किनारे बैठा है। मैं उससे यह कहकर आया हूं कि मेरी आज्ञाके बिना तुम कहीं भी मत जाना इसलिये जबतक मेरी आज्ञा उसके पास न पहुंचेगी वह कहीं जा नहीं सकता। अपने पिताके ये मनोहर वचन सुन कुमारी नंदश्री विचारने लगी यद्यपि वह कुमार संसारमें एक बुद्धिमान पुरुष रत्न है तथापि और भी उसकी परीक्षा करलेना परमावश्यक है इस-लिये शीघ्र ही उसने अपनी विपुलमती नामकी प्रियसखी बुलवाई और प्रेममय वचनोंसे उससे यह कहा कि मैं जिस कार्यके करनेकी तुमसे प्रेरणा कर रही हूं उसे शीघ्र करो। देखो तालावके किनारे कोई अन्य देशका पुरुष बैठा है। नखमें तेल भरकर तुम शीघ्र उसके पास जाओ और उससे कहो कि आप यह तेल लेकर शीघ्र स्नान करिये ॥ १३९—१४६ ॥ कुमारी नंदश्रीके वचन सुन सखी विपुलमती शीघ्र ही तालावके किनारे जा पहुंची। नंदश्रीने जो कहा था सारा समा-चार कुमारसे कह सुनाया एवं तेल लगाकर स्नानकर आप मेरे घर चलें, यह निवेदन भी कर दिया विपुलमतीके वचनोंपर थोड़ी देर तक कुमारने विचार किया एवं 'इस तेलको इस जलमें डाल दो, ऐसा कहकर उससे यह पूछा—

तुम्हारे घर मुझे क्यों चलना चाहिये ? उत्तरमें मनोहरांगी विपुलमतीने कहा--प्रिय महानुभाव जिस महापुरुषके साथ तुम आये हो उसके एक नंदश्री नामकी पुत्री है जो कि दिव्य सौंदर्यके भारसे शोभायमान है और शुभ है उसी कुमारीने आपको बुलाया है आप किसी प्रकारका संदेह न करें। विपुलमतीकी यह वात सुन कुमारने पूछा तुम्हारा घर कहां है ? इसके उत्तरमें विपुलमती ने कुछ भी नहीं कहा उसके कानमें जो तालवृन्तके पत्तेका वना भूषण था उसे धीरेसे दिखाकर वह चुप

खास तात्पर्य उस समय यही था कि यह पुरुष जो इस स्त्रीको मार रहा है यह स्त्री इसकी व्याहिता है वा भगाई हुई है। मरे मनुष्यको देखकर जो कुमारने यह प्रश्न किया था कि 'यह मुर्दा आजका मरा है वा पहिले ही मर चुका है'? यह भी उनका प्रश्न बडी निपुणताका था क्योंकि जो मनुष्य धर्मात्मा दानी तेजस्वी आदि उत्तम गुणोंका भंडार होता है और वह मर जाता है उसको तो आजका मरा हुआ कहते हैं और जो दुर्गुणोंका खानि होता है वह भले ही आज ही मरा हो तो भी वह पहिलेका मरा हुआ ही माना जाता है। कुमारका आशय भी उस समय यही था। धान्यके खेतको देखकर जो कुमारने यह पूछा था इस खेतके स्वामीने इस खेतका उपभोग कर लिया है वा करेगा? यह प्रश्न भी कुमारका बड़ी बुद्धिमानीका था क्योंकि जो खेत कर्ज लेकर बोया जाता है उसके धान्यका तो पहिले ही उपभोग कर लिया जाता है और जो कर्ज न लेकर बोया जाता है उस खेतके धान्यको उसका स्वामी भोगेगा, ऐसा कहा जाता है। कुमारका प्रश्न भी उस समय इसी आशयको लेकर था। कुमारने जो यह प्रश्न किया था कि इस हलमें कितनी शाखा हैं? यह प्रश्न भी कुमारका बडा मार्केका था क्योंकि उस समय कुमारका यह आशय था कि इस हलके स्वामी कितने किसान हैं? इसलिये यह प्रश्न भी कुमारका मूर्खता परिपूर्ण न था। तथा इस बदरी वृक्षपर कितने कांटे हैं? यह जो कुमारने पूछा था वह पूछना भी उनका बड़ी कुशलतासे था क्योंकि कांटे दो प्रकारके होते हैं एक सीधे दूसरे टेढ़े। दुर्जनोंके वचन भी सीधे टेढ़े दोनों प्रकारके होते हैं कुमारका पूछना भी इसी आशयको लेकर था" इसलिये हे पूज्यपिता! जिस कुमारको आपने मूर्ख समझ रक्खा है वह बत्तीस शुभ लक्षणोंका धारक अत्यंत बुद्धिमान है कृपाकर अब शीघ्र बताइये कि वह चतुर कुमार इससमय कहां है? उत्तरमें इंद्रदत्तने कहा—

मूर्ख समझा है सो वह मूर्ख नहीं बड़ा भारी बुद्धिमान है। कुमारने जो जो बातें कही थीं उनका खुलासा इसप्रकार है—

उस कुमारने जो आपको मामा कहकर पुकारा था उसका मतलब यह था कि संसारमें भानजा अत्यंत माननीय और प्रिय होता है इसलिये मामा कहकर कुमारने आपके विशिष्ट प्रेम की आकांक्षा की थी। जिह्वारथका अर्थ कथा कौतूहल है। कुमारने जो जिह्वा रथ कहा था वह भी उसका कहना बहुत उत्तम था क्योंकि जिससमय सज्जनपुरुष मार्गमें थक जाते हैं उस समय वे उस थकावटको अनेक प्रकारके कथा कौतूहलोंसे दूर करते हैं। कुमारका लक्ष्य भी उससमय थकावट दूर करनेका ही था। कुमार जो नदीके जलमें जूता पहिनकर घुसा था वह कार्य भी उसका एक बड़ी बुद्धिमानीका था क्योंकि जलके अन्दर बहुतसे कंकड पत्थर और सर्प आदि जीव रहते हैं जो कि सूझ नहीं पड़ते, यदि जूता पहिनकर जलमें प्रवेश न किया जाय तो कंकर पत्थरोंके लगजानेका और सांप आदिके काटनेका भय रहता है इसलिये कुमारका जलमें जूता पहिनकर प्रवेश करना मूर्खताका कार्य न था। कुमार वृक्षके नीचे जो छत्री तानकर बैठा था वह भी उसका कार्य बुद्धिमानीका था क्योंकि वृक्षके ऊपरसे पक्षियोंकी वीट आदिका गिरना संभव है। छत्रीसे बचाव हो सकता है। नगरको देखकर कुमारने जो यह प्रश्न किया था कि यह बसा हुआ है वा उजडा हुआ है वह प्रश्न भी कुमारकी बडी बुद्धिमत्ताका था क्योंकि जिस नगरमें धर्मात्मा मनुष्य और धर्मके आयतन विद्यमान हों वह नगर बसा हुआ माना जाता है और जिसमें ये बातें न हों वह उजड़ा समझा जाता है कुमारका तात्पर्य इसी बातको लेकर था। स्त्रीको बांधकर मारते देख जो कुमारने यह पूछा था कि यह स्त्री बंधी हुई है वा छूटी हुई है? यह प्रश्न भी. कुमारका बडी चतुरताका था क्योंकि बंधी हुईका अर्थ विवाहित है और छूटी हुईका अर्थ अविवाहित है। कुमारका

मृशं। तदा बभाण हे पुत्रि! मूर्खनामा समागतः ॥ १४० ॥ कथं ज्ञातस्त्वया मूर्खः, शृणु पुत्रि! निगद्यते। जिह्वारथादिसंप्रोक्तं श्रुत्वा हर्षमुपागता ॥ १४१ ॥ उक्तं च—

जिह्वारथः पादसुरक्षणं च छत्रं तथा ग्रामविनिश्चयश्च।
नारी शवं शालिवनं च डा (हा) लं कांटक्यवार्तेति च कल्प्यतेस्म ॥ १४२ ॥

नंदश्रीः पितरं प्राह नासौ मूर्खः कृपानिधे! द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तो वर्तते कुत्र हे पितः! ॥ १४३ ॥ इंद्रदत्तस्तदा प्राह सरस्तीरे स्थितो-ऽस्ति सः। श्रुत्वा सा चितयामास परीक्ष्येऽहं शुभं नरं ॥ १४४ ॥ तदा विपुलमत्याख्यां सखीमाकार्य वेगतः। प्राहेति वचनं रम्यं कुरु कार्यमिदं त्वकं ॥ १४५ ॥ नखेन तैलमादाय याहि त्वं सरसस्तटे। तत्रस्थितस्य गोधस्य देहि स्नानार्थमंजसा ॥ १४६ ॥ प्रतिपद्य गता

उपमा धारण करती थी। जिस समय सेठ इंद्रदत्त घर पहुंचे उन्हें अत्यंत थका हुवा जान नंदश्री ताड़ गई कि इनके साथ कोई न कोई अन्य मनुष्य भी आया है क्योंकि अकेला चलनेवाला मनुष्य अपने स्वभावानुकूल गतिसे चलता है इसलिये विशेष नहीं थक सकता किंतु साथमें अन्य मनुष्य के रहते दोड़ा दोड़ी चलना पड़ता है इसलिये विशेष थकावट हो जाती है, इसलिये उसने शीघ्र ही पूछा—पिताजी! तुम किसी न किसीके साथ आये जान पड़ते हो कृपाकर कहिये आपके साथमें जो आया है सो कौन है? उत्तरमें इन्द्रदत्तने कहा—पुत्री! मैं अवश्य किसी अन्य पुरुषके साथ आया हूं परंतु मेरे साथ आनेवाला वज्र मूर्ख है। पिताके ऐसे वचन सुन नंदश्रीने फिर पूछा—पूज्य पिता! आपने यह कैसे जाना कि आपके साथ आनेवाला पुरुष मूर्ख है? उत्तरमें सेठ इन्द्र-दत्तने जिह्वारूपी रथपर सवार होकर चलना, जूता पहिने ही नदीमें प्रवेश कर जाना, वृक्षके नीचे छत्री लगाकर बैठना, गांवको उजड़ा बसा कहना, स्त्रीको बांधी छूटी कहना, यह मुर्दा आज मरा है वा पहिले, धान्यके खेतके फल खा लिये वा खाये जावेंगे हल और बदरीके कांटोंके विषयमें जो भी बात चीत हुई थी सारी कह सुनाई। जिस समय कन्या नंदश्रीने सारी बातें सुनी उसे बड़ा हर्ष हुआ। शीघ्र ही उसने अपने पितासे कहा—कृपानाथ! ऊपर कही हुई बातोंसे जो आपने उसे

पुरो दृष्ट्वा ह्यन्वयुक्ते ति तं प्रति । [illegible] मक ! हलीषेशा विद्यते कतिका इमे ॥ १३२ ॥ समाकर्ण्य तथा प्रोक्तं पुनः प्रोवाच तं प्रति
कद्वर्याः कंटका माम ! [illegible] ॥ १३३ ॥ चिंतयामास मूर्खोऽयं श्रेष्ठी चिंतापरायणः । एवं प्रश्नवितर्केषु सत्सु तौ जग्मतु-
स्तरां ॥ १३४ ॥ वेणा[illegible] स्व समाप्य सः । श्रेष्ठी तं भूपजं प्राह कुत्र यासि त्वकं वद ॥ १३५ ॥ तदा कुमार आहेति
तिष्ठामि सरसस्तटे । इंद्रदत्तो वणिक् प्राह विनाज्ञां नैव गम्यतां ॥ १३६ ॥ इत्युक्त्वा स्वगृहे यात इंद्रदत्तो वणिग्वरः । श्रेणिकश्चिं-
तयामास धिङ्मैत्री वणिजामिति ॥ १३७ ॥ वेश्यमैत्रीमहिक्रीडां द्यूतकर्म विषादनं । योषित्संगं त्यजेद्विद्वान् मुदाकांक्षी कुसंगतां ॥
१३८ ॥ पितरं श्रमसंयुक्तं दृष्ट्वोवाच सुता मुदा । नंदश्रीर्नागकन्येव रूपरंजितरंभिका ॥ १३९ ॥ हे तात ! सह केनैव चागतस्त्वं वद

हलमें कितनी शाखायें (हिस्से) हैं। कुमारके ये वचन सुनकर भी सेठ इंद्रदत्त उसे मूर्ख समझ चुप रहगये । आगे चलकर एक वदरीवृक्ष पड़ा उसे देख कुमार श्रेणिकने पूछा--बताइये मामा ! इस वृक्षमें कितने कांटे हैं। कुमारका यह प्रश्न सुन इंद्रदत्तके मनमें पूरा विश्वास हो गया कि यह बालक अवश्य पूरा पागल है। बस इसप्रकार प्रश्न और वितर्क करते करते वे दोनों मार्गमें सानंद गमन करते जाते थे ॥ १३२—१३४ ॥ सेठ इंद्रदत्तकी जन्मभूमि वेणातड़ाग नामका नगर था। मार्गमें चलते चलते जिस समय वेणातड़ाग आया सेठ इंद्रदत्त वहीं ठहर गया एवं कुमारसे यह कहने लगा कि भाई मेरा घर [illegible] गया, मैं अब अपने घर जाता हूं, तुम अब यहांसे कहां जाओगे कहो ? उत्तरमें कुमारने कहा—इससमय तो मैं इसी तालावके किनारे ठहरूंगा। कुमारकी यह बात सुनकर इन्द्रदत्तने कहा—अच्छा ठीक है परंतु मेरी आज्ञाके विना आगे मत जाना। बस ऐसा कह कर सेठ अपने घर चला गया। सेठ इन्द्रदत्तके ऐसे सूखे व्यवहारसे कुमार श्रेणिकको कुछ कष्ट हुआ। वे मन ही मन यही विचारने लगे कि वणिकोंके साथ की गई मित्रताके लिये धिक्कार है। जो विद्वान कल्याणके इच्छुक हैं उन्हें वणिकोंके साथ मित्रता, सर्पोंके साथ क्रीड़ा जूआ खेलना विष खाना स्त्रियोंकी संगति और खोटी संगतिका करना सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ १३५—१३८ ॥ सेठ इन्द्रदत्तकी एक नंदश्री नामकी कन्या थी जो कि अपने मनोहर रूपसे अप्सराकी

॥ १२६ ॥ श्रुत्वास निश्चिनोतिस्म गर्गोयं संभ्रमी शठः। नानावस्तुसमाकीर्णं पुरं पृच्छति वार्तकं ॥ १२७ ॥ केनचित्ताड्यमानां हि दृष्ट्वा रामां जगाद तं। भो माम! ताड्यते बद्धा मुक्ता वा कथय द्रुतं ॥ १२८ ॥ पूर्ववच्चिंतयन् श्रेष्ठी तावद्दृष्ट्वा शवं जगौ। भो माम! द्राक् मृतं किंवा सांप्रतीदं मृतं वद ॥ १२९ ॥ तथाकर्ण्य पुनश्चित्ते चिंतयामास पूर्ववत्। पुरस्ताच्छालिकेदारं दृष्ट्वा प्रोवाच तं प्रति ॥ १३० ॥ माम! भक्ष्येत किं क्षेत्रं भुक्तं वा त्वं निरूपय। समाकर्ण्य तदा श्रेष्ठीदमीयं जीवितं च धिक् ॥ १३१ ॥ लांगलं च

थोंसे व्याप्त है तो भी व्यर्थ पूछता है कि यह उजड़ा हुआ है या बसा हुआ? ॥ १२६—१२७ ॥ आगे चलकर क्या देखा कि एक स्त्रीको बांधकर कोई पुरुष मार रहा है। उसे देख कुमारने सेठसे पूछा मामा! कृपाकर जल्दी बताओ तो कि जिस स्त्रीको यह पुरुष मार रहा है यह बंधी हुई है वा मुक्त—छूटी हुई है। कुमारकी बातका तात्पर्य न समझकर फिर भी वह सेठ विचारने लगा कि यह बालक तो वज्र मूर्ख है। सबको दीखती है कि यह स्त्री बंधी हुई है तो भी यह झूठा जवाब सवाल करता है। आगे चलकर एक मुर्दा पड़ा उसे देखकर कुमारने पूछा—मामा! कृपा कर कहो कि यह मुर्दा पहिले ही मर चुका है कि अभी मरा है? सेठ इन्द्रदत्त कुमारके इन वचनोंका भी तात्पर्य न समझ सका इसलिये पहिलेके समान वह पुनः भी यही मनमें कहने लगा कि यह बालक भारी मूर्ख है। अभीके मरे मुर्देको भी नहीं जान सकता। आगे चलकर एक शालि धान्योंका क्षेत्र पड़ा उसे देखकर कुमारने फिर इन्द्रदत्तसे पूछा—बताओ मामा! इस खेतके मालिकने इस खेतके फलोंको पहिले खा लिया है कि अब खायगा? कुमारके वचनोंका तनिक भी तात्पर्य न समझ अबके तो इंद्रदत्त झुलझुला उठे क्योंकि वे समझते थे कि जब धान कटे ही नहीं तब पहिले कैसे खाये जा सकते हैं? कुमारने खेतको देखकर जो प्रश्न किया है वह वज्र मूर्खताका है इसलिये वे यही कहने लगे कि ऐसे मूर्खता परिपूर्ण जीवनके लिये धिक्कार है ॥ १२८—१३१ ॥ आगे चलकर एक हल दीख पड़ा। उसे देखकर कुमारने इंद्रदत्तसे पूछा—बताओ मामा! इस

जिह्वारथं समारुह्य आवां यावः प्रमोदतः ॥१२०॥ तदा श्रेष्ठी विंचित्येत्थं गर्गीयं गुणवर्जितः । जिह्वामारुह्य वेगेन कथं जंगम्यते स्फुटं ॥ १२१ ॥ कियन्मार्गे पुनः प्राप्ते निर्मले सजलाशये । पादत्राणं पदे कृत्वा निर्गतः कौतुकान्वितः ॥ १२२ ॥ व्यतर्कयत्तदा श्रेष्ठी मूर्खोयं मनसिस्वके । अग्रमार्गे पुनर्नीत्वा जगाद मधुरं प्रियं ॥१२३॥ भो मातुलात्र तिष्ठावो वृक्षे पत्रविराजिते । श्रुत्वा वाक्यं स्थितः श्रेष्ठी सोऽपि पर्णमयं महत् । आतपत्रं विधायाशु मस्तके धृतवान् खलु ॥ १२४ ॥ (षट्पदी) इभ्योऽसौ तर्कयामास तापरुट्सत्तरोरधः । मूर्खं गर्गं विछायान्यः कः छत्रं मस्तके धरेत् ॥ १२५ ॥ अग्रे ग्रामं विलोक्यासावप्राक्षीदिंद्रदत्तकं । भो भो मामोद्वसो ग्रामो वसते वा वद त्वकं

मामा ! आओ जिह्वारूपी रथपर सवार होकर अपन दोनों आनंदपूर्वक शीघ्र चलें । कुमारकी यह चतुरताको भी बात न समझकर सेठ इन्द्रदत्त कहने लगा—यह बालक तो मूर्ख जान पड़ता है, भला जिह्वारूपी रथपर बैठकर भी कभी जल्दी जाया जा सकता है ? ॥ ११६—१२१ ॥ मार्गमें कुछ दूर आगे जाकर एक नदी पड़ी । कौतूहली कुमार श्रेणिक जूता पहिन कर ही उस नदीके जलमें चलने लगा । उसकी यह चेष्टा देख फिर इन्द्रदत्त अपने मनमें विचार करने लगा कि यह बालक अवश्य मूर्ख है । आगे मार्गमें अनेक प्रकारके पत्तियोंसे व्याप्त एक विशाल वृक्ष पड़ा उसे देखकर कुमारने मीठे स्वरमें कहा--मामा ! आओ थोड़ी देर इस वृक्षके नीचे आराम करलें । कुमारके कहने से सेठ इन्द्रदत्त ठहर गया । कुमारने वृक्षके पत्तोंकी उसी समय एक छत्री बनाई और मस्तकपर छत्री तानकर वह बैठा । कुमारकी यह चेष्टा देख इंद्रदत्त विचार करने लगा । धूपके संतापको दूर करनेके लिये मस्तकपर छत्री तानी जाती है । यह उत्तम वृक्ष धूपका संताप दूर करनेवाला है—छत्री तानकर बैठनेकी कोई आवश्यकता नहीं परंतु यह बालक इस वृक्षके नीचे भी मस्तकपर छत्री तानकर बैठा है इसलिये यह बड़ा हठी और मूर्ख है ॥ १२२—१२५ ॥ मार्गमें आगे चलकर एक गांव पड़ा उसे देख कुमारने इंद्रदत्तसे पूछा-मामा ! कृपाकर यह बताओ तो यह गांव उजड़ा हुआ है या वसा हुआ है ? कुमारकी यह बात सुन और उसका असली तात्पर्य न समझ इंद्रदत्तने अपने मनमें विचार किया कि यह बालक पक्का मूर्ख है क्योंकि यह गांव अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम पदा-

मामक ? यावो वां द्विजाग्रे भोजनाय वै । गतौ निर्घाटितौ विप्रैर्द्विजाः पश्चिमवुद्धयः ॥ ११५ ॥ जठराग्निमठं प्राप्य स्थितस्तेन समं मुदा । कुमारं श्रेणिकं मत्वा भोजनादिपुरस्कृतः ॥ ११६ ॥ ततोऽवादीत्तरां बौद्धः श्रेणिक ! श्रृणु मद्वचः । बौद्धं धर्मं गृहाण त्वं येन राज्यं भविष्यति ॥ ११७ ॥ विपदः संपदायंते कष्टं याति विरागवत् । बौद्धधर्मात्परो धर्मो नोऽभून्नैव भविष्यति ॥ ११८ ॥ प्रतिपद्य तदा गंतुमुत्सुकोऽग्रे कुशाग्रधीः । तेनासाविंद्रदत्तेन मार्गे कौतुककृद्धठात् ॥ ११९ ॥ उवाच श्रेणिको धीमान् भो भो मातुल ! शीघ्र-

भोजनके लिये कहें । वस दोनोंके दोनों विप्रके पास गये परंतु उसने इनकी एक भी न सुनी । विप्रोंने उन्हें सूखा ही टाल दिया । ठीक ही है विप्रगण विचित्र बुद्धिके धारक होते हैं—अपने घमंडके सामने किसीको भी नहीं सुनते ॥ ११३—११५ ॥ उसी गांवके अंदर एक बौद्धोंका भी मठ था । कुमार श्रेणिक विप्रोंके उत्तरसे हताश हो मामा इंद्रदत्तके साथ उसी मठमें जाकर प्रवेशकर गये और आनन्दवार्ता करने लगे । वहांपर एक बौद्ध सन्यासी जो कि कुमार श्रेणिकको पहिचानता था, रहता था । कुमार श्रेणिकको पहिचानकर उसने कुमारका भोजन आदिसे पूरा आदर सत्कार किया एवं अंतमें कुमारके संतुष्ट हो जानेपर वह इप्रकार कहने लगा—

प्रिय कुमार ! मालूम होता है तुम राज्य प्राप्तिकी कोई आशा न रख यहां वहां मारे फिर रहे हो और अत्यंत दुःखका अनुभव कर रहे हो । तुम बौद्धधर्मको धारण कर लो । इस बौद्ध धर्मकी कृपासे नियमसे तुम्हे राज्य मिलेगा क्योंकि इसी बौद्ध धर्मकी कृपासे जो घोर विपत्तियां है वे संपत्तियां हो जाती है एवं जिसप्रकार विरागी पुरुष धन धान्य आदिको छोड़ देता है उसीप्रकार बौद्ध धर्मके सेवन करनेवालेको कष्ट छोड़कर भाग जाता है उसे किसी प्रकारका कष्ट भोगना नहीं पड़ता विशेष क्या यह बौद्धधर्म इतना उत्तम धर्म है कि न तो इससे उत्कृष्ट धर्म संसारके अन्दर हुआ न होगा ॥ ११७—११८ ॥ कुशाग्रवुद्धि कुमार श्रेणिकने बौद्धसाधुके कहे अनुसार बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया । सेठ इंद्रदत्तके साथ वे नंदिग्रामसे आगेको चल दिये एवं कौतूहली और बुद्धिमान वह कुमार श्रेणिक मार्गमें इसप्रकार वार्तालाप करता करता चलने लगा—

कथं राज्ञः कोपो वल्लभप्राणहृत् ॥ १०६ ॥ तदा जगाद मंत्रीशो राज्यं नूनं तवैव भो । परंतु शासना राज्ञः पालनीया प्रयत्नतः ॥ ११० ॥
निस्ससार कुमारोऽसौ श्रुत्वा दुर्वचनं हि तत् । भटैः पंचायुतैर्गुप्तैर्मृग्यमाणो विषण्णधीः ॥ १११ ॥ अथ माता तदा श्रुत्वा चक्रं-
देति मनोभव ! हा हा पुत्र ! सुवर्णाभ ? शोभाभृत् सांध्यरागजित् ॥११२॥ मार्गे गच्छन् ददर्शासौ कुमारो मारविग्रहः । नंदिग्रामं गुणा-
रामं दृष्ट्वा कृती न्यवीविशत् ॥११३॥ सभामंडपमासाद्य यावत्पश्यति कौतुकं । तावदग्रे स्थितो दृष्ट इंद्रदत्तो वरार्थिकः ॥११४॥ यदि

कुमार ! यह तुम निश्चय समझो कि राज्य तुम्हारा ही है—तुम्हारे प्रतापके सामने अन्य पुत्र राज्यका अधिकारी नहीं वन सकता परंतु महाराजकी आज्ञा इस समय ऐसी ही है, वह तुम्हे निःसंकोच भावसे इस समय अवश्य पालन करनी चाहिये इसीमें कुशल है ॥ १०२—११० ॥ वलवानके सामने कुछ वश चल नहीं सकता। मंत्रीके उसप्रकारके दुर्वचन सुन कुमार श्रेणिकको बड़ा खेद हुआ एवं वे महाराज उपश्रेणिक द्वारा नियुक्त पांच (?) जासूस सुभटोंकी देख रेखमें खिन्न चित्त नगरसे निकल दिये ॥ १११ ॥ माताका प्रेम विलक्षण होता है कुमारको ऐसी हालतसे चले जानेपर उनकी मा इंद्राणीको बड़ा दुःख हुआ। वह माता हा कामदेव ! हा पुत्र ! हा सुवर्णके समान देदीप्यमान कांतिके धारक ! एवं हा संध्याकालकी ललाईको फीकी करनेवाले कुमार ! तू कहां गया ? इसप्रकार करुणाजनक स्वरसे रोने लगी ॥ ११२ ॥

कामदेवके समान सुंदर शरीरके धारक कुमार श्रेणिकने मार्गमें जाते जाते एक नंदिग्राम नामका गांव देखा जो कि गुणोंका साक्षात् वगीचा स्वरूप था। वह पुण्यवान कुमार उसमें प्रवेश कर गया। गांवके मध्यभागमें राज्यकी ओरसे बने सभा मंडपके पास पहुंचकर कुमार चकित दृष्टिसे उसे देख ही रहे थे कि सामने एक इंद्रदत्त नामका वैश्य दीख पड़ा। अपने समान उसे भी पथिक जान उसे मामा बनाया और उससे इसप्रकार कहने लगे—राज्यकी ओरसे यहांपर एक दान-शाला खुली हुई है उसका स्वामी.एक विप्र है। आओ अपन दोनों उसके पास चलें और उससे

राजा 'सुखिनं कृत्वा गतः श्रेणिकस्तत्रो। समाभाष्य शुभैर्वाक्यैर्व्याजहार गिरं गुरु ॥ १०३ ॥ नो पुत्र ! श्रूयतामद्य महान् कोपोस्ति भूपतेः कुतो मं त्रैस्त्वकं ब्रूहि ? कुमार ! श्रूयतां वचः ॥ १०४ ॥ कस्माश्चित्पुरुषात् राज्ञा श्रुतं निंद्यं कदर्यमा । पुरश्वैर्नि-तरां भुक्तं तद्भुक्तं श्रेणिकेन च ॥ १०५ ॥ इति राज्ञो महाद्वेषो वभूव तवकोपरि। तस्मात्क्षणं विलंब्यो न राज्ञः कोपो हि दुर्गमः ॥ १०६ ॥ विद्याविभववाणिज्यं व्यसनं वै विचित्रता । वादो वाणीविलासश्च भ्रश्यंते राजकोपतः ॥ १०७ ॥ इति श्रुत्वा कुमारोऽसौ व्याजहार वरं वचः । यकैर्भोज्यं न रक्ष्येत राज्यं रक्ष्येत तैः कथं ॥ १०८ ॥ वदिष्यंतीति लोकौघाश्चातुर्याभोजि मे ततः । विधीयते

कुमार ! राजगृह नगरमें इस समय तुम्हारा रहना उचित नहीं क्योंकि महराज तुम्हारे ऊपर इस समय अत्यंत कुपित हैं। मंत्रीकी यह आश्चर्य भरी बात सुन कुमारने पूछा—महाराजका कोप मेरे ऊपर क्यों है ? मंत्रीने उत्तर दिया—महाराज उपश्रेणिकने किसी पुरुषके मुखसे यह निंदित और क्षुद्र बात सुनी है कि कुमार श्रेणिकने कुत्तोंका झूठा खाया है, जीमते समय कुत्तोंके आजा-नेपर जिसप्रकार और कुमार उठकर खड़े हो गये वह नहीं उठा था-जीमता ही रहा था, वस तुम्हारे ऊपर यही राजाके कोपका कारण है। तुम्हे अब क्षण भर भी यहां नहीं रहना चाहिये क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'राजाका क्रोध महा दुर्गम—भयंकर होता है। राजाके क्रोधके सामने विद्या ऐश्वर्य व्यापार विशिष्ट भोजन चातुर्य वाद करना और सरस्वतीका विलास, सबके सब एक ओर किनारा कर जाते हैं—रंचमात्र भी किसीका आदर नहीं होता। मंत्रीकी यह विचित्र बात सुन कुमारने मनोहर वचनोंमें यह उत्तर दिया—

भाई मंत्री ! तुम्हारी बात मुझे युक्ति पूर्ण नहीं जचती। आश्चर्यकी बात है कि जो अपने भोजनकी रक्षा नहीं कर सकते वे राज्यकी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं ? भाई ! सारा संसार यह कह रहा है कि मैंने बड़ी चतुरता और वीरतासे भोजन किया है और वास्तवमें मेरा उसी तरह भोजन करना उपयुक्त था परंतु वल्लभ—अपने प्रिय पुत्रके प्राणोंका हरण करनेवाला महाराजका यह कोप क्यों ? कुमारका यह युक्तिपूर्ण उत्तर सुन विज्ञ भी मंत्रीसे कुछ भी जवाव न

॥ ९८ ॥ देशाधीशा जिताः सर्वे नमंति त्वां नराधिपं। किन्नूनं विद्यते स्वामिनित्युक्त्या यो षमाश्रितः ॥ ९९ ॥ श्रुत्वाहासौ नराधीशः सुमते ! श्रूयतां वचः। राज्यं चलातिपुत्राय पुरा दत्तं मया मुदा ॥ १०० ॥ निमित्तज्ञानतो नूनमाधिपत्यं महर्द्धिकं। अधिश्रेणिकमस्त्येव चिंतायाः कारणं, त्विदं ॥ १०१ ॥ जगौ मंत्री तदा सुज्ञः सुखं तिष्ठ नराधिप ! । श्रेणिकं देशतो नूनं निर्गमयामि सांप्रतं ॥ १०२ ॥

वासमें बहुतसी रानियां हैं जो कि हरिणियोंके समान सुंदर नेत्रवाली हैं। बुद्धिपूर्वक बड़े प्रेमसे आपकी सेवा करनेवालीं हैं। अपनी सुंदरतासे चित्त चुरानेवालीं हैं। स्तनोंके भारोंसे आगेको कुछ झुकी हुईं हैं एवं चंद्रमाके समान मनोहर मुखोंकी धारण करनेवालीं हैं ॥ ९७—९८ ॥ देशोंके स्वामी जितने राजा थे वे समस्त आपने जीत लिये जिससे वे आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं इस रूपसे जब आपके कोई बातकी कमी नहीं दीख पड़ती फिर नहीं मालूम होता आप किस चिंतामें भीतर ही भीतर घुले जाते हैं—कौन चिंता आपके पीछे लगी हुई है। बस इतना कहकर जब मंत्री सुमति चुप रह गया तब उत्तरमें महाराज उपश्रेणिकने कहा—

प्रियमंत्री सुमति ! तुमने जो कुछ भी कहा है सब ठीक है परंतु मेरी बात सुनो—मैं पहिले प्रसन्नता पूर्वक चलाती पुत्रको राज्य देनेका वायदा कर चुका हूं परंतु ज्योतिषीने अपने निमित्त ज्ञानसे राज्यप्राप्तिके जो भी निमित्त बतलाये हैं उनसे इस विशाल राज्यका अधिकारी श्रेणिक ही सिद्ध होता है बस मेरी सारी चिंताका कारण यही है क्योंकि ऐसा होनेसे मैं वचन हार होता हूं ॥९९—१०१ ॥ मंत्री सुमति बुद्धिमान था। महाराज उपश्रेणिककी यह आत्मकहानी सुन उसने कहा—महाराज आप सुखपूर्वक रहें, कुमार श्रेणिकको मैं अभी देशसे बाहिर किये देता हूं। श्रेणिकके चलेजानेपर आप चलाती पुत्रको राज्य देकर अपने वचनकी रक्षा कर सकते हैं। बस इसप्रकार राजाको प्रसन्न कर मंत्री सुमति कुमार श्रेणिकके पास गया। पहिले तो मीठे २ वचनोंमें बात चीत की पीछे कुछ चेहरेपर गौरव लाकर गंभीर वचन बोलने लगा—

करोमि गुणप्रियः ॥ ६३ ॥ नार्पयामि यदा राज्यं चलातिसूनवे भृशं । याति वाक्यं मदीयं वे वैयर्थ्यं जीवितं तदा ॥ ६४ ॥ वचनं हारितं येन तेन पुण्यादि हारितं एवं तं चिंतया ग्रस्तं दृष्ट्वामात्यो जगाद भो । सुमत्याख्यो गुणाम्भोधिः सभ्यश्चिंतानिवर्तकः ॥६५॥ राजंस्तेऽस्ति च का चिंता गर्जंति गजराजयः । मदोन्मत्तामहातुंगा पुष्करोद्गगनस्पृशः ॥ ६६ ॥ जविनस्ताण्डवारंभकुशला जयशालिनः । ह्रेषति सुभटाग्रण्यो योद्धारश्च रणाजिरे ॥ ६७ ॥ मृगीदृशो महाप्रीत्या सेवंते त्वां विवेकतः । चित्तस्तेयास्तनोद्धारनमिता रात्रिपाननाः

कुमार श्रेणिकको ही पाया इस लिये बड़ी भारी चिन्ता उनके हृदयमे प्रविष्ट होगई एवं वे मन ही मन दुःखित हो इस प्रकार विचारने लगे—

मैं चिलाती पुत्रको राज्य देनेका पहिले संकल्प कर चुका हूं परन्तु ज्योतिषी द्वारा बतलाये गये निमित्तोंसे राज्यका अधिकारी गुणोंका प्रेमी कुमार श्रेणक ही सिद्ध होता है ऐसी हालतमें क्या करूं । यदि मैं चलाती पुत्रको राज्य न देकर कुमार श्रेणिकको देता हूं तो मैं पहिले जो वचन दे चुका हूं वह व्यर्थ होता है एवं वचनके व्यर्थ होनेपर मेरे जीवनका कोई मूल्य नहीं होता क्योंकि संसारमें यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जो वचन हार हो गया वह पुण्य आदि सब ही उत्तम गुणोंका हारनेवाला हो गया—वचन हारनेवालेकी आत्मामें पुण्य आदि कभी स्थान नहीं पा सकते । इसलिये मुझे क्या करना चाहिये कुछ सूझ नहीं पड़ता ? महाराज उपश्रेणिकके प्रधान मंत्रीका नाम सुमति था । वह मंत्री सुमति गुणोंका समुद्र था । अत्यंत सभ्य था एवं चिंताको दूर करनेवाला था । अंतरंग चिंतासे ग्रस्त महाराज उपश्रेणिकको उसने ताड़ लिया और शांति जनक मीठे शब्दोंमें वह उनसे यह कहने लगा—

महाराज ! आपके हाथियोंके समूहके समूह विद्यमान हैं । जो कि मदोन्मत्त हैं । खूब ऊंचे ऊंचे हैं एवं अपनी सूंड़से आकाशको स्पर्श करनेवाले हैं ॥ ६२—६६ ॥ आपके बहुतसे घोड़े हींस लगाते हैं जो कि अपनी चालसे तांडव नाच नाचते हैं और पवनके समान शीघ्रगामी हैं । बडे बडे सुभट और योद्धा भी आपके यहां मोजूद हैं जो कि रणके मैदानमें गर्जनेवाले हैं । आपके रण-

कुंभान् जलैःपूर्णान् समुद्रान् वस्त्रसंस्कृतान् ॥८९॥ कृत्वा प्रत्येकपुत्रेभ्य एकैकः स प्रदीयतां। उच्यतामिति भो पुत्र! अनुद्घाट्य सुभुंजत ॥ ९० ॥ तथा करिष्यति हे राजन्नाधिपत्याधिपो हि सः। एवं पंचनिमित्तांकान्निगद्य विरराम सः ॥९१॥ तथाकार्षीन्नराधीशो लक्षणैश्च परीक्षणं। श्रेणिकं राज्यनाथं हि मत्वा चित्तेऽन्वचिंतयत् ॥ ९२ ॥ अहो चलातिपुत्राय दत्तं राज्यं मया पुरा। लक्षणैः सत्रयं राजा किं

तयार हो जाय समस्त पुत्रोंको बुलाकर एक पंक्तिमें जीमनेके लिये बिठा दीजिये और पीछे से उनपर भयंकर कुत्तोंको छोड़ दीजिये जो प्रतापी पुत्र अपनी उग्र शक्तिसे उन कुत्तोंको हटाकर सानन्द भोजन करता रहेगा समझ लीजिये महाराज! वही अपने मनोहर रूपसे कामदेवको भी जीतने वाला कुमार राजा बनेगा अन्य नहीं। राज्य प्राप्तिका चौथा निमित्त यह है कि नगरमें आग लगानेपर जो पुत्र राज्यके मुख्य चिन्ह छत्र चमर और सिंहासनको लेकर भागे वस वही राजा बननेका अधिकारी है अन्य नहीं। तथा राज्यप्राप्तिका पांचवा निमित्त यह है कि आप खाजे और लाडुओंसे भरवाकर पिटारोंको रखवा दीजिये और जलसे परिपूर्ण कोरे घड़े जिनपर कि मोहर लगी हो और जिनका मुख वस्त्रसे ढांका हुआ हो रखवा दीजिये जिस समय यह कार्य हो चुके उस समय आप समस्त पुत्रोंको बुलाइये। उन्हें एक एक पिटारा और एक एक जलसे भरा घड़ा दीजिये और यह आज्ञा कर दीजिये कि वे पिटारे और घड़ोंका मुख खोले बिनाही खाजे आदि पदार्थ खावें और पानी पीवें। समस्त पुत्रोंमें जो प्रतापी पुत्र यह कार्य करेगा बस वही राजा बनेगा अन्य राज्यका भार नहीं सह सकता। बस राज्यकी प्राप्तिके पांच निमित्त बतलाकर वह ज्योतिषी चुप रहगया ॥८५—९१॥ ज्योतिषीके कहे अनुसार महाराज उपश्रेणिकने भी पूर्वोक्त निमित्तोंसे राज्यकी प्राप्तिके योग्य पुत्रकी परीक्षा करनी प्रारम्भ कर दी। समस्त परीक्षाओंमें पास

१ कुमार श्रेणिकने ओसके जलसे पूर्ण घासपर कपड़ा बिछाकर और उसे नीचोड़कर घड़ा भर लिया था और किसी पुत्रको यह अकल नहीं सूझी थी। २ कुमार श्रेणिकने पिटारा हिला २ कर चूर कर सब माल खा लिया था। घड़ा टेढ़ाकर पानी पी लिया था।

को भविष्यति । लग्नं विचिंत्य च दृष्टं स्वामिदृष्टं शुभाश्रितं ॥८२॥ योगाधियोगिकः प्राह श्रृणु सामंतनायक ! शर्कराकुंभको देयः प्रत्येकं सर्वसतुजां ॥ ८३ ॥ कुंभमन्येन गोधेन यः सद्म प्रति नेष्यति । राज्यभाजं विजानीयाः प्रांशुलं गतविद्विषं ॥ ८४ ॥ ओसजैः सलिलैः कृत्वा भृत्वा कुंभं समेष्यति । राज्यभाजं विजानीयास्तृतीयांकं निगद्यते ॥ ८५ ॥ नानाव्यंजनसद्भोज्यं पूपापायससंयुतं । कारयित्वा सुतान् सर्वान्नेकपंक्तौ निवेशय ॥ ८६ ॥ शुनकान् मोचयेः पश्चात्तान्निवार्य भुनक्ति यः । राज्याधिपं त्वकं विद्धि रूपनिर्जितमन्मथं ॥८७॥ दह्यमाने पुरे यस्तु छत्रचामरविष्टरं । नीत्वा प्रयाति राजा स पंचमांकं समुच्यते ॥८८॥ खज्जलालुकपर्यातान् करण्डान् सं विधाय च । कौर

प्रिय ज्योतिषी । तुम अनेक प्रकारकी कला और कौशलोंके पारगामी हो कृपाकर बताओ तो कि मेरे इन समस्त पुत्रोंमें राज्य प्राप्त करने वाला कौन पुत्र होगा ? क्योंकि जो बात लग्न विचारकर देखी जाती है और जो स्वामी भगवान केवली द्वारा देखी जाती है वह शुभजनक अर्थात् ठीक ही निकलती हैं ॥८०--८२॥ वह ज्योतिषी समस्त ज्योतिषियोंमें मुख्य था । महाराज उपश्रेणिकके ऐसे वचन सुनकर वह कहने लगा—हे अनेक सामन्तोंके स्वामी राजा ! मैं राज्यकी प्राप्तिके कुछ निमित्तोंका वर्णन करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

महाराज । राज्यकी प्राप्तिका सबसे पहिला निमित्त यह है कि आप अपने सब पुत्रोंको बुलाइये और उन्हें अपने अपने घर ले जानेके लिये एक एक घड़ा दीजिये जो प्रतापी पुत्र उस घड़े को अपने शीशपर्यन्त रखकर किसी अन्य मनुष्य (चाकर) के शिरपर रखवाकर अपने घर ले जाय, समझ लो राज्यका प्राप्त करने वाला वही है और वही बलवान और शत्रुओंका वश करनेवाला है अन्य नहीं ॥८३—८४॥ दूसरा, राज्यकी प्राप्तिका निमित्त यह है कि आप अपने समस्त पुत्रोंको बुलाकर प्रत्येकको एक एक कोरा घड़ा दीजिये और यह आज्ञा कीजिये कि हर एक कुमारको ओसके जलसे भरकर घड़ा लाना होगा जो प्रतापी कुमार घड़ाको ओससे भरकर ले आवे समझ लो वही राज्यकी धुरा धारण कर सकता है अन्य नहीं । राज्यकी प्राप्तिका तीसरा निमित्त यह है कि पूआ खीर आदि नाना प्रकारके व्यंजनोंसे महा मिष्ट भोजन आप तयार कराइये । जिस समय भोजन

लासैश्च सु'बनैरंभणैस्तथा । रेमे राजा रतिक्रीड़ापर्वते स्ववने गृहे ॥ ७८ ॥ पुत्रो जातस्तयोः क्रीड़ाशक्तयोर्लक्षणान्वितः । चलातीत्यभिधो वालो ववृधे वालचंद्रवत् ॥ ७६ ॥ यौवनाढ्यो यदा जातश्चिंतयामास भूपतिः । राज्यं हि श्रेणिकस्यैव वरो दत्तोऽसमकैं मया ॥ ८० ॥ संचित्येत्थं निमित्तज्ञं समाहूय जगाविति । भो भो निमित्तसंज्ञानिन् कलाविज्ञानपारग ! ॥ ८१ ॥ एतेषां मम पुत्राणां राज्यभाक्

न कर राजा यमदण्डकी वात उन्होंने स्वीकार कर ली। सुन्दरी तिलकवतीके साथ उनका विवाह हो गया। राजा यमदण्डकी सेनासे वेष्टित हो बड़े ठाट वाटसे वे अपने राजधानीकी ओर चल दिये एवं अपने नगरमें प्रवेश कर गये ॥७३-७६॥ अपने महाराजकी फिरसे प्राप्ति दुर्लभ जान नगर निवासियोंको बड़ा आनन्द हुआ। महाराजकी प्राप्तिकी खुशीमें राजगृह नगर ध्वजा पताका तोरण आदिसे सजा दिया गया एवं समस्त सामंत मन्त्री आदिने भगवानकी पूजा अभिषेक आदि मंगलीक कार्य किये ॥७७॥ राजमहलमें प्रवेश कर राजा उपश्रेणिक रतिक्रीडाके योग्य पर्वत वगीचे और महलोंमें रमणी तिलकवतीके साथ सानन्द भोग भोगने लगे। कभी तो महाराज उपश्रेणिकने नानाप्रकारके हाव भाव और विलासोंके साथ भोगोंके सुखोंका अनुभव किया एवं कभी कभी वे चुम्बन और आलिंगनोंसे भोगोंका रस आस्वादने लगे ॥७७—७८॥ नानाप्रकारकी क्रीडाओंमें आसक्त उन दोनोंके भोगोंका फलस्वरूप एक पुत्र हुआ जो कि राजलक्षणोंसे युक्त था 'चलाती, इस शुभ नामका धारक था एवं वह पुत्र वाल चन्द्रमाके समान दिन दिन बढ़ने लगा ॥७६॥कामांध महाराज उपश्रेणिक चिलाती पुत्रको राज्य देनेका वायदा कर चुके थे इसलिये जिस समय कुमार चिलाती युवा हो गया महाराज उपश्रेणिकको चिन्ताने अपना स्थान बना लिया। वे मन ही मन सोचने लगे कि सब पुत्रोंमें कुमार श्रेणिक राज्यके योग्य है इसलिये हक प्राप्त तो राज्य श्रेणिकका ही है परन्तु मैं चिलाती पुत्रको उसे देनेका वायदा कर चुका हूं ऐसी दशामें क्या करूं ? बहुत कुछ सोच विचारके वाद महाराज उपश्रेणिकने ज्योतिषी बुलाया और उससे इस प्रकार कहने लगे—

॥ ७३ ॥ अतः पुत्र्याः सुखं न स्यात् पुत्रो भावी न वा प्रभो ! भविष्यत्यथ वा पुत्र. सेवया जीवितं वृथा ॥ ७४ ॥ मत्पुत्रीजाय राज्यं चेद्ददासि त्वं यदा तदा । ददामि पुत्रिकां तुभ्यं प्रतिज्ञा तथैव तत् ॥ ७५ ॥ उररीकृत्य सुता तस्य यस्य सैन्यविराजितः । जंगम्यते स्म राज्ये स्वे विवेश नगरं निजं ॥७६॥ उत्ताकं पुरं कृत्वा तोरणादिभूत्सवं । सर्वसामंतसंयुक्तो विदधुर्मंगलक्रियां ॥ ७७ ॥ हावैभावैर्वि

कर महाराज उपश्रेणिकका चित्त ठिकाने न रहा । वे हृदयसे मोहित हो गये एवं अपने मनोहर दांतोंकी प्रभासे विशाल सभाको शोभायमान करनेवाले वे महाराज उपश्रेणिक भिल्लराज यमदंडसे कन्या तिलकवतीकी याचना कर बैठे ॥ ७२ ॥ राजा यमदंडने महाराज उपश्रेणिककी जिस समय यह याचना सुनी तो वह उनकी प्रार्थना नामंजूर तो न कर सका क्योंकि महाराज उपश्रेणिक नीतिपूर्वक प्रजाके पालन करनेवाले एक महान् राजा थे परंतु वह अपनी पुत्रीकी कल्याणकी च्छासे इसप्रकार कहने लगा—

कृपानाथ ! आप इससमय एक प्रधान राजा माने जाते हैं और आपके रणवासमें अगणित सुंदरियां मोजूद हैं जो कि सुंदरतामें एकसे एक बढ़ी चढ़ी हैं, संभव है उनकी मोजुदगीमें मेरी पुत्री तिलकवतीको सुख चैन न मिले । अथवा पुत्रकी उत्पत्तिसे स्त्रियां विशेष सुख अनुभव करती हैं संभव है इसके पुत्र न हो जिससे भी इसे कष्ट भोगना पड़े । अथवा शुभ भाग्यसे उसके पुत्र भी हो जाय परन्तु अन्य पुत्रोंके विद्यमान रहते वह राजा न बन सके उनका सेवक ही बना रहे ऐसी दशामें भी मेरी पुत्रीको सुख मिलना कठिन है क्योंकि सेवासे जीवनका बिताना निरर्थक समझा जाता है इसलिये पुत्रीके सुखकी अभिलाषासे मेरी यह प्रार्थना है कि यदि आप यह बात स्वीकार करें कि इस पुत्रीसे जो पुत्र हो वही राज्यका अधिकारी समझा जाय उसके रहते अन्य कोई पुत्र राजा न बनाया जाय तो मुझे आपको पुत्री देनेमें कोई उज्र नहीं-मैं सहर्ष उसे आपको प्रदान कर सकता हूं । महाराजा उपश्रेणिक तो उससमय कामांध थे । योग्य अयोग्यका कुछ भी विचार

पप्रच्छ परमानन्दवाक्यैर्ललितविग्रहः। राज्ञा प्रोक्तं च तद्वृत्तं विचित्रा कर्मणां गतिः ॥ ६७ ॥ माहोश्रेणिको श्रीमान् कोऽसि त्वं वससि क्व च। स्वीयराज्यप्रणाशत्वादत्रैव वसतिर्मम ॥ ६८ ॥ एहि राजन्! ममागारे देहपीडापनुत्तये। गत्वाचारं समालोक्य प्रोवाच वचनं क्षितीट् ॥ ६९ ॥ नो भुनज्मि तवागारे स्वाचारपरिवर्जिते। तदाह यमदंडाख्यः शृणुतादृचनं मम ॥ ७० ॥ तिलकादिवती पुत्री सामुद्रलक्षणांकिता। पथ्यं विधाय सद्भक्त्या भोजयिष्यति भूपते ? ॥ ७१ ॥ स्वंजं भूपनिर्भक्त्या तन्या रूपेण मोहितः। ययाचे ता यमं भूपं द्विजश्रीराजितोत्सभः (य.) ॥ ७२ ॥ तदा(?)क्षोयमो प्रोत्या भूपाल पालितप्रज। तत्रैव सुंदरीव्रातो विप्रतेऽत्यंतरूपवान्

नीचेसे ऊंचापन और ऊंचेसे नीचापन होगा किसीको जान नहीं पड़ता। अंतमें महाराज उपश्रेणिकने कहा—

प्रिय महानुभाव! तुम कौन हो और तुम्हारा निवासस्थान कहां है? उत्तरमें भिल्लराज यमदंडने कहा—राजन्! जिस समय मेरा राज्य मेरे हाथसे चला गया और मैं राज्यरहित हो गया तबसे मैं इसी वनमें आ गया हूं और यहींपर रहने लगा हूं। भयंकर गढेमें गिरनेसे आपका शरीर पीड़ायुक्त हो गया है कृपाकर इस पीड़ाकी निवृत्तिके लिये आप मेरे घरपर चलें। भिल्लराजकी प्रार्थना राजा उपश्रेणिकने मंजूर करली। वे उसके साथ चले आये। घरमें आकर जिस समय उन्होंने यमदंडका आचार भीलों सरीखा देखा उन्हें वह सहन न हो सका इसलिये शीघ्र ही उन्होंने यमदंडसे कहा—भाई यमदंड! तुम्हारा घर स्वाचार—श्रावककी क्रियायोंसे रहित है मैं तुम्हारे घरमें भोजन नहीं कर सकता। उत्तरमें यमदंडने कहा—कृपानाथ! यदि यही बात है तो आप मेरी बात सुनें—। मेरे एक तिलकवती नामकी पुत्री है। सामुद्रिक शास्त्रमें कहे गये शुभ लक्षणोंसे युक्त है। श्रावकोंके घरमें जैसी भोजन क्रिया प्रचलित है वैसा ही भोजन बना सकती है इसलिये भक्तिपूर्वक वह आपके अनुकूल भोजन बनाकर आपको जिमा सकती है। महाराज उपश्रेणिकने यमदंडकी यह प्रार्थना स्वीकार करली एवं वे उसके हाथका बना महामिष्ट भोजन करने लगे ॥ ६४—७१ ॥ वह कन्या तिलकवती परम सुंदरी थी। उसका सौंदर्य और गुण देख

हा देव ! हा हा किं दुष्कृतं कृतं ॥ ६१ ॥ मुनीनां निंदया कंदमूलादिना सुभक्षणात् । धर्मवाक्योपघातान्मे पातकं समुपस्थितं ॥ ६२ ॥ दुर्गंधे नरकात्तत्र चकाण व्यथितो नृपः । जपन् जापं स्थितो यावत्तावदन्यकथांतरं ॥ ६३ ॥ अथ वैवच्छवासाल्यपल्यामभिधया यमः । स जात्या क्षत्रियो राजा भिल्लानां विद्यते भृश ॥ ६४ ॥ विद्युन्माली प्रिया तस्य पुत्र्यस्ति तिलका तयोः । क्रीड़ार्थं चागतः सोऽपि ददर्श पतितं नृपं ॥ ६५ ॥ दध्यौ तदा यमः प्रायः क्वायं राजगृहाधिपः । क्वात्रस्थेयं विचिंत्येत्थमद्रिनो राजसन्निधौ ॥ ६६ ॥

आपसे जुदा होना पड़ा ॥ ६०—६१ ॥ हाय क्या मैंने मुनियोंकी निंदा की थी वा कंद मूल आदिका भक्षण किया था अथवा धर्मवाक्योंका उल्लंघन किया था जिससे तीव्र पापका बंध होकर मुझे यह दुःख भोगना पड़ा ॥ ६२ ॥ राजा उपश्रेणिकके कुटुंबी जन तो इधर इसप्रकार दुःख मना रहे थे उधर जिस गढ़ेमें घोड़ाने उन्हें ले जाकर डाला था वह गढ़ा नरकसे भी अधिक दुर्गंधमय था इसलिये उन्हें बड़ी व्यथा होने लगी । उन्हें उस समय सिवाय परमात्माके शरणके अन्य किसीका भी शरण न सूझ पड़ा इसलिये वे उन्हीके नामका जप वहां बैठकर करने लगे ॥६३॥ जिस बनके गढेमें महाराज उपश्रेणिक पडे थे उसी वनमें एक वैवच्छ(स्थ) वास नामकी भीलोंकी पल्ली थी । उस पल्लीका स्वामी यम (यमदंड) नामका भीलोंका राजा था जो कि क्षत्रिय जातिका था और सदा वहींपर रहता था । राजा यमदंडकी स्त्रीका नाम विद्युन्माली था । उससे उत्पन्न एक परम सुंदरी कन्या थी जिसका शुभ नाम तिलका (तिलकवती) था। क्रीड़ाका प्रेमी वह भिल्लराज यमदंड उस गढेके पास आ निकला और गढेमें शोचनीय अवस्थामें पड़े राजा उपश्रेणिकको उसने देखा । प्रसिद्ध महाराजको इसप्रकार बुरी हालतमें देख वह विचारने लगा कि-देखो कर्मकी विचित्रता, कहां तो यह राजगृहपुरका स्वामी उपश्रेणिक और कहां इसकी यह दुःखमय शोचनीय अवस्था ! बस वह शीघ्र ही राजाके बिलकुल पास पहुंच गया एवं मनोहर शरीरका धारक वह मीठे प्यारे शब्दोंमें कुशल पूछने लगा । महाराज उपश्रेणिकने भी जो बात जिसतरह बीती थी सारी कह सुनाई । रंचमात्र भी न छिपाई क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र है—किस समय

सत्कोऽहं सुवनं ययौ ॥५७॥ दुर्मुखो दुष्टचरको नोत्याऽश्वकः प्रगर्तके। अत्रोक्षि राज्ञः क्वापि दुर्निरीक्ष्यं हि दैवतं ॥ ५८ ॥ अहो लुलोकयामासुः श्रेणिकाद्याः सुताः परे क्वापि दृष्टो न भूपालो व्याघुट्य सद्मनि स्थिताः ॥ ५९ ॥ अथो इंद्राणिका राज्ञी विललापा-पतद्भुवि। गाढं चक्रंद हारादत्रोटयद्वेणिकां त्वपि ॥ ६० ॥ हा हा नाथ! गतोऽसि क्व मां त्यक्त्वा त्वं दुराशयां। हा प्राणनाथ!

वह उपाय मुझे करना चाहिये" ऐसा अपने चित्तमें विचार करने लगा। थोड़ी देर विचार करनेके बाद उसने एक मायामयी घोड़ा तयार किया जो कि अशिक्षित और दुष्ट था एवं उस घोड़ाको तथा और भी मुक्ताफल आदि मनोहर चीजोंको राजा उपश्रेणिककी सेवामें भैंट स्वरूप भेज दिया ॥ ४९—५६ ॥ राजा सोमशर्माकी भेजी हुई भैंट जिससमय महाराज उपश्रेणिकने देखी वे अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए। भेटकी चीजोंमें सबसे उत्तम घोड़ा उन्हें जना पड़ा इसलिये उसके अच्छे बुरेकी परीक्षा करनेके लिये वे शीघ्र ही उसपर सवार हो लिये और उत्तम क्रीड़ाके स्थान वनकी ओर चल दिये। वह दुष्ट घोड़ा सर्वथा अशिक्षित था चित्तमें दुष्ट अभिप्राय धारण किये था। बस जिस समय वह बनके अन्दर पहुंचा शीघ्र ही उसने किसी भयंकर गढ़ेमें महाराज उपश्रेणिकको डाल दिया और तत्काल कहीं चला गया ठीक ही है भाग्यकी महिमा दुर्निरीक्ष्य है-क्यासे क्या होगा, यह सूझ नहीं पड़ता ॥ ५६ ५८ ॥ महाराज उपश्रेणिकके इसप्रकार लापता हो जानेपर उनके श्रेणिक आदि पुत्रोंको बड़ा दुःख हुआ। अपने पूज्य पिताको वे इधर उधर खोजने लगे जब कहीं भी उनका पता न लगा तो वे समस्त पुत्र लौटकर अपने राजमहल चले आये ॥ ५९ ॥ अचानक ही महराजके लापता हो जानेपर महाराणी इंद्राणी विलाप करती करती जमीनपर गिर गई। दयाजनक रोने लगी। हार आदि भूषण तोड़कर फैंक दिये। चोटीके बाल बिखर गये एवं इसप्रकार कहने लगी—हा स्वामी! मुझ अभागिनीको छोड़कर आप कहां चले गये। हा प्राणप्यारे देव! मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था जिसका फल यह हुआ कि मुझे

कस्येदं दूत सत्पत्रं प्रोवाच मतिसागरः । राजगृहपुराधीशा राजोपश्रेणि-
हुवीविशत् । पत्रं नत्वैव पप्रच्छ सोमशर्माभिधश्च तं ॥ ४९ ॥ स्वस्तिश्रीदं निपत्याशु मारुदेवं मनोहरं ॥ ५१ ॥ राजमहात्पुरात्
केनान्न ॥ ५० ॥ प्रेषितं भो नराधीश ! श्रुत्वा पत्रं लुलोक सः । सर्वे सामंतभूपाश्च शासनं पालयंति मे । क्षुद्र-
श्रीमान् महाराजोपश्रेणिकः प्रणिगदति शुभार्थं वै चंद्रपुर्यां च तत्पतेः (तिः) ॥ ५२ ॥ श्रुत्वेति पत्रसद्भावं प्रतिपद्य ससर्ज तं ॥
स्त्वं च कथं सेवां नाकरोषि स्वगर्वतः ॥ ५३ ॥ यदि राज्ये भवेदाशा ह्यागंतव्यं त्वया तदा । ध्यात्वेत्थं विनयं कृत्वा श्रोटकं
५४ ॥ चिंतयामास चित्ते स्वे सोमशर्माभिधो नृपः । येनोपायेन पंचत्वं प्राप्नोति तं करोम्यहं ॥ ५५ ॥ परीक्षार्थे वदित्वासौ
दुर्धर दृढं । मुक्ताफलादिसद्वस्तुप्राभृतं प्राहिणोत्तक ॥ ५६ ॥ तदोपश्रेणिको दृष्ट्वा मुमोद मानसे स्वके ।

आज्ञासे वह चंद्रपुरकी ओर चल दिया । सभामें पहुंचकर राजाको नमस्कारकर और पत्र देकर अपने योग्य स्थानपर बैठ गया । पत्र पाकर राजा सोमशर्माने कहा—अरे दूत ! कहांसे तू आया और किसका यह पत्र लाया है ? उत्तरमें दूतने कहा--राजन् ! राजगृहके स्वामी प्रसिद्ध राजा उपश्रेणिक हैं उन्होंने ही यह पत्र आपके लिये भेजा है । दूतके मुखसे यह वचन सुन राजा सोमशर्माने पत्र हाथमें ले लिया और उसे अपने मंत्रीको वांचने दे दिया वह भी स्वस्ति और लक्ष्मीको प्रदान करनेवाले महा मनोहर सिरनामेंपर लिखे हुये भगवान ऋषभदेवके वाचक शब्दोंको अर्थात् सिरनामेको छोड़कर जो कुछ भी उसमें आज्ञा लिखी थी इसप्रकार उसे वांचने लगा—

चंद्रपुरीमें उसके स्वामी राजा सोमशर्माके कल्याणकी अभिलाषासे राजगृहपुरसे श्रीमान् महाराजा उपश्रेणिक यह आज्ञा प्रदान करते हैं कि समस्त बड़े बड़े सामंत और राजा विनयपूर्वक मेरी आज्ञाका पालन करते हैं उनके सामने तुम बहुत क्षुद्र राजा हो परंतु अहंकारके पुतले होकर मेरी आज्ञा स्वीकार नहीं करते, यह सर्वथा अनुचित है । आजतक जो हुआ सो हुआ परंतु अबसे तुम्हारे लिये मेरी यह आज्ञा है कि यदि तुम्हें राज करनेकी इच्छा है तो तुम यहांपर आओ और मेरी सेवा करो । बस पत्रके लेखको इसप्रकार सुनकर और उसका भीतरी तात्पर्य समझकर दूतको तो विदा कर दिया मन "राजा उपश्रेणिक जिस उपायसे प्राण रहित हो जायं

राज्यलक्षणलक्षितः ।श्रेणिकाख्यो वरीयांश्च रूपराजतमन्मथः ॥ ४५ ॥ अन्ये पंचशतान्येव पुत्रा आसन् सुभूपतेः । तैः साकं त्रिविधान् भोगान् भुंजन् स सुखतः स्थित ॥ ४६ ॥ अथ चंद्रपुराधीशः सोमशर्मातिविश्रुतः । मनुते नैव भूपस्य शासनं शुभशासनं ॥ ४७ ॥ तत्रोपश्रेणिको राजाऽलीलिखत्सद्दलं वरं । दत्त्वा दूतकरे शीघ्रं प्रेषयामास तं प्रति ॥ ४८ ॥ मतिसागराभिधो दूतो गत्वा दत्त्वा न्य-

सरीखी थी और वह मुखरूपी चंद्रमासे अमृत पीनेकी अभिलाषासे उसके मस्तकपर विद्यमान थी ऐसी जान पड़ती थी। उस महाराणीका ललाट भाग आधे चंद्रमाके समान शोभायमान था क्योंकि चंद्रमा जिसप्रकार हिरणके चिह्नका धारक माना जाता है, लालाट भी नेत्ररूपी हिरणोंका धारक था। चंद्रमा जिसप्रकार मंडलके बीचमें (पारसेमें) रहता है ललाट भी सुवर्णमयी कुंडलरूपी चक्रके अर्ध भागमें था। इसप्रकार अपने मनोहर रूपसे कामदेवके समान वह राजा प्रीतिपूर्वक उस रानी इंद्राणीके साथ जुदी जुदी ऋतुओंके नानाप्रकारके भोग भोगता था एवं हास्य; नानाप्रकारकी क्रीड़ा और विनोदोंसे वह भोगोंकी सुंदरताका अनुभव करता था ॥ ४०—४४ ॥

महाराज उपश्रेणिकके महाराणी इंद्राणीसे उत्पन्न पुत्र श्रेणिक था। वह कुमार श्रेणिक उत्तमोत्तम राजलक्षणोंसे मंडित था। उत्कृष्ट था और अपने मनोहर रूपसे कामदेवकी तुलना करता ॥ ४५ ॥ कुमार श्रेणिकके सिवाय राजा उपश्रेणिकके और भी पांचसौ पुत्र थे जिनके साथ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ वह राजा सुखपूर्वक काल व्यतीत करता था ॥ ४६ ॥

इसी पृथ्वीपर एक चंद्रपुर नामका नगर है। चंद्रपुर नगरका स्वामी उस समय राजा सोमशर्मा था जो कि अत्यंत पराक्रमी और प्रसिद्ध था। राजा उपश्रेणिककी आज्ञा यद्यपि शुभ थी तथापि वह सोमशर्मा उनकी आज्ञा मानना नहीं चाहता था ॥ ४७ ॥ राजा उपश्रेणिकको यह बात पसंद न थी इसलिये शीघ्र ही उन्होंने एक आज्ञापत्र लिखवाया। दूत बुलाकर उसे सोंपा एवं शीघ्र ही उसे राजा सोमशर्माके पास भेज दिया ॥ ४८ ॥ दूतका नाम मतिसागर था। राजाकी

च शक्रस्य पत्तनं देवपत्तनं ॥३१॥ यत्र धान्यादिसंयुक्ता नराः सद्धर्ममंडिताः। कलाविज्ञानपारीणाः परमोत्साहिनो बभुः ॥३३॥ सुंदर्यः कामदीप्तांगा मृगाक्ष्यः पिकसुस्वराः। उत्तुंगस्तनभारेण नम्रा ईषत्सुमंदगाः ॥ ३४ ॥ सशीला· मुखचन्द्रैश्च भूषितांतः-स्वधामकाः। दानपूजादिसंसक्ता व्रताचारलसत्क्रियाः ॥३५॥ गतागतैः स्तनाश्लेषसंघट्टैश्च परस्परं। कामिनां हृदये दाहं कुर्वंत्य इव चाबभुः॥३६॥ तत्रोपश्रेणिको राजा राजते रजनीशवत्। कुवलयानन्दको लोकचकोराह्लादकारकः ॥३७॥ वृषस्कंधः प्रतापी च

अत्यंत धर्मात्मा हैं सदा सत्य बोलनेवाले हैं एवं मोक्षलक्ष्मीकी अभिलाषासे सदा ध्यानी और ज्ञानी हैं ॥ ३१ ॥

इसी मगध देशके अन्दर एक राजगृह नामका नगर है जो कि परम पवित्र है उत्कृष्ट है, सदा अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे शोभायमान रहता है अतएव अपनी दिव्य शोभासे यह इंद्रकी राजधानी स्वर्गलोककी उपमा धारण करता है ॥ ३२॥ उस समय यह नगर अनेक प्रकारके धान्योंसे व्याप्त था। इसमें रहने वाले मनुष्य परम धर्मात्मा थे। नाना प्रकारके कार्य और कौशलोंके पारगामी थे एवं प्रत्येक कामके करनेमें बड़े उत्साही थे इसीलिये वे राजगृहपुरकी शोभा स्वरूप थे ॥ ३३ ॥ राजगृहपुरके अन्दर रहनेवाली सुंदरियां भी कामदेवसे देदीप्यमान अंगकी धारक थीं। हरिणियोंके समान नेत्रोंवाली थीं। कोकिलाओंके समान सुरीली थीं। विशाल स्तनोंके भारसे आगेको कुछ झुकी हुई थीं। मंद मंद चलनेवाली थीं। अत्यंत शीलवती थीं। अपने कांति परिपूर्ण मुखरूपी चंद्रमाओंसे अपने महलोंको प्रकाशमान करती थीं। दान पूजा आदि जितने भी पवित्र कार्य हैं उनमें लीन थीं। वे जितनी भी क्रियायें करतीं थीं व्रत और आचारके अनुकूल करती थीं इसलिये उनकी सारी क्रियायें निर्दोष होनेसे अत्यंत मनोहर होतीं थीं तथा राजगृहपुरमें नर नारियोंका इतना जमघट था कि वहांकी नारियां आने जानेसे तथा स्तन और आलिंगनोंके संघर्षणोंसे कामियोंके हृदयोंमें काम जनित दाह उत्पन्न कर देतीं थीं। अतएव वे मनको हरण करनेवालीं होतीं थीं ॥ ३४--३६ ॥

हेलानिर्जितशात्रवः। महाबाहुर्महारूढो मकरध्वज इवापरः॥ ३८॥ दानी धर्मी गुणी ज्ञानी महामानी महोद्धुरः। पीनग्रीवः कम्बु-पाणिश्चक्रमत्स्ययवांघ्रिपः॥ ३९॥ तस्यैव हृदयानंदकारिणी मदनप्रियां विडंबमाना सत्कांतिश्चंद्रास्या च कुरंगदृक्॥ ४०॥ पट्ट-राज्ञी महाप्रीत्या राज्ञो जीवाधिका प्रिया। स्म वोभवीति चेंद्राणी नाम्नेंद्रस्य प्रिया परा॥ ४१॥ स्निग्धवेणी विराजेत सर्पिणी नु भवेत्किमु। मुखचंद्रसुधापानं कर्तुं मस्तकमास्थिता॥ ४२॥ भालमाभाति यस्यानु समर्धं दुरथो स्थितः। दृक्कुरंगधरो जंबूनदकुण्डल वक्रगः॥ ४३॥ एतया सह संभुंजन् भोगान् ऋतुसमुद्भवान्। हास्यक्रीडाविनोदैश्च रूपरंजितमन्मथः॥ ४४॥ तयोः पुत्रोऽजनि प्राज्य

इसप्रकारके महामनोहर राजगृह नगरका रक्षण करनेवाला राजा उपश्रेणिक था जो कि रजनीश--चंद्रमाके समान महा मनोहर था। चंद्रमा जिसप्रकार कुवलय--रात्रिविकासी कमलोंको आनंद प्रदान करनेवाला होता है उसीप्रकार वह राजा भी कु-वलय--पृथ्वीमंडलको आनंद प्रदान करनेवाला था। चंद्रमा जिसप्रकार चकोर जातिके पक्षियोंको आनंद प्रदान करता है उसीप्रकार वह राजा भी लोकरूपी चकोर पक्षियोंको आनंद प्रदान करनेवाला था। वह महानुभाव राजा बैलके समान उन्नत स्कंधोंका धारक था। प्रतापी था। समस्त शत्रुओंका जीतना खेल समझता था। विशाल भुजाओंका धारक था। सुभट था। सुंदरतामें दूसरा कामदेव सरीखा था। दानी धर्मात्मा गुण-वान और ज्ञानवान था। उत्तम क्रियाओंके करनेमें पूरा घमण्ड रखता था। महान धीर वीर था। फूली हुई गर्दनसे युक्त था। कमलोंके समान शोभायमान हाथ तथा चक्र मच्छी और जोके चिन्होंसे शोभायमान पैरोंका धारक था॥ ३७--३९॥

महातेजस्वी राजा उपश्रेणिककी पटरानीका नाम इंद्राणी था जो कि महाराजके हृदयको अत्यन्त आनंद प्रदान करनेवाली थी। कामदेवकी प्रिया रतिको भी अपनी शोभासे नीचा दिखाने वाली थी। चंद्रमाके समान मुखसे शोभायमान थी। हरिणीके समान विशाल नेत्रवाली थी। राजाको अपने जीवसे भी अधिक प्यारी थी एवं अपनी अनुपम सुंदरतासे इंद्रकी प्यारी दूसरी इंद्राणी सरीखी थी। उस महारानी इंद्राणीकी काली लंबी चिकनी वेणी (चोटी) काली नागिनी

सभास्ते खेचराणां च नानाश्चर्यकरो नृणां ॥ २५ । तन्मध्ये मगधो देशश्चिंतारत्नमिव ध्रुवं । रारक्ति नितरां हारमध्ये वै हीरको यथा । २६ । यो घोषादिमटंबैश्च कर्वटैर्वाहनैस्तथा महाग्रामैर्महापूर्भिराश्रितो वस्तुसंकुलः । २७ । यत्र नद्यो विराजंते सजलाः पद्ममंडिताः । राजहंसचकोरादिसारसैर्मुखरीकृताः ॥२८॥ कुक्कुटोत्पातसंलभ्या ग्रामा यत्र पदे पदे । तडागानि प्रपाः पांथसंतर्पिण्यो बभुस्तरां ॥२९॥ सरलास्तरवो यत्र वल्लीव्रातसमाश्रिताः । भ्रमद्भ्रमरसंरावमंडिताः पिकसत्स्वनाः ॥३०॥ धनिनो दानशीलाश्च धर्माढ्याः सत्यभाषिणः । ध्यानान्विता भवंत्येव ज्ञानिनो यत्र सच्छ्रिये ॥३१॥ तत्र राजगृहं नाम्ना पुरं परमपावनं । चोततार्कं

अन्दर एक आर्य नामका महाखण्ड है जो कि वत्तीस विशाल देशोंका धारक है देवेन्द्र और मनुष्योंको अनेकप्रकारके आश्चर्योंका करनेवाला है ॥२५॥ भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगध नामका प्रसिद्ध देश है जो कि मनुष्योंकी अभिलाषा पूरण करनेके लिये चिन्तामणि रत्नके समान है एवं हारके मध्यभागमें जिसप्रकार हीरा रत्न मनुष्योंके चित्तको रंजायमान करनेवाला होता है उसी प्रकार भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगध देश भी मनुष्योंके चित्तको आनंद प्रदान करनेवाला है ॥२६॥ यह मगध देश घोष मटंब कर्वटोंसे अनेक प्रकारके वाहनोंसे बड़े बड़े गावोंसे और बड़े बड़े शहरों से व्याप्त है एवं अनेक प्रकारकी मनोज्ञ २ चीजोंका खजाना है ॥२७॥ इस देशके अंदर बड़ी बड़ी विशाल नदियां हैं जो कि निर्मल जल और महा मनोहर कमलोंसे शोभायमान हैं एवं राजहंस चकोर और सारस (स्यास) आदि पक्षियोंके मनोहर शब्दोंसे शब्दायमान हैं ॥२८॥ इसी देशमें एक गांवसे उड़कर कुक्कुट दूसरे गांवमें जा सकें इसरूपसे बिलकुल पास पास बसे हुये गांव हैं और उसके तालाव प्रपा (प्याऊ) पथिकोंके मनको सन्तुष्ट करने वाले महामनोहर जान पड़ते हैं ॥२९॥ इस मगध देशके अन्दर महामनोज्ञ सीधे वृक्षोंकी पंक्तियां विद्यमान हैं जो कि नानाप्रकारकी लताओंसे व्याप्त हैं। घूमते हुए भौंरोंकी मधुर भुनभुनाहटसे चित्तको हरण करनेवाली हैं एवं कोकिलाओंकी मीठी मीठी ध्वनियोंसे शोभायमान हैं ॥३०॥ इस देशके धनी मनुष्य स्वभावसे ही दानी हैं- आहार आदि किसी भी दानका अवसर देख कभी भी उससे मुह मोड़नेवाले न

पद्मह्रदादिनिर्ह्रादगर्जनामधुरंवदः । १८ । सूर्याचंद्राक्षिकस्ताराभरणामरविभूषितः । खगाचलमहापादः पद्मरागादिकांतिभृत् ।
जंबूशाल्मलिसद्धेतिः क्षारोऽर्णोंऽयंशुकावृतः । नानापत्तनमहारावगेगशंसिगजध्वनिः । २० । जंबूद्वीपः (पं) पवित्रः (त्रं) सै-
(तु) लक्षैकयोजनप्रमः । विदेहादिमहाचित्रहृदो यो हृदयं गतः । २१ । लक्षैकयोजनो मेरुर्विभाति रंजिताशयः । त्रिषष्टिषु सहस्राणां
योजनानां विचित्रत्विट् । २२ । अत्रशिष्टो हि तन्मध्ये शातकुंभात्मकोलकं । नानाचैत्यालयाकीर्णश्चतुरारामंडितः । २३ ।
तस्य दक्षिणकाष्ठायां भारतं वर्तते स्फुटं । खगाचलगणेनैव कार्मुकाकृतिराजितं । २४ । तत्रैवार्यो महाखंडो द्वात्रिंशद्विषयैर्भृतः ।

राजा जिसप्रकार आभरण-भूषणोंसे शोभायमान रहता है उसीप्रकार जम्बूद्वीप भी तारा रूपी भूषणोंसे शोभायमान है। राजाके जिसप्रकार पैर होते हैं जम्बूद्वीपके भी खगाचल विजयार्ध-पर्वत रूपी पैर मोजूद है। राजा जिसप्रकार पद्मराग आदि भूषणोंकी कांतिसे देदीप्यमान रहता है जम्बूद्वीप भी खानियोंमें विद्यमान पद्मराग आदि मणियोंकी कांतिसे व्याप्त है। राजा जिसप्रकार अस्त्रशस्त्रोंका धारक होता है जम्बूद्वीपके भी जम्बूवृक्ष और शाल्मलिवृक्षरूपी शस्त्र विद्यमान हैं। राजा जिसप्रकार वस्त्रोंसे वेष्टित रहता है जम्बूद्वीप भी लवणोदधि समुद्रसे चारो ओरसे वेष्टित है। राजाके जिसप्रकार हाथियोंके चीत्कार होते रहते हैं उसीप्रकार जम्बूद्वीपके भी अनेक पत्तनोंमें रहने वाले प्राणियोंके कोलाहलोंके वेग ही प्रशस्त गजोंके चीत्कार हैं। तथा यह जम्बूद्वीप पवित्र एक लाख योजन चौड़ा है। विदेह क्षेत्र आदि क्षेत्र रूपी विशाल हृदयका धारक है एवं चित्तको अत्यंत आनन्द प्रदान करने वाला है ॥१७ १८॥ इसी जंबूद्वीपके ठीक मध्यभागमें एक सुमेरु नामका पर्वत है जो कि एक लाख योजन प्रमाण ऊंचा है। अपनी शोभासे अपने समीपवर्ती स्थानको शोभायमान करनेवाला है। त्रेसठ हजार योजनोंके इर्द गिर्दमें विद्यमान है। विचित्र कांतिका धारक है। सुवर्णमयी खोल स्वरूप है। अनेक चैत्यालयोंसे व्याप्त है एवं नन्दनवन सौमनस आदि वनोंसे रमणीक है ॥२२ २३॥ मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशामें भरत क्षेत्र है जो कि खगाचलों (पर्वतों)के समूहसे धनुषके समान आकारवाला शोभायमान जान पड़ता है ॥२४॥ इस भरत क्षेत्रके

भूमिहास्यया । चेद्गुणः कजसौगंधिवर्त्तैरिव सुतन्यते । १४ । वृषभेशस्य पादाब्जे चंचरीकत्वमेत्य वै । विधीयतेऽस्म काभिश्च पुराणं परमादरात् । १५ । बहूनां भव्यजीवानां कथाश्चोपकथास्तथा । धर्मस्वयंभुवोः ख्यातिस्तैर्गहनं समुद्रवत् । १६ । अथो असंख्यद्वीपानां मध्ये राजेव राजते । कुलाचललसद्बाहुर्भोगभूसुभटैः श्रितः । १७ । गंगासिंध्वादिभामाभिः सेव्यमानो निरंतरं ।

उतनी ही शुद्ध होती चली जायगी ॥१३॥ अथवा सज्जन और दुर्जनोंके सामने संसारमें हंसी करानेवाली इस व्यर्थ प्रार्थनासे भी क्या प्रयोजन क्योंकि यदि कविके अन्दर गुण होगा तो जिसप्रकार कमलकी सुगन्धि पवनके द्वारा चारो ओर फैल जाती है उसीप्रकार उस गुणके द्वारा कवित्वकी शक्तिकी प्रशंसा भी चारो ओर फैल जायगी ॥१४॥ ग्रन्थकार अपने पवित्र भाव झलकाते हुए कहते हैं कि-मैं भगवान ऋषभ देवके चरण कमलोंका भ्रमर वन इस भगवान विमलनाथके पुराणको बड़े आदरसे कह रहा हूं यह पुराण मामूली पुराण नहीं किन्तु इसके अन्दर बहुतसे भव्य जीवोंक कथा और उपकथाओंका वर्णन है। धर्म नामके बलभद्र स्वयंभू नामके नारायणके पवित्र चरित्रका कथन हैं इसलिये उनके निमित्तसे यह पुराण समुद्रके समान गम्भीर है अतः मनको स्थिरकरही हर एक विषयका पठन पाठन, हित करनेवाला होगा ॥१५॥१६॥

मध्यलोकके असंख्याते द्वीपोंके मध्यभागमें एक जम्बूद्वीप नामका प्रसिद्ध द्वीप है जो कि साक्षात् राजाके समान शोभनीक जान पड़ता है क्योंकि राजा जिसप्रकार विस्तीर्ण भुजाओंसे शोभायमान रहता है उसीप्रकार यह जंबूद्वीप भी कुलाचल रूपी विस्तीर्ण भुजाओंसे शोभायमान है। राजा जिसप्रकार अनेक सुभटोंसे व्याप्त रहता है उसीप्रकार यह जंबूद्वीप भी भोगभूमि रूपी सुभटोंसे व्याप्त है। जिसप्रकार राजा अनेक स्त्रियोंसे सेवित होता है उसीप्रकार जम्बूद्वीप भी गंगा सिन्धु आदि अनेक नदी रूपी स्त्रियोंसे सेवित है। राजा जिसप्रकार गर्जना परिपूर्ण किन्तु मधुर बोलनेवाला होता है। जम्बूद्वीप भी पद्म महापद्म आदि सरोवरोंके मनोज्ञ शब्दोंसे मधुर बोलनेवाला है। राजाके जिसप्रकार नेत्र होते हैं जम्बूद्वीपके भी सूर्य्य चन्द्रमा रूपी नेत्र विद्यमान हैं।

म्बुधिः । १२ । सज्जना अपि नंदंतु दुर्जनाश्च विशेषतः । स्तुतिनिंदाकरा नूनं यद्भीत्या कविशुद्धता । १३ । भवेदनया व्यर्थयाख्यया

आदिके सामने तुच्छबुद्धिका धारक हूं तथापि मेरे मनमें जो चरित्र विद्यमान है उसे मैं अपनी थोड़ीसी बुद्धिसे भी वर्णन करनेका विशेष आकांक्षी हूं यहांपर यह कल्पना न कर बैठना चाहिये कि जब जिनसेन आदि सरीखे उद्भट विद्वान हैं तब तुम्हारी आवश्यकता क्या है ? क्योंकि जहांपर सूर्यका प्रवेश नहीं होता वहांपर दीपकसे भी काम चला लिया जाता है अर्थात् जो महानुभाव जिनसेन आदि सरीखे उद्भट विद्वानोंके गम्भीर बचनोंका तात्पर्य नहीं समझ सकते वे मेरे साधारण बचनोंसे अर्थलाभ कर सकते हैं। इसलिये मेरे द्वारा किये गये पुराणका वर्णन व्यर्थ नहीं। १० । ११ । फिर भी यह बात है कि मैं अपनी बुद्धिकी कल्पनासे कुछ कहूं तब तो वह कल्पना भगवान जिनसेन आदिकी कल्पनाके सामने फीकी मानी जा सकती है क्योंकि उनकी वृद्धि विशाल है और मेरी तुच्छ है परन्तु सो तो बात है नहीं किन्तु मुझसे महान और उत्कृष्ट पूर्व आचार्योंने जो कहा है क्रमसे मैं उसीको कहता हूं। यहांपर भी यह न समझ बैठना चाहिये कि जब तुम्हारी बुद्धि तुच्छ है तब बिमलनाथ पुराण सरीखे विशाल कार्यमें तुम्हारा प्रवृत्त होना व्यर्थ है क्योंकि लोकमें ऐसी कहावत है कि अगस्त नामका ऋषि मामूली था परन्तु वह सारे समुद्रको पी गया था इस लिये क्षुद्र भी अगस्त ऋषिने जब विशाल भी समुद्र पी डाला था तब अल्प बुद्धिका धारक भी मैं विशाल पुराणका वर्णन कर सकता हूं क्या आश्चर्य है ? ॥ १२ ॥ बहुतसे लोग स्तुति करनेवालोंको अच्छा समझते हैं और निन्दा करनेवालोंको बुरा समझते हैं परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि यह बात मुझे पसंद नहीं मैं तो यह कहता हूं कि स्तुतिके करनेवाले सज्जन भी संसारके अन्दर वृद्धिको प्राप्त हों और निन्दाके करनेवाले भी विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त हों क्योंकि उनके भयसे कविकी विशुद्धता बढ़ती है। दुर्जन जितने जितने दोष निकालते जायंगे कविता भी उतनी

गुरुसामर्थ्यसंततप्ततपसा व्योमगा- गाढिधपारीणान् ध्यानसंस्थान् शिवप्रदान्। नंनम्ये मामके चित्ते भृशं भृंशितमन्मथान्। ६। मिनः। गुरून् गाम्भीर्यधैर्यादिवारिखातांश्च चिद्विषः। ७। रामसेनान् महाविद्यान् कीर्त्या रामयशोधरान्। प्राबीभवन् यके नौमि ज्ञानिनरसिंहकाञ्च तान्। ८। चिकीर्षु रहमस्यैव पुराणं वैमलं ध्रुव। यथा पूर्वैर्महाप्राज्ञै र्जिनसेनादिसूरिभिः। ९। क्वेदं क्व मे

जिसका उदय हुआ है ॥ ५ ॥ जो महानुभाव आचारांग आदि बारह अंगोंके पारगामी हैं। ध्यानमें लीन हैं। मोक्षमार्ग प्रदान करनेवाले हैं और समस्त संसारको अपने वशमें करनेवाले दुष्ट कामदेवके जीतनेवाले हैं उनकी भी मैं अपने चित्तमें पूर्ण भक्ति रखता हूं ॥ ६ ॥ मैं विद्या- धरोंके समान गुरुओंको भी नमस्कार करता हूं क्योंकि जिसप्रकार विद्याधरगण आकाशमें गमन करनेवाले हैं उसीप्रकार गुरुगण भी विशिष्ट सामर्थ्यसे तपे गये तपके द्वारा आकाशगामिनी ऋद्धिकी प्राप्तिसे आकाशमें गमन करनेवाले होते हैं। जिसप्रकार विद्याधरगण गंभीरता धीरता आदि गुणोंके धारक होते हैं उसप्रकार गुरुगण भी गंभीरता धीरता आदि गुणोंकी खान होते हैं। जिस प्रकार विद्याधरगण 'चिद्विषः,'। चित्-विद्याओंसे देदीप्यमान रहते हैं। उसप्रकार गुरुगण भी ज्ञान आदि गुणोंसे जाज्वल्यमान रहते हैं। जिसप्रकार विद्याधरगण 'रामसेनान्' सीताहरणके समय रावणसे युद्धके समय रामचन्द्रकी सेनास्वरूप हुए थे उसीप्रकार 'रमंते योगिनोऽस्मिन्निति रामः' अर्थात् जिनके ध्यानमें मुनिगण आनन्दका आस्वादन करैं वे राम-सिद्धपरमेष्ठी कहे जाते हैं। उन सिद्धपरमेष्ठीकी निर्ग्रन्थ गुरुगण सेनास्वरूप हैं क्योंकि मुख्यरूपसे सिद्धपरमेष्ठीको ही उन्होंने अपना पूज्य गामी समझ रक्खा है। जिसप्रकार विद्याधरगण 'महाविद्यान्' अनेक महाविद्याओंके धारक होते हैं उसीप्रकार गुरुगण भी महाज्ञानके धारक हैं। जिसप्रकार विद्याधरगण 'कीर्त्या रामयशोध- रान्' कीर्तिके साथ रामचन्द्रके यशको सहन करने वाले थे अर्थात् समान जातीय और अपना स्वामी होने पर भी वे रावणके विजय होनेपर उसकी कीर्तिसे अपनी कीर्ति नहीं समझते थे क्योंकि उसने परस्त्रीहरणरूप पातक किया था किन्तु वे रामचन्द्रके विजय करनेपर जो उनकी कीर्ति संसारमें फैली

मतिः स्वल्पा कवयस्तेऽहकं च क्व । महाबुद्ध्यूर्मिमाला.ढ्यसारंगार्णवगामठः । १० । स्वल्पीयस्यापि बुद्ध्याहं करोमि मनोगतं । ...तिमिरारेः प्रवेशो न दीपस्य स्यान्न तत्र किं । ११ । यदकारि महोत्कृष्टैः पूर्वप्राज्ञै रहं क्रमात् । कुंभोद्भवेन क्षुद्रेण किं हि नाचमितोऽ-

...थी उससे अपनी कीर्ति समझते थे । उसीप्रकार गुरुगणभी सिद्धोंके यश-स्वरूपको कीर्ति पूर्वक धारण करनेवाले होते हैं अर्थात् उनके निष्कलंक स्वरूपका ध्यान करना ही अपना पूर्ण कर्तव्य समझते हैं । इन विशिष्ट शक्तिके धारक गुरुओंके सिवाय और भी ज्ञानी पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी महात्मा विशेषरूपसे हुए हैं उन्हें भी मैं इस ग्रन्थके प्रारम्भमें भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं । ७ ८ । महान बुद्धिके धारक जिनसेन आदि पूर्व आचार्योंने जिसरूपसे भगवान विमलनाथके चिरित्रका उल्लेख किया है ठीक उसीके अनुसार मैं भगवान विमलनाथके पुराणके कहनेका इच्छुक हूं अर्थात् मैं जो इस पुराणको कह रहा हूं वह स्वतन्त्ररूपसे अपना मन गढ़न्त नहीं कह रहा हूं किन्तु भगवान जिनसेन आदिके वचनोंके अनुसार कह रहा हूं । ९ । ग्रन्थकार अपनी लघुता प्रगट करते हुए कहते हैं कि कहां तो यह भगवान विमलनाथका महागम्भीर पुराण और कहां मेरी अत्यन्त अल्पबुद्धि । तथा कहां तो जिनसेन सरीखे पुराण पारीण कवि और कहां मैं अत्यन्त तुच्छ, तथापि महाबुद्धिरूपी तरंगोंकी मालासे व्याप्त शास्त्रपारंगत आचार्यरूपी समुद्रोंके सामने मैं गामठ सरीखा हूं अर्थात् गामठका अर्थ प्रकरणसे यहां पर खाई है तो जिसप्रकार खाईका जल खास समुद्रका ही जल होता है परन्तु वह समुद्रस्वरूपसे नहीं होता उसीप्रकार मैं भगवान जिनसेन आदिके सामने तुच्छ हूं तथापि उनकी महाबुद्धिके द्वारा मुखसे निकले वचन मेरे हृदयमें भी विद्यमान हैं इस लिये इस पुराणमें जिन वचनोंका मैंने उल्लेख किया है वे वचन भगवान जिनसेन आदिके ही वचन मानकर प्रमाणीक समझना चाहिये । इसरूपसे यह बात ठीक है कि मैं भगवान जिनसेन

१ 'नरसिंहकंच, यहांपर भी ग्रन्थकारने श्लेषालंकारका उपयोग किया है क्योंकि अन्यधर्म्मी हिंदूसंप्रदायमें नरसिंह नामका एक अवतार माना है । यहांपर 'नरसिंहका, वह अर्थ न लेकर जो अर्थ लिखा गया है वही ठीक है ।

सम्यक्त्वो मोही केन विडम्बिताः ॥ २५ ॥ प्राकनो नारकः प्रान्तपृथिवीतो विनिर्गतः । जघन्यायुरहिर्भूत्वा पातालं तृतीयं गतः ॥ २६ ॥ ततो निर्गत्य तिर्यक्षु त्रसेषु स्थावरेषु च । भ्रांत्वाऽस्मिन् भारते भूतरमणाख्यवनांतरे ॥ २७ ॥ ऐरावतीनदीतीरे गोश्रृङ्गश्चास्ति तापसः । शङ्खिका भामिनी तस्य रूपाढ्या भर्तृवल्लभा ॥ २८ ॥ तयोर्जज्ञे सुतः सोऽपि मृगश्रृङ्गाभिधो ध्रुवं । पञ्चाग्नितपः कुर्वन्नेकदा वीक्ष्य खेचरं ॥ २९ ॥ दिव्यादितिलकस्यैव पुरस्य स्वामिनं परं । श्रीअंशुमालिनं नाम्ना निदानमकरोत्कुधीः ॥ ३० ॥ यथायं रूपवान् मानी प्रतापी प्राज्यराज्यभाक् । भूयासमहं तथैतन्मे तपस्यायो अदः फलं ॥ ३१ ॥ अथात्र खेचराद्रेश्च प्रोदक् श्रेण्यां पुरं महत् ।

और संजयन्तका छोटा भाई जयंत हुआ जो कि निदानसे मरकर तू धरणेंद्र हुआ है इस समय तुम्हारा सम्यग्दर्शन मोहसे मलिन होगया है ठीक ही है मोहको वश करनेवाले संसारमे विरले ही पुरुष है ॥ २४—२६ ॥ मन्त्री सत्यघोषका जीव वह नारकी अपनी आयुके अन्तमें सातवें नरकसे निकल सर्प हुआ। वहांकी जघन्य आयु धारण कर मरा फिर तीसरे नरकका नारकी हुआ वहांसे निकल कर त्रस स्थावर रूप तिर्यंच हुआ। इसी भरत क्षेत्रकी पृथ्वी पर एक भूत रमण नामका वन है। उसके अन्दर एक ऐरावती नामकी नदी है उसके तटपर एक गोश्रृंग नामका तपस्वी रहता था। शंखिका नामकी उसकी स्त्री थी जो कि अत्यन्त रूपवती और पतिकी प्राण प्यारी थी वह सत्यघोष मंत्रीका जीव तपस्विनी शंखिकाके गर्भसे मृगशंख नामका पुत्र हुआ और प्रति दिन पंचाग्नि तप तपने लगा। एक दिनकी बात है कि दिव्य तिलक पुरका स्वामी अंशुमाली नामका विद्याधर आकाश मार्गसे जा रहा था। उसकी दिव्य विभूतिपर मृगशंख तपस्वी मोहित होगया दुर्बुद्धि हो उसने यह निदान बाधा—

जिस प्रकार यह विद्याधर अत्यंत रूपवान दानी प्रतापी और विशाल राज्यका स्वामी है उसी प्रकार मैं भी हो वस मैं अपने किये हुए तपका यही फल चाहता हूं ॥ २७—३१ ॥

नानासंदर्भसंयुक्तमास्ते गगनवल्लभं ॥ ३२ ॥ वज्रदंष्ट्रः खगस्तत्र पाति तत्पत्तनं सुधीः । जम्भारातिः स्वधामेव तस्य भार्याचलप्रभा ॥ ३३ ॥ मृत्वासौ तापसो दुष्टो विद्युद्दंष्ट्रः सुतस्तयोः । बभूवायं स पापीयान् त्वदग्रजममीमरत् ॥ ३४ ॥ बध्वा कर्म चिरं दुःखमापदा प्स्यति च परं । एवं कर्मवशाज्जंतुः संसृतौ परिवर्तते ॥ ३५ ॥ पिता पुत्रः सुतो जाता माता भ्राता स च स्वसा । को बन्धुः को न वा बन्धुर्मुञ्च वैरमतः फणीट् ! ॥ ३६ ॥ कस्य को नापकर्ताऽत्र नोपकर्ता च कस्य कः । तस्माद्वैरानुबन्धेन मा कृथाः पापबन्धनं ॥ ३७ ॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गगन वल्लभ नामका नगर है जो कि विशाल है और अनेक रचनाओंसे शोभायमान है। गगन वल्लभ नगरका स्वामी राजा वज्रदंत था जो कि शोभामें इन्द्रकी तुलना करता था एवं उसकी स्त्रीका नाम विद्युत्प्रभा था वह दुष्ट मृगशृंग नामका तपस्वी अपनी आयुके अन्तमें मरा और रानी विद्युत्प्रभाके गर्भसे विद्युद्दंष्ट्र नामका पुत्र हुआ। पूर्व जन्मके वैरसे इसी दुष्टने तुम्हारे भाई संजयन्तको मारा है ॥ ३२—३३ ॥ इसने मुनिराज संजयन्तके मारनेसे घोर कर्मोंका बंध किया है जिससे इसने यह कष्ट प्राप्त किया है और करेगा। भाई धरणेंद्र ! यह जीव इसी प्रकार कर्मोंके जालमें फसकर इस संसारमें परिभ्रमण करता रहता है। ॥ ३४ ॥ देखो भाई ! इस संसारमें पिता तो पुत्र हो जाता है पुत्र माता हो जाता है। माता भाई बन जाता हैं और भाई सास बन जाता है इसलिये तुम निश्चय समझो इस संसारमें न कोई वास्तवमें किसी बंधु है और न वैरी है अतः प्रिय नागेंद्र ! तुम्हे कभी इस विद्याधरके साथ वैर नहीं बांधना चाहिये ॥ ३५ ॥ देखो इस संसारमें कोन तो किसका अपकारी नही और कौन किसका उपकारी नहीं अर्थात् हरएक दूसरेका अपकारी और उपकारी है इसलिये इसके साथ वैर बांधकर तुम बृथा पाप बांध रहे हो ॥३६॥ प्रिय धरणेंद्र ! तुम इस विद्याधरके साथ वैर मत बांधो इसे छोड़ दो वस इस प्रकार आदित्याभके बचन सुनकर धरणेंद्रका क्रोध शांत होगया ॥ ३७॥ उत्तरमें उसने यह कहा—

३५६

मुञ्च वैरमहीनास्मिन् विद्युद्दंष्ट्रश्च मुच्यतां । इति देववचोवृष्ट्या ययौ शांतिं फणीश्वरः ॥ ३८ ॥ अतोऽतो सुखमायाति सज्जनो न खलो विधीः । अहरोद्धुदये हंसो मुदं याति न कोकमित् ॥ ३९ ॥ देवाहं त्वत्प्रसादेन सद्धर्मं श्रद्धये स्म भोः । किंतु विद्याबलादेव विद्युद्दंष्ट्रोऽघमाचरत् ॥ ४० ॥ तस्मादस्यान्वयस्यैव महाविद्यां छिनद्म्यहं । इत्याहैतद्वचः श्रुत्वा सुरो मदनुरोधतः ॥ ४१ ॥ त्वया नैतद्विधातव्यमित्याख्यत्फणिनां पतिं । आदित्याभवचः श्रुत्वाब्रवीदिति पुनः फणीट् ! ॥४२॥ यद्येवं तर्हि वंशमानांमेतस्यैव कुकर्मणा ।

प्रिय आदित्याभ ! मैं भी यह मानता हूं कि जिसप्रकार सूर्यके उदय होने पर हंसको आनंद होता है उस प्रकार उल्लूको आनन्द नहीं होता उसी प्रकार सत्य बोलनेसे सज्जनोंको ही परमानन्द प्राप्त होता है दुर्बुद्धि दुष्टको नहीं ॥३८॥ भाई आदित्याभ ! मैं तुम्हारे वचनोंसे परम पावन जैन धर्मका श्रद्धान करता हूं परन्तु इस दुष्ट विद्युद्दंष्ट्रने अपनी विद्याका घमण्ड कर यह दुष्पाप किया है इस लियें मैं कुल परम्परासे प्राप्त इसकी समस्त विद्याका उच्छेद करूंगा। धरणेंद्रकी यह बात सुनकर विद्याधर आदित्याभने कहा—

भाई धरणेंद्र ! मेरे अनुरोधसे तुम्हें इसकी विद्यायें नहीं छेदनी चाहिये। आदित्याभके इस प्रकार वचन सुनकर पुनः धरणेंद्रने कहा—

यदि तुम इसकी कुल परम्परा प्राप्त विद्याओंके छेदनेकी मना करते हो तो मैं स्वीकार करता हूं परन्तु मैं यह शाप देता हूं कि इस विद्युद्दंष्ट्रके कुकर्मके कारण इसके जितने वंशके पुरुष हों उन्हें मुनिराज संजयन्तको विना आराधना किये किसी भी विद्याकी सिद्धि मत हो तथा जिस चतुर्दशीको मेरे भाईने मोक्ष प्राप्त की है उस तिथिको विना आराधे किसीको भी मोक्ष पदकी प्राप्ति मत हो, मालुम होता है इसीलिये चतुर्दशीको विशिष्ट पर्वका दिन माना है। भाई ! इस शापके देनेका मेरा तात्पर्य यह है कि यदि मैं ऐसा शाप न दूंगा तो ये क्रूर हृदयके धारक पापी विद्या-

संजयंतमनाराध्य विद्या मायातु सिद्धितां ॥ ४३ ॥ मद्भ्रातृसिद्धिशं साक्षादनाराध्य तिथिं जनाः । मायांतु सत्पदं कापि ततः पर्वचतु दंशी ॥४४॥ दद्यां चेन्नेद्वशं शापं तर्ह्यं ते शापिनः खगाः । अपराम्मारयन्त्येव मुनीनान् कुत्सिताशयाः ॥४५॥ पयोऽपि पर्वतो विद्याधरागो लज्जितोऽजनि । अतस्त' नामतः शैलं होमंतं कृतवांस्तश ॥ ४६ ॥ धनुः पञ्चाशतोत्तुगां भ्रातृप्रतिनिधिं व्यधात् । प्रतिष्ठित्वाऽथ तं नत्वा महोत्सवपरः शतैः ॥ ४७ ॥ मुक्त्वा तं खेचरं पापं देवमभ्यर्च्य नागराट् । कलुषीभावमुत्सृज्य पफाणाशु निजं पदं ॥ ४८ ॥ आदित्या भोऽपि स्वस्वर्गं जगाम मगधेश्वर ! । त्याजयंति महाद्वेषं सात्त्विका हि हितेच्छवः ॥ ४९ ॥ अथ जंबूद्रुमान्वीते द्वीपे होमद्विधीकृतं । भारतं भाति षट्खण्डि गङ्गासिंधूर्मिभूषणं ॥ ५० ॥ लयाते यत खडैकानित्यत्वं दृश्यते यदि । होमत्सुरस्तदा नीत्वा द्विसप्ततियुगानि च

धर अन्य मुनियोंको भी मारेंगे ॥ ३९—४६ ॥ इस विद्याधर पर्वत पर मुनिराज संजयन्तको कष्ट पहुंचाया गया है इसलिये यह भी लज्जाका स्थान है अतः उस पर्वतका उस दिनसे ह्रीमन्त (लज्जावान) नाम रख दिया गया ।४७। धरणेंद्रने अपने भाई संजयंतकी पांचसौ धनुष ऊंची प्रतिमा तयार कराई । सैकड़ों महोत्सवोंके साथ प्रतिष्ठाकर वहीं उसे विराजमान कर दिया और भक्तिपूर्वक उसे नमस्कार किया ॥ ४८ ॥ धरणेंद्रने पापी विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रको छोड़ दिया । आदित्याभ देवका परिपूर्ण आदर सत्कार किया । उसके हृदयमें जो विद्याधर विद्युद्दंष्ट्रके मारनेके कलुषित विचार थे सब निकाल दिये और सानन्द अपने स्थान चला गया ॥४९॥ इतनी कथा सुनाकर गौतम स्वामीने राजा श्रेणिकसे कहा—प्रिय राजन् ! जब आदित्याभने देखा कि नागेंद्र वैरका सर्वथा परित्याग कर अपने स्थान चला गया है तब वह भी अपने स्थानको चला गया ठीक ही है जो मनुष्य दूसरों के हितकी इच्छा रखने वाले और सज्जन प्रकृतिके होते हैं वे अवश्य ही दूसरोंका आपसमें वैर मिटा देते हैं ॥ ५० ॥

ह्रीमन्त पर्वतसे जिसके कि दो खंड होरहे हैं ऐसे इसी जंवुद्वीपके अन्दर भरत क्षेत्र है जो कि

॥ ५१ ॥ शैलदर्यां क्षिपत्येव गर्भजानामथापरे । श्वादयोऽदभ्रजीवाश्च यांति गङ्गातटे भिया ॥ ५२ ॥ तत्रार्यो भाति सत्खण्डः स्वर्गखण्ड इवापरः । अस्ति तत्रोत्तरा नाम्ना पुरी श्रीमथुरा नृपः ॥ ५३ ॥ तं पात्यनन्तवीर्याख्यो राजा सिंहपराक्रमः । चन्द्रास्या वर्तते तस्य नाम्ना स्त्री मेरुमालिनी ॥५४॥ द्वितीया सुन्दरी तस्य रोहिणीव चकोरदृक् । आस्ते मितवती नाम्ना नामेवामरसुन्दरी ५५ आदित्याभस्त तश्च्युत्वा पूर्वोक्तायामभूत्सुतः । नाम्ना मेरुः प्रमोद्भासी तिग्मांशुः कुलभूधरे ॥ ५६ ॥ धरणेंद्रोऽपि पुत्रोऽभून्मन्दराख्यो महायशाः । द्वितीयायां सुतौ तौ च सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ५७ ॥ इत्थं विमलनाथस्य मुख्याज्जान्मेरुमन्दरौ । स्वभवांस्तौ समाकर्ण्य वैराग्यं प्राप

छह खंडोंसे शोभायमान है एवं गङ्गा सिन्धु नामकी दोनों नदियोंकी तरंग रूपी भूषणोंसे शोभायमान है ॥ ५१ ॥ प्रलय कालके अन्तमें जब भरत क्षेत्रके किसी एक खण्डका प्रलय होता है उस समय ह्रीमन्त पर्वतका स्वामी देव हर एक गर्भज जीवके बहत्तर २ जोड़ा लेकर उस ह्रीमन्त पर्वतकी गुफामें रखता है तथा और बहुतसे जीव मारे भयके उस समय गङ्गा नदीके तटपर जाकर रहने लगते हैं ॥ ५२—५३ ॥ भरत क्षेत्रके अन्दर एक आर्य खण्ड है जो कि शोभामें स्वर्ग खण्डके समान जान पड़ता है। आर्य खण्डकी उत्तर दिशामें मथुरा नामकी नगरी है। उस समय मथुरा पुरीका स्वामी राजा अनन्तवीर्य था जो कि सिंहके समान पराक्रमी था। उसकी रानीका नाम मेरु मालिनी था जो कि चंद्रमाके समान मुखसे शोभायमान थी। उसकी दूसरी स्त्रीका नाम मितवती था जो कि रोहिणीके समान परम सुन्दरी थी। चकोरके समान उत्तम नेत्रोंसे शोभायमान थी इसलिये वह साक्षात् देवांगना सरीखी जान पड़ती थी ॥ ५४—५६ ॥ आदित्याभ नामका देव अपनी आयुके अन्तमें स्वर्गसे चया और रानी मेरुमालिनीके गर्भसे मेरु नामका पुत्र हुआ जो कि कांतिसे अत्यन्त देदीप्यमान था और अपने बंशरूपी पर्वत पर उदित होनेवाला सूर्य स्वरूप था। ५७ धरणेंद्रका जीव भी अपनी आयुके अन्तमें वहांसे चया और रानी मितवतीके गर्भमें अवतीर्ण

तुर्नृपौ ॥ ५८ ॥ गन्धेभसप्तिभिः प्रौढं राज्यं सामंतसेवितं । त्यक्त्वा जगृहतुर्दीक्षां तौ श्रीविमलसन्निधौ ॥ ५९ ॥ नत्वा स्वस्वामिनं धीरौ चक्राते तौ तपश्चिरं । चन्द्रादिरसमासांतं सरित्तीरनगादिषु ॥ ६० ॥ पर्यंकासनसंयुक्तौ धीरौ द्रुमतले क्वचित् । कायोत्सर्गस्थितौ क्वापि तिष्ठतः स्म हरी इव ॥ ६१ ॥ शीतकाले सरित्तीरे प्रशयद्द्रुरुहकदंबके । पृथुरोमगतिच्छेदे दग्धांभोजवनेऽवने ॥ ६२ ॥ तिष्ठतः स्म महाकायौ मेरुसंस्थौ शिवाप्तये । चतुःपथेऽनिलव्रातैः केशा दर्भांकुरा इव ॥ ६३ ॥ तयोः संजज्ञिरे नूनमंजनागसमानयोः । शीतदग्धांगयोर्भूरितपसा क्षामयोर्भृशं ॥ ६४ ॥ (त्रिभिर्विशेषकं) शुष्यद्यत्र जलं शीते नीरसीभूयभीतितः । द्रुपत्तुल्यं भवेत्त-

हो मन्दर नामका पुत्र हुआ जो कि बड़ा भारी यशस्वी था इस तरह वे दोनों कुमार सूर्य और चन्द्रमाके समान सानंद रहने लगे ॥ ५८ ॥ बस इस प्रकार भगवान विमल नाथके मुखसे अपने पूर्व भवोंका वृत्तांत सुन राजा मेरु और मन्दरको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया। जो उनका राज्य अगणित गज हस्ती और उत्तमोत्तम घोड़ोंसे शोभायमान था और अनेक दुर्घट सामन्त जिसकी सेवा करते थे उस राज्यको उन्होंने जीर्णतृणके समान तत्काल छोड़ दिया और भगवान विमलनाथके चरणोंमें तत्काल दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ ५९ ॥ ५९—६० ॥ भगवान विमलनाथको उन्होंने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं एक मास दोमास तीन मास चार मास पांच मास और छह मास तकका उपबास धारण कर वे नदीके तट और पर्वतों पर घोर तप तपने लगे ॥ ६१ ॥ वर्षा ऋतुमें धीर वीर वे दोनों मुनिराज पर्यंक आसन माड़कर और कायोत्सर्ग मुद्रा धारण कर दो सिंहोंके समान वृक्षोंके नीचे रहने लगे ॥ ६२ ॥ जिस शीत कालमें वनके वृक्ष दग्ध होजाते हैं। रोंगटे ठर्रा निकलते हैं और कमलोंके वनके वन दग्ध हो जाते हैं उस समय विशाल शरीरके धारक और मेरु पर्वतके समान निश्चल दोनों मुनिराज मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे चौपटे में निवास करते थे और तीखी पवनके झकोरे सहते थे। वे दोनों मुनि अञ्जन पर्वतके समान

र्हि मानवानां तु का कथा ॥ ६५ ॥ ग्रीष्मर्तावग्रश्रृङ्गेऽस्थंशुमालिस्थितौ मुनी । ध्यायंतौ सिद्धसद्बीजं वह्नोभूताशुभूतले ॥ ६६ ॥ अग्नितप्तकटाहाभं घनमारुह्य तस्थतुः । वह्निज्वालाधिके दुःखसमूहोत्पादके च तौ ॥ ६७ ॥ प्रावृषि नीरनिर्ह्रादिचिताशायां यमोश्वरी । भेकभीकृद्रवैः स्वस्तजीवायां कर्णरोधिभिः ॥ ६८ ॥ पतन्निर्ह्रादिनोप्लुष्टभूरुहायां च निर्भयौ । दूर्वांकुरितपादाब्जौ सर्पवल्ल्यन्वितांगकौ ॥ ६९ ॥ तिमिस्रान्तमसां व्रातेरक्षेयोर्वी धरारुहि । तस्थतुर्ध्यानसंसक्तौ मेरुवन्निश्चलौ च तौ ॥ ७० ॥ (त्रिभिर्विशेषकं) सतर्धिसमवेतः सन् मेरुस्तुर्यावबोधनः । वभूव मंदरश्चापि मनःपर्ययभारविः ॥ ७१ ॥ पञ्चपञ्चाशदात्तांगगणेर्विमलवाहनः । परीतो भाति ताराभि

काले पड़ गये थे। उनका समस्त शरीर कृश होगया था इसलिये उस समय उनके मस्तकके केश दाव घासके समान रूखे और विखर गये थे ॥ ६३—६५ ॥ जिस शीतकालमें तालावोंका जल नीरस होकर सूखकर पत्थरके समान वरफ बन जाता है उस समय मनुष्योंकी तो वात ही क्या है ! ॥६६॥ ग्रीष्म ऋतुके समय जब कि पृथ्वीतल अग्निके समान दहकता रहता है उस समय वे दोनों मुनिराज सूर्यके सामने खड़े होकर पहाड़ोंपर तप तपते थे और हृदयमें 'सिद्ध' इस वीजाक्षर स्वरूप मंत्रका ध्यान करते थे। वे दोनों मुनिराज अग्निसे तपाये गये कड़ाहोंके समान जाज्वल्यमान अग्निकी ज्वालासे भी महा भयङ्कर और अनेक प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त ग्रीष्म ऋतुको वर्षा ऋतु सरीखी समझते थे ॥ ६७ ॥ जिस वर्षाकालमें चारो ओर महा भयङ्कर मेघोंकी गर्जना होती रहती है। कानोंको फोड़ देनेवाले मोंडकोंके भयङ्कर शब्दोंसे समस्त जीव त्रस्त रहते हैं। विजलियोंके गिरनेसे वृक्षके वृक्ष नष्ट हो जाते है उस वर्षाकालमें वे दोनों मुनिराज निर्भय हो अपने आत्म स्वरूपका चिन्तवन करते थे। उस समय उनके चरण दाव घासके अंकुरोंसे व्याप्त रहते थे। समस्त शरीर सर्प और लताओंसे वेष्टित रहता था तथापि उन्हें किसी वातका भय न था। तथा वर्षा कालको अंधियारी रातोंमें जब कि पृथ्वी पर्वत और वृक्ष कुछ भी नहीं दीख पड़ते थे

विधुर्वा विहरन्नसौ ॥७२॥ असंख्यातसुरैरर्च्यः केवलज्ञानभास्करः। चतुर्विधमहासंघसमेतोविजहार सः ॥७३॥ अङ्गे वंगे तिलिंगे मगध जनपदे सिंधुदेशे विराटे। कर्णाटे कुंकुणाख्ये कुरुलमुरुमहाभोटभोटेषु याम्ये। काश्मीरे लाटगौड़े गिवर (न) गहने मेटपाटे जिनेशः। पारस्ये मालवे वा व्यवहरदिनि महाबोधहेतोर्जनानां ॥७४॥ शेषायुषि स्थिते तस्य मासैकस्य जिनाधिपः। सम्मेदाचलमासाद्य विससर्ज सभाश्रियं ॥७५॥ आषाढ़स्योत्तराषाढे कृष्णाष्टम्यां निशामुखे। सद्यः कृत्वा समुद्घातं सूक्ष्म शुक्लं समाश्रितः ॥७६॥ साम्प्रयोगाद्‌योगः सन् स्वास्थ्यं रोगीव सोऽगमत्। तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् पूज्या कालाष्टमी बुधैः॥ ७७ ॥ विश्वदृश्वा जिनो मोक्षमवापद्विमलोऽमलः

उस समय वे मुनिराज मेरुके समान निश्चल और ध्यानमें लीन रहते थे ॥ ६८—७१ ॥ तपके घोर रूपसे आचरने पर मुनिराज मेरु और मन्दिरको सातों ऋद्धियां और चौथा मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त होगया और वे निर्भय हो पृथ्वी पर विहार करने लगे ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार अनेक ताराओंसे व्यास चन्द्रमा शोभायमान जान पड़ता है उसी प्रकार वे भगवान विमलनाथ साढ़े पांचसौ केवलज्ञानी मुनियोंके साथ विहार करते हुए अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ ७३ ॥ भगवान विमलनाथ की सेवा असख्याते देव करते थे और वे केवल ज्ञान रूपी सूर्यसे देदीप्यमान थे। भगवान विमलनाथने मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इस प्रकार संघोंके साथ पृथ्वी पर विहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ७४ ॥ उन भगवान विमलनाथने मोक्षाभिलाषो भव्य जीवोंके संबोधनेके लिये अङ्ग वङ्ग तेलंग मगध सिंधुदेश विराट कर्णाटक कुंकण पुरु महा भोट भोट काश्मीर लाट गौड़ मेढ पाट फारस मालवा आदि देश जो कि पहाड़ और बनोंसे सघन थे उनमें भ्रमण किया ॥ ७५ ॥ जब भगवान जिनेंद्रकी एक मासकी केवल आयु अवशेष रह गई वे तो सम्मेदाचल पर्वतपर आ विराजे और समवसरणकी विभूतिसे रहित होगये ॥ ७६ ॥ आषाढ़ मासकी बदी अष्टमीके दिन जब कि उत्तराषाढ़ नक्षत्र विद्यमान था उन्होंने केवल समुद्घात माढा । सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती नामक शुक्ल

घात्यघातिक्षयात्सर्वदेवेंद्रार्चितपत्कजः ॥ ७८ ॥ संसारसागरसमुत्तरणप्रवीणः । कर्मानलावलिशमैकघनायमानः ॥ लेखालिमस्तक्क्रु किरीटमणिप्रभाभिराश्लिष्टपाद इवजिद्विमलोऽवताद्वः ॥ ७९ ॥ कृत्वाष्टकर्मविलयं गणसेव्यमानो व्युत्पाद्य केवलविभालिमलं विबोध्य । भव्याबुजानि नितरां शिवमाप दिव्यसम्मेदभूधरतटे विमलोष्णरश्मिः ॥ ८० ॥

विहारसंबोधितजीवलोकपो जगाममोहाद्रिपविः परं पदं ।

स्वयंभुवा शुद्धसमाधितत्परो जिनोऽर्चितः केवलबोधलोचनः ॥ ८१ ॥

ध्यानको आश्रय किया । समता योगसे उन्होंने अयोग गुण स्थानमें पदार्पण किया एवं जिस प्रकार रोगके नाश हो जानेसे रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है उसी प्रकार वे भगवान विमलनाथ भी स्वस्थ हो गये भगवान विमलनाथ आषाढ़ वदी अष्टमीको मोक्ष पधारे थे इसलिये उसी दिनसे उस अष्टमीका नाम कालाष्टमी पड़ गया और लोग उसे पूजने लगे ॥ ७७—७८ ॥ घाति अघाति दोनों कर्मोंके नाश होजानेपर सर्वज्ञ जिनेंद्र वे भगवान विमलनाथ मोक्ष शिलापर जाकर विराजमान होगये और बड़े बड़े देवेन्द्रोंकी पूजाके स्थान बन गये ॥७९॥ जो भगवान विमलनाथ जीवोंको संसार रूपी समुद्रसे पार करने वाले हैं । कर्मरूपी अग्निको बुझानेके लिये मेघ स्वरूप हैं । देवेन्द्रोंके मस्तकोंमें लगी हुई नील मणियोंसे व्याप्त चरणोंसे शोभायमान हैं और कामदेवके जीतनेवाले हैं वे भगवान विमलनाथ हमारी रक्षा करें ॥८०॥ जिसप्रकार सूर्य अंधकारका नाश करने वाला है उसी प्रकार भगवान विमलनाथ भी कर्मरूपी अन्धकारके नाश करनेवाले हैं। जिसप्रकार सूर्य ऋषिगणोंसे सेवित रहता है उस प्रकार भगवान विमलनाथ भी मुनि आदिके गणोंसे सेवित हैं। जिस प्रकार सूर्य, प्रभासे मंडित है उस प्रकार भगवान विमलनाथ भी केवल ज्ञानकी प्रभासे मण्डित हैं एवं जिस प्रकार सूर्य कमलोंको खिलाकर अस्ताचल पर अस्त हो जाता है उस प्रकार

इत्यार्षे श्रीविमलनाथपुराणे भ० श्री रत्नभूषणाम्नायालंकारविद्वज्जनचातुरीसमुद्रकुमुदबांधवा वतारोभयभाषाचक्रवर्तिहर्षवीरिकान्वयोदरमानसराजहंसब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे श्रीमेरुमन्दिरदीक्षाग्रहणश्रीविमलनाथनिर्वाणगमनो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

भगवान विमलनाथने भव्य रूपी कमलोंको खिलाकर सम्मेदाचलसे मोक्ष प्राप्त की है इसलिये सूर्य-के समान भगवान विमल नाथ हमारी रक्षा करें ॥ ८१ ॥ जिन भगवान विमलनाथने समस्त जीव लोकको संबोधा। जो मोहरूपी पर्वतके लिये वज्र स्वरूप हैं। शुद्ध समाधि—अपने आत्म स्वरूपमें निश्चल हैं। केवल ज्ञानरूपी लोचनके धारक हैं और जो स्वयं भी ब्रह्मासे अर्चित हैं उन भगवानने परम पद प्राप्त कर लिया अतः वे हमारे कल्याणके कर्त्ता हों ॥ ८२ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकारस्वरूप विद्वज्जनोंकी चतुरता रूपी समुद्रके लिये चन्द्रमा दोनो भाषाके चक्रवर्ती एवं हर्ष वीरिकाके कुलरूपी मानसरोवरके राजहंस ब्रह्मकृष्णदासद्वारा अपने छोटेभाई ब्रह्ममंगलदासकी सहायतासे रचेगये वृहद्विमलनाथपुराणमें राजा मेरु और मंदरकी दीक्षाका ग्रहण और भगवान विमलनाथका निर्वाण गमन वर्णन करनेवाला नववां सर्ग समाप्त हुआ ॥६॥

दशवां सर्ग।

अथाजग्मुः सुनासीरा व्योमयानस्थिता मुदा। विमलेशस्य निर्वाणकल्याणकसमुत्सुकाः ॥ १ ॥ चतुर्णिकायदेवालिनिर्ययौ

भगवान विमलनाथके निर्वाण प्राप्त करलेने पर उनके कल्याणके उत्सव मनानेके लिये लाला-यित समस्त इन्द्रादि देव अपने विमानोंपर चढ़कर शीघ्र ही सम्मेदाचलकी ओर चल दिये ॥ १ ॥

युग पद्भुवि । वज्रपाण्यनुगा धीरजयध्वानप्रवादिनी ॥ २ ॥ ऐरावणं गजं शक्रः पुरस्कृत्य चचाल सः । पुरस्तान्नर्तकीव्रातो नर्नृतीति विमोहयन् ॥ ३ ॥ चित्रमेतद्यदाकाशे पादन्यासो न दृश्यते । रम्भाणां नर्तकीनां च देवानां चलतामपि ॥ ४ ॥ केचित्कुन्तकरा देवाः केचिच्छक्तिधनुर्धराः । केचित्कराशयः केचित्पाणिपाशा बभुस्तरां ॥ ५ ॥ त्रिशूलधारिणः केचिद्भिंडमालकराः परे । संचेलुरसुरा एते व्यंतराश्च दिगाश्रिताः ॥ ६ ॥ कल्पामराः स्थिताः केचिद्व्योमयानेषु दो.कृताः । हंसारूढामराः केचित् हस्तमाल्या मनोरमाः ॥ ७ ॥ वैनतेयासनारूढा देवाः केचित् शुकप्रियाः । केकियानाश्चलंतिस्म मरुन्मार्गे करायुधाः ॥ ८ ॥ असंख्यातसुराः पञ्चश्रेण्यः शक्रकृता बभुः । प्रत्येकं पञ्चवर्णांशुविचित्रवाससो ध्रुवं ॥ ९ ॥ सम्मेदागं समालोक्य दूरतः सुरपादयः । उत्तेरुर्वाहनाद्भक्त्या भक्ति

उस समय चारों ओर जय २ शब्द करते हुए चारो निकायोंके देव एक साथ इन्द्रके पीछे २ चल दिये ॥ २ ॥ ऐरावत हाथीपर चढ़कर सबोंके सामने इन्द्र चलने लगा। उस समय ऐरावत हाथीके सामने अपने नाचसे समस्त लोकको मोहित करता हुआ देवांगनाओंका समूह नाचता चला जाता था ॥३॥ ग्रन्थकार आश्चर्य प्रगट करते कहते हैं कि यद्यपि वे आकाशमें चलते थे परंतु कहां पैर रखते थे और कहां नहीं रखते थे ! सूझ नहीं पड़ता था ।४। भगवानके निर्वाण कल्याणके उत्सव मनानेके लिये आनेवाले देवोंमें बहुतसे देव अपने हाथोंमें माला लिये थे बहुतसे शक्ति धनुष तलवार पाश त्रिशूल बन्दूक के धारक थे इस रूपसे तो असुर जातिके देव चलने लगे तथा इसी प्रकार दिशाओं में रहने वाले व्यन्तर लोग भी चलने लगे ॥ ५—७ ॥ कल्पवासी देवोंमेंसे बहुतसे देव अपने द्वारा रचे गये बिमानोंमें सवार होलिये। बहुतसे हाथोंमें माला धारण किये हंसोंपर चढ़ लिये। बहुतसे हाथोंमें हथियार लेकर गरुड़ शुक और मयूरोंके आसनों पर चढ़कर आकाशमार्गमें चलने लगे। यद्यपि देव असंख्याते थे तथापि इन्द्रने उन्हें पांच श्रेणियोंमें विभक्त कर रक्खा था और हर एक पांचों वर्णोंके अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे शोभायमान थे ॥ १० ॥ जिस समय देवोंने सम्मेदाचल पहाड़को देखा भक्तिसे गद्गद हो वे शीघ्र ही अपने २ वाहनोंसे उतर गये ठीक ही है जो पुरुष

भाजो हि धार्मिकाः ॥ १० ॥ हरिर्विमलनाथस्य प्रतिबिंबं यथाकृति । कृत्वा स्फटिकसद्भासमर्चयामास सादरं ॥ ११ ॥ परोक्षस्तुति मारेभे देवराजो जिनेशिनः । इति दोःकुड्मलीकृत्य भावनिर्मलमानसः । १२ ॥ जय नाथ जिनाधीश जय त्वं जगतांपते । तपोनिधे दयाम्भोधे मुक्तिलक्ष्मीप्रिय प्रभो ! १३ ॥ मोहजेता त्वमेवासि त्वं सर्वज्ञः शिवप्रदः । कर्मध्वंसी चिदानन्दो भव्याम्भोजदिवामणिः ॥ १४ ॥ त्वामाराध्य जनाः सर्वे देवदेवेशनरादयः । शिवं सदातनं यांति समुत्तीर्य भवाम्बुधिं ॥ १५ ॥ स्तुत्वेति मघवा भावसुधापान परो जिनं । कर्पूरागुरुकल्याणनमेरुकुसुमोद्भवैः ॥ १६ ॥ सुगंधैः केसरैर्नानावस्तुभिः सुरनायकः । संस्कारविनयं कृत्वा चकार प्रांत्य

धर्मात्मा होते हैं वे भक्तिमान होते ही हैं ॥ ११ ॥ इन्द्रने भगवान विमलनाथकी स्फटिकमयी प्रतिमाका शीघ्रही निर्माण किया और बड़ी भक्तिसे उसका पूजन किया। निर्मल चित्तके धारक इन्द्रने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और उनके परोक्ष रहते भी वह इस प्रकार निर्मल भावोंसे स्तुति करने लगा—

हे भगवन्! आप आठो कर्मोंके जीतने वालोंके स्वामी हैं। समस्त जगतके पति हैं। तपोनिधि और दयाके समुद्र हैं। मोक्ष रूपी लक्ष्मीके प्यारे हैं। मोहके जीतनेवाले केवल आप ही है। सर्वज्ञ और कल्याणोंके प्रदान करनेवाले हैं। कर्मोंके नाश करनेवाले चिदानन्द चैतन्य स्वरूप और भव्यरूपी कमलोंको प्रसन्न करनेवाले सूर्य हैं इसलिये हे भगवन्! आप संसारमें जयवंते रहें ॥ १२—१५ ॥ प्रभो! देवोंके देव इन्द्र आदि भी तुम्हारा आराधन कर संसाररूपी समुद्रको तर कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। उत्तम भावरूपी अमृतके पान करनेवाले इन्द्रने इसप्रकार भगवान विमल नाथकी स्तुति की। कपूर अगुरु कल्प वृक्षोंके फूल और भी नाना प्रकारकी सुगन्धित चीजोंसे विनय पूर्वक भगवानके शरीरका दाह संस्कार किया एवं भक्तिसे गद्गद हो नृत्य किया ॥ १६—१८ ॥ सम्मेदाचल पर्वतके चारो ओर अपनी २ देवांगनाओंके साथ श्रेणीरूपसे समस्त

नाटकं ॥ १७ ॥ श्रेणीभूताः सुराः सर्वे परितस्तीर्थभूधरं । नर्नृत्यंतिस्म रम्भाभिः संगता जयवादिनः ॥ १८ ॥ रक्तदोःपल्लवाभिश्च रम्भावल्लीभिरान्विताः । हैमीभिः सुरकल्पागाः स्फुरन्तीभिरिवानलात् ॥ १९ ॥ गायन्ति रिककंठै श्च गुणं श्रीविमलेशिनः । किंनर्यो यन्त्रमादाय नानारागरसान्वितैः ॥ २० ॥ हावैर्भावैरसैस्सालै ढालैर्ललितविग्रहाः । जेगीयन्ते यशोवृन्दं स्थूलपीनपयोधराः ॥ २१ ॥ मृदंग पटहारावैः स्निग्धै रम्भास्वनैर्बभौ । गगनं भूतलं चापि जंभारातिजयारवैः ॥ २२ ॥ जिनेन्द्रचरणाम्भोजपवित्रं भूधरं सुराः । पुरुहूता दयी नत्वा जग्मुर्धाम यथायथं ॥ २३ ॥ महतां संगतिर्नृणां सत्फलं विदधाति च । जिनेंद्रचरणन्यासाद्भूधरो वन्द्यते जनैः ॥ २४ ॥

देव नृत्य करने लगे एवं मिलकर भगवान विमलनाथकी जय उच्चारने लगे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार कल्पवृक्ष पवनसे झकोरे खाती हुईं लताओंसे विशेष शोभायमान जान पड़ता है उसी प्रकार उस समय देव रूपी कल्पवृक्ष भी लाल २ हाथोंसे शोभायमान नृत्यकालमें चलती फिरती देवांगनाओं से अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ २० ॥ सुन्दर शरीरोंकी धारक एवं उन्नत स्थूल नितम्बोंसे शोभायमान किन्नरी जातिकी देवांगना अनेक प्रकारकी राग रागिनियोंसे युक्त एवं हाव भाव रस चाल ढालोंसे मिश्रित अपने मनोहर कंठोंसे भगवान विमलनाथके गुणोंको वखानने लगीं ।२१-२२ उस समय मृदङ्ग और नगाड़ोंके शब्दोंसे कोमल देवांगनाओंके शब्दोंसे एवं इन्द्रोंके द्वारा किये गये जय जय शब्दोंसे गूंजता हुआ समस्त आकाश अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥२३॥ भगवान विमल नाथके चरणोंसे पवित्र सम्मेदाचलको देवेन्द्रोंने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं सबके सब अपने २ स्थानोंपर चले गये ॥ २४ ॥ ग्रन्थकार सज्जनोंकी प्रशंसामें कहते हैं कि—महान पुरुषोंकी संगति उत्तम फल प्रदान करती है देखो भगवान जिनेंद्रके चरणोंके सम्पर्कसे ही सम्मेदाचल पर्वत समस्त लोकका वंदनीय बन गयो ॥ २५ ॥ जो महानुभाव मौनव्रत और ब्रह्मचर्यव्रत से भूषित हो सम्मेद शिखरकी यात्रा करते हैं उन्हें संसारमें अद्भुत विभूतिकी प्राप्ति होती है

तद्यात्रां ये करिष्यंति मौनब्रह्मव्रतान्विताः । ते लभंतेऽद्भुतां रामां व्यवहारादसंशयं ॥ २५ ॥ तिर्यंचोपि पदं दैवं यांति तद्भूधराश्रयात् । मनुष्या न लभंतेऽत्र तपसा किं परं पदं ॥ २६ ॥ आदितीर्थंत्वतो लेखा निषेवंतेऽनिशं मुदा । तद्यात्राकृन्नराणां च पशूनां न गतिर्भवेत् ॥ २७ ॥ श्रीमत्सुविधितीर्थेऽमून्मेघदेवस्य साधनं । मेघेश्वरखगस्यात तद्दिनाद्घनवर्षणं ॥ २८ ॥ तथा भांडाष्टमी जज्ञे पर्वभूता हि सोत्सवा । सुकालेतरकालस्य दर्शिनी मध्यरात्रके ॥ २९ ॥ अथैकदा मुनिर्मेरुः प्रतिमायोगमाश्रितः । भूधराधस्तटे बभौ ॥ ३० ॥ निर्द्वन्द्वोनिस्पृहः शांतो परं ज्योतिः स्मरन् स्वांते क्शीभूयमितो मुनिः । यावद्ध्यौ परं धाम मध्यराते स मागध ! ॥ ३१ ॥

इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ श्री सम्मेद शिखरके आश्रयसे जब तिर्यंच भी, देव पद प्राप्त कर लेते हैं तब उत्तम तपके आचरणसे मनुष्य तो परम पद प्राप्त कर ही लेते हैं, यह बात बिलकुल निश्चित है। यह सम्मेद शिखर तीर्थ सबसे उत्तम तीर्थ है अनादि निधन है इस लिये देवगण रात्रि दिन इसकी वन्दना करते हैं तथा यह नियम है कि श्रीसम्मेद शिखरकी यात्रा करनेवालोंको तिर्यंच गतिका दुःख नहीं भोगना होता ॥ २८ ॥ भगवान पुष्पदन्तके तीर्थकालमें विद्याधर मेघेश्वर ने मेघदेवका साधन किया था उसी दिनसे वर्षाका प्रारम्भ माना है वह दिन अष्टमीका था इस लिये उस अष्टमीका नाम भांडाष्टमी पड़ गया जो कि पर्व मानी जाती है और उसमें अनेक प्रकारके उत्सव हुआ करते हैं तथा उस दिन ठीक आधीरातके समय सुभिक्ष होगा वा दुर्भिक्ष होगा इस बातकी जांच की जाती है इसलिये संगति बड़ी चीज है ॥ २७—३० ॥

एक दिनकी बात है कि मुनिराज मेरु, पर्वतके अधो भागमें प्रतिमायोग धारणकर चिदानन्द चैतन्य स्वरूप आत्माका ध्यान कर रहे थे। उस समय वे समस्त प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित थे और निस्पृह थे। आधी रातके समय वे परमात्माके स्वरूपका चिंतवन कर हीरहे थे कि विद्युन्माली नामका विद्याधर अनेक पर्वतों पर क्रीड़ा करता हुआ और आकाशमें विचरता हुआ मुनिराजके ऊपरसे

समायातो विद्युन्माली खगो मुनेः। उपर्यं कांतया सार्धं क्रीडयन् भूधरेषु च ॥ ३२॥ व्योयानं निजं स्फीतं किंकिणीरणराजितं। स्तंभितं धातुकीलैर्वा विलोक्याशु क्रुधं गतः ॥ ३३ ॥ नभोगश्चिंतयामास चिरं चित्ते मुहुर्मुहुः। इति क्रोधारुणो रौद्रः पद्घातैश्चालयस्तकत् ॥ ३४ ॥ मद्विमानो महाविद्यारक्षितो द्विड्भयप्रदः। केन पापीयसा बद्धो हठात्सामर्थ्यशालिना ॥ ३५ ॥ अथैव वध्यते हंसो व्याधेनाश्वथवा त्वया। मन्नमार्गं तथा केनाकारि भग्नगति द्विषा। ३६। पश्येयं चेद्द्विषं पापमावश्यकमहं त्वरा। शस्त्रघातैर्दृषद्भिश्च तं हन्या हंत दुर्धियं ॥ ३७ ॥ विमृश्येत्थं चिरं स्वांते शिंजितं किंधनुः खगः। जग्राहोद्धुरसामर्थ्यो भीषणो हरिवत्क्रुधा ॥

निकला। यह नियम है जहां पर ऋद्धिधारी मुनि विराजते हैं उनके ऊपरसे किसीका विमान नहीं निकलता। विद्याधर विद्युन्मालोका विमान विशाल था छोटी२ घण्टियोंसे शोभायमान था ज्योंही वह ठीक मुनिराजके ऊपरसे आया धातुकी कीलोंसे जैसे अटका दिया जाता है वैसे हो अटक गया विमानकी यह दशा देख विद्याधर विद्युन्मालीको वड़ा क्रोध आया एवं वह विमानको पैरोंसे वार वार चलाता हुआ अपने मनमें इस प्रकार विचारने लगा—

यह मेरा विमान अनेक महा विद्याओंसे रक्षित है। वैरियोंको भय प्रदान करनेवाला है किस वलवान पापीने मेरे विमानको रोक दिया है ॥ ३१—३६ ॥ आश्चर्य है जिस प्रकार हंसको व्याध पकड़ लेता है उसी प्रकार भाई! तुझ किस शत्रुने मेरा विमान पकड़ कर-वांध लिया है ॥ ३७ ॥ मैं अभी तुझ पापी वैरीकी खोज करता हूं। मैं तुझ दुष्ट वुद्धिको शस्त्रोंके घातोंसे और पत्थरोंसे अभी प्राण रहित कर दूंगा। वस इस प्रकार दृढ विचार कर शीघ्र हो उसने धनुष हाथमें लेलिया एवं मारे क्रोधके सर्पके समान भयङ्कर हो वलवान उस विद्याधरने शीघ्र ही धनुष पर वाण चढ़ा लिया। लक्ष्य बांधकर वह नीचेको फैंकता ही था कि उसकी स्त्रीने उसका हाथ पकड़ लिया एवं वह अपने पति विद्याधरको इस प्रकार समझाने लगी—

॥ ३८ ॥ संध्यायाशुगतिं यावद्व्योमागे नलोवली । स्थितु मिच्छति तावत्स गृह्णीतो रामया करे ॥ ३९ ॥ शृणुत्वं मामकं नाथ ! वचः परमपावनं । अविमृश्य विधेयं न कृत्यं सभ्येन धीमता ॥ ४० ॥ स्वकीयं बलमज्ञात्य ये कुर्वन्ति बलं शठाः । त एव निधनं यांति वन्हाहानाथे पतंगवत् ॥ ४१ ॥ येनाद्यः स्तंभितं व्योमयानं भर्तस्तवैव सः । स्याद्बली नहि दुर्जेन जीयते फणिनेव धीरः ॥ ४२ ॥ यदा नो जीयते शत्रु स्तदा कीर्तिः प्रणश्यति । तस्या विनाजीवितं नृणां गताथं गततेजसां ॥४३॥ नृभिश्चत्वारि कृत्यानि नो विधेयानि वेगतः विमृश्यकारिणं नोथं वृणोते यज्जयाश्रियाः ४४ मामायास्तद्वचः श्रुत्वा विद्वद्भिर्वचं हितं । जगौ प्रेमा नभोभागो कांतां कामप्रियोपमां

प्राणनाथ ! मेरे हितकारी वचन सुनिये जो मनुष्य सभ्य और बुद्धिमान हैं उन्हें विना विचारे कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये ॥ ४७—४१ ॥ जो मनुष्य अपनी शक्तिको न जानकर विना विचारे ही बल कर बैठते हैं वे मूर्ख कहलाते हैं एवं अग्निमें गिरकर जिस प्रकार पतंग खाक हो जाता है उसी प्रकार वे भी मृत्युके कवल बन जाते हैं ॥ ४२ ॥ स्वामिन् ! जरा विचारो तो जिसने तुम्हारा यह विमान रोक दिया है वह यदि तुमसे अधिक बलवान हो तो जिस प्रकार सर्पसे गरुड़का जीता जाना कठिन है उस प्रकार तुमसे उसका जीतना कठिन हो जायगा ॥ ४३ ॥ यदि तुम शत्रुको न जीत सकोगे तो तुम्हारी कीर्ति नष्ट हो जायगी । कीर्तिके नष्ट हो जानेसे मनुष्य तेज रहित हो जाता है फिर उसका जीवन ही विफल माना जाता है ॥ ४४ ॥ बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिये कि वे चार बातोंके करनेमें जल्दी न करें विचार पूर्वक ही हर एक कार्यको करें क्योंकि जो पुरुष विचार शील हैं लक्ष्मी उन्हें आपसे आप आकर वर लेती है ॥ ४५ ॥ विद्वानोंसे भी जल्दी नहीं कहे जानेवाले एवं हितकारी अपने स्त्रीके वचन सुन विद्याधर विद्युन्मालीने कहा—

रतिके समान परम सुन्दरी भ्रमरोंकी पंक्तिके समान काले कटाक्षोंसे शोभायमान मृग लोचनी प्रिये ! तुमने कहा है कि विद्वानोंको चार कार्य जल्दी नहीं करने चाहिये तो वे चार कार्य कौन हैं

।४५। हे प्रिये चञ्चरीकालीकटाक्षे मृगलोचने । कानि चत्वारि कृत्यानि कर्तव्यानि च धीमता ।४६। पुनः प्राह प्रियं धारं धीरवाग्वामलोचना । अकालगमनं चैकं विषमां गोष्ठिकां ततः ।४७। कुमित्रैः सह सांगत्यं कामाभावात् क्रुधं बुधाः । परस्त्रीभिः समं नैव कुर्वंति शर्मकांक्षिणः ॥ ४८ ॥ अथात्र विद्यते नाथ ! प्रवृत्तिः कथ्यते मया । यूयं शृणुत तां रम्यां श्रद्धान्वीतेन चेतसा ॥ ४९ ॥ महाभोटे जनां तेऽभूत् श्रेष्ठी कौमारपालकः । शतपंचाशत्सुकोटीनां दीनाराणां प्रभुर्महान् ॥ ५० ॥ प्रियंगुसुन्दरी तस्य दायितास्ति गरीयसी । तयोः स्यातां सुतौ द्वौ च रम्यौ चित्रविचित्रकौ ॥ ५१ ॥ चित्रोऽभूद् द्यूतसंसक्तो रायं नीत्वा गृहाद्दौ । द्यूतकृद्भ्योऽनिशं पितृदुःखदो मत्त-

विद्याधर विद्युन्मालीकी स्त्री वड़ी गम्भीर और वुद्धिमती थी अपने स्वामीको उसने इस प्रकार उत्तर दिया—

प्रथम वात तो यह है कि मनुष्योंको जहां कहीं भी जाना चाहिये असमयमें नहीं जाना चाहिये। दूसरी वात यह है कि जो गोष्ठी—संगति विषम हो उसमें सम्मिलित नहीं होना चाहिये सत्सङ्गति हीं करनो चाहिये। तीसरी बात यह है कि जो कुमित्र हैं उनके साथ किसी प्रकारका सहवास नही करना चाहिये और चौथी बात यह है कि जो मनुष्य अपने कल्याणके आकांक्षी हैं उन्हें चाहिये कि वे परस्त्रियोंसे किसो प्रकारका अपना काम न सटता देख रंचमात्र भी उनसे कोध न करें ॥ ४६—४९ ॥ इसी सम्वन्धमें एक कथा प्रसिद्ध है। एकाग्र चित्त हो ध्यान देकर सुनो मैं क्रमसे कहती हूं—

इसी पृथ्वीके महाभोट देशमें एक कुमार पाल नामका सेठ निवास करता था जो कि छप्पन दोनारोंका स्वामो था। उसको स्त्रीका नाम प्रियंगुसुन्दरी था और उससे चित्र विचित्र नामके दो पुत्र उत्पन्न थे ॥५० ५२॥ दोनों पुत्रोंमें चित्र नामका पुत्र वड़ा ही ज्वारी था। वह ज्वारियोंको प्रतिदिन घरसे निकालकर धन दिया करता था। पिताको वड़ा कष्ट देता था और सदा पागलके

बद्धवन् ॥ ५२ ॥ मत्वा पुत्रं विकीर्तिं तं श्रेष्ठो दत्त्वा कियद्धनं । पृथक्कृतो गृहाद्द्यूतं विजहाति तदापि न ॥ ५३ ॥ विचित्राख्यो लघुनत्वा मातरं पितरं शुभः । चचाल सिंहलद्वीपं वाणिज्यार्थे धनप्रियः ॥ ५४ ॥ समुत्तीर्य पयोराशिं तं द्वीपं चाप पुण्यतः । वसु द्वादशकोटीनां व्यापारं कृतवान् सकः ॥ ५५ ॥ अथातानेन चित्रेण भुक्तं सर्वं वसु त्वरा । निःस्वीभूय समाध्यैव दध्याविति मनोऽन्तरे ॥ ५६ ॥ स्वर्णरूप्यादिधातूनां कर्तुः पार्श्वं यदा लभे । तदैव गुटिकाविद्यां स्वीकरोम्यविलम्बतः ॥ ५७ ॥ ध्यात्वेति मानसे यावत्तिष्ठ तस्तावत्समाकर्णत् । कापाली प्रेतकांतारे कालन्दाख्योऽगमत्समभूत ॥ ५८ ॥ख्यातं तं योगिनं श्रुत्वा नीत्वा मिष्टान्नमागतः । नत्वाग्रे

समान बड़ २ करता रहता था ॥ ५३ पुत्रको इस प्रकार जूआका व्यसनो देख सेठ कुमारपालने उसे कुछ धन देकर जुदा कर दिया तथापि उस दुष्टने जुआ खेलना नहीं छोड़ा ॥ ५४ ॥ छोटा पुत्र विचित्र बड़ा ही सुशील और अच्छा था और धनमें विशेष प्रेम रखता था इसलिये अपने पिता माताको नमस्कार कर वह एक दिन सिंहल द्वीपकी ओर व्यापारके लिये चल दिया ॥ ५५ ॥ विशाल समुद्रको तर कर वह अपने विशिष्ट पुण्यके उदयसे सिंहलद्वीप जा पहुंचा और बारह करोड़ दीनारोंसे उसने व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ५६ ॥

बड़ा पुत्र चित्र देशमें ही था। उसने धन खा विगाड़ डाला जब उसका सारा धन नष्ट हो गया उस समय वह अपने मनमें विचारने लगा—जो पुरुष सोना रूपा आदि धातुओंका बनानेवाला हो यदि मैं उसके पास थोड़े दिन रहूं तो मैं गुटिका विद्या(सोना आदि बनानेकी विद्या) शीघ्र सीख लूं बस ऐसा विचार कर वह बैठा ही था कि उसी समय कालन्द नामका एक कापाली श्मसान भूमिमें आ पहुंचा जो कि अङ्गमें भवूति रमाये था। चित्रने भी कापालीके आनेका समाचार सुना। शीघ्र ही मिष्टान्न लेकर वह उसके पास गया। नमस्कार किया एवं वस्त्र पुष्प फल भेंट कर दिये ॥ ५७—६० ॥ चित्रकी यह चेष्टा देख कापालीने भी समझा कि यह बड़ा भक्त है इस

ऽमूमुवचच्चित्र वासःपुष्पफलानि च ॥ ५९ ॥ योगी मत्वा परं भक्तं सन्मानं बहुधा ददौ । स्वार्थाधारोऽस्तु सत्प्रेमा स्वार्थः प्रेम प्रियो हितः ॥ ६० ॥ तद्वासरं सामारस्य चित्रो भसमांगिनोऽकरोत् । भक्तिं भूरितरां नित्यं दिवानक्तं प्रतिक्षणं ॥ ६१ ॥ षणमासावधिमास्थित्वा गन्तुकामो बभूव सः । तदा बभाण चित्रस्तमिति प्रेमार्द्र मानसः ॥ ६२ ॥ हे अनङ्गाभ ! दीनेश ! मन्त्राहनमहासुरः । तथा त्वं देहि मे स्वामिन् भुनज्म्या जीवितं सुखं ॥ ६३ ॥ लिंगी तद्भक्तिभारेण प्रसन्नीभूयमेत्य वै । स्वर्णसंपादिसद्विद्यां दत्त्वोवाचेति तं भृशं ॥ ६४ ॥ मध्यरात्रे त्वया बाल ! विधेयो विधिरुत्तमः । विद्याया गुप्तभावेन सिद्धिः संपद्यते सदा ॥ ६५ ॥ गते तस्मिन्

लिये उसे बड़े चाव आदरसे बिठाया ठीक ही है जिससे स्वाथ सटता है वही मनुष्योंका प्यारा होता है क्योंकि स्वार्थ ही प्यारा और हितकारी माना है ॥ ६१ ॥ उस दिनसे लेकर चित्र प्रतिक्षण योगीकी टहल चाकरी करने लगा। वह कापाली छह मास तक वहां ठहरा। छह मासके वाद उसने चलनेका विचार कर लिया। कापालीको इसप्रकार जाते देख चित्रने प्रेमसे गद्गद हो उससे इसप्रकार विनय पूर्वक प्रार्थना की—

प्रभो ! आप कामदेवके समान सुन्दर हो। दीनोंके स्वामी हो एवं मन्त्रसे महासुरको बुला देने वाले हो। स्वामिन् मुझे कोई ऐसा मन्त्र दीजिये जिससे मैं अपना जीवन सुखसे विता सकूं ॥ ६२—६४ ॥ कापाली तो चित्रकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न था ही। उसने शीघ्र ही उसे सुवर्ण वनानेवाली विद्या प्रदान करदी और सेठपुत्र चित्रसे यह कहा—

प्रिय वच्चा ! ठीक आधी रातके समय तुम इस मन्त्रको विधि पूर्वक साधना क्योंकि विद्याकी सिद्धि गुप्त रूपसे ही होती है यह नियम है वस इसप्रकार मत्र देकर कापाली अपने अभीष्ट स्थानको चला गया। सेठ पुत्र चित्रने उसके पीछे अनेक रसोंमें तामे और हंसपाक रसका सोना वनाना प्रारम्भ कर दिया। इस रूपसे उसने पांचवार जाज्वल्यमान और उत्तम सोना वना लिया

महाऽण्येऽद्रिलो नानारसैर्ध्वंधत्। हाटकं ताम्रलोहस्य हंसपाकरसस्य वा ॥ ६६ ॥ पञ्चकृत्वो विधायासौ दीप्रं जम्बूनदं घनं। दध्य इति निजे चित्ते तृष्णासिंधूर्मिमध्यगः ॥ ६७ ॥ यत्र शैलतटे सन्ति बल्लीजालानि वेगतः। तत्र गत्वा घनं पूर्णं कृत्वा तिष्ठामि सद्मनि ॥ ६८ ॥ एकदा धनुरादाय निषङ्गं सशरं पुनः। निशीथे निर्ययौ चित्रो महेंद्रं भूधरं प्रति ॥ ६९ ॥ अस्मिन्नत्रावसरे भ्राता विचित्राख्यो महाम तः। अर्जयित्वा घनं प्राज्यं सेवकैर्दशभिः सह ॥ ७० ॥ अदूरवर्ति मत्वा स्वं पत्तनं नगराभिधं। द्वादशे वत्सरे तस्मिन् मार्गे एति समुत्सुकः ॥ ७१ ॥ आयांतं तं समालोक्य प्रजजल्पेऽग्रजोऽनुजं। श्यामायां कः समायाति निशि ब्रूताद्द्रुतं

सोनेंके इस प्रकार तयार होने पर उसका तृष्णा समुद्र बराबर बढ़ने लगा इसलिये एक दिन उसने अपने मनमें यह विचार किया—

जिस पर्वत पर बहुत सी लताये हों वहांपर जाकर मुझे वहुतसा सोना तयार कर लेना चाहिये एवं पीछे आनन्दसे घरमें रहना चाहिये ॥ ६५—६६ ॥ एक दिन हाथमें उसने बाण चढ़ाया हुआ धनुष लेलिया एवं ठीक रात्रिके समय वह महेंद्र नामक पर्वतकी ओर चल दिया ॥ ७० ॥ वह पहाड़ पर जाकर पहुंचा ही था कि उसी समय उसका छोटा भाई विचित्र जो कि अत्यंत बुद्धिमान था बारह वर्ष बाद लौटकर अपने देश आया एवं अपना नगर नामका पुर बहुत ही समीप समझकर केवल दश सेवकोंके साथ उस मार्गसे अपने पुरकी ओर जाने लगा। जिस समय वह महेंद्र पर्वतके पास आया और चित्रने उसे देखा शीघ्र ही उससे इस प्रकार पूछा—

अत्यन्त अंधियारी रातमें यह कौन जारहा है। शीघ्र उत्तर दो। चित्रके इस प्रकार पूछने पर विचित्रने भयभीत हो इस प्रकार उत्तर दिया—तुम्हीं बतलाओ तुम कौन हो। शीघ्र बतलाओ नहीं अभी चक्रसे तुम्हारे दो खण्ड किये देता हूं ॥७१—७४॥ विचित्रकी इस प्रकार निष्ठुर वाणी सुन चित्र भी भयभीत होगया। एवं अपने भाई विचित्रको अपनी अजानकारीसे बैरी मान उसके

भवान् ॥ ७२ ॥ तन्निशम्य तदा चोचद्विचित्रस्तं च भयारवैः । कोऽसि त्वं ब्रूहि वेगेन चान्यथा हन्मि चक्रतः ॥७३॥ श्रुत्वा तन्निष्ठुरां वाचं ततर्कीत स्वमानसे । चित्राख्यो भीतचित्तः सन् प्रतिकूलजिघांसया ॥ ७४ ॥ विश्वस्तो दुर्जनो नूनं हंति हंत हठान्नरं । अतो यावदयं शस्त्रं क्षिपेत्तावदहं द्रुतं ॥ ७५ ॥ विचार्येत्थं मुमोचाशु शिलीमुखमहो क्रुधा । विचित्रेण तथा ध्यात्वा वायचक्रं नुनोद तं ॥ ७६ ॥ इषुणा हृदये भिन्नो विचित्रो भूतलेऽपतत् । चक्रेण युगपच्चित्रो द्वावेतौ निधनं गतौ ॥ ७७ ॥ अतो भर्तां निशाभागेऽन्यात्मा लोकाविवेकता । जायते नास्यते जातु शस्त्रं पुन्सा भवादृशा ॥ ७८ ॥ निशीथे गमनं चापि न विधीयेत धीधनैः । येनानिष्टसमु-

मारनेकी इच्छासे उसने यह विचार किया । यदि दुर्जन पर विश्वास कर लिया जाता है तो वह नियमसे पुरुषको मार डालता है मुझे भी इसकी बातपर विश्वास नहीं करना चाहिये इसलिये जब तक वह शस्त्र मेरे ऊपर न छोड़े उसके पहले ही मुझे इस पर शस्त्र छोड़ देना चाहिये बस ऐसा विचार चित्रने शीघ्र ही विचित्र पर बाण छोड़ दिया । विचित्र भी उधर क्रोधायमान था जब चित्रसे उसने कोई जवाब नहीं पाया तो उसने चित्रके समान अपने मनमें दृढ़ विचार कर चित्रपर चक्र छोड़ दिया ॥ ७५—७७ ॥ देखो कर्मोंकी विचित्रता उसी समय चित्रके बाणसे विद्ध होकर तो विचित्र गिरकर मर गया और उसी समय विचित्रके चक्रसे कटकर चित्र जमीन पर गिरकर मर गया इस प्रकार दोनों ही मृत्युके कवल बन गये ॥ ७८ ॥ यह कथा सुनाकर विद्युन्मालीकी स्त्रीने अपने स्वामी विद्याधरसे कहा—

इसीलिये मैं कहती हूं कि रात्रिके गाढ़ अन्धकारमें दूसरे मनुष्यका ज्ञान तो होता नहीं इसलिये तुम्हारे सरीखे बुद्धिमान पुरुषको बिना विचारे रात्रिके समय शस्त्र न छोड़ना चाहिये ॥ ७९ ॥ तथा जो पुरुष बुद्धिमान हैं उन्हें रात्रिमें गमन भी नहीं करना चाहिये क्योंकि रत्रिमें गमन करनेसे अनेक प्रकारके अनिष्टोंका सामना करना पड़ता है तथा जिसमें अनिष्ट जान पड़ते हैं बुद्धि-

त्पत्तिस्तत्कृत्यं त्यज्यते ध्रुवं ॥ ७९ ॥ अकुलीनैर्नरैः साधं परस्त्र्यादि कथां श्रयेत् । सा चैव विषमा गोष्ठिर्बुधास्तामाचरंति न ॥ ८० ॥ एकदा मानसे हंसो जलकल्लोलराजिते । हंसयामा क्रीडयन् स्वैरं बभाणेति प्रियां प्रियां ॥८१॥ हे कांते शुक्तिजाहारे ! कोप्यस्ति चावयोः प्रभुः । येन सार्धं विधायाशु मैत्रीं दे?ीप्यते स्फुटं ॥८२॥ व्याजहार मराली,तं श्रृणु त्वमिति मद्वचः । सर्वेषां वयसां मध्ये मान्योऽसि त्वं गुणालयः ॥ ८३ ॥ जले त्वं तिष्ठसि पक्षिन् मकरन्दं भुनक्ष्यपि । तर्हि राजा भवेत्कस्ते ब्रूहि त्वं कारणं विना ॥ ८४ ॥ सितपक्ष स्तदादीत् पशलं सदनं प्रिये ! । सर्वेषां विद्यते नाथस्तत्कथं नावयोः स च ॥ ८५ ॥ ऋते गुरो ऋते राज्ञ ऋते द्रविणतो भुवि । जीवितं च ऋते नार्या ऋते ज्ञानाद्वृथा नृणां ॥ ८६ ॥ विनाधीशं खला लोका वर्तंते न्यायवर्त्मनि । स्तेयकर्मकराः सन्तो न सरन्ति

मान लोग उस कार्यको सर्वथा छोड ही देते हैं ॥ ८० ॥ नीच पुरुषके साथ पर स्त्री आदिकी कथा करना विषम गोष्ठी कही जाती हैं विद्वान लोग ऐसी गोष्ठीका आश्रय नहीं करते ॥ ८१ ॥ कुमित्रकी सङ्गतके विषयमें एक किं वदन्ती कथा है और वह इस प्रकार है—

एक हंस अनेक तरङ्गोंसे शोभायमान मानसरोवरमें क्रीडा करता था एक दिन क्रीडा करते २ उसने अपनी प्यारी हंसिनीसे कहा—मोतियोंसे शोभायमान प्रिये ! अपना ऐसा भो कोई स्वामी है जिसके साथ अपन मित्रता कर सकें ॥ ८१—८३॥ उत्तरमें हंसिनीने कहा—मेरी सुनो समस्त पक्षियोंमें तुम मान्य और गुणोंके स्थान हो । जलमें तुम रहते और कमलदंड खाते हो तुम्हीं कहो तुमसे बढ़कर राजा कौन हो सकता है ! ॥ ८४—८५ ॥ उत्तरमें हंसने कहा—

तुमने कहा सो तो ठीक परन्तु जब संसारमें सबोंका कोई न कोई स्वामी माना जाता है तब हमारा भी कोई स्वामी हो सकता है । संसारमें गुरु राजा धन स्त्री और ज्ञानके विना मनुष्योंका जीवन विफल है । विना स्वामीके समस्त जन न्याय मार्गपर नहीं चलते । चोरी करनेवाले होजाते हैं एवं धर्मायतनोंमें जानेकी लालसा नहीं रखते ॥ ८२—८८ ॥ इस लिये मैं अपने सुखकी आशा

वृषास्पदं ॥८७॥ अतोऽहं निजसौख्याय स्वामिधर्मेतनः प्रिये ! । पृच्छामि नृपतिं स्वीयं विनेदय निवेद्य ॥८८॥ अत्याग्रहवशेनाह मराली तं शितच्छदं । सह्ये गिरौ तवाधीशः समास्ते निशि संचरन् ॥ ८९ ॥ श्वेतपत्रो गतस्तत्र सायं पत्न्यापि वारित. । अगे स्थित्वेक्षते यावत्तावत्सोऽपि समाययौ ॥ ९० ॥ अन्वयुक्त्युलूकस्तं कोऽसि कस्मात्समागतः । कास्ति वासस्तव ब्रूहि किमर्थं चागमोऽत्र वा ॥ ९१ ॥ काकारिवचनं हंसो निशम्योवाच वेगतः । तवास्मि किंकरो राजन् ! त्वत्सेवायै समागतः ॥ ९२ ॥ मराळीयं वचः श्रुत्वा तुतोष ध्वांक्षराड् भृशं । सार्धं नीत्वा गिरौ याति दर्यां विभ्रमकानने ॥ ९३ ॥ एकदा ध्वांक्षविद्वंसं जगादेति विभीकरः । किं भुनक्षि त्वकं येन सुन्दरो दृश्यसे मृदुः ॥ ९४ ॥ तदा प्राहेति तं पत्री स्थानं मे मानसे विभो ! तत्र तामरसानां च मकरंदं भुनज्म्यहं ॥ ९५ ॥ दर्शय

से स्वामीको पहिचानना चाहता हूं हमारा स्वामी कौन है। तुम जल्दी बतलाओ ! ॥ ८९ ॥ अपने स्वामी हंसका जब यह अति आग्रह देखा तो उसने यह उत्तर दिया—सह्य पर्वत पर रात्रिमें घूमता हुआ तुम्हारा स्वामी रहता है ॥ ९० ॥ शामके समय हंस अपने स्वामीको खोजने चला यद्यपि हंसिनीने बहुत मना किया परन्तु उसने एक न सुनी। वह पर्वतके ऊपर पहुंचा ही था कि उसी समय जिसको उसका स्वामी बनाया गया था वह भी वहां आगया ॥ ९१ ॥ उल्लूको हंसका स्वामी हंसिनीने बतलाया था। उल्लूने जिस समय हंसको देखा—इस प्रकार पूछना प्रारम्भ कर दिया—

तुम कौन हो कहांसे आये हो कहां तुम्हारा स्थान है और यहां किस लिये आये हो जल्दी बोलो ! उल्लूके ऐसे वचन सुन हंसने कहा—राजन ! मैं आपका सेवक हूं आपकी सेवाके लिये यहांपर आया हूं। हंसके इस प्रकार वचन सुन उल्लू बड़ा प्रसन्न हुआ और भयङ्कर वनमें पर्वत की गुफामें बड़े आदरसे लिवा गया ॥ ९१—९४ ॥ एक दिन उल्लूने हंससे पूछा भाई तुम बड़े सुन्दर और कोमल जान पड़ते हो कहो तो तुम खाते क्या हो ! उत्तरमें हंसने कहा—

त्वं निजं धाम तथेति प्रतिपद्य सः। नीत्वा काकप्रियं मूढो मानसे त्वरया गतः ॥९६॥ मध्यरात्रे स्थितो लूकः सर्वं पश्यति पापभाक्। हंसा निद्राकुला जातास्तद्देशान्यकथाऽभवत् ॥ ९७ ॥ हंसराजाभिधस्तस्मिन्मार्गे याति धनुर्धरः। ररास दक्षिणे लूकोऽशिवद्राणं तदा स तं ॥ ९८ ॥ तेनेषुं पश्यता तूर्णं मलूकेन पलायितं। तदा तद्बाणघातेन हंसः पञ्चत्वमाप सः ॥ ९९ ॥ कुमित्रेण समं मैत्री धनं धान्यं चतुष्पदं। लज्जां मानं मदं प्रेम जीवितं नाशयन्त्यपि ॥ १०० ॥ अतो नाथ! न कर्तव्या कुमित्रस्य च संगतिः। यतो नश्यति सन्नृणां मतिर्विद्या च कौशलं ॥ १०१ ॥ निशां भूरितरां मत्वा खगपत्नी कथां जगौ। परस्त्रीकोपसंभूतां मनोनिर्वेगदां नृणां ॥ १०२ ॥ शृणु नाथ महादेशे गांधारे रुद्रनामकः। व्यवहारी विद्यते दानी परन्तु विषयी महान् ॥ १०३ ॥ तत्रैवास्ते धनी श्रेष्ठी श्रीपालाख्यो

स्वामिन्! मेरा घर मानस सरोवर है वहां मैं मृणाल दण्ड खाया करता हूं ॥ ९५—९६ ॥ उल्लूने कहा भाई! तुम्हारा घर मानस सरोवर कैसा है हमें भी दिखा दीजिये भोला हंस उसकी बातोंमें आगया और उसे मानस सरोवर पर ले आया ॥ ९६ ॥ ॥ रात्रिके घोर भी अन्धकारमें उल्लूको तो सब दीखता ही है। जिस समय सारे हंस तो सो रहे थे और उल्लू जग रहा था उस समय यह घटना उपस्थित होगई—

जहांपर हंस रहते थे उसी मार्गसे एक हंसराज नामका धनुर्धारी मनुष्य निकला। धनुर्धारी मनुष्यकी ठीक दाईं ओर उल्लू बैठा था। धनुर्धारीको देखते ही वह चिल्लाने लगा। धनुर्धारीने अपना अपशकुन समझ उसपर बाण छोड़ दिया दुष्ट उल्लू भाग गया। बाणके घावसे हंस बिचारा मर गया इस लिये यह निश्चित है दुष्ट मित्रके साथ की गई मित्रता धन धान्य, पशु आदि, लज्जा मान गौरव प्रेम और जीव सबकी नाशक होती है ॥ ९७—१०२ ॥ हे स्वामिन्! बुद्धिमान मनुष्योंको कभी भी कुमित्रकी संगति नहीं करनी चाहिये क्योंकि बुद्धि विद्या और कुशलता सभी कुमित्र संगतिसे नष्ट हो जाते हैं ॥ १०३ ॥ उस समय अधिक रात्रि जानकर विद्याधर विद्युन्माली

बहुप्रदः । तत्पत्नी सुन्दरी नाम्ना इति किं चामरप्रिया ॥ १०४ ॥ रुद्रनामैकदा दृष्ट्वा तां चकोरदृशां शठः। नितंबस्तनभारेण मंथरां विह्वलोऽभवत् ॥ १०५ ॥ प्रत्यहं तद्गृहं याति केन चिच्छद्मना स तां । विलोकितुं महामोहमूर्छितः पापपण्डितः ॥ १०६ ॥ एकदा तां हठात्कृत्वा समालिंग्य जगाविति । भो श्यामे मद्वचः सारं प्रमाणीकुरु सादरं ॥ १०७ ॥ याहं निर्घाटितो दुष्टो जजल्प तु त्वदं वचः। पश्चाहं ते करिष्यामि बह्वनर्थपरंपरां ॥ १०८ ॥ धूर्त्तं मत्वा तदा साह शृणु त्वं मद्वचः प्रभो ! । बिभेमि मत्प्रियान्नूनं

की छीने पर स्त्रीके क्रोधसे क्या फल प्राप्त होता है यह कथा कहनी प्रारम्भ कर दी जो कि मनुष्योंके चित्तको वैराग्य उत्पन्न करने वाली थी। वह कथा इस प्रकार है—

गान्धार नामके महा देशमें एक रुद्र नामका व्यापारी रहता था जो कि दानी तो था परन्तु महा विपयी था। उसी देशमें एक श्रीपाल नामका भी सेठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम सुन्दरी था जो कि ऐसी जान पड़ती थी कि यह कामदेवकी स्त्री रति है या कोई देवांगना है ॥१०३-१०५॥ एक दिन व्यापारी रुद्रने चकोर नयनी एवं नितम्ब और स्तनके भारसे मन्द २ चलनेवाली सेठानी सुन्दरीको देख लिया। पापी वह मोहसे मूर्छित हो विकल होगया एवं किसी न किसी वहानेसे प्रति दिन उसको देखनेके लिये उसके घर जाने लगा ॥ १०६—१०७ ॥ उसने बहुत चाहा कि सुन्दरी सीधे साधे मेरे कावूमें आजाय परन्तु वह न फसी इसलिये एक दिन रुद्रने उसे जबरन पकड़कर आलिङ्गन कर लिया एवं इस प्रकार अनुनय विनयके वचन कहने लगा—

सुन्दरो ! मेरी बात सुन और उसे स्वीकार करले। मैं तेरा वड़ा कृतज्ञ हूंगा। सुन्दरी बुद्धिमती थी उसने एक भी बात रुद्रकी न सुनी एवं पकड़कर जबरन घरसे निकाल दिया। रुद्र तो दुष्ट था ही। सुन्दरीके द्वारा अपना यह घोर अपमान देख उसे वड़ा रोष आया। सेकड़ों गाली बकी झकीं एवं यह कह कर कि अच्छा तुझे देख लूंगा यदि तेरे सैकड़ों अनर्थ न कर डालूं तो

३५७
३७८

मन्यथा त्वं पतिर्मम ॥ १०९ ॥ आभाष्येति समानीतः सद्ममध्ये धृतो तया । अत्रांतरे समायातः श्रीपालो द्वारि सद्मनः ॥ ११० ॥ मंजूषायां महार्घायां चित्रायां रत्नराजिभिः । क्षिप्तो भर्तुर्भिया रुद्रो दत्ता मुद्रायसी ततः ॥ १११ ॥ जगादेति पुरो भर्तुः सुन्दरी ललितं वचः । स्वामिन्नात्मगृहे भृत्य. समागत्येति संजगुः ॥ ११२ ॥ मंजूषा विद्यते रम्या युष्माकं कुंकुमारुणा । प्रजापो याचते तां वः प्रेषणीया प्रयत्नतः ॥ ११३ ॥ नीत्वा तां वेगतो भीतः श्रीपालो भूपतेः पुरः । मुक्त्वोवाचेति तां रम्यां स्फुटार्थां गुणगर्भितां ॥ ११४ ॥ देव मे सिंहलद्वीपात्समायाता मनीप्सिता । मंजुषा मणिभारेण भूषिता लोचनप्रिया ॥ ११५ ॥ प्राभृती

मेरा नाम रुद्र नहीं, चलने लगा ॥ १०८—१०९॥ रुद्रके इस दुर्व्यवहारसे सुन्दरीने अपनी कीर्तिपर धब्बा लगता देखा इसलिये शांत हो प्रिय वचनोंमें वह इस प्रकार रुद्रसे कहने लगी—

स्वामिन् ! मेरी बात सुनो । मैं अपने पतिसे डरती हूं । यदि मुझे उनका डर न होता तो मैं नियमसे तुम्हें पति बना लेती । तथा ऐसा कहकर उसने शीघ्रही रुद्रको अपने घरके भीतर बुला लिया । उसी समय उसका पति श्रीपाल भी महलके दरवाजे पर आगया । महलके भीतर रत्नोंकी जड़ी एक बहु मूल्य संदूक थी । अपने स्वामीके भयसे सुन्दरीने रुद्रको उसके भीतर छिपा दिया और बाहिरसे ताला जड़ दिया ॥ १११—११२ ॥ एवं अपने स्वामीके सामने उसने यह शांतिमय वचन कहा—

स्वामिन् ! अपने घर राजाके सेवक आये थे । अपने घरमें जो केसरके समान रंगकी रत्न जड़ी संदूक है राजा उसे मागता है तुम शीघ्र उसे राजाकी सेवामें भेज दो ॥ ११२—११४ ॥ राजाकी आज्ञासे श्रीपाल डर गया वह शीघ्र ही राज सभाकी ओर संदूक लेकर चल दिया एवं राजाके सामने रखकर मनोहर स्पष्ट और गंभीर वचनोंमें उसने इस प्रकार कहा—

स्वामिन् ! मणियोंसे शोभायमान लोचनोंको प्यारी और अभीष्ट यह संदूक मैं सिंहलद्वीपसे

क्रियतेऽस्माभिर्गृह्यतां मीनकेतुभ । देवागारे नृपागारे युक्तं तद्द्वयं पुनः ॥ ११६ ॥ राज्ञा नीत्वा दत्तो सिंधुस्वामिने सौहृदात्खलु । स ऽपि नीत्वा निजं धाम गंतुकामो नृपाज्ञया ॥ ११७ ॥ चचाल चतुरंगेण बलेनामा यदा तदा । पलं मत्वाथ भेरुण्डो गृहीत्वैवगगनांगणे ॥ ११८ ॥ सिंधुराजचरैः सैव मोचिता सागरेऽपतत् । यदा निष्कास्यते भृत्यैस्तन्मध्यस्थो जगाविति ॥ ११९ ॥

कइच्छा तइधण्णा जोइण्णा पण्डिया च सहपवरा । तचण्णारुद्दरहिया इच्छकुडवखेहिं णो भिण्णाः ॥ १ ॥

राजभृत्याश्च भीभीताः गत्वा नरपतेः पुरः । व्याहरंतिस्म भो देव! मंजूषेयं प्रजल्पति ॥ १२० ॥ किं वक्ति ब्रूत वेगेन गाथा स्याता तदा च तैः । श्रुत्वा धरापतिः प्राह भो भो भृत्या निशम्यतां ॥१२१॥ केन विद्विदुषा पुंसा वर्ततेऽधिष्ठिता शुभा । अतो वेगेन सा

लाया था उसे मैं आपकी भेंट कर रहा हूं क्योंकि देव मंदिर वा राज मन्दिरमें ही इसका होना युक्त है राजाने उसे सिंधुराज नामक व्यक्तिको देदिया वह भी राजाकी आज्ञासे उसे लेकर चतुरङ्ग सेनाके साथ अपने घरकी ओर चल दिया एवं आगनमें आकर वह संदूक उसने रखवा दी, उस समय भेरुण्ड नामका पक्षी आकाशमें उड़ रहा था उसने वह संदूक मांसका लोदा जाना इसलिये वह चूंचसे उठाकर आकाशमें उड़ा लेगया। सिंधुराजके नोकरोंने बड़ी कठिनतासे उसे छुटाया तथापि वह समुद्रके अन्दर जाकर पड़ गई। सेवक जब उसे निकालने लगे तो उसके भीतरसे यह शब्द निकला—

रुद्रके सिवाय सभी मनुष्य संसारमें कृतार्थ हैं धन्य योगी पंडित वुद्धिमान तत्वोंके जानकार और स्त्रियोंके जालमें नहीं फसनेवाले हैं केवल रुद्रही इनसे विपरीत और दुष्ट हैं" संदूकके भीतरसे इस प्रकार शब्द सुनकर राजाके जितनेभर भी सेवक थे मारे भयके व्याकुल होगये दौड़ते दौड़ते शीघ्र ही वे राजाके पास पहुंचे और इस प्रकार कहने लगे—स्वामिन! जिस संदूकको अपन ले गये थे वह संदूक बोलती है॥ ११५—१२२ ॥ सेवकोंसे यह समाचार सुन राजाको भी वड़ा आश्चर्य हुआ। इसलिये शीघ्र ही उसने पूछा—संदूक क्या बोलती है? सेवकोंने जो गाथा

रया नीयतां वारिराशितः ॥ १२२ ॥ आदातु ते यदा यांति मंजूषां रत्नरंजितां । पाठीनोऽजीगिलत्तूर्णं वृथाऽसौ निधनं गतः ॥ १२३ ॥
तथा भर्तः परस्त्रीणां संगं कुर्वंति ये जडाः । त एव निधनं यांति रुद्रश्चेत्वीव निश्चितं ॥ १२४ ॥ शुभेतरं विचार्यैव विद्वद्भिः कुलवेंदु-
भिः । कार्यं सदान्ने भर्तस्त्वादृक्षैर्नकीर्तिभिः ॥ १२५॥ विद्युन्मालीं खगाधीशः श्रुत्वा जायावचोजगौ । हे प्रिये ते नरा मूढा योपिद्वाक्या
नुगामिनः ॥ १२६ ॥ साभीक्ष्णं तं वमाणेति योषाया यद्धितं वचः । उररीक्रियते सद्भिर्नाहितं विदुषामवि ॥ १२७ ॥ अधिक्षिप्य प्रिया
वाक्यं मुमोहेद्गूक् कदुग्सु सः । वन्यजीवाश्च तद्भावैः प्रणेशुर्जीविताशयाः ॥१२८ ॥ आशुगाल्या तपोऽम्भोधिर्मे रमे रविवापरः । मुनीशो

उसके भीतरसे सुन पड़ी थी कह सुनाई। राजा सुनकर अवाक् रह गया। और तो उससे कुछ नहीं बना। यहीं उसने सेवकोंको आज्ञा दी—

सुनो भाई! किसी विद्वान पुरुषका उसपर अधिकार है इसलिये तुम शीघ्र ही समुद्रसे उसे ले आओ। राजाकी आज्ञानुसार भृत्य उसे लेनेके लिये गये वे समुद्रके पास पहुंचे ही थे कि एक विशाल मच्छने उसे लील लिया इस रूपसे विना कारण रुद्र मृत्युका कवल वन गया ॥१२२-१२५॥ इस प्रकार पर स्त्रीके क्रोधसे संवन्ध रखनेवाली कथा सुनाकर विद्याधरीने अपने पति विद्याधरसे कहा—

प्राणनाथ! जो मूर्ख संसारमें परस्त्रियोंसे संवन्ध रखता है वह रुद्र व्यापारोके समान नियमसे मृत्युका पात्र वनता है। स्वामिन्! आप बुद्धिमान हो। वंश रूपी आकाशके लिये चन्द्रमा एवं चन्द्रमाके समान निर्मलकीर्तिके धारक हो आप सरीखे मनुष्योंको शुभ अशुभ विचार कर ही कार्य करना चाहिये। किसी कार्यको जल्दी नहीं कर डालना चाहिये ॥ १२६—१२७ ॥ विद्याधरोंके स्वामी विद्याधर विद्युन्मालीका होनहार अच्छा न था। हितकारीभी अपनी स्त्रीके वचनोंपर उसने रञ्च मात्रभी ध्यान नहीं दिया उत्तरमें यही कहा—

विमल ३८२

योगतो धीरो न चचालाद्रिसारवान् ॥ १२६ ॥ तदा विद्याधरो दुष्टो विद्या सस्मार धारिणीं। षट्त्रिंशशाखाहुवक्त्रां स तिमिस्त्रायां क्रुधान्वितः ॥ १३० ॥ उत्पाट्य खेचरोमेरुं योगीन्द्रं खाङ्गणेऽव्रजत्। त्रासयन् दुर्वचोभिश्च कम्पयन् विद्यया शठः ॥ १३१ ॥ तदा वैडूर्यं देवस्य ज्योतिश्चक्रस्थितस्य च। चकम्प विष्टरं भाना चमत्कारकरं परं ॥ १३२ ॥ तृतीयावगमान्मत्वा विघ्नं मेरुमहामुनेः। तूर्णं वैडूर्यनामासौ खड्गं नीत्वा समागमत् ॥१३३॥ गर्जंतं भयदघोरं वदन्तं दुस्सहं वचः। खड्गपाणिं तमालोक्य वियच्चारी भिया मुनिं

जो पुरुष स्त्रियोंके कहनेमें चलते हैं वे मूढ़ कहलाते हैं मैं तुम्हारी बात कभी भी नहीं मान सकता। अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन फिर भी विद्याधरीने कहा—स्वामिन! जो पुरुष विद्वान हैं उन्हें यदि हितकारी स्त्रियोंका भी वचन हो तो उसे स्वीकार करलेना चाहिये और यदि अहित-कारी विद्वानोंका भी वचन हो तो उसे कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। मेरा यदि वचन युक्त हो तो आपको उसे स्वीकार करनेमें कुछ भी आपत्ति न करनी चाहिये ॥ १२८—१२६ ॥ विद्याधर विद्युन्मालीने अपनी स्त्रीके वचनोंका रंचमात्र भी आदर न किया। शीघ्रही उसने चारों दिशाओंमें बाण छोड दिये जिससे उनके भयङ्कर शब्दोंसे वहुतसे वनके जीव त्रस्त होगये। यद्यपि विद्याधर विद्युन्माली लडी वद्ध वाण छोडता रहा और उनका भयङ्कर शब्द होता रहा परन्तु तपके समुद्र मुनिराज मेरु, मेरुपर्वतके समान निश्चल बने रहे। पर्वतके समान कठिनता धारण कर अपने योगसे कुछ भी चल विचल नहीं हुए ॥ १३०—१३१ ॥ जब विद्याधरकी कुछ भी तीन पांच न चली तो उसने धारिणी नामकी विद्याका स्मरण किया जो कि बत्तीस मुख और बत्तीस भुजाओंसे युक्त थी दुष्ट विद्याधर विद्युन्मालीने उस धारिणी विद्याके वलसे मुनिराज मेरुको उठा लिया एवं अनेक दुर्वचन कहकर उन्हें त्रास देता हुआ और अपनी विद्यासे कंपित करता हुआ आकाशमार्गसे ले चलने लगा। उसी समय वैडूर्य नामक ज्योतिषी देवका आसन कंपायमान हुआ जो कि समस्त

॥ १३४ ॥ मुक्त्वा याति यदा क्षितिपादेषु तं ववन्ध सः । गाढं शृङ्खलया देव ! तदा क्रोधारुणेक्षणः ॥ १३५ ॥ तदैव केवलोत्पत्तिः
प्रादुरासीत् गणेशिनः । लोकालोकामलप्रायदर्शिनी सर्वगा ध्रुवं ॥ १३६ ॥ मत्वा केवलसंभूतिं मेरोराखण्डलादयः । आगत्य चक्रुरा-
नंदादुत्सवं जयराविणः ॥ १३७ ॥ शक्रादेशकृतोत्पीठत्रयस्थं तं सुरासुराः । किंनराः सन्नरा नेमुर्भूधरस्थं हरिं नु वा ॥१३८॥ गद्य-
पद्यादिभिः स्तुत्वा नत्वा तत्पादपङ्कजं । स्थितास्ते सर्वतो भांति हंसाः क्षीरांबुधाविव ॥ १३९ ॥ शक्रोऽचलत्वमालोक्य मेरुनाम्नो

ज्योतिषियोंको आश्चर्य करनेवाला था । देव बैडूर्यने शीघ्र ही अवधिज्ञानकी ओर उपयोग लगाया ।
महामुनि मेरुपर विघ्नका होना जान लिया एवं तत्काल खड्ग लेकर विद्युन्मालीके पास आ झपटा ।
॥ १३२—१३५ ॥ मुनिराज पर अत्याचार करते देख देव बैडूर्य विद्युन्मालीके ऊपर मेघके समान
गर्जा, अनेक दुस्सह वचनोंको कहकर तर्जा एवं मारनेके लिये हाथमें खड्ग तयार कर लिया । देव
बैडूर्यका यह भयङ्कर रूप देख विद्याधर विद्युन्माली डरा । मुनिराजको छोडकर वह दो तीन ही
कदम भाग कर गया था कि क्रोधसे लाल २ नेत्रोंके धारक देव बैडूर्यने मजबूत सांकलसे उसे
मजबूतीसे बांध लिया ॥१३६—१३७॥ इधर बैडूर्य देवने तो विद्याधर विद्युन्मालीकी यह दशा की
उधर मुनिराज मेरुको केवल ज्ञान होगया जो कि लोक अलोकके समस्त पदार्थोंको निर्मल रूपसे
प्रकाश करनेवाला था और सर्वगत था ॥ १३८ ॥ मुनिराज मेरुके केवल ज्ञानकी उत्पत्तिका हाल
इन्द्र आदि देवोंको भी ज्ञात होगया । जिससे जय जय शब्दोंके साथ उन्होंने सानंद मुनिराजके
केवल ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया । इन्द्रकी आज्ञानुसार तिखने सिंघासनसे शोभायमान गंध
कुटीकी रचना कर दीगई । उसमें विराजमान मुनिराज मेरुको सुर असुर किन्नर और राजा आदि
महापुरुष नमस्कार करने लगे । महामनोहर गद्य पद्योंमें मुनिराजकी स्तुति की । चरण कमलोंको वंदना
की एवं जिस प्रकार चीर समुद्रके चारों ओर हंस आकर विराज जाते हैं उस प्रकार वे मुनिराजके

मुनीशितुः । अष्टोत्तरशतध्यानगुणपर्वसमन्वितां ॥ १४० ॥ मणिमालां समाधाय मेरुनामावधिं गले । मेरुवन्निश्चलत्वेन ममाल स्वर्गभूखगैः ॥ १४१ ॥ उग्रसेनो महीनाथो वन्दितुं तं समागतः । इक्ष्वाक्वन्ययसंभूतः पल्लवाख्यपुराधिपः ॥ १४१ ॥ वन्दित्वा सादरं श्रुत्वा धर्मं मेरुमुखोद्गतं । पप्रच्छेति नराधीशो ध्यानप्रत्यूहकारणं ॥ १४२ ॥ भो स्वामिन् ! किमनेनामा ते वैरं विद्यते पुरा । देवेनाथ कथं बद्धो ब्रूहि त्व ज्ञानसागर ! ॥ १४३ ॥ मेरुस्तं प्राह राजानं शृणु त्वं साधुभक्तिभाक । अथैव धातकीद्वीपे वर्षमैरावताभिधं ॥ १४५ ॥ किष्किंधाख्यं पुरं तत्र विद्यते नागरैर्नरैः । राजमानं नृपस्तत्र शूरः सिंहरथोऽभवत् ॥

चारों ओर बैठ गये ॥ १३९—१४० ॥ मुनिराज मेरुके अचलपनेपर ध्यान देकर ध्यानकी सिद्धिकी कारण एकसौ आठ मनकोंकी माला तयार की एवं समस्त देव और विद्याधरोंके सामने मेरुके समान अपनेमें निश्चलता प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इन्द्रने उसे अपने गलेमें पहन लिया—

इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न पल्लव पुरका स्वामी एक उग्रसेन नामका राजा था । मुनिराज मेरुको केवल ज्ञानी सुनकर वह उनको वंदनाके लिये आया । मुनिराजके मुखसे धर्मोपदेश सुना एवं यह उपसर्ग कैसे उपस्थित हुआ यह जाननेको इस प्रकार उसने इच्छा प्रगट की ॥१४१—१४४ ॥

प्रभो ! आप ज्ञानके समुद्र हैं कृपाकर कहिये विद्याधर विद्युन्मालीके साथ आपका पूर्वभवमें कैसे वैर वंधा ! और देवने इसे कैसे बांधा ! उत्तरमें मुनिराज मेरुने कहा— भाई तुम ध्यानपूर्वक सुनो, मैं कहता हूं—

धातुकी खंड द्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें एक किष्किंधापुर नामका नगर है जो कि नगर निवासी लोगोंसे सदा शोभायमान रहता है । किष्किंधापुरका स्वामी राजा सिंहरथ था जो कि शुर वीर था । किष्किंधापुरमें ही उस समय एक माधव नामका सेठ रहता था जो कि विपुल धनका स्वामी था । सेठ माधवके सात पुत्र थे जो कि अत्यंत रूपवान और विद्वान थे । किसी समय वर्षा कालमें भाग्यके उदयसे सेठ माधवको भरा खजाना हाथ लग गया । रात्रिके समय उसने अपने पुत्रोंके साथ

१४६ ॥ तत्र माधवनामाभूत् श्रेष्ठी भूरिधनान्वितः । वभूवुः सप्त तत्पुत्रा रूपवन्तो विदांवराः ॥१४७॥ एकदा गच्छतस्तस्य प्रावृषि श्रेष्ठिनो महत् । निधानं रत्नसंपूर्णं लब्धं दैवोदयादयात् ॥ १४८ ॥ नीत्वा निशि सुतैः साकमाससंज्ञ धरानले । सुत्रीभूयमितः श्रेष्ठी तस्थौ लालापुरंदरः ॥ १४६ ॥ एकदारिंजयो वृद्धपुत्रश्चेति व्यचिंतयत् । व्यापन्ने श्रेष्ठिना तस्य भविता भागसप्तकं ॥ १५० ॥ विचिंतेत्थं च निष्काश्य निधानं तेन पापिना । चिक्षेपान्यत्र भूभागे धिग् लोभं दुर्गतिप्रदं ॥ १५१ ॥ दिनेष्वयत्सु कीयत्सु श्रेष्ठी

खजानेको जमीनमें खुदवाकर रखवा दिया एवं इन्द्रके समान सुख भोगता हुआ वह सुखसे रहने लगा ॥१४५—१४६ ॥

माधवके सबसे बड़े पुत्रका नाम अरिंजय था। एक दिन उसने अपने मनमें विचार किया कि पिताके मर जानेपर धनके सात भाग होंगे और उंसमेंसे मुझे सातवां भाग मिलेगा। बस ऐसा विचारकर उस पापीने जमीनसे भरे खजानेको निकाला और अन्यत्र जाकर गाड़ दिया। हा ! इस लोभके लिये धिक्कार है क्योंकि यह दुर्गतिमें लेजानेवाला है ॥ १५०—१५१ ॥ थोड़े दिन बीत जानेपर सेठ माधवने अपना रत्नभरा खजाना देखा जब उसने वहां उसे न पाया तो उसे सीमांत दुःख हुआ एवं उस तीव्र दुःखसे उसे मूर्छा आगई। जमीनपर गिरकर मर गया एवं मोह कर्मके उदय से मर कर वह उसी खजानेपर सर्प होगया। एक दिन सेठपुत्र अरिंजय धन लेनेके लिये खजानेमें गया जहांपर वह खजाना गड़ा था धीरे धीरे वहांकी उसने पृथ्वी खोदना प्रारंभ कर दी। सर्पने ज्योंही अरिंजयको देखा उसे डस खाया। जिससे वह विषसे मूर्छित हो जमीनपर गिरकर मर गया। सर्पकी यह चेष्टा देख अरिंजयको भी क्रोध आगया था उसने भी सर्पके दो टुकड़े कर दिये इस रूपसे वे दोनों उसी समय मृत्युको प्राप्त होगये।

इसी भरत क्षेत्रकी उत्तर दिशामें एक मथुरा नामकी नगरी है। उसमें एक वणिक रहता था

तल्लोकते यदा। अदृष्ट्वा मोहतो भूमौ मूर्च्छया पतितो नृप ! ॥१५२॥ मृत्वा जज्ञे भशव्यालो निधाने मोहकर्मतः । एकदा रिंजयस्तूर्णं-मानेतुं याति तद्धनु ॥ १५३ ॥ मंदं मंदं चखानेलां यदा गत्वा तदा फणी। ददंशारिंजयं कोपात् विषांधः सोऽपतद्भुवि ॥ १५४ ॥ तेन सर्पोहतः क्रोधाद्वद्वौ युगपन्निधनं गतौ। अथात्र भारते द्वीपे चोत्तरा मथुरा पुरी ॥१५५॥ जज्ञाते तौ वणिक्पुत्रौ तत्र भद्रहराभि-धिधौ। दुर्गतौ विमती दुष्टौ विरूपौ विगतत्रपौ ॥ १५६ ॥ अन्यदा मगधे राष्ट्रे वाणिज्यार्थं च तौ गतौ। तत्रां सर्पचरोभद्रस्ततर्केति

अरिंजय और सर्प दोनोंके जीव उसके दो पुत्र होगये जो कि महा दुष्ट थे मैंले कुचेले थे दरिद्र और निर्लज्ज थे एवं दोनोंका नाम भद्र और हर था ॥ १५२—१५६ ॥ एक दिन वे दोनों मगध राज्यमें व्यापारके लिये गये उस समय पापी और ठग सर्पका जीव भद्र अपने मनमें यह विचारने लगा—

रात्रिके समय जब हर सो जाय उस समय मुझे हरको मार देना चाहिये और सारा धन अपने घर ले जाना चाहिये। बस ऐसा पूर्ण विचार कर वह ठीक आधी रातके समय उठा। हरके धोकेमें एक दूसरे पथिकको मार डाला एवं वह मूर्ख अपने घर चला गया। प्रातः काल होते हर उठा। अपने पासके मनुष्यको मरा देख वह एक दम भयभीत होगया। एवं इस प्रकार मनमें विचारने लगा—

अवश्य मेरे भ्रमसे मेरे भाईने इस पथिकको मारा है, यदि मैं ठहरूंगा तो लोग मुझे ही इसका मारनेवाला समझेंगे जिससे संसारमें मेरा ही अपवाद होगा। यह नियम है कि दुष्टोंके साथ संवन्ध करने पर मनुष्यकी चिरकालसे संचित भी कीर्त्ति नष्ट हो जाती है तथा बन्धन ताड़न विशेष क्या मृत्युका भी सामना करना पडता है। बस ऐसा विचार कर हर शीघ्रही वहांसे चल दिया एवं बुद्धिमान वह इसप्रकार अपने मनमें सोचने लगा—

स्वमानसे ॥ १७ ॥ मारयित्वा दरं नूनं यामि नीत्वा धनं गृहे । नक्तं सुप्तो विचार्येत्थं पापीयानन्यवंचकः ॥१५८॥ मध्यरात्रे समुत्थाय
हरभ्रांत्या जघान सः । अन्यं पांथं ततः सद्म जगाम सत्वरं शठः ॥ १५९ ॥ पाश्चात्यप्रहरे रात्रेर्जजागार हरस्तदा । दृष्ट्वा मृतं नरं
स्वांते दृष्ट्वा तं वितर्तर्क सः ॥ १६० ॥ अहो भ्रात्रैव मद्भ्रांत्या पांथोऽयं मारितो ध्रुवं । तिष्ठेयं चेदहं तर्हि मेऽपवादो भविष्यति
॥ १६१ ॥ संसर्गेण खलस्यैव याति कीर्तिः शिवरं धुना । बंधनं ताड़नं चैव पञ्चत्वं सुलभं भवेत् ॥ १६२ ॥ विमृश्येत्थं चचालाशु हर
श्चिंतातुरः स च । गत्वैव स्वपुरास्यर्णं विचचारेति चेतसि ॥ १६३ ॥ विज्ञापयामि कं सभ्यं धर्माधर्मज्ञमित्यहो । विचार्य मम पार्श्वे

धर्म और अधर्मके जानकार किस महापुरुषसे मैं अपना यह हाल कहूं । वह सीधा मेरे पास आया क्योंकि मैं राजा था और सारा बृतांत उसने मुझसे कह सुनाया । मैंने पापी भद्रको बुलाया कठिन दंड दिया और नगरसे बाहिर निकाल दिया ॥ १५७—१६२ ॥ मेरे द्वारा दिये गये दंडसे भद्रमित्रको बड़ी लज्जा आई । बनमें जाकर किसी मुनिराजके समीप भद्रने दिगंबरी दीक्षा धारण करली । मुनि बन वह क्रोध पूर्वक संयमको आराधने लगा । आयुके अन्तमें वह मरा और विद्याधर विद्युन्माली होगया ॥ १६३ ॥ पहिले भवमें जो उसने मुझे दंड दिया था उसीसे जायमान वैरके संवन्धसे इसने मेरे ऊपर यह उपसर्ग किया है इसलिये वैरका यह भयंकर फल देख किसीको किसीके साथ बर नहीं करना चाहिये ॥ १६४ ॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर दिशामें एक श्रीपुर नामका नगर है जोकि महा मनोहर स्त्रियोंसे शोभायमान और शोभामें गंधर्व नगरकी उपमा धारण करता है । उस पुरका स्वामी भूपाल नामका राजा था जो कि अपने तेजसे शत्रुओंको भयभीत करनेवाला था । उसकी रानीका नाम ललांगी था जो कि उत्तम नेत्रोंसे शोभायमान थी इन दोनों राजा और रानीके एक 'रुर्वची' नामकी कन्या थी जो कि महा मनोहर थी । तपे सोनेके समान रंगकी धारक, सुवर्णके घड़ोंके समान स्तनोंसे

स समेत्योवाच तं नृप ! ॥ १६४ ॥ तदाहं तं समाहूय भद्रं पापपरं पुरात्। निष्कासयां चकाराशु दत्त्वा दंडं च दुस्सहं ॥ १६५ ॥
लज्जितोऽसौ वने गत्वा संयमं मुनिसन्निधौ । आददे क्रोधभावेन मृत्वायं खेचरोऽजनि ॥ १६६ ॥ पुरा दण्डोत्थवैरेण प्रत्यूहोऽनेन मे
कृतः। अतो वैरं न कर्तव्यं केन चिन्मानवाधिप ! ॥ १६७ ॥ आदित्याभभवे यो मे मोचितो धरणात्खगः । विद्युद्दंष्ट्रो महाविद्यो
धर्माचारपरांमुखः ॥ १६८ ॥ खेचराद्र्युत्तरश्रेण्यामथास्ते श्रीपुरं पुरं । भामाभूरिविलासैश्च श्रीगन्धर्वपुरोपमं ॥ १६९ ॥ पाति तत्प-
त्तनं भूपो भूपालाख्योऽरिभीतिदः । तस्यैव भामिनी भाति ललांगी कामलोचना ॥ १७० ॥ तयोर्जज्ञे सुता नाम्नो रुवक्षी कामकुन्दला ।

शोभायमान और जघनके भारसे मंद मन्द गमन करने वाली थी। विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र जो कि महा विद्याका स्वामी था। धर्माचरणोंसे सर्वथा विमुख था और आदित्याभके भवमें जिसे मैंने धरणेंद्रसे बचाया था कन्या रुवक्षीपर मोहित हो गया और उसके पिता राजा भूपालसे उसने हठ पूर्वक मांगा परन्तु भूपालने उसे प्रदान नहीं की। भूपालका यह घमण्ड देख राजा विद्युद्दंष्ट्रने उसके साथ संग्राम ठान दिया। दुर्भाग्यवश संग्राममें विद्युद्दंष्ट्रको हार खाना पड़ी। अपनी हारसे विद्युद्दंष्ट्र लज्जित होगया। राज्य छोड़ तपसी बन मिथ्यातप करने लगा। आयुके अन्तमें मरा एवं ज्योतिर्लोकमें तुम जाकर ज्योतिषी देव हुये हो तुम्हारे ऊपर जो मैंने उपकार किया था उसके बदले प्रत्युपकार करनेके लिये तुमने इस उपसर्गकी शांति की है। इस प्रकार पूर्वभवका संवन्ध सुन राजा उग्रसेन और विद्याधर विद्युन्मालीको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया एवं नमस्कार पूर्वक मुनिराज मेरुसे ही उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण करली। ज्योतिषी देवने भी चित्तमें प्रसन्न हो मुनिराज मेरुकी स्तुतिकी एवं उन्हें नमस्कार कर अपने स्थानपर चला गया। ठीक है सज्जन लोग किये उपकारको भूलते नहीं ॥ १६६—१७६ ॥ पुन्नाग वृक्षको कितना भी पेरा जाय वह विकृत नहीं होता तथा रसीला ईखका वृक्ष अत्यन्त पिडित होनेपर भी

स्वर्णांगी स्वर्णकुम्भाभवक्षोजा जघनमंदगा ॥ १७१ ॥ बहुशो याचितस्तेन विद्युद्दंष्ट्रेण तां हठात्। तत्पिता न ददौ तस्मै तदासौ संगरं व्यधात् ॥ १७२ ॥ जाते महति संग्रामे भूपालास्येन निर्जितः। लज्जितस्तापसो भूत्वा चकार कुतपश्चिरं ॥ १७४ ॥ तप्त्वा मृत्वा युपः प्रांते ज्योतिश्चक्रे सुरोऽभवत्। स्मृत्वोपकृतिमायातो मम विघ्नोपशांतये ॥ १७५ ॥ एवं सम्बन्धसङ्कल्पं श्रुत्वा राजा खगोऽपि :सः। दिदीक्षाते विनेयत्वात् नत्वा मेरुं गणाधिपं ॥ १७६ ॥ पीडितोऽप्यविकारी स्यात्पुन्नागो जगतीतले। निष्पीडितोऽपि माधुर्यं क्षर तीक्षुरसाद्रिं त ॥ १७७ ॥ परं न चन्दनः सन्नामकापिचुमन्दकादयः। न श्वेतपत्रिणो घूका वर्तंते भूरयः खलाः। सहस्रे कान्दपर्यंतं

मधुर ही रस छोड़ता हैं उसी प्रकार सज्जनको कितनी भी पीड़ा पहुंचाई जाय वह शांत हीं रहता है। संसारमें कपिचु मन्दक आदि नामोंके धारक बहुतसे वृक्ष हैं पर सभी चन्दन नहीं। तथा सभी उल्लू पक्षी सफेद पंखोंके धारक नहीं कोई कोइ ही होते हैं उसी प्रकार संसारमें दुष्ट ही बहुत हैं सज्जन बहुत नहीं। परम पावन उन मुनिराज मेरुने एक हजार वर्ष पर्यंत अनेक देशोंमें विहार किया। अन्तमें उन्होंने मोक्ष सुख प्राप्त कर लिया—

सम्मेदाचल पर्वतके समीपमें एक पद्म कंवल नामका नगर था। उसमें यशोघर नामका सेठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम यशस्विनी था। सेठानी यशस्विनीको एक दिन सर्पने डस लिया उसे मरी समझ श्मसान भूमिमें उसकी दाह क्रियाके लिये लोग लेगये। वहां पर मुनिराज मन्दर विराजमान थे। उनके पवित्र शरीरसे स्पर्शी गई पवनसे सेठानी यशस्विनीका जहर दूर हो गया जिस समय सेठानी जीती जागती उठ वैठी उस समय सबके सब इस प्रकार विचारने लगे—

इस मुर्दाके शरीरमें भूत प्रविष्ट होगया जान पड़ता है वस सबके सब लोग भयसे आकुलित हो गये। उन्हे आकुलित देख करोडों मांसभक्षी राक्षस वहां आगये। राक्षसोंको इसप्रकार देखकर

विहृत्य विषयान् बहून्। समाप शिवसंभूतं शर्म मेरुर्गणाधिपः ॥ १७९ ॥ सम्मेदभूधरास्यर्णेऽस्ति पुरं पद्मकम्बलं। इभ्यो यशोधरस्तत्र यशस्विन्यस्य भामिनी ॥ १८० ॥ सर्पदष्टैकदा नीता भूतारण्यं यशस्विनी। संस्कारार्थं च तदा जज्ञे मंदरांगानिलाच्छुभां ॥ १८१ ॥ असुवंतीं तदा दृष्ट्वा लोका विभ्युर्मनोंऽतरे। इति प्रेतयुतं भीकृत् पराशु किमु सांप्रतं ॥ १८२ ॥ भीत्याकुलान्मराल्लोक्य क्रव्यादाः कोटिशोऽभवन्। प्रादुस्तद्भयतस्तूर्णं मन्दरमं दरं तके ॥ १८३ ॥ मुनिप्रभावतो देवी वनस्य समचोकरत्। शालत्रयमथोवाचोपसीत्य ध्यक्षमेव सा ॥ १८४ ॥ धन्योऽयं मन्दरो नाम विषं यातं यदाश्रयात्। श्रुत्वा समं स्त्रिया श्रेष्ठी प्रवव्राज तदन्तिके ॥ १८५ ॥ मन्दरोऽपि महाकर्म छित्वा ध्यानेन केवलं। समुत्पाद्य ययौ धीरो मरुत्पूज्यः शिवं शिवः ॥ १८६ ॥ उग्रसेनमुनिस्तीव्रं तपस्तप्त्वा चिरं बहु।

वे भयसे कंपायमांन हो गये एवं वे सबके सब भयभीत हो मुनिराज मन्दरके चरणोंके पास चले गये। मुनिराजके प्रभावसे बनदेवीने तीन प्राकारोंका कोट रच दिया एवं प्रातःकाल सबोंको लक्ष्य-कर उसने यह कहा—

मुनिराज मंदरके लिये धन्यवाद है। इन्हींके आश्रयसे सेठानी यशस्विनीका विष दूर हुआ है। ज्यों ही सेठ यशोधर और सेठानी यशस्विनीने यह बात सुनी उन्हें संसारसे वैराग्य होगया एक मुनिराज मंदरके समीपमें ही वे संयमसे दीक्षित हो गये ॥ १७७—१८५ ॥ मुनिराज मन्दरने भी महा ध्यानके बलसे घातिया कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया एवं देव पूज्य वे मुनिराज मोक्षके स्वामी बन गये ॥१८६॥ महोदय मुनिराज उग्रसेनने भी घोर तप तपा एवं आयुके अंतमें मरकर वे सर्वार्थ सिद्धि विमानमें अहमिंद्र होगये ॥ १८७ ॥ विद्याधर विद्युन्मालीने भी शक्तिके अनुसार तप किया एवं आयुके अन्तमें मरकर वे पांचवें स्वर्गमें देव होगये। ललित उनका नाम हुआ और अनेक देवांगना उनकी सेवा करने लगी ॥१८८॥ ग्रन्थकार तपकी महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

सर्वार्थसिद्धिमासाद्य तस्थौ पुण्यात्महोदयः ॥ १८७ ॥ खेचरोऽपि यथाशक्ति तपः कृत्वा सुरालये । पद्मपेभूत्सुरः सेव्योरंभाभिर्ललिता भिधः ॥ १८८ ॥ तपः कुर्वंति ये भव्यास्ते लभंतेऽद्भुतां श्रियं । स्वर्गो गृहांगणे तेषां कामधेनुश्च किंकरी ॥ १८९ ॥ बभूवुः पञ्चपञ्चाशद्गणाः श्रीविमलेशिनः । शतोत्तरसहस्रोक्ता मुनयः पूर्वधारिणः ॥ १९० ॥ खद्विपञ्चाष्टत्रिसंख्या आसन् शिष्या गुणोज्वलाः । खद्वयाष्टचतुर्मेयास्त्रिविधावधयः स्फुटं ॥१९१॥ अष्टत्र्यिसहस्रोक्ताः सर्वसंयमिनः पराः । लिसहस्रै कलक्षोकाः पद्माद्या आर्यिका मताः ॥१९२॥

जो महानुभाव तप आचरण करते हैं उन्हें अद्भुत लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। स्वर्ग उनके घरके आंगनमें प्राप्त हो जाता है और कामधेनु किंकरी बन जाती है ॥ १८९ ॥

भगवान विमलनाथके पांच सौ तो गणधर थे। ग्यारह सौ पूर्वधारी मुनि थे। अड़तीस हजार पांच सौ शिष्य थे। अडतालीस सौ देशावधि आदि अवधिज्ञानके स्वामी थे। पचपन सौ केवल ज्ञानी, छत्तीस सौ वादी मुनिराज, अड़सठ हजार संयमी मुनि, एक लाख तीन हजार आर्यिका दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविका, नौ हजार बिक्रिया ऋद्धिके धारक, पांच हजार पांच सौ मनःपर्यय ज्ञानी और असंख्याते देव इस प्रकार सबोंसे युक्त भगवान बिमलनाथ अत्यंत शोभायमान जान पडते थे ॥ १९०—१९२ ॥

जो भगवान विमलनाथ बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी हैं। कल्याणके प्रदान करनेवाले हैं जीवोंके हितकारी हैं। कर्मरूपी कीचड़को सुखानेके लिये सूर्य स्वरूप हैं उन भगवान विमलनाथको मैं बार बार नमस्कार करता हूं ॥ १९२ ॥ पद्मसेन नामके जो राजा थे वे बारहवे स्वर्गके देवोंके स्वामी सहस्रारेंद्र होगये। केवल विभूतिके नायक वे भगवान विमलनाथ हमारी रक्षा करें। जो भगबान विमलनाथ भव्य रूपी कमलोंके लिये सूर्य समान हैं। मोह रूपी हस्तीके लिये सिंह स्वरूप हैं एवं देव इन्द्र स्वरूप चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमा स्वरूप हैं अर्थात् हृदयका

द्विलक्षश्रावकाः प्रोक्ता द्विगुणा श्राविका मताः । खत्रयनवसंख्याश्चः विक्रियर्द्धि विराजिताः ॥ १९३ ॥ खद्वयेंद्रियपञ्चोक्ताः पूर्णतुर्यावबोधनः । असंख्यातामरैरर्च्यो रराज विमलो जिनः ॥ १९४ ॥ श्रीमते परमशर्मदायिनेऽनेकजन्तुहितकारिणेऽस्तु नः । कर्मपंकरचये च ते नमः श्रीजिनाय विमलाय निर्दिवं ॥ १९५ ॥ पद्मसेनजगतीपतिस्ततो द्वादशामरनिवासपोऽजनि । यस्तु केवलविभूतिनायकः पातु नः स विमलोऽमलः सदा ॥ १९६ ॥ भव्यपङ्कजदिवामणिं हरिं मोहवारणततौ कलानिधिं । निर्जरेशशिखिभुक्ततौ श्रिये भोजना

उत्ताप मिटानेवाले हैं प्रिय भव्य जीवो ! उन भगवान विमलनाथकी कल्याणकी प्राप्तिकी अभिलाषा से तुम्हें सदा सेवा करनी चाहिये ॥ १९३—१९४ ॥

प्रशस्ति



जो काष्ठासंघ समस्त पृथ्वी पर प्रसिद्ध है तीनोंलोकके स्वामी जिसकी स्तुति करते हैं । जिसमें अगणित मुनि होचुके है एवं जिसमें अनेक विद्याओंका समारोह रहा है उसमें एक रामसेन नामके भट्टारक हुए जो कि आचार्योंमें राजा स्वरूप थे सिद्धान्त रूपी समुद्रके पारगामी थे । चन्द्रमाको समान कीर्त्तिसे शोभायमान थे । ध्यान रूपी जलके प्रवाहसे पाप रूपी संतापके दूर करनेवाले थे और अन्धकारके लिये सूर्य स्वरूप थे ॥ १९५ ॥ उसी काष्ठासंघमें आचार्य रामसेनके बाद भट्टारक सोमकीर्त्ति हुए जो कि मुनि आदिके गण रूपी पर्वतके लिये सूर्य स्वरूप थे ।

मनुष्य रूपी चकोर पक्षियोंके लिये चंद्रमा स्वरूप एवं जिनकी कीतिका गान नागकुमारियां करतीं थीं । आचार्य सोमकीर्त्तिके पट्ट पर विजयसेन नामके भट्टारक हुए जो कि समस्त जनोंको वास्तविक ज्ञान प्रदान करनेवाले थे। कीर्त्ति कांति रूपी लक्ष्मीके लिये समुद्र स्वरूप थे और कुबुद्धियोंके विजेता थे ॥ १९७ ॥ भट्टारक विजयसेनके पट्टपर आचार्योंमें प्रधान श्री यशःकीर्ति नामके देव हुए

भजत वैमल्यं मुदा ॥ १९७ ॥ विख्याते जगतीतले त्रिभुवनस्वामिस्तुतेऽभून्महान् काष्ठासंघसुनामनि प्रभुयतौ विद्यागणे सूरिराट् ! सा गार्णवपारगो विधुयशाः श्रीरामसेनोजिनव्यानार्णो विततिप्रभूतत्वजिनो भानुस्तमोराशिपु ॥ १९८ ॥ तत्क्रमेण गणभृद्वरभानुः सोम कीर्तिरिव शीतमयूखः । संबभूव जनताशिशिविमुक्सु नागनाथदयिताकृततेजाः ॥ १९९ ॥ तत्पदे विजयसेनभदन्तो वोधिताखिलजनः कमनीयः । कीर्तिकांतिकमलाजलराशिः संबभूव विजयी कुमतीनां ॥ २०० ॥ तत्पट्ट सूरिराजः सकलगुणनिधिः श्रीयशःकीर्तिदेव स्तत्पादाम्भोजषट्पात्सकलशशिमुखो वादिनगेन्द्रसिंहः । संजज्ञे प्रांतसेनोदय इति बचसां विस्तरे संप्रवीणः, तत्पट्टार्जोलिशकक्ति

जो कि समस्त गुणोंके भण्डार थे । भट्टारक यशःकीर्त्तिके चरण कमलोंमें भ्रमर स्वरूप एवं अखण्ड चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान वादी नागेंन्द्र सिंह नामके भट्टारक हुए । उनके शिष्य उदय सेन नामके भट्टारक हुए जो कि सिद्धांतके पूर्ण ज्ञाता और व्याख्याता थे उनके वाद आर्य उदय-सेनके चरण कमलोंके सेवक एवं तीनों लोकमें जिनकी महिमा गाई जाती थी ऐसे भट्टार त्रिभुवन कीर्त्ति हुए ॥ १९८ ॥ भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्तिके शिष्य भट्टारक रत्नभूषण हुए जो कि पृथ्वी तलपर चन्द्रमाके समान स्वच्छ प्रकाशके धारक थे । भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्तिके पट्टरूपी उदयाचल पर्वतके लिये सूर्य स्वरूप थे । तर्क नाटक आदि शास्त्रोंके रहस्यके पारगामी थे और कवियोंमें राजा स्वरूप थे ॥ १९९ ॥

इसी पृथ्वीपर लोहाकर नामका एक पुर है उसमें एक हर्षनामके महानुभाव रहते थे जो कि पुरवासियोंमें प्रधान माने जाते थे । महानुभाव हर्षकी स्त्रीका नाम वीरिका था जो कि एक सज्जन स्वभावकी थी अनेक गुणोंकी स्थान थी एवं साध्वी थी माता वीरिकाका पुत्र मैं (ग्रन्थकार) कृष्णदास था जो कि सुन्दरतामें कामदेवके समान था । पूर्ण ब्रह्मचारी था सुन्दर किर्तिका धारक था एवं भगवान ऋषभदेवके चरण कमलोंमें भ्रमर स्वरूप था ॥ २०० ॥ मेरे छोटे भाईका नाम मंगल

भुवनमहिमा तन्मुखप्रांतकीर्तिः ॥ २०१ ॥ राजते रजनिनाथयशाः को तत्पदोदयनगाहिमद्युतिः । तनाटककुर्कलागमदक्षो रत्नभूषण महाकविराजः ॥ २०२ ॥ श्रीमल्लोहाकरेऽभूत्परमपुरवरे हर्षनामा वरीयान् तत्पत्नी साधुशीला गुणगणसदनं वीरिकाख्येव साध्वी । पुत्रः श्रीकृष्णदासो रतिप इव तयोर्ब्रह्मचारीश्वरश्च सत्कीर्तौ राजते वै वृषभजिनपदाम्भोजषट्पात्समानः ।२०३। मङ्गलैर्मकरकेतुदीप्तिभिर्वर्णिभिः सह मया कृतोऽयकं । ग्रन्थ एव ! विदुषां सुखप्रदः शोधयन्तु विबुधाः खलेतराः ।२०४। गूर्जरे जनपदे पुरे कृतः कल्पवल्ल्यभिध एव सादरात् । वर्धमानयशसा मया पुरोः पत्कजाहितसुचेतसा ध्रुवं ॥ २०५ ॥ मेरुभूधरपतिः खतारका सन्ति सागरवरा नभोमणिः । तावदेष विदुषां मनोऽन्तरेऽलंकृतः सततमेव भातु मे ॥ २०६ ॥ खलिलरियतशतान्वितोऽधिको वेदपट्प्रमितकाव्यराजिभिः । पण्डितैर्मतिविकारवर्जितैः संलिखाप्य पठनाय दीयतां ॥ २०७ ॥ देवर्षिषट्चन्द्रमितेऽथ वर्षे पक्षेऽसिते मासि नभस्यलं मे । एकादशीशुक्रमृगर्क्षयोगे ध्रौव्यान्विते निर्मित एष एव ॥ २०८ ॥ इति श्री बिमलनाथपुराणे भ० श्रीरत्नभूषणाम्नायालंकारब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममंगलदाससहाय्यसापेक्षे निर्वाण नाटक मेरुव्यानोपसर्गमेरुमंदरनिर्वाणनिरूपणो नाम दशमः सर्गः सनाप्तः ॥१० ॥

दास था जो कि चंद्रमाके समान कांतिसे शोभायमान थे ब्रह्मचारी थे उनकी सहायतासे यह कल्याण प्रदान करनेवाला ग्रन्थ रचा गया है। सज्जन विद्वानोंसे यह प्रार्थना है कि जहां इसमें त्रुटियां रह गई हो उन्हें शुद्धकर पढ़ें और पढ़ावें ॥२०१ ॥ गुजरात देशमें एक कल्पवल्ली नामका नगर है उसी नगरमें बैठकर वढती हुई कीर्तिसे शोभायमान और गुरुके चरण कमलोंके भक्त मैंने इस ग्रन्थका वड़े आदरसे निर्माण किया है ।२०२। जब तक संसारमें मेरुपर्वत नक्षत्र समुद्र तारे समुद्र पृथ्वी सूर्य आदि पदार्थ विद्यमान रहें तव तक यह ग्रन्थ भी विद्वानोंके हृदयका अलंकार वन सदा शोभायमान रहै ॥ २०३ ॥ तीन हजार छयालीस श्लोकोंसे शोभायमास यह ग्रन्थराज विमलनाथ पुराण पूर्णविद्वान पंडितोंको अवश्य लिखाकर देना चाहिये ॥ २०४ ॥ श्रावण वदी एकादशी संवत् १६७४ सोलहसौ चौहत्तर जब कि मृगर्क्ष योग नित्य रूपसे विद्यमान था उससमय यह ग्रन्थ पूरा हुआ था ॥ २०५ ॥

इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची।

१ श्री पद्म पुराणजी	पृष्ठ	संख्या	१०००
२ श्री शांतिनाथ पुराणजी	"	"	४१६
३ श्री मल्लिनाथ पुराणजी (सचित्र)	"	"	२००
४ श्री तत्वार्थ राजवार्तिक (प्रथम खण्ड)	"	"	४१६
५ श्री विमलनाथ पुराण	"	"	४००
६ श्री षोड़श संस्कार	"	"	१६०
७ श्री मौनव्रत कथा	"	"	६०
८ श्री सरल नित्यपाठ संग्रह (सचित्र)	"	"	१६०

उक्त ग्रन्थोंके मंगानेके पतेः—

१ जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, पो० व० ६७४८ कलकत्ता।
२ श्री जैनग्रंथ कार्यालय, देवरी (सागर) C. P.
३ श्री जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीरागांव—गिरवाग बम्बई।
४ श्री जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, हीरागांव—गिरवाग बम्बई।

इसप्रकार, भट्टारकरत्नभूषणकी आम्नायके अलङ्कारस्वरूप ब्रह्मचारी मंगलदाकी सहायतापूर्वक ब्रह्मचारी कृष्णदास विरचित वृहत् विमलनाथ पुराणमें भगवान विमलनाथका निर्वाण कल्याण मुनिराज मेरुका ध्यान और उपसर्ग एवं मेरुमंदिरका निर्वाण कल्याण वर्णन करने वाला

दशवां सर्ग समाप्त ॥ १

...स्वादकः । एवं महाविभूत्या — ॥ द्रवत् ॥ ५३६ ॥ अथैकदा महावीरो विपुलाचलमस्तके । अपफाण जगत्पूज्यः परमानंददायकः ॥ ५३७ ॥ लेखेशानुमतात् श्रीदश्चकरीतिस्म विष्टरं । मरकतोद्भवसत्पीठं चतुर्गतिविराजितं ॥ ५३८ ॥ (युग्मं) पचसद्विक्तिकविंशतिसहस्रसदस्थलं । गणैर्द्वादशभिर्युक्तं मानस्तंभैरलंकृतं (५३६) सरांसि यत्र राजंते सपद्मानि पराणि च । हंससारसरावाणि पद्मरागमयानि च ॥ ५३९ ॥ धेनुशावै रमंतेऽत्र व्याघ्रशावा मदोत्कटाः । नकुलाः सकला नागैः रंरम्यंते स्वभावतः ॥ ५४० ॥ भुवने सर्वजंतूनां गतं कृतपरस्परं । जन्मादिकं त्रिधा वैरं जगन्नाथप्रभावतः ॥ ५४१ ॥ नकुलाह्यादिजंतूनां गतं कृतपरस्परं । जन्मादिकं त्रिधा वैरं जगन्नाथप्रभावतः ॥ ५४२ ॥ निर्जला वापिकाः सर्वा भांत्यंभो भारपूरिताः । हंससारसचक्रांगपंकजाभरणायिताः ॥ ५४३ ॥ शुष्कवृक्षा विराजंते भ्रमद्भ्रमरसंकुलाः । लतांतकुसुमैर्नम्राः फलैश्च

एवं दो हजार मुकुटवद्धराजा उनके चरणोंकी सेवा करते थे इसप्रकार वे महाराज श्रेणिक देवोंके इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे राज्यका पालन करते थे ॥ ५३२—५३६ ॥

एक दिन विपुलाचल पर्वतके ऊपर समस्त जगतके पूजनीक और परमानंद प्रदान करनेवाले भगवान महावीरका शुभ आगमन हो गया। इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने उनके समवसरणकी रचना की और उस समवसरणकी भूमि नीलमणिकी बनाई जो कि चारों गतिके जीवोंसे शोभायमान थी ॥५३७-५३८॥ वह समवसरण पांच विशाल उत्तमोत्तम भीतियोंसे शोभायमान था। वीस हजार पैंडियोंका धारक था। बारह कोठे और मानस्तंभोंसे शोभायमान था। उस समवसरणके अन्दर पद्मराग मणिके वने हुये सरोवर थे जो कि उत्तमोत्तम कमलोंसे व्याप्त थे और हंस एवं स्यास आदि पक्षियोंके शब्दोंसे शोभायमान थे ॥ ५३६—५४० ॥ उस समय वहां गायोंके बच्चे मदसे मत्त भी सिंहोंके बच्चोंके साथ और नौले सर्पोंके साथ स्वभावसे ही सानंद क्रीड़ा करते थे आपसमें कोई किसीसे वैर नहीं निभाता था ॥ ५४१ ॥ तीन जगतके स्वामी भगवान जिनेंद्रके माहात्म्यसे संसारके समस्त जीवोंका वा नौला सर्प आदि समस्त जीवोंका जन्म आदि तीन प्रकारका आपसी वैर नष्ट हो गया था ॥ ५४२--५४३ ॥ जल रहित समस्त बावडिये जलसे भरी हुई थीं। हंस स्यास चकवा

पिकराविणः ॥ ५४४ ॥ षड्ऋतूनां फलान्येव कुसुमानि विशेषतः । आजग्मुर्युगपत्काले वीतरागप्रभावतः ॥ ५४५ ॥ राजत्यप्सरसो वृंदं वृंदारकसमाश्रितं । नतंत्पयोधराभोगं वृंदं वा हैमवीरुधां ॥ ५४६ ॥ मालाकारः समायातो वाटिकायां विलोकयन् । तदा ददर्श संभूतां सर्वशोभां फलान्वितां ॥ ५४७ ॥ किमेतदिति चित्ते स स्वकालकुसुमादिकं । व्यतर्कयच्चिरं भ्रांत्या नु माया मृगतृष्णिका ॥ ५४८ ॥ कियद्दूरं ततो गत्वा यावत्पश्यति कौतुकं । दध्वान दुंदुभीरावः पूरयन् गगनांगणं ॥ ५४९ ॥ कियत्यपि पुनर्गत्वा मार्गे शोभां लुलोक सः । देवदेवकृतां त्रिंशत्सहस्रध्वजराजितां ॥ ५५० ॥ जयारवैर्विमानस्थभंकृद्भिर्भंकृतीकृतां । सुरांगनामुखोद्भूतैर्बधिरीकृतदिङ्मुखां ॥ ५५१ ॥ युग्मं । एवं दृष्ट्वा निवृत्त्याशु नीत्वा कुसुमसत्फलं । गत्वा राज्ञः पुरस्तात्स मुक्त्वा चानृतुसंभवं ॥ ५५२ ॥

और कमलरूपी भूषणोंसे भूषित थीं । जो वृक्ष सूखे पड़े थे वे लतापर्यंत फूल और फलोंसे नम्रीभूत हो गये । भौंरे घूम घूम कर गुंजार शब्द करने लगे और उनपर बैठकर कोकिला मनोहर और मधुर आलाप आलापने लगीं समस्त ऋतुओंके फल और फूलोंसे समस्त वृक्ष लदवदा गये ॥५४४-५४६॥ देवोंसे व्याप्त जैसी अप्सरायें शोभित होती हैं उसीप्रकार कमलोंसे व्याप्त वहांकी सरोवरी अत्यंत शोभायमान थी तथा विशाल स्तनोंसे कंपित जैसा अप्सराओंका समूह अत्यंत शोभायमान दीख पड़ता है वैसा ही सुवर्णमयी लताओंका समूह भी अत्यंत शोभायमान था। माली जिस समय वनमें आया समस्त शोभा और फलोंसे युक्त जिससमय उसने वहांकी जमीन देखी वह मन ही मन विचार करने लगा कि यह समय तो फूल आदिके आनेका नहीं है फिर ये जो फूल आदि दीख रहे हैं यह क्या है? क्या यह इन्द्रजाल है या मृगतृष्णा है? तथा इसप्रकार तर्क वितर्क करता जिससमय वह थोड़ी दूर और आगे बढ़ा तो क्या देखता है कि दुंदुभि बाजेका उन्नत शब्द हो रहा है जिसने कि अपनी गुंजारसे समस्त आकाशरूपी आंगन पूर रक्खा था ॥ ५४७—५५० ॥ उससे भी आगे जब कुछ बढ़ा तो वह मार्गमें महामनोहर शोभा निरखने लगा जो शोभा देवोंके देव इन्द्रो द्वारा की गई थी। तीस हजार ध्वजाओंसे युक्त थी। विमानमें बैठनेवाले और झंकार करनेवाले देवोंके झंकारोंसे परिपूर्ण थी एवं देवांगनाओंके मुखोंसे जायमान जय जय शब्दोंसे समस्त दिशाओंको बधिर करने वाली थी ॥५५१-५५२॥ बस भगवान महावीरके प्रभावसे होनेवाले दृश्यको देखकर एवं कुछ

अब्रवीद्गो नराधीश ? नन्द त्वं करुणालय ! महावीरागमेनैव चिरं जीव चिरं जय ॥ ५५३ ॥ श्रुत्वोत्थितो महीपालो गत्वा सप्तपदानि च तां दिशं नंनमीतिस्म परोक्षविनयान्वितः ॥ ५५४ ॥ हर्षितोऽदात्तदा राजा वस्त्रालंकारसद्धनं । मालाकाराय भावेन राजराज इवादरः ॥ ५५५ ॥ वंदितुं गंतुकामः सन्नानंदाख्यं सुदुंदुभिं । दापयामास सद्वत्या पौरसन्नाहसंवृतः ॥ ५५६ ॥ सिंधुरांश्च मदोन्मत्तानंजनाभान् कियत्सतान् । विचित्रांवरितान्नानारंगराजिविचित्रितान् ॥ ५५७ ॥ दानतोयमहावृष्टिपंकाकुलितभूतलान् । स शृंगारितवान् राजा वाभ्रविद्युद्घनान् भृशं ॥ ५५८ ॥ षट्त्रिंशज्जातकानश्वान् खांभोभूमिगतीन् दृढान् । स्फुटं गामिनो राजा भूषयामास सोऽरि

सुन्दर फूल और उत्तम फल लेकर वह महाराज श्रेणिकको राजसभामें गया। वनके अन्दर जो वेऋतुमें शोभा हुई थी सारी कह सुनाई एवं गद्गद वाणीसे इसप्रकार कहने लगा—

महाराज ! आपके उद्यानमें भगवान महावीर आकर विराजे हैं। उनके आगमनसे आप नादो चिरकाल तक जीओ और चिरकाल तक जयवंते रहो ? वनपालकी यह आनंद प्रदान करनेवाली बात सुनकर महाराज श्रेणिक एकदम सिंहासनसे उठे। जिस दिशामें भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे उस दिशामें सात पेड़ आगे बढे और बड़े विनयसे उस दिशाको परोक्ष नमस्कार किया। महाराज श्रेणिकके आनंदका उस समय ठिकाना न था इसलिये जिसप्रकार कुबेर निःसंकोचरूपसे दूसरेको धन प्रदान करता है उसप्रकार महाराज श्रेणिकने भी बड़े उत्साहसे मालीको उत्तम वस्त्र अलंकार और विपुल धन प्रदान किया ॥५५३—५५६॥ भगवान जिनेन्द्रकी वंदनाकी अभिलाषा चित्तमें उछलने लगी इसलिये उन्होंने शीघ्र ही वंदनाकी घोषणा करनेके लिये नगरमें आनंद भेरी दिवा दी एवं पुरवासी लोगोंके साथ चलनेके लिये उद्यत हो गये। उससमय महाराज श्रेणिकने कईसौ हाथी सजवाये जो कि मदोन्मत्त थे अन्जन पर्वतके समान काले थे। अनेक प्रकारकी झूलोंसे शोभायमान थे। नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र विचित्र थे एवं झरते हुये मदरूपी जलकी महावृष्टिसे उन्होंने समस्त पृथिवीतल कीचमयकर दिया था इसीलिये वे हाथी आकाशमें

जित् ॥ ५५९ ॥ मासमवसतेः पट्टकूलैर्नानासुरंगभूः । क्षायिकोद्र् तसद्भावात् श्रेणिकेन च कारिता ॥ ५६० ॥ ध्वनयन् दिङ्मुखान्येव
रंजयन् लोकसंघकान् । जयानन्दरवोपेतान् सपुत्रश्चेलिनीयुतः ॥ ५६१ ॥ चतुरंगवलेनामा छत्रचामरराजितः । निर्ययौ पटहध्वानैर्वंदितुं
सन्मतिं जिनं ॥ ५६२ ॥ मानस्तंभं विलोक्याशु दूरतो नरनायकः । गजादुत्तीर्य नौतिस्म साष्टांगं •छत्रवर्जितः ॥ ५६३ ॥ निःसहीति
पठन् राजा विवेश समवसृतिं । तुंगभित्तीः समुल्लंघ्य पश्यन् शोभां गतोऽतरे ॥ ५६४ ॥ विस्फुरत्सन्महावीरं तेजसा व्याप्तदिक्चयं ।
त्रिः प्रक्षिणिकां कृत्वा ननाम काश्यपीपतिः ॥ ५६५ ॥ अर्चयित्वाथ संस्तुत्वा निविष्टो नरकोष्ठके । संदृष्ट्वा हि महीपालो जिनं

विजलीसे युक्त काले काले मेघ सरीखे जान पड़ते थे। छत्तीस प्रकारकी जातिके घोड़े सजायें गये जो कि अपनी कलाओंसे आकाश जल और स्थलपर चलनेवाले थे। दृढ थे और ओरेवी चाल चलनेवाले थे। महाराज श्रेणिक क्षायिकसम्यग्दृष्टि थे इसलिये उन्होंने समवसरणकी जमीनपर्यंत रंग विरंगे कपड़ोंको बिछाकर चलनेका मार्ग सजाया था ॥ ५५७—५६१ ॥ भगवान महावीर जिनेंद्रकी वंदनाकेलिये महाराज श्रेणिक चल दिये, जिससमय वे चले अपने वाजोंके शब्दोंसे समस्त दिशायें उन्होंने शब्दायमान कर दीं। जीओ नादो इत्यादि शब्दोंसे समस्त लोक उन्होंने आनंदित कर दिया। समस्त पुत्र और रानी चेलिनीको अपने साथमें ले लिया। चारो प्रकारकी सेना उनके साथ चलने लगी। उनके शिरपर छत्र फिरता और चमर ढुरते जाते थे एवं दुंदुभि वाजे बजते जाते थे। बनमें पहुंचकर जिससमय राजा श्रेणिकको मान स्तंभ दीख पड़ा वे तत्काल हाथीसे उतर पड़े। छत्र चमर आदि विभूति छोड़ दी एवं दूरसे ही उसे साष्टांग नमस्कार किया ॥ ५६२--५६४ ॥ समवसरणके पास आकर "निःसहि निःसहि निःसहि" इसप्रकार तीनबार निःसहि शब्दका उच्चारण करने लगे। समवसरणके भीतर प्रवेश किया एवं ऊंची ऊंची भीतोंको उलांघकर वे समवसरणकी शोभा निरखने लगे ॥ ५६५ ॥ समवसरणके मध्यभागमें भगवान महावीर जिनेंद्र विराजमान थे जिनके कि प्रचंड तेजसे समस्त दिशायें जगमगा रहीं थीं। राजा श्रेणिकने उनकी

शमप्रदं शिवं ॥ ५६६ ॥ स्वभवावलिकां श्रुत्वा तूष्णीत्वं संस्थितो यदा । अभयाख्यो जिनं नत्वा पप्रच्छ स्वभवावलिं ॥ ५६७ ॥ शृणु वत्स ! भवान् स्वीयान्कथयामि समासतः । द्विज एको याति वेदाभ्यासार्थं श्रावकेण च ॥५६८॥ कियन्मार्गे द्विजो गच्छन् दृष्ट्वा चाभिमुखं वटं । परीत्य भावयुक्तः सन्ननाम विनयान्वितः । ५६९ ॥ श्रावको हि तदा स्मित्वा नीत्वा पत्राणि तत्तरोः । स्वपादं च परिमृज्य क्षिप्तवान् काश्यपीतले ॥ ५७० ॥ दृष्ट्वा द्विजो महाक्रोधादब्रवीत् श्रावकं प्रति । किं करोषि न जानासि देवचित्रं हि कष्टद ॥ ५७१ ॥ श्रावकोऽपि द्विजं प्राह यदीयं शुद्धदेवता । तर्हि मम विनाशं च करिष्यत्येव नान्यथा ॥ ५७२ ॥ द्विजो विशं पुनः प्राह को

तीन प्रदक्षिणा दीं । भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । पूजाकी । पूजाके अंतमें स्तुति की । मनुष्य कोठेमें जाकर विराज गये । अनेक प्रकारसे कल्याणोंको प्रदान करनेवाले और साक्षात् मोक्ष स्वरूप भगवान जिनेंद्रसे अपने पूर्वभव पूछे । भगवानने अपनी दिव्यध्वनिसे उनका वर्णन किया । सुनकर राजा श्रेणिक शांत होकर अपने स्थानपर स्थिर होकर बैठ गये । राजा श्रेणिकके साथमें कुमार अभय भी गये थे उन्होंने भगवान जिनेंद्रको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और विनयपूर्वक अपने पूर्वभवोंको पूछा । भगवान जिनेंद्र भी यह कहकर कि—वत्स ! मैं संक्षेपसे तुम्हारे पूर्वभव कहता हूं । उसके पूर्वभव वर्णन करने लगे—

वेणातड़ागपुरका निवासी एक ब्रह्मण वेदाभ्यास करनेके लिये चला । दैवयोगसे उसके साथ साथ एक श्रावक भी चल दिया । चलते चलते कुछ दूर जब वह विप्र पहुँचा तो मार्गमें उसे एक वड़का वृक्ष दीख पड़ा । ब्राह्मणने भक्तिभावसे उसकी प्रदक्षिणा दी और मस्तक झुकाकर नमस्कार किया । ब्राह्मणके साथमें जो श्रावक गया था वह जैनधर्मका परम भक्त था । ब्राह्मणने जो कार्य किया था उसे देख वह मुसकराने लगा । वृक्षके थोड़े पत्ते तोड़ लिये । उनसे पैर पोंछे और उन्हें जमीन पर डाल दिया ॥ ५६६—५७१ ॥ श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण अपना क्रोध न संभाल सका शीघ्र ही उसने श्रावकसे कहा—अरे भाई ! तुम क्या करते हो ? क्या तुम नहीं जानते कि देवकी अवज्ञा महा कष्ट प्रदान करने वाली है । उत्तरमें श्रावकने ब्राह्मणसे कहा—भाइ ! यदि तुम्हारा

देवो भवतामिति । अग्रेऽस्ति द्विज ! मे देवः किमर्थं पृच्छसि त्वकं ॥ ५७३ ॥ वसित्वा वाडवोऽवोचत् परिभूतिमिदं तव । देवं नेप्यास्यहं तद्वत् परीक्षार्थं न शंसयः ॥ ५७४ ॥ कियत्यपि ततो दूरे गत्वा स श्रावकोत्तमः । कपिकच्छुलतां दृष्ट्वा नत्वावोचद्द्विजं प्रति ॥ ५७५ ॥ देवोऽयं सकलो विप्र ! मदीयो भक्तिभिः सदा । इति श्रुत्वा गृहीत्वा तत्पत्रादीनि विनोदतः ॥ ५७६ ॥ स्वकाये परिमृज्यायु चलत्येव यदा तदा । खर्जपीड़ाकुलो भूत्वा पपात धरणीतले ॥ ५७७ ॥ तदासौ श्रावकं प्राहत व प्रत्यक्षदेवता । प्रतिबोधेन विप्रस्य देवमौढ्यं निराकरोत् ॥ ५७८ ॥ मार्गे गच्छंस्ततः प्राप्त गंगातीर्थं ततो द्विजः । भागीरथी हरिर्विप्राः इत्युक्त्वा पतितांतरे ॥ ५७९ ॥ ततोऽप्राक्षीत्पुनः श्राद्धो द्विजं मिथ्यादृश भृशं । किमेतस्य महात्म्यं भो तीर्थस्यावगतं वद ॥ ५८० ॥ बभाण श्रावकं विप्राः पवित्रयति

यह देव पवित्र और शक्तिमान होगा तो मेरा विनाश करेगा और यदि यह कुछ न होगा तो कुछ नहीं कर सकता। श्रावककी यह बात सुन वह ब्राह्मण उत्तर तो न दे सका केवल यही उसने पूछा कि भाई ! तुम्हारा देव कौन है ? उत्तरमें श्रावकने कहा—मेरा देव आगे है। तुम मेरे देवको क्यों पूछते हो ? हंसकर ब्राह्मणने उत्तर दिया जिसप्रकार तुमने मेरे देवका तिरस्कार कर उसकी परीक्षा की है उसप्रकार मैं भी तुम्हारे देवका तिरस्कार कर उसकी परीक्षा करूंगा इसमें जरा भी संदेह मत समझो। कुछ दूर चलकर एक कपिकच्छ (खुजली करने वाले) वृक्षकी वेल देखी। उसे देख कर श्रावकने कहा प्रिय विप्र ! मेरा सबसे उत्कृष्ट देव यह है भक्तिपूर्वक सदा इसकी पूजा करनी चाहिये। सुनकर ब्राह्मणने हंसकर उसके पत्ते तोड़ लिये। उनसे अपना शरीर पोंछ डाला और जल्दी जल्दी आगे चल दिया बस आगे थोड़ी ही दूर पहुंचा था कि उसका सारा शरीर खुजलीसे व्याकुल हो गया एवं वह दुखित हो जमीनपर गिर गया तथा श्रावकसे कहने लगा भाई ! तुम्हारा देवता सच्चा है इस प्रकार प्रतिबोध देकर श्रावकने विप्रके अंदर जो देव मूढ़ताका भाव विद्यमान था वह दूर कर दिया और वे दोनों आगे चलने लगे ॥ ५७२—५७६ ॥ आगे चलकर गंगा नदीका तीर्थ पड़ा। भागीरथी हरि और विप्र, ऐसा उच्चारण कर वह ब्राह्मण गंगामें कूद पड़ा। मिथ्यात्वी ब्राह्मणकी यह चेष्टा देखकर श्रावकने पूछा—भाई ! इसतीर्थका

माहृशान् । पुनर्ददाति वैकुंठं पंचहत्याविनाशकं ॥५८१॥ श्रुत्वासौ श्रावको भोक्तुकामो हि तत्तटे स्थितः । भुक्त्वोच्छिष्टं जलैर्मिष्टं कृत्वा तस्मैसमर्पितं ॥५८२॥ तदाकेर्चद्विजो हा हा भोजनं मे कदर्थितं । श्रावकः प्राह हे विप्र ! कथं नात्ति जवादिति ॥ ५८३ ॥ तदा भूदेवता र इह भोभुनज्मि कथं वद ? । त्वयोच्छिष्टं कदर्यं च साक्षाच्छूद्रेण पापिना ॥५८४॥ अब्रवीद्ब्राह्मणं सोऽपि यत्पवित्रयितुं क्षमः । तज्जलैर्मिश्रितं धान्यं न भोक्तव्यं कथं त्वया ॥ ५८५ ॥ इत्यादिहेतुभिः कृत्वा प्रतिबोधं गतो द्विजः । तं गुरुं प्रतिपद्याशु जैनतत्वं पपाठ सः ॥ ५८६ ॥ गच्छंतौ हि ततो मार्गे भ्रांत्वा अप्टवथौ तदा । जातौ गतौ महाटव्यां संभृतायां कुजंतुभिः ॥ ५८७ ॥ तत्र सन्यस्य वणिजा सार्थं विप्रो मृतस्तदा । पूर्वस्वर्गे समुद्भूतः सुरासुरनिषेवितः ॥ ५८८ ॥ ततश्च्युत्वास्य राज्ञश्च पुत्रो जातोऽभयाख्यकः ।

तुमने क्या गहरा माहात्म्य समझ रक्खा है उत्तरमें ब्राह्मणने कहा— भाई श्रावक ! यह तीर्थ हम सरीखे मनुष्योंको तारक है फिर वैकुण्ठको देता है जहांपर कि गौ हत्या आदि पञ्च हत्याओंसे छूटना होता है । ब्राह्मणकी यह वात सुन भोजन करनेकी इच्छासे श्रावक उसके तटपर वैठ गया । जव खा चुका और जो जूठा वच रहा वह जलमें मिलाकर उसे समर्पण कर दिया अर्थात् गंगामें क्षेपण कर दिया । श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण कहने लगा—हा हा तूने मेरा भोजन अपवित्रकर दिया उत्तरमें श्रावकने कहा—भाई विप्र ! तुम जल्दी क्यों नहीं खा लेते ? ब्राह्मणने कहा-वता मैं खाऊं कैसे साक्षात् शूद्रस्वरूप पापी तूने सवका सव जूठा और अपवित्र कर दिया उत्तरमें श्रावकने कहा भाई ब्राह्मण जो जलसे मिश्रित धान्य तुम्हें पवित्र वना सकता है उसे तुम खाते क्यों नहीं हो । मेरे जूठे और अपवित्र करनेपर वह जूठा और अपवित्र नहीं माना जा सकता । इत्यादि बहुतसी युक्ति प्रयुक्तियोंसे श्रावकने ब्राह्मणका मिथ्यात्व भगा दिया । ब्राह्मणने भी उस श्रावकको अपना गुरु माना और उससे जैनधर्म पढ़ा । वहांसे आगे फिर भी वे दोनों चल दिये आगे जाकर वे रास्ता भूल गये और एक ऐसी महावनीमें जा निकले जो क्रूर जीवोंसे भरी हुई थी । दोनोंने वहांपर सन्यास मरण किया । विप्र मर कर पहिले स्वर्गमें अनेक सुर असुरोंसे सेवित देव हो गया

अस्मिन् भवे तपस्तप्त्वा यास्यसि परमं पदं ॥ ५८६ ॥ अथासौ श्रेणिको धीमान् वर्धमानं जिनं शिवं । नत्वावोचत्तदा नूनं कुड्मली कृत्य हस्तयोः ॥ ५९० ॥ हे नाथ जगतां त्रातर्गुणाम्भोधे जगत्प्रभो ! । सुरासुरनराधीशसंस्तुतांघ्रे ! शिवप्रद ! ॥ ५९१ ॥ ज्ञानरूप ! तमोहारिन् मोहारे ! कामधक् ! जिन ! किंचित्पृच्छाम्यहं देव ! सादराद्भव्यवांछितं ॥ ५९२ ॥ श्रीमद्विमलनाथस्य पुराणं हृदयंगमं । श्रोतुमिच्छाम्यहं नाथ ! भव्यानां पंकनाशनं ॥ ५९३ ॥ तत्समये बलो जातो धर्माख्यो धर्मतत्परः । स्वयंभूश्चापि संजातः केशवोत्यंत विक्रमः ॥ ५९४ ॥ प्रतिचक्री महान् जज्ञे नाम्ना मधुरिति स्मृतः । एतेषां किं बलं शौर्यं कथयात्र कृपामय ॥ ५९५ ॥ संजयंततपो ध्यानं विघ्नो ज्ञानस्य कारणं । तद्गणौ यामिनौ जातौ तेषां वृत्तं वद प्रभो ॥ ५९६॥ मुनीनां दानिनां नाथ ! ध्यानिनां च भवादृशां ।

प्रिय कुमार ! वहांसे चयकर तुम राजा श्रेणिकके अभयकुमार नामके पुत्र हुए हो और तुम इसी भवसे तप तपकर नियमसे परम पद मोक्ष प्राप्त करोगे ॥ ५८०—५९० ॥ जिससमय कुमार अभय के पूर्वभवोंका वर्णन समाप्त हो चुका उससमय राजा श्रेणिकने साक्षात् कल्याण स्वरूप भगवान वर्द्धमानको नमस्कार किया एवं दोनों हाथोंको जोड़कर इसप्रकार भक्तिपूर्वक कहने लगे :—

स्वामिन् ! आप तीनों जगतके रक्षण करता हो। गुणोंके समुद्र हो। तीनों जगतके स्वामी हो आपके चरण कमलोंकी बड़े २ सुर असुर और मनुष्योंके स्वामी स्तुति करते हैं। सेवकोंको मोक्ष प्रदान करने वाले हो। ज्ञानस्वरूप हो। अज्ञान अंधकारको नाश करनेवाले हो। मोहरूपी बैरीको हरानेवाले और कामदेवको भस्म करने वाले हो। भगवान् ! जिस बातके विनयपूर्वक जाननेकी भव्योंको इच्छा है मैं उसे ही पूछना चाहता हूं। प्रभो ! भगवान विमलनाथका पुराण अत्यंत मनोहर है और भव्यजीवोंके पापोंका नाश करनेवाला है इसलिये मैं उसेही सुनना चाहता हूं। भगवान विमलनाथके समयमें धर्म नामका बलभद्र हुआ है। स्वयंभू नामका नारायण हुआ है और मधु नामका प्रतिनारायण हुआ है इनका कितना बल था कितनी शूरवीरता थी, हे कृपानाथ ! आप कृपाकर कहैं ॥ ५९१—५९६ ॥ मुनिराज संजयंतका तप ध्यान उनपर जो उपसर्ग पड़ा था वह

शूराणां शीलगुप्तानां चक्रिणां प्रतिचक्रिणां ॥ ५९७ ॥ चरमांग मनोजानां कथां कल्याणभाजनं । श्रोतुमिच्छंति ते भव्या रागद्वेषपराङ्मुखाः ॥ ५९८ ॥ अतः पृच्छाम्यहं देव ! ज्ञानार्थं स्वस्य प्रेमतः । आसन्नभव्यजीवाना सुखार्थं सर्वविज्जिन ! ॥ ५९९ ॥ श्रेणिको याचयित्वेति तूष्णीत्वं स्थितवांस्तदा । सपुत्रश्चे लिनीयुक्तः क्षायिकोत्पन्नभावतः ॥ ६०० ॥

सुरनरपतिपूज्यं वर्धमानं जिनेशं सकलकलजनानां पापहंतारमेव ।
कनकनिषलकांतिं विष्टरे भासमानमिहरविवनितांतं श्रेणिकार्थ्यं नमामि ॥ ६०१ ॥

और उनके ज्ञानका कारण कहें तथा मुनिराज संजयंतके गणमें उन्हींके समान जो दो मुनिराज हुए हैं उनका भी वृत्तांत प्रतिपादन करें क्योंकि हे भगवान् ! जो महानुभाव मुनि हैं। दानी हैं आपके समान ध्यानी हैं शीलवान शूरवीर हैं। चक्री (चक्रवर्ती और नारायण) प्रतिनारायण चरम शरीरी और कामदेव हैं उनकी कथा कल्याणोंकी करनेवाली है जो महानुभाव इनकी कथाको सुनना चाहते हैं वे भव्यजीव हैं और रागद्वेषसे विमुख हैं ॥ ५९७—५९९ ॥ इसलिये हे देव ! हे सर्वज्ञ जिनेंद्र ! मैंने अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिये और जितने भी आसन्न भव्यजीव हैं उन्हें आनंद उपजानेके लिये भगवान विमलनाथ आदिके चारित्र पूछनेकी इच्छा प्रगटकी है बस इसप्रकार अपनी जिज्ञासा प्रगट कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि महाराज श्रेणिक अपने पुत्र और महारानी चेलिनीके साथ शांत होकर अपने स्थानपर बैठ गये ॥ ६००—६०१ ॥

ग्रन्थकार अंतमंगलकी कामना करते हुए कहते हैं कि जो वर्द्धमान भगवान सुरेंद्र और नरेंद्रों से पूजित हैं। कर्मोंके जीतनेवाले महानुभावोंमें मुख्य हैं। समस्त प्राणियोंके पापोंको नष्ट करने वाले हैं सुवर्णके समान मनोहर प्रभाके धारक हैं। सिंहासनपर देदीप्यमान हैं। अपनी उत्कट प्रभासे रविविजेता—सूर्यकी प्रभाको भी फीकी करनेवाले हैं और राजा श्रेणिककी प्रार्थनाको पूरी करने वाले हैं उन श्रीवर्द्धमान स्वामीको मैं नमस्कार करता हूं ।

इति श्रीविमलनाथपुराणे ब्रह्मकृष्णदासविरचितेऽनुजब्र० श्रीमंगलदास सापेक्षे साहाय्य महाराजश्रीश्रेणिककृत प्रश्नो नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

इसप्रकार अपने छोटे भाई ब्रह्मं श्रीमंगलदासकी सहायतासे कृष्णदास द्वारा विरचित श्रीविमलनाथ पुराणमें महाराज श्रेणिक द्वारा किये गये प्रश्नका वर्णन करनेवाला पहिला सर्ग समाप्त हुआ।

दूसरा सर्ग।

पुराण पुरुषो जीयाज्जगच्छास्ता शिवप्रदः। मोहांधकार मार्तंडः कोटिसूर्याधिकः प्रभः ॥१॥ अथैवं भगवान् दिव्यध्वनिक्षीरार्णवस्तदा। जगर्ज भगवद्वक्त्रपूर्णरात्रीशवंदितः ॥२॥ मुख्यनसतरंगात्मा दर्शनज्ञानसेतुवान्। चारित्रांभो भवध्वंसी महाघन इवापरः ॥३॥

तीनों लोकके शासन करने वाले. जीवोंको कल्याणके कर्ता मोहरूपी अन्धकारके लिये सूर्य स्वरूप एवं करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे भी अधिक प्रभा धारण करनेवाले पुराण पुरुष भगवान तीर्थंकर सदा जयवंते रहें ॥ १ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाके संबंधसे समुद्र उछलता और गर्जता है उस प्रकार भगवानके मुखरूपी पूर्ण चंद्रमाके संबंधसे उनका दिव्य ध्वनिरूपी क्षीर समुद्र गर्जने लगा ॥ २ ॥ वह दिव्य ध्वनि साक्षात् महामेघ सरीखी जान पड़ती थी क्यों कि जिसप्रकार मेघ जलों की नाना प्रकारकी तरंग स्वरूप होता है उसीप्रकार वह दिव्य ध्वनि भी स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि सप्त भंग स्वरूप थी अर्थात् दिव्य ध्वनिसे जो भी उपदेश होता था वह सप्तभंगी वाणीके अनुसार ही होता था। महामेघ जिसप्रकार सेतु (पुल) विशिष्ट होता है अर्थात् नदी आदि स्थानों को पार करनेके लिये महामेघके समय खास कर पुलोंका उपयोग किया जाता है उसीप्रकार भगवान महावीरकी दिव्य ध्वनि भी दर्शन ज्ञानरूपी सेतुसे युक्त थी अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्य-

साधु पृष्टं त्वया भूप ! सज्जनानां सुखं प्रदं । यस्य श्रवणतो भव्या सद्व्रता यांति मोक्षतां ॥ ४ ॥ चेच्छ्रीविमलनाथस्य पुराण श्रवणोत्सुकः । तर्हि चंद्रे चकोरो वा भूत्वा त्वं सादरं शृणु ॥ ५ ॥ अथैव धातकीखंडो वर्ततेऽनेकवस्तुभृत् । पद्मवैडूर्यनीलाभरत्न स्वर्णादि खानिकः ॥ ६ ॥ चतुर्लक्षप्रमैर्योजनकैर्विस्तारतां गतः । कुण्डलाकृति कालाब्धि वेष्टितोऽनेकचित्रभृत् ॥ ७ ॥ तस्य पश्चिमका

ज्ञानके स्वरूपके वर्णनका उसमें विशेष संबंध था । महामेघमें जिसप्रकार जल रहता है भगवानकी दिव्यध्वनि भी चारित्ररूपी जलसे परिपूर्ण थी अर्थात् दिव्यध्वनि द्वारा वर्णन करनेका खास लक्ष्य सम्यक्चारित्र था । एवं महामेघके समय जिसप्रकार संसार उलट पुलट हो जाता है उस प्रकार वह दिव्य ध्वनि भी संसारको उलट पुलट—विच्छेद करानेवाली थी उसके संबंधसे लोग संसार के नाश करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं ॥ ३ ॥ महाराज श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें भगवान महावीरने अपनी दिव्य ध्वनिसे कहा—

हे राजन् ! तुम सज्जन पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले हो इसलिये तुमने जो प्रश्न किया है वह बहुत ही उत्तम किया है क्यों कि तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें जो भी कहा जायगा उसके सुननेसे भव्य जीव समीचीन व्रतोंसे भूषित होंगे और उन व्रतोंके संबंधसे मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥४॥ नरपाल ! यदि तुम्हें भगवान विमलनाथके चारित्र सुननेकी विशेष उत्कंठा है तो चकोर पक्षी जिस प्रकार चंद्रमाकी ओर इकटक दृष्टि लगाता है उसी प्रकार तुम भी विमलनाथके चरित्रकी ओर दृष्टि लगाकर उसे ध्यानपूर्वक सुनो मैं उसका वर्णन स्पष्टरूपसे करता हूं:—

इस पृथ्वीपर एक धातुकी खंड नामका द्वीप है जो कि अनेक मनोज्ञ वस्तुओंका भंडार है । नीलकमल और वैडूर्य मणियोंकी प्रभाका धारक है । रत्न और सुवर्णकी अनेक खानियोंसे शोभायमान है । चार लाख योजन प्रमाण चौड़ा है । कुण्डलके समान गोलाकार है । कालोदधि समुद्र चारों ओरसे उसे घेरे हैं एवं वह अनेक क्षेत्रोंका धारण करने वाला है

च्छायां मेरुर्जंबूनदप्रभः । चतुरशीतिसहस्रैश्च योजनैरुन्नतः स्फुटं ॥ ८ ॥ गगनं जिगमिषुः स्वर्गं नु धरित्री स्तनतोऽथवा । शातकुम्भमयस्तंभो गगनोद्धार हेतुनः ॥९॥ चतुर्वनात्मको लेख कदंबकनिषेवितः । सुरस्त्रीणां कुचाघात कठिनीकृततत्तटः ॥ १० ॥ अमरी रतिसौगंध्युद्गारसंलीनषट्पदः । सुरजातैर्जिनेंद्राणां नानर्हच्चैत्य मंडितः ॥११॥ चतुर्भिःकलापकं तस्य पश्चिमदिग्भागे नद्याः सुदक्षिणे तटे । महापद्माख्यदेशस्य मध्ये तृतीय खंडकः ॥१२॥ तन्मध्ये वर्तते रम्यो विषयो रम्यकावती । नानाशोभाकरःपुंसांद्वन्द्वयो मरुतामपि ॥ १३ ॥ गोपुरोद्भासिशालानि यत्र भांति पुराणिच स्वर्णहर्म्याणि प्रौढानि विद्वज्जन कुलानि च ॥ १४ ॥ यत्र खेटा विराजंते सरित्प-

इसी धातुकी खंडकी पश्चिम दिशामें मेरु पर्वत है जो कि सुवर्णके समान प्रभाका धारक और चौरासी हजार योजन ऊंचा उठा हुआ है सो ऐसा जान पड़ता है मानो यह स्वर्ग जानेका इच्छुक है अथवा पृथिवीरूपी स्त्रीका उन्नत कुच है वा निराधार आकाश नीचे गिर न पड़े इसलिये उसे रोक कर रखनेवाला सुवर्णमयी स्तंभ है । यह मेरु पर्वत नंदन वन आदि चारों वनस्वरूप है । देवों के समूहके समूह यहांपर विहार करते हैं । इसके तटभाग देवांगनाओंके स्तनोंसे अत्यंत कठिन है । देवांगनाओंकी रतिसमयकी सुगंधिमें मत्त होकर सदा भौरें उसपर भुन भुनाट करते रहते हैं, अनेक देवोंसे नाना प्रकार पूजनीक है और भगवान जिनेंद्रोंकी प्रतिमाओंसे मंडित है ॥ ५-११ ॥ उसी मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें नदीके दक्षिण तटपर महापद्म देशके ठीक मध्यभागमें तीसरा खंड है उस तीसरे खंडके मध्यभागमें एक रम्यावती देश है जो कि महामनोहर हैं। अनेक प्रकार की शोभाओंका स्थान है एवं मनुष्य और देव सवोंके लिये एक दर्शनीय पदार्थ है ॥ १२—१३॥ इस रम्यकावती देशके गोपुर—सदर दरवाजोंसे चम चमाते हुए प्राकार और पुर अत्यंत शोभाय मान जान पड़ते हैं । धनिकोंके घर सुवर्णमयी बने हुए हैं और वहांके विद्वान लोग अनेक प्रकार की विद्या और कलाओंमें प्रौढ़ हैं ॥ १४ ॥ इस रम्यकावती देशके खेट चारों ओरसे नदी और पर्वतोंसे वेष्टित महामनोहर जान पड़ते हैं और कर्बट चारों ओरसे पर्वतोंसे अत्यंत रमणीक दीख

र्वतवेष्टिताः। कर्वटानि विभांत्येव परितः पर्वतैरपि ॥ १५ ॥ वृत्येव वेष्टिता यत्र ग्रामा भांति पदे पदे। पर्वतोपरि संस्थानि वाहनानि विभांति च ॥ १६ ॥ यत्र राजंतके द्रोणा धनद्रोणा इवापरे। पयोराशिश्रिता वाढं विद्रुमावलिरंजिता ॥ १७ ॥ शुकचंचुहरित्यंगशीर्षैः कर्बुरितानि च। शालिवप्राणि राजंते कामस्य सद्गृहा इव ॥ १८ ॥ इक्षुशोभा हि यत्रैव लोचनोद्भासिनी परा। पदे पदे लसत्येव स्वर्गिणामपि दुर्लभाः ॥ १९ ॥ हंससारचकोराणि पक्षितानि सरांसि च। स्वच्छतोयानि राजंते नानावृक्षतटानि वै ॥ २० ॥

पड़ते हैं ॥ १५ ॥ जिनके चारों ओर बाड़—परकोट खिचे हुए हैं ऐसे गांव जगह जगह वहांपर सुंदरतासे बसे हुए हैं जो कि नेत्रोंको अत्यंत प्यारे जान पड़ते हैं तथा पर्वतोंसे भी ऊंचे रथ आदि वाहन उस देशकी अत्यंत शोभा बढ़ाते हैं ॥ १६ ॥ उस देशके द्रोण--जलके भरे तालाव धनके खजाने सरीखे जान पड़ते थे क्योंकि जिसप्रकार तालाव "पयोराशिश्रिताः" पय--जलकी राशिसे शोभायमान थे उसीप्रकार धनके खजाने भी पय -रत्न आदिकी राशिसे शोभायमान थे। जिस प्रकार तालाब 'विद्रुमाबलिरंजिताः' विद्रुम--वृक्षोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान थे उसीप्रकार धनके खजाने भी विद्रुम--मूगोंके समूहसे शोभायमान थे ॥ १७ ॥ उस देशके पके हुए धान्योंके खेतोंमें शुक-तोते पड़ते थे इसलिये शुकोंके लालवर्ण और अपने हरे वर्णसे रंग विरंगे वे अत्यंत शोभायमान जान पड़ते थे अतएव लोग उन धान्योंके खेतोंको कामदेवके साक्षात् उत्तम घर समझते थे ॥ १८ ॥ वहांपर जगह २ नेत्रोंको प्रफुल्लित करनेवाली ईखके वृक्षोंकी शोभा अत्यंत शोभायमान जान पड़ती थी जिस शोभाका निरखना देवोंको भी अत्यंत दुर्लभ था ॥१९॥ वहांके तालावों पर हंस सारस और चकोर पक्षी विचरते फिरते थे निर्मल जलसे वे परिपूर्ण थे और उनके तट भागोंकी भांति भांतिके वृक्ष विचित्र शोभा बढ़ा रहे थे इसलिये वे तालाव नेत्रोंको परमानंद प्रदान करते थे ॥ २० ॥ वहांके आम्र वृक्षोंके बनोंमें जगह जगह भ्रमण करते हुए भौंरोंके भुन भुनाट शब्द सुन पड़ते थे। कोकिल हंस और भोंरोंके महा मनोहर शब्द होते थे इसलिये वहांकी

भ्रमद्भ्रमरझंकाराः पिकहंसशिखंडिनां । आरावाश्च तवृक्षेषु विराजंते पदे पदे ॥ २१ ॥ गोपभामा विलोक्याशु पीनवक्षोजमंडिताः । स्वभामाः कोपयंत्येव स्थूलवक्षोत्रवल्लभाः ॥ २२ ॥ मकरंदभरेणैव लसत्यंगकपोलकाः । अमराः सस्मिता यत्र चुंबनाश्लेषरागिणः ॥२३॥ यत्र नद्यो विराजन्ते कुटिला विभ्रमान्विताः । हृदयास्याः सपद्माश्च सर्वसेव्यपयोधराः ॥ २४ ॥ तटोन्नितंबधारिण्यः पक्षिशब्द-

शोभा बड़ी ही मनको हरण करने वाली थी ॥ २१ ॥ वहांके ग्वालोंकी स्त्रियोंके स्तन स्वभावसे ही स्थूल थे इसलिये स्थूल स्तनोंकी अभिलाषा रखने वालीं अन्य स्त्रियां रात दिन इस बातका डाह कर कि हमारे ऐसे स्थूल स्तन क्यों नहीं ? क्रोधमें भभलतीं रहतीं थीं। वह देश सुगंधित पदार्थों की सुगंधिसे सदा महकता रहता था अतएव वहांपर भ्रमण करनेवाले देवोंकी देवांगनाओंके शरीर और कपोल भी उत्कट सुगंधिसे सदा महकते रहते थे इसलिये देव गण वहांपर देवांगनाओं के कपोलोंके चुम्बन करनेमें और शरीरोंसे आलिंगन करनेमें ही सदा उत्सुक बने रहते थे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ वहांकी नदियां संभोगकालमें रसास्वादन करने वाली वेश्या सरीखी जान पड़तीं थीं क्योंकि जिसप्रकार वेश्या कुटिल होती हैं उनका चित्त कभी भी सीधा साधा सरल नहीं दीख पड़ता उसी प्रकार वहांकी नदियां भी कुटिल थीं उनका बहाव सीधा न होकर सदा चक्करदार होता था। जिस प्रकार वेश्या "विभ्रमान्विताः" विलासप्रिय होती हैं नदियां भी जलके भ्रमरोंसे व्याप्त थीं। वेश्या जिसप्रकार हृदयकी गूढ़ होतीं हैं—कोई भी उनके मनका भाव नहीं पहिचान सकता उसप्रकार वे नदियां भी अपने हृदयभागमें अत्यंत गहरीं थीं। वेश्या जिसप्रकार शरीरपर कमल धारण किये रहतीं हैं उसप्रकार वे नदियां भी कमलोंसे अत्यंत शोभायमान थीं। जिसप्रकार वेश्याओंके पयोधर स्तनोंका हर एक उपभोग कर सकता है उसीप्रकार उन नदियोंके जलका भी हर एक उपयोग करता था। जिसप्रकार वेश्यायें उन्नत नितंबोंको धारण करने वालीं होती हैं उसीप्रकार वे नदियां उन्नत तटरूपी नितंबोंको धारण करनेवालीं थीं। वेश्या जिसप्रकार बोल चालमें बड़ी चतुर रहतीं

विचक्षणाः। निर्गमद्वाभगा रम्या वेश्या वा रसरा जिताः ॥ २५ ॥ मुमुक्षवो विराजंते ध्यानस्था यत्र सत्पथाः। शैलारण्यसरित्सानुनिवासाः साम्यधारिणः ॥ २६ ॥ यत्र सिद्धान्तघाणीभिः पंडितं शक्रःसमं। महापुराभिधं सर्वशोभाभारभृतं भृशं ॥ २७ ॥ सप्तैकविंशतिभूका रत्नसंरब्ध सत्पथाः। हेमस्तंभा विराजंते गृहा यत्रैव चित्रिताः ॥ २८ ॥ उत्तुंगतोरणोपेता स्वर्ण सोपानसत्त्विपः। रत्नचैत्याश्च यत्रैव प्रसादाः संति भूदिशः ॥२९॥ वृत्तलं यत्र भातीव शिखरं रत्नगर्भितं। नु भानुश्चन्द्रमा किंतु कामाब्ज शेषसन्मणिः

ह उसीप्रकार नदियां भी पक्षियोंके महामनोहर शब्दोंसे व्याप्त थीं। वेश्यायें जिसप्रकार आर्द्र मूत्र मार्गकी धारक होतीं हैं उसप्रकार उन नदियोंमें भी जल निकलनेके अनेक स्थान विद्यमान थे एवं वेश्या जिसप्रकार अत्यंत मनोहर जान पड़तीं हैं उसीप्रकार वे नदियां भी अत्यंत मनोहर जान पड़तीं थीं ॥ २४—२५ ॥ वहांपर मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मुनिगण सदा ध्यानमें लीन रहते थे। उत्तम मार्ग जैनमार्गके अनुगामी थे। पर्वत वन नदी और पहाड़ोंकी चोटियोंपर निवास करनेवाले थे और परम समरसी भावके धारक थे इसलिये वे उस देशकी अनुपम शोभा स्वरूप थे ॥ २६ ॥

उस रम्यकावती देशके अंदर एक महापुर नामका नगर है जिसमें कि विद्वान् लोग सदा जैन सिद्धांतका प्रचार करते रहते हैं इसलिये वह साक्षात् पंडित स्वरूप है। शोभामें इन्द्रपुरीकी तुलना करता है एवं सदा अनेक प्रकारकी शोभाओंसे हरा भरा रहता है ॥ २७ ॥ महापुर नगरके घर सात खने वा इकवीस खने तकके बने हुए हैं। लोगोंके प्रवेश करनेके मार्ग—रत्नमयी हैं। सुवर्णमयी खंभोंके धारक हैं एवं जगह जगह अनेक प्रकारके चित्रोंसे शोभायमान हैं ॥२८॥ महापुरके निवासी धनियोंके घर ऊंचे ऊंचे तोरणोंसे व्याप्त थे। सुवर्णमयी सोपान—झीनोंसे देदीप्यमान थे और रत्नमयी स्तंभोंसे चम चमाने वाले थे ॥ २९ ॥ इन प्रासादोंकी गोलाकार और और रत्नोंकी बनीं शिखरें अत्यंत शोभायमान थीं सो ऐसी जान पड़तीं थीं मानो ये साक्षात् सूर्य हैं वा चंद्रमा है अथवा कामदेवके कमल हैं वा शेष नागके मस्तककी उत्तम मणि हैं ॥ ३० ॥ उन प्रासादोंके ऊपर

॥ ३० ॥ लसंति वायुना यत्र पताका हृदयंगमाः । आह्वयंतीव भव्यानां सुराणां धर्महेतवे ॥ ३१ ॥ यत्राभिषेकमहीभिः पटहैर्दुंदुभिः स्वनैः । गाननृत्यैः सुखालापैर्यो पितामुत्सवो महान् ॥ ३२ ॥ ललिता भांति यत्रैव कामलोलाः कजदृशः । कठिनोन्नत-नितंबाश्च पीनस्थूल पयोधराः ॥ ३३ ॥ गतागतस्तनोत्पीत्तु त्र्यत्कंचुकबंधनाः । हावभावविलासैश्च रंजयंति सुरानपि ॥ ३४ ॥ यत्रैव दानिनो लोका वर्तंते धनशालिनः । तपस्यंति नराः केचिद्धर्मार्थं शीलसंयुताः ॥ ३५ ॥ तत्रैव निर्धना मूढा निर्विवेका गत-

पवनसे फर फरातीं हुईं महामनोहर पताकाएं अत्यंत शोभा धारण करतीं हैं मानों भव्य देवोंको वे यह कह कर बुलातीं हैं कि आओ भाई देवो ! यहां आकर धर्म सेवन करो ॥ ३१ ॥ इस महापुर नगरमें सदा भगवान जिनेंद्रका अभिषेक हुआ करता है सदा पूजा हुआ करती है । पटह जाति के बाजे और नगाड़े वजते रहते हैं । रमणियोंके गान नृत्य और प्रेमपूर्वक संभाषण होते रहते हैं इसलिये सदा अनेक प्रकारके उत्सवोंसे वह नगर जगमगाता बना रहता है ॥ ३२ ॥ महापुर की स्त्रियां उसकी विचित्र ही शोभा बढ़ातीं हैं क्योंकि वे महा सुन्दरी होतीं हैं । अत्यंत कामिनी होतीं हैं । कमलके समान नेत्रवालीं कठिन और उन्नत नितंबोंकी धारक एवं पीन और स्थूल स्तनोंसे शोभायमान रहतीं हैं । जिससमय वे आती जाती हैं उससमय आपसमें एक दूसरोंके स्तनोंके भिड़ावसे उनके चोलियोंके बंधन टूट जाते हैं एवं अपने हाव भाव और विलासोंसे देवोंके भी चित्तोंको हरण करतीं हैं ॥ ३३—३४ ॥ महापुर नगरके लोग धन पाकर उसे भोग विलासोंमें ही व्यय करने वाले नहीं हैं किंतु उत्तम आदि पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देनेवाले हैं इसलिये वहांके धनी परम दानी हैं तथा वहांके शीलवान भव्यजीव धर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे सदा मुनिलिंग धारण कर उत्तम तप तपने वाले हैं ॥ ३५ ॥ उस नगरमें सब लोग धनी ही दीख पड़ते हैं कोई भी निर्धन नहीं दीख पड़ता । सब चतुर ही हैं मूढ नहीं । सब विवेकी ही हैं विवेक रहित नहीं । सब उद्योगी सज्जन और प्रशंसा करने वाले ही हैं आलसी दुष्ट और निंदा करनेवाले नहीं तथा सब

क्रियाः। खला निंदाकृतो रूपा विद्यन्ते नैव ह्रस्वकाः ॥ ३६ ॥ तत्रैवास्ति महीपालो हेलानिर्जितशात्रवः। पद्मसेनाभिधो धीमान् प्रतापाक्रान्तभूतलः ॥ ३७ ॥ धीक्षो गंभीर सत्वसन् नागदो सिंहविक्रमी। कमलापीनसत्स्कन्धः शास्त्रवान् धर्मवत्सलः ॥ ३८ ॥ रणोत्साही भियस्त्राता सौम्यः क्रूरो यथायर्थं। दाता प्रियंवदःकामक्रीड़ाक्षः कमलेक्षणः ॥ ३९ ॥ पाति तत्परमानन्दी षड्वर्गी चन्द्रसद्यशाः। इन्द्रो वा नागदेवश्च स्वर्गलोकरसातलं ॥ ४० ॥ वृषस्कन्धो रणोत्साहो गूढसत्वं महोद्यमः। क्रूर- सौम्ये च दातृत्वं महाराजस्य लक्षणं ॥ ४१ ॥ राज्यं पालयति यस्मिन् भयं नो विद्यते क्वचित्। दंडनं कुप्रवादश्च दुःखं नैव परा-

ही अमीर हैं कोई छोटा नहीं ॥ ३६ ॥ उस महापुर नगरका स्वामी राजा पद्मसेन था जिसके लिये बलवान भी शत्रुओंका जीतना खेल सरीखा था। जो अत्यंत बुद्धिमान था। अपने प्रचंड पराक्रमसे समस्त पृथ्वीतलको बश करने वाला था। धीर गंभीर बलवान और सज्जन था। नागके समान उसकी दोनों भुजायें थीं। सिंहके समान जो पराक्रमी था। लक्ष्मीके समान स्थूल स्कंधों का धारक था। शास्त्रोंका ज्ञाता, युद्ध करनेके लिये सदा उत्साही भयसे रक्षा करने वाला सौम्य समयानुसार क्रूर दाता प्रियवादी काम क्रीड़ाका जानकार कमलके समान प्रफुल्लित नेत्रोंका धारण करनेवाला षड्वर्गी अर्थात् समयानुसार काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्यरूप छह वर्गोंका धारण करने वाला और चंद्रमाके समान निर्मल यशका धारण करनेवाला था। तथा जिसप्रकार इन्द्र स्वर्गलोकको रक्षा करता है और नागदेव अधोलोकका पालन करने वाला है उसीप्रकार वह राजा पद्मसेन महापुरकी रक्षाका करनेवाला था। ॥ ३७—४० ॥ बैलके समान उन्नत स्कंधोंका होना रणमें उत्साह रखना गुप्तरूपसे बलका धारण करना महान उद्योगी रहना क्रूर और सौम्यपना एवं दातापना ये महाराजके लक्षण हैं राजा पद्मसेन इन समस्त लक्षणोंका धारक था ॥ ४१ ॥ राजा पद्मसेनके राज्य पालन करते समय न तो कहीं भी किसी प्रकारका प्रजाको भय था। न दंडकी शंका थी। न किसीकी निंदा सुन पड़ती थी। न किसी प्रकारका दुःख था और न कहीं किसीका

भवः ॥४२॥ आक्रमंति हि नोन्यायं लोका धर्मपरायणाः । नाक्रामति च तान् भूयो नीतिशास्त्रार्थ दक्षिणः ॥ ४३ ॥ धर्मार्थकामशास्त्राणां वेत्तासौ काश्यपीपतिः । सर्वसामंतसंसेव्यपादसत्कमलः कलः ॥ ४४ ॥ तस्य राज्ञी महास्नेहा पद्मा पद्मविलोचना । पद्ममृदुकरा पद्मवक्षोजा पद्मिनीव नु ॥ ४५ ॥ ललंती लीलया लोल लक्षनालालिता तनुः । इवोदपतिमो ज्योत्स्ना भोगांबोधिप्रवर्द्धिनी ॥ ४६ ॥ अनया रमते राजा नानाकामकुतूहलैः । आश्लेषैश्चुंबनैर्लैरासनैरौपरीपकैः ॥ ४७ ॥ कामाकुला महादेवी सेवते तं निरं-

तिरस्कार ही सुन पड़ता था । यह नियम है कि जोलोग धर्मात्मा होते हैं वे न्याय मार्गका उल्लंघन नहीं करते एवं जो मनुष्य नीति और शास्त्रमें कुशल होता है—धर्मात्मा होता है वह भी धर्मात्माओंको कभी पीड़ा नहीं देता । महापुर नगरमें राजा प्रजा दोनों धर्मात्मा थे इसलिये वहां कोई उपद्रव न था ॥ ४२—४३ ॥ वह राजा पद्मसेन धर्म अर्थ और काम शास्त्रोंका परिपूर्ण जानकार था । समस्त सामंत गण उसके चरण कमलोंकी बड़े प्रेमसे सेवा करते थे और वह महा मनोज्ञ था ॥ ४४ ॥ राजा पद्मसेनकी रानीका नाम पद्मा था । रानी पद्मा अत्यंत स्नेह करने वाली थी कमलके समान नेत्रोंवाली थी । उसके दोनों हाथ कमलके समान कोमल थे । स्तनोंका खिलाव भी कमल सरीखा था इसलिये वह साक्षात् पद्मिनी सरीखी थी ॥४५॥ वह रानी लीलापूर्वक चलने वाली थी । चंचल नेत्रोंकी धारक थी । सारा शरीर उसका अच्छी तरह लालित था । दुःखरूपी अंधकारको नाश करने वाली ज्योत्स्ना—चांदनी थी अतएव भोगरूपी समुद्रको बढ़ानेवाली थी ॥ ४५— ४६ ॥ इस रानी पद्माके साथ वह राजा पद्मसेन मनमानी रतिक्रीड़ा करता था कभी वह उस रानीके साथ अनेक प्रकारके काम जनित कौतूहलोंको करता था कभी आलिंगन करता था कभी चुंबन करता तो कभी हास्यमिश्रित वचनोंका उपभोग करता था तथा भोग विलास करते समय कभी कभी अनेक आसनोंको काममें लाता था ॥४७॥ वह रानी पद्मा भी अत्यंत कामिनी थ इसलिये वह भी बेधड़क हो सदा राजाके साथ विषयभोग भोगती थी । राजा पद्मसेन भी इतना

तरं । ज्ञातस्वादोऽपि राजा तां सेवते मोहतो ध्रुवं ॥ ४८ ॥ पूरमल्लेव श्रीकृष्ण कवीशमंगलाग्रजं । श्रीकृष्णोपी दृवक्त्रां तामिव कृष्णश्च राधिकां ॥ ४९ ॥ (युग्म) सा रामा हावभावैश्च प्रोल्लासैर्भोगकंपनैः । मणितैः स्खलितैर्हास्यैश्च पने रंजयेद्वरं ॥ ५० ॥ स कामी भगलस्पर्शैर्मर्दनैश्चुम्बनैर्दृढं । स्तंभनैर्दन्तघातैस्तां लिंगास्यादैस्त्वतोपयत् ॥ ५१ ॥ एवं विषयसंयोगे तयोरासीत्सुतं परः । पद्मनाभाह्वयः सर्वलक्षणांकितविग्रहः ॥ ५२ ॥ भुंजानो विविधान् भोगान् निमग्नः सुखसागरे । गतं कालं न जानाति स्त्रीश्वादी

अधिक रानी पद्मापर स्नेह रखता था कि सदा उसके साथ वह विषय भोगोंमें मग्न बना रहता था एक क्षणके लिये भी उससे विमुख नहीं होना चाहता था। ग्रन्थकार श्रीब्रह्मकृष्णदास भी अपने नामकी छाप लगाते हुए कहते हैं कि जिसप्रकार पूरमल्ला मंगलदासके बड़े भाई श्रीकृष्णदासके साथ सदा विषय भोगती थी एवं चंद्र वदनी उस पूरमल्लाको कृष्णदास भी एक क्षणकेलिये भी नहीं छोड़ना चाहते थे तथा जिसप्रकार नवमे नारायण कृष्णकी स्त्री राधिका सदा कृष्णके साथ विषय भोगती थीं एवं कृष्ण भी क्षणभरके लिये भी उससे विमुख नहीं होना चाहते थे उसीप्रकार राजा पद्मसेन और रानी पद्माकी दशा थी दोनोंमें अधिक प्रेम होनेसे एक दूसरेको छोड़ना नहीं चाहता था ॥ ४८—४९ ॥ वह रानी पद्मा हाव भाव चित्तके उल्लास भोग समयमें कंपना भूषणोंके शब्द अर्ध स्खलित वचन हास्य और शरीरकी कांतिसे सदा राजा पद्मसेनको प्रसन्न रखती तथा कामाकुल वह राजा भी मर्दन, चुम्बन, आलिंगन और दंतच्छेदन आदि रतिकालीन क्रियाओंसे सदा उस रानीको संतुष्ट रखता था। इसप्रकार मनमानी भोगक्रीड़ा करते करते उन दोनों दंपती के पद्मनाभ नामका पुत्र हुआ जो कि समस्त राज लक्षणोंसे युक्त शरीरका धारक था ॥ ५०-५२ ॥ वह राजा इच्छानुसार विषय भोगोंको भोगता भोगता सदा सुख सागरमें मग्न रहता था। समय कहां चला जा रहा है इस बातका उसे पता तक नहीं लगता था। ठीक ही है जो लोग स्त्रियोंका रस चख चुके हैं उनसे वह स्वाद जल्दी नहीं छूटता ॥ ५३ ॥

दुस्त्यजो नृणां ॥ ५३ ॥ प्रीतिंकरमहारण्ये समायातोऽथ केवली । सर्वगुप्ताभिधः सर्वजंतुरक्षणतत्परः ॥ ५४ ॥ तत्प्रभावान्महावृक्षाः कुसुमाढ्याः फलान्विताः । पैकषट्चरणारावे रेजुरुत्क्षीणछायकाः ॥ ५५ ॥ तदा मालाकरो दृष्ट्वा छायां वृक्षसमुद्भवां । व्यतीतर्कन्निजे चित्ते किं स्वप्नः शंबरीनु वा ॥ ५६ ॥ त्रिचतुरेषु यदा पश्यन् पदेषु गतवांस्तदा । पर्यंकासनमारूढं ध्याना स्तिमिता लोचनं ॥ ५७ ॥ निश्चलं वृषभं देवं ध्यायंतं करुणानिधिं । सौम्यं च मृग व्याघ्रादिसेव्यमानं शशिप्रभं ॥ ५८ ॥ अद्राक्षीत्तेजसां पुंजं मिहिरं वा तपोनिधिं । क्षीरार्णवे सुखासीनं हंसं चंद्रसमं नु वा ॥ ५९ ॥ (त्रिभिर्विशेषकं) हर्षकंचुकितांगा सन्जगाम नृपसन्निधौ ।

महापुर नगरके समीपमें एक प्रीतिंकर नामका महा बन था। एक दिन सर्वगुप्त नामके केवली जोकिसमस्त जींवोंकी रक्षा करनेमें सदा तत्पर रहते थे आकर उसमें विराज गये। भगवान केवलीके प्रभावसे प्रीतिंकर वनके समस्त वृक्ष फूल और फलोंसे लदबदा गये। कोकिला अपनी मधुर ध्वनि अलापने लगीं और भौंरे भुनभुनाट शब्द करने लगे इस लिये समस्त वन उस समय अत्यंत सोभायमान दीख पड़ने लगा ॥ ५४।५५ ॥ बनकी इस प्रकार वृक्षोंसे जायमान विचित्र शोभा देखकर उस बनका रक्षक माली चकित रह गया और उसके मनमें यह विचार उठने लगा कि क्या यह स्वप्न है अथवा देव कृत माया जाल है? तीन चार पैंड़ आगे बढ़कर जब उसने देखा तो केवली भगवान सर्वगुप्त उसे दीख पड़े वे भगवान पर्यंकास (पलौती) से विराजमान थे। ध्यान करनेके कारण उनके नेत्र इकटक निश्चल थे। निश्चल रूपसे भगवन ऋषभदेवका वे ध्यान कर रहे थे। दयाके सागर थे। सौम्यमूर्तिके धारक थे। क्रूर भी मृग व्याघ्र आदि उनकी सेवा करते थे। चंद्रमाके समान उज्ज्वल प्रभाके धारक थे। कांतिके पुंजस्वरूप थे। जाज्वल्यमान सूर्यके समान थे। तपके खजाने थे। एवं क्षीरोदधि समुद्रमें सुखसे बैठनेवाला जिसप्रकार हंस और चन्द्रमा दीख पड़ता है उसके समान विराजमान थे ॥ ५६--५९ ॥ भगवान केवलीको देख कर वनपालका शरीर आनंदसे पुलकित हो गया वह शीघ्र ही राजा पद्मसेनके पास गया एवं छहों ऋतुओंके पुष्प और फल भेंटकर इसप्रकार निवेदन करने लगाः—

मुक्त्वा पुष्पफलव्रातं पुरस्तादब्रवीदिति ॥ ६० ॥ प्रभो ! प्रीतिंकरेऽरण्ये सर्वगुप्ताख्यकेवली। समागतः प्रभोः पुण्याद्देवेन्द्रार्चित-पत्कजः ॥ ६१ ॥ पद्मसेनो नराधीशः श्रुत्वा सामंतसंयुतः। चचाल वंदितुं भक्त्या मुनिं राज्ञीसुतान्वितः ॥ ६२ ॥ अर्हच्चरणयोर्येऽत्र चारण रुचिचंचुराः। लयीभावं समेत्यांशु कुर्वंति साधुवंदनां ॥ ६३ ॥ गत्वा नत्वा प्रपूज्याशु स्वच्छद्रव्यैर्मनोरमैः। गद्यपद्यैः सुखं स्तुत्वा निविष्टः कलभासने ॥ ६४ ॥ मुनिर्मत्वा नराधीशं भव्यं तं मृदुचेतसं। शचीकथत्परं धर्मं तत्वगर्भं कृपामयं ॥ ६५ ॥ राजन् भ्रमत्ययं जीवः संसारे दुःखसंकटे। अनादिनिधनःकेन कृतो नास्ते चिदात्मकः ॥ ६६ ॥ नरत्वं दुर्लभं लोके तत्रापि सत्कुलंपुनः।

स्वामिन! आपके पुण्यके उदयसे प्रीतिंकर वनमें सर्वगुप्त नामके केवली जिनके कि चरण कमलों को बड़े बड़े इन्द्र आकर पूजते हैं, आकर विराजे हैं। वनपालकी यह आनंद प्रदान करने वाली बात सुन कर राजा पद्मसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और भक्तिपूर्वक मुनिराजकी वंदनाके लिये अनेक सामंत महाराणी और पुत्रोंके साथ शीघ्र ही चल दिया ठीक भी है जो महानुभाव भगवान अर-हंतके चरणोंमें पूर्णभक्ति रखनेवाले हैं वे अवसर प्राप्त होनेपर उसी भक्तिमें लीन होकर भगवान अर्हंतके मार्गके अनुगामी मुनिराजोंकी वंदनाके लिये प्रतिसमय तैयार रहते हैं। वह राजा पद्म-सेन मुनिराजके पास पहुंच कर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। महामनोहर अष्ट द्रव्योंसे उनकी पूजा की। पूजाके अंतमें गद्य और पद्योंसे उनकी स्तुति की एवं अपने बैठने योग्य स्थान पर अपने योग्य आसनसे बैठ गया ॥ ६०—६४ ॥ पद्मसेनकी इसप्रकार पवित्रभक्ति देखकर मुनि-राजने अपने दिव्यज्ञानसे उसे भव्य और सरलस्वभावी समझा इसलिये वे तात्त्विक और दयापूर्ण इसप्रकार धर्मोपदेश देने लगे :—

राजन्! यह संसार नाना प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त है उसमें यह जीव सदा यहांसे वहां और वहांसे यहां चक्कर लगाया करता है यह जीव अनादि निधन है—इसके आदि अन्तका कोई निश्चय नहीं। न इसे किसीने वनाया है तथा यह चैतन्य स्वरूप है ॥ ६५—६६ ॥ इस संसारमें [illegible] अपेक्षा मनुष्यपना अत्यंत दुर्लभ है। यदि दैवयोगसे मनुष्यपना

दुस्त्यजो नृणां ॥ ५३ ॥ प्रोति

वृक्षाः कुसुमाढ्याः फलान्विंधिताः ॥ ६७ ॥ ... स ... त्वं सुरूपाः । सुपुत्रा वसु सद्बुद्धी रामा पीन-
...स्तनीतर्क ... पथा ... तत्वमार्यत्वं सुरनाथता । कामत्वं रूपसंपन्नं तीर्थकृत्वं यतो भवेत् ॥ ६९ ॥ ये नरा धर्मरिक्तास्तु ते भवंति विलुद्धयः । विपुत्रा निर्धना मूकाः पराशाः स्त्रीविवर्जिताः ॥ ७० ॥ विरूपास्तस्करा नीचाः किंकरा भारपीड़िताः । आजन्म-व्यथिकाः क्रांता धर्महीना भवन्ति ते ॥ ७१ ॥ स च धर्मो द्विधा प्रोक्तो मुनिश्रावकभेदतः ।:मुनिधर्माद्भवेन्मोक्षश्चान्यस्मात्संपदादिकं ॥ ७२ ॥ नक्तभोज्यं न कर्तव्यं मांसदोषकरं सतां । निशादने कृते नूनं वृतभंगो हि जायते ॥ ७३ ॥ पूजा स्नानं च दानं वा तर्पणं

प्राप्त भी हो जाय तो उत्तम कुलका मिलना कठिन है यदि प्रवलभावसे उत्तम कुल भी प्राप्त हो जाय तो जिसमें दया और दान प्रधान है ऐसा उत्तम धर्म प्राप्त नहीं होता। धर्म संसारमें चिंता-मणि रत्न है क्योंकि धर्मसे राज्य प्राप्त होता है एवं धर्मसे ही स्वर्ग, वल, सुख, यश, उत्तमपुत्र धन उत्तम बुद्धि पीन स्तनवालीं स्त्रियां विद्वत्ता चक्रवर्तीपना आर्यपना देवेंद्रपना इच्छानुसार भोग उत्तम रूप और तीर्थंकरपना भी प्राप्त होता है ॥ ६७—६९ ॥ जो मनुष्य धर्मका सेवन करनेवाले नहीं—धर्मरहित हैं वे बुद्धि रहित मूर्ख होते हैं। पुत्रहीन होते हैं निर्धन गूंगे अभागे और स्त्रियोंसे रहित होते हैं तथा उस परम पावन धर्मसे रहित पुरुष विरूप वदसूरत होते हैं चोर होते हैं. नीच किंकर रात दिन भार लादनेवाले जन्मपर्यंन्त दुखी और अपमानित होते हैं ॥ ७०—७१ ॥ जिस धर्मका यह फल वतलाया गया है वह धर्म मुनि और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका वतलाया गया है उनमें मुनिधर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और श्रावक धर्मकी कृपासे संसारकी अनेक विभूतियां आकर मिलतीं हैं ॥ ७२ ॥ रात्रिमें भोजन करनेसे अनेक जीवोंका कलेवर भक्षण करना पड़ता है और व्रतोंका भी भलेप्रकार पालन नहीं होता इसलिये वृतियोंको कभी रात्रिमें भोजन नहीं करना चाहिये। रात्रिमें किये जानेवाले पूजा स्नान दान और तर्पण आदि भी किसीप्रकारकी शुद्धिप्रदान नहीं कर सकते। पक्षीगण जिनके कि अंदर किसी प्रकारका धर्मज्ञान नहीं होता जव वे भी रात्रिमें नहीं खाते तब आश्चर्य है मनुष्य क्यों रात्रिमें खाते हैं? जब दो घड़ी दिन वाकी रह जाय तब

नैव शुद्ध्यति । पक्षिणोऽपि न भक्षंति कथं भुंजंति मानवाः ॥ ७४ ॥ घटीद्वये स्थिते शेष वासरेऽद्दति मानुषाः । अन्यथा राक्षसा एव पलास्वादनतत्पराः ॥ ७५ ॥ त्रिसंध्यं येतु भुंजंति निर्धना रोगिणो नराः । अल्पायुषो भवंत्येव कालदंष्ट्रा हताः खलु ॥ ७६ ॥ महापाप कृतां पुंसां निंदा नैव विधीयते । तया चैनांसि वध्यंते परत्र दुर्गतिं व्रजेत् ॥ ७७ ॥ निंदाकारी व्रतध्वंसी परछिद्रप्रकाशकः । निद्राछेद्यंतरापी च चाण्डालाः पंच भाषिताः ॥ ७८ ॥ धर्मस्थाने नरा नार्यो निंदा कुर्वंति ये रसात् । वल्गुलीघूकमार्जारस्खलज्जिह्वा भवंति ते ॥ ७९ ॥ असारे खलु संसारे कस्य चिद्वल्लभो न कः । स्वार्थ एव परः पुंसां न रामास्वजनादिकं ॥ ८० । एक एव सुखी

मनुष्योंको भोजन करना चाहिये क्योंकि यही आगममें विधान है किन्तु जो मनुष्य उसके बाद भी भोजन करते हैं वे मनुष्य नहीं किंतु मांस खानेके लोलुपी राक्षस हैं विशेष क्या जो मनुष्य प्रातः-काल दुपहर और सायंकाल तीनोंकाल भोजन करनेवाले हैं वे मनुष्य निर्धन होते हैं रोगी थोड़ी आयुवाले और यमराजके मुखमें प्रवेश करनेवाले होते हैं ॥ ७३—७६ ॥ सज्जनपुरुषोंकी तो बात ही क्या है किंतु जो पुरुष घोर पाप करनेवाले महापापी हैं उनकी भी निंदा नहीं करनी चाहिये । क्योंकि उससे अनेक पाप कर्मोंका वंध होता है और पर भवमें दुर्गतिके अन्दर जाना पड़ता है ॥ ७७ ॥ निंदा करनेवाले, व्रत ग्रहण कर उसे नष्ट करनेवाले, पराये दोषोंके प्रकाश करनेवाले, निद्रा छेदनेवाले और अंतराय (विघ्न) पहुंचाने वाले ये पांच प्रकारके चांडाल माने जाते हैं ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य वा स्त्रियां प्रेमपूर्वक धर्मके स्थानोंमें अर्थात् धर्मायतनोंकी निंदा करनेवाले हैं—निंदा करनेमें आनंद माननेवाले हैं वे संसारमें उस निंदाके करनेसे बगली उल्लू और विल्ली होते हैं एवं उनकी जीभके खंड २ हो जाते हैं ॥ ७८—७९ ॥ यह संसार असार है इसमें किसका कौन प्यारा नहीं है अर्थात् जो एक पुरुष किसीका द्वेषी होता है वही दूसरेका प्यारा होता है वास्तवमें प्यारा स्वार्थ है जिसका जिससे स्वार्थ सटता है वही उस का प्यारा कहा जाता है स्त्री और कुटुम्ब आदि कोई किसीका प्यारा नहीं ॥ ८० ॥ इससंसारमें जो पुरुष पुण्य और पापका उपार्जन करने वाला है वही अकेला सुखी दुःखी और स्वर्गका सुख

दुःखी स्वर्गी भवति निश्चितं। पुण्ये पापे विभागोन रामादीनां कदाचन ॥ ८१ ॥ पंचधा नारकं दुःखं स्वयं तत्सहते स्फुटं । तत्रैव सुखिनं कर्तुं क्षणं शक्नोति कोऽपि न ॥ ८२ ॥ दर्शनज्ञानचारित्रभावना च विचीयते। विभावं जन्मपर्यंतं तपो भवति निष्फलं ॥ ८३ ॥ अत्युग्रं जन्मपर्यंतं तपोऽकारि च यत्क्रुधा। भस्मसात्तद्भवेद्राजन् वह्निना हि यथा वनं ॥ ८४ ॥ अनेन जंतुना राज्यं भुक्तं जन्मचिवर्जितं। अनेकशस्तथाप्यस्य संतोषो नैव जायते ॥ ८५ ॥ भोगाश्च दारुणाः सर्पदेहा इव मता जिनैः। तिर्यंचस्ते भवंत्येव ये रामाधनमो-

भोगने वाला होता है। पुण्य और पापमें स्त्री पुत्र आदिका विभाग नहीं। अपने कियेका आप ही फल भोगना पड़ता है दूसरा स्त्रीपुत्र आदि उसमें हिस्सा नहीं बटा सकता ॥ ८१ ॥ यह जीव शरीर आदि संबंधी पांच प्रकारके दुःखको स्वयं अकेला ही सहता है नरकमें उसे क्षण भरके लिये भी सुखी करनेको कोई समर्थ नहीं ॥ ८२ ॥ जो पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं उनके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी भावना नहीं बन सकती तथा उनका जन्मपर्यंत भी तपा हुआ मिथ्यादृष्टि तप निष्फल होता है ॥ ८३ ॥ जो तप क्रोधपूर्वक किया जाता है वह तप कैसा भी उत्कट क्यों न हो तथा जन्मपर्यंत भी क्यों न तपा गया हो परंतु वह जिसप्रकार दावाग्निसे क्षणभरमें वन भस्म हो जाता है उसीप्रकार उस क्रोधके द्वारा भस्म हो जाता है उसका कोई भी फल नहीं होता ॥ ८४ ॥ इस जीवने अनेक वार निष्कंटक राज्यका भोग किया है तव भी उस राज्यसे इसे संतोष नहीं हुआ है ॥ ८५ ॥ जिसप्रकार सर्प अत्यंत भयंकर होते हैं उसीप्रकार भगवान जिनेंद्रने इन भोगोंको कहा है इनके जालमें फँसकर प्राणिगण अपने स्वस्वरूपसे च्युत हो जाते है और संसारमें भ्रमण करते फिरते हैं तथा जो पुरुष स्त्री और धनमें मोह रखते हैं उन्हें ही अपने जीवनका सर्वस्व समझते हैं वे तिर्यंच गतिके अन्दर उत्पन्न हो अनक क्लेश भोगते हैं॥ ८६ ॥ स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले वहुत प्रकारके भोगोंको चिरकाल भोगकर भी जो महानुभाव अंत में धर्मका आचरण नहीं करते—उन भोगोंमें लिपटे रहते हैं वे संसारमें महामूर्ख माने जाते हैं

हिनः ॥ ८६ ॥ चिरं भुक्त्वा वहून योगान् पंचेंद्रियसुखप्रदान् । त्यक्त्वा प्रांते न ये धर्मं कुर्वंति ते महा जड़ाः ॥ ८७ ॥ चक्रिणोऽपि गताः काले चलंति स्वर्गिणोऽपि च । मरणं विद्यतेऽवश्यमतो धर्मो विधीयते ॥ ८८ ॥ पश्यजन्मद्वये राजन्! भावी त्वं देव पूजितः । तीर्थङ्करो विमलो नाम्ना वै मलज्ञानलोचनः ॥ ८९ ॥ श्रुत्वा केवलिनो वाक्यं जहर्ष मानसे निजे । तीर्थकृज्जात पत्रासौ पद्मसेनो नराधिपः ॥९०॥ बांधवान् बंधनैस्तुल्यान् रामाः श्वभ्रप्रतोलिकाः । स्वार्थं तुल्यं विचिंत्याशु नृपो वैराग्यमाश्रितः ॥ ९१ ॥ सर्वं सामंत लामक्ष्यं दत्वा राज्यं स्वसूनवे । पद्मनाभाय सतांगं प्रवव्राज धराधिपः ॥ ९२ ॥ पपाठैकादशांगानि तेषामर्थान्विशेषतः । नानातपः प्रभेदेन विजहार महीतलं ॥ ९३ ॥ षोड़शानां निजे चित्ते भावनानां सुभावनं । चकार सिंहवन्निर्भीरसौ सारंग लोचनः ॥ ९४ ॥ सत्तालोचनमात्रं

॥ ८७ ॥ संसारमें सबसे बढ़कर विभूतिका धारक चक्रवर्ती होता है और सबोंसे अधिक सुखी देव गिने जाते हैं परंतु आयुके अंतमें उन्हें भी मृत्युके अन्दर प्रवेश करना पड़ता है इसलिये धर्मात्माओंको अवश्य धर्मका आचरण करना चाहिये ॥ ८८ ॥ राजन्! इससे आगेके दो भवोंमें तुम्हारे बड़े २ ऋद्धिधारी देव भी पूजा भक्ति करेंगे एवं तुम निर्मल ज्ञानरूपी लोचनके धारक तेरवें तीर्थंकर विमलनाथ होनेवाले हो ॥ ८९ ॥ केवली सर्वगुप्तके इसप्रकार आनंद प्रदान करनेवाले वचन सुन राजा पद्मसेनको बड़ा आनंद हुआ एवं तीर्थंकर प्रकृतिसे जायमान सुखका उसीसमय अनुभव होने लगा । उनके हृदयमें उससमय वैराग्य भावनाका उदय हो गया वह अपने समस्त बांधवोंको साक्षात् बंधनके समान समझने लगे । स्त्रियोंको महादुःख देनेवाली नरककी गलियां समझने लगे एवं अपने आत्मकल्याणका विचार कर वह समस्त विभूतिसे एकदम विरक्त हो गये ॥ ९०—९१ ॥ राजा पद्मसेनके पुत्रका नाम पद्मनाभ था । समस्त सामंतोंके समक्षमें शीघ्र ही उनने अपने पुत्र पद्मनाभको सारा राज्य संभला दिया और दिगंबरी दीक्षा धारणकर ली ॥९२॥ आचारांग आदि ग्यारह अंगोंका उनने अच्छी तरह अध्ययन किया । भलेप्रकार उसके अर्थका विचार किया एवं अनेक प्रकार तपोंका आचरण करने वाला वह निर्द्वन्द्व होकर पृथ्वीपर विहार करने लगा ॥ ९३ ॥ वे कमलोंके समान फूले हुए नेत्रोंके धारक मुनिराज पद्मसेन दर्शन विशुद्धि

य दर्शनं तन्निगद्यते । जीवोऽयं निश्चलो मूर्तिश्चिद्रूपं वेत्ति दर्शनं ॥ ६५ ॥ तस्यैव निरतीचारो विशुद्धिः सा मता जिनैः । मुनीनां देव- शास्त्राणां विनयश्च विधीयते ॥ ६६ ॥ अष्टादशसहस्रेषु शीलभेदेषु प्रत्यहं । अतीचारं त्यजेद्ध्यानी चेतोभाव प्रकल्पितं ॥ ६७ ॥ आत्मनि नित्यताज्ञानं श्रुतस्यैवावगाहनं । ज्ञानोपयोग इत्युक्तः पूर्वैश्च पूर्वसूरिभिः ॥ ६८ ॥ रामाकांचन पुत्रेषु यौवने विषयेषु च । अनित्यत्व

आदि सोलह भावनाओंको सिंहके समान निर्भीक हो अच्छी तरह मानने लगे ।' मुनिराज पद्म- सेनने जिन सोलह भावनाओंको भाया था उनका संक्षेपमें स्वरूप इसप्रकार है :—

१ भगवान जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट मोक्ष मार्गमें जो निर्मल रूचिका होना है उसका नाम दर्शन है निश्चल मूर्ति यह जीव उस चैतन्य स्वरूप दर्शनको जानने वाला है उसी दर्शनका जो अतिचार रहित विशुद्धि है उसे भगवान जिनेन्द्रने दर्शन विशुद्धि भावना मानी है । देव शास्त्र गुरु- ओंमें विनय भावका रखना विनय सम्पन्नता नामकी भावना है । २ । शीलके अठारह हजार भेद माने हैं उन शीलोंका जो चित्तकी भावनासे कल्पना किये अतीचारोंसे रहित होकर पालन करना है वह शील व्रतेष्वनतिचार नामकी भावना है । ३ । आत्मा नित्य है इस प्रकारका सदा विशुद्ध ज्ञान रखना श्रुतका अवगाहन करना वह पूर्व आचार्यों ने अभी एक ज्ञानोपयोग नामकी भावना बतलाई है । ४ । स्त्री सुवर्ण पुत्र यौवन विषय और स्वामीपनाको सदा अनित्य समझना उनसे उदास रहना भगवान जिनेन्द्रने संवेग नामकी भावना कही है । ५ । जो धर्मात्मा पुरुष भावसे शक्ति पूर्वक दान देनेवाले हैं उनके शक्तितस्त्याग नामकी भावना होती है तथा वह दिया हुआ दान निरर्थक नहीं जाता किंतु उससे उत्तम बुद्धिकी प्राप्ती होती है उस उत्तम बुद्धिसे पुण्य और पश्चात् भी स्वसुख मिलता है । ६ । अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्योंको सदा उत्तम तप आचरण करना चाहिये जो महानुभाव ऐसा करते हैं उनके शक्तितस्तप नामकी भावना होती है किन्तु जो ऐसा नहीं करते वे आर्त ध्यानसे व्यंतर जातिके नीच देव वा म्लेच्छ होते हैं और अनेक प्रकारके क्लेश भोगते हैं

निरवत्वं सवेगो गद्यते जिनैः ॥ ९९ ॥ यथाशक्ति ददत्येव दानं धर्मविदो नराः । भावतस्तेन सद्बुद्धिस्तया पुण्यं ततः शिवं ॥ १०० ॥ स्वसामर्थ्यानुसारेण विधेयं सुनरैस्तपः । अन्यथा व्यंतरा मर्त्या भवंति चार्तध्यानतः ॥ १०१ ॥ येन केनाप्युपायेन मनः याति लयं मतां । तदेव तप आचार्यैराख्यातं मुक्तिसाधनं ॥ १०२ ॥ अकृत्वा मनसो रोधं कुर्वंत्युग्रं महत्तपः । देवावासाधिपत्यादि सिद्धिस्तेषां हि नो शिवः ॥ १०३ ॥ साधूनां सुख प्रतो यः स समाधिर्निरूप्यते । धर्मध्यानार्थसञ्चिंता स समाधिरथोच्यते ॥ १०४ ॥ वैयावृत्यं

जिस उपायसे मनुष्योंका मन पदार्थोंसे हटकर आत्म स्वरूपमें लीन हो आचार्योंने उसी तपको उत्तम तप कहा है और वही तप मोक्षके प्राप्त करानेवाला है किन्तु जो महानुभाव मनका तो निरोध करते नहीं और तप उग्र और महान तपते ही हैं उन्हें उस तपकी फल स्वरूप राज्य आदि विभूतियां तो प्राप्त हो जातीं हैं परन्तु वे मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते। ७। मुनियोंका सुख प्रद अर्थात् किसी कारणसे विघ्नके उपस्थित हो जानेपर उस विघ्नको नाशकर उनके तपको रक्षा करना साधु समाधि है। अथवा धर्म ध्यानकी प्राप्तिके लिये उत्तम चिन्ता आत्म स्वरूपका चिंतवन करना, साधु समाधि है। ८। मुनि आदि गुणियोंके किसी कारण दुःख उपस्थित हो जानेपर उत्तमउपायसे उसे दूर करना उनकी सेवा चाकरी करना वैयावृत्य कहा जाता है वह वैयावृत्य आचार्य उपाध्याय आदि दशप्रकारके साधुओंके भेदसे दश प्रकारका है। इस वैयावृत्यरूप भावनाके भानेसे जिसप्रकार स्वामीके न रहनेपर सैन्य तितर बितर कर नष्ट हो जाती है उसीप्रकार अधर्म भी नष्ट हो जाता है। ९। छियालिस गुण युक्त और ज्ञानसे सर्वत्र विद्यमान अर्थात् ज्ञानसे लोक और अलोकको जाननेवाले भगवान अर्हंतकी जो स्तोत्र आदिसे भक्ति करना हैवह शास्त्रमें अर्ह-

---

१ तत्वार्थराजवार्तिकमें जिनोपदिष्टे निर्ग्रन्थे मोक्षवर्त्मनि रुचिः, निःशंकितत्वाद्यष्टांगा दर्शनविशुद्धिः अर्थात् अर्हन्त भगवान जिनेन्द्र द्वारा कहे गये निर्ग्रंथ स्वरूप मोक्षमार्गमें जो रुचि प्रीतिका होना है उसका नाम दर्शनविशुद्धि है और उसके निःशंकितांग निःकांक्षितांग आदि अष्टअंग हैं। उस दर्शनकी जो विशुद्धि है। वह दर्शन विशुद्धि है यही अर्थ माना है। ग्रन्थकारने यहांपर दर्शनसे सत्तालोचन रूप दर्शन ग्रहण किया है वह ठीक नहीं जान पड़ता। पृ० सं० २६२

बुधैः प्रोक्तं दशधा धर्मसाधनं । वैयावृत्ये कृतेऽधर्मो भ्रश्यते नाथसैन्यवत् ॥ १०५ ॥ अर्हतो गुणमुक्तस्य ज्ञानसर्वगतस्य च । भक्तिः स्तोत्रादिभिर्या तु सार्हद्भक्तिर्मता श्रुते ॥ १०६ ॥ षट्त्रिंशद्गुणमुख्यस्य ध्यानिनश्च तपोनिधेः । भावतो भक्तिराख्याता सूरिभक्तिर्जिनागमे ॥ १०७ ॥ शास्त्राणां बहुसंख्यानां ज्ञातुः पूर्वांग धारिणः । भक्तिश्च नैगमैं प्रोक्ता भूरिसारंग भक्तिका ॥ १०८ ॥ राद्धांतस्य च यद्वाक्यं सत्यं मत्वार्चयेत्सुधीः । अकाले तन्न पठ्येत ह्यभ्रांतं प्रवचो मतं ॥ १०९ ॥ षड़ावश्यकस्याचारविधिर्नै वोपलंघयेत् । आवश्यकं हि तत्प्रोक्तं कालनयनियोजितं ॥ ११० ॥ जैनधर्मस्य माहात्म्यं प्रकाशयति कोटिधा । मार्गप्रभावना सैव प्रोक्ता चिद्रूपचिंतिभिः ॥ १११ धर्मिणां व्रतिनां नूनं शीलयुक्त तपोभृतां । दानिनां मृदुचिंतानां संशा वात्सल्य मुच्यते ॥ ११२॥ तपस्वी पद्मसेनाख्य पताः सद्भावनाः

भक्ति कही गई है ॥ १० ॥ छियालीस गुणोंके धारक तपके भंडार और ध्यान करनेवाले आचार्यकी जो भावपूर्वक भक्ति करना है वह आगममें आचार्य भक्ति मानी गई है ॥ ११ ॥ बहुत शास्त्रोंके जानकार, ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके धारक महात्माकी जो भक्ति करना है वह बहुश्रुत भक्ति आगममें कही गई है ॥ १२ ॥ सिद्धांत वाक्योंको सर्वथा सत्यमान कर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करना और आगमके पढ़नेका जो समय बताया गया है उसी समय उसे पढ़ना असमयमें न पढ़ना एवं किसी प्रकारका उसमें भूम न रखना प्रवचन भक्ति है ॥ १३ ॥ सामायिक चतुर्विंशतिस्तव बंदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह प्रकारके आवश्यक माने हैं इन छह प्रकारके आचरणोंका उल्लंघन न करना एवं तीनों काल उनका यथायोग्य आचरण करना आवश्यकापरिहाणि नामकी भावना है । १४ । करोडों उपायोंसे जैनधर्मके माहात्म्यका जो चिंतवन करना है वह चैतन्य स्वरूपकी चिंता करनेवाले आचार्योंने मार्गप्रभावना नामकी भावना मानी है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य धर्मात्मा हैं । व्रती हैं । शील और तपके भण्डार हैं । दानी हैं और कोमल चित्तके धारक साधर्मी हैं उनकी प्रशंसा करना प्रवचन वत्सलत्व नामकी भावना है ॥ १६ ॥ ९५—११२ ॥ वे तपके भण्डार मुनिराज पद्मसेन समस्त प्रकारकी परिग्रहसे रहित हो दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंको

पराः । भावयामास चित्ते स्वे विधिना ग्रंथ वर्जितः ॥ ११३ ॥ ततो ववंध तीर्थेशगोत्रं संसारतारकं । मास द्वित्रिचतुःसंख्यप्रोषधक्षीण-सद्वपुः ॥ ११४ ॥ सरित्तटे स हैमंते भ्रश्यद्द्रुमकदंबके । देहदुःखाकरीभूते कायोत्सर्गं चकार वै ॥ ११५ ॥ ग्रीष्मे शैलतटे भोगी सूर्यस्याभिमुखं स्थितः । मध्याहतापसंदग्ध कृष्णकायः परं जपन् ॥ ११६ ॥ प्रावृषि चपलागर्जिच्छाया भूरुहस्तले । वल्लीपिहितगात्रः सन् विदधे सत्तपश्चिरं ॥ ११७ ॥ रागद्वेषाच्च्युतो मौनी निद्रालस्यविवर्जितः । चिद्रूपध्यान संसक्तो मेरुर्वा स्थैर्यमाश्रितः ॥ ११८ ॥ तस्य सौम्यं समालोक्य समंतान्मृगराजयः । सेवंतेस्म महाव्याघ्र दंष्ट्रि पक्षि मतंगमाः ॥ ११९ ॥ कर्णयोर्नीडकारम्भः कृतो हारीत राशिभिः । जटानां

अपने चित्तमें सदा भाते रहते थे ॥ ११३ ॥ सोलह भवनाओंके भानेसे उन्होंने संसारसे पार करने वाला तीर्थंकर गोत्रका बंध कर लिया । कभी एक मास तो कभी दो तीन चार मास पर्यंत उपवास धारण करनेके कारण उनका शरीर कृश होता गया ॥ ११४ ॥ जिसमें तीव्र हिमके कारण वृक्षोंके समूहके समूह खाख हो जाते हैं और जो शरीरको तीव्रसे तीव्र वेदना करने वाला है ऐसे शीत कालमें वे पूज्य मुनिराज नदीके तटपर बैठकर कायोत्सर्ग मुद्रा धारण करते थे ॥ ११५ ॥ ग्रीष्मकालमें वे योगिराज परमात्माके स्वरूपको ध्याते हुए सूर्यके सन्मुख मुखकर विराजमान होते थे एवं मध्याह्नकालके तापसे दग्ध होनेके कारण उनका सारा शरीर काला पड़जाता था ॥ ११६ ॥ विजलीकी तड़कनसे जो महाभयंकर जान पड़ता है ऐसे वर्षाकालमें वे मुनिराज वृक्षके तलमें बैठ कर उत्तम तपका आचरण करते थे एवं लताओंके समूहसे सारा शरीर उनका ढक जाता था ॥ ११७ ॥ वे मुनिराज राग और द्वेष से सर्वथा परांगमुख थे । मौनी थे निद्रा और आलस्य उनके पासतक नहीं फटकता था । सदा चैतन्य स्वरूपके ध्यानमें तत्पर रहते थे एवं जिसप्रकार मेरु पर्वत स्थिर है उसीप्रकार वे भी ध्यानकालमें स्थिर रहते थे ॥ ११८ ॥ मुनिराज पद्मसेनकी अलौकिक समता देखकर मृगगण उनके आस पास किलोल करते थे एवं सिंह बाघ पक्षी और हाथी सदा उनके पास निर्वैर रूपसे रहते थे ॥११९॥ मुनिराज पद्मसेनके कानोंको छोटे छोटे पक्षियोंने अपना

पंचकेनैव शरीरं नैव लक्ष्यते ॥ १२० ॥ धन्यास्ते स्त्रीकुटुंबादि त्यक्त्वा संगपराङ्मुखाः। रागद्वेष विनिःक्रांता वैराग्येण वनं गताः ॥ १२१ ॥ दुस्तरं सुतपस्तप्त्वा शेषपुण्येन धीधनः। उच्चैर्गोत्रशुभायुःसद्वेद्येना सत्मुमोच सः ॥ १२२ ॥ सहस्रारे शुभे स्वर्गे गतो भावव-शान्मुनिः। सहस्रारेंद्रनामा च विभूवामर सेवितः ॥ १२३ ॥ अंतर्मुहूर्तमात्रेण संपुटाख्यशिलातलात्। उत्थितो यौवनाढ्यः स रूपद्योति तदिङ्मुखः ॥ १२४ ॥ उत्थितं तंसमालोक्य कलानिधिमुखं परं। रूपसीमानमित्याहु स्थूलस्तन सुरांगनाः ॥ १२५ ॥ अयि नाथत्वया

घोंसला बना लिया था एवं जटा उनकी कभी कभी ऐसी बढ़ जाती थी कि उनका सारा शरीर ढक जाता था—दीख नहीं पड़ता था ॥ १२० ॥ ग्रन्थकार विरक्त महात्माओंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि—वे महानुभाव संसारके अंदर धन्य और भाग्यशाली हैं जो कि स्त्री और कुटुम्ब आदिसे मोह तोड़ कर परिग्रहसे विरक्त हो गये हैं। राग और द्वेष जिनके पास तक नहीं फटकने पाता एवं वैराग्य भावनाका सदा चिंतवन करते हुए जो सदा वनके अंदर निवास करने वाले हैं। ॥ १२१ ॥ दिव्यज्ञानी मुनिराज पद्मसेनने घोर तप तपा एवं पुण्यकी कृपासे उन्होंने उच्चगोत्र शुभ आयु और साता वेदनीय कर्मके साथ साथ उन्होंने शरीरका परित्याग कर दिया ॥ १२२ ॥ वे मुनिराज विशुद्ध भावोंकी कृपासे सहस्रार नामक बारहवे स्वर्गमें सहस्रारेंद्र हुए एवं अनेक देवगण उनकी सेवा करने लगे ॥ १२३ ॥ वह मुनिराज पद्मसेनका जीव सहस्रारेंद्र अन्तर्मुहूर्तमात्रमें ही संपुट नामकी शिलासे उठकर पूर्ण युवा हो गया एवं अपने देदीप्यमान रूपसे समस्त दिशाओंको जगमगाने लगा ॥ १२४ ॥ चंद्रमाके समान मनोहर मुखसे शोभायमान और अत्यंत रूपवान सहस्रारेंद्र देव ज्यों ही संपुट शिलासे उठकर खड़ा हुआ कि पीन स्तनोंकी धारक देवांगना उनके पास आईं और इसप्रकार विनयपूर्वक निवेदन करने लगीं—

हे स्वामिन्! आपने ऐसा कौनसा बहुतसा दिव्य पुण्य उपार्जन किया जिससे आपका जन्म यहां आकर हुआ क्योंकि यह नियम है कि सारी सिद्धियां पुण्यबलसे प्राप्त होतीं हैं विना पुण्यके एक भी विभूति प्राप्त नहीं हो सकती ॥ १२५। १२६ ॥ क्या आपने पहिले श्रीमान जिनेंद्र भगवान

रम्यं किं कृतं सुकृतं बहु । यत्र त्वं समायातः पुण्यलब्धा हि सिद्धयः ॥ १२६ ॥ श्रीमत्पुरुजिनेंद्रस्यार्चितं चरणपंकजं । किंवा चिरं तपस्तप्तं षट्कायावन पूर्वकं ॥ १२७ ॥ दानं चतुर्विधं दत्तं पात्रेभ्यः परमादरात । त्रयोदशविधं चारुचारित्रं पालितं नु ते ॥ १२८ ॥ स्तुत्वेति मधुरालापैर्नम्रांग्यः संस्थिता यदा । तदा वितर्कयामास देवेंद्रो मानसे निजे ॥ १२९ ॥ मुक्ताकदंबकलक्षमाला मणिनियंत्रिताः । विमानाः सूक्ष्मसंदर्भसंयुक्ताः किममी ननु ॥ १३० ॥ नानर्द्धि संभृत स्थानमेतत्कौतस्कुतं ध्रुवं । ब्रुवंति मधुरालापाः का एता घनश्रीरुभा. ॥ १३१ ॥ कोऽहं कस्मात्समायातः संशये चेति तस्य वै । तृतीयावगमः साक्षात्प्रादुरासीद्गतभ्रमः ॥ १३२ ॥ संबंधं स्वस्य के चरण कमलोंकी पूजाकी थी वा चिरकाल तक घोर तप तपा था अथवा छह कायके जीवोंकी प्रतिपालना की थी वा उत्तम मध्यम जघन्य तीनों प्रकारके पात्रोंको अत्यंत आदरसे आहार औषधि शास्त्र अभय ऐसा चार प्रकारका दान दिया था अथवा तेरह प्रकारके परमोत्तम चारित्रको धारण किया था ? बस इसप्रकार मधुर वचनोंमें स्तुति कर देवांगना नम्रीभूत हो जब यथास्थान बैठगईं उससमय वह सहस्रारेंद्र देव भी सहस्रार स्वर्गकी दिव्य विभूति देख इसप्रकार अपने मनमें विचार करने लगा—

मोतियोंकी लाखों मालायें और भांति भांतिकी मणियोंसे रचे गये एवं जिनकी रचना अत्यंत कारीगरीके लिये हुए हैं ऐसे ये विमान मुझे क्या दीख पड़ते हैं। नाना प्रकारकी अनेक ऋद्धियोंसे व्याप्त यह मनोज्ञ स्थान क्या है ? एवं विजलीके समान चमचमाती हुई प्रभाकी धारक एवं अत्यंत मधुर बोलने वालीं ये देवांगनाएं कौन हैं। मैं कौन था और यहां कैसे आगया ? बस इस प्रकारका संशय हो ही रहा था कि उसीसमय उसे तीसरा ज्ञान—अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया जिससे उसका सारा भ्रम एक ओर किनारा कर गया ॥ १२७ । १३२ ॥ अवधिज्ञानकी ओर उपयोग लगा कर सहस्रारेंद्र देवने अपना सारा पूर्वभवका संबंध जान लिया एवं उसका हृदय आनंदसे पुलकित हो गया। उसे उस प्रकार आनन्दायमान देखकर देवांगनाओंके हर्षका भी पारावार नहीं रहा। उनमें कोई देवांगना उसके मस्तक पर महामनोहर मुकुट लगाने लगी। कोई कोई

ज्ञानेन ज्ञात्वानंदमयोऽभवत्। तथाभूतं विलोक्याशु त्वलं चक्रुः सुरांगनाः॥१३३॥ काचिन्मुकुटसंदर्भं चकारीतिस्म सादरात् । क्षौमवासांसि काचिद्वा रोपयामास तत्तनौ ॥ १३४ ॥ आरुरोपांगदं काचित्काचिन्मुक्तागुणं गले । काचिद्विलेपनं चक्रे चंदनद्रुम संभवं ॥१३५॥ भाले विशेषकं काचित्पद्मराग सुदर्शिनां । रत्नलोहितमध्यांकां चकार मेखला कटौ ॥ १३६ ॥ काचित्सुरावला:तस्य दर्पणं चित्ततर्पणं । दर्शयामास कामाढ्या सहासा रूपरजिता ॥ १३७ ॥ काचित्तं पूरमल्लाभा मंडलाग्रजसन्निभं । चामरांदोलनैरुच्चै सुखयामास सादरं ॥ १३८ ॥ एवमादिक श्रृंगारैर्भूषितो देवराड् बभौ । दृष्ट्वा नाकसमुद्भूता मिंदिरामित्यचिंतयत् ॥ १३९ ॥ इदं धर्मफलं नूनं स्वर्गराज्य-

महा मनोहर सुगंधित वस्त्र उसे पहिनाने लगीं । किसीने उसे अङ्गद (बाजू बंध) पहिनाया । कोई गलेमें हार पहिनाने लगी । किसी किसीने मलयागिरि चन्दनसे उस देवके शरीरका उवटन किया कोई कोई ललाटपर तिलक लगाने लगी । किसी किसीने पद्मराग मणिकी बनी हुई एवं मध्य-भागमें रत्नोंकी लालिमा से अङ्कित करधनी उस देवके कटिभागमें पहिनाई । कोई कोई कामसे आकुलित और हंसने वाली देवांगना उस देवके दिव्य रूपपर मुग्ध हो चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाला दर्पण दिखाने लगी तथा कोई कोई देवांगना जिसप्रकार मंगलदासके बड़े भाई कृष्ण-दासको पूरमल्ला नामकी स्त्री चमर ढार कर सुखी बनाती थी उसीप्रकार उस देवको भी चमर ढार ढार कर बड़े आदरसे सुखी बनाने लगी ॥ १३३—१३८ ॥ इसप्रकार अनेक श्रृंगार जनक वस्तुओंसे सजा गया वह देवराज अत्यंत शोभायमान जान पड़ने लगा तथा सहस्रार स्वर्गमें होने-वाली दिव्य लक्ष्मीको देखकर वह देव इसप्रकार विचारने लगा—

अनेक देवोंसे सेवित यह स्वर्गका राज्य धर्मका फल है । यह दिव्य राज्य मुझे उत्तम पुण्यकी कृपासे मिला है क्योंकि धर्मसे संसारमें सब कुछ प्राप्त हो सकता है ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो धर्मकी कृपासे न मिलती हो । बस इस प्रकार अपने मनमें विचार कर वह सहस्रार स्वर्गका स्वामी देव अनेक देवीं और देवोंसे वेष्टित हो तीर्थ यात्राके लिये मेरु पर्वतपर गया नन्दीश्वर आदि द्वीपों में भी जिन चैत्यालयोंकी बंदनाके लिये भ्रमण करने लगा इस प्रकार असंख्याते द्वीप और समुद्रों

सुरार्चितं। प्राप्तं मया सुपुण्येन धर्मात्किं न भवेदिति ॥ १४० ॥ वितर्क्य मानसे स्वीये देवीदेवसमन्वितः। मेरौ जगाम यात्रार्थं तथा नंदीश्वरादिषु ॥ १४१ ॥ असंख्यद्वीप वाराशीन् गत्वा दृष्ट्वा समागतः। रेमे सुरांगनाभिश्च क्रीडा शैलेषु प्रत्यहं ॥ १४२ ॥ दीर्घिका स्वच्छतोयेन पंकजावलिनालिना। चुंबितेन सुखं स्नात्वा पूजयामास श्रीजिनान् ॥ १४३ ॥ शब्दसंभोग संजीनो देवी निकरमध्यगः। हाहा हूहू कृतं नाट्यं पश्यतिस्म निरंकुशः ॥ १४४ ॥ अष्टादशसमुद्रायुरेक चापतनूच्छ्रितिः। वर्तते देवनाथस्य वज्रांकितकरस्य च ॥ १४५ ॥ द्रव्यभावप्रभेदेन शुक्लेश्या द्वयेन च। जघन्येन युतः पद्मलेश्योत्कृष्टनया पुनः ॥ १४६ ॥ तृप्तो रूपप्रवीचाराच्चातुर्यं नरकावधिः

में जाकर और उन्हें देखकर वह अपने स्थान लौट आया एवं प्रतिदिन अनेक देवांगनाओंके साथ साथ क्रीड़ा पर्वतोंमें अनेक प्रकारकी क्रीड़ायें करने लगा। वह पुण्यात्मा देवराज कमलोंकी बेलोंसे व्याप्त एवं जिसका आस्वाद सुगन्धिसे मतवाले भौंरे सदा लेते रहते थे ऐसे वावड़ियोंके स्वच्छ जलमें वह स्नान कर, भगवान जिनेन्द्रोंकी पूजा करने लगा ॥१३९—१४३॥ सहस्रार नामक बारहवें स्वर्गमें देवांगनाओंके भूषणोंके शब्द सुनने मात्रसे ही देवोंकी मैथुन अभिलाषा तृप्त हो जाती है इसलिये वह सहस्रारेंद्र सदा शब्द जनित भोगोंमें लीन रहता था। अनेक देवांगनाओंके मध्यमें बैठकर आनन्द किलोल करता था एवं हा हा हूं हूं आदि शब्दोंसे जायमान नृत्यको सदा निर्द्वंद्व हो देखता रहता था ॥ १४४ ॥ उस पुण्यात्मा देवेंद्रकी अठारह सागर प्रमाण आयु थी। एक धनुष प्रमाण शरीरकी ऊंचाई थी और उसके हाथ वज्रसे अंकित थे ॥ १४५ ॥ सहस्रार स्वर्गमें पद्म और शुक्लके भेदसे दो लेश्यायें मानी हैं उनमें शुक्ल लेश्या जघन्य रूपसे और पद्म लेश्या उत्कृष्ट रूपसे मानी है। वह देवेन्द्र द्रव्य और भाव स्वरूप जघन्य शुक्ल लेश्या और उत्कृष्ट पद्म लेश्या इस प्रकार दो लेश्याओंसे मंडित था ॥१४६॥ प्रवीचारका अर्थ मैथुनाभिलाष है। वह देवेंद्र शब्द प्रवीचारसे तृप्त था। अपने अवधि ज्ञानसे चौथे नरक तककी बातें जान सकता था। अवधि ज्ञानका विषयभूत जितना क्षेत्र बतलाया गया है वहां पर्यंत विक्रिया करनेकी वह सामर्थ्य रखता था और अणिमा महिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्योंसे शोभायमान था ॥ १४७ ॥

आक्षेत्र विक्रिया तेजा अणिमाद्यष्टको वशी ॥ १४७ ॥ अष्टादश सहस्राब्दैर्मनसाहारमाहरन् । गतेषु नवमासेषु निःश्वसंश्च सनायकः ॥ १४८ ॥ गीतैर्वादित्रनिर्घोषैर्यत्र नाट्यरसान्वितैः । रंभारूपावलोकेन युगांतः समयायते ॥ १४९ ॥ सप्त धातुविहीनांगः काममूर्तिः सुराधिपः । असंख्यातसमुद्रेषु द्वीपेषु क्रीड्यन् स्थितः ॥ १५० ॥ धर्मात्स्वर्गीशलक्ष्मीमनुभवति सुरैः सेव्यमानां नितांतं । गंगाकल्लोलमाला धवलकरिवरैर्भासमानां सुरेन्द्रः । क्रीडाशैलैर्विमानैर्मरकतमणिभिर्गर्भितैरम्यरूपां । धर्मात्किं किं दुराप्यं भवति हि भुवने भूरिधाम्ना नराणां ॥ १५१ ॥ रम्या मोक्षसुता सुराज्यविभवं कीर्तिः कला कौशलं गांभीर्यं वनिता त्रिलोचनमुखं रूपं च देवेंद्रता । धीधान्यं

अठारह हजार वर्षोंके बाद वह मनसे आहार ग्रहण करता था और नौ महीनोंके बाद उश्वास लेता था ॥ १४८ ॥ सदा होने वाले गानोंसे वाजोंके शब्दोंसे नृत्यकलाके रसोंके अनुभवोंसे और देवांगनाओंके महा मनोहर रूपोंके देखनेसे सदा उसके लिये सतयुग विद्यमान रहता था ॥१४९॥ हड्डी मज्जा शुक्र आदि सात धातुओंसे रहित उसका शरीर था । कामदेवके समान वह सुंदर था । समस्त देवोंका स्वामी था एवं असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें सदा क्रीड़ा करने वाला था॥१५०॥

वह सहस्रार स्वर्गका स्वामी देवेंद्र जिसकी बड़े बड़े देव सेवा करने वाले हैं, जो गङ्गा नदीकी तरंगोंके समान सफेद हाथियोंसे शोभायमान हैं बड़े बड़े क्रीड़ा पर्वत, दिव्य विमान और मरकत मणियां जिसकी दिव्य शोभा बढ़ा रहे हैं ऐसी इन्द्र सम्बंधी सम्पदा सानंद भोग करने लगा। ठीक ही है जो मनुष्य भाग्यवान हैं उनके लिये ऐसी कोई भी चीजें नहीं जो धर्मसे प्राप्त न हो जाती हों ॥ १५१ ॥ धर्म संसारमें ऐसा अद्वितीय चिन्तामणि रत्न है कि उससे महा मनोज्ञ विभूतियाँ मिलतीं हैं सुन्दर राज्य, ऐश्वर्य, कीर्त्ति, कला, कौशल, गम्भीरता स्त्रियां नेत्रोंको आनन्द प्रदान करने वाला रूप, देवोंका स्वामीपना, उत्तम बुद्धि धान्य उत्कृष्ट और विवेक परिपूर्ण वचन, चक्रवर्तीपना और तीर्थंकरपना सब कुछ प्राप्त होते हैं। विशेष क्या संसारमें ऐसा कोइ भी गुणोंका समूह नहीं जो कि धर्मकी कृपासे प्राप्त न हो ॥ १५२ ॥

परमं विवेक वचनं चक्रेश्वरत्वं वृषात् । श्रोतोर्थंकरता क्रमाद् गुणगणो न स्यादहो किं नृणां ॥ १५२ ॥ ॥

इति श्रीविमलनाथपुराणे भट्टारकश्रीरत्नभूषणाम्नायाळंकार ब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममंगळदाससाहाय्य
सापेक्षे पद्मसेनचरसहस्रारेंद्रविभूतिवर्णनोनाम द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥ २ ॥

इस प्रकार अपने छोटे भाई ब्रह्म मंगलदासकी सहायता पूर्वक भट्टारक श्रीरत्नभूषणकी आम्नायके अलंकार स्वरूप ब्रह्म कृष्णदास द्वारा विरचित श्रीविमलनाथ पुराणमें पद्मसेन राजाके जीव सहस्रारेंद्रका विभूति वर्णन करनेवाला दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥



तीसरा सर्ग ।

वायेऽहं चर्चितं स्वस्थैः काश्यपं गैरिकत्विषं । जटा स्वर्ण लताभाभिस्तिरस्कृतरविप्रभं ॥ १ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे विख्यातेऽ नेकवस्तुभिः । समास्ति भारतं वर्षं मेरोर्दक्षिणभागभाक् ॥ २ ॥ तत्रैव कंपिला नाम्ना विद्यते परमा पुरी । दोषैर्मुक्ता गुणैर्युक्ता धनाढ्या स्वर्ण

जो भगवान देवोंके द्वारा भलेप्रकार पूजित हैं । काश्यप गोत्रके तिलक हैं । गरुआ रंगकी प्रभाके धारक हैं एवं जटास्वरूप सुवर्ण की लताओंकी प्रभासे जिन्होंने सूर्यकी प्रभाको भी नीचा कर दिया है उन विमलनाथ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ इसी संसारमें एक जंबूद्वीप है जो कि अनेक प्रसिद्ध २ चीजोंसे विख्यात है । जम्बूद्वीपके ठीक मध्यभागमें मेरु पर्वत है और उसकी दक्षिणदिशामें प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है ॥ २ ॥ भरतक्षेत्रके अन्दर एक कंपिला नामकी नगरी है जो कि अपनी शोभासे महा मनोहर है । समस्त प्रकारके दोषोंसे रहित है । नाना प्रकारके गुणोंसे अलंकृत है । धनसे व्याप्त और सुवर्णमयी महलोंकी शोभासे जाज्वल्यमान है ॥ ३ ॥ किसी समय उसका रक्षण करने वाला राजा कृतवर्म्मा था जो कि पुरुदेव वंशसे उत्पन्न था । राजा

सगृहा ॥ ३ ॥ पुरुदेवान्वये राजा जातो राजमुखो बली । कृतवर्माभिधस्तत्र प्रतापाक्रांतभूतलः ॥ ४ ॥ सर्वसामंत संसेव्यपादो रत्नैरिवार्णवः । क्रूरसौम्यैर्गुणैर्भाति प्रभामार रविः प्रभः ॥ ५ ॥ सुदानार्णोधिनिर्यातां भुवं संश्रित्य रोहति । ब्रह्मलोकं समुल्लंध्य स्वर्धुनीव शिवं नभः । ६ । निर्जरैरप्सरोभिश्च लोकिता सादरं सदा । यत्कीर्तिः कुंदशीतांशु विशुभ्रादभ्रजिताः ॥७॥ (युग्मं) चंद्रस्याचंद्रभा चांद्री

समस्त राजाओंने प्रधान था। बलवान था एवं अपने प्रचंड प्रतापसे समस्त पृथ्वीतलको वश करने वाला था ॥ ४ ॥ जिसप्रकार नाना प्रकारके रत्नोंसे समुद्र सेवित—व्याप्त रहता है उसीप्रकार वह समस्त सामंतोंसे सेवित था। समयानुसार क्रूरता और सौम्य गुणोंसे शोभायमान था एवं सूर्यके समान चमचमाती हुई प्रभाका धारक था ॥ ५ ॥ जिसप्रकार ब्रह्मलोकको उल्लंघनकर गंगानदीका प्रवाह बहता है एवं मोक्षको अतिक्रमण कर आकाश—अलोकाकाशकी विद्यमानता है उसीप्रकार उत्तम दानरूपी समुद्रसे निकली हुई पृथ्वीको आश्चर्यकर वह उदयको प्राप्त थी अर्थात् इच्छानुसार दान देनेके कारण वह संसारमें सबोंमें चढ़बढ़ कर था—राजा कृतवर्मासे बढ़कर उससमय कोई भी दानी नहीं था। वह राजा इतना सुंदर था कि देव और देवांगनायें उसे बड़ी आदरकी दृष्टि से देखते थे। उसका यश कुन्द पुष्प और चंद्रमाके समान उज्वल था और अत्यंत शोभायमान था ॥ ६—७ ॥

राजा कृतवर्माकी महाराणीका नाम जयश्यामा था जो कि चंद्रमाके समान मुखसे शोभायमान थी। चंद्रमाके समान कांतिकी धारक थी। साक्षात् चंद्रमाकी कला जान पड़ती थी। मिष्ट और मधुर बोलने वाली थी। राजहंसके समान मनोहर चाल चलने वाली थी। श्यमा थी एवं कानोंतक विशाल नेत्रोंकी धारक थी लोग जिस समय उसे देखते थे उस समय वे यही समझते थे कि यह साक्षात् कामदेवकी स्त्री रति है कि लक्ष्मी है कि पद्मावती देवी है वा चन्द्रमाकी स्त्री रोहिणी वा सूर्यकी स्त्री है ॥ ८ ॥ वह महाराणी जय श्यामा पीन स्थनोंसे शोभायमान थी उसका

कलेव कलभाषिणी । राजहंसगतिः श्यामास्वाकर्णायतलोचना ॥ ८ ॥ राजतेस्म महादेवी जयश्यामाऽभिधा रतिः । पद्मा पद्मवती रम्भा रोहिणी वा रविप्रिया ॥ ६ ॥ पूरमल्लेव रूपेण पीनवक्षोजराजिता । करग्राह्यकरी स्थूलनितंबपरिमंडला ॥ १० ॥ परस्परमतात्प्रेम बद्धचित्तौ सुखं भृशं । रतिक्रीड़ासमुद्भूतं भोजयामासतुस्तदा ॥ ११ ॥ एकदा श्रीदमाहूय शक्र इत्यगदीद्वचः । त्रयोदशमतीर्थेशः कांपिल्येऽवतरिष्यति ॥ १२ ॥ अतस्त्वया विधातव्या शोभा श्रीपत्तनस्य च । गृहांगणे महावृष्टी रत्नानां जिनभक्तितः ॥१३॥ जिनावतरणार्दर्वाक् षण्मासावधि श्रीधनेट् । वसुधारां पातयामास रंगराजिविराजित: ॥ १४ ॥ एकदा मृदुसत्तल्पे हंसतूलान्विते युते । पुष्पव्रातैः

कटिभाग अत्यन्त पतला मुष्टिग्राह्य था स्थूल नितंबोंसे युक्त थी एवं अत्यन्त रूपवती थी ॥ १० ॥ उन दिनों दंपतियोंमें वड़ा भारी आपसमें प्रेम था इसलिये वे रतिक्रीड़ासे जायमान सुखका वड़े आनन्दसे अनुभव करते थे ॥ ११ ॥

भगवान विमलनाथकी उत्पत्तिका समय निकट जान एक दिन इन्द्रने कुवेरको अपने पास बुलाया एवं यह कहा—तेरहवें तीर्थंकर भगवान विमलनाथ कपिला नगरीमें माता जयश्यामाके गर्भमें अवतरेंगे इसलिये तुम्हें कंपिला नगरीको हर एक प्रकारसे शोभायमान कर देना चाहिये एवं भगवान जिनेन्द्रमें प्रचण्ड भक्ति रखकर उनके महलके आगनमें रत्नोंकी वर्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥ बस इन्द्रकी आज्ञासे भगवान जिनेंद्रकी उत्पत्तिके छह मास पहिले ही कुवेरने नानाप्रकारके रत्नोंकी वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी ॥ १३ ॥

एक दिन नितंबरूपी तटोंसे शोभायमान, कठिन और पीन स्तनोंकी धारक वह माता जयश्यामा गर्भ ग्रहके अन्दर नानाप्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे व्याप्त एवं हंसोंकी पंखोंकी ऊनके समान अत्यंत कोमल शय्यापर सो रही थी कि अचानक ही उसे रात्रिके पिछले पहरमें सोलह स्वप्ने दीख पड़े जो कि भगवान जिनेन्द्र स्वरूप कल्याणके सूचन करनेवाले थे और महामनोहर थे, सवसे पहले स्वप्नमें उसने हाथी देखा जो कि पूर्ण चन्द्रमाके समान शुभ्र था। कुंभस्थलोंसे

१२६

पृथूरस्का सुता गर्भगृहे मुदा ॥१५॥ षोडशप्रमितान् स्वप्नान् ददर्शेति घनस्तनी। कल्याणसूचकान् सौम्यान् नितंबतटशोभिनी ॥ १६॥ सिंधुरं पूर्णचंद्राभं लसत्कुंभतटं वृतं। मदच्युतं महाशैलकैलाशमिवोन्नतं ॥ १७ ॥ वृषभं प्रांशुलस्कंधं ह्रस्वग्रीवं मृगदृशं। चपलं तारकाभं च स्वल्पोन्नतविषाणकं ॥ १८ ॥ कंठीरवं महाशुभ्रं बलिनं भीविवर्जितं। लसंत सुंदराकारमूर्ध्वशुंडं ततं ध्रुवं ॥ १६ ॥ पद्मासनस्थितां पद्मां पद्महस्तां हसन्मुखीं। मुक्ताकलापसद्ग्रीवां रूपलोचनसौख्यदां ॥ २० ॥ पुष्पदाम्नी सुविन्यासे कुंदमंदारगर्भितो। पारिजातकसंताननमेरुकुसुमान्विते ॥ २१ ॥ चंद्रं पूर्णकलं ध्वांतं क्षिपतं किरणाकुलं। विकलंकं मुखायंतं तापघ्नं लोचनप्रियं ॥ २२ ॥

शोभायमान था। चौकोर सुन्दर था। झरता हुआ मद उसकी अपूर्व शोभा प्रगट कर रहा था एवं महा पर्वत कैलाशके समान ऊंचा था ॥ १४—१६ ॥ दूसरे स्वप्नमें बैल देखा जो कि उन्नत स्कन्धोंका धारक था। छोटी ग्रीवासे शोभायमान था। हिरणके समान विशाल नेत्रोंका धारक था। चंचल था। तारागणोंकी प्रभाके समान शुभ्र था एवं उठते हुये छोटे छोटे सींगोंसे शोभायमान था तीसरे स्वप्नमें सिंह देखा जो कि अत्यन्त सफेद था बलिष्ठ निर्भय और महामनोहर था सुन्दर आकारका धारक था उसकी सटायें ऊपर थीं एवं वह विस्तृत रूपसे खड़ा हुआ और निश्चल था ॥ १७—१८ ॥ चौथे स्वप्नमें लक्ष्मी देखी जो कि पद्मासनरूपसे विद्यमान थी। उसके हाथमें कमल शोभायमान था। प्रसन्न मुखकी वह धारक थी उसका वक्षस्थल मोतियोंके हारसे जगमगाता था एवं अपने मनोज्ञ रूपसे वह नेत्रोंको आनन्द प्रदान करने वाली थी ॥ १६ ॥ पांचवें स्वप्नमें दो मालायें देखीं जो बड़ी मनोहरतासे गुथी हुई थी। उनके बीचभागमें कुन्द और मन्दार जातिके पुष्प गुथे हुए थे एवं पारिजात संतान और नमेरू जातिके कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे वह बनी हुई थी ॥ २० ॥ छठें स्वप्नमें चंद्रमा देखा जो कि समस्त कलाओंका धारक था अंधकारका नाश करने वाला था। किरणोंके समूहसे व्याप्त था कलंक रहित था मुखके समान सुन्दर था संतापका नाशकर शीतल प्रदान करने वाला था और नेत्रोंको अत्यंत प्यारा था ॥ २१ ॥ सातवें स्वप्नमें चमचमता हुआ सूर्य देखा जो कि अंधकारकी जड़से दूर करनेवाला

मार्तंडं तर्जितध्वांतं लोहिताभं प्रतापिनं । मार्गामार्गं दिशंतं वा सद्गुरुं ज्ञानलोचनं ॥ २३ ॥ रमल्लसन्मनोहारि तिमियुग्मं तथाद्दिच । पंकजाच्छादितं पूर्णं पानीयैर्घटयुग्मकं ॥ २४ ॥ तड़ागं जलगंभीरं फुल्लतामरसांचितं । लोलकल्लोलमालाभिर्गर्जंतं जलधिं परं ॥ २५ ॥ रत्नस्वर्णात्मकं चित्रं विष्टरं दैवतं पुनः । व्योमयानं क्वणंतं वै किंकिणीभिः समुद्रवत् ॥ २६ ॥ नागलोकं महादीप्तं भृतां नागकुमार-कैः । रत्नपुंजं ज्वलंतं च निधूमं ज्वलनं ततः ॥ २७ ॥ ददर्शैतान् महास्वप्नान् प्रांते रात्री मुखे गजं । विशंतं पर्वतोत्तुंगं यामे पाश्चात्यके

था । जलती हुई अग्निकी ज्वालाके समान ललाई का धारक था । एवं जिसप्रकार ज्ञानरूपी लोचन के धारक उत्तम गुरु यह उत्तम मार्ग है और यह कुमार्ग है इसप्रकारका उपदेश देनेवाले होते हैं उसीप्रकार वह सूर्य भी अच्छे और बुरे मार्गका बताने वाला था अर्थात् सूर्यके उदयकालमें ही यह ज्ञान होता है कि यह मार्ग जाने योग्य है और यह मार्ग नहीं जाने योग्य है । अंधकारमें अच्छे बुरे मार्गका ज्ञान नहीं होता । इसलिये अज्ञानतासे खड्डेमें भी गिर जाना पड़ता है ॥ २३ ॥ आठवें स्वप्नमें माताने मीनोंका युगल देखा जो कि जलमें किलोल करने वाला था सुंदर था और अपनी चाल ढालसे मनको हरण करता था नवमें स्वप्नमें सुवर्णमयी दो घड़े देखे जिनके मुख कमलोंसे ढके हुए थे और वे जलसे भरे हुए थे ॥२४॥ दशवें स्वप्नमें एक महामनोहर तालाब देखा जो कि जलसे लबालब भरा था एवं फूले हुये कमलोंसे व्याप्त था । ग्यारहवें स्वप्नमें एक विस्तीर्ण समुद्र देखा जो कि चंचल तरंगोंकी मालाओंसे गर्जता था । बारहवें स्वप्नमें एक महा मनोज्ञ सिंहासन देखा जो कि रत्न और सुवर्णोंसे रचा हुआ था और देवमयी था । तेरहवें स्वप्नमें विमान देखा जो कि छोटी छोटी घंटरियोंसे शब्दायमान था एवं शब्द करने और विस्ती-र्णतामें समुद्रकी उपमा धारण करता था ॥ २५—२६ ॥ चौदहवें स्वप्नमें नाग कुमारोंका भवन देखा जो कि अत्यंत देदीप्यमान था एवं नाग कुमार जातिके देवोंसे व्याप्त था । पंद्रहवें स्वप्नमें रत्नोंकी राशि देखी जो कि अत्यंत देदीप्यमान थी । एवं सोलहवें स्वप्नमें जलती हुई निर्धूम अग्नि देखी ॥ २७ ॥ रात्रिके शुभ पश्चिम भागमें जिससमय माता जय श्यामा सोलह स्वप्न

शुभे ॥ २८ ॥ जगरामास सद्ध्यानलीना ललितलक्षणा । उत्थिता तल्पतो नूनं स्नात्वा सामायिकं व्यधात् ॥ २९ ॥ प्रातर्वादित्रनिर्घोषै वंदिनां शुभसूचनैः । रंजिता गतवती भर्तुः समीपे प्रश्नहेतवे ॥ ३० ॥ शृंगारितलसद्देहा स्थूलपीनपयोधरा । नम्रांगी तप्तस्वर्णाभा पपातांघ्र्योः पतेर्ध्रुवं ॥ ३१ ॥ तां चकोरदृशं दृष्ट्वा जगादेति विशांपतिः । प्रेमाकृतो महादेवि ! यदत्र त्वं समागता ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वावामके भागे स्थापयामास सादरात् । स्वकरेण समादाय जयश्यामां च कोविदां ॥ ३३ ॥ सापि भर्तुः परं मानं लब्ध्वा सुग-

देख चुकी उस समय सबसे अंतमें अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ हाथी देखा जो कि सफेद रंगका था और पर्वतके समान उन्नत था ॥ २८ ॥ समीचीन ध्यानमें लीन एवं सुन्दर लक्षणोंकी धारण करने वाली वह माता जग गई । शीघ्र ही उसने शैय्या छोड़ दी एवं स्नानकर सामायिक करने बैठ गई । महाराज और महाराणीके जगानेके लिये प्रातःकालमें महा मनोहर वाजोंके शब्द होते हैं एवं वंदीगण विरुद वखानते हैं। महाराणीके जगते समय भी उत्तमोत्तम वाजोंके शब्द होने लगे एवं वंदीगण विरुद वखानने लगे इसलिये वह माता अत्यंत प्रसन्न थी । सामायिकके अंतमें वह माता उठी और अपने स्वप्नोंका फल पूछनेके लिये प्रसन्नचित्त हो अपने स्वामीके पास चल दी ॥ २९—३० ॥ जिससमय माता जयश्यामा राजा कृतवर्माके पास चली उससमय उसका सारा शरीर अनेक प्रकारके शृंगारोंसे देदीप्यमान था उसके कठिन और पीन दोनों स्तन विचित्र शोभा बढ़ा रहे थे । उसके शरीरसे तपे हुये सुवर्णकी कांति फूट रही थी एवं उसका अंग नम्रीभूत था बस सभामें पहुंचते ही वह अपने स्वामीके चरण कमलोंमें जाकर गिर गई । अपनी महाराणी को इसप्रकार पूर्ण विनययुक्त देखकर राजा कृतवर्माको वड़ा आनंद हुआ एवं हर्षसे गद्गद हो वह इसप्रकार अपना स्नेह व्यक्त करने लगा :—

हे महादेवि ! आप जो यहांपर पधारी हैं उससे मैं अत्यंत आभारी हूं बस ऐसा कहकर आधा सिंहासन छोड़ दिया एवं अपने हाथसे माता जयश्यामाका हाथ पकड़कर उसे अपनी बाईं ओर वड़े आदरसे बैठा लिया ॥३१—३३॥ माता जयश्यामा भी अपने स्वामी राजा कृतवर्मासे

लिता सती। स्त्रीणां स्नेह विकासाय भर्तुर्मान्यं भवेदिति ॥ ३४ ॥ व्यक्तीकृत्य परं प्रेम जगाद निजस्वामिनं । हे नाथ पश्चिमे यामे स्वप्ना दृष्टास्तु षोडश ॥ ३५ ॥ गजादिज्वलनातान् प्रोक्त्वा प्रोवाच सद्गिरं। एतेषां किं फलं स्वामिन्? वद त्वं करुणालय।।३६॥ तां जगाद नराधीशः शृणु त्वं तत्फलं मुदा। अंभोजलोचनेबाले नितंबभरमंथिरे ॥ ३७ ॥ दृष्टो गजो यतः शुभ्रस्तव पुत्रो भविष्यति। कुलानंदकरो गौश्च सर्वभारधुरंधरः ॥ ३८ ॥ सिंहदर्शनतो नूनं विक्रमी च त्रिलोकजित्। रमादर्शनतो देवि त्रैलोक्यरमयाश्रितः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार सन्मान पाकर बड़ी खुश हुई और आनन्दका अनुभव करने लगी। बात भी ठीक है अपने स्वामी द्वारा किया गया सन्मान ही स्त्रियोंके लिये विशेष आनन्दका कारण होता है॥३४॥ कुछ समय तक आनंदानुभवनके बाद महारानी जयश्यामाने उत्कट स्नेह व्यक्तकर इसप्रकार अपने स्वामीसे कहा :—

प्राणनाथ! रात्रिके पश्चिम भागमें मैंने सोलह स्वप्न देखे हैं एवं पहिले स्वप्न हाथीसे लेकर अंतिम स्वप्न अग्निपर्यंत समस्त स्वप्न कह भी सुनाये एवं यह प्रार्थनाकी कि इन स्वप्नोंका फल क्या होना चाहिये? हे कृपाके सागर स्वामी आप कृपाकर कहें ॥ ३५—३६ ॥ रानी जयश्यामाके सोलह स्वप्नोंको सुनकर महाराज कृतवर्मा बड़े प्रसन्न हुए और वे यह कहने लगे—हे कमल नयनी और नितंबोंके भारसे मंद चालसे चलनेवाली प्रिये! मैं अनुक्रमसे स्वप्नोंका फल कहता हूं तुम आनंदपूर्वक सुनो—तुमने जो स्वप्नमें हाथी देखा है उसका फल यह है कि समस्त कुटुंबको आनंद प्रदान करनेवाला तुम्हारे पुत्र होगा। बैल जो देखा है उसका फल यह है कि वह समस्त भारको धारण करनेवाला होगा। स्वप्नमें सिंहके देखनेका यह फल है कि वह सिंहके समान पराक्रमी और तीनों लोकोंका विजय करनेवाला होगा। लक्ष्मीके देखनेका यह फल है कि वह तीनों लोककी लक्ष्मीका स्वामी होगा। पुष्पमालायें जो दो देखी हैं उनका फल यह है कि वह पुत्र शुक्ल लेश्याका धारक अत्यंत कोमल चित्तवाला होगा। चंद्रमाके देखनेका फल

पुष्पदामविलोकाच्च शुक्लेश्यो मृदुत्वतः । चंद्रान्वेषणतः कांते शांतः परमतत्त्ववित् ॥ ४० ॥ नभोमणिसमालोकात्प्रतापाक्रांत विष्टपः । मीनदर्शनतः प्राज्यराज्यभागी सुरार्चितः ॥ ४१ ॥ द्विघटालोकतो मेरौ स्नानं लप्स्यति शक्रतः । तडाग.दर्शनाद्धामे सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ४२ ॥ समुद्रालोकतो धीरध्वानो गंभीरशासनः । अगाधो भोगिदेवानामवाङ्मानसगोचरः ॥ ४३ ॥ सिंहासनसमालोकाद्भूलोकेषु समर्हितः । विमानदर्शनात्स्वर्गादागामिष्यति हे प्रिये ॥ ४४ ॥ फणीन्द्रसदनालोकान्नागलोक समर्हितः । रत्नपुंजसम-

यह है कि वह चंद्रमाके समान लोगोंको आनंद प्रदान करनेवाली शांतिका धारक होगा और परमतत्त्वका जानकार होगा। सूर्यके देखनेका फल यह है कि वह पुत्र अपने प्रतापसे समस्तलोक को वश करेगा। मछलियोंके देखनेसे वह उत्तम राज्यका भोगनेवाला होगा और देवगण उसकी पूजा करेंगे। दो घड़ोंको जो स्वप्नमें देखा है उसका फल यह है कि उसपुत्रका अभिषेक स्वयं इन्द्र मेरु पर्वतपर करेगा। तालाबके देखनेका यह फल है कि वह समस्त शुभलक्षणोंसे शोभायमान होगा समुद्रके देखनेसे वह पुत्र दिव्य ध्वनिका स्वामी होगा। उसकी आज्ञा गंभीर होगी योगी होगा और देवगण उसके गुणोंका पता न पा सकेंगे एवं उसका चिदानंदस्वरूप वचन और मनके अगोचर होगा अर्थात् न वचनसे कहा जायगा और न मनसे विचारा जा सकेगा। स्वप्नमें जो सिंहासन देखा है उसका फल यह है भूलोकमें सब लोग उसकी पूजा करेंगे। विमान देखनेका यह फल है कि वह स्वर्गसे चयकर तुम्हारे गर्भमें आवेगा। नागकुमारोंका जो भवन देखा है उसका फल यह है कि समस्त नाग कुमारगण उसकी पूजा करेंगे। रत्नोंका पुंज देखनेसे वह करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे भी अधिक प्रभाका धारक होगा एवं स्वप्नमें जो सूर्य देखनेमें आया है उसका फल यह है कि वह तुम्हारा पुत्र समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला होगा। चिदानंद चैतन्यस्वरूप होगा मोक्षलक्ष्मीका स्वामी होगा एवं अत्यंत बुद्धिमान होगा अपने स्वामी राजा कृतवर्मासे इसप्रकार स्वप्नों का फल सुनकर माता जयश्यामाका हृदय आनंदसे उछलने लगा। एवं उस समय पुत्रकी उत्पत्ति

न्वेषात्कोटिसूर्याधिकप्रभः ॥ ४५ ॥ विभावसुसमालोकात्कर्मध्वंसी च चिन्मयः । मुक्तिसामाज्यो राज्ञि ! भविता ते, सुतः सुधीः ॥ ४६ ॥ एवं श्रुत्वा महादेवी हृदयानंद माय सा । तुजं लब्ध्वेव सन्माना त्सानंदा संययौ गृहं ॥ ४७ ॥ ज्येष्ठे कृष्णदशम्यां च ऋक्षे भाद्रपदे ध्रुवं । उत्तरादिभके स्वर्गात्सहस्रारेंद्र नामभाक् ॥ ४८ ॥ च्युत्वावतरितो गर्भे राज्ञ्या देव्यो निरोक्षिते । देवाश्चतुर्णिकायाश्च ज्ञात्वा स्यासनकंपनात् ॥ ४९ ॥ गर्भायानं सुराधीशं गर्भ कल्याण मा दिणं । चक्रुरानंदतः सर्वे सोत्सवाः संययुः पदं ॥ ५० ॥ षट्पञ्चाशत्कुमार्यश्च सेवते शक्र शासनात् । जिनांबां जगदानंद दायिनी वै यथा यथं ॥ ५१ ॥ काचित् शृंगारयामास पट्टकूलादि वस्तु-

के समाचार सुनते ही उसे यह जान पड़ने लगा मानो साक्षात् पुत्र ही प्राप्त होगया है। वह बड़े आदरसे अपने मंदिरमें आ गई एवं अत्यंत आनन्दका अनुभव करने लगी ॥ ३७—४७ ॥

कदाचित् जेठ कृष्णा दशमीके दिन जब कि उत्तर भाद्रपद नामका शुभ नक्षत्र विद्यमान था वह सहस्रारेंद्र नामका देव अपने निवासस्थान स्वर्गसे चला एवं देवांगनाओं द्वारा भलेप्रकार संशोधित माता जयश्यामाके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया। वह सहस्रारेंद्र भगवान विमलनाथका जीव था इसलिये उसके गर्भमें आते ही चारों प्रकारके देवोंके आसन कंपायमान हो गये जिससे उन्हें मालूम होगया कि भगवान विमलनाथ माता जयश्यामाके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गये हैं इसलिये वे सानंद उनके गर्भकल्याणकका उत्सव मनानेके लिये चल दिये एवं आनंदपूर्वक उत्सव मनाकर अपने अपने स्थान लौट गये ॥ ४८—५० ॥ सौधर्म इन्द्रकी आज्ञासे छप्पन कुमारियां तीनों लोकके जीवोंको आनन्द प्रदान करनेवाली माता जयश्यामाकी यथावसर भक्तिपूर्वक सेवा करने लगीं ॥ ५१ ॥ उनमें कोई कोई कुमारी नाना प्रकारके वस्त्र आदि पदार्थोंसे माताका शृंगार करने लगीं। कोई कोई कुमारी स्नान विलेपन आदिसे माताके शरीरको सुगंधित करने लगीं। कोई कोई प्रतिसमय माताके पैर दवाने लगीं। कोई माताको हिंडोलेमें बैठाकर झुलाने लगीं। कोई नाना प्रकारके व्यंजनोंसे व्याप्त एवं रूप और लावण्यका बढ़ाने वाला महा स्वादिष्ट

भिः काचित् स्नानादिना:गात्रे मातुः सौगंधिमातनोत् ॥ ५२ ॥ पादसंवाहनं काचित्करोतिस्म निरंतरं । काचिद्दै दोलिकारूढां रमयामास मातरं ॥ ५३ ॥ काचित्सद्भोजनं कृत्वा व्यंजनोकर संयुतं । भोजयामास सभक्त्या.रूपलावण्यवर्धकं ॥ ५४ ॥ काचिन्नानारसोपेतं नर्तनं गार्भितं । करोतिस्म जिनांबाया सुखसंतान सिद्धये ॥ ५५ ॥ काचिद्दै दर्पणं शुभ्रं नरदघ्नं च निर्मलं । दर्शयामास चातुर्यात्प्रश्न मालां पप्रच्छका ॥ ५६ ॥ हे मातः ! किमुतदेयं संसारे दुःखदे नृणां । गुरूणां वचनं रम्भे ! :उपादेयं सुभक्तिनः ॥ ५७ ॥ के गुरवो व

भोजन तैयार कर माताको जिमाती थीं । कोई कोई माता जयश्यामाके सुखपूर्वक संतान हो इस अभिलाषासे उसके आगे नाना प्रकारके रसोंसे व्याप्त मनोहर गानेके साथ आनन्द नाच नाचने लगीं । किसी किसीने माताके सामने मनुष्यके शरीरके समान ऊंचा निर्मल और शुभदर्पण रक्खा और उसे दिखाने लगीं एवं कोई कोई मातासे इसप्रकार प्रश्न करने लगीं—

अच्छा माता ! बतावो दुःखोंसे भरे हुए इस संसारमें मनुष्योंको ग्रहण करने योग्य पदार्थ क्या है ? माता उत्तर देतीं निर्ग्रन्थ गुरुओंका वचन ही भक्तिपूर्वक संसारमें ग्रहण करने योग्य है । प्रश्न—जिनका वचन ग्रहण करने योग्य होता है वे गुरु संसारमें कौन हैं ? उत्तर—जो तत्त्वों का स्वरूप भलेप्रकार जाननेवाले हैं और समस्त प्राणियोंको हित सुझाने वाले हैं । प्रश्न—माता सबसे जल्दी क्या काम संसारमें करना चाहिये । उत्तर—संसार बड़ा दुःख दायी है जहांतक बने वहांतक सबसे पहिले इसका छेदन करना चाहिये । प्रश्न-संसारमें मोक्षका कारण क्या पदार्थ है? उत्तर—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अर्थात् विना सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकती । प्रश्न—माता ! संसारमें विद्वानोंके लिये पथ्य—हितकारी, चीज क्या है ? उत्तर—स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करने वाला धर्म । प्रश्न—संसारमें पवित्रपुरुष कौन हैं ? उत्तर—जिसका मन शुद्ध है । प्रश्न--पंडित कौन है ? उत्तर—जो हित और अहितका विवेक रखता है । प्रश्न—विष किसको कहना चाहिये ? उत्तर—निर्ग्रन्थ गुरुओंका सत्कार न करना उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखना ही हला हल विष हैं क्योंकि वैसा करनेसे आत्मस्वरूपका तीव्ररूपसे घात